पूर्ण संख्या— २१७

Approved by the Directors of Public Instruction, United Provinces and Central Provinces for use in Schools and Libraries. Reg. No. A. 708.

भाग ३७ VOL. 37.

मेष, संवत् १९९०

अप्रैल, १९३३

संख्या १ No. 1

प्रयागकी विज्ञान परिषत्‌का मुखपत्र

'VIJNANA' THE HINDI ORGAN OF THE VERNACULAR SCIENTIFIC SOCIETY, ALLAHABAD.

अवैतनिक सम्पादक

ब्रजराज एम. ए., बी. एस-सी., एल-एल. बी.,

सत्यप्रकाश, डी. एस-सी., एफ. आई. सी. एस.

प्रकाशक

वार्षिक मूल्य ३)] विज्ञान परिषत्, प्रयाग [१ प्रतिका मूल्य ।)

विषय-सूची

विषय | पृष्ठ

१—वैज्ञानिक पारिभाषिक शब्द

[Hindi Scientific Terminology]

प्रथम भाग

इसमें शरीर विज्ञान, वनस्पतिशास्त्र, भौतिक विज्ञान, और रसायन शास्त्र (भौतिक, कार्बनिक और अकार्बनिक) के पारिभाषिक शब्दों का संग्रह है।

—सम्पादक—सत्यप्रकाश, एम० एस-सी० मूल्य ॥)

२—बीज ज्यामिति

[Conic Section]

ले० सत्यप्रकाश, एम० एस-सी०

सरलरेखा, वृत्त, परवलय, दीर्घवृत्त और अतिपरवलय का विवरण। मूल्य १॥)

३—प्रकाश रसायन (Photochemistry)

ले० श्री वा० वि० भागवत

रसायन के सम्पूर्ण रासायनिक अंगों का उपयोगी वर्णन। मूल्य १॥)

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० ।३।५॥

भाग ३६ | वृष, संवत १९९० | संख्या १

आचार्य्य नील रत्न धर

[ले० श्री आत्माराम एम. एस-सी.]

फारसी में किसी ने कहा है "ला कमाले ला ज़वाल" अथवा जो उन्नति पाता है उसे अवनति के भी दर्शन करने होते हैं। संसार में भारतवर्ष को छोड़कर शायद ही कोई और ऐसा अभागा देश होगा जो उन्नति के सर्वोच्च शिखर पर पहुँच कर नीचे से नीचेकी खाड़ी में जा गिरा हो। उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त तक भारतवर्ष अपनी उसी प्यारी निद्रा देवी की गोद में सोता रहा जिसका कि फल हम आज तक भुगत रहे हैं और भुगतते रहेंगे। आलस्य तथा ईर्ष्या की अग्नि भरपूर जलती हो रही। यों तो इस समय तक कई एक कालज तथा विश्वविद्यालय भारतीय जनता के सुधार के लिये सरकार की ओर से खोले जा चुके थे, परन्तु वास्तव में जिस को विद्या या जाग्रति कहते हैं भारत के लालों को छू तक भी न गई थी। हाँ, अवश्य कुछ नवयुवक अँग्रेजी पढ़कर या तो सरकारी दफ़्तरों में कुछ कार्य्य करते थे या किसी छोटे मोटे स्कूल में पढ़ाकर अपना जीवन निर्वाह करते थे। यह उसी भारतवर्ष के ऋषियों की सन्तान की दशा थी जो वर्तमान ज्ञान के आविष्कारक कहे जा सकते हैं। इस बात का अनुमान लगाना कि प्राचीन काल में भारत की वैज्ञानिक दशा कैसी थी कुछ कठिन है, परन्तु यह बात तो बिल्कुल सत्य है कि गणित, ज्योतिष या रसायन शास्त्र में जो कुछ उन्नति प्राचीन आर्यों ने की वह मुख्य रूप में धार्मिक तरीकों से की, और ज्यों ज्यों किसी मुख्य ज्ञान की आवश्यता होती गई त्यों त्यों ही वह बढ़ता गया।

रसायन के संबन्ध में भारत का नाम सर्वदा अमर तथा सर्वोच्च रहेगा। यद्यपि आज भारत-

वर्ष का स्थान वैज्ञानिक जगत् में काफी नीचा है परन्तु यह वही देश है जिसके महापुरुषों की करामात आज तक, जब कि प्रत्येक कार्य्यमें विज्ञान की बू और झलक मालूम होती है, बड़े बड़े वैज्ञानिकों को चकित कर रही है । वैद्यक को एक प्रकार से भारत की ही विद्या माना जाता है और चरक, नागभट्ट तथा नागार्जुन इत्यादि के नाम तथा उन के कार्य लगभग सभी जानते हैं । किसने देहली के पास अशोक की लाट, सोमनाथ-मन्दिर के द्वार तथा ताजमहल का नाम नहीं सुना । यह कार्य प्राचीन भारत की वैज्ञानिक विद्या तथा कार्य कुशलता के ज्वलन्त उदाहरण हैं । अशोक की लाट में जो लोहा लगा है वह आज तक, यद्यपि इतने वर्ष बीत चुके, बिल्कुल वैसा ही मौजूद है । आज कल जो कुछ लोहे के पदार्थ बनाये जाते हैं उनमें मोरचा लग जाता है परन्तु वह इतनी लम्बी लाट ऐसी साफ़ खड़ी है जैसी आज ही बनी हो। क्या इन सब बातों से भारत की विद्या तथा उसके वासियों की कार्य्य कुशलता में कोई संदेह रह सकता है; कदापि नहीं । सर राबर्ट हेटफ़ील्ड, जो आजकल धातु क्रिया और विशेष कर लोहे के बनाने में जगत प्रसिद्ध हैं, कहते हैं, 'देहली के पास जो लौह खम्ब है उसे देख कर किसको आश्चर्य्य न होगा। इतनी बड़ी लाट किस प्रकार एक ऐसे समय में, जिसको ऐतिहासिक लोग जंगली तथा वहशियोंका समय बताते हैं, बन सकी होगी! इन बातों से यह मानना पड़ता है कि भारतवर्ष में ऐतिहासिक काल से पहिले भी रसायन में काफ़ी चतुरता रही होगी"

अब काफ़ी पतन हो चुका। परन्तु क्या भारत के दुर्दिन कभी न बदलेंगे ? नहीं, अवश्य बदलेंगे। भारत में वैज्ञानिक जाग्रति उत्पन्त करने वाले मुख्य कर सर जगदीश चन्द्र बोस तथा सर प्रफुल्ल चन्द्र राय हीहैं, यद्यपि विश्व बिख्यात गणितज्ञ श्री श्रीनिवास रामानुजन् भी उन भारतवासियोंमें से ही हैं जिन्होंने अपने मस्तिष्क की गति से जगत को चकित कर दिया है। श्रीनिवास महोदय ने किसी कालेज या विश्वविद्यालय में शिक्षा नहीं पाई थी, बल्कि वह एक साधारण व्यक्ति थे और फिर यही श्रीनिवास जगतके बड़े से बड़े गणितज्ञों से भी बड़े समझे जाने लगे, परन्तु भारत के अभाग्य केवल ३३ वर्ष की ही आयु में वह परलोक सिधारे, वरन न जाने आजतक उन की बुद्धि के क्या क्या चमत्कार देखने में आते। भारत में वैज्ञानिक अनुसन्धानों की ओर विद्यार्थियों को आकर्षित करने का श्रेय विशेष कर सर प्रफुल्ल चन्द्र को ही दिया जाता है।

पिछले २० वर्षों से भारतवासी भी ज्ञान के भंडार में कुछ न कुछ जमा कर ही रहे हैं। भारतवर्ष की वर्तमान वैज्ञानिक स्थिति अच्छी होती ही जाती है परन्तु कमी इतनी है कि स्वतन्त्र देश न होनेके कारण देशी वैज्ञानिकों को इतना सुभीता और सुविधा नहीं कि निश्चिन्त होकर कार्य्य करें। तब भी सर चन्द्र-शेखर वेंकट रमनको सर्वोच्च वैज्ञानिक प्रतिष्ठा अथवा नोबेल पुरस्कार प्रदान होना कोई कम गौरवकी बात नहीं है। पर जो कुछ भी कार्य्य भारत के वैज्ञानिक कर रहे हैं उस से आशाकी जा सकती है कि कुछ ही समय के भीतर भारत फिर एक उच्च स्थान को पहुँचेगा । आचार्य्य प्रफुल्ल चन्द्र राय ने केवल अपने कार्य्य से ही नहीं बल्कि अपने विख्यात शिष्यों के अनुसन्धानों से भी भारत जैसे पिछड़े देश को वैज्ञानिक संसार में स्थान दिला दिया है । उनके विशेष शिष्यों में डा० नील रत्न धर, ज्ञानेंद्र चन्द्र घोष, ज्ञानेन्द्र नाथ मुखर्जी इत्यादि जैसे रसायनज्ञ हैं। इस लेख में उन के सब से प्रतिष्ठित शिष्य प्रो० नील रत्न धर के विषय में कुछ बतलाया जायगा ।

आचार्य्य नील रत्न धर का जन्म २ जनवरी सन् १८९२ ई० में जैसौर (बंगाल) में हुआ । इन्होंने अपनी प्रारम्भिक शिक्षा वहीं के हाई स्कूल में पाई। इन्ट्रैंस परीक्षा प्रथम श्रेणी में पास कर के धर महोदय को कालेज में अध्ययन करने के लिये १५) रु० मासिक की छात्रवृत्ति मिली और आप वहीं पर रिपन कालेज में भर्ती हो गये।

यहाँ पर आपको सर सुरेन्द्र नाथ बैनरजी इत्यादि जैसे महापुरुषों से शिक्षा पाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। इसी कालेज में बा० रमेन्द्र सुन्दर त्रिवेदी, जो अपने ज्ञान के लिये काफी विख्यात हैं, पढ़ाते थे और आप उन की शिष्यता में भी रहे। यहांसे एफ़० ए की परीक्षा भी उच्च स्थानके साथ प्राप्तकी और बी० एस-सी में पढ़ने के लिये छात्रवृत्ति भी पाई। इस प्रकार आप १९०९ ई० में प्रेसिडेन्सी कालेज में भर्ती हुये और यहीं पर आपके जीवन कार्य्यकी नींव पड़ी। यहां आपको गुरु मिले आचार्य राय तथा सर जगदीस बोस। यहां पर आपने बी० एस-सी (आनर्स) की परीक्षा प्रथम श्रेणीमें पासकी और एम० एस-सी में अपनी नई खोजों पर एक लेख लिखा जिसके लिये आप को प्रथम श्रेणी में पास होने का फिर सौभाग्य प्राप्त हुआ और एम० ए०, एम० एस सी के सब विद्यार्थियों में सर्व प्रथम रहे और १२ सुवर्ण पदक भी मिले। यद्यपि आपको पास होते ही पटना कालेज में २००) मासिक पर अध्यापक की जगह मिली परन्तु आपने अपने गुरु के अनुरोध पर इस को त्याग दिया और अनुसन्धानिक कार्य्य आरम्भ किया। दो वर्ष तक बिना किसी छात्रवृत्ति के कार्य्य करते रहे और १९१५ ई० में आप को भारत सरकार की ओर से विलायत पढ़ने के लिये छात्रवृत्ति मिली और आप इम्पीरियल कालेज लडंन में प्रो० फ़िलिप की प्रयोग शाला में कार्य्य करने लगे। आपके कार्य्य की उत्तमता के कारण आपको १९१७ ई० में लन्दन विश्व-विद्यालय से डी० एस-सी की उपाधि मिली।

१९१७ ई० में लन्दनसे आप पेरिस चले गये और यहां पर प्रो० पेरां तथा उरबाँ और श्री मती क्यूरी की अध्यक्षता में कार्य्य करने लगे। १९१९ ई० में आप को पेरिस विश्व-विद्यालय से भी डी० एस-सी की उपाधि मिली। १९१९ में प्रयाग के म्योर कालेज में रसायनाचार्य्य का पद ख़ाली हुआ और आपको भारत मंत्री ने आई० ई० एस में भर्ती करके इस पद पर नियुक्त किया। १९२३ ई० में म्योर कालेज वर्त्तमान् प्रयाग विश्व-विद्यालय में परिवर्तित हुआ और आप रसायन विभागके मुख्य अध्यापक नियुक्त किये गये।

जिस समय धर महोदय सयुंक्त प्रान्त में आये तो यहाँ अनुसन्धानिक विषयों पर कोई विशेष कार्य्य नहीं होता था; केवल म्योर कालेज के डा० वुडलैन्ड कुछ कार्य्य करते थे। संयुक्त प्रांतमें अन्वेषण करनेकी लालसा तथा रुचि उत्पन्न करने का श्रेय आचार्य्य धर को ही है। श्रीमान जी को हिन्दी से भी काफ़ी प्रेम है और आजकल आप विज्ञान परिषद् के सभापति हैं।

रासायनिक अन्वेषण

रसायन के भिन्न भिन्न क्षेत्रों में आचार्य्य धर का अन्वेषण कार्य्य परिविस्तृत है। इस कार्य्य का वर्णन हम निम्न विभागों में कर सकते हैं:—

१—प्रारम्भिक कार्य्य विद्युच्चालकता और नोषितों पर एवं अमोनियम नोषित के वाष्प घनत्व पर।
२—उत्प्रेरण पर।
३—विद्युत् विश्लेषण सिद्धान्त के उपयोग पर।
४—रासायनिक प्रक्रियाओं का अध्ययन और। प्रकाश रसायन।
५—कलोद-रसायन पर।
जीव-रसायन पर

प्रारम्भिक कार्य्य

सर प्रफुल्लचन्द्र राय की सहकारिता में डा० धर का सर्व प्रथम कार्य्य आरम्भ हुआ। सर प्रफुल्ल अपनी पारद-नोषित की खोजों के कारण समुचित ख्याति प्राप्त कर ही चुके थे। उन्होंने इन नोषितों के अतिरिक्त पारद के अनेक कार्बनिक मूल संयुक्त अमोनियम यौगिक भी बनाये थे। इन यौगिकों की गठन के सम्बन्ध में बहुत सी बातें सन्देह जनक थीं, और अब तक इसका समाधान रासायनिक संश्लेषण की पुष्टियों के आधार पर ही किया जाता था। भारत वर्ष में अब तक भौतिकरसायन पर कहीं भी

कार्य्य नहीं होता था, यद्यपि योरोप में उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त में रसायन के इस अंग का प्रचार हो गया था। आरहीनियस ने अपने विद्युत विश्लेषण सिद्धान्त द्वारा रासायनिक संसारमें एक नई क्रांति उपस्थित कर दी थी। डा० धर की भी कुछ रुचि इस ओर हुई और उन्होंने यह चाहा कि नोषित आदि यौगिकों का गठन विद्युत् चालकता के फलों से स्पष्ट हो जाय। घोल में किसी भी यौगिक की चालकता उसके यवनों की संख्या पर निर्भर करती है। संकीर्ण यौगिकों में द्विगुण योगिकों की अपेक्षा कम यवन होते हैं,अतः विद्युत् चालकता से यह पता चल सकता है कि कोई यौगिक संकीर्ण है या नहीं। इस आधार पर धर महोदय ने कई लेख लिखे जो सन् १९१२-१३ में लंडन के जर्मन आफ केमिकल सोसायटी में प्रकाशित हुए और इनमें नोषितों के गठन पर अच्छा प्रकाश पड़ा।

सर प्रफुल्ल और तीनकौड़ीडे के सहयोग में धर ने एक और उल्लेखनीय कार्य्य किया। सर-प्रफुल्ल ने यह दिखा दिया था कि रजतनोषित और अमोनियम हरिद् के मिलाने से जो अमोनियम नोषित बनता है, उसके रवे शून्य में ३७°-४०° पर सुखाने से प्राप्त हो सकते हैं। अमोनियमनोषित बड़ा ही अस्थायी पदार्थ है, और ताप-क्रम बढ़ने पर यह नोषजन और पानी में विभाजित हो जाता है। इसी कारण इसके रवे सर प्रफुल्ल से पूर्व कोई भी उपलब्ध नहीं कर सका था। यह सर प्रफल्ल की विशेषता थी। प्रफुल्ल यह भी चाहते थे कि इस यौगिक का यदि वाष्पघनत्व निकल सके तो इसकी प्रामाणिकता में कोई सन्देह नहीं रह जायगा।

अमोनियम नोषित के १००° तक गरम करने पर कुछ पानी, कुछ नोषजन और कुछ नोषजन के ओषिद बन जाते हैं, पर कुछ अमोनियम नोषित अविभाजित भी शेष रह जाता है। धर और डे ने प्रयोगों द्वारा सब पदार्थों की मीमांसा की और उनके फलों से यह निश्चित किया कि अविभाजित अमोनियम नोषित का वाष्पघनत्व कितना है। इस कार्य्य की भी अच्छी ख्याति हुई। वस्तुतः धर के विद्युतचालकता और वाष्पघनत्व वाले दो प्रयोगों ने भारतवर्ष में भौतिक रसायन के कार्य्य को जन्म दिया।

इन्हीं वर्षों में देवेन्द्र नाथ भट्टाचार्य के सहयोग में डा० धर ने यवनों की ०°श तापक्रम पर गति और नोषित यवन की भ्रामकसंख्या पर भी लेख प्रकाशित कराये। अतिसंपृक्तता (supersaturation), रागि-काम्ल और अन्य द्विभास्मिक अम्लों के विश्लेषणांकों पर भी उपयोगी कार्य्य किया।

आचार्य राय के साथ थोड़े समय कार्य्य करने के उपरान्त आपने स्वतन्त्र कार्य आरम्भ कर दिया। भौतिक रसायन के प्रति रुचि तो थी ही। कोब-ल्टामिन के संकीर्ण यौगिकों के कार्य से अकार्ब-निक रसायन सम्बन्धी योग्यता भी अच्छी तरह प्रकट होती है। इनकी गठन सुलझाने में भी आपने विद्युच्चालकता का व्यवहार किया। संकीर्ण टकि-काम्ल पर भी इस विधि का प्रयोग किया।

उत्प्रेरणा पर कार्य (Catalysis)

सन् १९१५ में डा० धर इम्पीरियल कालेज आफ सायंस लंडन में अन्वेषण का कार्य करने और और डी० एस-सी० की उपाधि प्राप्त करने के लिए गये। यहाँ आप का मुख्य कार्य उत्प्रेरण और आवेश-प्रक्रियाओं (induced reactions) पर हुआ। इसके सम्बन्ध में आपके २५ के लगभग लेख एम्सटर्डम की वैज्ञानिक पत्रिका (Koninklijke AKademie van Wetenschappen Te Amsterdam) लंडन के जर्नल आफकेमिकल सोसायटी, और जर्मनी के ज़ाइट अनार्ग शेमी में प्रकाशित हुए। कभी कभी ऐसा देखा गया है कि कोई रासायनिक प्रक्रिया यदि न हो रही हो या बहुत धीमे हो रही हो तो उसमें कोई बाहरी पदार्थ डाल दिया जाय तो यह प्रक्रिया बड़ी तीव्रता से होने लगेगी। इस बाहरी पदार्थ को जो किसी प्रक्रिया

को प्रेरित करता है उत्प्रेरक कहते हैं और इस कृत्य का नाम उत्प्रेरण है।

उत्प्रेरकों का कार्य तीन विभागों में विभाजित किया गया है।—(१) अति संपृक्त घोलों को मुक्त करने में। (२) रासायनिक और विशेषतः प्रकाश रासायनिक प्रक्रियाओं की गति बढ़ाने में और (३) आवेश प्रक्रियों के संचालित करने में। अति-संपृक्त घोलों के सम्बन्ध में खटिकहरिद, ताम्रगन्धेत, मगनीसगन्धेत, सैन्धक गन्धेत आदि घोलों की परीक्षा की और यह दिखाया कि किन किन पदार्थों से इन घोलों की अतिसंपृक्तता मुक्त हो सकती है। साधारणतः यह विश्वास है कि समरूपक रवे मुक्त करने में सर्वदा सहायक होते हैं, पर धर ने प्रयोगों से यह दिखाया कि यह नियम सर्व मान्य नहीं है।

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि इसी समय धर ने पांशुजकाष्ठेत और अरुणिन—या अन्य अम्ल और मद्य तथा अरुणिन—की प्रकियाओं का अध्ययन किया था और दिखाया था कि प्रकाश द्वारा ये प्रक्रियायें अधिक गति से चलने लगती है। इन प्रक्रियाओं में ही धर के भविष्य के प्रकाश रासायनिक कार्य्य का आरम्भ होता है। इस सम्बन्ध में एक विस्तृत लेख सन् १९१६ में प्रकाशित हुआ है जिसमें अनेक प्रक्रियाओं पर प्रकाश का प्रभाव दिखाया गया है।

साधारण ताप क्रम पर प्रकाश में पारदिक हरिद और काष्ठिकाम्ल में प्रक्रिया होकर पारदस हरिद का अवक्षेप आ जाता है। यह प्रक्रिया अन्धकार में नहीं होती है। पर यदि इन दोनों के मिश्रण में कोई ऐसा पदार्थ डाल दिया जाय जो काष्ठि काम्ल को आसानी से ओषदीकृत करता हो तो उसकी प्रेरणा से पारदिक हरिद भी काष्ठिकाम्ल का ओषदीकरण करने लगेगा। इसका नाम है आवेशप्रक्रिया जब कि एक प्रक्रिया वैसी ही दूसरी प्रक्रिया को प्रेरित कर देती है। धर ने यह देखा कि यदि पारदिक हरिद और काष्ठिकाम्ल के घोल में पांशुज परमांगनेत के घोल की कुछ बूँदें डाल दी जाँय तो एक दम पारदस हरिद का अवक्षेप आ जायगा। पांशुज परमांगनेत के स्थान में पांशुज परगन्धेत, रागिकाम्ल, पांशुज नोषित आदि लेने में भी यही होता है।

इस प्रकार अन्य अनेक आवेष प्रक्रियाओं की खोज की। काष्ठिकाम्ल और पारदिक हरिद न लेकर इमलिकाम्ल, उदौषिकामिन, उद हरिद आदि का पारदिक हरिद पर प्रभाव देखा जा सकता है।

इस प्रकार की बहुत भी उत्प्रेरण प्रक्रियाओं और आवेश प्रक्रियाओं की गति पर ताप क्रम का क्या प्रभाव पड़ता है इसका धर ने बहुत ही विस्तृत अध्ययन किया। पेरिस विश्वविद्यालय से आपको जो डाक्टर की उपाधि मिली है वह ऐसी प्रक्रियाओं के ताप क्रम गुणक पर थी। शारीरिक प्रक्रियाओं के ताप क्रम गुणकों की भी इन्हीं फलों के आधर पर मीमांसाकरने कायत्न किया। एकप्रक्रिया दूसरी प्रक्रिया को किस प्रकार आवेश करती है, इसका सिद्धान्त भी धर ने प्रस्तुत किया। यहाँ एक बात विशेष निरीक्षण की गई। वह थी ताप के प्रक्रिया पर प्रभाव और प्रकाश के प्रक्रिया पर के प्रभाव की भिन्नता। प्रत्येक प्रक्रिया की गति दोनों प्रभावों पर निर्भर रहती है। इनमें कितना प्रकाश का प्रभाव है और कितना ताप का, यह जानना बहुत ही उपयोगी है। ताप क्रम गुणकों के अध्ययन से इस समस्या का अध्ययन किया गया।

उत्प्रेरण और आवेश प्रक्रियाओं की उपयोगिता प्राणियों की शारीरिक प्रक्रियाओं में बहुत ही अधिक है। इस प्रकार धर ने अपने प्रारम्भिक इन कार्यों से न केवल भारत में प्रकाश रसायन के अध्ययन में प्रोत्साहन दिया प्रत्युत जीवरसायन के कार्य्य की भी नीव डली। शारीरिक प्रक्रियाओं में इनका क्या संबन्ध है इसका उल्लेख आगे किया जावेगा।

इस संबन्ध में डा० धर ने डा० पालित आदि व्यक्तिओं के सहयोग में धातुओं पर नोषिकाम्ल के प्रभाव का भी विस्तृत अध्ययन किया।

विद्युत् विश्लेषण सिद्धान्त का उपयोग

धर महोदय आरहीनियस के यवन सिद्धान्त के बड़े ही पोषक रहे हैं। सन् १९१३ में ही इससिद्धान्त के आधारपर अनेक समस्याओं की विवेचना करने में आपकी रुचि रही है। इस सम्बन्ध में आपके ये लेख उल्लेखनीय हैः—(१) धोलों में यवनों का आयतन (१९१३) (२) शून्य तापक्रम पर यवनों की प्रगति (१९१५) (३) मद्यिक घोलों में विद्युत् चालकता का तापक्रम गुणक (१९१५) (४) विद्युत् विश्लेषण सिद्धान्त पर कुछ विचार (१९१९)—यह लेख आरहीनियस के परामर्श से लिखा गया था। (५) घुलनशीलता के आधार पर अम्लों और क्षारों के विश्लेषणांक (१९२६) (६) भागवत के सहयोग में विश्लेषणांक सम्बन्धी अन्य लेख (१९२९)

प्रकाश रसायन

प्रकाश रसायन के सम्बन्ध में डा० धर का कार्य्य दो भागों में विभाजित किया जा सकता है। (१) प्रकाश रासायनिक प्रक्रियाओं का अध्ययन (२) प्रकाश संश्लेषण। प्रकाश संश्लेषण का उल्लेख हम अलग करेंगे। यह कहा जा चुका है कि उप्रेरण पर कार्य्य करते समय ही धर ने यह जान लिया था कि अरुणिन्, नैलिन्, पांशुज परमांगनेत आदि द्वारा होने वाली अनेक प्रक्रियाओं की प्रगति प्रकाश में बढ़ जाती है। इन प्रक्रियाओं के तापक्रमगुणकों का भी कुछ अध्ययन पहले हो चुका था। डा० विमलकुमार मुकर्जी के साथ इन प्रक्रियाओं का फिर अध्ययन अधिक कुशलता से आरम्भ होगया। सन् १९२४ से १९२८ तक डा० मुकर्जी ने इन भिन्न भिन्न प्रक्रियाओं की गति, और प्रकाश तीव्रता का गतिपर प्रभाव, प्रकाशोत्प्रेरक, और प्रकाशोद्बाधकों का प्रभाव, 'पश्चात् प्रभाव' (after effect) आदि की मीमांसा की। इन्होंने शोषण चित्रों द्वारा यह दिखाया कि प्रक्रिया की प्रगति उन्हीं अवस्थाओं में प्रकाश में बढ़ेगी जब कि प्रकाश का शोषण अधिक होगा। यदि प्रक्रिया भिन्न भिन्न प्रकाशों में की जाय तो अधिकतम गति उसी प्रकाश में होगी जिसमें शोषण अधिक होता है। आपने यह भी दिखाया कि प्रत्येक प्रक्रिया को प्रेरणा के लिये एक निश्चित सामर्थ्य की अवश्यकता है और जब तक कि प्रकाश की किरण उस सामर्थ्य की न होगी तब तक प्रक्रिया संचारित न होगी। यह निम्नतम सामर्थ्य तापक्रम गुणक के आधार पर निकाली जा सकती है। मुकर्जी ने यह भी दिखाया कि बहुत सी प्रक्रियायें परालाल किरण (७३०४ अ) से भी प्रोत्साहित हो सकती हैं। प्रकाश प्रभाव के लिये आइन्सटाइन ने एक आदर्श नियम दिया है। उसका अभिप्राय यह है कि एक अणु को विभाजित करने के लिये प्रकाश की सामर्थ्य का एक कांटम काफी है। धर और मुकर्जी के प्रयोगों से यह स्पष्ट है कि यह नियम सर्व मान्य नहीं है और बहुधा एक अणु के विभाजन के लिये अन्य कांटमों का शोषण हो जाता है। इसका कारण यह है कि प्रत्येक प्रक्रिया पूर्णतः प्रकाश प्रक्रिया नहीं है, इसके साथ साथ ताप प्रक्रिया भी होती रहती है। जितनी ही ताप प्रक्रिया प्रबल होगी, उतने ही आइन्सटाइन के सिद्धान्त के अधिक अपवाद मिलेंगे।

डा० मुकर्जी के पश्चात् डा० अक्षयकुमार भट्टाचार्य्य ने डा० धर की सहकारिता में प्रकाश रसायन पर विशेष कार्य्य किया। डा० भट्टाचार्य ने चालीस के लग भग प्रक्रियाओं का अध्ययन किया है जिनमें से बहुत सी तो वही हैं जिनका डा० मुकर्जी ने परिशीलन किया था। भट्टाचार्य की विशेषता यह है कि इन्होंने प्रक्रियाओं की श्रेणियों (order) पर प्रकाश की तीव्रता का प्रभाव विस्तार से देखा है। इनका कहना है कि तीव्रता के अनुसार प्रक्रिया की श्रेणी बहुत घटबढ़ कर कोई भी भिन्न-संख्या भी हो सकती है। इनके कार्य्य की दूसरी विशेषता प्रकाश के परालाल विभाग की प्रक्रियायें हैं। परालाल किरणों में इतनी सामर्थ्य नहीं होती है

कि अरुणिन् या नैलिन् के अणुओं को परमाणुओं में परिणत करदें। इस आधार पर इनका विश्वास है कि प्रकाश रासायनिक प्रक्रियायें अणुओं के उत्तेजन से भी हो सकती हैं; इनका परमाणु में परिवर्तन हो कर उत्तेजन मानने की आवश्यकता नहीं है।

प्रकाश रसायन में एक और भी उपयोगी कार्य्य डा० धर की सहकारिता में नृपेन्द्रनाथ विश्वास ने किया है। उन्होंने यह दिखाया है कि बहुत से रंगों में ऐसा गुण है कि यदि उनमें ओषोन वायु अंधेरे में प्रवाहित की जाय तो ओषदी करण के समय उनमें से थोड़ा सा प्रकाश भी निकलता है। इस प्रकाश को रासायनिक प्रकाश (Chemi luminescence) कहते हैं। श्रीमती शीला धर ने अनेक कलोदों पर प्रकाश का प्रभाव देखा है।

प्रकाश संश्लेषण

प्रकाश संश्लेषण का ठीक अर्थ बहुत ही कम लोग समझते होंगे। यदि दोनों शब्दों का अर्थ लिया जाय तो कोई भी रासायनिक प्रक्रिया जिसमें प्रकाश की सहायता से संश्लेषण किया जाय प्रकाश संश्लेषण के नाम से पुकारी जा सकती है, परन्तु वास्तव में इस का यह अर्थ नहीं। प्रकाश संश्लेषण केवल उसी रासायनिक प्रक्रिय को कहते हैं जिस से कि पौधे कर्बन द्विओषिद् तथा जल से प्रकाश की सहायता से कर्बोदेत इत्यादि वस्तुयें उत्पन्न करते हैं। प्रकाश संश्लेषण पर डा० धर की खोज सब से पहिले १९२५ ई० में श्री युत सानयाल के साथ आरम्भ हुई। प्रकाश संश्लेषण में कौन सी वस्तु सब से पहिले बनती है इस विषय में बहुत ही मत भेद है परन्तु अधिकतर लोगों का कथन है कि कर्बन द्विओषिद तथा जल से पहिला बनने वाला पदार्थ पिपीलमद्यानाद्र है और यह मद्यानाद्र तुरन्त ही शर्कराओं में परिवर्तित हो जाता है। डा० धर ने सानयाल महोदय के साथ यह दिखलाया कि वास्तव में कर्बन द्विओषिद तथा जल से प्रकाश की उपस्थिति में पिपीलमद्यानाद्र बन सकता है और लोहे के लवणों के घोल की विद्यमानता में इस मद्यानाद्र से शर्करा भी उत्पन्न हो सकती है। तीन या चार वर्ष तक इस विषय में कोई विशेष कार्य्य नहीं हुआ। डा० धर को सर्वदा रासायनिक नियमों का उपयोग करने की विशेष चाह रही है जैसा कि पिछले कुछ पृष्ठों से विदित होगा। इसी प्रकार उन्होंने अपने प्रकाश रसायन के ज्ञान को प्रका संश्लेषण में उपयोग किया। १९३० ई० में श्री गोपालराव की सहायता से प्रकाश संश्लेषण पर दो और लेख छपवाये जिनमें पहिले कार्य्य की पुष्टि की और साथ ही साथ दिखलाया कि हरोफिल (chlorophyll) प्रकाश उत्प्रेरक होनेके अतिरिक्त अवकारक (reducing agent) का कार्य्य भी करती है। इसके पश्चात नवजात (Nascent) कर्बन द्विओषिदके साथ प्रयोग करके यह सिद्ध किया कि यदि नवजात कर्बन द्विओषिदको जलके साथ प्रकाश में रक्खा जाय तो बिना किसी प्रकाश उत्प्रेरकके मिलाये हुये ही पिपीलमद्यानाद्र उत्पन्न हो सकता है। यह कार्य्य बहुत ही महत्त्व पूर्ण है और आजकल आचार्य्य धर तथा उनके शिष्य इसी अनुभव के आधार पर प्रकाश संश्लेषणका एक नया सिद्धान्त रखने वाले हैं। इस वर्ष धर महोदय ने संयुक्त प्रांत की वैज्ञानिक सभा में एक लेख पढ़ा जिसमें दिखलाया कि पौधे के लिये प्रकाश संश्लेषण से श्वासोच्छ्वास क्रिया अधिक आवश्यक है और ताप का प्रभाव प्रकाश संश्लेषण से श्वासोच्छ्वास क्रिया पर अधिक होता है। इस लेख में कई गूढ़ बातें हैं और आशा है कि इस के आधार पर बहुत सी युक्तियां समझाई जा सकेंगी।

यह तो केवल कर्बोदेतों के संश्लेषण के विषय में रहा। नोषजन पदार्थों के प्रकाश संश्लेषण पर धर महोदय का कार्य्य १९२५ ई० से ही चला आ रहा है। सानयाल के साथ डा० धर ने दिखलाया कि प्रकाश की सहायता से अमोनिया तथा पिपीलमद्यानाद्र के मेल से ताम्र सिरकेत तथा कर्बोनेत की विद्यमानता में दारील अमिन इत्यादि पदार्थ बन सकते हैं। इस कार्य्य का समर्थन गोपाल राव ने भी किया, परन्तु इस विषय में सब से महत्त्व पूर्ण कार्य्य श्री लक्ष्मी नारायण जी भार्गव के साथ हुआ जिन्होंने अपने धैर्य्य से अमोनिया तथा पिपीलमद्यानाद्र के घोल से ताम्र

कर्बोनेत तथा टिटेनम ओषिद् की विद्यमानता में प्रकाश की सहायता से तमाखुइन का संश्लेषण कर के दिखा दिया। यद्यपि इस कार्य्य के महत्त्व को अभी बहुत कम लोग समझते होंगे परन्तु आशा है कि यह कार्य्य समय आने पर एक उच्च कोटि के कार्य्यों में समझा जायगा।

इस वर्ष डा० धर ने श्री बेंकट गिरी के साथ अमीनोअम्लों के प्रकाश संश्लेषण पर कार्य्य आरम्भ किया। उन का विचार था कि शर्कराओं की विद्यमानता में अमोनिया तथा पिपीलमद्यानाद्र से अमीनोअम्ल बनने चाहिये और वास्तव में गिरी महोदय ने प्रायोगिक रूप में इस विचार की पूर्ति कर दिखाई है। आचार्य्य धर आजकल विशेषकर प्रकाश संश्लेषण पर ही कार्य्य कर रहे हैं और आशा है कि भविष्य में उनकी प्रयोगशाला से इस विषय पर और भी महत्त्व पूर्ण कार्य्य होगा।

नोषिनी करण (Nitrification)

इस समय तक लोगों का यही विचार था कि बैक्टीरिया के अतिरिक्त और किसी क्रिया द्वारा मिट्टी में नोषित तथा नोषेत अमोनियम लवण से नहीं बनते। हाल ही में डा० धर तथा उनके सुशिष्य श्री गोपालराव जी ने यह बात सिद्ध कर दी है कि सूर्य्य की किरणों द्वारा भी मिट्टी में अमोनियम लवणों से नोषित तथा नोषेत का बनना सम्भव है। इन्होंने अमोनियम लवणों के घोलों में प्रकाश उत्तेजक वस्तुयें जैसे टिटेनम् ओषिद् तथा दस्त ओषिद् आदि मिला कर धूप में रक्खा और उसमें शुद्ध वायु पहुँचाई गई।

लग भग ३ घंटे के पश्चात ही उन घोलों में काफ़ी नोषित बन गया। टिटेनम के साथ और उत्तेजकों की अपेक्षा अधिक नोषित बनता है। गरम की हुई मिट्टी को (जिसमें सब वैक्टीरिया मर गये हो) इन घोलों के साथ मिला कर धूप में रखने से भी नोषित बन जाता है। हाल ही में इस प्रयोग शाला में डा० अक्षयकुमार भट्टाचार्य्य तथा नृपेन्द्र नाथ विश्वास ने यह दिखा दिया है कि मिट्टी के साथ अमोनियम लवणों के घोल मिलाने से प्रकाश की सहायता से ८० प्रतिशत तक नोषित बन जाता है।

यह बात सब देशों में देखी गई है कि ग्रीष्म ऋतु में जब धूप सब से तीक्ष्ण पड़ती है और ऋतुओं की अपेक्षा मिट्टी में अधिक नोषेत पाया जाता है। धर महोदय का कथन है कि गर्मी में धूप अधिक होने के कारण अधिक नोषेत बनता है। यदि मिट्टी में नोषेत केवल वैक्टीरिया द्वारा ही बनता होता तो ऐसा कभी सम्भव न था क्योंकि अधिक गर्मी से वैक्टीरिया मर जाते हैं। ग्रीष्म ऋतु में मिट्टी का तापक्रम ६० से अधिक चला जाता है जो बैक्टरिया के जीवन के लिये अति हानिकारक है। इस समस्या पर प्रकाश डालने की चेष्टा श्री सन्त प्रसाद जी टण्डन प्रयोगों द्वारा कर रहे हैं। आशा है कि आपके नये प्रयोगों से इस विषयमें और कुछ महत्त्व पूर्ण बातें विदित होंगी।

भूगर्भ रसायन

पिछले वर्ष से आपको भूगर्भ रसायन की भी चाट पड़ गई है। आप का कथन है कि सूर्य्य के आस पास तथा पृथ्वी के वायुमण्डल में पिपीलमद्यानाद्र होता है जो वर्षा के साथ घुल कर वर्षा जलमें मिलता है। इस विषय में आप कई लेख छपवा चुके हैं और आपका विचार है कि यह पिपीलमद्यानाद्र वायुमण्डल में कर्बन द्विओषिद् तथा जल से पराकासनी किरणों के प्रभाव से बनता है। आपका कहना है कि पिपीलमद्यानाद्र की तरह कर्बन द्विगंधिद भी सूर्य्य के मण्डल में विद्यमान है। इन अन्वेषणों से भूगर्भ शास्त्र को काफ़ी सहायता मिलने की सम्भावना है। आपने यह भी दिखलाया है कि वायुमण्डल में जो नोषजन ओषिद् हैं वह अमोनिया के ओषदीकरण तथा नोषजन और ओषजन के पराकासनी किरणों के प्रभाव से बनती हैं; बादलों की बिजली और गरज से नहीं। इसी कारण आप अपने शिष्यों के साथ वर्षा जल के विश्लेषण में लिप्त हैं।

कलोद रसायन

प्रकाश रसायन के समान कलोद रसायन पर

भी डा० धरने अति विस्तृत कार्य्य किया है। और इस समय इस देश में आप सब से बड़े ज्ञाता इस विषय के माने जाते हैं। इस कार्य्य में आपका सहयोग अनेक विद्यार्थियों ने दिया है जिनमें से निम्न इस समय तक अपने अपने कार्य्यके लिये डी० एस-सी० की उपाधि-प्राप्त कर चुके हैं: (१) डा० नित्य गोपाल चटर्जी जिन्होंने अधिशोषण(Adsorption) पर कार्य्य किया (२) डा० क्षितीश चन्द्रसेन जिन्होंने कलोदों के पेप्टीज़ेशन पर अपना सिद्धान्त रखा (३) डा० सत्येश्वर घोष जिन्होंने अधःक्षेपण (Coagulation) पर उपयोगी प्रयोग किये (४) डा० ए० सी० चटर्जी जिन्होंने लिसिगंग वृत्तोंकी रचनाके सम्बन्धमें उपयोगी सिद्धान्त प्रस्तुत किया (५) डा० फणिभूषण गंगोली जिन्होंने अधः क्षेपण पर कार्य्य आरंभ किया था और कलोदों पर प्रकाशका प्रभाव भी इस प्रयोग शालामें सर्व प्रथम देखा। बाद को इन्होंने लंडन में लिसिगंग वृत्त पर कार्य्य किया (६) डा० सत्य प्रकाश जिन्होंने अकार्बनिक जेलियों और रुधिर पर कार्य्य किया (७) धीरेन्द्र नाथ चक्रवर्ती जिन्होंने कलोदोंकी स्निग्धता और उदकरण पर प्रयोग किये। उधर कई वर्षसे डा० धरकी रुचि गाढ़े कलोदोंकी ओर हुई है, और इस सम्बन्ध में उन्हें अच्छे परिणाम मिले भी हैं।

इस से स्पष्ट हो जायगा कि आचार्य्य धर ने कलोद रसायन के विभिन्न अंगों को विशेष प्रोत्साहन दिया है। प्रत्येक अंग के उल्लेख के लिये अधिक स्थान की आवश्यकता है। डा० सेन ने अपने पेप्टीज़ेशन के कार्य्य से यह स्पष्ट किया कि भिन्न भिन्न यवनों का घोलों के स्थायी रहने पर किस प्रकार का प्रभाव पड़ता है। उन्होंने यह भी दिखाया कि कार्बनिक पदार्थों द्वारा पेप्टीज़ेशन भी यवनों की विद्यमानता में ही होता है।

डा० घोष ने अपने अधःक्षेपण के प्रयोगों के आधार पर कलोद घोलों को दो भागों में विभाजित किया। पहले विभाग में लोह उदौषिद, आदि के समान घोल हैं जो पांशुजहरिद, पांशुज गन्धेत और हरिद आदि लवणों के अपने संचार के अनुकूल वर्ती यवन कम अधिशोषित करते हैं, और इस लिए ऐसे घोल अधिक हलके करने पर कम स्थायी हो जाते हैं। इनमें 'धनात्मक सहनशीलता' (positive acclimatisation) भी नहीं प्रकट होती है और न ये भावनिक-प्रतिद्वन्दिता (Ionic antagonism) ही प्रदर्शित करते हैं। दूसरे प्रकार के घोल संक्षीण गन्धिद, प्रशियनब्लू आदि के समान हैं जो अधःक्षेपणके समय लवणों से अनुकूल-संचार वाले यवन अधिक शोषित कर लेते हैं, अतः ये घोल के हलका करने पर अधिक स्थायी हो जाते हैं। इनमें धनात्मक सहनशीलता और यानविक प्रतिद्वन्दता भी बहुत प्रतीत होती है।

'धनात्मक सहनशीलता' का तो विवरण स्पिंग, फ्राइंडलिश आदि रसायनज्ञों ने दिया था पर डा० धर ने सर्वप्रथम 'ऋणात्मक सहशीलता' (negative acclimatisation) का दृश्य अन्वेषित किया। साधारणतया यह माना जाता है कि यदि कलोद को एक बार ही लवण डालकर अधःक्षेपित करना हो तो लवण की कम मात्रा लगती है, पर यदि लवणकी मात्रा थोड़ी थोड़ी करके डाली जाय तो घोल अधिक सहनशील हो जाने के कारण अधःक्षेपण के लिये लवण की अधिक मात्रा लेता है। इसका नाम धनात्मक सहनशीलता है। डा० धर ने देखा कि यदि मांगनीज़द्विओषिद का कलोद रजतनोषेत से अवक्षेपित किया जाय तो सब मात्रा एक बार डालने में रजतनोषेत अधिक लगेगा और थोड़ी थोड़ी करके डालने में कम मात्रा लगेगी। इसका नाम 'ऋणात्मक सहनशीलता' है। ऋणात्मक होने का क्या कारण है, इस पर डा० धर ने अच्छा प्रकाश डाला है।

कलोदरसायनके क्षेत्रमें डा० धरका लिसिगंगवृत्त वाला सिद्धान्त अधिक प्रसिद्ध है। लिसिगंग ने यह देखा था कि यदि कांच के किसी पत्र पर जिलेटिन का घोल जिसमें पांशुजरागेत मिला दिया गया है लगादिया जाय और बीच में एक बूँद रजतनोषेत

की रखदी जाय तो धीरे धीरे ज्यों ज्यों रजतनोषेत फैलता जायगा, रजतरागेत का लाल अवक्षेप सुन्दर वृत्तों के रूप में उपलब्ध होगा । डा० चटर्जी के सहयोग में डा० धर ने ऐसे अनेकनयेवृतोंकी खोज की और इन वृत्तों के बनने के सम्बन्ध में एक उपयोगी सिद्धान्त प्रस्तुत किया। इनका कहना है कि वृत्तोंके बनने का कारण यह है कि अनघुल पदार्थ के अवक्षेपित होने के पूर्व इसीका कलोद बनता है। यह कलोद अपने आस पास के घोल से कुछ यवनों का ही नहीं प्रत्युत दूसरे कलोद घोलों का भी शोषण कर लेता है अतः कुछ स्थान रिक्त रह जाता है। आगे जाकर फिर अवक्षेपण होता है, और इसी क्रम से अनेक वृत्त बन जाते हैं।

धीरेन्द्र नाथ चक्रवर्ती और उनके सहोद मणीन्द्र नाथ चक्रवर्ती के सहयोग में स्निग्धता पर कार्य्य किया। डा० धर का विश्वास है कि कलोद-कणों पर जितना ज्यादा विद्युत् संचार होगा उतना ही उनका कम उदकरण होगा और उतने ही कम वे स्निग्ध होंगे।

डा० धर की सहचरी श्री मती शीला धर ने अपनी छात्रावस्था से ही कलोदों पर प्रकाश का प्रभाव देखना निरीक्षण कर दिया था। लिसिगंग वृत्तों के बनने पर भी प्रकाश का प्रभाव पड़ता है, इसका उन्होंने अनुशीलन किया। यह कार्य अभी तक आगे बढ़ रहा है। आप के कार्य ने यह भी दिखाया है कि लवणों के प्रकाश में उद्विश्लेषण द्वारा कलोद घोल बन सकते हैं।

लिसिगंग वृत्तों पर आजकल डा० धर के सहयोग में रघुनाथ मित्र काम कर रहे हैं। और इन्होंने अनेक प्रकार के वृत्त उपलब्ध किये हैं। इन्होंने इन वृत्तों की सर्वव्यापकता भी प्रदर्शित करदी है।

कलोदरसायन पर कार्य करने वाले डा० धर के अन्य सहकारियों में से कुछ ये हैं—मूलराज मेहरोत्रा, मणीन्द्र नाथ चक्रवर्ती इन्होंने अधिशोषण-समीकरण और अल्ट्रामाइक्रसकोप पर कार्य किया, शंकरलाल जिंदल, कुंजबिहारी मोहनलाल, लक्ष्मण सिंह भाटिया, विश्वनाथ गोरे, अहोबलाचार्य, रामदत्त शर्मा, राय परमात्मा प्रसाद माथुर आदि।

जीव रसायन

यह कहा जा चुका है कि अपने प्रारम्भिक लेखों में ही डा० धर ने यह बात स्पष्ट कर दी थी कि शारीरिक क्रियाओं में उत्प्रेरकों का बड़ा भारी भाग है। शरीर के अन्तर्गत भोजन की पाचन प्रक्रिया में तरह तरह के उत्प्रेरक कार्य्य में आते हैं। लोह लवण भोज्य पदार्थ के ओषदीकरण को अतितीव्र कर देते हैं। इसके उपरान्त जब आवेश प्रक्रियाओं का अध्ययन किया गया, तब डा० धर ने यह भी ज्ञात किया कि शारीरिक क्रियाओं में आवेश प्रक्रियाओं का भी अच्छा महत्व है।

जीव रसायन के क्षेत्र में जो कुछ कार्य किया गया है वह मुख्यत डा० चण्डी चरण पालित के सहयोग में है। उनसे पूर्व श्रीनरेन्द्र नाथ मित्र ने भी कुछ कार्य्य किया था और बाद को शचीन्द्रनाथ चक्रवर्ती और हीरा लाल दुबे के सहयोग में यह कार्य और विस्तृत रूपसे किया गया।

यह सभी जानते हैं कि जो कुछ भोजन हम सेवन करते हैं, वह हमारे शरीर में साधारण तापक्रम पर भस्मीभूत हो जाता है और फलतः कर्बनद्विओषिद और जल बन जाता है। वैसे यदि हम किसी भोज्य पदार्थ को हवा में मामूली तापक्रम पर कितना ही क्यों न रख छोड़ें, यह जैसे का तैसा ही बना रहता है। दोनों प्रकार की अवस्थाओं में इतना क्यों अन्तर है इसकी मीमांसा डा० धर और उनके सहयोगियों ने करनी आरम्भ की। उन्होंने अपने प्रयोगों द्वारा यह दिखाया कि सूर्य के प्रकाश में यदि खाद्यपदार्थों के हल के घोलों में वायु प्रवाहित की जाय, तो इनका बहुत कुछ अंश ओषदीकृत होकर कर्बनद्विओषिद और जल बन जाता है। यही नहीं, प्रकाश की अनुपस्थिति में भी यदि शर्करा आदि घोलों में कुछ लोह लवण, या मन्द क्षार, या सैन्धक स्फुरेत आदि मिले हों तो भी साधारण

तापक्रम पर ओषदी करण आदि हो सकता है। इन प्रयोगों से यह भी स्पष्ट हो गया कि जीवन में प्रकाश की क्या उपयोगिता है और अनेक रोग लोह-लवण, मन्दक्षार या सैन्धक स्फुरेत देने पर क्यों अच्छे होजाते हैं।

डा० धर ने अकेली शर्करा के ओषदी करण का ही अध्ययन नहीं किया है प्रत्युत भोजन के अन्य अंग जैसे मज्जित पदार्थ, प्रत्यमिन आदि के मिश्रणों की मीमांसा की है। इनका विवरण जानने के लिये पाठकों को डा० धर की पुस्तक 'न्यूकन्सेपशन्स इन बायो केमिस्ट्री' का अवलोकन करना चाहिये।

अपने प्रयोगों के अधार पर मधुमेह, गठिया, बेरी बेरी, रिकेट, आदि अनेक बीमारियों के उपचारों का अनुशीलन किया गया है। प्रकाश और विटेमिनों का सम्बन्ध भी बहुत कुछ स्पष्ट हो रहा है। आशा है इस क्षेत्र में अन्य प्रयोग भी उपयोगी सिद्ध होंगे।

इस सब उल्लेख से डा० धर के अन्वेषण कार्यों के विस्तृत क्षेत्र की थोड़ी सी झलक मिल जायगी संसार की भिन्न भिन्न पत्रिकाओं में अबतक २५० के लगभग लेख प्रकाशित हो चुके हैं।

कीटाणु और मनुष्य जीवन से उनका सम्बन्ध

[ले०—श्रीसन्तप्रसाद टन्डन एम. एस.-सी.]

विज्ञान जगत में कीटाणुओं का आविष्कार बहुत महत्व का है। मनुष्य को यह जान कर वास्तव में बहुत आश्चर्य होता है कि ऐसे छोटे छोटे कीटाणुओं में भी, जिनका बिना अणुवीक्षण यन्त्र की सहायता के देखना भी असम्भव है, इतनी अधिक शक्ति होती है कि वे उसके द्वारा आश्चर्य जनक कार्य कर सकने में समर्थ होते हैं। मनुष्य जीवन से तो उनका बहुत ही सीधा सम्बन्ध है। कीटाणुओं में कुछऐसे हैं जिनसे मनुष्य को बहुत लाभ होता है, किन्तु साथ ही कुछ ऐसे भी हैं जिनके कारण मनुष्य को हर समय अपने जीवन हानि का भय भी बना रहता है। आज से ५० साल पहले कीटाणु सम्बन्धी ज्ञान के अभाव के कारण मनुष्य को इन्हीं कीटाणुओं द्वारा बहुत हानि उठानी पड़ी थी। उन दिनों जीवन की कुछ भी स्थिरता नहीं थी। मनुष्य को सदा ही अपने जीवन का भय बना रहता था। एक एक दिन में लाखों आदमियों की मृत्यु इन कीटाणु-जनित रोगों द्वारा हो जाना बहुत ही साधारण बात थी। प्लेग, हैजा आदि बहुत सी भयंकर बीमारियाँ इन्हीं कीटाणुओं द्वारा ही फैलती हैं। सन् १६६५ ई० में लन्दन शहर में ऐसा भयँकर प्लेग फैला कि केवल महीने डेढ़ महीने के अन्दर ही वहाँ की २ लाख की आबादी में से ७० हज़ार आदमियोंको मृत्यु हो गई। उस समय कोई और उपाय न होनेके कारण लन्दन शहर के सब लोग त्राहि त्राहि कर शहर छोड़ कर दूर दूर की जगहों में भाग गये। सारा शहर वीरान हो गया। इसी प्रकार से जब पनामा नहर का बनना शुरू हुआ तब लाखों आदमियों की जान एक नए पीले बुखार (yellowfever) के कारण चली गई। उस समय तक इस बुखार के कारणों का ज्ञान वैज्ञानिको को नहीं हो पाया था और इस कारण वह इससे बचने के उपाय निकालने में असमर्थ थे। इस रोग की भयँकरता के कारण उस समय पनामा नहर खोदने के लिए मज़दूरों का मिलना भी कठिन होगया और तब कुछ सालों के लिए यह काम बन्द कर देना पड़ा। उस समय अमेरिकाकी सरकार ने इस रोग के कारणों के जानने तथा उससे बचने के उपाय ढूँढ़ निकालने के लिए कई बड़े बड़े वैज्ञानिकों की एक कमेटी बनाई जिसके अथक परिश्रम के फलस्वरूप मनुष्यों को इस रोग पर भी विजय प्राप्त हुई। कमेटी ने यह मालूम किया कि यह ज्वर एक प्रकार के मच्छरों के काटने से होता है और यदि मच्छरों को मार

डाला जाय तो इसका डर नहीं रहता। इस आविष्कार के बाद ही अमेरिकन सरकार पनामा नहर बनवाने में समर्थ हो सकी। केवल इन दो उदाहरणों से ही पाठकों को यह भली भाँति ज्ञात हो गया होगा कि इन कीटाणुओं ने कुछ समय पूर्व मनुष्यजीवन को कितना दुखी और कष्टमय बना रक्खा था। आज भी यूरुप कुछ समय पूर्वकी चेचक की भयँकरता को भूल नही सका है। चेचक से बचने के लिए गोदना गुदाने के ढँग के निकलने के पूर्व यूरुप में हर साल लाखों मनुष्यों की जान इसी चेचक के कारण चली जाती थी। यद्यपि अब भी प्रायः चेचकसे थोड़ी बहुत मृत्यु होजाती हैं, किन्तु यह पिछले दिनों में हुई मृत्यु की तुलना में कुछ भी नहीं है।

इतने सालों के प्रयत्नों के बाद आज भी हम यह दावा नहीं कर सकते कि हमने इन कीटाणुओं पर पूरी विजय प्राप्त कर ली है। अब भी कुछ ऐसे भयंकर रोग हैं जिनकी भयंकरता में बड़े बड़े डाक्टरों तथा अन्य वैज्ञानिकों के प्रयत्नो से भी कुछ कमी नहीं हो पायी है। क्षय, दमा, तपेदिक आदि इसी प्रकार के रोग हैं। इनके लिए अब भी मनुष्य के पास कोई औषधि नहीं है। ये रोग मनुष्य के मरने के बाद ही छूटते हैं। हाँ इतना अवश्य है कि इनसे बचने के उपाय मनुष्य ने ढूँढ़ लिए हैं जिनके कारण डाक्टर लोग इन रोगों को अधिक फैलने नहीं देते। रोग आने के पूर्व यदि डाक्टरों द्वारा बतलायी हुई बातों पर ध्यान दिया जाय तो ये रोग प्रायः नहीं होते; लेकिन यदि एक बार भी क्षय आदि रोग किसी मनुष्य पर अधिकार जमा लेते हैं, तब उस मनुष्य का इनसे छुटकारा पाना असम्भव ही हो जाता है।

इन कीटाणुओं का मनुष्य जीवन से इतना अधिक घनिष्ट सम्बन्ध होने के कारण हर एक मनुष्य को इनकी पूरी जानकारी हासिल कर लेना आवश्यक है। इसी उद्देश्य को पूर्ति के लिए यहाँ हम पाठकों के लाभार्थ कीटाणु सम्बन्धी वैज्ञानिकों के वर्तमान ज्ञान पर कुछ प्रकाश डालेंगे।

पूर्व इतिहास

सम्भवतः कर्चर (Kircher) नाम के एक रोमन कैथेलिक पादरी ने सन् १६७१ में प्रथम बार कीटाणुओं को देखा। वह अणुवीक्षण यन्त्र की सहायता से बहुत से छोटे छोटे कीड़ों को देखने का प्रयत्न कर रहा था। उन कीणों में बहुत सम्भव है कीटाणु भी रहे हों। लेकिन उसके इस कार्य से कुछ विशेष लाभ नहीं हुआ। इसके कुछ थोड़े ही दिनों बाद सन् १६८३ में ल्यूवेनहोक (Leuuenhoek) नामके एक डच वैज्ञानिक ने अवश्य ही इन कीटाणुओं को अणुवीक्षण यन्त्र की सहायता से देखा। ल्यूवेन होक को इसी कारण अणुवीक्ष्णीय-विज्ञान का जन्म दाता कहा जाता है। उसने कीटाणुओं का चित्र भी, जैसा उसे अणुवीक्षण यन्त्र में समझ पड़ा, खींचा। उसके खींचे हुए सब चित्र काफी ठीक हैं। इसके बाद अन्य बहुत से वैज्ञानिकों ने भी इन कीटाणुओं का निरीक्षण किया, और १८वीं शताब्दी के आरम्भ तक कीटाणु-विज्ञान में लगभग सबही वैज्ञानिक विश्वास करने लगे। लीनियस (Linneus) नामक वनस्पतिशास्त्रज्ञ ने यह भी कहा कि सम्भवतः ये कीटाणु ही रोग उत्पन्न करने के कारण हों। यह विचार कि रोग ऐसे बहुत छोटे अणुओं द्वारा, जो आँख से नहीं देखे जा सकते, उत्पन्न होते हैं प्रथम बार सन् १५४६ में फ्रैकसटोरिया (Fracastoria) ने रखा था। धीरे धीरे यह विचार दृढ़ होता गया। और अन्त में सन् १७६२ में प्लेनसिज़ (plenciz) नामक एक आस्ट्रियन वैज्ञानिक ने इस विचार को वर्तमान रूप में रख दिया। प्लेनसिज़ ने सब से महत्व की बात जो रखी वह यह थी कि हर एक रोग के कीटाणु अलग अलग होते हैं—अर्थात् किसी एक रोग का उत्पन्न होना तथा फैलना किसी एक ही प्रकार के कीटाणु द्वारा हो सकता है। उसने यह भी समझाया कि ये कीटाणु हवा द्वारा एक मनुष्यसे दूसरे मनुष्यमें पहुँच सकते हैं और फिर शरीरमें प्रवेश पाकर बहुत शीघ्र बढ़कर

बहुतसे होजाते हैं और रोग उत्पन्न करनेमें समर्थ होते हैं। प्लेनसिज़ ने यह भी विचार रखा कि पाव रोटी में खमीर का उठना भी एक कीटाणु द्वारा ही होता है और बादमें उसने एक कीटाणु का खमीर के आटे में विद्यमान रहना भी सिद्ध कर दिया। इतना सब होने पर भी अभी तक प्लेनसिज़ के कुल विचारों को सिद्ध करनेके साधन वैज्ञानिकों के पास नहीं थे। इसी कारण प्लेनसिज़ का कीटाणु और रोग-सम्बन्धी विचार शीघ्र ही भुला दिया गया।

प्लेनसिज़ के बाद लगभग १०० वर्ष तक इस सम्बन्ध में कुछ भी उन्नति नहीं हुई। सन् १८३८ ई० में इहरेनबर्ग (Ehrenberg) ने कीटाणुओं को उनकी लम्बाई और बनावट के आधार पर कई विभागों में बाँटने का प्रयत्न किया। इहरेनबर्ग और उसके समकालीन लोग इन कीटाणुओं को जन्तुओं की श्रेणीमें समझते थे, लेकिन कुछ ही दिनों बाद वैज्ञानिकों ने इन्हें बनस्पतियों की श्रेणी में सम्मलित कर लिया।

इन्हीं दिनों कुछ लोग इस पर भी विचार कर रहे थे कि ये कीटाणु किस प्रकार पैदा हो जाते हैं। अरस्तू (Aristotle) और उसके कुछ समय पहले से ही लोग यह मानते चले आये थे कि जीव आप से आप बिना बीज के पैदा हो सकते हैं। सन् १६८८ में फ्रैन्सेस्को रेडी (Francesco Redi) ने प्रथम बार यह सिद्ध किया कि कोई भी जीव बिना बीज के पैदा नहीं हो सकता। इसी समय से इन दो विचार के लोगों में बराबर विवाद होता चला आया। १८ वीं शताब्दी के बीच में नीडहम (Needham) ने इस प्रश्न को हल करने का प्रयत्न किया। उस समय लोगों को यह मालूम था कि यदि गोश्त के रस को खुला हुआ रख दिया जाय तो उसमें बहुत से कीटाणु पैदा हो जाते हैं। इस बात को सिद्ध करने के लिए कि क्या ये कीटाणु हवा से आते हैं या आप से आप पैदा हो जाते हैं नीडहम ने गोश्त के रस को ख़ूब गरम कर कई एक बन्द बर्तनों में जिसमें हवा न जा सके रख दिया। कई दिन रखने के बाद कुछ में तो कीटाणु पैदा हो गये, किन्तु कुछ में नहीं हुए। इस प्रयोग द्वारा नीडहम ने यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया कि ये कीटाणु आप से आप बिना बीज के गोश्त के रस में पैदा हो जाते हैं।

दूसरी ओर कुछ अन्य वैज्ञानिकों ने, जिनमें स्पलैनज़ानी (Spalanzani) प्रमुख था, इस विचार का विरोध किया। उन्होंने कहा कि नीडहम ने अपने प्रयोगों में शुरू में गोश्त के रस को कीटाणु-रहित करने की ओर अधिक ध्यान नहीं दिया था, इसी कारण उसमें पहले से विद्यमान कीटाणु द्वारा कीटाणु पैदा हो सके। इन लोगों ने यह भली-भाँति दिखला दिया कि यदि ऐसे प्रयोग में शुरू में ख़ूब गरम कर सब कीटाणु मार डाले जायँ और फिर हवा का जाना रोक दिया जाय तो कीटाणु कभी भी नहीं पैदा होते। इसके बाद और भी बहुत से वैज्ञानिकों ने भी इस विचार का प्रतिपादन किया और अन्त में यह बात सदा के लिए सिद्ध कर दी गई कि जीव बिना किसी जीव-बीज की सहायता के कभी भी नहीं पैदा हो सकते।

१९ वीं शताब्दी के अंत में दो ऐसे मनुष्यों ने कीटाणु-विज्ञान की ओर ध्यान दिया जिनका नाम संसार में अमर हो गया। काच और पास्तूर को संसार कभी भी नहीं भुला सकता। काच (Koch) के कारण जर्मनी और पास्तूर (pasteur) के कारण फ्रांस आज भी अपने को सौभाग्यशाली समझता है। इन दोनों ने अपनी खोजोंसे मनुष्य-जीवन को जितना लाभ पहुँचाया है वैसा अब तक की सारी अन्य वैज्ञानिक खोजों ने भी मिलकर नहीं किया है।

पास्तूर एक बहुत ही साधारण फ्रेन्च घराने में पैदा हुआ था। विद्याध्यन के बाद उसने अपना ध्यान रसायन की ओर दिया। २५ वर्ष की अवस्था में ही उसका नाम बड़े बड़े रसायनज्ञों की श्रेणी में लिया जाने लगा। इसके बाद शराब के कीड़ों की बीमारी तथा रेशम के कीड़ों की बीमारी पर पास्तूर को कार्य करना पड़ा जिसमें उसे पूरी सफलता भी मिली। इन कार्यों से उसका ध्यान कीटाणु-विज्ञान की ओर आकर्षित हुआ। उस समय चेचक आदि बीमारियों के

कारण फ्रान्स में इतनी अधिक मृत्युयें हो रही थीं कि हर एक वैज्ञानिक उसे दूर करने के उपाय ढूँढ़ने के प्रयत्न में था। पास्तूर के स्वयं कई बच्चे तथा स्त्री का देहान्त भी ऐसी ही बीमारियों के कारण हो गया। ऐसी परिस्थिति में पास्तूर ऐसे सहृदय वैज्ञानिक का मन भी पिघल गया और उसने इन रोगों से मनुष्य-जीवन को बचाने के प्रयत्न में अपना जीवन अर्पित कर देने का संकल्प किया।

ऐनथैक्स (Anthrax) नामक एक भयंकर रोग उस समय भेड़ों और गायों आदि में बहुत होता था। बहुत से वैज्ञानिक इस रोग के कारण ढूँढ़ निकालने के प्रयत्न में असफल रहे थे। पास्तूर और काच ने सन् १८७६–१८७७ में अलग अलग स्वतन्त्र रीति से इस रोग के कीटाणु को प्राप्त करने में सफलता प्राप्त की।

पास्तूर और काच ने कीटाणु-विज्ञान को एक ऐसी वैज्ञानिक नींव पर दृढ़ कर दिया जिसके कारण इस ओर अन्य वैज्ञानिकों को खोज करने में बड़ी सुविधा हो गई। इसी समय के बाद से इस सम्बन्ध में बड़ी शीघ्रता से खोजें होने लगीं और बहुत से रोगों के कीटाणुओं का पता लगा लिया गया। स्वयं काच ने ही सन् १८८ -१८८४ में क्षय (Tubercu-l i) रोगके कीटाणुका पता लगाया और उसे अलग शुद्ध रूप में प्राप्त किया काच का यह आविष्कार बड़े महत्व का था, क्योंकि यह सब से पहला रोग था जिसके कीटाणुका पता काचने स्वयं अपने निकाले हुए वैज्ञानिक ढंग से लगाया था। इस सफलता से काच की निकाली हुई रीतियों की उत्तमता सब पर सिद्ध हो गई।

इसी समय पास्तूर ने रोग से बचने के लिए गोदना गुदाने का सिद्धान्त प्रथम बार मालूम किया। सन् १८८० में पास्तूर मुर्गियों में जो हैजे की बीमारी हो जाती है उस पर कार्य कर रहे थे। उन्होंने इस रोग के कीटाणु का शुद्ध घोल प्राप्त किया और यह देखा कि यदि यह घोल बहुत दिन तक रखा रहे तब इसका विषैलापन दूर हो जाता है। यदि ऐसा घोल मुर्गियों के खून में गुदना द्वारा पहुँचा दिया जाय तो उन्हें रोग नहीं होता और साथ ही फिर इसी रोग के ताज़े विषैले कीटाणुओं का प्रवेश भी उनके खून में कराने से उन्हें कुछ असर नहीं होता। अब ऐसी मुर्गियें इस रोग से सदा के लिए बची रहती हैं। इस खोज ने रोगोंसे बचनेका उपाय ढूंढ़ निकालनेमें बड़ी सहायता पहुँचायी। इसी सिद्धान्त की नींव पर येनर (jenner) ने चेचकसे बचनेके लिए गुदना गुदानेका ढंग मालूम किया। येनरने मालूम किया कि गायोंको जो चेचक निकलती है (cowpox) वह करीब करीब मनुष्यकी चेचकसे मिलती जुलती है और यदि किसी ऐसी गायके खूनको, जो इस चेचकसे एक बार अच्छी होचुकी हो, किसी मनुष्यके खूनमें पहुँचा दिया जायतो उस मनुष्य को चेचक का असर बहुत कम होता है।

पास्तूर ने पागल कुत्ते के काटने के रोग का भी वैज्ञानिक रीति से अध्ययन किया और इसके दूर करने का उपाय भी मालूम किया। अब भी कसौली आदि जहाँ भी इस रोग के रोगियों का इलाज होता है पास्तूर ही के उपाय काम में लाये जाते हैं।

कीटाणु आकार-विज्ञान (morphology)

कीटाणु सम्बन्धी कुछ पूर्व का इतिहास जान जानेके बाद अब हम कीटाणु क्या हैं, किस प्रकार अपना जीवन बिताते हैं और किस प्रकार अपनी जाति की वृद्धि करते हैं इस पर प्रकाश डालेंगे।

कीटाणु बहुत छोटे एक सेल वाले जीव हैं। संसार के सब जीवों में कीटाणु ही सब से छोटे हैं। ये केवल एक अच्छे अणुवीक्षण यन्त्र की सहायता से ही देखे जा सकते हैं, अन्यथा नहीं। हर एक कीटाणु-सेल अपनी एक सेल-दीवालसे घिरा रहता है। यह सेल-दीवाल अधिकतर कीटाणुओं में सेल्यूलोज की नहीं होती, किन्तु प्रोटीन की होती है। सेल के अन्दर प्रोटोप्लैसम (Protoplasm) होता है जिसमें जगह जगह छोटे छोटे अणु दिखलायी देते हैं। न्यूक्लियस(Nucleus)का उस रूपमें वर्तमान रहना जैसा और जीवों में होता है, नहीं प्रतीत

होता। किसी किसी में स्वच्छ पानी के समान किसी द्रव्यपदार्थ से भरी हुई छोटी छोटी गोल आकार की चीजें होती हैं जिन्हें वैक्यूओल (Vacuole) कहते हैं। अधिकतर कीटाणुओंमें पत्ते का हरा रंग (Ch'‥-ophyll) नहीं रहता; वे बिल्कुल सफेद होते हैं।

कीटाणु-सेल कई रूप की होती हैं। बहुत छोटी, गोलाकार कीटाणु-सेलों को कोकाई(cocci)कहते हैं। लम्बे, छोटे डंडे के रूप वाले कीटाणुओं को बैसिलाई (Bacilli),घूमे हुए टेढ़े मेढ़े सर्पके रूपवाले कीटाणुओं को स्पाइरिला(spirilla) और अंग्रेजीके कामाकी तरह वालोंको कामा(camma)कहते हैं। कभी कभी कीटाणु सेलें झुंड की झुंड आपस में मिलकर एक पर्त सी किसी द्रव्य पदार्थ के उपर बना लेती हैं। इस रूप को जूआ गलिया(Zoogloea)कहते हैं। हर एक प्रकारके कीटाणु में यह शक्ति होती है कि वह जब चाहे अपने रूपको उपर लिखे किन्हीं भी रूपोंमें बदल सकता है। कुछ कीटाणुओं में उनकी सेलों के आगे एक लम्बा बाल सा जिसे फ्लैजलम (flajellum) कहते हैं होता है जिसकी सहायतासे वे धीरे धीरे इधर उधर चल फिर सकते हैं।

वृद्धि-विज्ञान (Reprooluction)–कीटाणुमें लिंग भेद नहीं होता। वे अपनी वृद्धि दो प्रकारसे करते हैं। पहला सब से सहल तरीका उनकी वृद्धि का यह है कि एक कीटाणु-सेल स्वयं दो में विभाजित हो जाती है और फिर ये दोनों नई सेलें अलग अलग दो कीटाणु हो जाते हैं जो पुनः उसी प्रकार अपने को विभाजित कर नये कीटाणु पैदा करते जाते हैं। इस रीति से एक कीटाणु से थोड़ी ही देर में बहुत से नये कीटाणु पैदा हो जाते हैं।

साधारणतः इसी ढंग से कीटाणु अपनी वृद्धि करते हैं, किन्तु जब कभी कोई ऐसी परिस्थिति उत्पन्न हो जाती है जिसमें उन्हें अपने जीवन हानि का भय रहता है तब हर एक कीटाणु-सेल अपने चारों ओर एक मोटी मजबूत दीवाल बना लेता है और फिर इस रूप में महीनों, वर्षों पड़ा रहता है। इस रूप को स्पोर (spore)कहते हैं। जब पुनः अच्छी परिस्थिति उत्पन्न हो जाती है तब स्पोर की दीवाल टूट जाती है और एक कीटाणु पैदा हो जाता है। इस रीति से हर एक सेल से केवल एक ही कीटाणु पैदा होता है। अतः इस ढंग से कीटाणुओं की संख्या में कोई वृद्धि नहीं होती।

जीवन-यापन—कीटाणु अपना जीवन यापन या तो किसी दूसरे जीव के अन्दर रहकर करते हैं या सड़ने वाले पदार्थों में रहकर करते हैं। दूसरे जीवों में रहने वाले कीटाणु अधिकतर उन जीवों को हानि ही पहुँचाते हैं। किन्तु कुछ ऐसे भी हैं जो दूसरे जीवों में रहकर उन जीवों को लाभ पहुँचाते हैं।

कुछ कीटाणु ओषजन के विद्यमान रहने पर ही जीवित रह सकते हैं, किन्तु कुछ ऐसे भी हैं जिन्हें ओषजन हानि पहुँचाती है; वे केवल ओषजन की अनुपस्थिति में ही जिन्दा रह सकते हैं। कुछ कीटाणु ओषजन की उपस्थिति और अनुपस्थिति दोनों में ही रह सकते हैं।

कीटाणु-जनित रोग—कीटाणु के रूपों तथा उनके वृद्धि सम्बन्धी विज्ञान का पता लग जाने के बाद अब उनके ऐसे कार्यों का वर्णन किया जायगा जिसका अध्ययन मनुष्य-जीवन के लिए सब से अधिक महत्व का है। ऐसे कार्यों में दो प्रकार के कार्य आते हैं—एक तो वे जिनसे मनुष्य-जीवन को बहुत हानि उठानी पड़ती है और दूसरे वे जिनसे मनुष्यों को लाभ होता है। पहले प्रकार में कीटाणु जनित रोग आदि हैं और दूसरे में कीटाणु द्वारा कृषि सम्बन्धी होने वाले लाभ, दही, सिरका आदि का बनाना है। पहले यहाँ कीटाणु-जनित कुछ रोगों का ही वर्णन किया जायगा।

कोढ़—इस रोग के रोगी में हमेशा एक तरह के कीटाणु पाये जाते हैं जिससे यह विश्वास किया जाता है कि यही कीटाणु इस रोग के कारण हैं। वैज्ञानिकों को इस कीटाणु को अभी तक शुद्ध रूप में अलग प्राप्त करने में सफलता नहीं मिली है। इस रोग के छूत से फैलने का भय रहता है। रोग दूर करने के उपाय मालूम करनेमें अभी तक बहुत अधिक सफ-

लता नहीं मिली है, लेकिन प्रायः यह देखा गया है कि चाउल मूगरा(Chaul moogra oil)का तेल अधिकतर इस रोग को दूर कर देता है।

मियादी बुखार (Typhoid fever)—इस रोगके कीटाणु सन् १८८० में ही मालूम कर लिए गये थे। तब से बराबर इस रोग को दूर करने के उपाय ढूँढ़ निकलने में वैज्ञानिकों के लगे रहने पर भी अभी तक इसके लिए कोई भी दवा नहीं निकाली जा सकी है। जब यह रोग किसी को हो जाता है तब उसके खून में स्वयं ही इस रोग के कीटाणु को मारने के लिए एक पदार्थ पैदा होने लगता है और यदि मनुष्य काफी तन्दुरुस्त हुआ तो यह पदार्थ थोड़े ही दिन में काफी मिकदार में उत्पन्न हो जाता है और फिर रोग दूर हो जाता है। इस रोग में डाक्टर लोग ऐसी दवा देते हैं जिससे रोगी में इस पदार्थ के बनाने की अधिक शक्ति आ जाती है। इसके अतिरिक्त डाक्टर लोग और कुछ नहीं कर सकते।

यह रोग भी छूत से फैल जाता है। इस रोग के कीटाणु दूध, पानी, हरी सब्जियों आदि खाने की वस्तुओं में भी रह सकते हैं जिनके खानेपर इसके कीटाणु का प्रवेश खून में हो जाता है।

प्लेग—यह भयंकर रोग भी कीटाणुओं द्वारा ही होता है। यह रोग जब कभी भी किसी शहर में फैलता है तब सारा शहर का शहर मृत्युओं से भर जाता है। चौदहवीं शताब्दी में यूरुप में इस रोग से वहाँ की चौथाई आबादी की आबादी बिल्कुल नष्ट हो गई थी। इसके कीटाणु हवा द्वारा फेफड़ों में पहुँचकर तुरन्त ही मृत्यु का कारण होते हैं। यह रोग चूहों को भी होता है और जब कभी किसी स्थान में चूहे अधिक मरने लगते हैं तब तुरन्त ही लोगों को प्लेग का सन्देह होने लगता है। चूहों से मनुष्यों तक इसके कीटाणु मक्खियों द्वारा पहुँचते हैं। इस रोग के लिये भी अभी तक कोई औषधि नहीं मालूम की जा सकी है। सब से अच्छा उपाय केवल सफाई रखना तथा इसके फैलने के पूर्व इसके कारणों को दूर करना है।

क्षय—यह रोग संसार के बहुत पुराने रोगों में से एक है और करीब करीब दुनिया के सभी भागों में बहुत दिनों से फैला हुआ है। यह रोग भी कीटाणु जनित ही है और इसके कीटाणु इतने अधिक सहनशील होते हैं कि उनका मारना बड़ा कठिन रहता है। इसके कीटाणु भी छूत द्वारा ही एक मनुष्य से दूसरे मनुष्य में फैलते हैं। जब कभी किसी घराने में यह रोग किसी को हो जाता है तब उस घराने में यह रोग प्रायः पुश्त दर पुश्त छूत द्वारा चलता चला जाता है। इसके कीटाणु हमेशा रोगी के थूक में मौजूद रहते हैं। थूक से हवा द्वारा ये दूसरे मनुष्य के फेफड़ोंमें साँस लेते समय पहुँच जाते हैं और फिर उस मनुष्य को भी सदा के लिए रोगी कर देते हैं। इस रोग के दूर करने का कोई भी उपाय अभी तक मालूम नहीं किया जा सका है। इस रोग में मनुष्य धीरे धीरे कष्ट पाकर बहुत दिन तक रोगी रहकर मरता है। जब यह रोग किसी घराने में हो जाय तब सब से पहला काम इसे दूसरों तक फैलने से बचाने का है। क्षयी मनुष्य का थूक, पेशाब आदि एक अलग बर्तन में रखना चाहिए और बाद में उसे या तो जला डालना चाहिए या किसी दूर के निर्जन स्थान में गाड़ आना चाहिए।

सूज़ाक—(Gonorrhoea) यह लिंग-रोग भी कीटाणुओं द्वारा ही होता है। यह रोग भी बहुत शताब्दियों से चला आरहा है। रोमन जाति का ध्वंस ही इसी रोग के कारण हुआ समझा जाता है। रोमन लोगों का तो इस रोग से ऐसा सत्यानाश हुआ कि आज संसार में उनका कोई नाम निशान भी बाकी न रहा। इसके कीटाणु हवा में बाहर जीवित नहीं रह सकते, इस कारण जब तक ऐसे रोगी से किसी का सम्पर्क न हो तब तक इस रोग के फैलने की कोई सम्भावना नहीं रहती। जब इस रोग के कीटाणु आँख तक पहुँच जाते हैं तब मनुष्य बिल्कुल अन्धा हो जाता है। प्रायः यह देखा गया है कि यदि किसी औरत के इस रोग की दशा में

कोई बच्चा पैदा हो और तुरन्त ही यदि बच्चे के आँख की फिक्र न की जाय तो बच्चा थोड़े ही दिनों में अन्धा हो जाता है। इस रोग के लिए भी डाक्टरों के पास कोई दवा नहीं है।

उपदंश (Syphlis)--यह रोग यद्यपि केवल लिंगों तक ही सीमित नहीं है फिर भी गोनोरिया ही की तरह लिंगों के सम्पर्क से ही फैलता है। इसके कीटाणु शरीर और चेहरे में हुए घावों से निकलने वाली पीपके साथ इधर उधर फैलते हैं। हवा में यह भी अधिक देर तक जीवित नहीं रह सकते, इस कारण यदि इस प्रकार के रोगी से कोई सम्पर्क न रखा जाय तो यह रोग भी नहीं फैल सकता। प्रायः लोगों को यह रोग ऐसे रोगी के बर्तनों में पानी पीने, और खाना खाने आदि से भी हो जाता है। इस रोग के लिए सलवर्सन (Salvarson) नामक एक दवा निकाली गई है जिससे यह रोग प्रायः दूर हो जाता है।

उपर कुछ थोड़े से ही कीटाणु-जनित रोगों का संक्षेप में वर्णन किया गया है। इनके अतिरिक्त हैजा, न्यूमोनिया, इनफ्लूयेन्ज़ा आदि बहुत से और रोग हैं जिनके उत्पन्न करने में कीटाणु प्रधान भाग लेते हैं।

कीटाणु द्वारा होने वाले लाभ—सृष्टि में बहुत सी ऐसी संश्लेषण और विश्लेषण क्रियायें इन कीटाणुओं द्वारा होती हैं जिनसे वनस्पतियों तथा जन्तुओं दोनों को ही बहुत लाभ होता है। यहाँ पर कीटाणुओं द्वारा होने वाली कुछ ऐसी ही क्रियायों का जिक्र किया जायगा।

सिरकाम्ल बनाने में कीटाणु की सहायता ली जाती है। मद्य में जब सिरकाम्ल-कीटाणु (Acetic acid bacteria) डाल दिया जाता है तब दो तीन दिनमें वह सिरकाम्ल हो जाता है। आज कल इस ही क्रिया से बहुत सा सिरकाम्ल बनता है।

पाव रोटी बनाने में भी कीटाणुओं द्वारा बड़ी सहायता ली जाती है। मले हुए आटे में ऐसे कीटाणु डाल कर रात भर रख दिया जाता है। दूसरे दिन आटा फूल कर बड़ा हलका हो जाता है तब उस आटे की पाव रोटी बनाई जाती है।

दूध से दही जमाने की क्रिया भी एक प्रकार के कीटाणुओं द्वारा ही होती है। दूध से और प्रकार के कीटाणुओं को हटा कर केवल दही जमाने वाले कीटाणु डाल कर बहुत अच्छा दही जमाया जाता है। जब और भी तरह के कीटाणु भी दूध में वर्तमान रहते हैं तब दही बहुत खराब जमता है और उसका स्वाद भी अच्छा नहीं रहता। दूध एक बड़ा उत्तम खाद्य पदार्थ है, इस कारण इसमें सब प्रकार के कीटाणु बहुत शीघ्र पैदा हो जाते हैं। कुछ समय पूर्व तक कीटाणु-विज्ञान के अभाव के कारण दूध में रहने वाले विषैले कीटाणुओं द्वारा मनुष्यों को बहुत सी बीमारियें हो जाया करती थीं। किसी जाति के लिए दूध की इन विषैले कीटाणुओं से रक्षा करना एक बड़े महत्व का प्रश्न है। वर्तमान ससय में कीटाणु-विज्ञान की सहायता से मनुष्य को इस ओर बहुत सफलता मिली है।

इन लाभों के अतिरिक्त मनुष्य को इन कीटाणुओं से सब से अधिक लाभ कृषि सम्बन्धी होता है। गोबर, विष्ठा आदि चीजों को सड़ाकर उन्हें पेड़ों के उपयोग के उपयुक्त बनाना कीटाणुओं का ही कार्य है। पेड़ों के भोजन में नोषित और नोषेत ख़ास हैं। ये दोनों चीजें मिट्टी में अमोनियम लवणों से दो प्रकार के कीटाणुओं द्वारा बनती हैं। कुछ कीटाणु पहले जटिल-कार्बनिक चीज़ों को सड़ा कर अमोनिया बना देते हैं; फिर अमोनिया से नोषित बनाने वाले कीटाणु नोषित बनाते हैं। नोषित से एक दूसरे प्रकार के कीटाणु द्वारा नोषेत बन जाता है। इस प्रकार मिट्टी में प्रारम्भ से अन्त तक सब क्रियायें कीटाणुओं द्वारा ही होती हैं। इन क्रियायों से एक तो कृषि सम्बन्धी लाभ है ही, किन्तु दूसरा और महत्व का लाभ यह है कि कीटाणु गंदी, बदबू फैलाने वाली चीज़ों को उपयोग करने योग्य बनाकर इकट्ठी नहीं होने देते और इस प्रकार

मनुष्य के स्वास्थ्य की रक्षा करते हैं। इसी बात को उद्देश्य में रखकर बड़े बड़े शहरों में गंदे पानी को इन्ही कीटाणुओं द्वारा साफ किया जाता है।

हर एक कृषक यह भली भाँति जानता है कि जब किसी जमीन में नोषजन यौगिक की कमी हो जाती है तब चने, मटर आदि की उसी जमीन में खेती करने से नोषजन यौगिक की वृद्धि हो जाती है और ख़ेत अधिक अच्छा हो जाता है। इसका कारण भी एक प्रकार के कीटाणु का इस प्रकार के पौधों की जड़ों में रहना है। इन पौधों की जड़ों में लोगों ने यह भली भाँति देखा होगा कि जगह जगह छोटे छोटे बहुत से गोल, फूले हुए स्थान मटर की आकार के रहते हैं। इन्ही स्थानों पर कीटाणु रहते हैं। ये कीटाणु हवा में वर्तमान नोषजन से नोषेत यौगिक बनाकर मिट्टी को उपजाऊ कर देते हैं। इन कीटाणुओं से पेड़ों को कोई हानि नहीं होती, बल्कि ये पेड़ को नोषेत देने में लाभ ही पहुँचाते हैं। पेड़ इन कीटाणुओं को इनका खाद्य पदार्थ कर्बोदेत (Carbohydrate) आदि देता है और कीटाणु पेड़ को नोषेत बना कर देते हैं। इस प्रकार दोनों को ही एक दूसरे की उपस्थिति से लाभ होता है।

प्रकृति में स्वच्छ पानी का मिलना भी कीटाणुओं द्वारा ही संभवित होता है। प्रकृति में इतनी अधिक गंदी चीजों के संसर्ग में आने पर भी मनुष्यों को काफी साफ पीने योग्य पानी मिल जाया करता है। इसका कारण यही है कि पानीकी कार्बनिक चीजों की गन्दगी इन्हीं कीटाणुओं द्वारा ओषदीकरण हो कर दूर हो जाती है। ओषदीकरण से ऐसी सब चीजें अन्त में नोषेत में बदल दी जाती हैं जो पुनः नोषजन के रूप में कीटाणुओं द्वारा बदली जाकर हवा में मिल जाती है।

उपर कुछ थोड़े से ही उदाहरण कीटाणु से होने वाले लाभों के दिखलाये गये हैं। प्रकृति में जितनी भी क्रियायें होती हैं सब में कीटाणुओं का कुछ न कुछ भाग अवश्य ही रहता है। सृष्टि में जहाँ कहीं चीज़ों को विश्लेषण करने वाले कीटाणु मौजूद हैं, वहीं संश्लेषण करने वाले कीटाणु भी वर्तमान रहते हैं। यदि ऐसा न होता तो संसार में जीवधारियों का रहना असम्भव हो जाता।

सुगन्ध

[ले०—श्री ब्रजकिशोर मालवीय एम० एस-सी०]

सुगन्ध का इतिहास मानवी सभ्यता के इतिहास से तुलना करता है। इसका आतंक मन्दिरों, मस्जिदों गिरिजाघरों तथा सभी प्रकारके पूजास्थानोंमें सर्वदासे रहा है। आराधनाके प्रमुखमें चन्दन तथा धूपकी लकड़ी जलाना एक बड़ी प्राचीन प्रथा है। कर्पूर तथा अनेक सुगन्धित पदार्थोंको जला जला कर अपने इष्टदेव की पूजा करना सर्व विदित है। पूजा-स्थानों में एक प्रकार की हर्षोत्पादक भीनी भीनी महक का आना स्वाभाविक सा जान पड़ता है। मन्दिरों में सुगन्धित पुष्पों का ले जाना एक उचित उपहार समझा जाता है। अवश्य ही सुगन्ध हमारी भावनाओं पर एक विशेष प्रकार का प्रभाव डालती है जिससे हमारा चित्त एकाग्र हो जाता है। अपने इष्ट देव का आवाहन करने में लोगों ने सुगन्ध को एक अच्छा प्रभावशाली स्वागताध्यक्ष बना रक्खा है। चाहे इष्ट देव सुगन्ध से आकर्षित होते हों या भक्तकी भक्ति से, सुगन्ध हममें भली भावनाओं को जागृत करनेमें पूर्ण प्रोत्साहन देती है।

सुगन्ध का सम्बन्ध केवल देवालयों ही से नहीं है बल्कि सभी प्रकार के स्थानों में इसको ऊंची पदवी दी जाती है। भिन्न भिन्न स्थानों में अपने वायुमण्डल के अनुसार अनेक प्रकार की यथोचित सुगन्ध अपना उचित पद ग्रहण करती है। संगीत समाज से तथा नृत्यशालाओं से इसकी असाधारण मित्रता है। कामदेव को उत्साहित करने के लिये सुगन्ध एक खास उपकरण है। वसन्त ऋतु की महत्ता का बहुत

कुछ अंश सुगन्धित पुष्प वाटिकाओं पर निर्भर है। सुगन्ध सृष्टि के सभी जन्तुओं को मानव जाति से लेकर सूक्ष्मसे सूक्ष्म कीटाणुओं तक को आकर्षित कर लेती है। कीटाणुओं, मधु मक्खियों तथा भवरों को आकर्षित करने के लिये पुष्पों के प्रौढ़ काल में मधुर सुगन्ध आजाती है। जब हम इस ओर ध्यान देते हैं कि इन्हीं कीटों द्वारा नागकेशर एक नर पुष्प से दूसरे मादा पुष्प पर जाकर पुष्पों की कुल-वृद्धि करता है तथा पुष्पों की कुल-वृद्धि इन्हीं कीटों के आवागमन पर निर्भर है तो कीटों को आकर्षित करने के लिये सुगन्ध का रहना बड़ा आवश्यकीय जान पड़ता है।

हमारे स्वास्थ्य और आनन्द के लिये सुगन्ध सेवन बड़ी लाभदायक है। प्रातःकाल जब किसी उद्यान से वायुमाण्डल में पुष्प समूह अपनी भीनी भीनी सुगन्ध प्रसारित करते हैं तो हृदय में सान्त्वना भरी प्रफुल्लता एक विचित्र उथल पुथल मचाने लगती है और जीवन बड़ा आनन्दमय मालूम होता है। दूसरी ओर एक दुर्गन्धमय भीड़ भाड़ और अट्टालिकाओं से ठसी ठुसी गालियों में दिन व्यतीत करने में मन कैसा मलीन रहता है; हंसी अपना मुंह छिपाये रहती है और आनन्द एक कल्पित शब्द मालूम होने लगता है। किन्तु इन्ही स्वास्थ्य-शत्रु तथा आनन्द हासक गलियों में यदि कभी गुलाब जल या गुलाब का इत्र अपनी मीठी सुगन्ध विखेर देता है तो उसीके साथ एक जीवन प्रदान कर देता है। अन्दरसे एक अनोखी प्रसन्नता झलक फेकती है; शरीर बड़ा ताज़ा और हल्का मालूम होता है। ग्रीष्म ऋतुमें पसीने से लदे फदे और गर्म हवासे शुद्ध मानव समाजमें किसी सुगन्धित वस्तु की हल्की सी बास मध्यान्ह की मलिनता में और रात्रि की उमस में स्फुरता डाल देती है। सुगन्धित वायुमण्डल में समय बड़े आनन्द से व्यतीत होता है, शरीर हरा भरा मालूम होता है और मन ताजा बना रहता है। आनन्द और प्रफुल्लित रहना ही जीवन है। चिन्ता ग्रस्त तथा मलिन रहना ही काल बुलाना है। सभी प्राणी आनन्द की खोज में ग्रस्त हैं किन्तु सच्चा आनन्द कतिपय मनुष्यों को ही मिलता है। प्रसन्न रहने ही से हमारा स्वास्थ्य बहुत कुछ ठीक रह सकता है। अमरीकाके एक डाक्टर, जो हास्यावतार के नाम से अधिक प्रसिद्ध थे, ऐसा कहा जाता है, बहुत से रोगों को रोगी को हंसा करके ही दूर कर देते थे। कुछ भी हो सुगन्धित वस्तु प्रसन्नता तो अवश्यही लाती हैं और आनन्द रहने से स्वास्थ्य चंगा रहता है।

इस मनोवैज्ञानिक प्रभाव को छोड़ कर वास्तव में सुगन्धित वस्तुओं का देह सम्बन्धी प्रभाव बड़ा लाभदायक होता है। प्राकृतिक सुगन्धि-पदार्थों में एक स्थायी तेल होता है और दूसरा उड़ जाने वाला तेल। पुष्पों की सुगन्ध इसी उड़जाने वाले तेल पर निर्भर होती है। इस उड़ जाने वाले तेल के साथ साथ एक तेल पतला करने वाला तेल होता है जिसमें कि अपनी कोई गन्ध नहीं होती। उड़ जाने वाले जितने तेल हैं जो कि प्राकृतिक सुगन्धित वस्तुओं में पाये जाते हैं सभी एक या एक से ज्यादा मिश्रित सार तेल होते हैं। सभी सार तेलों में हानिकारक कीटाणुओं के मारने की अद्भुत शक्ति होती है। कार्बोलिकाम्ल (Carbolic acid) बड़ी तेज कीटाणु नाशक antisepticसमझी जाती है और घावोंमें तथा अन्यान्य जगहोंमें जहां कहीं भी कीटाणु नाशक antiseptic की आवश्यकता होती है कर्बोलिकाम्ल ही काम में लाया जाता है। लेकिन ये सार तेल (Essential oils) जो कि प्रत्येक सुगन्धित पदार्थोंमें उपस्थित होते हैं कार्बोलिकाम्ल से कई गुना अधिक कीटाणु नाशक antiseptic होते हैं। जिस भोजन पदार्थ में मसाले पड़े होते हैं जो बड़े सुगन्धित होते हैं वे अधिक टिकाऊ होते हैं। जिस खाद्य पदार्थ को अधिक समय तक रखना होता है तो उसमें कुछ मसाले छोड़ दिये जाते हैं। अनेक प्रकार के अचार वर्षों तक रक्खे रहते हैं क्योंकि लौंग, लायची, मिर्च इत्यादि जो मसाले इन सब चीजों में पड़ते हैं उन सब में सार तेल रहते हैं जिनकी वार से किसी कीटाणु की वृद्धि या जन्म नहीं होने पाता। चुम्बन की प्रथा बड़ी ही हानिकारक होती अगर लोग सुगन्धित क्रीम, फेस

लोसन, दन्त मञ्जन इत्यादि काम में न लाते होते। इन सुगन्धित पदार्थों में बड़ा तेज क्रीटाणु नाशक सार तेल होता है जो सब क्रीटाणुओं को तत्क्षण मार डालता है। नाउ की दूकानें तो जख्मों का जन्मदाता हो जातीं यदि इन दूकानों पर सुगन्धित क्रीम, सुगन्धित तेल इत्यादि न होते। पान का अधिक गुण इसलिये होता है कि पान में एक प्रकार का सार तेल होता है तथा सुपारी और पान का स्वाद बढ़ाने वाले, जावित्री, सौंफ, लायची, लौंग इत्यादि जो मसाले छोड़े जाते हैं उन सब में सार तेल होते हैं जो बड़े क्रीटाणु नाशक होते हैं। इसी के कारण दांतों में तथा मुखके किसी भागमें कोई जख्म बढ़ नहीं सकते। कुछ मुख्य सार तेलों (Essential oil) का वर्णन दिया जाता है और उन सबकी सामान्यता कार्बोलिकाम्लसे की जाती है जिससे पाठकगण को सार तेलोंके गुण मालूम हो जायें—

साइट्रल (Citral)—यह सार तेल नारंगी और संत्रेके तेल में पाया जाता है और कर्बोलिकाम्ल से सोलह गुना ज्यादा तेज़ होता है।

इउजिनाल—(Eugenol) लौंगके तेल का सार है जो कार्बोलिकाम्ल से पंद्रह गुना तेज होता है। इसी कारण से लौंग का फूल अचार में पड़ता है और लौंग का तेल दांत दर्द में लगाया जाता है।

Thymol (टाईमोल)-अजवाईन की रुह कार्बोलिकाम्लसे पच्चीस गुना तेज होती है और इसी लिए टाइमाल मुख, गला और दांत धोनेके लिये बड़ी अच्छी क्रीटाणु नाशक autseptic है।

(menthol) मेन्थाल—जिसे आम तौर से पेपरमिन्ट का तेल कहते हैं पुदीना में पाया जाता है और इस सिर दर्द तथा दांत दर्द अच्छा करने का गुण सर्व विदित है। यह कार्बोलिकाम्ल से १९ गुना अधिक तेज है।

(Citronellol) साइट्रोनिलल——गुलाब के तेल और इत्र का एक अवयव है जो कार्बोलिकाम्ल से १४ गुना तेज है।

(Methyl salicylate) विंटरग्रीन का तेल——जो आजकल रासायनिक क्रिया से बनाया जाता है बहुत दिनों से सुगन्ध लाने के लिये काम में लाया जाता है। गठिया की बीमारी में इसका बहुत प्रचार है। कार्बोलिकाम्ल से यह ५ गुना तेज़ है।

(Thujone) थुजोन—जो बहुत से रूह में पाया जाता है कार्बोलिकाम्ल से १२ गुना तेज है।

(Artificial musk) नकली मुश्क—बहुत सी सुगन्धित वस्तुओं में पड़ता है कार्बोलिकाम्ल से ४ गुना तेज है।

(Safrol) सेफ्राल—खसके तेल व इत्र का रुह है जो कि कार्बोलिकाम्ल से ११ गुना तेज है।

(Hypnone)हिपनोन—जो कि दवा की तरह काम में लाया जाता है (Neu mown hay) निउ मोन है की महक लाने के लिये छोड़ा जाता है। कार्बोलिकाम्ल से यह चौगुना अधिक क्रीटाणुनाशक होता है।

अस्तु कई सार तेलों के वर्णनसे यह प्रतीत होता है कि यह सब बड़ी लाभदायक वस्तु हैं। कोई भी मनुष्य अपने चेहरे पर कार्बोलिकाम्ल-मलने की इच्छा नहीं कर सकता कार्बोलिक साबुन लगाना कितना घृणात्मक समझा जाता है। लेकिन धन्यवाद है आधुनिक सुगन्धित पदार्थों और लेपों को कि इतनी ऐश आराम की वस्तु कही जाने पर भी इसमें कार्बोलिकाम्ल से कहीं अधिक क्रीटाणुनाशक शक्ति है। प्रायः जितने भी सार तेल रसायनज्ञों को विदित हैं और जो सुगन्धित वस्तुओं को बनाने के काम में लाये जाते हैं सभी कार्बोलिकाम्ल से अधिक तेज़ होते हैं।

हम ऊपर कह चुके हैं कि सार तेल के साथ साथ सुगन्धित पदार्थों में एक पतली (diluent) करने वाली वस्तु होती है। फूलों और फलों में विशेष कर मद्यसार (Ethylalcohol) होता है और सांश्लेषिक सुगन्धित इत्र तेल इत्यादि में गन्ध विहीन शुद्ध मद्यसार काम में लाया जाता है। यह मद्यसार कुछ तो स्वयं ही क्रीटाणुनाशक होता है

दूसरे यह सार तेलों (Essential oils) को पूर्णतया घोल कर उसकी क्रीटाणुनाशक शक्ति बहुत बढ़ा देता है।

सार तेलों से बनी हुई सुगन्धित वस्तुओं को छोड़ कर कितनी रासायनिक सांश्लेषिक वस्तुयें हैं जो तेल,इत्र तथा खाद्य पदार्थों को सुगन्धित करने के काम में लाई जाती हैं तथा इन सार तेलों से भी कहीं अधिक क्रीटाणुनाशक होती हैं। नकली मुश्क जो कि बहुत से इत्रों की सुगन्ध बढ़ाने के काम में लाया जाता है बड़ा तेज़ क्रीटाणुनाशक है । नकली मुश्क जितने प्रकार के हैं सभी क्रीटाणुनाशक होते हैं। सांश्लेषिक सुगन्धित पदार्थों में विशेषतः एरोमेटिक पदार्थ ही काममें लाये जाते हैं और ये सबके सब कार्बोलिकाम्ल से कहीं अधिक कीटाणु नाशक होते हैं। ये सब देख कर क्या यह नहीं कहा जा सकता कि सुगन्धित पदार्थ शौकीनी की कसौटी पर तो उतने आंके नहीं जा सकते जितने कि स्वास्थ्य रक्षा की कसौटी पर।

सुगन्ध का पाचन क्रिया पर तो गहरा प्रभाव पड़ता ही है। स्वाद से इसका और भी घनिष्ट सम्बन्ध है। वास्तवमें सुगन्ध और स्वाद करीब करीब एक ही प्रकरण है भिन्नता केवल मात्रा में है। हम गन्ध को दूर ही से पहचान लेते हैं। चाहे कितनी थोड़ी हो, हां हमारी घ्राण शक्ति के बाहर न हो लेकिन स्वाद जानने के लिए हम को उसी वस्तु को जिह्वा पर रखना पड़ता है। किसी किसी वस्तु का स्वाद जानने के लिए हमको अधिक मात्रा भी काम में लानी पड़ती है। यदि हम अपनी नासिका बन्द करके किसी वस्तु को मुख के पास लावें और उसका स्वाद नाक बन्द ही किये हुये परीक्षा लें तो हमको कितने ही पदार्थका स्वाद बदला हुआ मालूम होगा। कितनी ही वस्तुयें एकही समान स्वाद वाली मालूम होती है। सिरका, और Butyric acid इत्यादि का स्वाद एक ही मालूम पड़ता है । किन्तु यदि नाक खोल कर यह सब चीजें चीखी जांय तो इन सब का स्वाद भिन्न भिन्न मालूम होता है वास्तव में बात यह है कि नाक बन्द करके भोजन करने में कितने ही हल्के और बहु मिश्रित स्वाद होते हैं जो बिल्कुल नहीं जान पड़ते। केवल खास खास चार स्वाद मीठा, खट्टा नमकीन और तीता ही मालूम किया जा सकते है। ऐसी हालतमें सुगन्ध का स्वाद पर तथा पाचन पर कितना अधिक प्रभाव हो जाता है।

सुगन्ध और स्वाद का प्राणियों के शरीर में इतना घनिष्ट सम्बन्ध होते हुये भी घ्राणेन्द्रिय और स्वादेन्द्रिय का विज्ञान अभी अपने शिशुपालना में हो हाथ पांव फेंक रहा है। इसका बाल्यकाल भी निकट भविष्य में दृष्टि नहीं पड़ता। कितने ही वैज्ञानिकों ने इस विज्ञान की ओर ध्यान दिया है और कितने ही सिद्धान्त खड़े कर दिये गये हैं। लेकिन विज्ञान की इस शाखा में तो अभी उठने की भी शक्ति नहीं आई है। इस विषय पर अन्वेषक को प्रथम ग्रास में ही निराशा मिल जाती है क्योंकि अभी किसी किसी ठीक ठीक घ्राणमापक यंत्र का नाम सुनने में आ जाने में बिलम्ब है। घ्राण पर जितने भी प्रयोग किये जाते हैं उनमें जीव स्वयं ही परिमाण बन जाता है और इस लिये कोई भी प्रयोग उत्तीर्णता की पहली सीढ़ी भी नहीं चढ़ पाते क्योंकि घ्राण शक्ति एक मनुष्य से दूसरे मनुष्य में कहीं ज्यादा भिन्न है और एक जीव से दूसरे जीव से तो कहीं अधिक अन्तर है। खूनी कुत्तों की घ्राण शक्ति का कौन मुकाबला कर सकता है। मनुष्यकी घ्राण शक्ति तो बहुत ही निर्बल है। कीटाणुओं तथा अनेक प्रकार की तितिलियों और मक्खियों की घ्राण शक्ति तो कहीं बढ़कर है। जिस तरह से हमारी दृष्टि शक्ति और श्रवण शक्ति कुछ सीमा के अन्दर बंधी हुई है उसी तरह हमारी घ्राण शक्ति भी सीमाबद्ध है। भिन्नता केवल घ्राण शक्ति ही में नहीं है बल्कि एक वस्तु जो किसी मनुष्य को बड़ी सुगन्धित लगती है वहीं दूसरे में बड़ी दुर्गन्ध की भावना पैदा करती है तथा एक वस्तु को सूंघ सूंघ कर प्रसन्न होता है दूसरे को उसमें कोई भी गन्ध

नहीं मालूम होती। इतना तो प्रायः सभी मनुष्यों में है कि हर एक को भिन्न भिन्न गन्ध अच्छी लगती है और भिन्न भिन्न मनुष्य भिन्न भिन्न गन्ध को बड़ी शीघ्र पहचान लेते हैं। घ्राण इन्द्रिय की ऐसी विचित्र विभिन्नता में कौन किसको परिमाण मान सकता है अथवा वैज्ञानिक प्रयोग के लिये सुगन्ध की नाप करने के लिए तथा सुगन्ध अच्छी और बुरी या कम और ज्यादा गन्ध की संख्या में विभाजित करने के लिए किसी शुद्ध घ्राण मापक की नितान्त आवश्यकता है। कई घ्राण मापक का आविष्कार हो चुका है और इनमें से कई काम में भी लाये जाते हैं लेकिन कोई भी शुद्ध नहीं समझे जा सकते और अब भी बड़ी बड़ी सुगन्ध कार्यालयों में होशियार मनुष्यों को घ्राण मापक का स्थान दिया जाता है।

———

यक्ष्मा

[ले०—डा० कमलाप्रसाद जी, एम० बी०]

वक्षौदरिक नाड़ी का उन्मूलन।

(Phrenic Nerve Exairesis)

ऐतिहासिक—सर्व प्रथम स्टूअर्टज़ (Stuertz) ने सन् १९११ में फुफ्फुस-यक्ष्मा की चिकित्सा के लिए इस नाड़ी को द्विधा विभक्त करने की बात सोची थी। किन्तु लोगों का ध्यान इसकी ओर बहुत कम आकर्षित हुआ। पुनरपि सन १९२२ में गिट्ज़ तथा फेलिक्स ने इस रीति को प्रचलित किया, और उस समय से इसका प्रचार बढ़ता गया।

अंग-व्यवच्छेद—वक्षौदरिक नाड़ी, तृतीय, चतुर्थ, और पंचम ग्रैवी नाड़ियों से निकलती है, तथा शिरःग्रीवानमनी (पूर्वा) मांस पेशी (Scalenus Anticus Muscle) के सन्मुख होती हुई अक्षकाद्यः शिरा एवं धमनी (Subclavian Uein and artery) के बीच वक्ष में प्रवेश करती है। वक्षस्थल के मध्यस्थान (Mediastinum) से होती हुई यह वक्षोदर-मध्यस्था मांसपेशी (Diaphragm) पर पहुँच कर कई शाखाओं में विभक्त हो जाती है। इसकी निम्न लिखित शाखायें हैं:—

( ) मांसीय (जो वक्षोदर मध्यस्था मांसपेशी को जाती हैं)

(२) फुफ्फुसावरण शाखायें (Pleural branches)

(३) हृदयावरण शाखायें (Coronary Branches)

(४) निम्न महाशिरा शाखायें (Inferior Venacaval branches)

(५) उपवृक्क शाखायें (Supra renal branches)

(६) यकृत शाखायें (Liver branches)

इस नाड़ी का श्वास से सम्बन्ध—इसका विचार करते समय वक्षोदर मध्यस्था मांसपेशी की क्रियाओं पर ध्यान देना होगा। यह मांसपेशी वक्षस्थल को उदर से पृथक् करती है, और इसका ऊर्ध्व पृष्ठ (Upper Surface) सदैव फुफ्फुसाधार (Base of lungs) से सम्पर्क रखता है। अस्तु जब इस पेशी के तंतु संकुचित होते हैं तो यह उदर की ओर धँसती है अथच फुफ्फुस के आयत को स्फालित करती है जिससे अन्तः श्वसन होता है। पुनश्च इसकी विपरीत क्रियाओं से बहिःश्वसन् होता है। दूसरे शब्दों में इस मांसपेशी की क्रियाओं पर श्वास की गति बहुत अंशों में निर्भर करती है। इसको (पेशी) संचालित करती है वक्षौदरिक नाड़ी। इस प्रकार यह देखा जायगा कि इस नाड़ी पर (उस ओर के) फुफ्फुस की गति निर्भर करती है। अथच इसके उन्मूलन से उस ओर का फुफ्फुस प्रायः निश्चेष्ट हो जाता है।

उन्मूलन का प्रभाव—जिस ओर की नाड़ी उन्मूलित की जाती है उस ओर की (अर्थात् आधी) वक्षोदर मध्यस्था पेशी (diaphragm) वक्ष में कुछ

ऊपर की ओर उठ जाती है; दूसरे सप्ताह में कुछ और ऊपर उठ जाती है। तथा गेज़े (Goetze) के मतानुसार प्रायः छ मास तक उठती ही जाती है। श्वास के समय यह एक दम निश्चेष्ट रह जाती है, फल स्वरूप फुफ्फुस आयत में घटता जाता है (कभी २ एक चौथाई वा तृतीयांश घट जाता है),❀ तथा फुफ्फुसाधार निश्चेष्ट हो जाता है। अस्तु इस क्रिया का भी बहुत अंशों में वही प्रभाव पड़ता है जो फुफ्फुसावरण गर्त्त में वायु प्रवेश कराने का।

रीति।

रोगीको चत-चिकित्सा के लिए साधारण रीतियों से प्रस्तुत कर लिया जाता है। गले के शल्य-स्थान (Site of operation) में चैतन्य शून्यता के लिए नवषेण (½ °/₀ १० घन शतांशमीटर) तथा १ °/₀ उपवृक्किन (Adrenalin) प्रवेश करा दिये जाते हैं। उरः कर्णमूलिका (Sterno cliedomastoid) मांस पेशी के पश्चाद्धार से अत्तक तक प्रायः २ इञ्च का चीरा लगाया जाता है। वक्षोदरिक नाड़ी त्वचा एवं वसा के निम्न भाग में शिरः ग्रीवा नमनी (पूर्वा) को पार्श्व से केन्द्र की ओर पार करती हुई देखी जाती है। इसको अन्य तंतुओं से पृथक् कर बीच से काट दिया जाता है, और कटे हुए निम्नांश को धीरे २ खींच लिया जाता है जिससे इस नाड़ी का सम्बन्ध वक्षोदर मध्यस्था मांसपेशी से एक दम छिन्न-भिन्न हो जाता है। इस समय रोगी को स्कंध तथा उदर में कुछ पीड़ा होती है। इस रीति के आरंभ में नाड़ी को केवल द्विधा विभक्त कर छोड़ दिया जाता था किन्तु बाद को देखा गया कि इससे काम नहीं चलता, क्योंकि कभी २ एक सहायक वक्षोदरिक नाड़ी (Accessory Phrenic nerve) भी पाई जाती है। यह नाड़ी प्रायः २० से २५ °/₀ व्यक्तियों में (अथवा इससे भी अधिक मनुष्यों में) वर्त्तमान रहती है। इसके अतिरिक्त इससे सम्बद्ध कुछ नाड़ी जाल भी पाये जाते हैं, जिनसे केवल द्विधा विभक्त कर देने पर इस वक्षोदर-मध्यस्था मांसपेशी से सम्बन्ध एक दम टूट नहीं जाता।

❀ C. Frimodt-moller और D. V. Gnanamuthu.

चत-चिकित्सकों के लिए उपरोक्त क्रियायें बहुत सरल प्रतीत होती हैं, पर तो भी ये भय से रहित नहीं हैं। कभी २ शिराओं के कट जानेके कारण अत्यधिक रक्तस्राव होने लगता है, तथा इनमें (शिराओं में वायु प्रवेश करने की सम्भावना रहती है। कभी २ अन्य नाड़ियाँ कट जाती हैं और कभी इस नाड़ी को खींचते समय फुफ्फुसावरण फट जाता है। हृदय-स्पन्दन का बन्द होना, श्वासकष्ट तथा फुफ्फुस से रक्तस्राव इत्यादि की भी सम्भावना रहती है। अत्यधिक वमन तो एक साधारण बात है।

यह चिकित्सा किन किन रोगियों के लिए उपयुक्त है:—

(१) बहुत आरम्भ में पर्शुकाछेदन के पूर्व इस चिकित्सा द्वारा एक प्रकार से इस बात की परीक्षा कर ली जाती थी कि रोगी का दूसरा फुफ्फुस (जिस पर पूर्वापेक्षा अधिक भार पड़ जाता है) सारा काम कर सकेगा वा नहीं, अथच इस नूतन परिवर्तन द्वारा उत्पन्न रक्तधारा तथा श्वास सम्बन्धी परिवर्तनों को रोगी सम्हाल सकेंगे वा नहीं।

(२) ऐसे रोगियों को जिनके फुफ्फुसावरण गर्त्त में वायु प्रवेश कराना सम्भव नहीं हो (दोनों फुफ्फुसों के अधिक क्षत-ग्रस्त होने के कारण अथवा फुफ्फुसावरण के दोनों तलों के अधिकांश में सलग्न होने के कारण) यह चिकित्सा कुछ लाभ पहुँचा सकती है।

(३) यदि पर्शुका-छेदन आवश्यक हो किन्तु यह सम्भव नहीं हो (रोगी की अवस्था के कारण) तो इस चिकित्सा द्वारा सहायता ली जा सकती है।

(४) फुफ्फुसावरण गर्त्त में वायु प्रवेश कराने के सहायकस्वरूप इस चिकित्सासे बहुत लाभ सम्भव है।

इस रीति से चिकित्सा करने के पक्ष तथा विपक्ष में बहुत सी बातें कही जाती हैं। किन्तु सारांश यही है कि यह अधिकांश रोगियों को लाभ प्रद होती है। बहुधा इसके उपरान्त ही ज्वर शांत होने लगता है। बलगम में यक्ष्मा कीटाणु नहीं आते, बलगम नहीं

निकलता, खांसी कम जाती तथा रोगी का तौल बढ़ने लगता है।

रोगी का चुनाव बहुत आवश्यक है; सभी रोगियों के लिए यह चिकित्सा उपयुक्त नहीं होती।

पर्शुका खण्डन।

Thoracoplasty

सिद्धान्त। इसका वही सिद्धान्त है जो फुफ्फुसावरण में वायु प्रवेश कराने का अथवा वक्षोदरिक नाड़ी के उन्मूलन का, अर्थात् फुफ्फुसावरण गर्त्त का वहिर्वायु से सम्बन्ध स्थापित कर रोग-ग्रस्त फुफ्फुस को संकुचित करना तथा उसे पूर्ण विश्राम देना (Collapse therapy)। यदि साधारण उपायों से फुफ्फुस को संकुचित किया जा सके तो इस बृहत् क्षत-चिकित्सा का आयोजन नहीं होता किन्तु निम्न लिखित अवस्थाओं में यह आवश्यक हो जाती है।

(१) यदि फुफ्फुसावरण के दोनों तल परस्पर अधिकांश में सलग्न हों।

(२) यदि फुफ्फुसावरण गर्त्त से सदैव सादा या पीब के साथ कुछ कुछ द्रव निर्गत होता रहता हो।

(३) यदि फुफ्फुसावरण गर्त्त का वहिर्वायु से प्रकृति सम्बन्ध (Natural Pneumo thorax) हो गया हो।

(४) यदि सौत्रिक यक्ष्मा ग्रस्त फुफ्फुस में बहुत से गर्त्त बन गये हों।

इन सभी अवस्थाओं में यह आवश्यक है कि एक ही ओर का फुफ्फुसक्षत ग्रस्त हो अथवा दूसरी ओर का इतना कम आक्रान्त हो कि वह दोनों ही कार्य-भार ग्रहण कर सके।

"इस चिकित्सा के प्रतिरोधक हैं, दोनों ओर के गर्त्तयुक्त विस्तीर्ण यक्ष्मा का वर्तमान रहना, जीर्ण सौत्रिक यक्ष्मा, एवं ऐसे शारीरिक लक्षण (अत्यधिक दौर्बल्य इत्यादि) जो साधारणतः किसी प्रकार की क्षत चिकित्सा के प्रतिरोधक हो सकते हैं"❀

❀Dr. P. T. Patel M. D.; M. R. C. P.; D. T. M. dH; L.M.S.

रीति ❀

रोगी को क्षत-चिकित्सा की साधारण रीतियों से प्रस्तुत कर लिया जाता है, और उसे टेबुल पर पेट के बल लिटा दिया जाता है।

चीरा जिस ओर का पर्शुका खण्डन करना हो—(इसको निश्चय करने के लिए रौञ्जन-किरण-छाया-चित्र की नितान्त आवश्यकता होती है)— उस ओर के वक्ष (पृष्ठ-भाग) में मेरुदण्ड से कुछ हटकर उसके (मेरुदण्ड के) समानान्तर लगाया जाता है। क्रमशः त्वचा, इसके निम्नस्थ सौत्रिक-तंतु तथा वसा और मांसपेशियों को हटाकर, जिन पर्शुकाओं को काटना हो उन्हें संलग्न नाड़ियों, धमनियों शिराओं और पर्यस्थि से पृथक् कर लिया जाता है, और तब आवश्यकतानुसार एक, दो वा अधिक पर्शुकाओं को दो तीन इञ्च वा इससे अधिक लम्बाई तक काट कर निकाल दिया जाता है, तथा त्वचा इत्यादि अपने स्थान पर ला कर सी दिये जाते हैं।

इतने पर भी यदि यह समझा जाता है कि कुल फुफ्फुस पर वायु का यथेष्ट चाप नहीं पड़ेगा, जिससे वह आवश्यकतानुसार संकुचित हो सके तो उसके (फुफ्फुस) ऊपर एक प्रकार का गद्दा सा दे दिया जाता है। इस गद्दे के लिए रोगी की अपनी वसा (चर्बी) बहुत काम की होती है। और यह उसकी जाँघ की त्वचा के नीचे से ली जाती है।

चैतन्य-शून्यता के लिए नवषेण काम में लाया जाता है।

इस चिकित्सा के लिए एक दक्ष क्षत-चिकित्सक की आवश्यकता होती है। अन्यथा यह बहुत ही

❀ विस्तार पूर्वक वर्णन असम्भव है। किन्तु लेख अधूरा नहीं रह जाय इसलिए दिग्दर्शन मात्र करा दिया जाता है।

S हमारे आचार्य डाक्टर आर एच्, एच् गे हीन के लिए तो यह बायें हाथ का खेल था। वे रोगी से बातचीत भी करते रहते थे और बात की बात में इतना बड़ा कार्य समाप्त कर देते थे।

कठिन है, रोगी की मृत्यु हो जाना तो साधारण बात है।ऽ

वक्षान्तर्वीक्षण*

(Thoracoscopy)

कभी कभी फुफ्फुसावरण के दोनों तल एकाध धागों द्वारा जकड़ लिए जाते हैं, जिससे फुफ्फुसावरण गर्त्त में वायु प्रवेश कराना असम्भव हो जाता है। यदि किसी प्रकार ये धागे काट दिये जाँय तो पुनरपि वायु प्रवेश कराना सम्भव हो जाता है। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए प्रस्तुत क्रिया काम में लायी जाती है।

रीति

इसके लिए जिन अस्त्रों की आवश्यकता होती है उनमें प्रधान है धातु की बनी दो पतली लम्बी नलिकायें, जिनमें एक के भीतर विद्युत का छोटा सा वल्ब (लैम्प) रहता है और दूसरी के भीतर धातु का बना एक छड़ रहता है जिसके एक छोर पर अर्धचन्द्राकार वैद्युतिक दग्धक रहता है और दूसरे छोर का सम्बन्ध (तार द्वारा) वैटरी से किया जाता है।

रौञ्जन किरण छाया चित्र द्वारा यह पता लिया जाता है कि फुफ्फुसावरण को जकड़ने वाला सूत्र (धागा) किस स्थान में है। तदनन्तर रोगी को साधारण रीतियों से क्षत-चिकित्साके लिये प्रस्तुत कर लिया जाता है और उसे पीठ के बल (वा जैसी सुविधा हो) टेबुल पर लिटा दिया जाता है।

अब बल्ब वाली नली को वक्षस्थल में प्रवेश करा दिया जाता है, और इस समय उसे प्रज्वलित करने पर वक्षस्थल आलोकित हो जाता है, तथा नली के द्वारा देखने से सूत्र एक खूब चमकीली रेखा का सा दिखाई पड़ता है। इसी समय दूसरी नली भी प्रवेश करायी जाती है और विद्युत प्रकाश के सहारे वह चमकीला धागा काट डाला जाता है।

*यह शब्द वास्तव में उस क्रिया का द्योतक नहीं है जिसके लिए प्रयुक्त होता है।

वास्तव में यह क्रिया पूर्वोक्त सभी क्षत-चिकित्साओं से कठिन है और बहुत ही सिद्धहस्त चिकित्सक इसके करने का साहस कर सकते हैं। परन्तु इससे लाभ असीम होता है, पुनरपि वायु प्रवेश करायी जा सकती है। तथा ऐसे रोगी जिनको अन्य उपायों से कुछ भी लाभ नहीं पहुँच रहा हो, एक बार फिर भी रोगमुक्त होने की आशा कर सकते हैं।

उपसंहार

क्षत चिकित्सा का भूत इस समय चिकित्सकों पर इस प्रकार प्रभाव डाले हुए है कि बहुत से चिकित्सकों ने समय २ फुफ्फुसके कुछ अंशों को काट कर निकाल देने की चेष्टा की है। वर्तमान अवस्था में यह नहीं कहा जा सकता कि अमुक रीति वा रीतियों से अवश्य ही लाभ पहुँच सकता है अस्तु रोगी के जीवन को खतरे में डाल देना कहां तक उचित है इसका निर्णय पूर्ण अनुभव प्राप्त चिकित्सकों द्वारा ही हो सकता है। तथापि वर्नार्ड हडसन् के निम्न लिखित शब्दों में हम एक उज्ज्वल भविष्य की आशा कर सकते हैं—

"बहुत से रोगियों के बचाने की सम्भावना हो सकती है, और वे पुनरपि अपना दैनिक साधारण जीवन निर्वाह करने के योग्य हो सकते हैं" कब? जब रोगी और चिकित्सक दोनों ही शिक्षित होंगे।

सैनोक्राइसिन

(Sanocrysin)

यह बहुत हाल की* निकली हुई दवा है और इसके आविष्कर्त्ता हैं कोपेनहेगन के प्रोफेसर मोलगार्ड (Professor Moellgaurd of Copenhagen)। इस औषधिका पूर्णनाम है सोडियम थायोसल्फेट आफ गोल्ड (Sodium Thiosulphate of Gold) और इसके एक अंश पर जिसमें स्वर्ण, गंधक और ओषजन ($Au\ S_2\ O_3$) मिश्रित हैं इसकी यक्ष्मा-नाशक-शक्ति निर्भर करती है। यह एक हिमश्वेत सुई के

* सन् १९२४ में इसका आविष्कार हुआ है।

आकारके दर्रे (Crystals) वाला पदार्थ है जो जल में सरलता-पूर्वक घुल जाता है तथा शीशे में बन्द कर रखने पर एक वर्ष तक नष्ट नहीं होता। मोलगार्ड ने अनुमान किया था कि यह यक्ष्मा कीटाणुओं का नाश कर यक्ष्मा-रोगियों को लाभ पहुँचाता है किन्तु उसका विचार निर्मूल सिद्ध हुआ क्योंकि एक शीशे में दोनों (दवा एवं यक्ष्माकीटाणु को) रखने पर यक्ष्माकीटाणु नष्ट नहीं होते। अतएव वैज्ञानिकों का सिद्धान्त है कि सैनोक्राइसिन यक्ष्मा-जनित द्रव एवं नष्ट पदार्थों को छिन्न-भिन्न कर देता है। ये टुकड़े २ किये गये पदार्थ रक्त में संचारित होने लगते तथा शरीर की सोती हुई शक्तियों को जगा देते हैं जिससे वे यक्ष्मा-विरोधिनी वस्तुओं (Antibodies) को उत्पन्न करती हैं और यक्ष्माको मार भगाने की चेष्टा करती हैं।

सैनोक्राइसिन मानव-शरीर में बैठ जाता है किन्तु यह ५० प्रतिशत अन्त्र एवं वृक्क के मार्ग से बहिष्कृत भी होजाते हैं। शेषांश बहुत दिन तक शरीर में—विशेषकर यकृत और मांसपेशियों में—वर्त्तमान रहते हैं। कम से कम २ सप्ताह तक कुछ न कुछ स्वर्ण रक्त-धारा में अवश्य वर्त्तमान रहता है।

सैनोक्राइसिन किन २ रोगियों के लिए उपयुक्त है?

सैनोक्राइसिन नूतन फुफ्फुस-प्रदाहीय-यक्ष्मा (Acute Pneumonic tuberculosis) के रोगियों को—विशेषकर रोग की आरम्भिक अवस्थाओंमें बहुत लाभ पहुँचाता है। जीर्ण यक्ष्मा के रोगियों के सम्बन्ध में निम्नलिखित ३ बातों पर ध्यान उचित है।

(१) क्षत कितना विस्तृत है और कितनी सरलता से दवा वहाँ तक पहुँच सकती है।

(२) रोगी की अवरोधिनी शक्ति कितनी प्रबल है।

(३) शरीर के मलवहिष्कारक अवयव कितनी तत्परता से अपने काम कर सकते हैं।

एक वर्ष अवधि के रोगियों को जिनके क्षत् में छनाकरण क्रिया होती रहती है, यह दवा बहुत ही लाभप्रद होती है। सौत्रिक (fibrotic) यक्ष्मा में इससे कुछ भी लाभ नहीं होता क्योंकि दवा क्षत-अंश में प्रवेश नहीं कर पाती। अधिक दिन के रोगियों को भी इससे लाभ नहीं होता ऐसे रोगी जो बहुत हाल में रोगग्रस्त हुए हों, जो हृष्ट-पुष्ट हों एवं जिनका ज्वर कुछ शांत किया जा सकता हो इस दवा के लिए उपयुक्त हैं। हृदय बलिष्ठ होना चाहिए अन्यथा इससे कभी २ नुकसान होता है। सैनोक्राइसिन रक्तक्षरण में भी दिया जा सकता है क्योंकि ऐसी अवस्था में यह यक्ष्माकीटाणुओं के फुफ्फुस में विस्तार को रोकता है।

निम्नलिखित अवस्थाओं में इसका प्रयोग अनुचित है—

(१) क्षुद्र एवं परिमित क्षत जो अन्य उपायों द्वारा रोगमुक्त हो सकता है।

(२) जीर्ण सौत्रिक यक्ष्मा।

(३) अधिक ज्वर

(४) अधिक दिनों का एवं विस्तीर्ण क्षत।

(५) वृक्क तथा अन्त्र-यक्ष्मा।

(६) यक्ष्मा जनित मस्तिष्कावरण प्रदाह।

(७) अत्यधिक विष व्याप्त व्यक्तियों में जिनकी अवरोधिनी शक्ति नष्ट हो गई है—अधिक ज्वर आता हो, रोगी तौल में नहीं बढ़ते हों इत्यादि।

[८] यकृत, प्लीहा, वृक्क के अन्य रोगों के रोगियों में।

सैनोक्राइसिन की मात्रा:—यह निम्न लिखित मात्राओं में क्रमशः दिया जा सकता है—

०·१, ०·२, ०·३५, ०·५, ०·६५, ०·७५, और १·०० ग्राम

ये मात्रायें भारतीयों के लिए उपयुक्त हैं। अन्तिम सह्य होने वाली मात्रा (optimum dose) तब तक दुहराई जा सकती है जब तक इच्छित फल प्राप्त न हो। ज्वर-मुक्त एवं क्षीण-बल रोगियों की प्रारम्भिक मात्रा ०·०५ ग्राम उचित है। कोई २ चिकित्सक इसी प्रारम्भिक मात्रा को तब तक दुहराते हैं जब तक रोगी को इसके सह्य करने की शक्ति नहीं प्राप्त होती। स्त्रियों एवं बच्चों को और भी कम मात्रायें दी जाती हैं।

इसके देने की सब से उत्तम रीति है शिरा में सुई द्वारा प्रवेश कराना। इसको कीटाणु रहित जल

में घोल कर [५°।०] रक्त धारा में प्रवेश कराते हैं। स्त्रियों को एवं बच्चों को जिन की शिरायें इतनी आसानीसे नहीं मिलती, दवा उनकी माँसपेशियोंमें भी दे दी जा सकती है। किसी रोगी को एक साथ ७ से १२ सुइयाँ दवा तक दी जा सकती हैं, और अवश्यकता होने पर कम से कम दो मास के उपरान्त दुहरायी जा सकती हैं।

जिस समय रोगी को सैनोक्राइसिन दिया जाता हो, उसके मूत्र की दिन में कम से कम दो वार परीक्षा करना आवश्यक है और उस में अलब्यूमिन और सांचे (casts) के लिए विशेष ध्यान देना चाहिए। दिन में तीन चार बार ताप-माप लेना भी उचित है। अन्य बुरे लक्षणों—जैसे मुँह का स्वाद बिगड़ना, मुह में घाव इत्यादि का होना—को भी ध्यान में रखना चाहिए।

निम्न लिखित प्रतिक्रियायें और उपद्रव※ सम्भव हैं।

[१] ताप क्रम—

[क] ३ से १० घंटे के भीतर ज्वर बहुत बढ़ जाता है और थोड़े समय में उतर भी जाता है।

[ख] जिस दिन दवा दी जाती है उस दिन धीरे २ ज्वर बढ़ता जाता है और अन्त में धीरे २ उतरता भी है।

[ग] दवा देने के दूसरे वा तीसरे दिन ज्वर चढ़ जाता है और कई दिनों तक बना रहता है। ज्वर के साथ २ शिर, हाथ पैर एवं संधियों में पीड़ा भी होती है।

(२) अन्त्र एवं पाकस्थली सम्बन्धी उपद्रव—

मितली आना, वमन, रेचन, भूख नहीं लगना और हिचकी आना इत्यादि।

(३) तौल में कम जाना।

(४) मूत्र में अलब्यूमेन और "सांचे" का पाया जाना।

(५) मुख एवं जिह्वा में घाव हो जाना।

(६) चर्म प्रतिक्रियायें—साधारणतः चकत्ते निकल आते हैं किन्तु त्वक् प्रदाह तक असम्भव नहीं है।

(७) कैन्द्रिक प्रतिक्रियायें—खांसी एवं राल्स की अस्थायी क्षणिक वृद्धि।

(८) विष प्रतिक्रिया—(जो उपयुक्त मात्राओं में इसके प्रयोग से नहीं उत्पन्न होने पाती—उष्णतामाप का कम जाना, हृदय-दौर्बल्य, और मूत्र में अलब्युमेन का पाया जाना।

(९) आखों में हरापन।

(१०) रक्तक्षरण।

जब तक प्रतिक्रियायें शांत न हो जायें तब तक औषधि की दूसरी मात्रा कदापि नहीं देनी चाहिए। प्रतिक्रियायें यदि उग्ररूप धारण करें तो इसके लिए निम्न लिखित उपाय अवलम्बन करना होगा। वह उपाय विष-प्रतिरोधक-रक्तवारि※ का प्रवेश कराना है जिसकी मात्रा आवश्यकतानुसार २० घन शतांश-मीटर तक हो सकती है।

इसमें संदेह नहीं कि सैनोक्राइसिन कुछ रोगियों को लाभ पहुँचाता है किन्तु इस बात को भूलना नहीं चाहिए कि यह एक दुधारी तलवार है जो कभी २ घोर अनर्थ कर बैठता है। साथ ही साथ यह भी याद रखना चाहिए कि इसके द्वारा चिकित्सा से रोगी यक्ष्मा कीटाणुओं से एक दम मुक्त नहीं हो सकता।

फुफ़्फुस-यक्ष्मा-जनित विशेष विशेष लक्षणों की चिकित्सा।

सच पूछा जाय तो वर्तमान समय में डाक्टरों अथवा वैद्यों द्वारा अधिकांश रोगियों को चिकित्सा के नाम पर जो वस्तु प्राप्त होती है, अथच पढ़े लिखे लोग भी जिस को पाकर समझ लेते हैं कि यही तो

※Dr. Y. G. Shrikhande Bhowali Sanatoriwm; Jndian Medical gazette, (feb 1928)

※ मोल गार्ड ने ही इसका भी अविष्कार किया है। आरम्भ में इस दवा की मात्रा अनिश्चित थी एवं रोगियों को इसकी कड़ी मात्रायें दी जाती थीं जिससे प्रतिक्रियायें भी उग्र रूप धारण करती थीं। उनसे बचानेके लिए मोलगार्डने इस विष प्रति रोधक-रक्त-वारि Anti-toxic serum को ढूँढ़ निकाला। उचित मात्राओंमें प्रयोग करने पर इसकी आवश्यकता नहीं होती।

उचित वस्तु प्राप्त हो रही है, वह है इनही विशेष लक्षणों की चिकित्सा और वह भी विपरीत रीतियों द्वारा। एक ऐसे ही विज्ञ चिकित्सक की बात है। आप एक रिटायर्ड सिविल सजन हैं और अपने को यक्ष्मा विशेषज्ञ सिद्ध करने में भी व्यस्त रहते हैं। परन्तु यक्ष्माकी चिकित्सामें पांशुजनैलिद (Potassium iodide) का व्यवहार करनेमें कुछ भी नहीं हिचकते। यह दवा फुफ्फुस प्रदाह इत्यादि में इस लिए दी जाती है कि प्रदाहोत्पन्न वस्तुओंको द्रवी भूत कर निकाल दे। आप की धारणा सम्भवतः फुफ्फुस यक्ष्माकी चिकित्साके सम्बन्धमें भी वही है और इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए पांशुजनैलिद की बड़ी बड़ी मात्रायें देने में भी आप नहीं हिचकते—छोटी मात्रायें तो अनिवार्य हैं! हमारे देश के अधिकांश चिकित्सक यक्ष्मा सम्बन्धी चिकित्साओंमें ऐसी एक नहीं सहस्रों भूल नित्य ही किया करते हैं। यह दशा कब तक सुधरेगी भगवान जानें।

यदि फुफ्फुस-यक्ष्मा की चिकित्सा पूर्व कथित विधियों द्वारा की जाय तो ये विशेष विशेष लक्षण उपस्थित होते ही नहीं, तथापि कभी कभी ये कष्टकर प्रतीत होते हैं और इनके निवारण की चेष्टा की जानी चाहिए।

खाँसी। इसका कारण ज्ञात कर लेना आवश्यक है। बहुत छोटी २ बातों पर—घर की सफाई, बिछावन इत्यादि का अच्छा प्रबन्ध इत्यादि—भी ध्यान देना उचित है। कभी २ अहर्निश मुक्त वायु का प्रबन्ध खांसी को रोक देने के लिए यथेष्ट होता है। कभी २ सूँघने के लिए जो दवायें दी जाती हैं उनसे खांसी होती है। सिग्रेट, तम्बाकू भी एक प्रधान कारण हैं। कभी २ तो स्वेच्छा से ही खांसा करते हैं। उन्हें उचित शिक्षा देनी होगी। उनको यह बताना होगा कि एक खांसी दूसरी को बुलाती है अतः इसे जितना ही रोका जाय उतना ही अच्छा होगा। कभी कभी व्यर्थ की खांसी निम्न लिखित घोल द्वारा बन्द हो जाती है—

हल्का उद्‍श्यामिकाम्ल (Dilute Hyrdocyanic Acid) ,,	१ वा २ ड्राम
,, नोषिकाम्ल (Dil. Nitric Acid)	½ ड्राम
मधुरिन (glycerine)	४ ड्राम
जल	६ औंस तक

मात्रा—इस घोल का ३० से ६० बूंद (½ से १ड्राम) तक दिन में ३ बार भोजन के पूर्व।

यदि इससे भी शांति न मिले तो अफीमिन ($\frac{1}{12}$ से $\frac{1}{6}$ ग्रेन तक), अथवा कोडीन (Codeine) ($\frac{1}{6}$ से १ ग्रेन) तक वा डायोनिन ($\frac{1}{6}$ से ½ ग्रेन) तक इत्यादि देना उपयुक्त प्रतीत होता है।

यदि कंठ में किसी प्रकार की जलन हो और खांसी इसीसे होती हो तो उसमें (कंठ में) पिपरमेंट और कोकेन लगाने से खांसी बंद हो जायगी।

बलगम। रात का इकट्ठा हुआ बलगम बहुधा भोर को निकल आता है। कभी कभी यह इतना गाढ़ा हो जाता है कि इसके निकलनेमें कठिनाई होती है। ऐसी अवस्थामें एक ग्लास गर्म दूध वा गर्म जल वा क्षार-मिश्रित (जैसे सैन्धकम् द्विकार्बनेत युक्त) गर्म जल सहायता करता है।

रक्त-क्षरण। इसके सन्बन्ध में पहले ही लिखा जा चुका है।*

हंफनी। प्रचुर परिमाण में वायु प्राप्त होने पर यह लक्षण बहुधा लुप्त हो जाता है। यदि बहुत आवश्यक हो तो अमोनिया का स्पिरिट [(Spirit ammon aromat)(१ ड्रामकी मात्रामें)] नींबूके रस के साथ जल में मिलाकर दिया जा सकता है। यदि फुफ्फुस प्रणालियों में बलगम जम जानेके कारण श्वास में रुकावट पड़नेसे हंफनी होती हो तो अमोनिया कार्बनेत, सेनेगा, (senega) इत्यादि उत्तेजक पदार्थ दिये जा सकते हैं जिससे बलगम छँट जायगा तथा हंफनी बन्द हो जायगी। फुफ्फुसावरण गर्त्त में वायु प्रवेश कराने के बाद की हंफनी अफीमिन द्वारा बन्द हो जाती है।

पीडा। इसके कारण को ढूँढ़ निकालना उचित है। यदि फुफ्फुसावरण प्रदाह के कारण होती हो

*विज्ञान अंक १९९ पृष्ट ११ अक्तूबर सन् १९३१ ई०

तो बहुधा सटने वाली पट्टियों (sticking plaster) से फुफ्फुसावरण के उस अंश को स्थिर कर देना उचित है। यदि पीड़ा अधिक हो तो मालिश के तेल (Liniments)जिनमें धतूरा, बेलाडोना, डकरा (aconite) इत्यादि मिश्रित हो—अथवा पोल्टिस इत्यादि व्यवहार किये जा सकते हैं।

ज्वर। यक्ष्मा जनित ज्वर मुक्तवायु, पूर्ण विश्राम इत्यादि द्वारा ही जाता है। कभी कभी अन्य कारणों से भी ज्वर होता है, जैसे थकावट, उत्तेजना, उदर सम्बन्धी विकृतियाँ इत्यादि रोगी के ताप माप को बढ़ा देते हैं। यदि ज्वर आता हो तो उचित है ताप माप प्रत्येक ४ घंटे पर लिया जाय तथा इसका विश्लेषण कर कारण जानने की चेष्टा की जाय। उदाहरणार्थ यदि थकावट से ज्वर होता हो तो पूर्ण विश्राम देना उचित है। उदर जनित रोगों के लिए आहार में परिवर्तन करना आवश्यक होगा—कभी रेचक औषधियों (विशेष कर एरण्ड-तैल)की एकाध मात्रायें बहुत सहायक होती हैं। अज्ञात-कारण ज्वर कभी कभी जल-चिकित्सा द्वारा हट जाता है।

ज्वर कम करने वाली औषधियां प्रायः भयावह होती हैं। इनका व्यवहार सहसा कर बैठना उचित नहीं है। कुनाइन क्षुद्र मात्राओं में ज्वर कम करने के उद्देश्य से दी जाती है। यदि मलेरिया जनित ज्वर होता हो तो इस से कुछ लाभ हो जाता है अन्यथा यह निरर्थक ही होती है। कभी कभी क्रायोजेनिन (cryogenine) से (५ से १० ग्रेन) कुछ लाभ होता है वा कभी कभी कुचलेके सत (strychnine)-lig strychnine—से ज्वर हट जाता है।

जिस समय यक्ष्मा वास्तविक क्षय का रूप धारण करता है—अर्थात् बहुत जीर्ण अवस्थाओं में—मद्यसार बहुत सहायता करता है। दूध वा अन्य खाद्य पदार्थों के साथ मिलाकर थोड़ी सी ब्राण्डी दी जा सकती है।

यक्ष्मा रोगी बहुधा इतने कमज़ोर होते हैं कि उन्हें अन्य बीमारियां भी सता सकती हैं। मलेरिया तो एक साधारण बात है। चिकित्सक को इनसे सतर्क रहना उचित है।

उदर-विकार (Gastro-intestinal disturbance) उदर सम्बन्धी बहुत से रोग तो मुक्त वायु, विश्राम, उचित आहार इत्यादि द्वारा ही अच्छे हो जाते है, पर कभी २ कोई विशेष लक्षण भी उपस्थित होते हैं जिनके सम्बन्ध में ध्यान देना आवश्यक हो जाता है।

क्षुधा हीनता। यदि साधारण नियमों के पालन से भी क्षुधा जाग्रत नहीं हो तो कुछ कटु-तिक्त (Bitter) औषधियों का व्यवहार करना उचित है (उदाहरणार्थ चिरैते का तरलसार इत्यादि,) अथवा हलके अम्ल दिये जा सकते हैं। कभी २ भोजन के कुछ क्षारीय औषधियोंकी एक मात्रा दे दी जाती है।

पेट का भारीपन।कभी २ उदर के निकट कुछ भारीपन वा कुछ २ पीड़ा ज्ञात होती रहती है। इसको दूर करने के लिए भोजन के पूर्व क्षारीय औषधियों का प्रयोग (जैसे गर्म जल में ५ ग्रेन सैन्धक्म द्विकार्बनेत, अथवा विशदम् कार्बनेत) उचित है अथवा केवल गर्म जल घूंट २ कर पिलाना उचित है। कभी २ यह लक्षण पारदके प्रयोग (grey powder) gr ½ अथवा क्रियोजोट वा एकाध बूंद नैलिन के टिंकचर के व्यवहार से भी दूर हो जाता है।

वमन। यदि यह खांसी की अधिकता से होता हो तो शांतिदायक औषधियों (अफीमिन, कोडेन इत्यादि) के व्यवहार से बन्द हो जाती है। कभी २ उदर स्थानमें सरसोंकी पुल्टिस (mustard plaster) लगाने से भी लाभ होता है। यदि भोर के समय कंठ में उंगली डाल कर वा अन्य किसी प्रकार वमन करा दिया जाय तो भोजन के समय वमन का भ्रम नहीं रह जाता।

अतिसार (Diorhoea) इस लक्षण के बहुत से कारण सम्भव हैं जिन्हें निर्धारित कर लेना बहुत आवश्यक है। दूषित आहार, औषधियों की अधिकता अथवा अन्त्र-यक्ष्मा वा अन्त्रका विगलन इसका कारण हो सकता है।

एरण्ड तैल की एकाध मात्रा कभी २ अन्तस्थ

बहुत से रेचक पदार्थों को दूर कर अतिसार बन्द कर देती है। विशदम् का व्यवहार बहुधा लाभदायक होता है। यदि पीड़ा भी होती हो तो अफोमिन देना उचित होगा।

अतिसार यदि अन्त्र-यक्ष्मा के कारण होता हो तो इसकी चिकित्सा उसी के अनुसार होगी।

रात में पसीना आना। मुक्त वायु द्वारा यह लक्षण एकदम बन्द हो जाता है। यदि इस पर अवस्था नहीं सुधरे तो रोगी के कपड़े एवं बिस्तरे की स्वच्छता, मुलायमियत इत्यादि पर ध्यान देना होगा। रोगी का शरीर भी साफ रहना आवश्यक है।

औषधियों की आवश्यकता बहुत कम होती है, तथापि कभी २ ऐट्रोपिन $\frac{1}{100}$ ग्रेन (Atropine) बेलाडोना का सार $\frac{1}{4}$ ग्रेन (Ext. Belladonna) कर्पूरिकाम्ल (१० से २० ग्रेन) इत्यादि दिये जाते हैं।

अनिद्रा। इसके कारण को जानना आवश्यक होगा। स्वच्छन्द वायु एक प्रधान उपाय है। सोनेके पूर्व गर्म दूध या ऐसाही कोई पेय पदार्थ लेने से भी नींद आ जाती है। उदर विकारों को—कोष्टबद्धता, अतिसार, पेट फूलना इत्यादि—दूर कर देना उचित है। किसी प्रकार की पीड़ा हो तो उसे भी मिटा देना होगा। खांसी बहुत हो तो शांतिदायक औषधियां (अफोमिन, कोडेन इत्यादि) का व्यवहार उचित है। नींद लाने वाली औषधियों में पारल्डेहाइड १ वा १$\frac{1}{2}$ ड्राम, सल्फोनल १५ से २० ग्रेन गर्म जलमें मिला कर (सोने के पूर्व) दिये जा सकते हैं।

रक्तहीनता। इसके लिये संखिया, यकृत-सार (वा कच्चा यकृत), मांस-सार (Ext. of meat) अच्छी वस्तुयें हैं।

यक्ष्मा-स्वास्थ्यालय

उत्पति।

ऐसे तो बहुत से चिकित्सकों ने समय २ पर इस प्रकार की संस्थायें स्थापित करने की चेष्टा की, किन्तु इसके वास्तविक इतिहास का आरम्भ अमेरिका के ट्रूडो (Trudeau) के समयसे होता है। यह चिकित्सक स्वयं यक्ष्मा-ग्रस्त हुआ था तथा उसके समय के प्रमुख डाक्टरों ने उसके बचने की आशा नहीं प्रकट की थी। अस्तु एक दिन वह उठा और एक ऐसे स्थान में चला गया जहां से निकटतम रेल स्टेशन ४० मील की दूरी पर था। ट्रूडो के मित्रोंने समझा था कि वह केवल मरने के लिये वहां गया है। किन्तु वहां उसने लकड़ी की एक झोपड़ी बनवायी और उसी में रहने लगा। स्वच्छ वायु तथा विश्राम का उस पर बहुत अच्छा प्रभाव पड़ा, वह क्रमशः चंगा होने लगा तथा अंत में रोगमुक्त भी हो गया। जब वह घर लौटा तो उसने इस प्रकार की एक संस्था का श्री गणेश किया, जो आज भी जगद्विख्यात है (Trudeaus sanatorium for tuberculosis.)

स्वास्थालयों की चिकित्सा और उसके लाभ।

स्वास्थ्यालयों में प्रायः वही चिकित्सायें की जाती हैं जो अन्यन्त्र अर्थात स्वच्छ जलवायु, पूर्ण-विश्राम, उचित आहार, सूर्य-किरण, सीमित व्यायाम, क्षत-चिकित्सायें इत्यादि।* किन्तु स्वास्थ्यालयों में रोगी कोअधिक लाभ पहुँचने के कई कारण हैं। सर्व प्रथम पूर्ण-विश्राम है, जो घर पर बहुधा नहीं प्राप्त हो सकता। विश्राम के सम्बन्ध में वही बातें यदि सहस्रों बार दुहरायी जांय तो भी अत्युक्ति नहीं हो सकती। यक्ष्मा को सभी चिकित्सायें हो सकती हैं किन्तु यदि यथोचित विश्राम रोगी को नहीं मिला तो ये सभी व्यर्थ सिद्ध होंगी। विश्राम का तात्पर्य केवल शारीरिक ही विश्राम नहीं बल्कि मस्तिष्क का विश्राम भी है। स्वास्थ्यालयों से पृथक रहने पर न तो शारीरिक विश्राम ही मिलता है न मानसिक। रोगी को बहुत समझाया जाता है किन्तु तो भी वह विश्राम का अर्थ समझते हैं "ज़रा

*बंगला के निम्नलिखित पद्य में यक्ष्मा की सारी चिकित्साओं का समावेश है।

मुक्त वायु, स्वच्छ जल, हितपथ्य, रविर किरण।
संयम, विश्राम, शान्ति, श्रेष्ठवैद्य एराई कडजन।

—डाक्टर के० सी० बोस एम० बी०

सा उठना बैठना" या "आवश्यकताओं को पूरी करने के लिए ज़रा सा चलना"; मानसिक विश्राम भी उन्हें नहीं मिलता, स्वभाव से वे चिड़चिड़े हो जाते हैं, । अतः घर की बहुत छोटी छोटी बातें भी उनके मस्तिष्क को उत्तेजित करने के लिए यथेष्ट होती हैं, जिसका शरीर पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ता है।" जहाँ क्रोध और चिन्तायें पत्नी और भय, दुःख और नैराश्य, फैले रहते हैं वहाँ चाहे कितनी परिचर्या वा चिकित्सा क्यों न की जायँ, जलवायु का कितना ही अच्छा परिवर्तन क्यों न हो अथवा शारीरिक विश्राम (रोगी को) चाहे कितना ही क्यों न मिलता रहे किसी से कुछ लाभ नहीं होगा।*" घरों में बहुधा यह भी देखा जाता है कि रोगियों के बहुत से हितू मित्र उनसे सहानुभूति प्रगट करने आते हैं, तथा वे अज्ञान के कारण उनकी चिन्ताओं को उभाड़ जाते हैं। उदाहरणार्थ "बड़े अफसोस की बात है, आप ऐसे सख़्त मर्ज़ में पकड़े गये, फलाने को हुआ था, वह बेचारा ख़ून वमन कर मरा। फलाना सूख कर कांटा हो गया है। आप किनकी दवा करते हैं? कोई अच्छे वैद्य या हकीम को दिखाइये। डाक्टरी इलाज से इसमें कुछ ज्यादा फायदा नहीं पहुँचता।" इत्यादि निरर्थक बातें रोगी को दिन दिन भर सोचते रहने देने के लिए तथा रात को अनिद्रा की अवस्थामें छटपटाते छोड़ देनेके लिए यथेष्ट हैं।" विपक्ष में स्वास्थ्यालयों में उन्हें सुनने में आता है" यक्ष्मा हो गया है तो इससे क्या? मलेरिया तो बहुत लोगों को हो जाता है, वह भी तो रोग है, कुछ लोग उससे मरते भी हैं, किन्तु मलेरियासे इतना कोई डरता क्यों नहीं? यक्ष्मा से भी कुछ लोग मरते हैं। पर बहुत तो अच्छे हो जाते हैं, इससे इतना भयभीत होने का विशेष कारण क्या है? चुपचाप वही करो जो तुम्हें कहा जाता है। तुम भी ज़रूर अच्छे हो जाओगे।" किसी विशेषज्ञ द्वारा दिया गया इतना आश्वासन रोगी को नई आशायें दिलाता है, उन्हें शांति मिलती है और यक्ष्मा युद्ध में विजय प्राप्ति के लिए वह कुछ अग्रसर हो जाते हैं।

वास्तव में रोगी को इस बात की शिक्षा मिल जाती है कि किस प्रकार जीवन यापन करना होगा। और नियमों का कठोरता के साथ पालन उनके दैनिक चर्या का एक अंश स्वरूप हो जाता है और इन स्थानोंसे भी प्रायः वे ही रोगी लाभ उठाते हैं जो चिकित्सकोंके आदेशों का अक्षरशः पालन करते हैं।

चिकित्सा के फल। प्रायः यह देखा गया है कि स्वास्थ्यालयोंमें फुफ्फुस-यक्ष्मा (प्रथमावस्था) के प्रायः ६० से ७० प्रतिशत रोगी रोग-मुक्त हो जाते हैं। अन्य अवयवों के यक्ष्मा के रोगी रोगियों की अवस्था तो और भी आशा जनक होती है। लेसिन के सौर-चिकित्सालयों (Heliotherapeu tic clinics)* में प्राथमिक अवस्थाओंके ८० से ९० °/० रोगी रोग-मुक्त हो जाते हैं। केवल इतना ही नहीं ऐसे रोगी भी जिन्हें पूरा लाभ नहीं प्राप्त हो सका कम से कम पहले से कुछ अच्छे अवश्य हो जाते हैं तथा उनकी जीवन अवधि वर्षों तक बढ़ जाती है।

(इस देश के यक्ष्मा स्वास्थ्यालयों की सूची अन्यत्र दी गयी है।

आत्म-निवेदन

सन् १९२७ की जून मास से श्री प्रो० ब्रजराज जी के आग्रह और प्रो० सालिगराम जी भार्गव के परामर्श से मैंने विज्ञान का सम्पादन करना आरम्भ किया था। मेरे सम्पादन का एक मात्र आशय यही था कि किसी प्रकार विज्ञान का प्रकाशन बराबर होता चले, और आज ६ वर्ष के पश्चात् जब कि मैं इससे अब मुक्त होने जा रहा हूँ, मुझे केवल यही सन्तोष है कि यह अब तक बराबर निकलता अवश्य आरहा

*Dr. kartic chandra Bose M.B.

*ये संस्थायें स्वीट्ज़रलैंड में डाक्टर रोलियर (Dr. Rollier) द्वारा संचालित हो रही हैं।

है। हाँ, कभी कभी विलम्ब से भी निकला है। पर इतने सन्तोष के होते हुए भी मुझे यह विश्वास है कि मेरे सम्पादन काल में इसे क्षति भी बहुत उठानी पड़ी है। इसके प्रेमी पाठकों और ग्राहकों की संख्या उत्तरोत्तर कम ही होती आई। इसका फल यह हुआ कि गत वर्ष से शोचनीय आर्थिकावस्था होने के कारण इसकी पृष्ठ संख्या भी ४८ के स्थान में ३२ करदेनी पड़ी और चित्र संख्या नहीं के बराबर होगई।

इस सब क्षति का कारण मैं तो अपने कोही मानता हूँ, और इस लिये दोषी भी मैं ही हूँ। वस्तुतः मैं अपनी दुर्बलता और विचित्र अभिरुचि के कारण ही विज्ञान को सर्वप्रिय नहीं बना सका। मैं स्वयं तो नीरस हृदय हूँ ही, और अभाग्यवश जिन विषयों में मेरा सम्पर्क रहा है, वे भी नीरस हैं। मेरी लेखन शैली की जटिलता से तो सभी परिचित हैं, और ऐसी परिस्थिति में यह स्वाभाविक ही था कि मेरे सम्पादन काल में विज्ञान में नीरस वैज्ञानिक लेख ही प्रकाशित होते। सर्व प्रिय-विज्ञान में मुझे कभी रुचि नहीं रही है अतः सर्वप्रिय लेख लिखना लिखाना मेरी सामर्थ्य के बाहर था। फलतः इन छ वर्षों के विज्ञान के पृष्ठ ऐसी सामग्री से परिपूर्ण हैं जिन्हें मैं अपनी दृष्टि से आवश्यक तो नहीं कह सकता, प्रत्युत जिन्हें सामान्यतः अरुचिकर अवश्य कहा जा सकता है।

मैं स्वयं रसायन का जिज्ञासु हूँ और जिन योग्य लेखकों के सम्पर्क में मैं प्रयाग विश्वविद्यालय में रहा हूँ वे भी रसायनज्ञ ही हैं। इसीलिये इन ६ वर्षों में विज्ञान में मुख्यतः रासायनिक विषयों पर ही लेख निकल सके। मुझे इस बात का अवश्य गर्व है, कि मेरे विश्वविद्यालय के रसायन विभाग ने बराबर ६ वर्ष सहायता की अन्यथा विज्ञान का सम्पादन मेरे लिये १ वर्ष भी कठिन हो जाता। मेरे जिन वयुक स्नेहियों ने मेरे इस कार्य्य में निस्स्वार्थ सहयोग दिया है उसके लिए मैं क्या कहूँ? इन युवकों में से बहुत से तो उर्दू ही मुख्यतः जानते थे या कुछ ऐसे भी थे जिनकी मातृभाषा बंगाली और मराठी थी। इनके लिए हिन्दी लिखना अति कठिन काम था। वैज्ञानिक लेख हिन्दी में लिखना तो और भी दूर रहा। पर यह मेरा सौभाग्य ही था कि मैं इन प्रेमियों का सहयोग प्राप्त कर सका। उन्होंने मेरी आशातीत सहायता की।

मुझे रसायन विभाग के इन युवकों से विशेष सहायता मिली। १. श्री कुञ्ज बिहारी मोहन लाल, २. स्व० श्री ब्रजबिहारी लाल दीक्षित (अति खेद है कि गत वर्ष अकस्मात् क्षयाक्रमण के कारण आप अपने यौवन में ही काल कवलित हो गये) ३. श्री विष्णु गणेश नाम जोशी ४. श्री जटाशंकर मिश्र ५. श्री हीरालाल दुबे ६. श्री हरकुमार प्रसाद वर्मा ७. श्री वासदेव विट्ठल भागवत ८. श्री आत्माराम ९. श्री सन्तप्रसाद टंडन। इनमें से दीक्षित जी, हीरा लाल जी, भागवत जी और आत्माराम जी ने बराबर ही सहायता की। इनके इस अथक उत्साह के लिए मैं बड़ा ही कृतज्ञ हूँ।

बाहर से विज्ञान को मेरे संपादनकाल में बहुत कम लेख मिले। श्री महावीर प्रसाद जी श्री वास्तव और पं० शकर रावजी जोशी ने पूर्ववत् अवश्य कृपा रखी। इधर दो वर्ष से हजारी बाग़ के श्री डा० कमला प्रसाद जी के यक्ष्मा के सम्बन्ध में अत्यन्त ही उपयोगी लेख प्रवाह रूप से विज्ञान के पृष्ठों में बराबर प्रकाशित होते आ रहे हैं। मेरा विचार है कि यदि कोई धनीमानी प्रकाशक इन लेखों को पुस्ताकाकार प्रकाशित करा दें तो यक्ष्मा ऐसे आवश्यक विषय का बहुत अच्छा ग्रन्थ तैयार हो सकता है।

अस्तु, मेरे समय में अच्छा-बुरा जैसा कुछ विज्ञान निकला सो निकला ही। हर्ष की बात है कि अब इसका सम्पादन विज्ञान के एक प्रकार से जन्मदाता, हिन्दी के लब्ध प्रतिष्ठ प्रेमी सुयोग्य श्री राम दास जी गौड़ के सुकरों में जा रहा है। इसके लोकप्रिय होने में अब कोई सन्देह न रहेगा। आशा है कि हमारे योग्य लेखक और पाठक 'विज्ञान' में पूर्वाधिक रुचि लेंगे।

विनीत—सत्यप्रकाश

वैज्ञानिक पुस्तकें

१—विज्ञान प्रवेशिका भाग १—ले० प्रो० रामदास गौड़, एम. ए., तथा प्रो० सालिग्राम, एम.एस-सी. ।)
२—मिफ़ताह-उल-फ़नून—(वि० प्र० भाग १ का उर्दू भाषान्तर) अनु० प्रो० सैयद मोहम्मद अली नामी, एम. ए. ... ... ।)
३—ताप—ले० प्रो० प्रेमवल्लभ जोषी, एम. ए. तथा श्री विश्वम्भरनाथ श्रीवास्तव ... ॥=)
४—हरारत—(तापका उर्दू भाषान्तर) अनु० प्रो० मेहदी हुसेन नासिरी, एम. ए. ... ।)
५—विज्ञान प्रवेशिका भाग २—ले० अध्यापक महावीर प्रसाद, बी. एस-सी., एल. टी., विशारद १)
६—मनोरंजक रसायन—ले० प्रो० गोपालस्वरूप भार्गव एम. एस-सी. । १॥)
७—सूर्य सिद्धान्त विज्ञान भाष्य—ले० श्री० महावीर प्रसाद श्रीवास्तव, बी. एस-सी., एल. टी., विशारद
- मध्यमाधिकार ... ... ॥=)
- स्पष्टाधिकार ... ... ।॥)
- त्रिप्रश्नाधिकार ... ... १॥)
- चन्द्रग्रहणाधिकारसे ग्रहयुत्यधिकार तक १॥)
- उदयास्ताधिकारसे भूगोलाध्याय तक ॥।)

८—पशुपक्षियोंका शृङ्गार रहस्य—ले० श्र० सालिग्राम वर्मा, एम.ए., बी. एस-सी. ... -)
९—ज़ीनत वहश व तयर—अनु० प्रो० मेहदी-हुसैन नासिरी, एम. ए. ... ... -)
१०—केला—ले० श्री० गङ्गाशङ्कर पचौली =)
११—सुवर्णकारी—ले० श्री० गङ्गाशङ्कर पचौली ।)
१२—गुरुदेवके साथ यात्रा—ले० अध्या० महावीर प्रसाद, बी. एस-सी., एल. टी., विशारद ।=)
१३—शिक्षितोंका स्वास्थ्य व्यतिक्रम—ले० स्वर्गीय पं० गोपाल नारायण सेन सिंह, बी.ए., एल.टी. ।)
१४—चुम्बक—ले० प्रो० सालिग्राम भार्गव, एम. एस-सी. ... ... ।=)
१५—क्षयरोग—ले० डा० त्रिलोकीनाथ वर्मा, बी. एस. सी, एम-बी. बी. एस ... -)
१६—दियासलाई और फ़ास्फ़ोरस—ले० प्रो० रामदास गौड़, एम. ए. ... ... -)
१७—कृत्रिम काष्ठ—ले० श्री० गङ्गाशङ्कर पचौली =)
१८—आलू—ले० श्री० गङ्गाशङ्कर पचौली ... ।)
१९—फसल के शत्रु—ले० श्री० शङ्करराव जोषी ।=)
२०—ज्वर निदान और शुश्रूषा—ले० डा० बी० के० मित्र, एल. एम. एस. ... ।)
२१—कपास और भारतवर्ष—ले० पं० तेज शङ्कर कोचक, बी. ए., एस-सी. ... -)
२२—मनुष्यका आहार—ले० श्री० गोपीनाथ गुप्त वैद्य ... ... १)
२३—वर्षा और वनस्पति—ले० शङ्कर राव जोषी ।)
२४—सुन्दरी मनोरमाकी करुण कथा—अनु० श्री नवनिद्धिराय, एम. ए. ... ... -)॥
२५—वैज्ञानिक परिमाण—ले० डा० निहाल करण सेठी, डी. एस. सी. तथा श्री सत्य-प्रकाश, एम. एस-सी० ... ... १॥)
२६—कार्बनिक रसायन—ले० श्री० सत्य-प्रकाश एम-एस-सी० ... ... २॥)
२७—साधारण रसायन—ले० श्री० सत्यप्रकाश एम० एस-सी० ... ... २॥)
२८—वैज्ञानिक पारिभाषिक शब्द, प्रथम भाग—ले० श्री० सत्यप्रकाश, एम० एस-सी० ... ॥)
२९—बीज ज्यामिति या भुजयुग्म रेखा गणित—ले० श्री० सत्यप्रकाश, एम० एस सी० ... १।)
३०—सर चन्द्रशेखर वेङ्कट रमन—ले० श्री० युधिष्ठिर भार्गव एम० एस-सी० ... =)
३१—समीकरण मीमांसा प्रथम भाग ... १॥)
३२—समीकरण मीमांसा दूसरा भाग—ले० स्वर्गीय श्री पं० सुधाकर द्विवेदी ... ॥=)
३३—केदार बद्रीयात्रा ... ।)

पता—मंत्री विज्ञान परिषत्, प्रयाग।

मुद्रक—शारदा प्रसाद खरे, हिन्दी-साहित्य प्रेस, प्रयाग।

पूर्ण संख्या—२१६
Approved by the Directors of Public Instruction, United Provinces and Central Provinces for use in Schools and Libraries. Reg. No. A. 708.

भाग ३७ VOL. 37.
वृष, संवत् १९९० मई, १९३३
संख्या २ No. 2

प्रयागकी विज्ञान-परिषत्‌का मुखपत्र

'VIJNANA' THE HINDI ORGAN OF THE VIGNANA PARISHAT

ALLAHABAD

सम्पादक

रामदास गौड़

तथा

व्रजराज

प्रकाशक

वार्षिक मूल्य ३)] विज्ञान-परिषत्, प्रयाग। [१ प्रतिका मूल्य ।)

विषय-सूची

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमान भूतानि जायन्ते।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंशिन्तीति ।। तै० उ० ।३।५।।

भाग ३७ } वृष, संवत् १९९० { संख्या २

मंगलाचरण

जय जय वर विज्ञान देव आनन्द विधायक।
जय परिकुशल कुपात्र आसुरी वृत्ति सहायक ।।
जय मद मोह निवारि सुभग सत पथ परिचायक।
जय जय प्रकृति रहस्य खोज विधिके उन्नायक ।।
जय सत्यप्रकाश पसारि जग मंजु मोद मंगलकरन।
मिथ्यान्धकार बिनसाइ सब प्रगति बिघन बाधाहरन ।।

बड़ी पियरी, बनारस शहर। } रामदास गौड़
२४।१।९०

आत्म निवेदन

सुयोग्य सबल और युवा कंधोंसे विज्ञानका संपादन भार अयोग्य दुर्बल और बूढ़े कंधोंपर आपड़ा।

"जब फरिश्तों से न उट्ठा बारे इश्क,
आदमे खाकीके सरपर रख दिया"

खैर, जैसी पड़े परिषत्की आज्ञा इसी आशापर शिरोधार्य्य है कि मित्रगण मेरी परिस्थिति समझ कर अवश्य उचित सहायता करेंगे। एक मुद्दतसे मैं विज्ञान और वैज्ञानिक संसारसे दूर रहता आया हूँ। सम्पर्क छूट जानेसे मेरी जानकारी पुरानी हो गयी है। जिज्ञासा बनी रहनेपर भी उसकी तृप्तिके साधन दुर्लभ हो रहे हैं।

नहिं विद्या नहिं बाहुबल नहिं खर्चनको दाम।
मो सम पतित पतंगकी पति राखैं श्रीराम ।।

फिर भी मुझे पूर्ण आशा है कि इसके अवकाश-ग्राही सम्पादक भरसक विज्ञानके काममें अवश्य सहायता करेंगे कि मेरी अयोग्यता और असामर्थ्यके कारण विज्ञानके परिमाणमें पतन न होने पावे।

बड़ी पियरी, बनारस शहर। } रामदास गौड़
२८ वृष, १९९०

हिन्दू रसायनका इतिहास*

१

वेदोंमें रासायनिक विचार

[ले० प्रोफेसर फूलदेव सहाय वर्म्मा, एम्०एस-सी०, ए० ऐ० ऐ० एस्-सी०]

प्राचीन कालमें रसायनका अध्ययन इस रूपमें, जैसा आज कल हो रहा है, कहीं भी नहीं होता था। उस समय जो उन्नत जातियां इस भूतल पर विद्यमान थीं उनके बीच रासायनिक ज्ञानकी बहुत कुछ वृद्धि हुई थी। जब हम इस वृद्धिके इतिहासकी खोज करते हैं तो मालूम होता है कि इस वृद्धिके प्रधान कारण तीन थे।

उस प्राचीन काल में बहुतसे लोग ऐसे औषधोंकी तैयारी में लगे थे जिनके सेवन करनेसे मनुष्य कभी न मरे। कुछ ऐसे लोग भी थे जो अमरत्वको असम्भव समझ कर ऐसे औषधोंकी खोज में लगे थे जिनसे मनुष्य दीर्घजीवी हो सके और जराके कष्टों से बच सके। इनके उद्योगोंका फल यह हुआ कि अनेक रासायनिक विधियां निकलीं जिनसे रासायनिक ज्ञान बढ़ा। कुछ ऐसे भी व्यक्ति थे जो खनिजों से धातुओंको अलगानेमें लगे थे। इन लोगोंके द्वारा भी अनेक रासानिक विधानोंका अविष्कार हुआ अन्तमें कुछ ऐसे भी व्यक्ति हर युग और हर देशमें मौजूद थे जो लोहा चाँदी आदि हीन धातुओंको बदलकर सोना बना सकनेकी आशा रखते थे। ऐसे लोगोंके उद्योगोंसे भी रासायनिक ज्ञान बहुत कुछ बढ़ा है। पाश्चात्य सभ्य देशोंकी अपेक्षा भारतमें यह बातें अधिक स्पष्ट रूपसे देखी गयीं हैं। सबसे पहले औषधोंकी तैयारीकी कोशिशमें रासायनिक ज्ञानकी यहां बहुत बढ़न्ती हुई थी। पीछे तांत्रिक योगके सहायकके रूपमें इसका बहुत कुछ प्रसार हुआ। केवल औषधोंके प्रयोगसे रोगोंका छूटना सम्भव नहीं समझा जाता था। पर औषधोंके प्रयोगके साथ साथ देवताओंका बीच बिचाव भी आवश्यक समझा जाता था। इस प्रकार हिन्दुओंके प्राचीनतम ग्रन्थ ऋग्वेदमें देवताओंके वैद्य अश्विनीकुमारोंकी प्रार्थना की जाती है जो अंधोंको दृष्टि और लंगड़ोंको चलनेकी शक्ति प्रदान करते हैं। ऋग्वेदके इन दोनों अश्विनीकुमारों और यूनान देशकी देवगाथाओंके देवताओंमें बहुत समानता पायी जाती है। वेदोंमें एक अद्भुत कथा कुमारी विशालाके विषय में है जिसका पैर किसी संघर्षमें कट जानेपर अश्विनी कुमारोंने शीघ्रही लोहेका पैर जोड़ दिया था।

ऋग्वेद्में जिन उच्च देवताओंका उल्लेख है वे प्रधानतः प्राकृतिक साधनों (agencies) के मानव या देवदेहधारी रूप हैं। अग्नि, वायु, सूर्य्य, ऊषा सदृश देवता प्राकृतिक घटनाओंके मानवदेहधारी रूप हैं। इनके साथ साथ कुछ ऐसी ओषधियां और पौधे भी हैं जिनमें प्रबल, शक्तिशाली और सक्रिय गुणोंका समावेश किया गया है। इन ओषधियों और पौधोंको देवताओं का स्थानप्रदान किया गया है और इनकी देवताओंके सदृश प्रार्थना और स्तुति भी होती है।

वेदोंमें सोम पौधेकी बड़ी महिमा गायी गयी है। वेदोंके पूजक इससे प्राप्त सोमरसके पानसे बड़े हर्षवर्धक गुण का अनुभव करते थे। सोमरस अमृतके समान समझा जाने लगा था। इसके पानसे देवताओंको अमरत्व प्राप्त होता था। रोगोंके दूर करनेकी यह एक महौषधि थी। इसके सेवनसे सोमदेव लोगोंको रोगोंसे मुक्त करते थे। आगे चल कर स्पष्ट हो जायगा कि सोमरस और इसके गुणोंसे ही हिन्दू रसायन की नींव पड़ी है।

ऋग्वेद में अन्य पौधोंका भी देवताओंके सदृश आह्वान होता था। इसका एक निम्नलिखित मंत्र तो पूर्ण रूपसे ही ओषधियों की प्रशंसा, विशेषतया उनके नीरोग करनेकी शक्ति, पर लिखा गया है---

---

*यह लेखमाला सर प्रफुल्लचन्द्र रायकी अंग्रेज़ी पुस्तक "हिस्ट्री आफ़ हिन्दू केमिस्ट्री" के आधार पर लिखी जा रही है।

या ओषधीः पूर्व्वा जाता देवेभ्य स्त्रियुगं पुरा ।
मनौ नु बभ्रूणा मह शतं धामानि सप्त च ॥
शतं वो अम्ब धामानि सहस्रमुत वो रुहः ।
अधा शतक्रत्वो यूयमिमं मे अगदं कृत ॥

इसपर सायन की निम्न टिप्पणी है—

याः ओषधयः पूर्व्वाः पुरातन्यः जाता उत्पन्नाः, केभ्यः सकाशात् ? देवेभ्यः, यद्वा देवाः द्योतमानाः ऋतवः, तेभ्यः । कस्मिन् काले ? त्रियुगं त्रिषु युगेषु प्रादुर्भावापेक्षया कृतादियुगत्रयमुक्तं, कलौ तु अत्यन्ताल्पत्वात् उपेक्षितम् । अथवा त्रिषुयुगेषु वसन्ते प्रावृषि शरदि चेत्यर्थः । अहं बभ्रूणां बभ्रुवर्णानां सोमाद्योषधीनां शतं सप्त चा धामानि अनुलेपमार्जनाभिषेकादि रूपेण आश्रय भूतानि स्थानानि नु क्षिप्रं मनौ मन्ये संभावयामीत्यर्थः ।

हे अम्ब मातरः ओषधयः वो युष्माकं धामानि स्थानानि जन्मानि वा शतं अपरिमितानि; उतापि च वो युष्माकं रुहः प्ररोहः प्रोद्गमः सहस्रपरिमितः । अधाऽपि च हे शतक्रत्वः हे शतकर्म्माणः यूयमिमं मे मां मदीयं वा जनं आमयग्रस्तं अगदं गदः रोग तद् रहितं कृत कुरुत ।

अर्थात् हे माताओ ! ओषधियो ! तुम्हारे धाम स्थान जन्म उपयोग सैकड़ों हैं, तुम्हारी जड़ें और शाखा सहस्रोंके प्रमाणमें है, तुम देवताओंके पास पूर्वकालमें पहलेके तीनों युगोंमें उत्पन्न हुई हो। तुमसे सैकड़ों काम निकलते हैं । मैं रोगग्रस्त हूँ। मेरे शरीरको नीरोग करो ।

एक दूसरे मंत्रमें ऐसा लिखा है, "हे वरुण राजा, सैकड़ों और हज़ारों जड़ी-बूटियां तुम्हारी हैं।"

अथर्ववेद में पौधोंका और उद्भिजोंसे उत्पन्न बनावटोंका, रोगोंके दूर करनेमें, सहायक होना स्पष्ट रूपसे स्वीकार किया गया है यद्यपि इनके प्रयोग प्रायः सदाही जादू-टोना और मंत्रोंके प्रयोगसे संबद्ध हैं । इस वेदमें अपामार्ग (चिचिड़ा) नामक पौधेको—जो आज भी आयुर्वेदिक प्रणालीमें महत्वपूर्ण रेचक और मूत्रल औषधि मानी जाती है और जो (di-uretic) के लिये प्रयुक्त होती है—"ओषधियों का अधिष्ठाता" कहा गया है और पौधेको शिरोमणि कह कर आवाहन किया गया है ।

एक दूसरे मंत्रमें सोम पौधेका इस प्रकार उल्लेख है। "इस मनुष्यको पीनेके लिये हम सोम अमृतका रस देते हैं। इसके अतिरिक्त हम ऐसी ओषधियां भी प्रस्तुत करते हैं जिनसे वह १०० वर्ष तक जीवित रह सके।" पुनः "मानव-देहधारी वैद्योंको ओषधिवाले जितने पौधे ज्ञात हैं उन सबोंको निरोग करनेके गुण के साथ मैं तुम्हें देता हूँ।" किसी कृष्णवर्ण के पौधेसे कुष्ट रोग निवारण करनेके लिये यह मंत्र भी प्रयुक्त हुआ है जिसका अनुवाद Macdonell ने इस प्रकार किया है ।

Born in the night art, thou herb !
Dark-coloured, sable, black of hue,
Rich-tinted tinge this leprosy,
And Stain away it shots of grey.

अथर्ववेदमें बालोंकी वृद्धिके लिये एक ओषधिका स्पष्ट रूपसे वर्णन है। यह ओषधि पुराने बालोंको मज़बूत करती और उन्हें घना बनाती है और नये बालों को पैदा करती है ।

वैदिक कालमें पैतृक (?) वर्णव्यवस्था नहीं थी, तथापि वैद्योंका व्यवसाय पर्याप्त ख्याति प्राप्त कर चुका था और भिन्न भिन्न वंशोंके प्रमुख व्यक्तियों के द्वारा इसका सम्पादन होता था। ऋग्वेदमें एक ऋषि उस कालकी स्वाभाविक सरलताके साथ कहता है, "देखो, मैं मंत्रोंका रचयिता हूँ। मेरे पिता वैद्य हैं । मेरी माता चक्की चलाती है। हम सब ही भिन्न भिन्न व्यवसायमें लगे हुए हैं।" दिवोदास सदृश राजकुमार, अंगिरा गोत्रके कवि और नायक सदृश व्यक्ति ओषधियोंका वितरण करते थे और रोगोंके निवारण करनेमें अपनी प्रशंसा समझते थे। एक चतुर वैद्यकी स्पष्ट परिभाषा यह दी गई है कि वह ऐसा व्यक्ति है जो ऐसे स्थानमें निवास करता है जहाँ जड़ी-बूटियाँ प्रचुर मात्रामें ऊगी हुई हैं और जो अपना समय पूर्णरूपसे इन जड़ी-बूटियोंके ज्ञान प्राप्त करनेमें ही लगाता

है। अथर्ववेदमें ही नहीं वरन् ऋग्वेद में भी ऐसी ओषधियों का उल्लेख मिलता है।

अथर्ववेदमें प्रधानतः जादू-टोना इन्द्रजाल और भूतविद्याका वर्णन है। इसमें बहुतसे ऐसे मंत्र हैं जिनकी सहायतासे शत्रुओंको हानि, उनका विनाश और मरण तक सिद्ध किया जा सकता है। इसमें बहुतसे ऐसे वशीकरण मंत्र हैं जिनके द्वारा ओषधियोंके योगसे स्त्रियोंका प्रेम प्राप्त किया जा सकता है। प्रतिद्वंदियों की हानि और विनाश किया जा सकता है। अथर्ववेदमें बहुतसी ऐसी बातें समाविष्ट हैं जो प्राचीन मिश्रदेशवालोंको भी मालूम थीं और जिनसे यूनानवालोंने भी इन बातोंको सीखा था और जानते थे।

अथर्ववेदमें अनेक स्थलोंपर स्वार्थके लिये और दूसरोंको क्षति पहुँचानेके लिये अप्राकृतिक साधनोंकी सहायता ली गई है। इस कारण ऋक्, यजुर् और सामवेदोंके बराबर इसकी पवित्रता नहीं समझी जाती थी। अनेक धर्मग्रन्थों, आपस्तम्भ, विष्णु, याज्ञवल्क और मनुके ग्रन्थों—में तो अथर्ववेद को चतुर्थ वेद ही नहीं माना है और इसमें वर्णित विधियोंका कड़े शब्दोंमें प्रतिरोध किया है।

चूंकि भारतके वैद्यों और उनकी प्रणालीको तंत्र, मंत्र और इन्द्र-जालके प्रभावसे बिलकुल अलग रखना सम्भव नहीं था इससे यह कला हेय समझी जाती थी और इसके प्रवर्त्तकों और व्यावसायियोंका स्थान हिन्दू धर्मग्रन्थों—स्मृतियोंमें—नीचा वर्णन किया गया है। इन ग्रन्थोंके आधार पर ही महाभारतमें वैद्योंको अपवित्र कहा गया है। यह सब होते हुए भी अथर्ववेदका प्रभाव जनतापर बराबर रहा है। इसका कारण यह है कि शत्रुओंपर विजय प्राप्त करने और उनको क्षति पहुँचानेमें लोगोंकी विशेषतया राजाओंकी इसने अमूल्य सेवा की है।

अथर्ववेदमें जो मंत्र रोगोंके निवारण करने और भूतोंके भगानेमें प्रयुक्त हुए हैं उन्हें 'भैषज्वानी' और जो स्वास्थ्य रक्षा और दीर्घ जीवनकेलिये प्रयुक्त हुए हैं उन्हें 'आयुष्मानी' कहते हैं। इस आयुष्मानीसे ही पीछे रसायन शब्दका प्रादुर्भाव हुआ जो मध्य युगमें किमियागरीके लिये व्यवहृत होता था और वर्तमान कालमें अंग्रेजी केमिस्ट्री शब्दके लिये प्रयुक्त होता है। आयुष्मानी मंत्रोंमें से कुछका यहां उल्लेख किया जाता है जिनमें घोंघों मोतियों और स्वर्णकी स्तुति की गई है। इन मंत्रोंसे उन विषयोंके जो ज्ञान उस समय प्राप्त थे उनका बहुत कुछ दिग्दर्शन हो जाता है।

"स्वर्ग में उत्पन्न, समुद्र में उत्पन्न, (सिन्धु) नदी से प्राप्त यह घोंघा, जो स्वर्णसे पैदा हुआ है, जीवन वृद्धि करने वाला कवच है।"

"देवताओंकी अस्थियां मोतियोंमें परिवर्तित हो गईं। ये जीवित हो जल में निवास करते हैं। इन्हें मैं तुम्हें बांधताहूं ताकि इनसे तुम्हें जीवन, प्रकाश, बल और दीर्घजीवन प्राप्त हो, सौ शरत् ऋतुवाला जीवन प्राप्त हो। यह मोतियोंका कवच तुम्हारी रक्षा करे।"

"अमर अग्निसे उत्पन्न स्वर्णको उनलोगोंने मनुष्योंको प्रदान किया। जो इसे जानते हैं वे इसके योग्य हैं। जो इसे धारण करते हैं वे वृद्धावस्थामें मृत्यु को प्राप्त होते हैं।

"सूर्य्यने स्वर्णको सुन्दर रंग प्रदान किया, जिसकी प्राचीन कालके लोगोंने इच्छा की थी। यह जगमगाते हुए तुम्हें प्रकाशमें आवेष्टित रखें। जो इसे धारण करते हैं दीर्घजीवी होते हैं।"

इन मंत्रोंसे स्पष्ट मालूम होता है कि स्वर्ण जीवनका अमृत समझा जाता था। सीसाधातु इन्द्र-जालका निवारण करनेवाला समझा जाता था।

"सीसा को वरुणदेव आशीर्वाद देते हैं। सीसाको अग्नि सहायता देती है। इन्द्रदेवने मुझे सीसा प्रदान किया। निस्सन्देह यह सीसा इन्द्रजालको दूर करने वाला है।"

स्वर्ण और सीसाके संबन्धकी ये बातें अथर्ववेदके कालमें ज्ञात थीं। अतः हिन्दू वैद्योंके लिये अथर्ववेद एक विशेष महत्व रखता है। वास्तवमें वैद्यककी सबसे प्राचीनतम बातें इसी ग्रन्थ अथर्ववेदसे ज्ञात होती हैं।

जीवनका रहस्य

[ले० रामदास गौड़]

सारे संसारके विचारकोंके लिए जीवन एक बड़ा भारी रहस्य है। संसा के सभी धर्मग्रन्थ जीवनके वास्तविक भेदको समझनेकी कोशिश करते आये हैं। परन्तु विज्ञानकी शैलीसे जीवनके रहस्यका अध्ययन बहुत थोड़े कालसे आरम्भ हुआ है। बड़े २ वैज्ञानिकोंने जीवनके सम्बन्धमें अनगिनत प्रयोग किये हैं और आज जीव विज्ञान नामका एक शास्त्र अलग ही बन गया है। इसी शास्त्रके अन्तर्गत पाश्चात्य देशोंका प्रसिद्ध विकास विज्ञान भी है जिसके आधारपर स्पेंसर आदि प्रमुख दार्शनिकोंने दर्शनोंकी नयी पद्धति निकाली है। अन्य वैज्ञानिकोंने समाज विज्ञान, शरीर विज्ञान, आदि अनेक विज्ञानोंकी नींव डाली है और उनका बहुत विस्तृत विकास हुआ है। यह सब होते हुए भी अभी तक यह पता नहीं लगा है कि वह जीवित व्यक्ति चेतना जो "अहम् मम" का अनुभव करती है और जिसका अस्तित्व हालकी खोजोंसे शरीर त्यागके बाद भी प्रमाणित हुआ है, क्या है, और यह कि उस अशरीरी व्यक्तिसे जीवन शक्तिसे क्या और कितना और किस प्रकारका सम्बन्ध है। यह अभी तक जीव विज्ञानका विषय भी नहीं समझा जाता।

जीव विज्ञानके पण्डित प्राणशक्ति नामके किसी विशेष वस्तुकी न तो आवश्यकता समझते हैं और न सम्भावना मानते हैं। उनके निकट बहुत ही विकट संगठनकी विशेष प्रकारकी वस्तुओंके विविध रूपसे प्रकाशका नाम ही जीवन है। उनका कहना है कि यदि हम किसी मनुष्य या मनुष्येतर प्राणीको एक ऐसी कोठरीमें रक्खें जो कलारी मापकके रूपमें बना ली गई हो तो हम उस शरीरसे उपजायी हुई शक्तिको गर्मी और कर्मकी मात्राके रूपमें नाप सकते हैं। प्रयोगकी साधारण मर्य्यादाके भीतर भीतर यह बात मालूम करली गयी है कि जितनी शक्तिकी मात्रा उस शरीरमेंसे निकलती है उतनी ही मात्रा गर्मीके रूप में तब भी निकलती है यदि उसके भोजनको खिलानेके बदले जला दिया जाता। शक्तिकी अविनाशिता यहां भी स्पष्ट है, चाहे वह प्राणी कुत्ता हो या मनुष्य हो और उसी तरह स्पष्ट है जिस तरह आपके इञ्जन या डाइनमोंके विषयमें है। किसी विशेष प्राणशक्तिकी यहां आवश्यकता नहीं है। निर्जीव पदार्थोंमें जो धातुएं और अधातुएं हैं वही धातुएं और अधातुएं सजीवमें भी मौजूद हैं। कोई पदार्थ ऐसा नहीं है जो चेतन वस्तुमें मिलता हो और जड़में न मिलता हो। अधिकांश जीवित पदार्थ करबन, उज्जन, नोषजन और ओषजन इन चार मूल द्रव्योंका बना हुआ है। इनके सिवा लोहा, स्फुर, गंधक, सैंधकम, पांशुजम्, खटिकम, और तैल यह प्राणी मात्रके शरीरमें मौजूद हैं। पहले ऐसा समझा जाता था कि मण्ड, शर्करा, अलबूमेन, यूरिया इत्यादि शरीरसे उपजने वाले विकट संगठनके पदार्थ केवल चेतन शरीरोंके भीतर ही बन सकते हैं। परन्तु लगभग सौ बरसके हुए कि इस तरहकी वस्तुएं भी यंत्रों द्वारा बनाई जा सकीं और अब तो सैकड़ों तरहकी ऐसी शर्कराएं और विविध आंगारिक या कार्बनिक पदार्थ प्रयोगशालामें बनने लगे हैं, जिनके लिए पहले यह धारणा थी कि जीवोंके शरीरके भीतर ही बन सकते हैं और कृत्रिम नहीं बन सकते।

अभी तक कोई ठीक वैज्ञानिक विधि नहीं मालूम हो सकी है जिससे किसी विशेष नापने की क्रियासे हम जड़ और चेतन पदार्थोंमें विभेद कर सकें। वस्तु वही है परन्तु संगठनकी विधि, परमाणुओंका संघटनक्रम भिन्न है। वैज्ञानिक रीति से हम यह पता नहीं लगा सके हैं कि जीवनका वास्तविक मूल क्या है। इतना निष्कर्ष अवश्य ही निकलता है कि जब धरती धीरे २ ठंढी हो रही थीं उसी युगमें ऐसी अवस्था भी उपस्थित हो गयी जिसमें इन्हीं निर्जीव अणुओंके संघातसे सजीव अणु पैदा होगये। वह सजीव इस बातमें थे कि वह अपने जैसे जीवाणु पैदा करनेकी शक्ति रखते थे और बाहरी उत्तेजनाको पाकर प्रतिक्रिया द्वारा उत्तर देसकते थे साथही

उन्होंने विकासकी नीव डाली और उत्तरोत्तर अपने से भी जटिल और विकट संघटनके प्राणियोंको बराबर उत्पन्न करते गये और जो विकासक्रमसे आजकलका प्राणि संसार कहलाता है वह उन्हीं आदि प्राणियोंके विकासका फल है और यह जीवन-विकास मूलरूप से निर्जीव या जड़ पदार्थ-से ही आरम्भ हुआ है।

सूक्ष्मसे सूक्ष्म प्राणियोंपर अब तक असंख्य प्रयोग करके भी विज्ञान यह निश्चय पूर्वक नहीं मालूम कर सका है कि जीवनका वास्तविक तत्त्व क्या है। और किसी विधिसे अभी तक वह इस बातमें सक्षम नहीं हुआ है कि वह स्वयं अपने किसी प्रयोग द्वारा निर्जीव पदार्थोंसे कोई सजीव प्राणी या जीवाणु उत्पन्न कर सके। विज्ञान उत्तरोत्तर वर्द्धमान शास्त्र है। यह नहीं कहा जा सकता कि इस प्रश्नकी आगे क्या स्थिति होगी! अभी हम इतना ही कहेंगे कि इस रहस्यका कि जीवन क्या है अभी तक वैज्ञानिक उद्‌घाटन नहीं हुआ है।

संसार की वर्तमान परिस्थितिमें निर्जीव पदार्थ से सजीव प्राणीका उत्पन्न होना अब तक देखा नहीं गया है। लोगोंका साधारण विश्वास यह ज़रूर रहा है कि सड़ती हुई चीज़ोंसे नये प्राणी पैदा हो जाते हैं। परन्तु यह विश्वास निराधार है जैसा कि सैकड़ों जांचोंसे निश्चित हो चुका है। सड़नेवाली वस्तुको बाहरके प्रभावसे बिल्कुल सुरक्षित रक्खा जाय तो या तो वह नहीं सड़ती और उसमें बिल्कुल विकार नहीं आता, अथवा उसके भीतरी रासायनिक विकारसे ही उसमें परिवर्तन होता है। पास्त्यूर और टिंडल आदिने अनेक परीक्षाओं से यह सिद्ध कर दिया है कि किसी तरहके प्राणी स्वयम्भू नहीं हैं। जिन द्रवोंमें साधारण दशाओंमें दो ही एक दिनोंमें जीवाणुपुञ्ज मर जाते हैं उन्हींको अच्छी तरह खौलाकर रखनेमें एक भी जीवाणु दिखाई न दिया। सूईके छन्नेके द्वारा उन द्रवोंमें शुद्ध-वायुके प्रवेश करने परभी कोई जीवाणु न बना। इसने यह प्रमाणित कर दिया कि जहाँ कहीं स्वयम्भू जीवाणु प्रगट होते देख पड़ते हैं वहाँ अवश्यही अदृश्य बीजोंके रूपमें वायुसे बहाये हुए जीवाणु आकर इकट्ठे हुए हैं। निदान किसी प्राचीन युगमें जिसको सौ करोड़ बरसके लगभग हुए पहले पहल जड़से चेतन प्राणी बने। वह विशेष परिस्थिति थी जो आजसे एक अरब बरस पहले होकर बदल गयी। अब वह परिस्थिति नहीं है। इसलिए अपने आप निर्जीवसे सजीव प्राणी वर्त्तमान कालमें नहीं बनते।

प्रथम पंक

प्रथम पंक जीवनका भौतिक आधार है। अंडज, पिंडज, उद्भिज और स्वेदज सभी तरहके प्राणियोंका जीवित पदार्थ प्रथम पंक है। जब हम अनुवीक्षणयंत्र के द्वारा किसी अत्यंत सूक्ष्म सेलको देखते हैं तो उसमें फेन सदृश या रेशेदार या दानेदार जीवित पदार्थ दिखाई पड़ता है। इसे ही हम प्रथम पंक कहते हैं। चर प्राणियोंके सेलोंमें यह पदार्थ या तो बहुत सूक्ष्म झिल्लीसे घिरा रहता है। या बिना किसी आवरणके कणके रूपमें रहता है। उद्भिजों में छिद्रोजके दृढ़ पर्त्तसे ढँका रहता है। प्रथम पंकमें अलबूमेन, मेद, मद्यसार, लोहा और सैंधकम, पांशुजमें मगनीसियम, और खटिकमके स्फुरेत रहते हैं। यह पदार्थ अर्द्धद्रवसा दीखता है। प्रायः नीरंग होता है। और अत्यन्त विकट संघटन होते हुए भी प्रायः सीधा सादा सा लगता है। अमीबा सरीखे सूक्ष्म-तम जीवाणु इसी जीवित पदार्थके अनावृत और अव्यवच्छिन्न कण हैं। इन अव्यवच्छिन्न कणोंमें के प्रथम पंकमें भी बड़ेसे बड़े प्राणियोंके और नाजुकसे नाजुक अङ्गोंके गुणों और स्वभावोंके मूलरूप मौजूद हैं। पहले तो इसमें पचानेका बल है अर्थात् यह मृत पदार्थोंको जीवाणुमें परिणत कर सकता है और विजातीय द्रव्यको अपने सरीखा बना लेता है। दूसरे बाहरी उत्तेजनासे यह सहजही उत्तेजित हो जाता है। धक्केसे सिकुड़ जाता है। तेज़ रोशनी या गर्मीसे ख़राब होजाता है। कुछ वस्तुओं-को पास आनेपर खींचता है या दूर कर देता है और

बिजलीकी धारासे लाचार होकर एक विशेष दिशामें चलने लगता है। यही प्राथमिक गुण हैं जिनके आधारपर हमारी अद्भुत इन्द्रियाँ बनी हैं। प्रकाश-की जिन तरंगोंसे अमीबाके प्रथम पङ्क में परिवर्तन हो जाता है उन्हीं तरङ्गोंको ग्रहण करनेके लिए इसी गुणके कारण आँखका निर्माण हो सका है। बेतारके तारमें बिजली की इतनी बड़ी तरङ्गे होती हैं कि सूक्ष्म प्रथम पङ्कपर कोई प्रभाव नहीं डाल सकतीं। इसी लिए उनके देखनेके लिए शरीरमें कोई इन्द्रिय नहीं बनी।

अमीबा ओषजनको पचाता है। करवन द्वियोषिद को बाहर निकालता है, चल सकता है, बढ़ता है और अपने सदृश और प्राणी उत्पन्न करता है। प्रथम पङ्क मात्रके यही मूलगुण हैं। और उन्हींके आधारपर विकाश शक्तिने इस जीवित संसारकी रचनाकी है। और अनगिनत जातिके प्राणियोंको पैदा किया है जिनकी संख्या अब तक पूरी नहीं जानी गयी है। वैज्ञानिकों ने लगभग दस लाखका पता लगाया है। हिन्दुओंके साहित्य में चौरासी लाख योनियाँ बतायी जाती हैं।❀

जीवनका व्यक्तित्व या एक-बीज

जितने पदार्थ हैं सभी बहुत छोटे २ कणोंके बने हुए हैं जिनका यदि अधिक विभाजन हो तो उन पदार्थोंके गुणों और धर्मोंमें इतना परिवर्तन हो जाय कि वह पदार्थ विल्कुल भिन्न वस्तु हो जाय। ऐसे प्रत्येक कणको एक वस्तु या वीज कहेंगे। प्राणियोंके शरीरोंकी रचना भी इन्हीं एक वीज या व्यक्तियोंसे हुई है।

यदि हम किसी मनुष्य या जानवरके शरीरका व्यवच्छेद करें तो हम देखेंगे कि उसमें हृदय है, पेट है, मस्तिष्क है, हाथ है, इसी प्रकार सभी अंग हैं जो मिलकर पूरे शरीरको बनाते हैं। प्रत्येक अंग ऐसे अवयवों या कणों का बना हुआ है जिनमेंसे प्रत्येक एक स्वरूप दिखाता है! उदाहरणके लिए, पेटकी ही जाँच करें तो हम देखते हैं कि पेट का भीतरी भाग रस उपजानेवाले अवयवों का बना है। और बाहरी भाग मांसपेशियोंके कणों का बना है। जोड़ने वाले रेशे इसे बांधे और संभाले हुए हैं और इसके भीतर सारे पेटमें रक्तके अवयव घुसे हुए हैं जिनसे रक्तवाहिनियाँ बनी हुई हैं। इसी तरह सारे पेट में फैली हुई नाड़ियों में नाड़ी वाले अवयव भरे हुए हैं। परन्तु एक अनुवीक्षण यंत्रमें हम इन अवयवों को देखते हैं तो जान पड़ता है कि ये एक स्वरूप नहीं हैं। प्रत्येक बहुतसे अलग अलग व्यक्तियों या टुकड़ों का बना हुआ है। इन टुकड़ों या व्यक्तियों को सेल कहते हैं। रक्तमें यह सेल अलग अलग और स्वतन्त्र हैं और अवयवोंमें यह मिले हुए हैं।

बड़ेसे बड़ा प्राणी और मनुष्य भी अकेले एक सेलसे जीवनका आरम्भ करता है। मनुष्य भी एक आहित आहिताण्डसे बना है। यह आहिताण्ड व्यास में $\frac{१}{१२५}$ इंचसे ज्यादा नहीं होता। सेलोंके संख्यामें बढ़ जानेसे, स्थान बदलनेसे, और रूप बदलनेसे इसका विकास होता है। पहले तो डिम्ब कटकर अपने सरीखे गोल गोल या अण्डाकार सेलोंमें विभक्त हो जाता है। फिर भावी भ्रूण का खाका बनाने के लिए सेलोंको तीन पर्त्तें चारों ओरसे घेर लेती हैं। इस खाके पर फिर विस्तार की कार्रवाई होती है और खास खास अंगोंकी रूपरेखा बनती है। बाहरी पर्त्तोंसे भावी मस्तिष्क, पृष्ठवंश, आँख, कान, नाक और बाहरी त्वचाकी नींव पड़ती है। भीतरी पर्त यकृत, प्लीहा आदि ग्रन्थियोंकी रूपरेखा बनाती है। वीचवाली पर्त रक्त संस्थान वृक्कों, मांसपेशियों और कंकाल की रूपरेखा बनाती है। इसीमें जननवाले सेल भी रहते हैं जो शरीरके साधारण अवयवोंसे कुछ भिन्न होते हैं। यह केवल रूपरेखाकी बात हुई। अभी तक इससे अधिक विकास नहीं हुआ है।

❀ बृहद् विष्णुपुराण में चौरासी लाख योनियों में बीस लाख स्थावर, नव लाख जलजन्तु, नव लाख कूर्म्मादि उरग, दस लाख पक्षी, तीस लाख पशु, चार लाख बानर शेष दो लाख में मनुष्य की जातियाँ मानी गयी हैं।

भावी अङ्गोंका उल्लेख मात्र है। क्योंकि जिन सेलोंके यह बने है वह भी प्राय: सब समान हैं और अभी तक भिन्न कार्योंके लिए उनमें विशेषता नहीं आयी है। इसीलिए यह अंग अभी काम नहीं करते।

अब सेलों का गोल या घन रूप बदलने लगा और आगे जिस रूपसे उनमेंसे हर एक काम करने वाला है अब उसी साँचमें ढलने लगा।

*नरसेल या वीर्याणु और मादा सेल या डिम्ब दोन में एक विशेष प्रकारके जीव परमाणु रहते हैं जिनका पारिभाषिक नाम "जनी" है। हालमें (सं० १९८७ में) वैज्ञानिक पादरी गणित के विशेषज्ञ डाक्टर बार्न्सने यह मत प्रकट किया है कि प्राणी जैसा कुछ होता है उसे बनाने वाली, उसकी भावी को निश्चित करने वाली यही "जनी" है। जनीसे जोड़े ने जैसा कुछ शरीर और जीव को बना दिया है, कोई लाख कोशिश करे उससे अधिक कोई प्राणी हो नहीं सकता। परन्तु विशेष प्रकार और विकास की जनी-युग्म को मिलाने वाली सज्ञात शक्ति परमात्मा है।

रक्तके सेल दो तरहके होते हैं। श्वेताणु चञ्चल होता है और अमीबाकी तरह अपने आकार बदल सकता है और विजातीय पदार्थोंको पचा सकता है। रक्ताणु लाल रंगका होता है। जिससे ओषजन और करबनको संयुक्त करनेवाले लौहकण होते हैं जिनके कारण रक्ताणुको रंग होता है। रक्तके जिस रसमें रक्ताणु और श्वेताणु बहते हैं वह असलमें किसी रंग-का नहीं है। उसका लाल रंग रक्ताणु के कारण है। रक्ताणु लम्बी हड्डीकी वसामें पैदा होता है और शरीर-में परिक्रमण करते करते प्लीहामें आकर अन्तमें नष्ट हो जाता है। जब किसी गड्ढे के चारों तरफ चिकने स्तरकी जरूरत होती है तो उसकी सीमा परके सेल चिपटे हो जाते हैं और एक दूसरेमें मिल जाते हैं। जब सेलोंको शरीरकेलिए रस बनाना और देना होता है अर्थात् किसी ग्रन्थिका अंश बन जाना रहता है सेल लम्बे हो जाते हैं और उनके भीतर रसके बिन्दु दिखाई पड़ते हैं। जिन सेलोंमें चर्बीके रूपमें भोजन इकट्ठा किया जाता है वह चर्बीकी कसी हुई बूँदके खालके रूपमें फैल जाते हैं। कंकालके कठोर अवयव भी सेलोंसे बनते हैं। अस्थि कल्पमें अपने चारों ओर गोल सेल लसदार पारदर्शी पदार्थके पर्तके पर्त लपेट लेते हैं और हड्डीमें उसके सेल क्रमसे लग जाते हैं और अपने चारो ओर चूनेके लवणसे कठोर बेठन या आवरण बना लेते हैं। जोड़ने वाले अवयव जिन सेलोंके बनते हैं वह चीतड़े या लसीले सूक्ष्म रेशे के से होते हैं। और यह सब छिटके फटके सेलोंके बीच में आ जानेसे बन जाते हैं। मांस-पेशियाँ भी सेलोंकी बनती हैं। वस्तिकी सेलें बहुत लम्बी होती हैं जिनमें देशान्तर रेखाओंकी सी रेखायें दिखाई पड़ती हैं। हिलाने डुलाने वाली मांसपेशियों-की सेलें बहुत बड़ी होती हैं। इनमें धूप और छायाके से एक पर एक लच्छे से होते हैं जो जल्दी मुड़ने सुकड़ने के लिए उपयुक्त होते हैं। नन्हें कीड़ोंके डैनों-में इनका सबसे अधिक विकास होता है। और इन्हीं-के बलसे इन डैनोंका कल्पनातीत वेगसे कम्पन होता है।

बाहरी चमड़ेकी सेलें बराबर रूसीकी तरह उड़ते और साफ होते रहते हैं। भीतरी चमड़ेकी गोल सेलें संख्या में बढ़ती रहती हैं। और जब वह ऊपरी तल पर पहुँचती हैं तब चिपटी हो जाती हैं और कुछ कड़ी हो कर उड़ जाती हैं। इस तरहपर ऊपरी खाल बराबर बदलती रहती है परन्तु हमें इस बातका पता नहीं लगता। अगर हम किसी अंगपर बराबर पट्टी बाँधे रहें तो कुछ दिनों पीछे उस जगहकी खाल इसी लिए उधड़ उठती है।

मस्तिष्क भी सेलोंका ही बना हुआ है। भ्रूण की दशा में यह गोल होती हैं। इनमेंसे दो दो शाखा निकलती हैं जो बहुत लम्बी हो जाती हैं। फिर उनमें

*आहित-नरजीवाणुके मादा अंडे या डिम्बमें प्रवेश करने का नाम "गर्भाधान" है। जिस अंडेमें नर जीवाणु प्रविष्ट हो चुका होता है उसे आहित कहते हैं। आहिताणु जिसका विकास तुरन्त आरम्भ हो जाता है, "भ्रूण" भी कहलाता है।

भी शाखाओंपर शाखाएं निकलती हैं जो शाखाएं सबसे अन्तमें होती हैं वह बहुत बारीक होती हैं। यह ग्रन्थियों और मांसपेशियोंके सेलोंके साथ अथवा आँख, कान या त्वचाके इन्द्रियग्रामोंसे मिलती हैं। इस तरह नाड़ीकी सेलोंके ताने बाने शरीरके अंग अंगमें फैले हुए हैं जो जीवित बिजली के तारोंका काम करती हैं और एड़ीसे चोटी तक फैली हुई हैं।

मस्तिष्कके अगले भागकी सेलें सबसे अद्भुत हैं उन्हींके द्वारा मन विचार करता है।

अन्तमें उन सेलोंकी कथा आती है जिनसे जनन-क्रिया होती है। यह खास सेलें हैं जो जननेन्द्रियोंमें बनती हैं और जब प्राणी जवान होता है तब ये सेलें स्वतन्त्र हो जाती हैं। आरम्भमें यह गोल हुआ करती हैं और इनका केन्द्र बड़ा हुआ करता है। मादा सेल या डिम्ब गोल हुआ करता है और अपने भीतर भोजनकी सामग्री इकट्ठा करनेके कारण बड़ा भी हो जाता है। परन्तु नरसेल छोटा ही बना रहता है और अन्तमें वीर्याणुका रूप धारण करता है। उसका केन्द्र घना और लम्बा हो जाता है। उसीसे सिर जैसा गोल भाग बनता है और शेष अंश बहुत चञ्चल लम्बी पूछके रूपमें परिणत हो जाता है जिसके सहारे वीर्याणु तैरता रहता है और अन्तमें डिम्ब तक पहुँच जाता है।

इस तरह प्रत्येक शरीर एक एक भारी देश है जिसमें सेल ही सेल आबाद हैं। एक घन सहस्रांश मानव रक्तके भीतर भीतर कोई पचास लाखके लगभग सेलें तैरती रहती हैं। साधारण मनुष्यके शरीरमें लगभग साढ़े तीन सेर रक्त होता है।

इस हिसाबसे शरीरमें केवल रक्ताणुओंकी संख्या पौने दो नीलके लगभग है। इसी तरह और सेलोंकी लगभग संख्या भी निकाली जा सकती है। एक एक शरीर में संख्यातीत सेलें हैं, इतनी सेलें हैं जितनी कि संसारमें समस्त पिण्डजोंकी आबादी भी न होगी। इस विशाल सेलसाम्राज्य में एक छोटा सा विचार करनेसे असंख्य मस्तिष्कसे सेलोंकी सहकारिता होती है। एक अंगुलीके हिलानेमें मांसपेशीके हजारों सेल एक साथ काम करते हैं। हृदय की एक गतिमें खरबों रक्तके सेल रक्त-वाहिनियोंमें बह जाते हैं। विकास करने वाले जीवनकेलिए ऐसी विविध संख्यातीत सेलोंमें प्रतिक्षण पूरी सहकारिताका होना बड़ा ही अद्भुत चमत्कार है। ❀ यदि सेलें बग़ावत करके कोई मांस वृद्धि या बदगोश्त आदि पैदा कर देती हैं तो कोई बड़ी बात नहीं है परन्तु तो भी इनकी बग़ावत इस दर्जेको पहुँचती है कि सारा सेल साम्राज्य एक दिन कालके गालमें चला जाता है, सारे शरीरकी मृत्यु हो जाती है। शायद प्रकृति इस बग़ावतमें भी भावी विकासका साधन रखती है। इस भूलसे भी चेतन सेल शिक्षा पाती है।

———

जंगलोंकी उपयोगिता

[ले० बा० बृजबिहारीलाल गौड़]

कई नदियोंकी तलेटी पूर्वकी अपेक्षा दिनपर दिन नीची होती चली जारही है। कूओंकी खात बढ़ती चली जारही है। नदीके किनारे निचुड़ते चले जारहे हैं, और क्रमशः पैदावार भी घटती चली जारही है। ऐसा क्यों होरहा है ? क्या कभी आपने इस विषय पर भी विचार किया है ? पहलेकी अपेक्षा वर्षा भी कम होरही है। आखिर प्रकृतिमें इतना परिवर्तन क्यों ? साधारण मनुष्योंको इन बातोंकी क्या ख़बर। उन्हें क्या मालूम कि प्रकृतिके विरुद्ध किये गये किस पापका इतना भयंकर परिणाम सर्वसाधारणको भोगना पड़ रहा है। उनका हरा भरा भारतवर्ष किस प्रकार मरुस्थल बन रहा है और यदि इस ओर

❀ हर सजीव पिण्ड में, चींटीसे लेकर हाथी तक में, इसी तरह का अद्भुत संगठन और सहकार है। जो पिण्ड में है वही ब्रह्माण्डमें भी है। इस अद्भुत संगठनका नियमन करने वाला कौन है ?

उचित ध्यान न दिया गया तो उनका प्यारा देश किस प्रकार बेबीलोनकी दशाको शीघ्रही प्राप्त होनेवाला है। जिस समय हम दियासलाई जलाकर सिगरेट पीते हैं, जिस समय पंजाबमेलपर चढ़कर सफर करते हैं, जिस समय सवाक्-चित्रपटका आनन्द लूटते हैं, जिस समय ग्रामोफोनपर रेकार्ड चढ़ाकर गाना सुनते हैं, क्या उस समय कभी हमारे हृदयमें यह भी विचार उठता है कि हम प्रकृतिके साथ कितना अन्याय कर रहे हैं, उसके बने बनाये खेलको किस प्रकार बिगाड़ रहे हैं। यदि इन बातोंका ख्याल नहीं आता तो इससे अधिक क्या कहा जाय कि यह देशका दुर्भाग्य है।

सुनिये, इन सब विपत्तियोंका मूल कारण है—जंगलोंका विनाश। गाँव, शहर, सीवान, जङ्गल और पहाड़ सभी जगहोंसे वृक्ष कटते चले जा रहे हैं। एक बार जहाँसे पेड़ अथवा जङ्गल कट गया वहाँ फिर लगनेकी नौबत न आयी। एक ओर लोग वृक्ष लगाना बिल्कुल भूल गये और दूसरी ओर वर्तमान सभ्यताने लकड़ीका खर्च इतना बढ़ा दिया कि ईश्वर ही रक्षा करे। हर, जूआ धुरई, बल्ला, फरही, गंड़ारी, हेंगा, जलावन तथा अन्य कृषि सम्बन्धी कामोंके लिये तो नित्य लकड़ीकी ज़रूरत पड़ती ही थी पर इधर सभ्यताने कागज़, कलम, पेंसिल, दियासलाई, रेल, जहाज़, हारमोनियम, ग्रामोफोन और सेनिमाके खर्चको भी जोड़ दिया। कहनेका तात्पर्य यह कि खर्च बढ़ गया पर उपजका कोई प्रबन्ध नहीं हुआ। फिर जङ्गल क्यों न उजाड़ हो। जङ्गल बेचारे अहिंसाव्रतधारी ठहरे। वह तो स्वयं कुछ नहीं बोलते पर ऊपर किये अत्याचारका परिणाम स्पष्ट है जिसे कोई भी विज्ञ मनुष्य अस्वीकार नहीं कर सकता।

जङ्गलोंका बहुत बड़ा सम्बन्ध जलवृष्टिसे है। जङ्गल करोड़ों मन जल पृथ्वीसे सोखकर जलवाष्प की वृद्धि किया करते हैं और जब बारिशवाली हवा सागरसे चलकर बरसते बरसते जङ्गलोंके पास पहुँचती है तो वहाँकी हवा और जगहोंकी हवाको अपेक्षा अधिक नम रहनेके कारण बारिशवाली हवाको विशेष नम कर देती है, जिससे बारिश अच्छी और दूर तक होती है। निथरे हुए मानसूनमें पुनः जल वाष्प भर जाता है और बारिश उत्तरोत्तर बढ़ती चली जाती है। जङ्गलोंके न रहनेसे वर्षा ठिकानेसे नहीं होती। वर्षाकेलिये जङ्गल उतना ही ज़रूरी है जितना कि समुद्र।

समुद्रकी तरह जङ्गलको भी यदि पानीका भण्डार कहें तो कोई अत्युक्ति न होगी। नदियोंके उद्गमोंके पास जङ्गलका रहना बहुत ही आवश्यक है। जङ्गलके कारण वर्षाका जल शीघ्रतासे बह नहीं जाता। जङ्गल अपनी छाया, जड़ और नीचे पड़ी रहनेवाली पत्तियों द्वारा पानीको रोक रखता है सोखता रहता है और धीरे धीरे आवश्यकतानुसार नदियों द्वारा देशको दिया करता है। जङ्गलोंके न रहनेसे नदियोंमें यकायक बाढ़ आजाती है जिससे किनारे कट जाते हैं, तली नीची हो जाती है, कितने गाँव बरबाद होजाते हैं, वर्षाका सारा जल बहकर समुद्रमें जा पहुँचता है और सिंचाईके समय नदियाँ प्रायः जलशून्य सी दिखाई पड़ती हैं। बहुतसी नदियाँ बिल्कुल सूख जाती हैं और बहुतोंका रास्ता ही बदल जाता है। पानी बरसने पर भर आयीं और चार घंटेमें फिर खाली होगयीं।

भूगोलका साधारण विद्यार्थी भी इस बातको भली भांति जानता है कि कूआँ खोदनेसे जो जल प्राप्त होता है वह जल वर्षाका ही होता है। वर्षाका जल रसरस कर पृथ्वीके भीतर सोतों और चश्मोंके रूपमें बहा करता है और वही जल हमें कूएँ और तालाब खोदनेसे प्राप्त होता है। यह भी याद रहे कि पृथ्वी वृक्षहीन होनेसे कठोर हो जाती है। ऐसी भूमिमें वर्षाका जल ७ इञ्च से अधिक नहीं समसता। यही कारण है कि ऐसे स्थानोंमें या तो पानी निकलता ही नहीं और यदि निकला भी तो बड़ी खोदाईके बाद और यह पानी भी किसी दूरस्थित जङ्गलके कारण ही प्राप्त होता है। यदि सारा देश वृक्षहीन कर दिया

जाय तो कुछ दिनों बाद पृथ्वीके भीतरके सभी सोते सूख जायँ और कहीं भी पानी न निकले। बाढ़ और कटावके कारण नदीकी तलेटी नीची होजाती है जिसके कारण कूओंका सोता भी नीचे खिंच जाता है, और कूएँ सूख जाते हैं। यदि इन बातों पर विचार किया जाय तो यह जानना कठिन नहीं है कि जङ्गल हमारे लिये कितने उपयोगी हैं।

नदियोंके किनारोंपर वृक्षोंके न रहनेसे जब ऊँचे धरातलसे पानी नीचेको गिरता है तो किनारोंके किनारे कट जाते हैं, कटनेसे खड्ड बन जाता है और यह खड्ड बढ़ते बढ़ते मैदानमें बहुत दूर तक पहुँच जाते हैं। और पृथ्वीके बहुत बड़े हिस्सेको बेकार कर देते हैं। ऐसे स्थानोंमें लोगोंको पानीका बहुत बड़ा कष्ट उठाना पड़ता है। सूखेके दिनोंमें तो गाँव तक छोड़ने की नौबत आ जाती है। भारत में ऐसी ज़मीनों का क्षेत्रफल क्रमशः बढ़ता ही चला जा रहा है। ऐसी जगहमें न तो कुआ ही बन सकता, न तो नहर ही टिक सकती और न तो कोई बांध ही ठहर सकता।

इन्हीं बातोंको ध्यानमें रखते हुए भारतीय शास्त्रोंमें पेड़ोंका लगाना पुण्यका काम माना गया है। वृक्षोंमें भी जान है। उनका भी मनुष्य की तरह संस्कार किया जाता है। हर्ष, भय, शोक उन्हें भी होता है। उनको किस प्रकार लगाना चाहिए। कैसे काटना चाहिए। कौन वृक्ष कट सकता है कौन नहीं कट सकता। यदि काटना ही पड़े तो उसका क्या प्रायश्चित है। इन सब बातों पर भारतीय शास्त्रकारों ने बहुत अच्छी विचार किया है और उसीके आधार-पर अब तक भारतवासी व्यवहार करते आये हैं। परन्तु खेदका विषय है कि आधुनिक सभ्यताके मदमें हम लोग इतने बावले हो गये हैं कि पुराने विचारोंपर ध्यान ही नहीं देते और यही कारण है कि हम सदा दुख झेला करते हैं।

भारतका प्राचीन मत है कि एक वृक्षके काटने का पातक तब तक नहीं मिटता जब तक वह दस वृक्ष न लगावे। ऐसा इस लिए कहा गया है कि जो वृक्ष काटा जाता है वह बहुत पुराना होता है। अतएव उसके कट जानेसे जो क्षति देशको होती है वह दस नवीन वृक्षोंके लगाने ही से पूर्ण हो सकती है। दस नवीन वृक्षोंका औसत लाभ एक पुराने वृक्षके बराबर आंका गया है। मकान बनवानेके साथ बागका लगाना और कुएँका खोदवाना भी ज़रूरी था क्योंकि बिना बाग लगाये मकानकेलिए काटे हुए वृक्षोंकी पूर्ति नहीं होती। इसके उपरांत भी अनेक प्रकारकी पूजा पाठ यज्ञ हवन करना पड़ता था ताकि किये हुए पापोंका पूर्णतः प्रायश्चित होजाय। पीपलका वृक्ष काटना पाप समझा गया है, बटकी स्त्रियां पूजा करती हैं, आमको पुत्रवत् मानते हैं, अशोकको पवित्र गिना गया है, कार्तिक मासमें आंवलेके नीचे भोजन करना शुभ माना गया है, बेर तो शंकर बाबाका भोजनही ठहरा। यदि विचारसे देखा जायतो यह बात साफ साफ समझ में आजाती है कि हमारे प्राचीन ऋषि कितने ऊँचे दरजे के वैज्ञानिक थे। और वह वृक्षोंके महत्वको कितना अधिक समझते थे।

बड़े बड़े जङ्गलोंपर तो इस समय अपना कोई अधिकार नहीं कि उसका समुचित प्रबन्ध कर सकें। जहाँ अपना अधिकार है यदि वहीं के वृक्षों की विधिवत् रक्षाकरें और उपयुक्त स्थानपर नये नये पेड़ लगावें तो काफी लाभ उठा सकते हैं। वृक्षोंकी कमीके कारण जलावनका अधिकांश भार गोबर ही पर पड़ता है। देशके आठ महीनेका गोबर जलावनमें चला जाता है। गोबर ही हमारे देशकी मुख्य खाद ठहरी। अतएव पेड़ोंकी कमीके कारण खेतीमें भी हमें भारी घाटा उठाना पड़ता है। गोबरकी रक्षा, खेतकी रक्षा, पशुकी रक्षा करनेके लिए पेड़ोंकी संख्या बढ़ानी पड़ेगी। जो ज़मीन कृषि और चरागाह दोनों के लिए उपयुक्त हो वहाँ सागौन, साखू, शीशम, बबूल, नीम और पलासके जङ्गल लगादिये जायँ। जङ्गल लगाकर नदियोंका किनारा भी बाँध देना चाहिए ताकि खेतोंकी मिट्टी बहावके साथ नदियोंमें न खिंच जाय, खड्ड न पैदा हो, किनारे

न कटें और बाढ़से गावोंकी रक्षा हो। कुछ दिनों बाद लगाये हुये जङ्गलों से काफी आमदनी भी हो सकती है और ज़मीन की बढ़ती हुई ख़राबी भी रुक जानेकी सम्भावना है। यदि बबूल ही की पैदावार अच्छी और घनी हुई तो केवल उसके छाल ही से अच्छी आमदनी होसकती है। ज़मींदारों और काश्तकारोंको उचित है कि अपने अपने गावोंमें इस प्रकारका सुधार स्वयं करें और दूसरोंसे करवावें। उचित तो यह है कि सारी ज़मीन असामियोंको जङ्गल लगानेकेलिए देदें और ऐसे लगे हुये जङ्गलोंको गाँवकी सार्वजनिक सम्पत्ति करारदें, जिससे सब कोई समान लाभ उठावें पर किसीको उसे नष्ट करने का अधिकार न हो। ज़मींदार उसकी उदारतापूर्वक रक्षा करे। क्या हमारे देशवासी इस विषय की ओर ध्यान देंगे। याद रखिये भूमिके वन्य वस्त्रोंके हरण करने का परिणाम द्रौपदी चीरहरणसे भी भयङ्कर है।

———

हमारे अनावश्यक अंग

[ले० रामदास गौड़]

मानव शरीरमें कई अंग ऐसे हैं जिनकी आवश्यकता किसी और योनि में थी परन्तु अब नहीं रही। ऐसा जान पड़ता है कि मनुष्य शरीरकी तैय्यारीके लिए प्रकृति करोड़ों बरस तक भिन्न भिन्न ठठरियोंपर अपना हाथ साफ करती रही है। और लगभग एक करोड़ बरस हुए कि उसने मनुष्यका शरीर बना पाया है। शायद यही कारण है कि मानव शरीरके भीतर अबतक कई अंग वा अंगोंके अंश ऐसे रह गये हैं जिन्हें प्राचीन नमूनोंके चित्र मात्र समझना चाहिए और वर्तमान शरीर में वास्तव में जिनकी कोई आवश्यकता नहीं है। प्रकृति ने मनुष्य के शरीरसे धीरे धीरे अनावश्यक अंगों को दूर किया है और अब भी दूर करती जा रही है।

जन्मके पहले बच्चेका सारा शरीर बारीक बालोंसे ढका रहता है और प्रौढ़ मनुष्योंमें सिर और मोंछ दाढ़ी आदिके सिवा जो सौन्दर्यकेलिए आवश्यक हैं सारे शरीर में जो रोएँ हैं उनकी तो कोई आवश्यकता नहीं है। इनकी आवश्यकता सभी प्राणियोंको उस ज़मानेमें थी जब इस धरती पर हिम प्रलय था। यह उसी समयकी निशानी मालूम होती है। हमारे सिरके दाहने बायें बग़ल अस्थिकल्पके जो टुकड़े वास्तविक कानके ऊपर लगे हुए हैं और जिन्हें हम कान कहते हैं वह असलमें सुननेमें कोई मदद नहीं देते। घोड़ेके कान नोकदार होते हैं। जब उसे सुनना मंजूर होता है तब वह शब्द तरंगोंको कनौतियाँ उठाकर अपने श्रवणेन्द्रियमें प्रवेश कराता है। हमारे कानोंको भी हिलानेकेलिए सात मांसपेशियाँ अब भी हैं तो भी कोई इक्का दुक्का ही उनमेंसे एक दोको काममें ला सकता है। इसीलिए यह कान हमारे शरीरके विकासकी पुरानी कहानी कहनेको रह गये हैं। आंखके भीतरी कोनेमें जो ज़रासा मांसका बढ़ा हुआ टुकड़ा दिखाई पड़ता है वह भी अत्यन्त प्राचीन विकासकी कहानी कहता है। आज उसकी कोई जरूरत नहीं है। पिंजड़ेके सुग्गेको देखा गया है कि कभी कभी वह अपनी आंखके कोयों पर एक सफेद झिल्ली फेर लेता है। हमारी आंखका वह मांस का टुकड़ा यही सुकड़ी हुई चीज़ है। पहले इससे आंखकी धूल झाड़ी जाती थी। अब उससे भी अच्छा बन्दोबस्त मौजूद होनेके कारण उसका लोप हो रहा है। प्रायः और सभी पिंडजोंकी आंखोंमें यह तीसरी परत पूर्ण रूपमें विकसित होती है।

जीवित उरगोंकी शरीरकी परीक्षासे और प्राचीन ठठरियोंको देखनेसे भी पता चलता है कि ऐसे भी प्राणी थे जिनके सिर में बीचो बीच तीसरी आंख हुआ करती थी। आज कल भी उरगोंको यह तीसरी आंख होती है, पर वह एक चमड़े से ढकी रहती है और काममें न आनेके कारण वह धीरे धीरे नष्ट हो रही है। पक्षियों और पिण्डजोंमें यह और गहरे घुस गयी है और ज्यादा ख़राब हो

गयी है। मनुष्यमें यह तीसरी आँख और भी छोटा अंग बन गयी है और मस्तिष्कके बीचोबीचसे निकली जान पड़ती है। यह तो निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता कि इसका कोई काम नहीं है। यह अंग रहस्यमय है परन्तु तो भी करोड़ों बरस पहलेकी तीसरी आँखसे इसका सम्बन्ध मिलता है।

मनुष्यके दाहिनी ओर पेड़ू में जहां छोटी बड़ी आंतों का जोड़ है, ठीक उसी जगह लगभग छः अंगुल लम्बी अन्धान्त्र है जो अन्धी गलीकी तरह बन्द है, और रोग और पीड़ाका स्थान होनेके कारण बदनाम है! आजकल लाखों आदमियोंने इसे कटवा कर निकलवा दिया है परन्तु उन्हें कोई हानि नहीं पहुँची है। यह भी प्राचीन शाकाहारी पिण्डजोंके एक विशेष प्रकारकी निशानी रह गयी है।

मनुष्यकी रीढ़की हड्डीके अन्तमें वस्तिके पास एक हड्डी है जिसे पुच्छास्थि कहते हैं? यह किसी प्राचीन युगकी पूँछकी निशानी है। कभी कभी बच्चा पैदा होता है तो वह अंश पूँछकी तरह निकला सा भी होता है? और वह हिला भी सकते हैं। इस तरहके दो नहीं, गिनकर पूरे एक सौ सात अंग और अंगांश मनुष्यके शरीरमें हैं "जिन्हें" प्राचीन काल का चिह्न मात्र समझना चाहिए और जिनकी कोई उपयोगिता अभी तक जाननेमें नहीं आयी है।

हिन्दी व्याकरणका सुधार

[हिन्दी प्रचारक मद्रासके दशाब्दि अंक अपरैल १९३३ में प्रकाशित श्री एम० वी० जम्बुनाथन, एम० ए०, बी० एस-सी० का लेख]

दक्षिण भारतमें हिन्दी प्रचारके कई भिन्न भिन्न पहलू हमारे सामने उपस्थित हैं और उनमेंसे हिन्दी व्याकरणका सुधार व लघुकरण अधिक महत्वपूर्ण है क्योंकि यह दक्षिण भारत तक ही सीमित नहीं है बल्कि इसकी व्याप्ति उत्तर भारतके अहिन्दी प्रान्तों तक को भी है।

दक्षिण भारत हिन्दी प्रचारक सम्मेलनके ई० १९३१ के अधिवेशनमें हिन्दी व्याकरणको आसान बनानेके बारेमें मैंने एक प्रस्ताव पेश किया था, जो कुछ संशोधनके बाद इस रूपमें पास हुआ "हिन्दी शिक्षाको और भी सुलभ बनानेके लिये यह सम्मेलन हिन्दी व्याकरणको एक सरल रूप देनेकी बड़ी आवश्यकता समझता है, और यह सम्मेलन प्रस्ताव करता है कि हिन्दी प्रचारकी दृष्टिसे व्याकरणके वर्तमान रूपमें क्या क्या परिवर्तन होना चाहिये यह उत्तर हिन्दुस्तानके हिन्दी विद्वानों और हिन्दी साहित्य संस्थाओंके सामने रखने तथा इस संबन्धमें अन्य आवश्यक कारवाई करनेका कार्य श्री० एम० वी० जम्बुनाथन तथा अवधनन्दन को सौंपा जाय।"

यह देखकर मुझे एक साथ सन्तोष और आश्चर्य हुआ कि जिन प्रचारकोंकी मातृ-भाषा हिन्दी थी वे भी व्याकरणके इस लघुकरणके पक्षमें थे। १९३२-वीं ई०के अधिवेशनमें भी यह प्रस्ताव दुहराया गया। इससे यह बात खूब साबित होती है कि दक्षिण भारतवासियों के लिये *वर्तमान हिन्दी व्याकरण **बहुत कठिन है, अर्थात् हिन्दीके प्रयोग, मुहावरे आदि इतने अनूठे और पेचीले होते हैं कि उनको समझने और ठीक ठीक इस्तेमाल करने में बहुत तकलीफ उठानी पड़ती है।**

अपने मनके भावोंको प्रकट करने और विवेचना करनेका साधन बननाही भाषाका काम है। इस साधनकी प्राप्तिके लिये यदि हमें अधिक समय और

* व्याकरणका अधिकार शब्दों और वाक्योंके रूप और उनके विन्यासपर होता है। प्रयोगके नियम व्याकरण बनाते हैं। परन्तु मुहावरे उन्हें कहते हैं जिनपर नियम नहीं लगते बल्कि उनके प्रयोक्ता ही शुद्धयशुद्धिके लिये प्रमाण होते हैं। मुहावरे वैयाकरणके बसकी चीज़ नहीं हैं। यह तो प्रत्येक भाषाका अनिवार्य दोष है और हिन्दी इससे बच नहीं सकती। उसके बोलने वाले जितने ही अधिक होंगे उतनाही यह दोष बढ़ेगा। इससे बचनेका कोई उपाय अबतक मालूम भी नहीं है।—रा० गौ०

शक्ति लगाना पड़े, तो सोचने और विचारनेकेलिए कम समय और शक्ति रह जायगी। इस वजहसे किसीभी भाषाके सीखनेकेलिये समय और परिश्रमकी जितनी कम जरूरत पड़े उतना ही उत्तम है। और भी एक बात भावी भारतके हर एक प्रान्तमें उसी प्रान्तकी भाषा इस्तेमालकी जायगी और अन्तर्प्रान्तीय व्यवहार और भावोंके आदान-प्रदान तथा अखिल भारतीय शासक सभा आदिकी कार्रवाई हिन्दी में होगी। इसलिये [1]जिनकी मातृभाषा हिन्दी नहीं है उन लोगोंको तो कमसे कम दो भाषाएँ सीखनी पड़ती हैं। यह अहिंदी भाषा भाषियों के लिये एक तरहकी खास असुविधा है। इस रुकावटको दूर करनेमें हम भलेही असमर्थ हो सकते हैं, पर उसे हलका तो जरूर बना सकते हैं, याने हिन्दीको ऐसा एक सरल रूप दे सकते हैं, जिससे सर्व साधारण लोगभी उसे आसानीसे सीख सकें। औरोंकी कठिनाइयोंको जानकर, इन कठिनाइयोंको दूर करनेमें हिन्दी भाषा भाषियों की सहानुभूति और मदद दरकार है। [2]अपनी भाषा राष्ट्रभाषा बन जाने से उसकी प्रतिष्ठा बढ़ गयी, इस बात पर घमंड करतेहुए उनको अन्धा न बनना चाहिये। अन्य भाषा भाषियों की सुविधाकी दृष्टि से हिन्दी व्याकरणके नियमोंको कुछ ढीला पड़ने देने और उनकी सर्व साधारण गलतियों को तरह देनेकी बड़ी आवश्यकता है। इसी बारे में श्री० काका कालेलकर ने एक जगह कहा है—

"जिनकी मातृभाषा हिन्दी है उनसे हम एक प्रार्थना करेंगे। राष्ट्रहितकी दृष्टिसे और अपना स्वार्थ समझ कर भी आपको एक दम आसान हिन्दीका ही व्यवहार करना चाहिये। हम अपने अपने प्रान्तके मुहावरे और कहावतें हिन्दीमें दाखिल करेंगे। आपको वह मंजूर करना होगा। फ्रेंच भाषा जब यूरोप की सर्वमान्य भाषा हुई तब फ्रेंच लोगोंने सभोंके सुभीतेके लिये अपना व्याकरण भी कुछ आसान कर दिया, सार्वत्रिक गलतियों को मान्यता दी। [3]आपको भी हिन्दीका व्याकरण

१—अन्तर्प्रान्तीय और अन्ताराष्ट्रिय व्यवहारों में अपनी मातृभाषाको छोड़कर किसी अन्तर्प्रान्तीय या अन्ताराष्ट्रिय माध्यमका जानना तो अनिवार्य्य है ही। सौभाग्यसे जिस प्रान्त या राष्ट्रकी भाषा यह पद भोग करेगी, उसके बोलने वालोंको सुभीता जरूर होगा। इसीलिए अधिक जन-समादृत भाषा ही स्वभावतः यह पद पाती है। परन्तु ऐसी दूसरी भाषा सीखनेको लाचार होना जहां अपेक्षाकृत असुविधा है, वहां कई बातों में सुभीता भी है। फिर भी सीखनेवालोंकी कठिनाइयोंको घटाना सबका कर्त्तव्य है। —रा० गौ०

२—हिन्दी भाषा राष्ट्रभाषा बन गयी तो इसका एहसान हिन्दी भाषियों पर विशेष रूपसे हुआ, यह बात भी हमारी समझमें नहीं आती। यह तो हिन्दी भाषियों और अहिन्दी-भाषियों दोनोंके सुभीतेकी बात हुई। इस पर घमंड करना मूर्खता है। उसकी प्रतिष्ठा बढ़ जानेसे तो हमारी जिम्मेदारी बढ़ गयी। और हमारी असपत्न ऋद्धि छिन गयी। और प्रान्तवालोंको सुभीता देनेके लिये हमें अपनी मातृभाषाको उनकी दृष्टिसे आसान करना पड़ा। उसके ऊपर अनजाने प्रहार सहने पड़े, और सैयद मीरतकी मीरके शब्दों में अपनी जुबानको बिगाड़ना पड़ा, उसका ख़ून करना पड़ा। घमंडके मारे अन्धा होना इसे नहीं कहते। हमतो सदा अन्य प्रांतके हिंदी भाषियोंकी गलतियों को तरह देते आये। पंजाबी पानीको "पाणी" कहता है, बंगाली स्त्रियोंकी जगह "स्त्री लोग" कहता है, मध्य प्रान्तीय "मँगाने" की जगह "बुलवाता" है, इत्यादि हम खुशीसे सहते हैं, कभी इन प्रयोगों पर झगड़ा होते नहीं सुना।—रा० गौ०

३—हिन्दीका व्याकरण जितना लचीला है उससे भी अधिक लचीला उसके प्रयोग करनेवाले उसे बराबर बनाते जाते हैं। हिन्दीके प्रमुख लेखकोंने बड़ी आजादीसे और भाषाओंके मुहावरे अपनाये हैं और कहावतें ले ली हैं। आज भी यही सिलसिला जारी है। हम तेलगू, तामिल, कन्नड़, केरली जानते तो इनसे भी मुहावरे और कहावतें

इसी तरहसे लचीला रखना होगा।"

इसी विषयकी चर्चा करते हुए, दक्षिण भारतके आदि हिन्दी प्रचारक श्रीयुत देवदास गांधीजीने अपनी राय यों दी है—

"मेरा यह दृढ़ अभिप्राय है कि अगर हम हिन्दी भाषाका हिन्दुस्थान भरमें, खासकर दक्षिणमें, विस्तृत प्रचार पूर्ण रूपसे सफल करना चाहते हैं तो हिन्दी भाषाके व्याकरणके कतिपय नियमों में कुछ सुधार किया जाना नितांत आवश्यक है। **अप्राणिवाचकोंके पुंल्लिंग तथा स्त्रीलिंग दो विभाग निकाल देने चाहिए। भूतकालमें सकर्मक क्रियाके साथ 'ने' का प्रयोग, जो भाषाके सीखने वालोंके रास्तेमें इधर बड़ी अड़चन डालता है निकाल दिया जाय तो बड़ा फ़ायदा होगा।** इस नियमने जो जो बाधाएँ डाली हैं उनकी गवाही हजारों हिन्दी सीखनेका प्रयत्न करनेवाले लोगोंसे मिलती रहती है।"

इन बातोंको ध्यानमें रखकर यदि विचार किया जाय तो मालूम होगा कि हिन्दीमें वह सरलता नहीं है जो एक राष्ट्र-भाषाके लिये आवश्यक है। इसलिये अगर हम हिन्दीको वास्तवमें राष्ट्र-भाषा बनाना चाहते हैं तो उसे और भी सहल तथा लचीला बनाने की कोशिश करनी चाहिये। इस [5]तरहके परिवर्तनसे हिन्दी भाषा-भाषी न घबड़ावें। क्योंकि-भाषाके बदलनेसे ही उसकी उन्नति व विकास हो सकता है। भाषाको किसी बन्धनमें रखना उसके विकासको रोक रखना है। इसलिए भाषाके विकासके लिये जो रद्दोबदल आवश्यक है उसको इस राहसे बढ़ने देना जिससे कि हिन्दीके सीखनेवालोंकी कठिनाइयां कम हों, यह बड़ी बुद्धिमत्ताका काम है। कहनेका मतलब यह है कि हिन्दीको ऐसा एक नया और सरल रूप देना है जिससे वह भारतकी राष्ट्र-भाषा होनेके हर सूरतसे काबिल हो। हिन्दी व्याकरण को सुलभ और लोचदार बनानेसे ही यह हो सकता है।

यह बड़े ही संतोषकी बात है कि उत्तर हिन्दुस्थानके हिन्दीके विद्वान भी व्याकरण सुधारकी आवश्यकताको समझ गये हैं। हिन्दी साहित्य सम्मेलनके ग्वालियर अधिवेशन में पं० श्यामबिहारी जी मिश्रने अपने अध्यक्ष भाषणमें कहा है कि [6]"व्याकरणके नियमोंको कड़े रखनेसे भाषाकी

लेते। दक्षिणी भाई राष्ट्रभाषाको इस तरह समृद्ध करें तो हमें बड़ी खुशी होगी।

४—राष्ट्रभाषाके प्रचारकोंकेलिये ऐसे नियम बन जायँ तो अच्छा हो। अन्यप्रान्त वासियों को जिन्हें राष्ट्र भाषा सीखनी है, ऐसे नियमोंसे सुभीता होगा। परन्तु जिनकी मातृभाषा है वह तो जैसे बोलते आये हैं बोलेंगे। स्वाभाविक नियमोंके विपर्य्ययसे जो थोड़ासा गड़बड़ होगा, वह विशेष हानि न करेगा।

५—उचित परिवर्त्तनसे कोई न घबड़ायगा। परन्तु परिवर्त्तन ऐसे हुए कि भाषा अधिक कठिन हो गयी अभिप्राय औरका और समझा जाने लगा तो सभी हिन्दी-भाषा भाषी घबड़ा जायँगे। आपके जो प्रस्ताव हैं उन्हें प्रचारकमें लेख देकर कार्य्यान्वित कीजिये और उसपर हिन्दी भाषियोंके विचार मांगिये। व्यवहार ही सुभीतेकी कसौटी है। भाषाको कौन बन्धनमें रख सकता है?

६—व्याकरण जीवित भाषाका अनुगामी है। बोलनेवालोंपर निर्भर है। नियमोंको कड़े रखने और ढीले करनेका कोई प्रश्न नहीं है। वैयाकरण वह वैज्ञानिक है जो बोलने वालोंके भाषाप्रयोगका बारीकीसे निरीक्षण करता है और तदनुसार जहां नियम बन सकते हैं, बनाता है, जहां नहीं बन सकते वहां कहता है कि मुहावरा है, ऐसा साधारण प्रयोग है अथवा यह अपवाद है, इत्यादि। उसे नियमके कड़े करने या शिथिल करनेका दोषी ठहराना व्यर्थ है। फिर उसकी कड़ाईसे भाषाको कैसे धक्का पहुँचता है और नियमोंको प्रयोगके विरुद्ध खामखाह "पिलपिला"

उन्नतिमें धक्का पहुँचती है, इसलिए भाषाके विकासकी दृष्टिसे व्याकरणके नियमोंको कुछ पिलपिला होने देना आवश्यक है।

हिन्दी व्याकरणमें क्या क्या परिवर्तन होना चाहिए उसका भी यहां पर कुछ उल्लेख किया जाता है:—

सबसे पहला सुधार यही है कि ⁷ 'ने' प्रत्यय-को निकाल देना। अकर्मक क्रियाओंका जिस तरह भूतकालमें प्रयोग होता है, ठीक उसी तरह सकर्मक क्रियाओंका भी प्रयोग हो; जैसे

लड़का खाया। लड़के खाये।
लड़की खायी। लड़कियाँ खायीं।

⁸ सच है, इस परिवर्तनसे हिन्दीकी खूबी वा सुन्दरता चली गयी सी प्रतीत होगी। वाक्य बहुत भद्दे दीखेंगे; पर कुछ दिनके बाद जब ऐसे वाक्योंको सुननेका काफ़ी अभ्यास हो जायगा तब ये ही वाक्य बहुत खूबसूरत और मधुर लगने लगेंगे।

२. दूसरा सुधार यह है कि लिंगनिर्णयमें जो गड़बड़ी है उसे दूर करना। ⁹जिन शब्दों से स्त्री जातिका बोध होता है, वे ही शब्द स्त्रीलिंग रहें; बाकी सब पुल्लिंग माना जाय।

३. सर्वनामों और आकारांत पुंलिंग शब्दोंकी जब विभक्ति प्रत्यय आदि जोड़े जाते हैं तब उन शब्दोंके रूपमें किसी तरहका परिवर्तन न हो जैसे

मैंका भाईका नाम गोविन्द शर्मा है।
वह लड़काका पुस्तक छोटा है।

(शिथिल) कर देनेसे क्या सुभीता हो सकता है, यह बात तो मुझे समझमें नहीं आती। कोई कड़ासे कड़ा नियम बना दे अथवा नियमकी खोपड़ी तोड़ कर उसे "पिलपिला" भी कर दे तो मेरे किसी वाक्य पर जो मैं बोलता या लिखता हूँ, कैसे प्रभाव पड़ सकता है? वह कड़ा या पिलपिला नियम वैयाकरणकी कृतिको ही सुशोभित करता रहेगा। तात्पर्य्य यह कि आप जैसे नियम रखना चाहते हैं बनाकर उन्हें व्यवहार की कसौटी पर कसिये, सीखने वालोंमें उनका प्रचार कीजिये। अर्थ समझनेमें यदि कठिनाईपर विपर्य्यय हुआ, तो सुधार हो जायगा। जिनकी मातृभाषा है उन्हें आपकी कठिनाई समझमें न आयेगी और आयी भी तो वे क्या कर सकते हैं। जो व्याकरण इधर वालोंने बनाये हैं उन्हें आप अस्वीकार कीजिये और अपने सुभीतेके व्याकरण बनाकर प्रयोग कीजिये, हम कभी बाधक न होंगे।

७—यहां "यही और "कि" दोनों निकाल देनेसे वाक्य शुद्ध भी हो जाता लाघव भी आ जाता। प्रायः शुद्ध वाक्य अशुद्धसे छोटा होता है।

८—इस परिवर्त्तनसे हिन्दीकी खूबी कहीं नहीं जाती। इसमें लाघव है। आधी मात्रा यदि वैयाकरणोंके निकट घटकर पुत्रोत्सवका सुखदेती है तो "ने" प्रत्ययके उड़ जानेसे तो अनिर्वचनीय आनन्द होगा। कर्म्मवाच्य रूप रखकर कर्त्तृवाच्य प्रयोगकी असंगति मिट जायगी। खास खूबी आ जायगी। परन्तु शर्त्त यह है कि अभिप्रायके व्यक्तीकरणमें कोई कठिनाई न पड़े। यह प्रयोगसे ही स्पष्ट होगा। प्रचारकमें इस तरहके लेख देकर इस बातकी जांच कीजिये। पुराने कवियोंको सूर, तुलसी, केशवको "ने" का रोग न था। इससे छुटकारा पा जाना स्वास्थ्यका लक्षण है।

९—यह भी ठीक है। किन्तु हमारी कोई बहिन प्रस्ताव करती तो शायद कहती कि जिन शब्दोंसे पुरुष जातिका बोध होता है वही पुल्लिंग माने जायँ शेष सभी स्त्रीलिंग माने जायँ, आखिर हिंदी भी तेरह करोड़ जनता की "मातृ" भाषा है। पितृ भाषा नहीं है। यह नियम इस स्थल पर प्रस्तुत करकेभी मिश्रजीका प्रमाण देते हुए ऊपरके प्रस्तरमें पुल्लिंग बोले जानेवाले "धक्का" को भी आपने जबरदस्ती स्त्रीलिंग कर दिया है। वह शायद इसीलिये कि आप अपने बनाये नियम भी कड़े नहीं बल्कि "पिलपिले" ही रखना चाहते हैं। आगे चलकर आप शब्दोंके आगे प्रत्ययोंके जोड़नेमें रूप परिवर्त्तन नहीं चाहते। "मेरा, उसका, तेरा" की जगह "मैंका, वहका तूका" रखना चाहते हैं। यदि अन्य प्रांतवाले इस तरह बोलें तो हम समझ सकेंगे। परन्तु प्रयोग करके देखना चाहिये कि इसमें अधिक सुभीता है या नहीं।

४. मध्यम पुरुष सर्वनाम 'तुम' निकाल दिया जाय। 'तू' एकवचन रहे और 'आप' बहुवचन। पर 'तू' का प्रयोग आम तौरसे नहीं किया जाय। क्रिया का रूप[१०] इस तरह चलाया जाय।

मैं खाता हूँ। हम खाते हैं।
तू खाता है। आप खाते हैं।
वह खाता है। वे खाते हैं।

५. चाहिये, पड़ना, होना आदि सहायक क्रियाओंके प्रयोगमें कर्ताको 'को' प्रत्यय न जोड़ा जाय; कर्ता प्रथमा विभक्तिमें ही रहे। जैसे

[११]आप आना चाहिये, मैं जाना पड़ा, वह एक रुपया देना है।

६. नीचे लिखे प्रयोग ठीक समझे जायँ।

[१२]मैं आकर चार दिन हुए; रामको दो भाई हैं, विद्वानको सब आदर करते हैं आदि।

[१३]दक्षिण भारतके लोग अपनी हिन्दीमें प्रान्तीय रूढ़ि और मुहावरोंको दाखिल

१०-क्रियाके रूपोंका श्री जम्बुनाथनजीका प्रस्ताव बहुत बुरा नहीं है। परन्तु उससे अधिक सरलता इसमें है कि "मैं, तू, वह" यह तीनों सर्वनाम उड़ादें और "लोग" शब्द लगाकर बहुवचन बनालिया करें। क्रिया का रूप भी न बदलेगा। जैसे—

हम खाते हैं। हम (लोग) खाते हैं
तुम खाते हो। तुम (लोग) खाते हो।
आप खाते हैं आप (लोग) खाते हैं।
वे खाते हैं वे (लोग) खाते हैं।

बहुवचनके बनानेकी कठिनाई संज्ञाओं के साथ भी नहीं रहती, क्योंकि शब्दमें बिना परिवर्त्तनके "लोग" लगाकर ही बहुवचन बन सकेगा।

जैसे लड़का खाता है। लड़का लोग खाते हैं।

बङ्गाली भाई प्रायः इसी तरह बोलते हैं।—रा० गौड़

११-"आप आना चाहिये" का एक अर्थ होगा स्वयं आना चाहिये। प्रस्तुत नियमानुसार "मैं जाना पड़ा" का अर्थ होगा "मैंने समझा कि गिरा" और "वह एक रुपया देना है" का अर्थ है [जिसकी चर्चा हो चुकी है वह एक रुपया देना (बाकी) है।] इस तरहके परिवर्त्तन-में व्यावहारिक कठिनाइयां पड़ेंगी। यह ठीक नहीं हैं।
—रा० गौ०

१२—"आकर" अपूर्ण क्रिया है। "आया" में लाघव और पूर्णता दोनों है। अतः "मैं आया चार दिन हुए।" "विद्वान् को सब आदर करते हैं" इसकी जगह "विद्वान्‌को सब आदरते हैं" शुद्ध भी है और लघु भी। अशुद्ध और लम्बा करने में क्या सुभीता है?—रा० गौ०

१३-शौकसे। तरह देना क्या मानी। आप मुझे सिखलाइये, मैं आपकी प्रान्तीय रूढ़ियों और मुहावरों-से अपनी भाषाको अलंकृत करनेको तैयार हूँ। आप एक सूची अर्थ सहित प्रचारकमें प्रकाशित करें। परन्तु आपके सुझाये व्याकरणके नियमोंका जनतामें प्रचार करना असंभव है। जिस खड़ी बोलीको साहित्य प्रमाण मान रहा है उसका प्रचार भी सौमें सातसे भी कम मनुष्योंमें हो सकता है। साथ ही यह आवश्यक भी नहीं है कि हम अपनी भाषाको उसी सांचेमें ढालें जिसमें राष्ट्रभाषा अन्य प्रान्तोंमें ढल रही है। राष्ट्र-भाषा अखिल भारतीय भाषा है। उस पर हर प्रान्तकी मुहर रहेगी। बंगाली-हिन्दी, मराठी-हिन्दी, पंजाबी हिन्दी, गुज-राती हिन्दी, तेलंगी हिन्दी, कन्नड़ हिन्दी, मलयालम हिन्दी, उड़िया-हिन्दी आदि आदि हिन्दीकी शैलियां हैं, होनी चाहिए और होंगी। इनसे हिन्दीका भंडार भरेगा, हिंदी समृद्ध होगी। यह प्रमाणित राष्ट्रभाषा आजसे सौ बरस बाद किस तरहकी होगी यह कोई नहीं कह सकता। परंतु जैसे आज हिन्दीपर दस भाषाओंका प्रभाव पड़ा हुआ है, उसी तरह राष्ट्र-भाषाके पदसे उठकर जब राज्य-भाषा बन जायगी और तीन चार पीढ़ियों तक शासन विभागसे समादृत होगी और पैंतीस करोड़ जनताकी भाषा बनजायगी तब उसका जो रूप होगा उसके सँवारने-में केवल द्रविड़ भाषियोंका ही हाथ न होगा? और प्रान्त क्या उसे न अपनावेंगे? सम्भवतः जैसे आज सूर तुलसीकी भाषा हमारी खड़ी बोलीसे भिन्न है परन्तु सूर तुलसी हमारे आदरके पात्र हैं उसी तरह भाषा भेद

करेंगे, जिनको तरह देना चाहिये। हिन्दीभाषा-भाषियोंको ऊपर सूचित किये हुए परिवर्तनों को मंजूर करना होगा, और उन्हींके मुताबिक अपनी हिन्दीको भी कुछ विस्तृत, संग्राहक और लचीला बनाना होगा। नहीं तो, जिनकी मातृ-भाषा हिन्दी है उनकी हिन्दी और अन्य लोगों-की हिन्दीमें बहुत फ़र्क पड़ेगा, और आगे चल-कर ये दोनों ऐसी भिन्न भिन्न भाषाएँ हो जायेंगी कि हम उनमें किसी तरहका संबन्ध देख न पावें और हिन्दी राष्ट्र-भाषाके पदसे च्युत हो जायगी। डा० एम० ए० अन्सारीके इसी आशयके कुछ वाक्य यहां उद्धृत किये जाते हैं:—"भाषामें भी हुस्न और खूबसूरती कामकी बातोंके साथ साथ चल सकती है, नहीं तो यह मुमकिन है कि भाषा जरूरतसे ज्यादा खूबसूरत और जरूरतसे ज्यादा बनावटी हो जाय। कामकी बात और बनावट सजावटमें जब आपसका रिश्ता कमज़ोर हो जाता है तो ज़बान नीचे गिरने लगती है। १४एक दूसरे को अपना मतलब समझाने की ज़रूरत अपना रास्ता लेती है और बनावट सजावट अपना। आम लोग पहिलेके साथ होते हैं, और ज्यादा पढ़े लिखे लोग दूसरेके साथ। लेकिन इस जुदाईसे ज़बानके दोनों हिस्से बड़े टोटेमें रहते हैं।"

१५जिनकी मातृ-भाषा हिन्दी है, क्या वे अपनी भाषा को सहल और सादा, और सब की समझमें आ जानेवाली और सबके लिये एक सी बनाने का उदार भावसे कुछ प्रयत्न करेंगे?

—

"पौधोंका जीवन"

[ले० रामदास गौड़]

धरतीको फोड़कर बाहर निकलनेसे अथवा बीज-को फोड़कर अंकुरके निकलनेसे पौधोंका नाम उद्भिज्ज पड़ा है। परन्तु ऐसे बहुतसे पौधे भी हैं जिनको बीज या धरतीको फोड़ने की जरूरत नहीं पड़ती तौ भी उगने वाले और विशिष्ट वानस्पतिक जीवन वाले सभी प्राणियोंका नाम उद्भिज्ज है। वनस्पति शब्दका भी प्रयोग बड़े बड़े पेड़ोंके लिये होता है। परन्तु साधारण बोलचालमें इस शब्द

हो जाने पर भी हमारे सच्चे साहित्यिक आदरके पात्र रहेंगे। पर मुझे आशा है कि यह भाषा भेद इस तरहका होगा कि राष्ट्र-भाषाका पद पुष्ट हो जायगा। भाषा भेद होना स्वाभाविक है, हम उसे रोक नहीं सकते। आज हिन्दी और उर्दूका भेद केवल लिपिका नहीं है। अरबी फ़ारसी तुरकी शब्दोंकी बहुतायतका भी है। परन्तु उर्दू साहित्यका महत्व उसे नष्ट होने नहीं देता। संभव है कि राष्ट्र-भाषाके सामने साहित्यिक हिन्दीकी भी वही-स्थित हो जाय। परन्तु राष्ट्र-भाषाकी इसमें हानि नहीं नहीं है। राष्ट्र-भाषा प्राकृत होगी, साहित्यिक हिन्दी संस्कृत होगी।

१४—डाक्टर अंसारी ने इन शब्दोंमें उर्दूका चित्र खींचा है। बात बहुत ठीक कही है। संसारकी प्रायः सभी भाषाओंमें साहित्यिक और साधारण यह दो विभाग हैं। परन्तु दोनों टोटेमें न रह सकें तो अच्छा है। कवि कोशिश यही करता है परन्तु भाषाकी प्रगति उसके वशमें तो नहीं है। गोस्वामी तुलसीदासजीने तो उस समयकी देहाती भाषामें लिखा था। पर अब?—रा० गौ०

१५—हिन्दी भाषियोंको चाहिये कि साहित्यिक भाषाको भी अधिकसे अधिक सरल और सुबोध बनावें। कोशिश करते करते बहुत कुछ सुधार हो सकता है। हम जम्बुनाथनजीकी इस अपीलका हृदयसे समर्थन करते हैं।—रा० गौ०

का प्रयोग हरियालीवाले पौधोंके लिये मुद्दतसे होता आया है। पौधोंके जीवनके सम्बन्ध में अनादि काल-से मनुष्य परिशीलन करता आया है। आयुर्वेदकी सबसे पुरानी पुस्तक चरक-संहितासे प्रकट होता है कि पौधों या ओषधियोंके सम्बन्धमें हमारे ऋषियोंका ज्ञान बहुत विस्तृत था। ओषधि पौधेका ही नामान्तर है। आधुनिक वैज्ञानिकोंने पौधोंका परिशीलन जबसे अनुवीक्षण यन्त्रके सहारे करना शुरू किया तबसे वनस्पति विज्ञानकी नीव पड़ी। प्राणी विद्या विशारदोंने इसीके सहारे जीवाणुओंका परिशीलन किया और पता लगाया कि जन्तुओंके और पौधोंके आदिम जीवाणु एकसे हैं। पहले शुरू शुरू में वैज्ञानिकोंको यह समझनेमें कठिनाई थी कि विचार्य्य जीवाणु कीटाणु हैं या उद्भिज्जाणु, क्योंकि दोनोंके लक्षण रूप आदि समान दीखते थे। जैसे इन सूक्ष्म जीवों में यह प्रभेद भी अत्यन्त सूक्ष्म है वैसे ही कुछ बड़े जीवोंमें भी एकाएकी देखनेमें पता नहीं लगता कि यह जीव चर है या अचर, कीटों वा विशिष्ट शरीर-धरियोंमें है अथवा उद्भिज्जोंमें है। जैसे कुकुरमुत्ता और स्पंज देखकर सहसा कोई यह नहीं विवेक कर सकता कि कुकुरमुत्ते की तरह स्पंज अचर नहीं है। सृष्टिमें बहुत सूक्ष्म सेलोंमें भी एक सीमा ऐसी है जहाँ दोनोंका भेद होता ही नहीं। यही जीवनके वृक्षका मूल समझना चाहिए। यहींसे जीवनकी दो बड़ी शाखायें फूट कर अलगा गयी हैं। एक शाखा तो चर प्राणियोंकी है और दूसरी अचर प्राणियों की।

अचर प्राणी उद्भिज्ज हैं। पौधोंको उद्भिज्ज इसी लिए कहते हैं कि वह जहाँ जमकर वृद्धि पाते हैं वहाँ बीज और क्षेत्र दोनोंका भेदन करके ऊपरकी ओर निकले हुए होते हैं। पौधे अचर हैं इसलिए उन्हें उनकी जगह पर ही भोजन और पानी मिलना चाहिए। उनके जीवनकी सारी व्यवस्था उनके सुभीते से उनके पास पहुँचनी चाहिए। इसके लिए उनका जन्म ऐसे ही जगह पर होता है जहाँ सारी सामग्री उपलब्ध होती है। सामग्री ज्योंही चुक जाती है त्योंही पौधेका अन्त हो जाता है। इसीलिए इन अचरोंको खाद्य पहुँचानेका प्रबन्ध इन्हींके सजातीय उद्भिज्जाणु करते हैं और यह अचर पौधे स्वयं जिस सामग्रीको आत्मसात् करते हैं, पचाते हैं, उससे अपने शरीरमें ऐसी सामग्री तैयार करते हैं जो चर प्राणियोंके जीवनका सहारा है, भोजन है। हरी पत्तियोंके द्वारा सूर्य्यकी किरणोंके सहारे और जड़ों और देशों के चूसनेकी क्रियाओंमें कर्बोज्जेन छिद्रोज, तैल, हरियाली* और प्रत्यमिन बनते हैं और यही चर प्राणियोंके भोजन है। खनिजोंको खाकर उद्भिज्ज और उद्भिज्जोंको खाकर चर प्राणी जीते हैं। "जीवो जीवस्य जीवनम्"।

सूर्यकी किरणोंसे ही गरमी और शक्ति लेकर पौधेकी सारी सामग्री बनती है। किरणें न हों तो उज्जन, कर्बन, ओषजन, नोषजन, स्फुर, गंधक, आदि सभी मूल पदार्थ अलग अलग रह जायँ। कुछ बने ही नहीं। वस्तुतः सारी शक्ति सूर्य्य की किरणों से ही आती है, छिद्रोज आदि कर्बोज, सब तरहके तैल, सभी प्रत्यमिन और तूलयंक मात्र इसी शक्तिसे बनाते हैं। सूर्यकी शक्ति अचर प्राणियोंमें मानो जमाकर ठोस रूप में मौजूद रहती है। चर प्राणी इन्हीं अचरोंपर जो निर्वाह करते हैं वे वस्तुतः सूर्य की शक्ति पर जीते हैं। लकड़ी जलाकर जो आग पैदा करते हैं वह भी सूर्य्यकी शक्तिही आगके रूपमें प्रकट होती है। मिट्टीका तैल एक प्रकार से द्रव रूपमें सूर्य्यकी किरणें हैं जो प्रकाश देती हैं। पत्थरका कोयला भी जलता है तो आंच उसी सूर्य्य के तापसे देता है जो लाखों बरस पहले अपनेमें जमाकर रक्खा है। समस्त चर प्राणियोंमें भोजनके पचा लेने पर जो शक्ति आती है वह भी उन पदार्थों में जमी हुई सूर्य्यकी शक्ति ही है। निदान इस भूतलपर वनस्पतिके सहारे प्राणिमात्रमें सूर्यकी शक्ति ही काम कर रही है।

कुछ उद्भिज्ज ऐसे भी होते हैं जिनमें हरियाली नहीं होती, जैसे कुकुरमुत्ते वा फफूंदीकी जातिके उद्भिज्ज। बासी रोटी आदि भोजनके पदार्थोंमें

* हरियाली = पर्णहरित (Cholorophyll)

फफूंदी लग जाती है जो काली होती है। मुरब्बे पर नीली लगती है। गेहूँ में लाल गेरुई लग जाती है। पौधे औरोंके लिये भोजनके पदार्थ नहीं बनाते वरन आप अपने लिये भोजन लेते हैं। इनमें जो फफूंदी जीवित पौधों में लगती है परसत्वाद या पराश्रित-की तरह होती है और जिस पौधे पर होती है उसे खा जातो है। गेरुई ऐसी ही फफूंदी है। कोई कोई फफूंदी कामकी चीज होती है जैसे खमीर, जिससे शराब बनायी जाती है। फफूंदियां जड़से भोजन चूसती हैं। रोशनीका सहारा नहीं लेतीं परन्तु जिसके सहारे जमती हैं उसे भी चूसती हैं।

कुछ ऐसे पौधे भी होते हैं जिनमें हरियाली तो होती है और वह अपना भोजन, रोशनी, वायु और पृथ्वीसे लेते हैं, तो भी वह कीड़े मकोड़े और कभी कभी इनसे बड़े चर प्राणियोंको भी खाते और पचाते हैं। किसी किसीमें कीड़ोंके पकड़नेकेलिये पत्तियोंके सिरेपर लम्बे लम्बे रेशे निकले होते हैं और पत्तीपर लसदार पदार्थ लगा रहता है। रेशे पकड़ते हैं, लसीमें कीड़े फंस जाते हैं, पत्तियां मुँद जाती हैं और जब कीड़ा पच जाता है तब फिर खुल जाती हैं। कुछ फेर फारके साथ विविध आकार-के और अनेक प्रकारसे मांस भोजी पौधे भी होते हैं।

"(२) चर और अचर में समानता"

सूक्ष्म उद्भिज्जाणुओंसे लेकर बड़े से बड़े शह-बलूत या बड़के वृक्ष तक सभी उद्भिज या बनस्पति हैं। सभी भोजन पचाते हैं। सभी बढ़ते हैं। सब-का जीवन है और सबके जीवनकी अवधि है। सब अपनी परिस्थितिसे रगड़ा करके अपने जीवन-की रक्षा करते हैं, एक दूसरेका आश्रय लेते हैं। वृक्षके सहारे लता रहतीहै, एकसे दूसरा पौधा पोषण पाता है। जहाँ सहायता सहजमें नहीं मिलती वहां बरबस ली जाती है, आत्म रक्षाकेलिए आपस में झगड़ा रगड़ा भी होता है, एक दूसरेका नाश भी करते हैं। चर प्राणी दौड़ता है शिकार करता है क्योंकि उसके भोजनकेलिए सामग्री, जलवायु धरती में सब जगह नहीं मिलती। उसकी सामग्री तो विशेष प्रकारके वनस्पति और चर प्राणियोंसे प्राप्य पदार्थ हैं। वह शाक आदि आदि उद्भिज और मांस आदि अंडज और पिंडज पदार्थ खाते हैं। मांसाहारी प्राणी एक मात्र मांस ही खाता है। परन्तु मांसाहारी पौधे मांस न पावें तब भी जीते रहते हैं, तब भी वह चरोंकी तरह छल छद्म आदि-से काम लेते हैं। अचर होते हुए भी अपना शिकार फँसाते हैं। जिस तरह चर प्राणी चलता है उस तरह पौधा चलता नहीं तो भी अपने भोजनकी दिशामें कुछ गति तो करता ही है। सूर्यकी किरणोंकी दिशामें बहुधा पत्तियां या फूल फिरा करते हैं। डालियां और पत्तियां इस ढंगसे निकलती हैं कि अधिकसे अधिक रोशनी पा सकें। एक दूसरे पर छाया पड़ती भी है तो एक तो सूर्य्य अपनी दिशा बदलता रहता है दूसरे हवासे पत्तियां हिलती रहती हैं जिससे पत्तियोंको अधिकसे अधिक रोशनी पहुँचती रहती है। लताएं पकड़-की दिशा में लपटती हैं और अपनी नसें लपेटती हैं। पेड़ ऊपर की ओर बढ़ता है और जड़ें नीचे की ओर। अमरबेल अपने आश्रय वाले पेड़-पर फैलती जाती हैं और उसकी हरियाली को नष्ट करती जाती है। कीड़े खाने वाले पौधे कीड़ोंको पकड़ते ही छोप लेते हैं। यह तो उनकी गति हुई। साथ ही यदि कीड़े खाने वाले पौधोंको एकाध बार वैसा ही गीले कागजका टुकड़ा दिया जाय तो धोखा खा जाते हैं। परन्तु दो एक बार ही यह धोखा चल सकता है। फिर पत्तियां नहीं छोपतीं और धोखा देना व्यर्थ हो जाता है। लाजवन्तीके पौधेसे सैकड़ों प्रयोग आचार्य्य जगदीश चन्द्र वसुने किये हैं। और पौधोंसे भी असंख्य प्रयोग करके यह सिद्ध किया है कि पौधोंकी रगें भी हमारी रगोंकी तरह काम करती हैं, उनके शरीरमें भी रसका उसी तरह चक्कर लगता है जैसे हमारे शरीरमें खून-का। उनकी नाड़ी भी हमारी नाड़ीकी तरह चलती

है। हमारी तरह वह भी सांस लेते हैं। हमारी आंखसे ज्यादा उनकी त्वचा काम करती है। त्वचा-के सहारे वह प्रायः वह सब काम लेते हैं जो हम अपनी पाचों ज्ञानकी इन्द्रियों से लेते हैं। पौधे समयपर भोजन करते हैं। समयपर आराम करते हैं। पौधे सोते हैं और समयपर जागते हैं। पौधों-में किसी में अधिक और किसीमें कम अनुभव-प्रवणता होती है। परन्तु होती है प्रायः समस्त पौधोंमें। बटवृक्षके एक नन्हेंसे वृक्षका छेदन कीजिये अथवा शाहबलूत जैसे विशाल वृक्षके बीज-का अणुवीक्षणिक विश्लेषण कीजिये तो पता चलता है कि बीजके भीतर एक डिम्ब है और वह डिम्ब एक आहित सेल है जो और प्राणियोंके सेलोंकी तरह बढ़ता है, बँटता है, एकसे दो, दोसे चार, चारसे आठ होता चलता है। यह क्रिया चराचर-में एक सी है। कलम वाली क्रिया जैसे पौधोंमें है वैसे ही छोटी श्रेणीके चरोंमें भी है। फूटकर अलग होना और व्यक्तित्व पाने की क्रिया भी जैसे पौधोंमें है वैसे चरोंमें। पौधोंमें इन्द्रियोंकी बहुलता और विकास नहीं है। चर प्राणियोंको अपनी रक्षा-के लिये और गतिके सुभीतेकेलिये, आहारका पता लगानेकेलिये, और चुननेके लिये दृष्टि, श्रवण, रसन, घ्राण इन चारोंके साधन ज़रूर चाहियें। परन्तु पौधोंको इन साधनोंकी अत्यन्त कम आवश्य-कता है। इसीलिये इनमें यह इन्द्रियां नहीं हैं। भीतरी यन्त्रों या इन्द्रियों में आमाशय, पक्काशय, वृक्क, मूत्राशय, मलद्वार आदि अंश पौधोंको नहीं चाहियें क्योंकि जहां चर प्राणी बहुतसे पदार्थोंको अनाव-श्यक जान कर निकाल डालनेकी जरूरत रखते हैं वहां पौधोंको जगतके हितकेलिये चर प्राणियोंके कामकी सामग्री सञ्चित कर रखना पड़ता है। चर-प्राणोंको चलने फिरनेकेलिए जाग्रत दशामें बहुत देर तक रहना पड़ता है, परन्तु पौधोंको जाग्रत दशा-में रहनेकेलिये उनकी अपेक्षा कम आवश्यकता पड़ती है। संक्षेपसे यों समझना चाहिये खनिज आत्यन्तिक सुषुप्त अवस्थामें हैं तो पौधे सुषुप्त अधिक और कुछ स्वप्नकी अवस्थामें हैं। पशु आदि मनुष्येतर प्राणी अधिक स्वप्न और कम जाग्रत अवस्था में हैं एवं मनुष्य इस सृष्टि में मुख्यतः जाग्रत अवस्थाका प्राणी है।

(३) जड़की क्रिया

साधारणतया जड़ सीधे नीचेकी ओर और धड़ सीधे ऊपरकी ओर जाना चाहिये। परन्तु बीज उलटा पड़ता है या करवट हो जाता है तब जड़ और धड़ दोनोंको घूमकर क्रमशः अपनी नीची और ऊंची दिशाको ग्रहण करना पड़ता है। इसीलिये बीज बोने-में उलटे सीधेका कोई बिचार नहीं किया जाता। बहुतेरे बीजोंमें तो गर्भ स्वयं टेढ़ा ही रहता हैं उसे सीधे निकलना पड़ता ही है। जो धड़ पहले कुछ टेढ़ा हो गया होता है उसे भी सीधा होना ही पड़ता है। परन्तु प्रधान जड़ नीचेकी ओर जाते हुए भी अपना भोजन खोजनेके लिये अगल बगल रेशे फेंकती है और पता लगाती है। जिधर कोई जोखिम मालूम होती है या चोट लगती है उधरसे जड़ें हट जाती हैं और गतिकी दिशा बदल देती हैं। जहां भोजनके पदार्थ मिल जाते हैं वहां जड़ोंके सिरे पर निमित्त अनुकूल चूसने वाली सेलें बन जाती हैं और बढ़ने लगती हैं। जड़ोंका ठीक सिरा सबसे अधिक सचेत होता है, यहां तक कि डारविनने तो कहा है कि उद्भिज्जोंका दिमाग़ यही है। इतनी बात तो प्रत्यक्ष ही है कि जड़ें कहीं झुकती हैं, कहीं हटती हैं, कहीं जरा ऊपरको चल पड़ती हैं, कभी फिर नीचेकी ओर जाती हैं, निदान विविध दिशाओं और गतियों-से यह स्पष्ट है कि धरतीके भीतर भोजनकी खोज-में जड़ें कोई बात उठा नहीं रखतीं। ककड़ीके एक बड़े पौधे की जड़ों की विविध दिशाओं में गति और एचपेचको नापकर भी क्लार्कने अन्दाजा किया था कि कुल जड़ें पचीस हज़ार गज़की लम्बाईमें होंगी। केवल साल भरके पेड़की जड़ें बारह गज तक लम्बी होती हैं।

गेंदेकी तरह कई पौधोंमें धड़मेंसे भी जड़ें

निकलती हैं और धरती पाते ही अपना काम करने लगती हैं। ऐसे पौधोंका कलम आसानीसे लग सकता है। बटवृक्ष तो अपनी पुरानी शाखाओंसे जड़ें फेंकता है जो लटकते लटकते धरतीको पकड़ लेती हैं और अपने काम करने लगती हैं। इस तरह बड़के पेड़के अनेक धड़ पैदा हो जाते हैं।

(४) धड़की क्रिया

पेड़के धड़का मुख्य काम है पत्तियोंको संभालना और उनकी रक्षा। ज्यों ज्यों पेड़ बढ़ता है त्यों त्यों पत्तियां बढ़ती जाती हैं। उनका बोझ संभालनेको उसी हिसाबसे धड़को पुष्ट होते जाना चाहिये। लताओंमें धड़ बहुत कमजोर होता है परन्तु किसी और पेड़ आदिके चारों ओर लिपट कर संभालता है। किसी किसी लतामें अधिक दृढ़ बन्दोबस्त रहता है, वह पतली परन्तु मज़बूत नसोंसे पासकी किसी चीज़को जो बहुत मोटी न हो कस कर लपेट लेती है। कोहँड़ा, घीया, घीया तरोई, करेले आदि अनेक तरह की तरकारियाँ इसी तरहकी लताओंमें होती हैं। मालती केवल लिपट कर रहती है, नसें नहीं फेंकती। माधवी मल्लिका की पत्तियां बहुत होती हैं, यह लिपटती भी नहीं परन्तु भीत आदिका सहारा ढूँढ़ती है। पेड़ोंके तने मोटे और सुदृढ़ होते हैं और अपने बल-पर खड़े होते हैं। फिर भी ज़ोरकी आंधी बड़े बड़े वृक्षोंको उखाड़ फेंकती है पर लताओं और नन्हें नन्हें पौधोंको कोई हानि नहीं पहुँचती। बेलसकी लताओंकी अधिकांश लम्बाई लपटनेमें खर्च हो जाती है परन्तु नसों वाली लता नसोंके सहारे सीधी बढ़ सकता है। इन नसोंके अग्र भागको जरा अंगुलीसे छूदो और देखो कि कुछ मिनटों बाद वह नस स्पर्शकी ओर झुकती सी दीखती है। यह बात बून्दोंके स्पर्शसे नहीं होती। ठोस वस्तुको पकड़नेको नसें तैयार रहती हैं।

जड़का रेशा बहुत फूक फूककर क़दम रखता है, चोटकी जगहसे हट जाता है, कड़ी जमीन या ककड़ा पाकर मुड़ जाता है, नमी और नमक पाकर चावसे आगे बढ़ता है। परन्तु बीजसे ऊपर निकलने वाला अंकुर सीधे रोशनीका रुख पकड़ताहै। वायुमें उसे कोई रुकावट नहीं मिलती। मिली भी तो वह मुड़ जाता है। जड़केलिये धरतीका गुरुत्वाकर्षण और अंकुरके लिये सूर्य्यका प्रकाश मार्गकी ओर प्रवर्त्तक होता है। यही अंकुर पेड़का धड़ बनाता है।

पत्तियां ऐसे ढङ्ग पर फैलती हैं कि अधिकसे अधिक तल प्रकाशकी किरणोंमें नहाता रहे। एक पर एक या आड़े तिरछे रहनेसे प्रकाशका यह लाभ नहीं मिल सकता। पत्तियोंका ऊपरी भाग प्रायः निचले भागकी अपेक्षा अधिक गहरा हरा रहता है। पत्तियोंमें भी चेतनता मौजूद दीखती है। कुछ पौधोंकी पत्तियां सूर्य्यास्तके बाद मुरझा सी जाती हैं। लज्जावन्तीकी पत्तियां तो तनिक सा छू देनेसे सुकड़ जाती हैं। पत्तियोंके बाद नीचेकी टहनियां भी सुकड़ जातीं हैं, पौधा मुरझा सा जाता है। परन्तु पन्द्रह मिनट बाद फिर ज्योंका त्यों हो जाता है।

रात होते ही अनेक फूल मुन्द जाते हैं, कमल मुन्द जाता है, अनेक पत्तियां लटक जाती या मुरझा जाती हैं। रातमें बहुतसे पौधे सोते हैं और सूरज निकलने पर जग पड़ते हैं, कमल खिल जाता है, पत्तियां फिर धूपमें पसर कर धूपस्नान करने लगती हैं। टामसनकी राय है कि यदि सोना इसी लिये होता है कि थकान मिटे तो पौधोंको थकानका कोई काम नहीं है अतः उनका सोना नहीं कहा जा सकता आचार्य्य जगदीशचन्द्र बसुने सैकड़ों प्रसगों से यह सिद्ध किया है कि पौधों को थकान होता है, नशेकी चीज़ोंसे नशा होता है, गरम चीज़ोंसे गरमी आती है, जहरसे मर जाते हैं। चराचर प्राणी ही नहीं जड़ पदार्थोंमें भी यह सभी बातें होती हैं। केवल गतिसे ही थकान नहीं होता, अपने शरीरके भीतर और बाहरके अनेक काम पौधोंको भी करने पड़पे हैं। कोई कोई पोधे अपने शरीरको हलाते भी रहते हैं। अनेक पौधे अपने शत्रुओं और विनाशकोंसे बचनेके लिये अपने अंगोंमें विष पैदा करते हैं, और स्वाद

में कड़वापन तिक्तता, दुर्गन्ध, उग्रता आदि दुर्गुण ला देते हैं। बहुतोंमें यह दुर्गुण ऐसे होते हैं जो खालमें चुभ जाते हैं और एक प्रकारका विष उत्पन्न कर देते हैं जिससे जलन मालूम होने लगती है। नागफनीके तो बहुत बारीक असंख्य कांटे होते हैं। मोटे मोटे भी कांटे होते हैं। उसके फल तो चुभने वाले हथियार ही सरीखे होते हैं। आत्मरक्षाकेलिये जो उपाय पौधे करते हैं, वह साधारण जीवनके कामसे सर्वथा अलग है। उसका श्रम उन्हें ऊपरसे पड़ता है।

सहयोगी विज्ञान

खंडवाके हिन्दी स्वराज्यके १६ मईके अंकमें फ्रांस के एक साहसी इंजिनियर श्री अर्पाद किर्नेरके स्ट्राम्बोलीके भीतर उतरने का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार दिया गया है।

ज्वालामुखीके उपकंठमें............

हाल हीमें फ्रान्सके प्रसिद्ध इंजिनियर अर्पाद किर्नेरने अपने वैज्ञानिक–अन्वेषणकी धुनमें ज्वालामुखीके पेटमें ८०० फीट नीचे तक उतर कर वहांके फोटो लेने तथा उन दृश्योंको प्रत्यक्ष देखकर उनका वर्णन सर्व साधारणकी जानकारीकेलिये प्रकट करनेका जो असाधारण प्रयोग कर दिखाया है उसकी ओर सारे संसारका ध्यान आकर्षित हो रहा है।

मि० किर्नेरने इस अग्नि परीक्षामें सफल होनेकेलिये कई दिनों से तैयारी शुरू कर रक्खी थी। अपने मस्तिष्ककी रक्षाके लिये जहां उन्होंने फौलादी शिरस्त्र धारण किया था, वहीं "अम्बस्टॉस" नामक फायरप्रूफ अर्थात् आगसे न जलने वाले खनिज-पदार्थका कवच भी शरीर पर पहना था। यहां तक कि जूता, मौजे, कोट-पैंट आदि सभी वस्तु उसी पदार्थकी बनाकर काममें लाई गई थीं। ८०० फीट लंबी रस्सी जिसके सहारे मि० किर्नेर ज्वालामुखीमें उतरे थे, वह भी उसी पदार्थकी बनी हुई थी। श्वासोच्छ्वासकेलिये आक्सिजनकी टांकी भी उसीकी बनाकर पीठ पर बांधी गई थी और बिजलीका दिया तथा फोटोका केमेरा साथ लेकर पूरी तैयारीके साथ इंजिनियर महाशय अपने इष्ट मित्रों सहित ज्वालामुखीके निकट जा पहुँचे थे।

मि० किर्नेरने सिसलीसे उत्तर ओरके 'स्ट्रोंबोली' नामक ज्वालामुखीमें उतरनेका प्रबंध किया था। यह ज्वालामुखी निरन्तर प्रज्वलित रहता है और मि० किर्नेरने इसको कई दिनोंसे देख भाल कर बहुत कुछ परिचय प्राप्त कर लिया था। इस अग्नि--कूपमें कूदनेपर मि० किर्नेरके चमड़ेके पट्टेसे बँधी हुई रस्सी थामनेके लिये मित्रोंने कुछ हट्टे--कट्टे पहलवानोंको भी साथ ले लिया था। इसके बाद उस फ़ायर--प्रूफ रस्सीके सहारे एक यंत्रके द्वारा वे धीरे-धीरे नीचे उतरने लगे। एक ऊंची चट्टान परसे लट्टूकी तरह लटकते हुए वे कुछ ही देरमें उस जलती हुई ज्वालाके मुँहपर जा पहुँचे। वहां गंधककी दुर्गन्ध नाकमें घुसने लगी और काले पीले तथा लाल रंगकी चट्टानें दिखाई देने लगीं। उनकी दरारोंमेंसे गंधककी भाफ निरन्तर निकल रही थी। इन सब दृश्योंको देखकर प्रथमतः मि० किर्नेरके हृदयमें यह विचार उत्पन्न हुआ कि कहीं इस मौतकी रस्सीके टूटनेके साथ साथ मेरे जीवनकी रस्सी तो समाप्त न हो जायगी? किन्तु उन्हें तो अपूर्व साहसके साथ इस विकट प्रयोग में सफलता प्राप्त कर दिखानी थी! वे भला, इतनी शीघ्र कैसे हिम्मत हार सकते थे?

कुछ ही मिनटोंके बाद मि० किर्नेर ज्वालामुखीमें उतरने लगे और पूरे ८०० फीट नीचे पहुँच कर एक चट्टानपर जा खड़े हुए। चट्टान अंगारेकी तरह लाल हो रही थी। वहां २१२ डिग्रीकी गर्मी थी। हवा भी १५० डिग्रीसे कम गर्म न होगी! किंतु वास्तविक प्रयोगका स्थान यही था। फलतः वहां पहुँच कर मि० किर्नेरने उन छिद्रोंमें झांकना शुरू किया, जिनमें से लावा बाहर आ रहा था! वे १० से लेकर ५० फुट व्यास तकके थे। और उनमेंसे उबलता हुआ लावा रुक-रुक कर ऊपर आ रहा था। दो बारके उद्रेकवे

बीचके समयमें मि० किर्नेरने उन छिद्रोंमें कुएकी तरह झांक कर देखा कि सब धातुओंका रस बना हुवा लावा जोरोंसे उबल रहा है। गर्म तेलकी कढ़ाई तो उसके सामने कुछ न थी।

उस अग्नि-कुंडके भीतर एक दो नहीं पूरे तीन घंटे तक मि० किर्नेर अत्यंन्त धैर्य, स्थिर, और शांतिके साथ खड़े रह कर देख भाल करते हुए फोटो लेते और वहांकी धातुओंके टुकड़े एकत्र करते रहे! इस प्रकार जब उनका काम समाप्त हो गया तो उन्होंने अपने साथके बिजलीके दियेसे संकेत किया। उसी क्षण रस्सी ऊपर खींची जाने लगी और कुछ ही मिनटों में वे मौतके मुँहसे निकल कर अपने मित्रोंके पास जा पहुँचे। उस समय वे इतने थक गये थे कि मुँहसे खूनकी उल्टियाँ होने लगीं; परंतु कुछ ही देर में खुली हवा और उचित उपचारसे उनकी हालत सुधर गई। उस अपूर्व साहसमें सफल होनेसे उनका उत्साह इतना बढ़ गया कि कुछ ही दिनोंमें उन्होंने दूसरे एक ज्वालामुखीमें उतर कर वहांका अनुभव भी प्राप्त किया।

स्वराज्यके उसी अंकमें चूहेके ज़हरपर एक बड़ाही उपयोगी लेख निकला है। चूहे प्लेग फैलाते हैं यह तो प्रसिद्ध ही है, सामान काट देते हैं खाद्य पदार्थ खा जाते हैं यह हानियां भी प्रत्यक्ष हैं। परन्तु उनके काटने में मलमूत्रादिमें विष होता है यह बात बहुत कम लोग जानते हैं। डा० रविप्रतापसिंह अनेत एम० डी०, एम एस (होम०) ने इस सम्बंधमें बड़ा उपयोगी लेख लिखा है। उसका आवश्यक अंश हम यहां उद्धृत करते हैं।

चूहेका ज़हर....................

वैसे तो चूहे १५ तरहके होते हैं; परन्तु साधारणतः चार प्रकारके नज़र आते हैं। पहिले प्रकारके चूहे भूरे, लम्बे और रोएँदार होते हैं। ये साधारण चूहे हैं जो घरमें कसरतसे दीख पड़ते हैं। ये भी विष वाले होते हैं। दूसरे वे जो बड़े, काले और चौड़े मुँह वाले होते हैं। इनके जिस्मपरके बाल घूँघरवाले होते हैं। इनमें विष बहुत रहता है। दिनमें बहुत कम नज़र आते हैं। यदि सामना पड़ जाय तो काटने को दौड़ते हैं। तीसरे वे जो कुछ पीलापन लिये होते हैं दुम छोटी और छब्बेदार होती है, मुँहपर सफेदीसी रहती है। ये अत्यन्त विषैले होते हैं। इनका काटा हुआ मनुष्य जीता ही नहीं। विष-प्रवेशके १०--१५ दिन भीतर ही चल बसता है। चौथे वे जो सफेद होते हैं; बहुत छोटे और चमकीले होते हैं। अकसर ये पालनेके काममें आते हैं। एक ग्रीक डाक्टरका कथन है कि क्षय रोगीके पास **इन** चूहोंको रखनेसे रोग बिना किसी औषधिके अच्छा होता है। उक्त डाक्टर महाशय एक प्रख्यात चिकित्सक हैं, जिन्होंने सैकड़ों क्षय-रोगियोंको चंगा कर दिया है।

चूहे ज्यादातर सामान कोठरियों माल-गोदामों, दूकानों, खेतों तथा घरके सीलिंग पर रहते हैं। गन्दे स्थानों में इनकी उपज खूब होती है। चूहोंमें विष अन्य ज़हरीले जीवों की तरह केवल दाँत, नाखून या किसी अंग विशेष हीमें नहीं; वरन् उनके (१) वीर्य में, (१) पेशाबमें, (३) पाखानेमें, (४) नाखूनों में, (५) दांतोंमें तथा (६) थूक या लारमें भी होता है। चूहे इन ६ साधनों द्वारा विष-वितरण करते हैं। अन्दाज़ लगाइये इनसे कहां तक बचना आवश्यक है। साधारण चूहेके काटनेपर वेदना अधिक नहीं होती; केवल काटनेके स्थानका माँस भर थोड़ा बहुत वे खा लेते हैं। कुतरा हुआ भाग रह जाता है और यदि खून निकल आया तो थोड़ी २ वेदना होती है। विषैले चूहेके काटनेपर पहिले दिन कुछ भी नहीं मालूम होता दूसरे या चौथे दिन कुछ २ वेदना मालूम होती है। फिर प्यास, सिर दर्द, मितली, कै, तन्द्रा, पेशाबमें दाह, दांत कटकटाना, स्वर--भंग, बेचैनी, ज्वर आदि लक्षण प्रकट होते हैं। दस--पन्द्रह दिनमें बेड़ा पार हो जाता है। दूसरोंके काटनेपर भी यही लक्षण प्रकट होते हैं; परन्तु भयंकरता धारण नहीं करते।

घरके कपड़े-लत्तों, खाने पीनेके पदार्थों, बर्तनों तथा अन्यान्य चीजोंमें बेखटके घूमते रहनेसे उन्हीं

कभी पेशाब, कभी पायखाना और कभी वीर्य डाल देनेमें कदापि रुकावट नहीं होती है। प्रत्यक्ष या परोक्ष रीतिसे शरीरमें इन साधनों द्वारा विष-प्रवेश कर देता है। इस प्रकारका विष उतना भयकर नहीं होता, जितना काटनेपर होता है। ताहम् अत्यन्त विषैले चूहेके पेशाब, पायखाना, वीर्य, आदि आदि द्वारा विष--प्रवेश करने पर निश्चयी संग्रहणी, उपदंश, कुष्ट, वातरक्त, हृत्कम्पन और गलगण्ड की बीमारियां पैदा हो जाती हैं और थोड़े समय हीमें हमारे सुन्दर स्वास्थ्य को नष्ट कर देती हैं। साधारण चूहेके विष-प्रवेश से कालाज्वर, कोष्ठ--बद्धता, सिर-दर्द, दाह, नेत्र-ज्योति हीनता तथा फोड़े--फुन्सी हो जाते हैं। इसलिये जहां तक होसके चूहोंसे किनारा कसने ही में लाभ है।

चूहोंके विषसे बचनेके लिये स्वच्छताके नियमों का अविच्छन्न पालन करना चाहिये। खाने--पीने, ओढ़ने--बिछाने, तथा अन्य चीजोंको सन्दूकों, तिपाइयों, खूँटियों आदिपर व्यवस्थित रूपसे रखना चाहिये। खाने-पीनेके पदार्थ सदा ढांक कर रखे जावें; अन्यथा जालीदार आलमारियोंका उपयोग करना चाहिये। सामान की कोठरीकी पूरी सफाई रखनी चाहिये। मकान की मोरियोंमें जाली (लोहे की) लगवा देना चाहिये; ताकि पानीतो निकल जाय; परन्तु चूहे या अन्य जीव न आ सकें। यदि हो सके तो घरमें किसी भी स्थानपर फालतू चीजों का ढेर मत लगा रखिये। घरमें यदि चूहोंने बिलकर लिया हो तो उसे उसी दम बन्द करा दीजिये। बिलोंको बन्द कराते समय उनमें थोड़ा सा नौसादर, फिनाइल या गन्धक डाल दीजिये। इससे फिर वे उसी जगह बिल न बनायेंगे। घर में प्रति-पक्ष या प्रति-माह एक दिन गन्धक या लोभान जलाना चाहिये और घरको फिनाइल लोशन या नीमके पानीसे लिपवाना या धुलवाना चाहिये; ताकि चूहे और अन्य विषैले जीव घरमें न रहने पावें।

चूहेके काटने पर दंश--स्थानको अच्छी तरह देखनेसे मालूम हो जायगा कि दंश-स्थानका चमड़ा अकसर कुतरकर खा लिया जाता है और घाव बड़ा होता है। खून पीला पड़ जाता है, शरीरमें चकत्ते उठ आते हैं, रोमांच हो आता है। कभी-कभी शरीर सूज जाता है। ये ही लक्षण हैं। दंश-स्थानको छील कर उसपर 'एसिड कारबोलिक' या 'एसिड एसेटिक' या सोना गलानेका तेजाबका एक फोहा रख देना चाहिये। दंश स्थानके ऊपर दो-तीन बंद बांधकर रक्त-संचालन बंद करना लाभदायक है। 'एमोनिया' सुँघाना तथा लगाना चाहिये। सिरसकी जड़को बकरीके मूत्रमें पीसकर घावपर लेप करना चाहिये। करंज की छाल और उसके बीजोंको पीस कर लेप करना चाहिये। इसके अलावा रोगीको पीनेके लिये आरसेनिक २०० या १००० (होम०) देना चाहिये। तुरन्त लाभ हो जायगा। इन्द्रायण, अकोल, तिलों की जड़ें मिली शहद और घी इन सबको एक मिकदार-में मिलाकर पिलानेसे चूहे। का विष तुरंत ही नष्ट हो जाता है। परिक्षित नुस्खा है। वमन भी करना चाहिये। दस्तके लिये जुलाब देना चाहिये ताकि विष इनके द्वारा निकल जावे। कैथेके रसमें गोबर (गाय का) का रस हम-वजन मिलाकर १ तोले की मात्रामें १-१ घण्टेके बाद पिलानेसे विष नष्ट हो जाता है। त्रिफला और सफेद पुनर्नवा की जड़का रस देनेसे बड़ा लाभ होता है।

यह सब काटने के इलाज हैं। पेशाब, पैखाना आदि द्वारा जो विष-प्रवेश होता है; उसके लिये जुलाब, या वमन कराने वाली औषधियोंका प्रयोग करना चाहिये। विषके शमनके लिये सिरस की जड़ का रस और शहद हम वज़नमें लेकर पीना चाहिये। या आरकेनिक ३० (होम०) प्रति-दिन एक खुराक पीना चाहिये। इससे किसी प्रकारका अनिष्ट नहीं होता।

साहित्य-विश्लेषण

हिन्दी प्रचारक दशाब्दि अंक—हिन्दीप्रचार आन्दोलनका मुखपत्र, प्रकाशक पं० हरिहर शर्मा—हिन्दी-प्रचार प्रेस, ट्रिप्लिकेन, मद्रास। वार्षिक चन्दा २)—इस अंक का दाम ॥)

दशाब्दि उत्सवके उपलक्षमें हिन्दी-प्रचारकका यह बड़ा ही उपयोगी अंक निकला है। इसमें ९२ पृष्ठ हिन्दीके और ३८ पृष्ठ अंग्रेजीके हैं। इसमें हिन्दीप्रचार सम्बन्धी बहुत ठोस और उपयोगी सामग्री है। इसके कई लेख हिन्दी संसारके लिए बहुत विचारणीय हैं। इसमेंका एक लेख अपनी टिप्पणीके साथ हम इसी अंकमें दे चुके हैं। प्रोफेसर वाडियाका हिन्दीका भाषण उनके विस्तृत परिशीलनका परिचायक है। प्रोफेसर साहब मैसूर विश्वविद्यालयमें दर्शनशास्त्रके आचार्य्य हैं परन्तु हम-तो यह कहेंगे कि उनका भाषण सहज ही में उन्हें हिन्दीका आचार्य्यत्व प्रदान करता है। अंग्रेजीवाले भागमें भी प्रायः सभी लेख उसी तरह ठोस और विचारपूर्ण हैं। ऐसा उपयोगी अङ्क निकालनेकेलिए हम सुयोग्य सम्पादकमण्डलको बधाइयां देते हैं।

गंगाका पुरातत्त्वांक—सम्पादक, राहुल सांकृत्यायन तथा रामगोविन्द त्रिवेदी। वार्षिक मूल्य ४), पुरातत्त्वांक का मूल्य ३)। प्रकाशक पं० रामगोविन्द त्रिवेदी, गंगा कार्यालय, कृष्णगढ़ सुलतानगञ्ज, जिला भागलपुर।

गङ्गाने विशेषाङ्कोंकी अनोखी धारा बहायी है। उसका वेदांक बहुत अच्छा निकला था, यह पुरातत्त्वांक उससे भी अच्छा निकला। इसकी सफलताकेलिए हिन्दी-संसारको विशेष रूपसे सांकृत्यायनजीका कृतज्ञ होना चाहिए। इसके ३३७ पृष्ठोंमें पढ़ने योग्य ठोस विषय चित्रोंके सहित भरा हुआ है। हिन्दी-संसारको पुरातत्त्व की जानकारी नहींके बराबर थी, इस अङ्कके द्वारा उसके सामने इतनी सामग्री आगई है कि पाठकके मनमें आगेके साहित्यके अनुशीलन और समीक्षणके लिए मनमें गुदगुदी पैदा हो जाती है। सामयिक पत्रोंका विद्याके सम्बन्धमें ही यही उद्देश्य होना चाहिए, और इस उद्देश्यका पालन इस अङ्कने भलीभाँति किया है। इसमें डाक्टर हीरानन्द शास्त्री, डाक्टर नरेन्द्रनाथ लाहा, डाक्टर अविनाशचन्द्रदास, डाक्टर विनायतोष भट्टाचार्य, पं० काशीनाथ दीक्षित इत्यादि इस विषय के प्रसिद्ध महारथियोंके लेख हैं। इसके चित्रोंके संग्रहमें बहुत खर्च किया गया है। यह अङ्क सर्वथा उपादेय है।

सम्पादकीय टिप्पणियां

बीस बरसोंसे ऊपर हुए जब परिषत्की स्थापना हुई थी। उस समय तक शिक्षा विभागने बड़ी हिम्मत करके अंग्रेजी भाषामें रसायन और भौतिकका थोड़ासा पाठ्य विषय प्रवेशिका की नवीं और दसवीं कक्षामें रखा था और उसे वही छात्र वैकल्पिक विषयकी तरह चुनते थे जिन्हें आगे चलकर विज्ञान पढ़ना पहलेसे ही मंजूर होता था। हिन्दीद्वारा विज्ञानका प्रचार और वैज्ञानिक शिक्षाका प्रोत्साहन पहले पहल परिषत्ने किया। उसने जब विज्ञान प्रवेशिका छापी उस समय अपने ढंग की वही एक पोथी थी। कुछ ही समय पीछे सरकारी शिक्षा विभागने सातवीं और आठवीं कक्षाओंमें विज्ञान पढ़ानेका निश्चय किया और छोटी पाठ्य पुस्तकें बनने लग गयीं। धीरे धीरे विषयोंका परिमाण ऊंचा होता गया, प्रयोगों की संख्या और ऊंचाई बढ़ने लगी। यहां तक कि आज प्रायः हिन्दी उर्दू में पढ़ाये जानेवाले सातवीं और आठवीं कक्षाओंके विषय पचीस बरस पहलेकी प्रवेशिकाके वैज्ञानिक पाठ्य विषयोंसे किसी किसी अंशमें कुछ अधिक ही हैं। अपने देशकी भाषामें शिक्षा देनेमें इतना सुभीता प्रत्यक्ष हो गया है।

\+ + + + +

तबसे एक उन्नति और हुई। मासिक पत्रोंमें

पहले कभी कभी सरस्वतीमें वैज्ञानिक लेख निकल आया करते थे। कोई विशेष स्तंभ रखनेकी आवश्यकता तो प्रतीत ही न होती थी। परिषत् और विज्ञानके विचारप्रसारसे पहले पहल प्रभाने वैज्ञानिक स्तंभका आरंभ किया और अत्यन्त मनोरंजक सचित्र वैज्ञानिक टिप्पणियां उसमें निकलने लगीं। फिर तो यह तबसे दस्तूरसा हो गया कि प्रायः सभी मासिक पत्रोंमें विज्ञानके लिये एक विशेष स्तंभ रहने लगा। बल्कि साप्ताहिकोंने भी वैज्ञानिक टिप्पणियों और लेखोंसे अपनेको विभूषित करना आरम्भ किया। हम यह नहीं कहते कि परिषत् की स्थापना न हुई होती और विज्ञानका प्रकाशन न हुआ होता तो सामयिक पत्रोंमें वैज्ञानिक लेख न निकलते। परन्तु इस बातसे तो किसीको इनकार नहीं हो सकता कि कालकी आवश्यकताओं की जिस प्रेरणासे परिषत् और विज्ञानकी उत्पत्ति हुई उसकी वेगवती धारामें पड़कर औरोंको भी उसी मार्गका अनुसरण करना पड़ा। वैज्ञानिक साहित्यके प्रचारमें इस तरह परिषत् और विज्ञानके अगुआ होनेमें तो सन्देह नहीं हो सकता।

\+ + +

परन्तु यह हमारे लिये किसी अभिमानका कारण नहीं है। इससे तो हमारे ऊपर भारी जिम्मेदारी आती है। आगे चलनेवाले और रास्ता साफ करनेवालेपर कर्त्तव्यका भारी बोझ होता है। उसका मूल्य उस समय कोई नहीं आंकता। समय बीत जानेपर भी शायद ही कोई उसके मूल्यपर विचार करे। उसे तो अपना बलिदान करना होता है। पहले वर्षके विज्ञानके घाटेकी पूर्त्तिके लिये जब हमलोग अपने पहले सभापति स्वर्गीय डाक्टर सर सुन्दर लाल से मिले तो उन्होंने आश्वासन देतेहुए ठीक ही कहा था कि हम आगेकी पीढ़ियोंके लिये राह साफ करनेवालोंमें हैं, हमारा काम समयसे पूर्व हो रहा है, कोई हमारी बात न पूछे तो कोई अचरज नहीं है। जिनसे हमें गुणग्राहकताकी आशा करनी चाहिये उनसे बराबर उपेक्षाका प्रसाद पाते रहना तो विधाताने परिषत् और विज्ञानके भालों पर अङ्कित कर रखा है। वह तो अगणामित्वका पुरस्कार है। परन्तु हमें तो यह देखना है कि हमने तो अपनी ओर से कर्त्तव्यपालनमें कोई कोताही नहीं की।

× × ×

परिषत् ने अपना काम पहले हिन्दीमें सुबोध और प्रयोगयुक्त व्याख्यानोंसे आरम्भ किया। इस तरहके व्याख्यान बिना प्रयोगशालाके दिये नहीं जा सकते। म्योरसेंट्रलकालिजकी प्रयोगशालाओंके अध्यक्षोंने एवं अध्यापकोंने इस सम्बन्धमें परिषत्‌की पूरी सहायताकी। आजभी प्रयागविश्वविद्यालयके विज्ञान विभागोंसे ठीक वैसी ही सहायता मिल रही है। यद्यपि इन व्याख्यानोंमें सभी विज्ञान रसिक प्रवेश पा सकते हैं, तथापि सिवा विज्ञानके कुछ विद्यार्थियों के साधारण जनसमुदायने इन व्याख्यानोंसे कोई लाभ न उठाया। इसमें तो सन्देह नहीं कि भौतिकविज्ञानकी प्रयोगशालामें जहाँ यह व्याख्यान होते रहे हैं अधिक से अधिक दो ढाई सौ श्रोता इकट्ठे हो सकते हैं। और प्रयागमें लाभ उठा सकनेवाली विद्यार्थियोंकी श्रेणीही हजारोंकी संख्यामें मौजूद है, यदि छात्रोंको शौक होता तो परिषत्‌को लाचार हो अधिक संख्यामें आनेवालोंका प्रबन्ध करना पड़ता। परन्तु हमें तो खेद के साथ कहना पड़ता है कि दो तीन बार ही हमने भौतिक विज्ञानकी प्रयोगशालाको बिलकुल भरा देखा है। छात्र समुदायमें वह शौक नहीं है, उन्हें विद्याकी चाट नहीं लगी। जिज्ञासाका भाव उनमें प्रबल नहीं हुआ।

छात्रोंमें जिज्ञासा-भावका अभाव इस बातकी गवाही देता है कि हमारा शिक्षक समुदाय अपने कार्य में असफल है। और यह असफलता यहभी पता देती कि हमारे शिक्षकोंकी शिक्षामें भी त्रुटि है। ट्रेनिङ्ग-कालिजोंके भी सुधारकी आवश्यकता है। सच्चे शिक्षकका यह परम कर्त्तव्य है कि शिक्षितमें विद्याके लिए चाट पैदाकर दे, अध्ययन अनुशीलन व्यसन बन जाय, सीखने जाननेका नशा होजाय और

साधनोंको ढूँढ़कर ढूँढ़कर अपनी निरन्तरकी उभरती हुई जिज्ञासाओंकी तृप्ति करता फिरे।

× × ×

परिषत्‌ने फिर भी व्याख्यानोंके द्वारा यह दिखा दिया कि विज्ञानकी बारीकसे बारीक समस्याएँ, कठिनसे कठिन विचार हिन्दीमें व्यक्त किये जासकते हैं, उनपर धाराप्रवाह वक्तृताकी जा सकती है, और किसी अध्यापकको, फिर चाहे वह कितनीही ऊँची श्रेणियोंको क्यों न पढ़ाता हो, यह उज्र करनेका मौका नहीं है कि हम विज्ञानके ऊँचे विषयोंकी शिक्षा हिन्दीमें नहीं देसकते। यदि विज्ञान परम सत्यका प्रतिपादन करता है तो वह किसी विशेष भाषाका दास नहीं हो सकता और साढ़े तेरह करोड़ भारतीयों द्वारा समादृत और संसारके उच्चतम साहित्यसे विभूषित हिन्दी उसके लिए संसारकी किसी भाषासे कम उपयुक्त नहीं है।

× × ×

व्याख्यानोंसे विज्ञानके अनेक विद्यार्थियोंको यह प्रोत्साहन मिला कि वैज्ञानिक विषयोंको अपनी भाषा में व्यक्त करने लगे। उन्होंने विज्ञान सम्बन्धी लेख लिखे और विज्ञानका पोषण करने लगे। "विज्ञान" मासिक पत्रको इन अभिनव वैज्ञानिकोंसे लेख न मिलते तो वह कहींका न होता।

अर्थ संकोचके कारण इन लेखोंके लिये एक कौड़ी भी पारिश्रमिक देनेका सामर्थ्य न था और न है। सम्पादक तो सदासे उसकी अवैतनिक सेवा करते आये और प्रयोगशालाओं ने अपने व्ययसे प्रयोग दिखलाये। मातृभाषाके शुद्ध प्रेम भावने ही हमारे विद्वान् वैज्ञानिकोंसे यह अवैतनिक सेवा करवायी है। ऐसा न होता तो हम विज्ञान जैसा सचित्र पत्र इतने सस्ते दामोंपर कभी निकाल न सकते। परिषत्‌के सम्पूर्ण परिवारने मातृभाषाके लिये यह त्याग अपना परम कर्त्तव्य समझा और उसे अबतक निबाहता आया है। फल यह हुआ कि अब तक प्रायः सभी तरहके वैज्ञानिक विषयोंपर दस हज़ार डबलक्रौन अठपेजे पृष्ठोंकी सामग्री हिन्दी साहित्यको परिषत् भेट कर सकी है। हम दावेके साथ कह सकते हैं कि किसी और प्रान्तीय भाषामें इतनी वैज्ञानिक सामग्री मौजूद नहीं है। यह गौरव हमारी राष्ट्रभाषाको ही प्राप्त है।

+ + +

आरम्भमें विज्ञानकी भाषा और विषय दोनोंका परिमाण ऊँचा नहीं था। सुबोधता और सरलताके लक्ष्यके कारण यह स्वाभाविक ही था। परन्तु यह परिमाण उत्तरोत्तर बढ़ता गया है। उसके पाठकोंको भी अधिक ऊँचा उठाना ज़रूरी था। परन्तु सदा वे ही पाठक विज्ञान पढ़ा करें और नये पाठक न पढ़ें, ऐसा तो हो नहीं सकता। अतः अब भरसक यह जतन किया जायगा कि सभी तरहके पाठकों के लिये पठनीय सामग्री रहा करे।

+ + +

अपने सहयोगियोंसे भी हमारी विनीत प्रार्थना है। विज्ञानमें छपे लेखको उद्धृत करें और उनका प्रचार कर हिन्दी साहित्यका उपकार करें। परन्तु साथ ही कृपाकर अन्तमें "विज्ञान से" अवश्य ही लिख दिया करें। इतना कर देनेसे उनकी कोई हानि नहीं है और हमारा लाभ है। सम्पादकका तो यह साधारण कर्त्तव्य है और हमें लिखनेकी आवश्यकता भी न थी। इन टिप्पणियोंमें यह लिखनेकी आवश्यकतायें प्रतीत हुईं कि पिछले नवीं अपरैलके प्रतापमें "गणिताचार्य्य श्रीनिवास रामानुजन्" नामक लेख उद्धृत हुआ, परन्तु अन्तमें केवल "वि०" दिया हुआ है जिससे यह पता नहीं चलता कि "वि०" का अर्थ है "विज्ञानसे उद्धृत"। कोई यहभी समझ सकता है "वि०" का अर्थ है "विज्ञापन"। अतः इस लेखको पढ़नेकी जरूरत नहीं है। ऐसे भी पाठक हैं जो विज्ञापनोंके पढ़नेमें अपने अनमाल क्षण नष्ट नहीं करना चाहते।

—रामदास गौड़

हिन्दू ज्योतिष

[ले० पीतमलाल गुप्त, एम. एस-सी]

हिन्दू समाजमें प्रत्येक बच्चेका नामकरण संस्कार होता है और नामके साथही यह भी बताया जाता है कि इस बच्चेका जन्म अमुक नक्षत्रके अमुक चरणमें हुआ और उसकी नामराशि अमुक है।

प्रिय पाठक! यहाँपर प्रश्न उत्पन्न होता है कि यह राशि, नक्षत्र, और चरण क्या वस्तु हैं और इनके क्या अर्थ हैं?

आजकलके ज्योतिषी प्रायः इस प्रश्नका उत्तर अंडबड देते हैं और शीघ्रबोधसे (क्योंकि शीघ्रबोधको पढ़ना ही आजकल ज्योतिषी बन जाना है) अनेक श्लोक सुनाकर कह देते हैं कि राशि इत्यादि ऐसी वस्तुएँ हैं जिनके बिना ज्योतिषमें तनिक भी नहीं चल सकते और प्रत्येक मनुष्यके जीवनपर उसके जन्मदिनकी राशि नक्षत्र इत्यादिका बहुत प्रभाव पड़ता है। मामूली मनुष्यकेलिए जिसने कुछ विद्या प्राप्त नहीं की, जिसके हृदय और मनमें सहस्रों वर्षोंके अंधकारके संस्कार पड़े हुए हैं, यह तथा ऐसा उत्तर संतोषजनक हो जाते हैं और वह सत्य मनसे अपने पंडितों और पूजनीय पूर्वजोंकी प्रशंसा कर अपने मनमें आनन्द मनाता है। परन्तु क्या यह उत्तर एक ऐसे पुरुष के लिए पर्याप्त है जिसके मनमें विद्याका सूर्य्य प्रकाशित है और जो अपने प्रश्नके समाधानकेलिए प्रत्येक विद्वान् और प्रत्येक आर्ष ग्रन्थकी सम्मतिकी खोजमें लगा रहता है और जबतक संतोषजनक उत्तर नहीं मिल जाता वह शान्त नहीं होता है।

पाठकगण! मेरी सम्मतिमें हमारे पूर्वज इतने विद्वान्, पवित्र हृदय, पवित्रात्मा, और पुरुषार्थी थे कि उन्होंने प्रत्येक वैज्ञानिक सिद्धान्तके मर्मको जाना, और जानकर उनका प्रत्येक दिनके जीवनमें उपयोग किया, जिससे वे सिद्धान्त अत्यन्त सरलतासे सर्वसाधारणतक पहुँचें और उनको लाभ पहुंचावें।

राशि, नक्षत्र, और चरण

हम प्रत्येक दिन देखते हैं कि सूर्य्य पूर्व दिशामें प्रातःकाल उदय होता है और संध्याकालमें पश्चिममें अस्त हो जाता है। इससे हम कहते हैं कि सूर्य्य रात दिनके ८ पहरमें पृथ्वीकी एक परिक्रमा करता है। परन्तु यदि हम विचार करें तो ज्ञात होगा कि सूर्य्यकी यह गति अवास्तविक (apparent) है और वास्तवमें पृथ्वी अपनी कीलीपर ८ पहर अर्थात् दिन रातमें एक बार घूमती है और इसी कारण दिन रात होते हैं। उदाहरणार्थ एक दीपक ले लीजिये और उससे थोड़ी दूरीपर एक गेंद रखिये तो आप देखेंगे कि आधी गेंद प्रकाशित है और आधी अप्रकाशित। जो भाग दीपककी ओर है उसीपर दीपकका प्रकाश पड़ता है। ठीक इसी प्रकार पृथ्वीका जो भाग सूर्य्यकी ओर रहता है वह प्रकाशित रहता है अर्थात् वहां दिन होता है और जो दूसरी ओर रहता है वहां रात। धीरे धीरे पृथ्वी अपनी कीलीपर घूमती है और इस प्रकार रात दिन सम्पूर्ण पृथ्वीपर होते हैं।

पृथ्वी अपनी कीलीपर पश्चिमसे पूर्वको घूमती है। इसी कारण सूर्य्य पूर्वसे पश्चिमको (विपरीत दिशामें) चलता प्रतीत होता है। उदाहरणार्थ मान लीजिये कि किसी स्टेशनपर दो रेलगाड़ी बराबर बराबर पटरियोंपर खड़ी हैं और अंजन विपरीत दिशाओंमें हैं। यदि एक रेलगाड़ी पूर्व दिशामें चले तो चलती हुई गाड़ीवाले मनुष्योंको दूसरी गाड़ी, जो वास्तवमें स्थिर है, पश्चिम दिशामें चलती प्रतीत होगी। ठीक इसी प्रकार सूर्य्य जो स्थिर है वह चलता प्रतीत पड़ता है, और चूंकि पृथ्वी पश्चिमसे पूर्वको चलती है सूर्य्य पूर्वसे पश्चिमको चलता प्रतीत होता है।

ऊपरके उदाहरणोंसे एक बात और निकलती है। मान लो कि अ नामक रेलगाड़ी खड़ी है और ब नामक पश्चिमको जा रही है, तो किसी विशेष समयके पश्चात् अ और ब के बीचमें वही अन्तर होगा जो अन्तर उस दशामें होगा जब ब नामक रेलगाड़ीको

स्थिर और अ नामक रेलगाड़ीको चलता माना जावे। दिशा अवश्य एक दूसरेके प्रतिकूल होगी। ठीक इसी तरह यदि हम सूर्य्यके स्थानमें पृथ्वीको स्थिर मान लें और सूर्य्यको पृथ्वीके स्थानमें उसी वेगसे चलता हुआ मानलें तो भी उनके बीचका अन्तर इत्यादि सब दृश्य ठीक ठीक वैसे ही होंगे जैसे सूर्य्यको स्थिर और पृथ्वीको गतिवान् मानकर होते हैं क्योंकि जहां कहीं सापेक्ष गतिपर (relative motion) विचार करना है वहांपर ऐसा माननेमें कोई हानि नहीं होती है।

इसी सिद्धान्तको मानकर सम्पूर्ण ज्योतिषकारों-ने सूर्य्य और पृथ्वीके सापेक्ष गतिके सब दृश्योंकी व्याख्या सूर्य्यको गतिवान और पृथ्वीको स्थिर मानकर की है, क्योंकि इस तरह सुभीता होता है। परन्तु उसका यह भयानक परिणाम हुआ है कि आज हम देखते हैं कि मनुष्यके मनमें सूर्य्य-की स्थिरता और पृथ्वी की गतिपर विश्वास ही नहीं आता है। कारण इसका बहुत दिनोंका अंधकार और कुसंस्कारों का प्रभाव है।

पृथ्वी अपनी कीलीपर २४ घंटेमें एकबार घूम जाती है, परन्तु साथही साथ वह सूर्य के चारों ओर एक अण्डाकार वृत्तमें ३६५.२४ दिनमें एक परिक्रमा अथवा भगण (revolution) करती है। पृथ्वीकी इस गतिके कारण वर्षमें कई ऋतु होती हैं। इस अण्डाकार मार्गको १२ भागोंमें विभाजित किया है और प्रत्येक भागका नाम राशि है। उन-के नाम ये हैं:–(१) मेष (२ वृष (३) मिथुन (४) कर्क (५) सिंह (६) कन्या (७) तुला (८) वृश्चिक (९) धन (१०) मकर (११) कुम्भ और (१२) मीन।

पृथ्वीके मार्गके १२ भागोंमेंसे प्रत्येकको राशि क्यों कहा और उनके ये नाम क्यों रखे गये। इस प्रश्नपर अब ध्यान दिलाना चाहता हूँ। थोड़ी देरके-लिए मान लीजिये कि कोई मनुष्य सूर्यपर खड़ा हुआ पृथ्वीकी ओर देख रहा है। वह पृथ्वीको और उसके आस पासके तारागणोंको तो देख सकैगा, पर उन तारागणोंको नहीं देख सकैगा जो पृथ्वी की आड़में होंगे।

यदि ऐसे तारागण किसी समय एक विशेष आकार जैसे मेंढ़ेका प्रकट करते हों तो हम कहेंगे कि पृथ्वी आजकल तारोंकी एक (राशि) समुदाय को जो मेषकी सी सूरत दिखाती है ढके हुए है। अर्थात् सक्षेपसे हम कह देते हैं कि पृथ्वी मेष राशिमें है।

इसी प्रकार ज्यों ज्यों पृथ्वी आगे बढ़ती है कुछ तारे जो पहिले पृथ्वीकी ओटमें थे दिखाई देने लगते हैं और जो दिखाई देते थे उनमेंसे कुछ पृथ्वीसे ढक जाते हैं। कुछ दिनोंमें तारोंकी एक ऐसी राशि आजाती है जो बैलकी (वृष) सूरत प्रकट करती है। इस प्रकार पृथ्वीके भ्रमण पथमें वर्ष भरमें तारागणोंकी बारह आकृतियां आकाशमें बनती हैं जिन्हें हम बारह राशि कहते हैं। राशि शब्दका अर्थ समझमें आ गया।

जब पृथ्वी एक राशिसे दूसरी राशिमें प्रवेश करती है उसको 'संक्रांति' कहते हैं। एक संक्रान्तिसे दूसरी संक्रान्ति तकका समय एक मास कहलाता है।

इस अवसर पर यह कह देना अनावश्यक न होगा प्रत्येक जातिके (nation) ज्योतिषकारोंने पृथ्वीके मार्गके ये ही नाम रखे हैं और उनके ये ही अर्थ हैं। प्रतीत होता है कि इन राशियोंका ज्ञान सबको एक दूसरेके पश्चात् एक ही स्रोतसे हुआ है। वह स्रोत अथवा ज्ञानका भण्डार हमारा भारत देश ही है।

अब हम बारह राशियोंके नाम जो कई जातियोंने रखे हैं और उनके अर्थ दिखाते हैं:—

हिन्दू	युवनानी	अंग्रेजी	अर्थ
१ मेष	Aries	Ram	मेढ़ा

२ बृष	Taurus	Bull	बैल
३ मिथुन	Gemini	Twines	स्त्री पुरुष
४ कर्क	Cancer	Crab	केकड़ा
५ सिंह	Lio	Lion	सिंह
६ कन्या	Virgo	Virgin	कन्या
७ तुला	Libra	Balance	तराजू
८ बृश्चिक	Scorpio	Scorpion	बीछू
९ धन	Sagittarius	Archer	धनुष
१० मकर	Capricornus	Capricorn	मगर
११ कुम्भ	Abuarius	Water-boarer	घड़ा
१२ मीन	Pisces	Fish	मछली

नक्षत्र

जिस प्रकार पृथ्वी सूर्य्यके चारों ओर एक अण्डाकार वृत्तमें ३६५.२४ दिनमें घूमती है उसी प्रकार चन्द्रमा पृथ्वीके चारों ओर एक अण्डाकार वृत्तमें २७.३२१६ दिन वा २७ दिन ८ घंटेमें घूम आता है। परन्तु जबतक चन्द्रमा एक परिक्रमा पूरी करता है पृथ्वी अपने मार्गमें अपने स्थानसे कुछ आगे बढ़जाती है परन्तु चन्द्रमा उसके चारों ओर घूमता ही रहता है अतएव चन्द्रमा पृथ्वीके चारों ओर अपनी परिक्रमा २९ दिन १२$\frac{3}{4}$ घंटेमें पूरी करता है। और इसलिए चन्द्रमास २९ दिन १२$\frac{3}{4}$ घंटेका होता है।

जब चन्द्रमा पृथ्वी के चारों ओर घूमता है तब बहुतसे तारे चन्द्रमाके कारण दृष्टिगोचर नहीं होते। इन सब तारोंका समुदाय भी एक विशेष आकारका होता है और उसी आकारानुसार उस समुदायका का नाम रखा गया है। ज्यों ज्यों चन्द्रमा आगे बढ़ता है त्यों त्यों कुछ तारे, जो दिखाई नहीं देते थे दिखाई देने लगते हैं और कुछ जो दिखाई देते थे छिप जाते हैं। कुछ समय के पश्चात् तारोंका एक दूसरा समुदाय दूसरे आकारका ढक जाता है। इसी प्रकार चन्द्रमाकी एक सम्पूर्ण परिक्रमामें २७ तारोंके समुदाय बारी बारीसे ढक जाते हैं। इन २७ समुदायोंमेंसे प्रत्येकको नक्षत्र कहा है और प्रत्येक नक्षत्रका नाम उस समुदायके आकारानुसार रखा है।

प्रत्येक समुदायमें एक तारा बहुत बड़ाऔर चन्द्रमार्गके अति निकट पाया जाता है उस तारेको नक्षत्रका 'योगतारा' कहते हैं और जब तक चन्द्रमा एक नक्षत्रके मार्गको चलता है उस समयको उस नक्षत्रका 'भोग' कहते हैं।

अब हम २७ नक्षत्रों के नाम और उनके आकार दिखाते हैं:—

	नक्षत्र	आकार
१	अश्विनी	अश्व का शीर्ष
२	भरणी	योनि अथवा भगा
३	कृत्तिका	तलवार
४	रोहिणी	एक पहियेकी गाड़ी
५	मृगशिरा	मृगका शिर
६	आर्द्रा	लाल (Gem)
७	पुनर्वसु	गृह
८	पुष्प	तीर
९	आश्लेषा	पहिया
१०	मघा	दूसरा घर
११	पूर्वा फाल्गुनी	चारपाई
१२	उत्तरा फाल्गुनी	दूसरी चारपाई
१३	हस्त	हाथ
१४	चित्रा	मोती
१५	स्वांति	सीपी
१६	विशाखा	पत्तोंकी बंदनवार
१७	अनुराधा	देवपूजा
१८	ज्येष्ठा	कानकी बाली
१९	मूल	सिंहकी पूंछ
२०	पूर्वाषाढ़	हाथीदांत
२१	उत्तराषाढ़	चौकी
२२	श्रवण	विष्णुके ३ पैर
२३	धनिष्टा	एक प्रकार का डेरा

२४	शतभिषा	मोतियोंका वृत्त
२५	पूर्वा भाद्रपद	दूसरी चौकी
२६	उत्तरा भाद्रपद	दोनों ओर मुंहवाली मूर्त्ति
२७	रेवती	एक छोटा सा डेरा

भोग और चरण

प्रत्येक नक्षत्रके भोगको, अर्थात् उस समयको जिसमें चन्द्रमा एक नक्षत्रको पार करता है, ४ सम भागोंमें विभाजित किया है और प्रत्येक भागका नाम चरण रखा है। इस प्रकार हर एक नक्षत्रके ४ चरण होते हैं।

वैज्ञानिक पुस्तकें

१—विज्ञान प्रवेशिका भाग १—ले० प्रो० रामदास गौड़, एम. ए., तथा प्रो० सालिग्राम, एम.एस-सी. ।)
२—मिफताह-उल-फ़नून—(वि० प्र० भाग १ का उर्दू भाषान्तर) अनु० प्रो० सैयद मोहम्मद अली नामी, एम. ए. ... ... ।)
३—ताप—ले० प्रो० प्रेमवल्लभ जोशी, एम. ए. तथा श्री विश्वम्भरनाथ श्रीवास्तव ... ॥=)
४—हरारत—(तापका उर्दू भाषान्तर) अनु० प्रो० मेहदी हुसेन नासिरी, एम. ए. ... ।)
५—विज्ञान प्रवेशिका भाग २—ले० अध्यापक महावीर प्रसाद, बी. एस-सी., एल. टी., विशारद १)
६—मनोरंजक रसायन—ले० प्रो० गोपालस्वरूप भार्गव एम. एस-सी. । १॥)
७—सूर्य सिद्धान्त विज्ञान भाष्य—ले० श्री० महावीर प्रसाद श्रीवास्तव, बी. एस-सी., एल. टी., विशारद
मध्यमाधिकार ... ... ॥=)
स्पष्टाधिकार ... ... ।॥)
त्रिप्रश्नाधिकार ... ... १॥)
चन्द्रग्रहणाधिकारसे ग्रहयुत्यधिकार तक १॥)
उदयास्ताधिकारसे भूगोलाध्याय तक ॥)
८—पशुपक्षियोंका शृङ्गार रहस्य—ले० श्री० सालिग्राम वर्मा, एम.ए., बी. एस-सी. ... -)
९—ज़ीनत वहश व तयर—अनु० प्रो० मेहदी-हुसैन नासिरी, एम. ए. ... ... -)
१०—केला—ले० श्री० गङ्गाशङ्कर पचौली -)
११—सुवर्णकारी—ले० श्री० गङ्गाशङ्कर पचौली ।)
१२—गुरुदेवके साथ यात्रा—ले० अध्या० महावीर प्रसाद, बी. एस-सी., एल. टी., विशारद ।-)
१३—शिक्षितोंका स्वास्थ्य व्यतिक्रम—ले० स्वर्गीय पं० गोपाल नारायण सेन सिंह, बी.ए., एल.टी. ।)
१४—चुम्बक—ले० प्रो० सालिग्राम भार्गव, एम. एस-सी. ... ... ।=)
१५—क्षयरोग—ले० डा० त्रिलोकीनाथ वर्मा, बी. एस-सी, एम-बी. बी. एस ... -)
१६—दियासलाई और फ़ास्फ़ोरस—ले० प्रो० रामदास गौड़, एम. ए. ... ... -)
१७—कृत्रिम काष्ठ—ले० श्री० गङ्गाशङ्कर पचौली =)
१८—आलू—ले० श्री० गङ्गाशङ्कर पचौली ... ।)
१९—फसल के शत्रु—ले० श्री० शङ्करराव जोशी ।-)
२०—ज्वर निदान और शुश्रूषा—ले० डा० बी० के० मित्र, एल. एम. एस. ... ।)
२१—कपास और भारतवर्ष—ले० पं० तेज शङ्कर कोचक, बी. ए., एस-सी. ... -)
२२—मनुष्यका आहार—ले० श्री० गोपीनाथ गुप्त वैद्य ... ... १)
२३—वर्षा और वनस्पति—ले० शङ्कर राव जोषी ।)
२४—सुन्दरी मनोरमाकी करुण कथा—अनु० श्री नवनिद्धिराय, एम. ए. ... ... -)॥
२५—वैज्ञानिक परिमाण—ले० डा० निहाल करण सेठी, डी. एस. सी. तथा श्री सत्य-प्रकाश, एम. एस-सी० ... ... १॥)
२६—कार्बनिक रसायन—ले० श्री० सत्य-प्रकाश एम-एस-सी० ... ... २॥)
२७—साधारण रसायन—ले० श्री० सत्यप्रकाश एम० एस-सी० ... ... २॥)
२८—वैज्ञानिक पारिभाषिक शब्द, प्रथम भाग—ले० श्री० सत्यप्रकाश, एम० एस-सी० ... ॥)
२९—बीज ज्यामिति या भुजयुग्म रेखा गणित—ले० श्री० सत्यप्रकाश, एम० एस सी० ... १।)
३०—सर चन्द्रशेखर वेङ्कट रमन—ले० श्री० युधिष्ठिर भार्गव एम० एस-सी० ... =)
३१—समीकरण मीमांसा प्रथम भाग ... १॥)
३२—समीकरण मीमांसा दूसरा भाग—ले० स्वर्गीय श्री पं० सुधाकर द्विवेदी ... ॥=)
३३—केदार बद्रीयात्रा ... ।)

पता—मंत्री विज्ञान परिषत्, प्रयाग।

मुद्रक—शारदा प्रसाद खरे, हिन्दी-साहित्य प्रेस, प्रयाग।

पूर्ण संख्या—
२१६

भाग ३७
VOL. 37.

मिथुन, संवत् १९९०

जून, १९३३

संख्या ३
No. 3

प्रयागकी विज्ञान परिषत्‌का मुखपत्र

'VIJNANA' THE HINDI ORGAN OF THE VIGNANA PARISHAT

ALLAHABAD

सम्पादक

रामदास गौड़

तथा

ब्रजराज

प्रकाशक

वार्षिक मूल्य ३)] विज्ञान-परिषत्, प्रयाग। [१ प्रतिका मूल्य ।)

विषय-सूची

१—वैज्ञानिक पारिभाषिक शब्द

[Hindi Scientific Terminology]

प्रथम भाग

इसमें शरीर विज्ञान, वनस्पति शास्त्र, भौतिक विज्ञान, और रसायन शास्त्र (भौतिक, कार्बनिक और अकार्बनिक) के पारिभाषिक शब्दोंका संग्रह है ।

—सम्पादक—सत्यप्रकाश, एम० एस-सी०, मूल्य ॥)

२—बीज ज्यामिति

[Conic Section]

ले० सत्यप्रकाश, एम० एस-सी०

सरलरेखा, वृत्त, परवलय, दीर्घवृत्त और अतिपरवलय का विवरण । मूल्य १॥)

३—प्रकाश रसायन (Photochemistry)

ले० श्री वा० वि० भागवत

रसायन के सम्पूर्ण रासायनिक अंगों का उपयोगी वर्णन । मूल्य १॥)

विज्ञानंब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० ।३।५॥

भाग ३७ } मिथुन, संवत् १९९० { संख्या ३

मङ्गलाचरण

(स्व० पं० श्रीधर पाठक)

जितना लघु परमाणु, द्रव्यके कणका कण है
जितना अटक, अटूक, कालका टुकड़ा क्षण है
जितना लघु कीटाणु-जन्तुका तन औ मन है
क्षणिक जीवियों का जीवन औ जनन मरन है
बस उतनाही चट विश्वसब उसका अणुतम अंश है
जो अमित अमेय अनादि प्रभु मेरा मानसहंस है

ज्ञान और भक्ति

[ले० रामदास गौड़]

यद्यपि धर्म अधर्म्म पाप या पुण्य सबकेलिये समान नहीं, यद्यपि सबके कर्तव्य अलग अलग हैं तथापि सबका यह उद्देश्य समान है, एक है, कि हम उन्नति करें, हम बढ़ें, हम अच्छे रहें, हमें सुख मिले, हम दुखी न हों। आदर, मान, धन-सम्पत्ति-विद्या, सन्तान सभी कुछ एक शब्द उन्नति वा वृद्धिमें आजाता है। वृद्धि होती जाती है, पर मनुष्य अपनी दशासे सन्तुष्ट नहीं होता। उसकी वासना सदा अतृप्त रहती है। उसकी अभिलाषा वृद्धिसे भी दो क़दम आगे बढ़ी रहती है। सांसारिक सुखोपभोगके प्यालेपर प्याले ढालता जाता है। उसीकी मस्तीमें झूमता रहता है। पर सुखकी प्यास बुझती ही नहीं, हर प्याले पर बढ़ती जाती है, न जाने वह कौनसा स्वाद है जो उत्तेजित होता जाता है। वह कौनसी मस्ती है जिसका ओर छोर नहीं दीखता। यह अतृप्त वासना पुकार पुकार कह रही है कि यह उस दरजेका सुख नहीं जिसकी तुझे खोज है, यह वह आनन्द नहीं जिसके पीछे तू बावला हो रहा है।

"आनन्द सिन्धु मध्य तव वासा।
बिन जाने कत मरसि पियासा॥"

पर मनुष्य परीक्षाओंमें लीन है और उनसे ग़लत नतीजे, भ्रमात्मक निष्कर्ष, निकाल रहा है। मिठाईमें

मिठास, शब्दमें मनोहरता, रूपमें सौन्दर्य्य, गन्धमें सुबास, स्पर्शमें कोमलता देख बाहरी वस्तुओंमें इनका आरोप करके सुखका पता लगानेको डाल डाल पात पात भटकता है। अपने नाभिके सुबाससे बावला हिरन जंगल जंगल छलांगें भरता बियाबानोंकी खाक छानता फिरता है कि "परम सुगन्ध कहां ते आयो," और सांसारिक श्वान सूखी हड्डी चबाकर अपने मुखके रक्तसे प्रसन्न हो समझता है कि सूखी हड्डीका ही स्वाद है। इन्ही भ्रमोंसे अपनी अतृप्त वासनाओंको सन्तुष्ट करनेको सामान पर सामान इकट्ठा करता है, सामग्री पर सामग्री बटोरता जाता है। संसार की वाह्य सामग्री अनन्त नहीं, वह झट चुक जायगी, पर वासनाको अनन्त सुखकी खोज है, वह बढ़ती ही जायगी, अनन्त ही हो जायगी और जबतक वासनाकी तृप्ति नहीं सुख कहां? यदि विषय और वासनाका सम्बन्ध भिन्नके रूपमें दिखावें और विषयको भाग और वासनाको हर करके दिखावें तो यहरूप होगा—

$\frac{१ \text{ विषय}}{१ \text{ वासना}} = १$ सन्तोष । अर्थात् यदि जितनी वासना हो उतनाही विषय भी प्राप्त हो तो सन्तोष हो जायगा और "सन्तोषं परमं सुखम्" परन्तु यथार्थ में जितनी वासना होती है उतना विषय मिल नहीं सकता। इसलिए यदि विषयको एक, वासनाको दो मानें तो भजन फल $\frac{१}{२}$ सुख अर्थात् आधा सुख होगा। वासना जितनीही बढ़ती जायगी सुखकी मात्रा उतनीही घटती जायगी। वासना अनन्त हुई तो सुखका अंक, भजनफल, शून्य हो जायगा।

इसीके विरुद्ध यदि हम वासनाको ही घटाते जायँ तो सुखका अंक बढ़ने लगेगा। यदि वासना शून्य हो जाय तो अत्यल्प विषय भी अनन्त सुखका कारण होगा। यहां वासना कौनसी मिटानी है। "विषय-वासना, बाहरी सुखकी सामग्रीकी इच्छा"। परमानन्द प्राप्तिकी वासना तो तभी मिटेगी जब जीव सच्चिदानन्द होजायगा।

यही बात है कि जैन, बौद्ध, हिन्दू, ईसाई, मुसलमान, सभो इस बातमें सहमत हैं कि सांसारिक विषय वासना से मनको हटाना धर्मकी एक रीति है, बुद्धिका उपाय है, आत्मसंयमका आवश्यक अंग है। एपिक्युरस वा चार्वाकके ऐसे मतानुयायी जो विकास सिद्धान्तसे कोई सम्बन्ध नहीं रखते इस आत्मसंयमके मार्गका अनुसरण अवश्य नहीं करते और यद्यपि व्यवहारमें जीवमात्र विषय वासनामें लिप्त हैं—स्वभाव विषय वासनाकी ओर खींचता है, क्योंकि परीक्षा और अनुभव पर ही संसारका विकास निर्भर है और अभी विषय वासनावाले युगका अन्त विकासकल्पमें नहीं हुआ है—तथापि संसारभरमें विकसित बुद्धिवाले विषय वासनाको वृद्धिके मार्गका कंटक समझनेमें एक मत हैं।

हम पहले कह आये हैं कि जीवात्मा के विकासका अन्त दो तरह पर समझा जाता है। एक तो यह कि जीव सच्चिदानन्द हो जायगा, दूसरे यह कि जीव ब्रह्मलीन हो जायगा। जहां जीव अपने ईशको अपनेसे भिन्न सनातन समझता है और उसके सान्निध्यकी अभिलाषा करता है, उसे स्वामी अपनेको उसका दास मानता है, सच्चिदानन्दको अपना आदर्श ठहराता है, अपना आचरण उसीके अनुकूल बनाता है, वहीं वह भक्ति मार्ग का अनुयायी समझा जाता है। परन्तु जहां जीव विचार और अनुभव और अनुशीलनसे वास्तविक सत्यकी खोज करता है, वास्तविक सत्ताको जानता है, अपनी परिस्थिति और अन्तःस्थितिकी जांच पड़ताल करके अपनी असलियतका पता लगाता है, सारांश यह कि वैज्ञानिक रीतिसे चलता है, वहां वह ज्ञान मार्ग का अनुयायी समझा जाता है। विकास वा परिणामके माननेवाले संसारमें सर्वत्र इन्हीं दो मार्गोंपर चलने वाले पाये जाते हैं। चाहे किसी नामसे पुकारे जायँ, किसी रूपमें देखे जायँ, दोनोंका उद्देश्य उन्नति वा वृद्धि है। दोनोंका मार्ग एक ही दिशामें है, एकही केन्द्रकी ओर लेजाता है। दोनों अपने शरीरको और अपनी परिस्थितिको अपना औजार मानकर काम लेते हैं।

दोनों अपनी इन्द्रियोंको अपने काबूमें रखना चाहते हैं। दोनों एक स्वरसे इस बातका इक़रार करते हैं कि :—

आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेवतु।
बुद्धिस्तु सारथिं विद्धि मनः प्रग्रहमेवच॥
इन्द्रियाणि हयान्याहुः (कठोपनिषत्)

शरीर रथ, आत्मा रथी, बुद्धि सारथी, मन लगाम है और इन्द्रियां दस घोड़े हैं। इन्हें वशमें रखने से ही राह कुशलसे कटेगी। दोनोंने मनकी बागडोर बुद्धिके हाथ दे रखी है। जो अपने गुरु, अवतार, इष्टदेव आदि किसीको आदर्श मानता है, उसके ही हाथ बागडोर देता है। जो आत्मानुभव करके अपनी बुद्धिको ट्रेन कर चुका है, उसकी बुद्धि इस काममें चाकचौबन्द हो चुकी है क्योंकि सईसी "इल्म दरियाव है।" विज्ञानवान अपनी बुद्धिकी ही सईसीमें अपनेको मंजिल मकसूद तक, अपने इष्ट तक, पहुँचाता है। यह तो हुई दोनोंमें समानता। ज्ञान और भक्ति मार्गका भेद उन दोनोंके विस्तारमें है। उन दोनोंके अनुशीलनकी रीतियोंमें है। जिस तरह शिक्षामें आजकल भाषाओंके सिखानेकी प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रीतियां (डिरेक्ट तथा इंडिरेक्ट मैथड) हैं [एक ध्वनि और शब्दको वस्तु और क्रियामें आरोप करके अर्थका अनुभव कराती है। दूसरी अपनी मातृभाषाके पर्यायोंसे परायी भाषाके शब्दको बदलकर उनके अर्थ समझ लेती है। पहली प्रत्यक्ष-रीति है दूसरी अप्रत्यक्ष।] इसी तरह आध्यात्मिक उन्नतिके लिएभी दो मार्ग हैं और उन दोनोंकी रीतियां भिन्न हैं। भक्तिमार्गमें मनुष्य अपना आदर्श अपनी उन्नति के अनुकूल चुनता है। अत्यन्त असभ्य दशामें जब कि किसी अप्रत्यक्ष और अदृश्य शक्तिसे डरकर मनुष्य एक काल्पनिक रूप खड़ा कर लेता है, तो उसकी प्रसन्नतामें अपनी भलाई और उन्नति समझता है। उसे प्रसन्न रखनेके लिये अपनी कल्पना के अनुसार अनेक उपाय रचता है। भूत, प्रेत, पिशाच राक्षस, गन्धर्व, दानव, आदिके भांति भांति के रूपों और गुणोंकी कल्पना करके उनकी पूजा वा उपासना करता है। समझता है कि यह शक्तियाँ अप्रसन्न रहनेसे हमको दुःख देंगी, कष्ट पहुचावेंगी, क्योंकि वह साधारणतया यह देखता है कि बलवान निर्बलको अप्रसन्न होनेसे सताते हैं, बल्कि भूखे रहने पर खा भी जाते हैं। मनुजादोंके युगमें इन्हीं कारणोंसे मनुष्यके बलिदान करनेकी रीति चलगयी थी। परन्तु धीरे धीरे जब सभ्यतामें उन्नति हुई, अपनी जातिकी रक्षाका भाव मनमें उदित हुआ, उस समय मनुष्यने जीके बदले जी देनेकी प्रथा चलायी और मनुष्यके बदले पशुका बलिदान करना सीखा। ज्यों ज्यों उन्हें दया और करुणाका स्वाद मिलने लगा, त्यों त्यों अपने आदर्श देवताओंमें उन्होंने दया और करुणाके भावका भी आरोप किया। आरम्भमें राक्षस मनुष्यको पकड़ कर मार डालने और खाजानेमें कोई रीति रस्म नहीं वर्तता था, परन्तु आगे चलकर उसने बिना देवताको चढ़ाये, बिना यज्ञके, भोजन करना बुरा ठहराया और फिर धीरे धीरे मनुष्यका बलिदान करना भी छोड़कर उसके बदले पशुका बलिदान ठीक समझा और यहूदियों, ईसाइयों, मुसलमानोंमें हज़रत इब्राहीमकी अपने बेटे इसहाककी कुरबानी, अपने यहांके नरमेधयज्ञ वा राजा हरिश्चन्द्रका अपने पुत्र रोहिताश्वको वरुणके लिये बलिदान करनेकी प्रतिज्ञा करना और इसी तरहकी काव्य कथाएं प्राच्य देशोंमें इस बातकी गवाही देती हैं कि मनुष्यका वास्तविक बलिदान किसी युगमें अवश्य हुआ करता था। आज भी हैजा महामारी और इस समय युद्धज्वर आदिके फैलनेपर ऐसी जातियाँ, जिनके विचार उन्नत नहीं हैं, समझती हैं कि कालीभवानी मनुष्योंको खाजाती हैं, और जीका बदला जी देनेके लिये पशुओंका बलिदान अबभी ऐसी ही दशाओंमें होता है। बलिप्रदान और यज्ञका प्राचीन कालसे चोली दामनका साथ रहा है। परन्तु जब मनुष्योंका आदर्श बढ़ा यह विचार उत्पन्न हुआ कि इस संसारका शासन करनेवाली शक्तियां मनुष्यके साथ जब लेनदेनका बर्ताव करती हैं, जब आपसमें क्रयविक्रय होता है,

तो दर्जा बराबरीका है और मनुष्य अपने पराक्रमसे इन शक्तियोंको अपने वशमें भी कर सकता है। तदनन्तर मनुष्यने अपने लक्ष्यको और ऊँचा बढ़ाया और ऐसे देवकी भक्ति आरम्भ की, जिसके हाथमें इन सब शक्तियों का सूत्र हो जो इन सबसे बड़ा हो। श्रीमद्भगवद्गीता में भी कहा है।

सहज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजा पतिः।
अनेम प्रसविष्यध्वमेष वोऽस्त्विष्ट काम धुक् ॥१०॥
देवान् भावयतानेन ते देवा भावयन्तु वः।
परस्परं भावयन्तः श्रेयः परमवप्स्यथ ॥११॥
इष्टान्भोगान्हिवो देवा दास्यन्ते यज्ञभाविताः।
तैर्दत्तानप्रदायेभ्योये भुङ्क्ते स्तेन एव सः ॥१२॥
यज्ञ शिष्टाशिनः सन्तो मनुष्यन्ते सर्व किल्विषैः।
भुंजते ने त्वघं पापा ये पचन्त्यात्मकारणात् ॥१३॥

प्रारम्भमें यज्ञके साथ साथ प्रजाको उत्पन्न करके ब्रह्माने कहा कि इस यज्ञके द्वारा तुम्हारी वृद्धि होने से यह यज्ञ तुम्हारी कामधेनु होवे। अर्थात् तुम्हारे इच्छित फलोंको देनेवाला होवे। तुम इस यज्ञसे देवताओंको सन्तुष्ट करते रहो। देवता तुम्हें सन्तुष्ट करते रहें। परस्पर एक दूसरे को सन्तुष्ट करते हुए दोनों परम श्रेय अर्थात् कल्याण प्राप्त करो। यज्ञसे सन्तुष्ट होकर देवता लोग तुम्हारे इच्छित भोग तुम्हें देंगे। उन्हींके दिये हुए भागोंमें से उन्हें भाग न देकर जो अकेले आपही उपभोग करता है वह चोरी करता है। यज्ञ करके शेष बचे हुए भागके ग्रहण करनेवाले सज्जन सब पापोंसे मुक्त हो जाते हैं। परन्तु यज्ञ न करके केवल अपने ही लिये जो अन्न पकाते हैं वह पापी लोग पाप भक्षण करते हैं।

इस शब्दोंके शब्दार्थ मात्र ऊपर दिये गये हैं। आध्यात्मिक अर्थ चाहे जो कुछ लगाये जायँ परन्तु साधारणतः इसमें सन्देह नहीं मालूम होता कि मनुष्यने जब इतनी उन्नति करली कि देवताओं को वा प्राकृतिक शक्तियोंको उनके ठीक मूल्यपर आँकने लगा और क्षमा दया करुणा आदिकी वृद्धि हुई तो वह "अहिंसा परमोधर्मः" का मन्त्र पढ़ने लगा। वह अपने परम देवता परम पूज्य और देवोंके देवको अहिंसाकी मूर्ति मानने लगा। चाहे उसे अर्हत, तीर्थंकर वा बुद्ध कहता हो और चाहे दूसरे रूपमें प्रेमकी पराकाष्ठा वा प्रेमका आदर्श मानकर अल्लाह (प्रेम) राम, कृष्ण, वा ईसाके रूपमें मानता हो। इस विषयपर गम्भीर विचार करनेसे यह पता चलता है कि मनुष्य अपने आदर्शको अपनी उन्नति के साथ साथ बढ़ाता रहा है। जिन विचारोंको उसने उच्च समझा, जिन भावोंको उसने उत्तम पाया, जिन बातों को उसने सत्य प्रिय और हित जाना और जिन क्रियाओंको उसने विकासके मार्गमें सहायक देखा--निदान जिन विचारों भावों वचनों और क्रियाओं को उसने धर्म और कर्तव्य समझा—अपने आदर्शमें उन्हींका आरोपण किया। अपने आदर्शको उनका काल्पनिक रूप देखकर अपने हृदय मन्दिरमें पधराया और जिस प्रकार हो सका मन बचन कर्मसे अपने आदर्शका आदर किया। "इंजीलके खुदाने मनुष्यको अपने अनुरूप बनाया", इस बातकी हँसी उड़ाते हुए फ्रांसके प्रसिद्ध दार्शनिक वाल्टेयरने कहा है कि मनुष्यने भी अच्छा बदला लिया कि उसने ईश्वरको ही अपने अनुरूप बना डाला। मर्मज्ञ लोग इस बातको दूर तक समझे, इसमें सन्देह नहीं कि उस वास्तविक अचिन्त्य और कल्पनातीत सत्ताको कल्पनाके शिकंजेमें कसकर अपने अनुरूप काट छांट करना और मन चाही पोशाक पहिनाना कैसा असम्भव है। कहनेकी आवश्यकता नहीं, उलटा कर हाथको ही पकड़ले, कैसे हो सकता है? बुद्धि चित्त अहङ्कार जो अन्तःकरण अर्थात् भीतरी औजार हैं इनकी क्या मजाल है कि उलट कर अपने पकड़ने वाले हाथोंका पता लगा सकें। इसी लिये यह कहना पड़ता है कि जितनी कुछ बातें आदर्श रूपसे कही जासकती हैं या जिनका आरोप ईश्वरमें हो सकता है वह उस वास्तविक सत्तासे बहुत दूर हैं, तो भी साथही मनुष्यके विकास मार्गमें बहुत सहायक हैं। यहां तक कि जब मनुष्य अपने आदर्शकी कल्पनामें इतनी दूर पहुँच जाता है कि

अपने गुरु वा इष्टदेव में अपने कल्पित समस्त ऐश्वर्यकी रचना कर लेता है, जब आदर्श सर्वांगपूर्ण हो जाता है, जब कोई कसर नहीं रहजाती, उसकी चेतनाका प्राकृतिक विकास उसे उसकी वास्तविक सत्ताकी कल्पना तक खींच लेजाता है। अपने मंजिल तक पहुँचने पर उसे पता लग जाता है कि अभी रास्ता और आगे गया है और उद्दिष्ट स्थान कुछ आगे जाकर मिलेगा। अपने देवाधिदेव भगवानकी षोड़शोपचार पूजा करते करते बाहरी विग्रहको मनके चित्रपट पर उतारता है और अपने उपास्यके सब गुणोंको अपने चरित्रमें लाकर जब "तन्मय" हो जाता है, जब उसके रोम रोममें राम रम जाता है, जब वह अपने उपास्य वा आदर्शको ही सर्वत्र देखता है, निदान जब उसे अपने परम प्यारे का ऐसा सामीप्य प्राप्त हो जाता है कि उसे वह वस्तुतः अपने हृदयमें वा मनमें बिठा लेता है, जिसे अन्य शब्दोंमें "उपासना" कहते हैं; उस दशामें यह कैसे सम्भव है कि भक्त और भक्त भावन, उपासक और उपास्य, प्रेमी और प्यारे, यह दो रह जायँ और "मैं" और "तुम" का झगड़ा बना रहे, द्वैत भाव तुरन्त नष्ट न हो जाय। भक्ति मार्गका आरम्भ चाहे जिस रूपमें हो, अन्तका तो इसी रूपमें होना अनिवार्य्य है। जब तक यह अन्त नहीं आया, तब तक भक्ति मार्गी अपने प्रेम पात्रको वा आदर्शको अपनेसे अलग माना ही चाहें। उसके यह मान लेनेमें कि "वह मैं ही हूँ" उपासना ही बिगड़ जाती है, भावही बदल जाता है। वह अप्रत्यक्ष रीति "इनडिरेक्ट मेथड" ही नहीं रह जाता। ज्ञानी भी भक्तिके मार्गकी अवहेलना नहीं करता, भक्तिमार्गमें कठिनाइयां कम हैं, इसलिये ज्ञानीभी बहुधा भक्ति मार्गमें ही सुभीता देखता है और सिद्धान्तोंको समझते हुए भी इकरार करता है।

"सत्यपि भेदापगमे, नाथ तवाहं न मामकीनस्त्वं
सामुद्रोहि तरंगः क्वचन समुद्रो न तारंगः।

हे नाथ अभेद होते हुए भी मैं तुमसे हूँ तुम मुझसे नहीं हो। तरङ्ग समुद्रसे होता है, समुद्र तरङ्गसे कभी नहीं होता।

ज्ञानका मार्ग साधारणतः कठिन ही समझा जाता है। क्योंकि ज्ञानी पर दायित्व है। भक्त अपने स्वामी भक्तिभावनके आसरे रहता है। ज्ञानी अपनेको ब्रह्मसे भिन्न मानता ही नहीं। तुलसी-दासजी श्रीरामचन्द्रजी के मुखसे कहलाते हैं—

मोरे प्रौढ़ तनयसम ज्ञानी।
बाल अबुध सम भक्त अमानी॥

जवान लड़के माता पिताके आसरे नहीं रहते। माँ बाप उनकी चिन्ता भी नहीं करते, क्योंकि अपनी देख रेख के वह आप जिम्मेदार हैं। तो भी यह तो स्पष्ट है कि यह बालक कभी छोटे भी रहे होंगे। ज्ञानी होजाने के पहले ज्ञानमार्गीका भक्त होना आवश्यक है। ज्ञानके आरम्भमें भी भक्तिके आरम्भिक दरजे ही हैं। हिसाब सिखानेमें जैसे गुणा भाग आदिके नियम याद करा दिये जाते हैं, उनका अभ्यास कराया जाता है। बारबार अभ्यास करते करते वही नियम अँगुलियों पर उतर आते हैं, स्वाभाविक हो जाते हैं, उनसे सारे काम होते हैं। पर उन नियमोंके मूल कौनसे सिद्धान्त हैं, वह नियम कैसे बने, इन बातोंको जब वह बहुत ऊँचे दरजेमें बीजगणित पढ़ता है तभी जानता है, इसी तरह आरम्भमें सिद्धान्त न समझे रहने पर भी मनुष्य वेदान्तकी रीतिसे उपासना करता और बारबार तत्व ज्ञानकी शिक्षा भी पाता रहता है। यदि "अयंखलु क्रतुमयः पुरुषः" या मनुष्य जैसा सोचता है वैसाही हो जाता है, यह वैज्ञानिक नियम है और सच्ची बात है तो "अहंब्रह्मास्मि" (मैं ब्रह्म हूँ) "सर्वंखल्विदं ब्रह्म" (यह सारा ब्रह्मही ब्रह्म है) इन वाक्यों पर निरन्तर चित्त जमाये रहनेसे मनुष्यके जीवन मरणसे मुक्त हो जानेमें, विकासके इन्द्रजालजे छूट जानेमें और जीवसे ब्रह्म भावना मनसे दृढ़ हो जानेमें कोई सन्देह नहीं हो सकता। संसारके दुःख सुख हर्षामर्षका असत्य समझते समझते उसको निश्चय इन बन्धनोंसे मुक्ति हो जानी चाहिये। साथ ही "अहं ब्रह्मास्मि" यह ज्ञा

दृढ़तासे हृदय पर अंकित हो जाय और "सर्वं खल्विदं ब्रह्म" (यह सब ब्रह्म ही है) यह भूल जाय तो उपासक आधा सत्य माननेके कारण भ्रमजालसे छुटकारा पानेके बदले और भी उलझ जायगा। पागलखानेमें अपनेको खुदा और सबको अपनी खिलकत माननेवालोंकी कमी नहीं है। और इसके विरुद्ध यदि उपासक "सर्वंखल्विदं ब्रह्म" को ही याद रखता है और अपनेको "इदं" से अलग जानता है, तो वह भी आधे सत्यके भँवरमें पड़ कर डूब जाता है। परन्तु वह अपने को सदा दास ही समझता रहेगा, बन्धनसे मुक्त न होगा, वह भी एक प्रकारका पागलही समझ जाना चाहिये। इस तरह भ्रमपूर्ण उपासना बड़ी भयानक होगी, बड़ी खतरनाक होगी।

ज्ञानक पंथ कृपानक धारा।
परत खगेस न लागैं बारा॥

इन दोनों खतरोंसे बचकर संसारमें यदि जीव इस प्रकार ज्ञानमार्गसे भगवदुपासना करे तो विकासके जालसे क्यों न शीघ्र मुक्त हो जायगा? कारण यह है कि अपने आदर्शको अपनेसे अलग माननेवालोंके लिये विकास आवश्यक है। आदर्श तक पहुँचना जरूर है। रास्ता तय करना है। मंजिल तक पहुँचना है। परन्तु ज्ञानमार्गवालेके लिये विकास कहां, आत्मा सदा पूर्ण है। उसमें क्षय वृद्धि कैसी, जब ऐसा पूर्ण है कि उसमेंसे पूर्ण निकाला तो भी पूर्ण ही रहा तो उसके लिये विकास कैसा? विकास तो प्रकृतिमें है। मायाका पसारा है। मायाकी निगाहों में है। पृथिवी परके मनुष्योंकेलिये सूरज निकलता है। बादलोंसे ढक भी जाता है, अस्त भी हो जाता है, रात हो जाती है, उदय अस्त नित्य होता है, पर सूरज तो वस्तुतः जहां है वहां बराबर चमक रहा है। न कभी छिपा न कभी डूबा न उसने कभी अन्धकार ही देखा, न कभी रात ही हुई, न उदय हुआ न अस्त। यह तो देखनेवालोंका दृष्टिविपर्यय है, समझका फेर है। आत्मा पूर्ण है उसमें विकास नहीं, वह सर्वत्र है, तो कहां जाय, राह कहां, मंजिल किधर?

तदेजति तन्नैजतितद्दूरेतद्वन्तिके
तदन्तरस्य सर्वस्य तदुसर्वस्यास्य वाह्यतः
(यजु० अ० ४० मं० ५)

कपड़े रँगनेकी विधि

[ले० श्रीसत्येश्वर घोष, एम० एस-सी०]

कई परीक्षित रंगनेकी रीतियां यहां पर दी जायँगी। रंग बनानेके लिए जिन पदार्थोंका परिमाण (fromula) यहांपर दिया गया है उससे एक साड़ी (१०-११ हाथ लम्बी × ४४-४६ इञ्च चौड़ी) अच्छी तरह रंगी जा सकेगी। यदि कपड़ा या सूत कम या ज्यादा हो तो उसीके अनुसार रंगका परिमाण भी कम या ज्यादा कर लेना आवश्यक है।

रंगनेके पहिले यहांपर दिये हुए नियमोंका अच्छी तरह समझ लेना उचित है। नये सीखनेवालोंको पहले पुराने कपड़ोंके टुकड़ोंको रंगकर सीखना उचित है। इन विधियोंमें देशी और अंगरेजी दोनों तोल दी गयी हैं। अपनी अपनी इच्छानुसार दोनोंमेंसे किसी एक तोलका व्यवहार किया जा सकता है।

(१) मटीला या गेरुआ (Drab) पक्का:—

हरा चूर्ण— ½ छटाक; १ आउन्स
पानी— ५ सेर; १ गैलन

आध घंटेतक खौलाकर सत बनाकर गरम सतमें आध गंटे तक कपड़ेको भिगोवें। उसके बाद—लाल कसीस (Bichromate)—½ छटाक; १ आउन्स
पानी— ५ सेर; १ गैलन

इसमें फिर १५ मिनट कपड़ेको भिगोकर साफ पानीसे धो डालें।

(२) ख़ाकी (Khaki) पक्का :—

हरा चूर्ण— २ छटाक; ४ आउन्स
पानी— ५ सेर; १ गैलन

इसको आध घन्टे खौलाकर सत बनावें, और उस सतमें आध घन्टा कपड़ेको डुबोकर रक्खें। फिर निचोड़कर

लाल कसीस— १ छटाक; २ आउन्स
गरम पानी— ५ सेर; १ गैलन

इसमें कपड़ेको आध घन्टेतक भिगोकर साफ़ पानीसे धो डालें।

(३) गाढ़ा ख़ाकी (Deep khaki) पक्का: -

हर्रा चूर्ण — ४ छटाक; ८ आउन्स
पानी— ५ सेर; १ गैलन

इनको आध घन्टेतक खौलाकर सत निकालें। इस गरम सतमें आध घन्टेतक कपड़ेको भिगोकर निचोड़ डालें।

तूतिया— $\frac{1}{2}$ छटाक; १ आउन्स
गरम पानी ५ सेर; १ गैलन

इसमें कपड़ेको १५ मिनट भिगोकर निचोड़ डालें।

लालकसीस— १ छटाक; २ आउन्स
गरम पानी— ५ सेर; १ गैलन

आध घन्टेतक कपड़ेको इसमें डुबाकर साफ़ पानी से धो डालें।

तूतिया देनेसे ख़ाकी रङ्गके साथ थोड़ा लाल (warm shade) आ जाता है। तूतियाके साथ थोड़ासा हीराकष ($\frac{1}{4}$ तोला) देनेसे ख़ाकी रङ्ग बहुत गाढ़ा बन जाता है।

(४) गेरुआ (Salmon) पक्का :—

गरानकी छाल— $\frac{1}{2}$ सेर; १ पाउण्ड
पानी — ५ सेर; १ गैलन

आध घन्टेतक पानीमें इन छालोंको उबालकर उनका सत बना लेवें। इस गरम सतमें कपड़ोंको आध घन्टे भिगोकर निचोड़ डालें।

फिटकिरी— २ छटाक; ४ आउन्स
गरम पानी— ५ सेर; १ गैलन

इसमें १५ मिनट कपड़ेको भिगोकर निचोड़ डालें।

सोडा— २ छटाक; ४ आउन्स
गरम पानी— ५ सेर; १ गैलन

आध घन्टेतक कपड़ेको इसमें भिगोकर साफ़ पानीसे धो डालें।

(५) बैगनी रंग (Plum colour) पक्का :—

गरानकी छालका चूर्ण— $\frac{1}{2}$ सेर; १ पाउन्ड
पानी— ५ सेर; १ गैलन

इसको आध घण्टेतक पानीमें उबालकर सत निकालें और इस गरम सतमें आध घण्टे कपड़ोंको भिगोकर निचोड़ डालें। यह सत एक बार व्यवहार कर लेनेपर भी काममें लाया जा सकता है।

हीराकष — $\frac{3}{4}$ छटाक; १$\frac{1}{2}$ आउन्स
गरम पानी— ५ सेर; १ गैलन

१५ मिनट इसमें कपड़ोंको भिगोकर निचोड़ डालें। (हीराकषका पानी फिर काममें लाया जा सकता है) इसके बाद कपड़ोंको गरानके छालके गरम सतमें फिर १५ मिनट भिगो देवें और निचोड़कर फिर १५ मिनट हीराकषके पानीमें भिगोकर निचोड़ डालें। इस तरह कपड़ोंको दो बार रङ्गकर—

सोडा— २ छटाक; ४ आउन्स
गरम पानी— ५ सेर; १ गैलन

इस खारे पानीमें कपड़ोंको आध घण्टेतक भिगोकर साफ़ पानीसे धो डालें। लोहेका पानी हीराकषके बदले गरम पानीमें घोलकर व्यवहार करनेसे पक्का रङ्ग बन जाता है।

(६) बदामी (Buff, liht ochre) पक्का:—

हीराकष— $\frac{1}{2}$ छटाक; १ आउन्स
गरम पानी— ५ सेर; १ गैलन

१५ मिनट इसमें कपड़ेको भिगोकर निचोड़ डालें।

चूना— १ छटाक; २ आउन्स
पानी— ५ सेर; १ गैलन

चूनेको पानीमें छोड़कर उसे दूधकी तरह बना डालें। कपड़ेको खोलकर इस चूनेके पानीमें अच्छी तरह भिगो लेवें। अब इसे निचोड़कर सुखा लेना चाहिए। कपड़ेपर पहिले कच्चे घासका रङ्ग आता है, इसके बाद अच्छी तरह सूखनेपर बादामी रङ्ग खिलता है। अब कपड़ेको फिर पानीसे धोकर सुखा डालें।

इस तरह बादामी रङ्गको दो या तीन बार कपड़े-पर चढ़ानेसे बसन्ती रङ्ग आ जायगा, परन्तु कपड़ा कुछ कड़ा पड़ जाता है।

(७) काला (Black) पक्का:—

हीराकषका पानी और हर्रांके द्वारा बहुत सहज उपायसे काला रङ्ग रँगा जा सकता है, परन्तु यह रंग पक्का नहीं बनता है। हीराकष (terrous sulphate) की जगह लोहेके पानी (ferrous acetate) से कपड़े रङ्गनेपर अच्छा पक्का रँग कपड़ेपर चढ़ाया जा सकता है। हिंदुस्तानके रँगरेज जिन पुराने नियमों-से लोहेका पानी (ferrous acetate) बनाते हैं वह बहुत अच्छा और सुगम उपाय है। यहांपर उनकी प्रचलित रीति लिखी जाती है।

गुड़ (तम्बाकूका गुड़) १ सेर। पानी १० सेर। लोहेके टूटे फूटे वर्त्तन, परेक इत्यादि १ या २ सेर। गुड़को पानीमें घोलकर एक मिट्टीके वर्तनमें रखिए। लोहेके टुकड़ोंको एक कपड़ेमें बांधकर इस गुड़के पानीमें भिगो देवें और घड़ेको एक पतले कपड़ेसे ढांक देवें। यदि लोहेपर मोर्चा पड़ गया हो तो उसे गरम करके पीट लेनेपर मोर्चा छूट जाता है। पुराने टीनके डिब्बे या कनस्टरोंको काटकर छोटे छोटे टुकड़ोंसे भी काम चल सकता है। मुर्चा लगा हुआ लोहा व्यवहारमें नहीं लाना चाहिए।

पांच छ दिन बाद गुड़ सड़कर सिरका (vinegar) बन जाता है। सिरकेमें अधिकांश असीतिकाम्ल (acetic acid) रहता है, इस अम्ल (acid) और लोहेके रसायनिक संयोग (Chemical Combination) से लोह-असीतेत (acetate of iron) बनता है। बीच बीचमें इन्हें एक लकड़ीसे अच्छी तरह हिला देना बहुत जरूरी है।

रंगने की रीति:—

हर्रेका चूर्ण— ४ छटांक; ८ आउन्स
पानी— ५ सेर; १ गैलन

आध घंटेतक चूर्णको पानीके साथ उबालकर सत बना डालें। इस सतमें आध घंटेतक कपड़ेको भिगोकर निचोड़ डालें। कपड़ेको सुखाकर लोहेके पानी से रँगें।

लोहेका पानी— ५ सेर; १ गैलन

इसमें आध घंटेतक कपड़ेको भिगोकर सुखा डालें। एक दिन (२४ घंटे) बाद फिर इसी रीतिसे हर्रेके सत और लोहेके पानीके द्वारा फिर कपड़ेको रंगकर सुखा डालें। इसी रीतिसे तीसरी बार भी कपड़ेको रंगनेसे अच्छा पक्का काला रंग कपड़ेपर आ जायगा। एक ही लोहेका पानी और लोहेका सत तीनों दफे काममें लाया जा सकता है, परन्तु प्रत्येक बार थोड़ा थोड़ा हर्रेका सत और लोहेका पानी और मिला लेनेसे अच्छा है। हर दफे लोहेके पानीमें कपड़ेको भिगोनेपर कपड़ेको अच्छी तरह सुखा लेना आवश्यक है। इससे कपड़ेपरका सब असीतिकाम्ल या सिरकाम्ल (acetic acid) उड़ जाता है, और लोहेके साथ हर्रेका कषाय वस्तु (tannin) मिलकर अच्छा पक्का काला रंग बनता है।

तीन बार इस तरह कपड़ेपर काला रङ्ग चढ़ा लेनेपर १ या २ दिन धूपमें सुखाकर साफ़ पानीसे धो डालें। धोने पर पहिले कुछ काला रंग घुल जाता है, परन्तु इसके बाद अच्छा पक्का काला रंग निकल आता है।

(८) काला रंग (Black) आधा पक्का:—

नीचेके दिए हुए सहज उपायसे बहुत जल्द काला रंग कपड़ेपर चढ़ाया जा सकता है, परन्तु यह पक्का नहीं होता और खारे पानीसे धोनेपर बहुत साफ़ हो जाता है।

हर्रेका चूर्ण - ४ छटांक; ८ आउन्स
पानी— ५ सेर; १ गैलन

इसको आध घंटेतक उबालकर सत निकालें और इस गरम सतमें कपड़ेको आधे घंटेतक भिगोकर निचोड़ डालें। कपड़ेको धूप में सुखाकर

हीराकष— २ छटांक; ४ आउन्स
गरम पानी— ५ सेर; १ गैलन

इसमें कपड़ेको आध घंटे भिगोकर निचोड़ डालें। जब कपड़ा सूख जावे तो ऊपरके नियमानुसार

फिर दो बार रङ्ग चढ़ावें। एक ही हीराकषका पानी और हर्रेका सत प्रत्येक बार काम में लाया जा सकता है, परन्तु कपड़ा भिगोनेसे पहिले थोड़ा नया हीराकष और हर्रेका सत इसमें मिला लेना उचित है। रंगने के बाद कपड़ेको साफ़ पानीसे धोकर सुखा लेना आवश्यक है।

(९) राखका रंग (Ash colour; grey) पक्का:—

हर्रेका चूर्ण— १ छटाक; २ आउन्स
पानी— ५ सेर; १ गैलन

आध घंटे तक इस चूर्ण को उबालकर सत निकालें। इस गरम सतमें कपड़ेको आध घन्टे भिगो कर निचोड़ कर कपड़ेको सुखा डालें।

लोहेका पानी—१¼ सेर ; ¼ गैलन
पानी — ३¾ सेर; ¾ गैलन

इसमें कपड़ेको भिगोकर सुखा डालें। एक दिन बाद कपड़ेको साफ़ पानीसे धोना आवश्यक है।

हर्रेका चूर्ण और लोहेके पानीकी मात्राको कम ज्यादा करके इच्छानुसार कपड़े पर फीका या गाढ़ा रंग चढ़ाया जा सकता है। हर्रेके साथ थोड़ा सा (¼ तोला) गरान की छाल मिला देने से फ़ाखतई (dove colour) रंग बन जाता है।

(१०) फीका कत्थई (Light brown) पक्का:—*

कत्थेका चूर्ण— २ छटाक, ४ आउन्स
पानी— ५ सेर; १ गैलन

इसको आध घंटेतक उबालकर सत तैयार करें। गरम सतमें आध घंन्टेतक कपड़ेको भिगोकर निचोड़ डालें।

लालकसीस या बाइक्रोमेट —½ छटाक; १ आउन्स
गरम पानी — ५ सेर; १ गैलन

इसमें आध घंटेतक कपड़ेको भिगोकर साफ़ पानीसे धो डालें।

(११) कत्थई रंग (Warm Brown) पक्का:—

कत्थेका चूर्ण— ४ छटाक; ८ आउन्स
पानी— ५ सेर; १ गैलन

* न छूटने वाला

आध घन्टेतक उबालकर सत निकालें, फिर इस गरम सतमें आध घन्टेतक कपड़ेको भिगोकर निचोड़ डालें।

तूतिया— १ छटाक; २ आउन्स
गरम पानी — ५ सेर; १ गैलन

इसमें १५ मिनट कपड़ेको भिगोकर निचोड़ डालें।

लालकसीस या बाईक्रोमेट—१ छटाक; २ आउन्स
गरम पानी— ५ सेर; १ गैलन

इसमें आध घंटेतक कपड़ेको भिगोकर साफ़ पानीमें धो डालिए।

(१२) गाढ़ा कत्थई (Deep Brown) पक्का:—

पूर्वोक्त नियमसे कपड़ेपर दोबारा कत्थई रंग चढ़ानेसे अच्छा पक्का गाढ़ा रङ्ग कपड़ेपर चढ़ता है। एक बार रङ्ग चढ़ाकर, कपड़ेको अच्छी तरह साफ़ पानीसे धोकर फिर रंग चढ़ावें। प्रत्येक बार इसी कत्थेके सतसे काम चल सकता है, परन्तु तूतिया या लालकसीसका पानी प्रत्येक बार नया बनाना पड़ेगा।

(१३) घना कत्थई (Dark brown; Coffee or Snuff Colour) पक्का:—

कत्थेका चूर्ण— ४ छटाक; ८ आउन्स
पानी— ५ सेर; १ गैलन

इसको आध घंटेतक उबाल कर सत बनाइए। कपड़ेको आध घंटेतक गरम सतमें भिगोकर निचोड़ डालें।

तूतिया— १ छटाक २ आउन्स
हीराकष— १ छटाक; २ आउन्स
गरम पानी ५ सेर; १ गैलन

इसमें कपड़ेको आध घण्टेतक भिगोकर निचोड़ डालें।

बाइक्रोमेट— १ छटाक; २ आउन्स
गरम पानी— ५ सेर; १ गैलन

इसमें कपड़ेको आध घण्टेतक भिगोकर साफ़ पानी से धो डालें।

तूतिया— १ छटाक; २ आउन्स

हीराकष— १ छटाक; २ आउन्स
गरम पानी—५ सेर; १ गैलन

इसमें कपड़ेको आध घंटेतक भिगोकर निचोड़ डालें।

बाइक्रोमेट या लालकसीस—१ छटाक; २ आउन्स
गरम पानी— ५ सेर; १ गैलन

इसमें कपड़ेको आध घंटे भिगोकर साफ़ पानीसे धो डालें।

कत्थेके साथ ही थोड़ी सी (½ तोला) गरान-की छाल मिला लेनेसे कपड़ेपर गेरुआ, चकोलेट (Chocolate) रंग चढ़ेगा।

(१४). नीला रंग (Indigo blue) पक्का :—

जिस रीतिसे नीलसे रंग निकाला जाता है वह पहिले ही बता दी गयी है। नील पानीमें नहीं घुलता परन्तु कई रासायनिक उपायोंसे नीलको पानीमें घोला जा सकता है। यहाँपर एक बहुत ही सुगम उपाय दिया जाता है।

नील —	२ छटाक,	४ आउन्स
हीराकष —	४ छटाक,	८ आउन्स
फूला चूना (Slaked)—	½ सेर,	१ पाउन्ड
पानी—	५ सेर;	१ गैलन

इनको पानीके साथ अच्छी तरह मिलानेके लिए एक बड़ा मिट्टीका बर्तन चाहिये। एक बड़े चौड़े मुँहकी नाँद या घड़ा इसके लिए ठीक है, जिसमें कपड़ोंको डुबानेपर रंग न गिरे और अच्छी तरह भीग जाय। नील बाज़ारमें महँगा बिकता है और यह कई एक कामोंमें लाया जाता है, इसलिए जिसमें नीलका पानी ख़राब न हो वैसा उपाय करना चाहिए।

एक बड़े पत्थर या चिनिया मिट्टीके खरिल (Poncelain motar) में नीलके ढेलेको एक रात भिगोनेके बाद उसे धीरे धीरे पीस कर नीलके पानीको एक घड़ेमें डाल देवें। नीलको खूब अच्छी तरह भिगोना बहुत ही आवश्यक है। खरिलको कई एक बार धोकर सब नील निकाल लेवें।

सब नील घड़ेमें डाल लेनेपर पानीमें हीराकष छोड़ देवें। इसके बाद चूनेको पानीके साथ मिलाकर दूधकी तरह चूनेके पानीको नीलके साथ मिला देवें। चूनेमें पत्थरके टुकड़े या दूसरा कोई और मैल साफ़ करके नीलमें मिलाना चाहिए। नील और चूनेके लिए जो पानी चाहिए वह परिमाणमें दिए हुए २५ सेर पानीसे लेना आवश्यक है। अब घड़ेमें बाक़ी पानी मिला देवें।

परिमाणमें दी हुई सब वस्तु घड़ेमें छोड़ देनेके बाद एक लम्बी लकड़ीसे सबको अच्छी तरह मिला-कर मिट्टीके बर्तनका मुंह एक गमलेसे ढांक देना चाहिए। दूसरे दिन इस नीलके पानीको एक लकड़ीसे फिर अच्छी तरह मिलाकर रख देनेसे तीसरे दिन यह कपड़े रंगनेके लिए तैयार हो जाता है। बर्तनके तलमें मैल जम जायगा और ऊपर एक उज्वल नीली सी मलाई पड़ी रहेगी। इस मलाईको हटानेपर नीचे उज्वल कच्चे हरे घास का रंग दिख-लाई देगा। यदि अब इस पानीमें कपड़ा भिगोया जाय तो वह पहिले फीका हरा और फिर धीरे धीरे सूखनेपर नीला पड़ जायगा।

जिस कपड़ेपर नीला रंग चढ़ा है वह बहुत साफ़ और माड़ रहित होना आवश्यक है— यह बात बहुत पहिले कह दी गई है। माड़ रहनेसे रंग सूतके भीतर घुसेगा नहीं और धोनेसे ही छूट जायगा। रंगनेके पहले कपड़े या सूतको पानीसे धो डालना चहिए। छोटे कपड़ेको रङ्गनेके लिए मैलको न छू कर ऊपरके पानीसे कपड़ेको रङ्गा जा सकता है। परन्तु बड़े कपड़ेको दूसरे उपायसे रंगना पड़ेगा। ऊपरके साफ़ पानीको एक दूसरे मिट्टीके बर्तनमें निकालकर कपड़ेको पानीमें भिगोकर उसे अच्छी तरह निचोड़ डालें। निचोड़नेसे कपड़ेके चारों ओरसे हवा निकल जावेगी और कपड़ेपर सब जगह अच्छा रंग चढ़ेगा।

अब कपड़ेको दो मिनट नीलके पानीके भीतर रखकर निचोड़ डालें। फिर कपड़ेको सुखानेसे धीरे धीरे नीला रङ्ग चमकेगा। कपड़ेको फिर रङ्ग में भिगोकर सुखा लेनेसे और गाढ़ा रङ्ग चढ़ेगा।

यह हरा नीलका पानी हवा लगनेसे थोड़ी देरमें सब नील हो जायगा और इस पानीको अब नीलके घड़ेमें फिर डालदें और लकड़ीसे अच्छी तरह हिलाकर घड़ेका मुँह बन्द करके रख देना चाहिए। दूसरे दिन यह नीलका पानी फिर काममें लाया जा सकता है। एक बात यहां पर कहना बहुत ही आवश्यक है कि इस हरे रङ्गके पानीमें नील घुली हुई अवस्थामें रहता है और हवा लगनेसे ओषजन (Oxygen) के द्वारा धीरे धीरे नीला पड़ जाता है। यह नील अनघुल (insoluble) होनेके कारण सूतके भीतर नहीं जाता और इसलिए यह कपड़ेपर नहीं चढ़ता। यह हरा रङ्ग सूतके भीतर घुस जाता है और सूखनेपर हवा लगनेसे नीला पड़ जाता है और अनघुल होनेके कारण कपड़ेको अब धोनेसे रङ्ग साफ़ नहीं हो सकता। कपड़ेको नीलके हरे रङ्गके पानीमें छोड़कर उसको उलटने पलटनेसे हवा लगनेके कारण यह हरा रङ्ग देखते देखते नीला पड़ जाता है। इस नीले रंगको घड़ेमें चूने और हीराकषके साथ देनेसे यह फिर घुल जाता है। यदि खूब हल्का नीला रंग कपड़ेपर चढ़ाना हो तो नमूनेके लिए एक कपड़ेके टुकड़ेको रंग कर देख लेवें और आवश्यकतानुसार इसमें गरम जल मिला लेना चाहिए। रंगको हल्का करनेके लिए गरम पानी काममें लावें क्योंकि ठंडे पानीमें हवा घुली हुई रहनेके कारण हरा रंग अनघुल होकर कुछ नीला पड़ जाता है।

पूर्वोक्त नियमके अनुसार कपड़ेपर दो बार रंग चढ़ानेसे कपड़ेपर फ़िरोज़ी या आसमानी रंग (Pale blue, sky blue) आवेगा। तीन या चार बार रँगनेसे गाढ़ा नीला (bright blue) और कई बार रङ्गनेसे कपड़ेपर काला नीला रंग (blue black) आवेगा। प्रत्येक बार रङ्गनेके बाद कपड़ेको हवामें पाँच मिनट सुखाकर फिर उसे रंगा जा सकता है। रंग जानेपर कपड़ेको एक दिन हवामें सुखाकर दूसरे दिन साफ़ पानीसे धो डालना चाहिए।

कुछ लोग यह कह सकते हैं, कि गाढ़ा नीला रङ्ग रँगनेके लिए परिमाणमें दी हुई मात्राको बढ़ा लेनेसे कपड़ेको बारबार हल्के रङ्गसे रंगना नहीं पड़ेगा। परन्तु इससे कपड़ेपर अच्छा रङ्ग नहीं आता क्योंकि कपड़ेपर धीरे धीरे रङ्ग न चढ़ानेसे एकसा (uniform) रङ्ग नहीं चढ़ता और कपड़े को धोनेसे कुछ धुलकर निकल भी जाता है।

कपड़ोंको रंग लेनेके बाद रङ्गको फिर घड़ेमें रखकर एक लकड़ीसे चूने और हीराकषके साथ उसे मिलाकर घड़ेका मुँह बन्द करके रख दें। घड़ेके पेंदेमें मैलके साथ कुछ अनघुल नील पड़ा रहता है। इसे अच्छी तरह एक लकड़ीसे हिला देनेसे सब नील घुल जाता है। कई बार नीलके पानीसे कपड़े रङ्ग लेनेपर रङ्ग फीका पड़ जाता है, इसलिए दो एक दिन बाद थोड़ा नया नील, हीराकष और चूना (ऊपर लिखे परिमाणके अनुसार) घड़ेमें मिला देना आवश्यक है।

रङ्गरेज़ लोग इसलिए कई घड़ोंमें नीलके रङ्गको रखते हैं। इन घड़ोंको वह मिट्टीमें आधेसे ज्यादा गाड़ देते हैं जिससे वह बैठ कर ही कपड़े रङ्ग सकते हैं। जिस घड़ेमें सबसे पुराना रङ्ग है (कई बार रङ्ग चढ़ानेसे जिसका रङ्ग बहुत फीका पड़ गया है) उसीमें कपड़ोंको पहिले भिगोया जाता है। इसके बाद उन्हें नए रङ्गमें भिगोया जाता है, और इस तरह सबसे फीके रङ्गसे आरम्भ करके अन्तमें सबसे गाढ़े रङ्गमें कपड़ेको रङ्गा जाता है। इसमें थोड़ा भी रङ्ग नष्ट नहीं होता और सब काममें आ जाता है।

(१५) पीला या बसन्ती (Yellow) कच्चा:—

पीसी हल्दी—	१/२ छटाक;	१ आउन्स
पानी—	५ सेर;	१ गैलन
फिटकिरी—	१/२ तोला;	१ १/२ ड्राम

हल्दीको अच्छी तरह पीसकर पानीमें छान लेवें। फिटकिरीको एक दूसरे कटोरेमें घोलकर हल्दीके पानीमें छोड़ देवें, और कपड़ेको इसमें भिगोकर अच्छी तरह निचोड़ डालें। कपड़ा जितना रङ्गमें भीगेगा उतना ही अच्छा गाढ़ा रङ्ग चढ़ेगा। रङ्गनेपर कपड़ेको निचोड़कर छाँहमें सुखा लेना चाहिए।

हल्दीका रंग पक्का नहीं होता और धूपसे फीका पड़ जाता है। क्षार (alkali) लगनेसे रंग लाल हो जाता है, परन्तु धोनेसे फिर थोड़ा फीका पीला रंग पड़ जाता है। कपड़ेको केवल पानीसे धोनेसे रंग फीका नहीं पड़ता। फिटकिरी देनेसे रंग उज्वल और कुछ पक्का होता है।

(१६) पक्का धानी रंग या सुनहरी (Old gold)—

अनारकी छाल—४ छटाक; ८ आउन्स
पानी — ५ सेर; १ गैलन

आध घंटेतक उबालकर सत निकालें। इस गरम सतमें आध घंटेतक भिगोकर निचोड़ डालें।

फिटकिरी— १ छटाक; २ आउन्स
गरम पानी— ५ सेर; १ गैलन

इसमें १५ मिनट कपड़ेको भिगोकर निचोड़ डालें।

सोडा— १ छटाक २ आउन्स
गरम पानी— सेर; १ गैलन

इसमें १५ मिनट कपड़ेको भिगोकर निचोड़ कर साफ़ पानीसे धो डालें।

अनारकी छालके बदले हर्रोका प्रयोग किया जा सकता है, परन्तु इससे अच्छा उज्वल रंग नहीं आता।

(१७) हरा (Green) पक्का:—

नीले और पीले रङ्गके संयोगसे हरा रङ्ग होता है। पहिले कपड़ेको नीले रङ्गमें रंगना चाहिए, क्योंकि किसी दूसरे रङ्गके ऊपर नीला रङ्ग नहीं आता।

ऊपर बताए हुए नियमोंके अनुसार पहले कपड़े-पर उज्वल नीला रङ्ग चढ़ाकर एक दिन बाद उसे धोकर कपड़ेको सुनहरी रंगसे रंगना चाहिए। यहां अनारकी छालके बदले हर्रेसे काम चल सकता है।

(१८) फीका हरा या घासका रंग (light green) पक्का:—

पहले दिये हुए नियमानुसार पहले नीलसे कपड़े को आसमानी रंगमें रङ्गकर सुनहरी रङ्गसे रङ्ग लेवें। परन्तु अनारकी छालसे और वस्तुओंकी मात्रा परि-माण (Formula) में दी हुई मात्राओं की आधी कर देनी चाहिए।

(१९) गुलाबी (Pink) कच्चा:—

यह रंग कुसुमके फूल (Safflower; Carthamus) से निकलता है। कुसुमके फूलमें दो प्रकारके रँग होते हैं—एक पीला और दूसरा लाल। पीला रँग पानीमें घुल जाता है, और लाल रङ्ग अन-घुल है। क्षार (Alkali) युक्त पानीमें यह लाल रङ्ग घुल जाता है। कपड़े पर गुलाबी रङ्ग रङ्गनेसे पहिले कुसुमके फूलका पीला रङ्ग पानीसे धो डालना चाहिए।

कुसुमके फूल—५ छटाक; १० आउन्स

इसे एक मिट्टीके बर्तनमें थोड़ी देरतक भिगो दीजिए, इसके बाद इन फूलोंको निचोड़कर पीला रङ्ग निकाल डालिए। जबतक पानीसे धोनेपर पीला रङ्ग निकलता रहे तबतक फूलोंको धोते रहिए।

सोडा—$\frac{1}{8}$ छटाक; $\frac{1}{4}$ आउन्स
पानी—२$\frac{1}{2}$ सेर; $\frac{1}{2}$ गैलन

अब यह धुले हुए कुसुमके फूल सोडेके पानीमें भिगो दीजिए। क़रीब १० मिनटके बाद फूलोंको निचोड़कर सब रङ्ग निकाल कर इसे दूसरे बर्तनमें रक्खें। इस रङ्गमें १० मिनटतक कपड़ेको भिगोकर अच्छी तरह निचोड़ना चाहिए। अब कपड़ेपर कुछ सुनहली चमक आ जाती है। कपड़ेको निचोड़कर निम्नलिखित पानीमें भिगोना चाहिए।

नींबूका रस— ४ छटाक; ८ आउन्स
पानी— २$\frac{1}{2}$ सेर; $\frac{1}{2}$ गैलन

खट्टे नींबूके रससे काम अच्छा होगा। यदि नींबू न मिले तो ४।५ छटाक कच्ची या पक्की इमली या कच्चे आमको पीसकर पानीमें घोलकर एक पतले कपड़ेसे छान लीजिए। यह खट्टा पानी कपड़ेपर लगते ही कपड़ेपर लाल रङ्ग आ जावेगा। कुछ समयतक कपड़ेको अच्छी तरह निचोड़कर साफ़ पानीसे धो डालें। यदि रङ्ग और गाढ़ा करना हो तो पूर्वोक्त विधिसे कपड़ेको कुसुमके फूलके पानीसे और फिर नींबूके पानीसे एक बार और कपड़ेको लाल रङ्गमें रङ्ग लेवें। नींबूका रस खूब खट्टा होना अति आवश्यक है, नहीं तो कपड़ेपर अच्छा लाल रङ्ग नहीं आता।

कुसुमके फूलका रङ्ग लाल और उज्वल होता है, परन्तु साबुनसे और धूप लगनेसे बहुत फीका पड़ जाता है। हाँ केवल साफ़ पानीसे धोनेसे रङ्ग नहीं छूटता।

(२०) बैंगनी (Mauve, Purple or violet) पक्का:—

पतंग चूर्ण— २ छटाकं; ४ आउन्स

पानी— ५ सेर; १ गैलन

फिटकिरी— ¼ छटांक; ½ आउन्स

१५ मिनट इसे पानीमें उबालकर छान डालिए। इस गरम सतमें १५ मिनट कपड़ा भिगोकर निचोड़ डालिए।

सोडा— ¼ छटाक; ½ आउन्स

पानी— ५ सेर; १ गैलन

इसमें कपड़ेको भिगोकर १० मिनट बाद निचोड़ डालिए। छांहमें कपड़ेको सुखाना चाहिए।

यह रङ्ग साबुनसे धोनेसे स्थायी नहीं रहता, केवल पानीसे ही धोनेसे कुछ रङ्ग जाता रहता है। रङ्गनेके समय सोडा न देनेसे भी काम चल सकता है, परन्तु सोडाके न रहनेसे रङ्ग बैंगनी न बनकर लाल बनता है।

(२१) गुलाबी (Pink) पक्का:—

साबुन— ½ छटाक; १ आउन्स

गरम पानी— १½ सेर; ½ गैलन

साबुनके छोटे छोटे टुकड़े काटकर पानीमें घोल दीजिए। इसमें क़रीब १५ मिनटतक कपड़ेको भिगोकर निचोड़ डालें और साफ़ पानीसे बिना धोये सुखा डालें।

मंजिष्ठा चूर्ण— ४ छटाक, ८ आउन्स

पानी ५ सेर, १ गैलन

फ़िटकिरी— ½ छटाक; १ आउन्स

एक ऐसे बर्तनमें जिसमें दस सेर जल आसके इन्हें चूल्हेपर चढ़ा दीजिए। कपड़ेको पानीमें छोड़कर एक लकड़ीसे अच्छी तरह हिलाते रहिये जिसमें मंजिष्ठा (मजीठ) का चूर्ण कपड़ेपर अच्छी तरह लग जावे। एक घण्टेतक खूब धीमी आंचमें कपड़ेको पानीमें गरम करें, और बीच बीचमें लकड़ीसे चलाते रहिए। अब इसे निचोड़कर १ छटाक सोडा और ५ सेर पानीमें आध घण्टेतक उबालकर सुखा डालना चाहिए।

(२२) लाल रंग (Turkey red) पक्का:—

यहांपर कपड़ेको मञ्जिष्ठासे लाल रंगमें रङ्गनेकी विधि लिखी जायगी, परन्तु इस रीतिसे रङ्ग कुसुमके फूलके रङ्गसे उज्वल नहीं होगा। मंजिष्ठासे कपड़ेको रङ्गनेके लिए निम्नलिखित वस्तुएँ चाहिएँ:- फिटकिरीका पानी, सोडेका पानी, साबुनका पानी, मंजिष्ठाका चूर्ण (मंजिष्ठाके बारेमें पहले लिखा गया है।)

फिटकिरी का पानी (Alum solution)--फिटकिरी ५ छटाक, पानी पांच सेर या एक गैलन। फिटकिरीको महीन पीसकर पानीमें छोड़ते ही घुल जायगा। जब फिटकिरी पानीमें घुल जाय तो उस पानीको एक मिट्टीके घड़े या गमलेमें रक्खें।

सोडाका पानी (Soda solution)—सोडा ½ सेर या १ पाउँड, पानी ५ सेर या १ गैलन। सोडेको पानीमें घोलकर एक मिट्टी या कोई दूसरे बर्तनमें रक्खें। यदि सोडेके साथ मैल मिला हो तो उसे छान डालें।

साबुनका पानी (Soap Solution)—अच्छा कपड़ा धोनेका साबुन (bar soap) १½ पाव या १२ आउन्स, पानी ५ सेर या एक गैलन। साबुनके छोटे छोटे टुकड़े काटकर पानीके साथ गरम करनेसे सब साबुन घुल जावेगा।

रङ्गनेकी विधि—

(१) फिटकिरीका पानी— ५ सेर, १ गैलन

सोडेका पानी— १½ पाव, १२ आउन्स

फिटकिरीका पानी एक चौड़े मुँहके बर्तनमें रक्खें, और सोडेके पानीको इस फिटकिरीके पानीमें धीरे धीरे छोड़ते जायँ। सोडेके पानीको पहिले छोड़ते ही फिटकिरीका पानी सफ़ेद हो जायगा और दहीकी तरह एक सफ़ेद वस्तु बर्तनके तलेपर बैठ जावेगा। फिटकिरीके पानीको एक लकड़ीसे खूब चलाते

रहिए। सोडेके पानीको और छोड़नेपर फिटकिरी-का पानी धीरे धीरे साफ़ हो जायगा। सोडेका पानी बहुत थोड़ा थोड़ा यहांतक कि एक एक बूंद करके अब फिटकिरीके पानीमें छोड़ते रहिए। यदि सब सोडेके पानीसे फिटकिरीका पानी साफ़ न हो जावे तो फिर और सोडेका पानी मिलाना आवश्यक नहीं है। यही मिलाया हुआ पानी काम दे सकेगा। इसे ज्यादा देरतक रख छोड़नेसे यह ख़राब हो जाता है और काममें न आ सकेगा। इस तरह बनाए हुए पानीमें आध घंटेतक कपड़ेको भिगोकर अच्छी तरह निचोड़कर सुखा डालें। इसके बाद १२ घंटे कपड़ेको हवामें फैला रक्खें।

(२) विधि नं० (१) के अनुसार सोडा और फिटकिरीका पानी बना कर कपड़ेको आध घंटेतक भिगोकर निचोड़ कर सुखा डालें। सुखा कर कपड़े-को १२ घंटे हवामें रक्खें।

(३) साबुनका पानी— ५ सेर; १ गैलन

अब कपड़ेको साबुनके पानीमें छोड़ कर आध घंटेतक हिलाते रहिए। सुखाकर कपड़ेको १२ घंटे-तक हवामें छोड़ रक्खें। इसके बाद विधि (१) के अनुसार फिर फिटकिरी सोडेका पानी बनाकर आध घंटे कपड़ेको भिगोकर सुखा डालें। सुखाकर कपड़े-को आध घंटेतक हवामें फैला रक्खें। अब इस कप-ड़ेपर रंग चढ़ाया जा सकता है। नं० (१), (२) और (३) विधियोंके अनुसार सब काम करना बहुत ही आवश्यक है, नहीं तो कपड़ेपर अच्छा रङ्ग नहीं चढ़ेगा।

(४) मंजिष्ठा चूर्ण (महीन) ४ छटाक; ८ आउन्स
पानी— ५ सेर; १ गैलन

मंजिष्ठाका चूर्ण मैदेके समान महीन होना चाहिए। मंजिष्ठाका चूर्ण पानीमें छोड़ कर एक लकड़ीसे कपड़ेको अच्छी तरह चलाते रहिए, जिसमें चूर्ण कपड़ेमें सर्वत्र अच्छी तरह लग जावे। इसके बाद कपड़ेको बर्तनमें रखकर धीमी आंचपर गरम कीजिए। कपड़ेको लकड़ीसे हिलाते रहिए। इस तरह तीन घंटेतक उबाल कर कपड़ेको निचोड़ कर अच्छी तरह झाड़ डालिए। उबालनेके समय लकड़ीको चला कर जितना कपड़ेको हिलाते रहियेगा उतना ही एक सा (uniform) रङ्ग कपड़ेपर चढ़ेगा।

(५) सोडा— १ छटाक; २ आउन्स
पानी— ५ सेर; १ गैलन

इसमें कपड़ेको और आध घंटेतक उबाल लेनेसे कपड़ेपर अच्छा पक्का रङ्ग चढ़ेगा। इसके बाद ३,४ और ५ नियमोंसे कपड़ेपर दो बार रङ्गनेसे और अधिक गाढ़ा रङ्ग कपड़ेपर आता है।

गरानकी छाल—ऊपर लिखे प्रयोगमें रसका केवल दो बार वर्णन आया है। इसके द्वारा और कई प्रका-रका रङ्ग बनाया जा सकता है। विधि नम्बर ३ में हर्राके चूर्णके साथ उतनी ही गरानकी छाल मिला लेनेसे अच्छा कत्थई रंग बनता है। विधि नं० १३में क़रीब ½ तोला गरानकी छाल मिला देनेसे चकलेट (Chocolate) रङ्ग बनाता है। विधि नम्बर १४ के द्वारा उज्वल नील रङ्ग चढ़ाकर विधि नम्बर ४ से गेरुआ रङ्ग चढ़ानेसे पक्का बैंगनी रङ्ग बनेगा।

बदामी रङ्ग—विधि नम्बर ६ में हीराकष प्रयुक्त होता है। कपड़ेपर हीराकषका पानी अच्छी तरह न लगनेसे चूना देनेपर कपड़ेपर जगह जगह धब्बे पड़ जाते हैं। ऐसा होनेपर कपड़ेपरका रङ्ग साफ़ करना बहुत जरूरी है। पानीमें ओग्जेलिक एसिड (Oxalic acid) घोलकर (पानी २० भाग, अम्ल १ भाग) इसमें कपड़ेको भिगोनेसे सब रङ्ग धुल जाता है। इस अम्लकी जगह नीबूका रस काममें लाया जा सकता है, परन्तु इससे बहुत देरमें रङ्ग छूटता है।

चूनाके बदले सोडाका प्रयोग करनेसे काम चल सकता है और कपड़ेपर सहजही रङ्ग चढ़ाया जा सकता है।

नीलका रंग—विधि नम्बर १४ से कपड़ेको घना नीला या काला-नीला (blue-black) रङ्गनेमें कपड़ेको कई बार नीलके पानीमें रङ्गना पड़ेगा, इसलिए इस रङ्गमें बहुत व्यय होगा। यदि तीन बार रङ्गनेसे कपड़ेपर उज्वल नीला रङ्ग आ जावे तो विधि

नम्बर ७ के अनुसार कपड़ेपर केवल एक बार काला रङ्ग चढ़ानेसे बहुत अच्छा काला चमकेगा।

वस्तुओंका परिमाण—प्रयोगोंमें दिये हुए परिमाणों (formulae) में जो तोल दिये गये हैं, उनसे केवल एक साड़ी रङ्गी जा सकती है, क्योंकि एक समयमें एक कपड़ेपर सहजमें रङ्ग चढ़ सकता है। जो लोग रङ्गनेके काममें निपुण हो गये हैं वह परिमाणकी दी हुई मात्राओंको बढ़ाकर दो या तीन साड़ी एक साथ रङ्ग सकते हैं।

नील (Indigo)—नीलको पानीमें घोलकर नीलका पानी तैयार करनेके लिए केवल एक ही उपाय बतलाया है। हिन्दुस्तानमें अक्सर नीलको सड़ाकर (fermentation) नीलका पानी बनाया जाता है। नील एक भाग, चूना एक भाग, सज्जी मट्टी दो भाग, पानी २०० या ३०० भाग, इन सबको एक साथ मिलाकर एक मिट्टीके घड़ेमें रखिये। इसमें कुछ गुड़ और कुछ नीलका सड़ा पानी मिला देनेसे नील घुल जाता है। नील घुल जानेपर विधि नम्बर १४ से कपड़ा रङ्गा जा सकता है। पुराना नीलका पानी किसी रङ्गरेजसे मिल जायगा। इस प्रकारसे नीलका पानी बनाकर कपड़ा रङ्गनेसे वैसा उज्वल नहीं होता, परन्तु ज्यादा पक्का होता है।

इस नियमसे या विधि नम्बर १४ से नीलका पानी बनानेसे घड़ेके तलेपर बहुत मैल पड़ जाता है, और इसलिए बड़ा कपड़ा या सूत रङ्गनेके समय हरे रङ्गके नीलके पानीको दूसरे घड़ेमें रखना पड़ेगा। इस पानीमें हवा लगनेसे धीरे धीरे नीला पड़ जायगा और इससे अब कपड़ा रङ्गा नहीं जा सकता। इस नीले पानीको फिर घड़ेमें छोड़कर मैलके साथ खूब मिलाकर रख देना चाहिए। दूसरे दिन फिर यह काममें आ सकता है।

इस्तरी करना (ironing)—यदि कोई बेचनेके लिए कपड़ा रङ्गे तो इस्तिरी करना बहुत ही आवश्यक है, क्योंकि इससे कपड़ेपरका रङ्ग चमकदार (glazed) दीखता है।

सत बनाना—बहुत जगहपर सत निकालनेके लिए आध घंटेतक उबालनेके लिए लिखा गया है। जिस समयसे पानी खौलना (boil) आरम्भ हो उस समयसे आध घंटा लगना चाहिए।

बागोंकी रक्षा

[लेखक—श्री वृजबिहारीलाल गौड़]

नये बगीचोंका लगाना तो दूर रहा, पुराने बगीचोंकी ही विधिवत् रक्षा नहीं हो रही है हालांकि इस बातको सभी लोग स्वीकार करते हैं कि आजसे बीस बरस पहले देहातोंमें आमकी फसल बहुत अच्छी होती थी। प्रत्येक बगीचा हर साल नहीं तो दूसरे साल अवश्य फलता था। किंतु आजकल हम स्वयं इस बातको देख रहे हैं कि एक बगीचा यदि एक साल फल गया तो फिर बरसों उसमें फल नहीं आते। बगीचोंकी दुर्दशा देखकर वस्तुतः कलेजा कांप उठता है। उनका समुचित सुधार न हुआ तो कुछ दिनमें न जाने उनकी क्या दशा होगी।

बगीचोंकी बरबादीके कई कारण हैं—पत्तियों और डालोंका निर्दयतापूर्वक तोड़ा जाना, पृथ्वीकी उत्पादनशक्तिका क्रमागत ह्रास, बगीचोंके चारों ओर खांवोंका न होना, वृक्षोंकी गोड़ाई और सिंचाईमें कमी और पेड़ोंका रोगग्रस्त होना।

चरागाहकी कमी होनेके कारण बरसात गुजरते ही पत्तोंकी तोड़ाई आरम्भ हो जाती है। बहुतसे पेड़ तो ठूंठसे हो जाते हैं। पत्ते पेड़ोंके फेफड़े हैं। इन्हीं से पेड़ सांस लेता है। पत्तोंकी तोड़ाईमें वृक्षोंको बड़ा धक्का पहुँचता है। इस चोटसे सम्हलनेमें उनको पूरे एक साल और कभी कभी इससे भी अधिक समयकी जरूरत पड़ती है। इस तरहसे फल का बड़ा नुकसान होता है। जिस प्रकार मनुष्योंके रोमकूपोंका खुली रहना जरूरी है उसी तरह वृक्षोंका

सपल्लव रहना भी अति आवश्यक है। पल्लवोंके टूट जानेसे वृक्षोंका जीवन कम हो जाता है और वे असमयमें ही रोगग्रस्त हो जाते हैं। अतएव बगीचोंके मालिकोंको इसका ध्यान रखना बहुत जरूरी है कि वृक्षोंके पत्ते न तोड़े जायँ और उनकी विधिवत् रक्षा की जाय।

वृक्षोंका जीवन निम्नलिखित तत्वोंपर निर्भर है—ओषजन, नोषजन, पांशजन, स्फुर, गंधक, चूना, नमक, लोहा और कार्बन। पृथ्वी और वायुमण्डलमें ये सभी वस्तुएं किसी न किसी रूपमें विद्यमान हैं, जिन्हें वृक्ष पत्तों और जड़ों द्वारा प्राप्त करता रहता है। पृथ्वीके समस्त उपयोगी तत्वोंको पौधा अपनी पोपली जड़ों द्वारा ही सोखता है। इन्हीं तत्वोंसे पौधोंके बलिष्ठ और विशाल शरीरका निर्माण होता है। रासायनिक विश्लेषण द्वारा पृथ्वीके सभी तत्व वृक्षोंमें देखे जा सकते हैं। अतएव यह जरूरी है कि सोखा हुआ अंश किसी प्रकार पृथ्वीको पुनः लौटा दिया जाय। ऐसा न करनेसे पृथ्वीकी उत्पादनशक्ति घटने लगती है और वृक्ष निर्बल पड़ जाता है। पृथ्वीकी उत्पादनशक्ति बनी रहे, इसीलिये खाद देनेका नियम है।

खाद और पानी

बड़े बड़े वृक्षोंको कौनसी खाद दी जा सकती है, यह भी एक गंभीर प्रश्न है। हमारे देशमें खेतीके लिये ही खाद नहीं मिलती, बगीचोंको कहांसे मिले। बड़े बड़े बगीचोंकी जमीनकी उत्पादन शक्ति बढ़ानेका सबसे आसान और सस्ता तरीका यह हो सकता है कि पतझड़के समय वृक्षोंकी पत्तियां इकट्ठी कर ली जायँ। एक बड़ासा गढ़ा खोदकर उसमें पत्तियां सालभरतक खूब सड़ायी जायँ। जब खाद तैयार हो जाय तो सारा बगीचा फावड़ेसे खोद डाला जाय। इससे कई लाभ होंगे, एक तो यह कि पृथ्वी कड़ी हो जानेके कारण जो जोंड़ोंका विकास रुका हुआ होगा वह खुल जायगा, पानी दूरतक जड़ोंमें प्रवेश कर सकेगा, और पृथ्वीके अन्दर कीड़े मकोड़े, जो जड़ों को हानि पहुँचाते रहते हैं, मर जायँगे। जब सारा बगीचा गोड़ दिया जाय तो तैयारकी हुई खाद उसमें बखेर दी जाय। यदि बगीचा बड़ा हो, पानी न देते बने तो उसे उसी प्रकार छोड़ देना चाहिये। पर इसका ध्यान रहे कि बगीचेके चारों ओर ऊंचे खांवोंका होना जरूरी है, नहीं तो बरसातके पानीके साथ सारी खाद बह जायगी और बगीचेको कुछ भी लाभ न होगा। बड़े बगीचोंमें गोड़ाईके बाद पानीका भरना भी खाद ही के बराबर आवश्यक है।

देहात के बगीचोंमेंसे अधिकांश ऐसे ही मिलेंगे जिनका धरातल उनके चारो ओरकी जमीनसे ऊंचा है। बगीचोंके चौगिर्द ढालुआ हो जानेसे बड़ी हानि होती है। बरसातका पानी बगीचेमें टिक नहीं पाता। पानीके साथ साथ बगीचेकी मिट्टी भी बह जाती है जिससे जड़ें प्रायः ऊपरको निकल आती हैं। जड़ोंके ऊपर निकल आनेका एक और कारण है। वह यह कि पानी तो दूर तक भूमिमें समसने नहीं पाता। बगीचेका ऊपरी भू-भाग ही कुछेक अंशमें नम होता है जिससे जड़ें अपनी स्वाभाविक प्रकृतिके वश ऊपर ही को झुकती हैं। कुछ दिनोंके बाद वृक्षोंकी सभी मोटी मोटी जड़ें पृथ्वीके ऊपर फैली हुई नजर आने लगती हैं। पेड़ोंकी यह दशा बड़ी ही खतरनाक होती है और वृक्ष प्रायः ऐसी ही दशामें अधिकतर रोगी हो जाते हैं अथवा उकठ जाते हैं। कहनेका तात्पर्य्य यह कि जहां तक हो सके पानीकी रुकावटका समुचित प्रबन्ध करना चाहिये और साथही साथ वृक्षोंकी जड़ोंको ऊपर आनेसे रोकनेके लिये गोड़ाई, खाद और सुन्दर उर्वरा तथा बलुई मिट्टी डालनेका भी बन्दोवस्त किया जाय।

पेड़ोंकी बीमारियां

पेड़ोंका रोगग्रस्त होना भी बगीचोंके नाशका एक मुख्य कारण है। उनके मुख्य रोग हैं—फंगस, कीड़े, मांटा और दीमक। फंगस कई प्रकारका होता है पर देहातोंमें इसे प्रायः 'वंध्या' ही कहते हैं। यह

एक प्रकार का पौधा होता है जो वृक्षोंकी गांठोंमें से ही जन्म लेता है। ये पौधे वृक्षोंके रसाभिसरण कालमें उनकी सारी शक्तिको चूस कर पुष्पित और पल्लवित होते रहते हैं जिसके फलस्वरूप वृक्षोंकी बाढ़ मारी जाती है और फलमें भारी कमी आ जाती है। कहीं कहीं तो ऐसा देखा गया है कि जिन वृक्षोंमें 'वंध्या' रोग काफी लगचुका है वह फलते ही नहीं और दो चार वर्ष बाद ठकठ जाते हैं। पहले तो इसका ध्यान रखना चाहिये कि यह रोग होने ही न पावे। इसके लिये किसी खास औषधिका प्रयोग करनेके बजाय वृक्षोंका यथोचित पालन पोषण ही विशेष लाभदायक है। पर जब रोग हो जाय तो 'वंध्या' को निकलते ही काट डालना चाहिये। काटनेका काम आरीसे लिया जाय तो अच्छा हो। बसूला चलानेसे पेड़को चोट पहुँचती है। जिस डालीमें 'वंध्या' हो यदि वह डाली छोटी हो तो उसे वृक्षसे निकाल दे और यदि बड़ी हो तो उसके छिलके काफी दूरतक छील दिये जायँ और उस शाखाको तमाखू और साबुनके घोलसे धोकर उसपर गोबर लपेट दिया जाय। ऐसा करनेसे पुनः फङ्गस रोग होनेकी सम्भावना कम रहती है।

पेड़ोंके भीतर कीड़े पैदा हो जाते हैं जिन्हें 'टाँड़ा' कहते हैं। ये कीड़े पेड़ोंके तनोंमें पैदा होकर उसीमें बढ़ते हैं और धीरे धीरे सारे तनेको खोखला कर डालते हैं। यह रोग बड़ा भयङ्कर होता है। ऊपरसे वृक्षका स्वास्थ्य सुन्दर दिखाई पड़ता है और इस रोगका किसीको पता नहीं चलता पर जब पेड़ बिलकुल कमजोर होकर गिर पड़ता है तो देखते हैं कि सारा तना खोखला हो गया है। यह वृक्षोंका गुप्त रोग है। कभी कभी यह रोग बाहर भी फूट निकलता है पर इसकी चिकित्सा कठिन है। अनुभवी बागवान वृक्षोंकी बाढ़ और फलसे ऐसे रोग का अन्दाजा लगा लेते हैं। वृक्षोंमें यह रोग तभी होता है जब उनके शरीरका रक्त दूषित हो जाता है। ऐसी दशामें उपचार मूलसे करना चाहिये। यदि कीड़ा दिखाई देता हो तो उसे निकाल डाले। कभी कभी तनेको ठोकनेसे भी इसका पता चल जाता है।

रोगका पता चल जानेपर किसी तेज औजारसे तनेमें एक चीरा लगाकर देख लेना चाहिये। यदि तना खोखला हो रहा हो तो उसमें किसी टोंटीदार बरतन द्वारा किरासन तेलका घोल छोड़ देना चाहिये। घोल बनानेके लिये आध सेर साफ साबुन पांच सेर पानीमें उबाल डाले। जब साबुन काफी तौरपर घुल जाय तो उसमें दस सेर मिट्टीका तेल फेंट दे। प्रयोग करते समय एक हिस्सा तेलमें अठगुना पानी मिलावे। इस घोलके डालनेसे सभी हानिकारक कीड़े मर जाते हैं। यदि चीरा लगानेसे कोई रोग न दिखाई पड़े और वृक्षकी दशा उत्तरोत्तर बिगड़ती जाय तो समझना चाहिये कि सारे शरीरमें विषका प्रकोप हो गया है। ऐसी दशामें पेड़के चौगिर्द थाला बना कर निबकौड़ी डालकर सड़ावे ताकि रसाभिसरणके समयमें निबकौड़ीका रस सारे शरीरमें फैल सके। साथ ही साथ यह भी ध्यान रखना उचित है कि यदि तनेका छिलका कड़ा हो गया हो तो उसे छील दे, क्योंकि पुराने छिलके भी अनेक रोगोंके जन्मदाता बन जाते हैं। और दूसरा लाभ यह भी होता है कि पौधा अपनी खुराक तनेके भीतरी रेशों द्वारा खींचता है और छिलके द्वारा उन्हें पुनः जड़ोंकी ओर लौटाल देता है। छिलकोंको छील देनेसे पृथ्वीका सारा रस जो कि पौधा अपने जीवनकेलिये सोखता है पुनः लौटने नहीं पाता, इस तरहसे वृक्षोंको बड़ा लाभ पहुँचता है। परन्तु यह क्रिया वृक्षोंके उपचार काल ही में करनी चाहिये।

वृक्षोंको चींटियों और मांटोंसे भी बहुत नुकसान पहुँचता है। बड़े बड़े पेड़ोंपर मांटों के झोल बन जाते हैं। झोलोंको वृक्षोंसे अलग कर देना चाहिये। यदि बाग साफ सुथरा रखा जाय तो कोई कारण नहीं कि इन सब रोगोंको स्थान मिल सकें। अनुभवसे यह भी पता चला है कि पेड़ोंका सबसे बड़ा शत्रु दीमक है। कितने ही पेड़ोंकी जड़ें खोदी गयी

हैं। भीतर मूलमें दीमकोंका इतना बड़ा ढेर मिला है जो कि किसी बड़ेसे बड़े वृक्षको सुखा देनेके लिये काफी हो सकता है। दीमकोंका पैदा होना वृक्षोंके निर्जीव होनेकी निशानी है। दीमकका प्रवेश चूहोंके बनाये हुए बिलों द्वारा होता है और चूहोंकी पैदाइश खलिहानोंकी वजहसे होती है। अतएव जहां कहीं ऐसे सूराख मिलें उन्हें खोद डालना चाहिये। वृक्षोंकी गोड़ाई और सिंचाई ठीक ठीक करनेसे दीमक नहीं पैदा होते। यदि कुछ शिकायत हो तो नीमकी खली और निबकौड़ीकी खाद देनी चाहिये। चूहे भी जड़ोंको कुतर करते हैं और इन्हींकी वजहसे दीमक भी पैदा होते हैं, अतएव जहां तक हो सके बगीचोंमें चूहोंका निवास न होने पावे। खलिहानके होनेसे चूहे भी पैदा होते हैं और खलिहानकी गर्मीसे बगीचोंको भी हानि पहुँचती है।

इन सब छोटी छोटी बातोंपर हमारे किसान ध्यान नहीं देते और यही कारण है कि वह अपने प्रयत्नमें सदैव असफल रहते हैं। तनोंमें अलकतरा पोत देनेसे भी दीमकों से रक्षा होती है। कोई वृक्ष यदि विशेष रोगी हो गया हो तो उसे बागसे निकाल देना ही अच्छा है। पेड़को कटवाकर उसकी जड़ दूरतक खोद डालनी चाहिये ताकि रोग दूसरे वृक्षोंमें न फैलने पावे।

यह सब बहुत ही साधारण बातें हैं। यदि हमारे किसान इधर ध्यान दें तो वह अपने बगीचोंकी काफी उन्नति कर सकते हैं। अच्छे फलोंकी पैदावारसे आर्थिक दशा भी सुधर सकती है।

———

सभ्यताके युग❀

संसारके किसी विषयसे सभ्य मनुष्यका सम्बन्ध इतना आवश्यक और घनिष्ठ नहीं है जितना 'सभ्यता' से है, तथापि इस विषयका जितना कम ज्ञान सभ्य मनुष्यको होता है उतना कम और किसी अन्य विषयका नहीं होता, और इसीलिए इस विषयपर जैसी असंगत और संदिग्ध बातचीत लोग करते हैं वैसी अन्य विषयपर नहीं करते। समाज-शास्त्रके अतिरिक्त, विशेषतः उसके उस अंशके अतिरिक्त जिसको "सभ्य मनुष्य" से सम्बन्ध है, इस आधुनिक चमत्कारयुक्त बुद्धि क्षोभके युगमें सभी शास्त्रोंकी उन्नति होती चली जा रही है। यह शास्त्र अभी तक प्रायः उसी दशामें है जिस दशामें कामटेके समयमें था, जो इसका जन्मदाता कहा जाता है। अभी तक सभ्यताका कोई साधारण पैमाना नहीं बन पाया है। इस दृष्टिसे हम अभी उन प्राचीनोंसे आगे नहीं बढ़े जो सभी विदेशियोंको असभ्य कहते थे। शिक्षित पाश्चात्य संसारने तो अपनी जातियोंको सर्वोच्च और जंगली जातियोंको सबसे नीचा स्थान देकर, बाकी सब जातियोंको इन दोनों के बीचमें स्थान दे दिये हैं और इस प्रकार एक सभ्यताका मनमाना पैमाना* खड़ा कर दिया है। यह मनमानी व्यवस्था पूर्वीय लोगोंको चकित कर देती है। एक जापानी राजनीतिज्ञने निम्नलिखित बातें यूरोपियन श्रोतृमण्डलीके सन्मुख कही थीं :—

"दो हज़ार वर्ष तक हम संसारके किसी देशसे न लड़े। हमारी ललित कलाओं और उत्तमोत्तम निर्माण की हुई वस्तुओंकी ख्याति देश देशमें फैल कर हमारा परिचय कराती थी, पर हम जंगली और असभ्य समझे जाते थे। परन्तु जिस दिनसे हमने अन्य देशोंसे लड़ाई ठानी और अपने शत्रुओंको हज़ारोंकी संख्यामें मारा उसी दिनसे आप हमको सभ्य जातियोंमें गिनने लगे।"

पश्चिमीय संसारमें भी सभी इस मनमानी व्यवस्थाके माननेवाले नहीं हैं। वहां भी यह बात स्वीकार नहीं की जाती कि पश्चिमी सभ्यतासे उत्तम कोई

❀"Epochs of civilization" by Mr. Pramathanath Bose B. Sc. Lond.

* Primitive culture vol. I. by E. B. Taylor.

अन्य सभ्यता हुई ही नहीं। असंख्य आविष्कार और औद्योगिक चमत्कार (वह भी जो जंगी हवाई जहाजके सदृश वास्तवमें असभ्य कामोंके लिए बनाये गये) और अफ्रीका और एशियाके असभ्य प्रदेशोंमें काल्पनिक परोपकार और शिक्षण कार्य— इनके नाम लेले के जो पाश्चात्य सभ्यताका गुण-गान होता है, उसका माधुर्य कभी कभी विरोध-रागके आलापसे विच्छिन्न हो जाता है। हक्स्लेने लिखा है—"आधुनिक श्रेष्ठतम सभ्यतामें न तो कोई आदरणीय आदर्श ही है और न उसमें स्थिरताका गुण ही है। मुझे यह कहनेमें कुछ भी हिचक नहीं है कि यदि अधिकांश मनुष्यजातिकी अधिक उन्नतिकी आशा नहीं है, यदि यह सच है कि ज्ञानकी वृद्धिसे (जिससे प्रकृतिपर विजय और धनकी प्राप्ति होना स्वाभाविक है) मनुष्यकी दरिद्रता और उसके कारण होनेवाली शारीरिक और नैतिक पतितावस्थामें उन्नति नहीं होगी तो मैं बड़ी प्रसन्नतासे एक ऐसे दयालु पुच्छल तारेका स्वागत करूंगा जो सारे संसारका नाश करदे, क्योंकि ऐसी दशामें इसी प्रकार प्रलय होना अच्छा प्रतीत होता है।"*

डाक्टर ए० आर० वालेसका मत है कि अफ्रीकामें यूरोपियन लोगोंके जानेका फल अभीतक तो यही हुआ है कि उन्होंने शराब और बारूद खूब बेची है, अपनी भूमि और पशुओंके छीने जानेपर विरोध करनेके कारण वहांके निवासियोंकी हत्या कर खूनकी नदी बहाई हैं, गोरे और काले दोनोंके ही चरित्र भ्रष्ट हो गये हैं और जो जातियां गोरे लोगोंसे हार गई हैं वह किसी न किसी रूपमें दासत्वके बन्धनमें जकड़ गई हैं।*

सभ्य-समाज शास्त्रकी इस हीन दशाके कारण कई हैं। इस शास्त्रके अध्यय में बड़ी बाधाएं और कठिनाइयां होती हैं। इस शास्त्रके अध्ययनकी सामग्री बहुत मिली जुली और अत्यधिक है और अर्वाचीनकालसे लेकर सात आठ हजार वर्ष पीछे तक, जब मानवीय इतिहासका अस्पष्ट आरम्भ हुआ प्रतीत होता है, फैली हुई है। फिर इस सामग्रीको बटोरना भी ऐसे ऐसे ग्रन्थों, गाथाओं, लेखों आदिमेंसे है जिनमें मनुष्यकी उत्कृष्टता विषयक चर्चा उतनी ही कम है जितनी अर्द्ध-बर्बर वीरोंके पराक्रम और कुटिल राजनीतिज्ञोंके कार्य-विवरण की कथाओंका बाहुल्य है। परन्तु सभ्य-समाजशास्त्रकी सबसे बड़ी कठिनाई मनको सभ्यताके पूर्ण दृश्यके देखनेके लिए एकाग्र कर उसमें लगानेकी असमर्थता है। जन्मसे ही मनुष्यपर विचारोंका, भावोंका, श्रद्धाका, पक्षपातोंका और भिन्न भिन्न विधानोंका इतना अधिक और सूक्ष्म प्रभाव पड़ता है कि उसके कारण अनायास ही मनकी भावना निश्चित हो जाती है और फिर उसमें परिवर्तन होना अत्यन्त ही कठिन हो जाता है। यूरोपियनके विचार यूरोपमें ही परिमित रहते हैं और एशिया-निवासीके विचार भी एशियामें ही साधारणतया परिमित रहते हैं। जब कभी इन प्रदेशोंकी सीमाओंका उल्लंघन होता भी है तो साधारणतया बाहरकी वस्तु भद्दी, तुच्छ, विकृत और असंगत जान पड़ती है। सभ्य जीवनके ऐसे पक्षपात-युक्त और अपूर्ण निरीक्षणके कारण तत्सम्बन्धी शास्त्रीय विचार अवश्य ही दूषित होंगे।

कुछ शिक्षित एशिया-निवासी ऐसे हैं, विशेषतया चीनियों में, जो सभ्य-यूरोपियनको जंगलीसे अच्छा नहीं समझते। साथ ही साथ प्रसिद्ध पाश्चात्य लेखकोंकी पुस्तकोंमें निम्नलिखित जैसी बातें भी पाई जाती हैं:—प्राचीन लोग उन्नतिकी कोई कल्पना ही नहीं कर सकते थे, न तो वह इसका परित्याग कर सकते थे और न उसको ग्रहण ही कर सकते थे। पूर्वात्य जातियां अब भी वैसी ही हैं। इतिहासके आरंभ कालसे वह जैसी थी वैसीही बनी हैं। केवल कुछ जातियां जिनमें यूरोपियन रुधिरका मिश्रण है उन्नति करती हैं। पर यह भी यही समझती हैं कि उनके लिए उन्नति करना अनिवार्य है, स्वाभाविक

*Government Anarchy or Regimentation collected Essays vol. I.

†The Wonderful coutury. P. 372

और चिर्कालिक है। ❀

स्वर्गीय प्रोफेसर हक्स्ले जैसे दार्शनिक और योग्य वैज्ञानिक भी प्राचीन ऋषियोंके शान्ति और मुक्ति पानेके प्रयत्नोंको कार्यक्षेत्रसे भागना और लड़कपन समझते थे। उनकी इच्छा थी कि आधुनिक यूरोपियन लोग पूरे मर्द का सा काम करें और आदमियतका व्यवहार करें।

यह विचार कि दो हजार वर्ष पहलेके सभ्य पुरुष आधुनिक लोगोंकी अपेक्षा लड़के थे पश्चिममें सर्वमान्य नहीं है। हेनरी जार्जने लिखा है कि आधुनिक सभ्यतावाले हम लोग अपने पूर्वजोंसे और उन समकालीनोंसे जो हमसे कम सभ्य है बहुत ऊंचे हैं। इसका कारण यह है कि हम लोग एक स्तम्भ पर खड़े हैं न कि यह कि हम वस्तुतः लम्बे हैं। शताब्दियोंमें जो काम हमारे लिए हुआ है उससे हमारा कद नहीं बढ़ा है, उससे एक ऐसी इमारत बन गई है जिस पर हम अपने पैर रख सकते हैं।" ❀ डाक्टर ए० आर० वालेसने लिखा है, "सभ्य पुरुषके पिछले इतिहासपर दृष्टिपात करके मैंने यह दिखला दिया है कि प्राचीन कालकी अपेक्षा हमारी मानसिक अथवा नैतिक उत्कृष्टताका कोई भी प्रमाण ❀ नहीं मिलता है"।

किसी भी सभ्य पूर्वीयका यह पूछना असंगत न होगा कि "आधुनिक पाश्चात्य पुरुष मेरे प्राचीन पुरखाओंसे किसी अंशमें श्रेष्ठतम है? क्या कान्ट, कूवियर या डार्विनकी मानसिक शक्ति कपिल, कनफूसियस या कणादकी मानसिक शक्तिसे उत्तम थी? क्या उस कालकी, जिसमें लाउट्श, बुद्ध, जोरास्टर और ईसा जनमें आधुनिक कालसे नैतिक उन्नतिमें तुलना की जा सकती है?" जिसकी आंखें पाश्चात्य सभ्यताकी चमक दमक से चौंधिया नहीं गयी हैं वह यह कह सकता है कि प्राचीन ऋषियोंका उन लोगोंको संन्यास ग्रहण करनेका उपदेश देनेका कारण, जो आयु अधिक होने पर आत्मोन्नतिके इच्छुक थे, यह था कि आध्यात्मिक उन्नति अधिक यत्नशीलता और सफलतापूर्वक हो सके, क्योंकि बुद्धके समान वह भी यह समझते थे कि "विजयी वही है जो आत्मापर विजय पावे, लड़ाईमें सहस्रों आदमियों को तो बहुतेरे मार सकते हैं।"

पाश्चात्य जातियां मर्दानियतका जीवन बिता रही हैं, जिसका सूत्र है "निरन्तर कार्य करो, ढूँढो और पाओ" परन्तु 'स्वभावतः यह प्रश्न होता है कि "पायेंगे क्या"। पूर्वीय पक्षसे एक दर्शक यह पूछ सकता है कि "पाश्चात्य मर्दकी वह विजय किस कामकी है, जो प्रेम, दया और आत्मसमर्पण द्वारा नहीं प्राप्त हुई, बल्कि जिसके लिए सारे संसारके असंख्य मनुष्योंको पद दलित हो दुख उठाना पड़ा है और जिसके प्राप्त होनेसे वह शान्ति और आनन्द न मिला जो धर्म और प्रेमसे मिलता है; बल्कि जिसका परिणाम अतृप्त इच्छा, अदम्य लोभ और निरन्तर विरोध के कारण दुःख और अशान्ति ही हुआ है।"

परन्तु जो आभ्यान्तर और वाह्य कठिनाइयां अभीतक सभ्य-समाजशास्त्रकी उन्नतिको रोके हुई थीं अब धीरे धीरे कम हो रही हैं। सहनशील और परिश्रमी पुरातत्व विशारदों और भाषावेत्ताओंको खोजसे प्राचीन और अर्वाचीन् काल मिल रहे हैं और समाज शास्त्र के विद्यार्थीको प्राचीन सभ्यताओंके भिन्नभिन्न दृश्य प्राप्य हो रहे हैं। साथ ही साथ पाश्चात्य और पूर्वीय सभ्यताओंके गाढ़ समागमसे वह पक्षपात रहित मनोवृत्ति उत्पन्न हो रही है जिसके बिना इस शास्त्रका अध्ययन असंभव था। ऐसी ही खोजके निमित्त यह छोटा ग्रन्थ लिखा गया है। अत्यन्त सङ्कोचसे यह प्रकाशित किया जाता है। बहुत सी बातें जो मैंने इस एकान्त वासमें बिना एक वृहद पुस्तकालयकी सहायताके एकत्र की हैं पूर्ण और सन्तोषजनक नहीं हैं।

---

*Walter Bagehot, "Physics and Politics" P. 41-42

❀"Progress and Poverty" P. 356

"The World of Life" P. 396

वास्तवमें जितना बड़ा कार्य मैंने उठाया है उसकी दृष्टिमें भारतीय कविका यह कथन सत्य है, "धोखेमें मेरे ऐसे बौनेने एक ऐसे फलकेलिए हाथ फैलाया है जो एक देवको ही प्राप्त हो सकता है।"

खाना क्यों खाते हैं ?

आहारः प्राणिनः सद्यो बलकृद्देहधारकः।
आयुस्तेजः समुत्साहस्मृत्योजोऽग्निविवर्द्धः॥ (सुश्रुत)

हमारा शरीर हर समय कुछ न कुछ कार्य करता रहता है। जिस समय हम बेसुध सोते हैं, हृदय, फेफड़े और अन्य कई भीतरी शारीरिक अवयव उस समय भी काम करते रहते हैं, काम करनेसे शरीर घिसता और क्षीण होता है। प्रतिक्षण शरीरकी सेल (Cells) टूटती रहती हैं। एक पग चलने, एक शब्द बोलने और तनिक भी सोचने विचारने या चिन्ता करने, यही नहीं प्रत्युत श्वास लेने तकसे भी शरीरमें कुछ न कुछ ह्रास अवश्य होता है। यदि किसी मनुष्य को तोलकर किसी कड़े परिश्रमके कामपर लगाया जाय और काम करनेके पश्चात् फिर तोला जाय तो उसका भार पहलेसे कुछ कम उतरेगा। इस परीक्षासे यह बात बिलकुल स्पष्ट हो जाती है कि कामकाज करने से हमारा शरीर क्षीण होता है। व्यायाम या परिश्रमके अन्य काम करने से जो थकान आ जाती है उसका यही कारण है। यदि इस क्षतिकी पूर्ति न हो तो शरीर थोड़े समयमें ही दुबला, पतला, कमजोर क्षीण और शक्ति-हीन हो जाय; यहां तक कि फिर वह प्राण धारण करने योग्य भी नहीं रहे; पर ऐसा नहीं होता। हम देखते हैं कि कड़ेसे कड़ा परिश्रम करनेवाले मजदूर, किसान और लोहार इत्यादि भी दीर्घजीवी होते हैं। उनका शरीर भी बहुत समय तक प्रायः एक ही दशामें रहता है।

इसके साथ ही यह भी देखा जाता है कि कई दिनका उपवास करनेसे शरीर बहुत दुबला और निर्बल हो जाता है, शरीरका भार घट जाता है। यह क्यों? उपवासके दिनोंमें केवल भोजन करना ही तो छोड़ दिया जाता है। इसी एक कारणसे मनुष्य अत्यन्त शीघ्र दुबला पतला और निर्बल हो जाता है। भोजन न मिलनेके कारण ही अकालके समय सैकड़ों मनुष्य सूखकर काँटा हो जाते हैं। भोजन न खा सकनेके कारण ही रोगी मनुष्य दिन-पर दिन कमजोर होता जाता है उसका भार घटने लगता है। इन उदाहरणोंसे प्रतीत होता है कि भोजन करते रहनेपर परिश्रमी मनुष्यका कलेवर क्षीण नहीं होता और भोजन न करने पर बिना परिश्रम किये भी शारीरिक भार घट जाता है; अतएव स्पष्ट है कि हमारे शरीरमें जो ह्रास होता है उसकी पूर्ति करने वाला आहार ही है; आहारसे नये सेलों (Cells) के स्थानमें नये सेल बनते और उनकी मरम्मत होती रहती है।

विद्वानोंने अनुमान लगाया है कि इस परिवर्तनसे प्रायः सात वर्षमें हमारा शरीर बिल्कुल बदल जाता है। अर्थात् अब से छः वर्ष पहिले हमारे शरीरमें जो रक्त, मांसादि था, उसका लेशमात्र भी अब नहीं है। अब उसमें गत छः वर्षोंमें निर्मित नये रक्त मांसादि हैं। अबसे छः वर्ष बाद यह भी न रहेंगे। शरीर में इस प्रकारका परिवर्तन प्रतिक्षण होता रहता है। इधर एक कण टूटा और उधर दूसरा कण बन गया। जहाँ कोई कण घिसा फौरन् उसकी मरम्मत होगई। यह क्रम सदैव जारी रहता है।

'आहार' ह्रासकी पूर्ति करने के अतिरिक्त २५-३० वर्ष की आयु तक शारीरिक वृद्धि भी करता है। नव जात शिशुके भार, लम्बाई इत्यादि का युवा-पुरुषके भार और उसकी लम्बाई इत्यादि से मुक़ाबिला करनेपर यह बात आपही स्पष्ट हो जाती है। बालकके शरीरमें ह्रास कम होता है और आहार से नये सेल अधिक बनते हैं। इसीलिए उसका शरीर दिन दिन बढ़ता जाता है। परन्तु युवा पुरुषोंमें अधिक काम करनेके कारण ह्रास अधिक होता है और

आहारसे केवल उसकी पूर्तिमात्र ही होती है। इतना अधिक आहार वह पचा नहीं सकता कि जो ह्रास की पूर्ति करनेके अतिरिक्त शारीरिक वृद्धि भी हो सके। वृद्ध पुरुष जितना आहार पचा सकते हैं उससे उनके शारीरिक ह्रासकी पूर्ति भी नहीं हो पाती; दूसरे उनकी पाचन-शक्ति भी क्षीण होने लगती है। यही कारण है कि उनका शरीर दिन प्रति दिन क्षीण होने लगता है। यहाँ पर ह्रासके इस आधिक्य और पाचनशक्ति की क्षीणताके कारणोंपर विचार करने की आवश्यकता नहीं है।

शरीरमें ताप भी भोजनसे ही उत्पन्न होता है। जब तक हम जीते हैं हमारा शरीर सदैव गरम रहता है और हर समय थोड़ी बहुत गरमी शरीर-से बाहर भी निकलती रहती है। जाड़ेके दिनोंमें जब हम प्रातःकाल कपड़े पहनते हैं तो पहले तो वह ठंडे मालूम हुआ करते हैं, परन्तु थोड़ी देरमें गरम होजाते हैं, इसका कारण यही है कि हमारे शरीरसे जो गरमी निकलती रहती है उसमेंसे थोड़ी सी कपड़ोंमें समा जाती है और इसीसे वह गरम होजाते हैं।

चाहे हम शीत प्रधान देशमें रहें, चाहे उष्णता प्रधान देशमें चले जायं, चाहे ग्रीष्म ऋतु हो अथवा जाड़ेका मौसम, परन्तु शारीरिक तापमें कोई विशेष अन्तर नहीं पड़ता। (थर्मामीटर) तापमापक यन्त्र से परीक्षा करनेपर स्वस्थ मनुष्यके शरीरका ताप क्रम प्रायः ९८ ई० फा° पाया जाता है। ऋतु आदि तथा प्रकृति भेदके कारण थोड़ा बहुत अन्तर मनुष्योंके शारीरिक तापक्रमोंमें रहता है। परन्तु बिना किसी रोगके अधिक अन्तर नहीं हो सकता। इसके विपरीत मृत्युके पश्चात् शरीर बिल्कुल ठंडा हो जाता है। इससे प्रकट होता है कि यह ताप सूर्य से प्राप्त नहीं होता प्रत्युत शरीर के भीतर ही उत्पन्न होता है।

हमारे शरीरमें सदैव एक प्रकारकी दहन क्रिया हुआ करती है (अग्नि जला करती है)। आहार इस दहन-क्रिया में ईंधनका काम देता है। भोजनका एक अंश ओषजन (आक्सीजन Oxygen) नामक वायु से मिलकर अप्रत्यक्ष रूपसे जलने लगता है जिससे गरमी उत्पन्न होकर हमारे शरीरको गरम रखती है, और सदैव थोड़ी बहुत शरीरसे बाहर भी निकलती रहती है। मृत्युके पश्चात् श्वास क्रिया बन्द हो जानेके कारण शरीरमें ओषजन नहीं आ सकती अतएव दहन क्रिया बन्द हो जाती है, क्योंकि ओषजनके बिना अग्नि नहीं जल सकती, यही कारण है कि मृत्यु के पश्चात् शरीर ठंडा हो जाता है। यद्यपि शरीरके भीतर होने वाली दहन क्रियामें लौ, प्रकाश या लपटें नहीं निकलती क्योंकि यह दहन-क्रिया अत्यन्त मन्द गतिसे हुआ करती हैं, तथापि कुछ साधारण परीक्षाओंके द्वारा इसका होना प्रमाणित किया जा सकता है।

जलनेवाले लकड़ी, मांस, वसा आदि साधारण पदार्थोंमें कर्बन और उज्जन (Carbon and Hydrogen) नामक दो पदार्थ प्रायः होते हैं। जब इनमेंसे कोई पदार्थ जलता है तो उसमेंके यह दोनों पदार्थ ओषजन वायुसे मिलकर यथाक्रम कर्बनद्विओषिद (कार्बोनिक एसिड गैस) और जल-वाष्प उत्पन्न करते हैं। ओषजनके साथ कर्बनका संयोग होनेसे कार्बोनिक-एसिड गैस और उज्जनके संयोगसे जल-वाष्प-की उत्पत्ति होती है। यद्यपि यह दोनों पैदा हुए पदार्थ अदृश्य पदार्थ हैं तथापि निम्नाङ्कित सरल और साधारण प्रयोगों से उनकी जांचकी जा सकती है।

प्रथम परीक्षा—एक स्वच्छ बोतलमें चूनेका साफ़ पानी एक औंस डाल कर यदि उसे भले प्रकार हिलाया जाय तो उसमें कोई परिवर्तन न होगा। पानी पहिलेकी भाँति स्वच्छ ही रहेगा। परन्तु यदि एक छोटी सी मोमबत्तीको जलाकर, एक तारमें बाँधकर उस बोतलके भीतर उतारें और बोतलके मुंहको काग़ज़से ढांप दें तो थोड़ी देरमें बत्ती बुझ जायगी। अब यदि बत्ती निकाल कर बोतलके मुंहको हथेली या कागसे बन्द करके उसे हिलायें तो बोतल-का पानी स्वेत—दूधिया—हो जायगा। यह क्यों?

कारण यह है कि मोमबत्तीके जलनेमें उसमेंका कर्बन हवाकी ओषजनसे मिलकर कर्बनद्विओषिद् बना लेता है। यही गैस चूनेके पानीको दूधिया कर देती है।

द्वितीय परीक्षा—एक मोमबत्तीको जलाकर उसके ऊपर कांचका एक स्वच्छ और सूखा ग्लास इस प्रकार उलटा करके ढांप देना चाहिये कि बत्ती बुझ न जाय अर्थात् ग्लासके भीतर हवा जानेके लिए मार्ग रहना आवश्यक है। कुछ समय पश्चात् ज्ञात होगा कि ग्लासका कुछ भाग अस्वच्छ होगया है। अब यदि इस इस अस्वच्छ भागको अँगुलीसे स्पर्श करके देखा जाय तो उस स्थान पर जलके सूक्ष्म कण जमे हुए प्रतीत होंगे। यह जल कहाँसे आया ? परीक्षा-से पहिले तो ग्लास सर्वथा सूखा था ? बात यह है कि बत्तीके जलनेसे उसमेंकी उज्जन वायुकी ओष-जनसे मिलकर जल वाष्पके रूपमें परिणत हो गई। यह वाष्प ही ग्लासकी ठंडी दीवालोंपर जम गई।

उपरोक्त परीक्षाओं द्वारा ही शरीरमें उक्त पदार्थों का पैदा होना सिद्ध किया जा सकता है। एवं यह सिद्ध होनेपर शरीरके भीतर होनेवाली दहन-क्रियाको प्रमाणित करनेके लिए किसी अन्य प्रमाणकी आव-श्यकता न रहेगी; क्योंकि दहन-क्रियाके बिना उक्त दोनों पदार्थों की उत्पत्ति सम्भव नहीं हो सकती।

जल-वाष्प एवं कार्बोनिक एसिड गैस दोनों ही पदार्थ हमारे प्रश्वास—भीतरसे बाहर आनेवाले श्वास—में विद्यमान रहते हैं। जल-वाष्पका होना प्रमाणित करनेके लिए तो किसी विशेष परीक्षाकी आवश्यकता ही नहीं है; किसी स्वच्छ चिकने पदा-र्थपर (जैसे स्लेट या काँच, शीशा आदि) तनिक मुंह खोलकर प्रश्वास वायु छोड़िये। आप देखेंगे कि वह पानीसे नम होगई है। इसके अतिरिक्त शीत-कालमें मुंहसे धुआं सा निकलता हुआ प्रतीत हुआ करती है। यह धुआं और कुछ नहीं प्रश्वासके साथ बाहर आई जल की भाप ही है, जो बाह्य शीतल वायुके संयोगसे घनीभूत होकर इस रूपमें परिवर्तित हो जाती है। यद्यपि यह वाष्प ग्रीष्म ऋतुमें निकला करती है, परन्तु बाह्य वायु शीतल न होनेके कारण शीत-कालके समान जल कण स्थूल नहीं हो सकते और इसीलिए वाष्प भले प्रकार दिखलाई नहीं देती।

प्रश्वास या उच्छ्वासमें कार्बोनिक एसिड गैसकी विद्यमानता प्रमाणित करनेके लिए नीचे दी हुई सहज परीक्षा आवश्यक है।

यदि एक स्वच्छ बोतलमें चूनेका साफ़ पानी डाल कर कांचकी नलीके द्वारा थोड़े समय तक उसमें मुंहकी भाप प्रविष्ट की जाय तो बोतलका पानी दूधिया हो जायगा। यह हम देख ही चुके हैं कि चूनेका पानी कार्बोनिक एसिड गैसके प्रभावसे दूधिया होता है।

उपरोक्त प्रयोगोंसे प्रश्वास वायुमें जल वाष्प और कार्बोनिक एसिड गैसकी विद्यमानता, भले प्रकार प्रमाणित हो जाती है और इनकी विद्यमानता दहन-क्रियाको सिद्ध करनेके लिए पर्याप्त प्रमाण कही जा सकती है।

आभ्यान्तरिक दहन-क्रियासे जो ताप उत्पन्न होता है उसका ही दूसरा रूप शक्ति है जो हमें कार्य करनेमें समर्थ करती है।

इस प्रकार शरीरमें जाकर आहार—

(१) शारीरिक ह्रासकी पूर्ति

(२) शारीरिक वृद्धि

(३) तापोत्पत्ति और

(४) कार्य कारिणी शक्ति या बलकी उत्पत्ति

यह चार काम करता है। और इन्हींके लिए आहार-की आवश्यकता है।

आहार न मिलनेपर शारीरिक ह्रासकी पूर्ति होना तो शीघ्र ही रुक जाता है, परन्तु आभ्यन्तरिक दहन-क्रिया कुछ अधिक समय तक होती रहती है। जब इस दहन-क्रियाको आहार रूपी ईंधन नहीं मिलता तो शरीरस्थ रस, रक्त, मांस मेदादि धातुओंमें जो जलने योग्य उपादान होता है वह इस कमीको पूर्ति करते हैं एवं जिस प्रकार लकड़ी कोयले आदिके जलनेसे उनका भार कम होजाता है इसी प्रकार आहाराभावमें शरीर भी दिन प्रति दिन घटने लगता

है। आहाराभावसे शरीरके भीतर क्या परिवर्तन होता है, आयुर्वेदमें इसका विशद् वर्णन निम्न प्रकार किया गया है।

> क्षुधितो न योऽश्नाति तस्याहारेन्धन क्षयात्।
> मन्दा भवति कायाग्निर्यथा चाग्निर्निरिन्धनः।
> आहारं पचति शिखी दोषानाहार वर्जितः।
> पचति दोषक्षये धातून् प्राणान् धातु क्षयेऽपिच॥

अर्थात्—यदि क्षुधातुर (भूखा) मनुष्य भोजन नहीं करता तो आहार रूपी ईन्धनके अभावसे जठराग्नि उसी प्रकार मन्द हो जाती है, जिस प्रकार लकड़ी कोयले आदिके अभावसे साधारण अग्नि। इसके साथ ही जठराग्नि पहिले (आहारा-भावमें) दोषोंको पचाती है, पश्चात् रक्त मांसादि शारीरिक धातुओंको; एवम् धातुओंका क्षय होनेपर प्राणान्त हो जाता है। निष्कर्ष यह कि आहारके अभावमें यद्यपि शरीर कुछ समय तक जीवित रह सकता है, परन्तु अधिक समय तक नहीं और वह भी निर्बल तथा असमर्थ दशामें।

आइन्स्टाइनका सिद्धान्त और मन

[श्री शंकरलाल जींदल, एम० एस-सी०]

जिसको लिखने पढ़नेका या लिखे पढ़ोंसे मिलनेका कुछ भी शौक़ है उसने न्यूटनका नाम तो अवश्य सुना ही होगा। यह एक बड़े भारी ज्योतिषी हो गये हैं। यहांपर ज्योतिषी शब्द के अर्थ वह नहीं है जो कि तक़दीरका हाल बतानेवालोंके वास्ते इस्तेमाल किया जाता है। न्यूटनने ज्योतिष विद्याके जो नियम मालूम किये थे वे अभी तक अटल माने जाते थे, और किसीको भी इस बातकी आशा न थी कि उसमें भी परिवर्तन होगा।

परन्तु आइन्स्टाइन (Einstein) ने अपने गणितके बलसे उनमें भी परिवर्तन कर ही दिया। आप जर्मन हैं और आधुनिक समयके एक बड़े भारी वैज्ञानिक माने जाते हैं। आइन्स्टाइन (Einstein) के सिद्धान्तको सचाईमें अब कोई शक नहीं है क्योंकि दो दफ़ा सूर्य ग्रहणमें उसकी परीक्षा हो चुकी है और अब बहुत जल्द ही स्कूल-के लड़कोंको बिलकुल नयी भूगोल व रसायन आदि विद्यायें सिखलायी जाया करेंगी।

आकाश टेढ़ा मेढ़ा है, रोशनी मुड़ सकती है सीधी लकीरें हैं ही नहीं, समानान्तर लकीरें भी मिल सकती हैं। चीज़ोंका क़द उनकी गतिके अनुसार छोटा बड़ा हो सकता है। समय भी वापिस आसकता है। कोपरनिकस (Copernicus) का ख्याल था कि मैंने यह बात साबित कर दी है कि पृथ्वी एक बड़े चक्र के समान है, जो कि एक कीलीपर घूम रहा है। सूर्य इसके बीचमें है और पृथ्वी इसके सिरेपर है और इस वास्ते सूर्यके चारों ओर घूम रही है। आइन्स्टाइन-ने उस कीलीको निकाल दिया है अर्थात् कोई भी चीज़ ठहरी हुई नहीं है। एक फुट रूल हमेशा एक फुट ही लम्बा नहीं होता है। एक घंटा अधिक व कम भी हो सकता है। एक सेर का वज़न हमेशा एक सेर ही नहीं रहता है। ये कुछ विचार हैं जो कि बुद्धिसे बाहर मालूम होते हैं। परन्तु यह बात नहीं है, ये बिलकुल सच हैं, क्योंकि बड़े बड़े ज्योतिषियोंने हालके ही सूर्य ग्रहणोंमें इसकी सचाईकी जांच करली है। उन लोगोंने सूर्यके पीछेके तारोंका फ़ोटो खींचा और मालूम किया कि वे उस जगहपर नहीं थे जहाँ कि पुरानी गणितके अनुसार होने चाहिएँ। परन्तु वे वहाँपर थे जहां कि आइन्स्टाइनने हिसाब लगाकर बतलाया था। इन बातोंसे यह न समझना चाहिये कि तारोंकी जगहमें अन्तर पड़ जाता है, बल्कि बात यह है कि रोशनी जो कि उन तारोंसे आती है वह सूर्य के पास आकर अपने रास्ते से मुड़ जाती है, और चूंकि रोशनीकी सीधमें तारे दिखलाई देते हैं इस कारण तारोंकी जगह हटी हुई मालूम होती है।

इन बातों के अतिरिक्त डाक्टर हेलने (Heyl) वाशिंगटनमें बड़े बड़े रवों (Crystals) को एक ख़ास तुलामें भिन्न भिन्न हालतोंमें तोला है। पुराने क़ायदोंके अनुसार किसी वस्तुका वज़न किसी एक जगह में वही रहता है चाहे किसी तरहसे तोली जावे। परन्तु आइन्स्टाइन कहते हैं कि यदि एक दशा में तोलनेसे वज़न कुछ है तो दूसरीमें उससे भिन्न होगा। डाक्टर हेलने मालूम किया है कि आइन्स्टाइनका मत ठीक है, क्योंकि वज़नमें कुछ कुछ अन्तर पाया गया है।

विचार कीजिए कि आप इलाहाबादसे कानपुरकी पंजाब मेलसे सफ़र कर रहे हैं। ज्योंही गाड़ी किसी छोटे स्टेशनसे होकर गुज़रती है, आप खड़े होकर पीछे-की तरफ़ चले। आपका चलना दो तरहसे हुआ। एक तो ऊपरको जब कि आप खड़े हुए और दूसरा जब कि आप पीछेको हटे। मान लीजिए कि कुल आप १२ फ़ीट २० सेकंडमें चले। यह आपको भी मालूम हुआ और आपके साथके मुसाफ़िरोंको भी। परन्तु यदि आपका कोई मित्र उस छोटे स्टेशनपर खड़ा होता तो उसको आप पीछेकी ओर चलते दिखाई न देते बल्कि आगेकी ओर ५० मील फ़ी घंटाकी गतिसे, लेकिन स्टेशन तो स्थिर है। मान लीजिए कि एक मनुष्य सूरजपर बड़ी भारी दूरबीन लिए हुए पृथ्वीको देख रहा है। उसको तमाम स्टेशन व डाक गाड़ी एक विन्दुके समान पृथ्वीकी सतहपर चक्कर खाती हुई व सूर्यके चारों ओर घूमती हुई मालूम होगी।

यदि दूरबीन वाला मनुष्य सूरजको छोड़कर किसी और दूरवाले सितारेपर चला जावे जैसे केनिस मेजर (Canis Major) तो उसको क्या दिखाई देगा? वह सूरजको अपने ग्रहोंके साथ अपने चारों ओर हजारों मील फ़ी सेकंडकी चालसे घूमता हुआ देखेगा। केनिस मेजर भी स्थिर सितारा नहीं है। वह भी किसी और ग्रह समूहकी ओर भागा चला जा रहा है यह ग्रह समूह भी स्थिर नहीं है बल्कि किसी अन्य समूहकी ओर खिंच रहा है। सो इस सृष्टिमें किसी स्थिर-वस्तुका मिलना असम्भव है।

अब क्या आप बता सकते हैं कि आप कितनी चालें चल रहे हैं और कितना तेज़ घूम रहे हैं। आप सिर्फ़ इतना ही कह सकते हैं कि जितनी देरमें आपने इस वाक्यको पढ़ा है आप हज़ारों या लाखों मील दूर चले गये हैं तब भी आपको यह मालूम होता है कि आप ठीक उसी जगहपर अपने पढ़नेके कमरेमें बैठे हुए हैं। आप यह नहीं कह सकते कि आप चल रहे हैं। अगर आप किसी रेलमें सफ़र कर रहे हों तो आप यह नहीं बता सकते कि आपका गति क्या है जबतक कि आप खिड़कीके बाहर झाँक कर न देख लें यदि बराबरकी पटरीपर दूसरी रेलगाड़ी उसी गतिसे उसी ओर जा रही हो तो आप अपनेको एक जगह ठहरा हुआ समझेंगे। परन्तु जब आप आपको अपनेसे दूर करके अपनेको घूमता हुआ देखें तो आपको मालूम होगा कि आपकी नन्हीं जगह भी किसी तीसरी चीज़के मुक़ाबलेमें घूम रही है। कहनेका तात्पर्य्य यह है कि इस सृष्टिमें सर्वथा स्वाधीन (absolute motion) नहीं है क्योंकि सृष्टिमें कोई भी स्थिर विन्दु नहीं है। आइंस्टाइनकी गतिकी सापेक्षताके सिद्धान्तका यही अर्थ है।

फ़र्ज़ कीजिए कि जब आप आज सुबह उठे तो किसीने सृष्टिकी घड़ीको ऐसा कर दिया कि कलकी अपेक्षा हर एक बात १००० गुना तेज़ीसे होने लगी। क्या आप ख्याल करते हैं कि आपको यह अन्तर मालूम हो जायगा। अगर मालूम भी हुआ तो कैसे? क्या अपनी जेब घड़ी देख कर? परन्तु आपकी घड़ी नहीं नहीं सारे संसारकी घड़ियां भी तो १००० गुना तेज़ीसे चलेंगी। क्या सूर्य्यकी चालसे? नहीं वह भी १००० गुना तेज़ चलता होगा। गाड़ियां, रेल व नाव इत्यादि भी १००० गुना तेज़ीसे चलेंगी। आपको तनिक भी नहीं मालूम होगा कि कोई कलसे अन्तर हो गया है। यही दशा तब भी होगी जब कि सृष्टिकी घड़ी १००० गुना धीमी गतिसे चलने लगे। आप समयका अन्दाज केवल किसी और चीजसे तुलना करके ही कर सकते हैं और यदि आपकी सारी नापनेकी तरकीबें भी साथ साथ बदल जावें तो

आपके पास जांच करनेको कुछ भी नहीं रह जाता है। अगर समय घटता व बढ़ता रहे तो आप कदापि नहीं जान सकते, और आइंस्टाइन कहते हैं कि वास्तव में ऐसा होता है।

कुछ जानवरोंकी जिन्दगी चन्द रोजकी होती है, कुछ कोड़े चन्द ही घंटोंमें अपनी तमाम जीवन क्रिया समाप्त करते हैं और कुछ छोटे छोटे जीव चन्द ही मिनटके वास्ते संसारमें आते हैं। जीवको जो कि चन्द ही मिनटोंमें मर जाता है वही चन्द मिनट ऐसे हैं जैसे कि हमको अपना सारा जीवन काल लगता है। उनका एक सेकण्ड हमारे कई सप्ताहके बराबर है। इसके विपरीत वह समय जिसको हम एक साल कहते हैं किसी और सितारेपर रहने वालों-को केवल चन्द सेकण्डके बराबर मालूम हो सकता है और ऐसा भी सम्भव है कि कुछ मनुष्य इस सृष्टिमें ऐसे हों जिनको इस पृथ्वीकी सारी उम्र जिसको कि वैज्ञानिक लोग लगभग कुछ अरब सालकी बतलाते हैं केवल एक चुटकी मारनेके समयके बराबर लगती हो। यही अर्थ आइन्स्टाइनका समयकी सापेक्षताके सिद्धान्तसे है।

यदि हम चीजोंको बहुत तेज गतिसे चलता हुआ देखें तो हमको अजीब बातें मालूम होंगी, जैसे जैसे उनकी गति रोशनीकी गतिके बराबर होती जायगी तैसे उनकी लम्बाई और चौड़ाईमें बहुत अन्तर मालूम होता जायेगा। मसलन अगर एक बन्दूक़से ज़रियेसे हम एक छड़ीको १६०००० मील फ़ी सेकण्डकी गतिसे छोड़ सकें तो उसकी लम्बाई पृथ्वीपरके मनुष्यको केवल आधी ही मालूम होगी परन्तु उस मनुष्यको जो कि उसके साथ साथ चल रहा है उसकी लम्बाईमें कुछ भी अन्तर नहीं मालूम होगा। आइन्स्टाइन कहते हैं कि कोई भी शक्ति ऐसी नहीं है जो कि किसी वस्तुको रोशनीकी गतिसे ज्यादा तेज़ फेंक सके। यदि कोई मनुष्य अपने आपको रोशनीकी गतिसे अधिक चला सकता है तो वह दूसरे मनुष्यको जिस तरफ़ वह दौड़ रहा है उसके खिलाफ़ दिशामें दौड़ता हुआ मालूम होगा। यह बात असम्भव सी अवश्य मालूम होती है परन्तु इसकी सत्यता कुछ समयमें स्पष्ट हो जायगी।

इससे भी अधिक आश्यचर्यजनक घटनाएँ निम्नलिखित बातोंसे प्रकट होंगी। यदि आप आका-शमें रोशनीकी रफ्तारसे $\frac{1}{20000}$ वां भाग कम चल सकें और दो वर्षमें किसी सितारेपर जा उतरें और फिर वापिस आ जायें तो आपकी आयुमें केवल दो वर्षका अन्तर होगा परन्तु पृथ्वीपर २०० वर्षका अन्तर पड़ जावेगा। यानी बजाय सन् १९२७ के सन् १९२५ होगा। इस प्रकारसे आपको पृथ्वीका भविष्य काल मालूम हो जायेगा। इसी तरह आप रोशनीकी गतिसे अधिक चलनेसे भूत कालकी बातें जान सकते हैं।

रोशनी, समय, आशकाश और प्रकृतिमें अजीब सम्बन्ध है। उदाहरणतः सूर्य्यके, जो कि एक प्राकृति का बड़ा टुकड़ा है, आसपासके आकाशमें रोशनी सीधी नहीं चल सकती है बल्कि कुछ मुड़कर चलती है यह बात सूर्य्य ग्रहणके समयमें सूर्य्यके पीछेके सितारोंके फ़ोटो लेनेसे सिद्ध हो चुकी है। इसी बातको दूसरे शब्दोंमें इस प्रकार से प्रकट कर सकते हैं कि रोशनीकी किरणोंपर प्राकृतिके आकर्षण का इतना असर पड़ता है कि वह सीधे रास्तेको छोड़ देती है। यही कारण है कि हम सूर्यके पीछेके सितारोंका भी फ़ोटो ले सके। जब आकाश (space) ही टेढ़ा मेढ़ा है क्योंकि उसमें असख्य प्राकृतिके बड़े बड़े टुकड़े मौजूद हैं तो यह नतीजा निकलता है कि बिलकुल सीधी लकीरका होना असम्भव है। समानान्तर (parallel) रेखाएं भी आपसमें मिल सकती हैं क्योंकि दोनोंकी जगह भिन्न भिन्न तरीक़ेमें मुड़ी तुड़ी होंगी। यह ज़रूरी नहीं है कि दो बिन्दुके बीचमें सबसे कम फ़ासला उनको मिलानेवाली सीधी रेखाकी लम्बाई है और जब इस सृष्टिमें कोई भी सीधी रेखा नहीं है तो यह सृष्टि किसी भी एक दिशामें अपरिमित नहीं हो सकती। आइन्स्टाइनने कहा है कि ब्रह्माण्ड अनन्त नहीं है पर सीमा रहित है (The univrse is finite but boundles)।

नीचेका उदाहरण इस बातको दिखलाएगा कि दो विन्दुओंमें सबसे कम फ़ासला उनके बीचकी सीधी रेखा ही नहीं होती। आप एक पत्तेपर एक चींटीका विचार करें, वह डंठलसे लेकर पत्तीके सिरेतकका फ़ासला नापना चाहती है, वह फ़ासला उसको सिरेसे लेकर डंठलतक चलनेसे ज्ञात होगा और यह फ़ासला सबसे कम तबही हो सकता है जब कि पत्ता बिलकुल सीधा व चौरस रक्खा जावे परन्तु यदि पत्तेको ऐसा मोड़ें कि डंठल सिरेसे क़रीब क़रीब मिल जावे तो चींटीको तो फ़ासला उतना ही मालूम होगा और आपको ज़रा सा ही अन्तर मालूम होगा। इसका कारण यह है कि चींटी तो दो ही (dimension) दिशावाले आकाशमें चल फिर सकती है और आप तीन दिशावाले आकाश (dimension) में चल फिर सकते हैं और जब चौथी दिशा (dimension) में कोई मामला आ पड़ता है तो आप उस चींटीके समान नासमझ हो जाते हैं। चौथी दिशा (dimension) समय है। जो व्यक्ति चार दिशाओं (dimension) में काम कर सकता है उसको इस पृथ्वीपर चलने फिरनेकी ज़रूरत नहीं है। वह बैठे बैठे सब जगह पहुँच सकता है और समय भी कुछ नहीं लगता। वह व्यक्ति मन है—अभी वह कलकत्तेकी सैर कर रहा है तो तनिक देरमें बम्बईकी सैर करने लगेगा। यदि वह अब पहाड़की चोटीपर है तो समुद्रकी तलीमें झट जा सकता है, यदि वह सूर्यमें चक्कर लगा रहा है तो तुरन्त ही ध्रुव तारेपर जा आसन जमावेगा। यह स्पष्ट है कि इतने बड़े बड़े फ़ासले भी मनके लिए कुछ भी नहीं हैं। अब यह देखना है कि मन भी कभी चक्करमें पड़ सकता है कि नहीं। जैसे मनुष्यका शरीर चौथी दिशा (dimension) में कुछ नहीं कर सकता वैसे मन भी पांचवीं दिशा (dimension) में कुछ नहीं। वह पांचवी दिशा (dimension) कौन सी है? वह ईश्वर है। जिसका आर पार मन की शक्ति से बाहर है बड़े ऋषि मुनि हज़ारों वर्ष प्रयत्न करने पर भी हार मान गये हैं और सर्वदा मानते रहेंगे। अब यह प्रश्न हो सकता है कि जब मनुष्य को जो कि त्रिषिक आकाश में चलता फिरता है चौथी दिशा का ज्ञान हो गया है तो क्या यह सम्भव नहीं है कि मन को भी ईश्वरका ज्ञान होजाय जो पाँचवीं दिशा में है। इसका उत्तर नहीं है, कारण, कि मनुष्यको चतुर्दिक आकाशका ज्ञान मनके द्वारा ही हुआ है परन्तु मनके पास कोई ऐसी वस्तु नहीं है जो कि पञ्चदिक् आकाशकी हो, इसलिए इसका ईश्वरके ध्यान से निकलना असम्भव है। पाठकगण यदि आपका मन सांसारिक बातोंके कारण एकाग्र नहीं होता है तो इसको ईश्वर के ध्यान में लगा दीजिये जहाँ से निकलना इसकी शक्ति से बाहर है। इस प्रकार से आप आप पूर्ण आनन्दको प्राप्त हो सकेंगे।

इस छोटे से लेख से यह विदित होता है कि हमारे पूर्वजों ने इन बातों का ज्ञान पहले ही कर लिया था, जो आजकल आइन्स्टाइनने भिन्न भिन्न शब्द व भाषा में प्रतिपादित किया है। परन्तु भाव एक ही था। आइन्स्टाइन ने इनको प्रत्यक्ष वा स्थूल रूप में रखकर संसारको अति लाभ पहुँचाया है।

कुत्ता

किसीको कुत्ता कहना एक गाली है। क्योंकि इस शब्दसे गुलामी, टुकड़ेपर लालच, घरमें बहादुर और बाहर डरपोक होना, निर्लज्जतासे भोग विलास करना आदि भाव सूचित किये जाते हैं। भारतवर्षमें कुत्तेको बड़ा अपवित्र समझा जाता है। उसको छूकर हाथ धोया जाता है। शिकारी लोगोंका यह बड़ा भारी सहायक है। शिकारका पता देना, पीछा करना, पकड़ना और स्वामीके लिए अपनी जानपर खेल जाना यह कुत्ते के ही गुण हैं।

वर्तमानमें तो यूरोपमें कुत्तोंसे बहुतसे अद्भुत काम लिये जाने लगे हैं, जैसे बर्फमें दबे जीवोंका उखाड़ लाना, गाड़ी खींचना, सन्देसा भेजना

आदि। गाय, भेड़ बकरी आदि पशुओंके रख वाले लोग कुत्तोंको अपना पहरेदार नियत करते हैं। चोरपर भूंकना, चोर को काटना, उसका पीछा करना, स्वामीको जगाना, यह सभी बातें, या अच्छे गुण कुत्तेमें पाये जाते हैं, तो भी कुत्ता विचारा पशु होनेसे मनुष्य दृष्टिमें बड़ा नीच समझा जाता है। इस लेखमें मैं प्राचीन ऋषियोंके लेखानुसार कुत्तेका बुद्धिज्ञान दर्शाना चाहता हूँ। अकलमन्दीका ठेका, या उन्नतिका ठेका, मनुष्यने अपने आप सम्भाला है। आप सभ्य बनकर शेष सब जीवोंको पशु, उसीने बनाया है। इसमें चाहे उसका कोई भी स्वार्थ हो परन्तु हम इतना अवश्य कहेंगे कि न सब पशु समान हैं और न सब मनुष्य समान हैं। ज्ञान एवं बौद्धिक उन्नतिका तारतम्य सभी जगह देखा गया है। इसी विचारसे कुत्तेको जीवनलीला, चेष्टा, अंग विकार आदिपर विचार करनेसे, हम बहुत ही विचित्र परिणामों पर पहुँचते हैं।

मनुष्य जीव इतना अधिक पापी, धोखेबाज़, हत्यारा और निर्दय है कि सभी जीव इससे भय खाते हैं और इससे द्वेष करते हैं। इसको देखकर भागते हैं। इसका गन्ध लेकर परे हट जाते हैं।

तृणचारी पशुओं और पक्षियों में बड़ा स्नेह होता है। गाय, बैल, घोड़ा मृगादिपर निश्चिन्त और निर्भय होकर लाल, गुरसल, घुग्घू और काक आदि पक्षी बैठे रहते हैं। परन्तु मनुष्यके पास आते ही सब भागते हैं। कारण यह है कि वह इसपर विश्वास नहीं करते, तो भी इसने अपनी भाषासे बहुतोंको सधा सधाकर अपनेको बहुतोंका विश्वासपात्र बना लिया है। पुचकार कर (साम), भोजन देकर (दान), मारपीट कर और बाँध कर (दण्ड) और एक पशुको दूसरेसे पिटवा और पकड़वा कर (भेद) प्रायः इसने सबको अपने वश कर लिया है। तिस पर भी अपने आप किसीपर विश्वास नहीं करता। सधे से सधे पशुओं को बांधकर रखता है, पक्षियों को पिंजरेमें फांसता है। बस यही छल और स्वार्थ-परायणता और निर्दयतामें मनुष्य जीवने बड़ी उन्नति की है। निःसन्देह और भी बहुत से बुद्धिके क्षेत्रोंमें मनुष्य पशुओंसे कहीं बढ़कर आगे निकल गया है, परन्तु तो भी बहुत से स्थलोंमें मनुष्योंको पशुओंके पीछे चलना पड़ता है।

पांच इन्द्रिय से बाह्य विषयको जानकर ठीक परिणामपर पहुँचना यह एक सधी हुई बुद्धिका कार्य है। अपने स्वार्थके क्षेत्रोंमें जिस प्रकार मनुष्य अपनी बुद्धिको काममें लाता है उसी प्रकार पशु भी लाते हैं और अपने जीवनके सभी कार्य सम्पादन करते हैं। प्राकृतिक घटनाओं और सांसारिक विशेषताओंका भी पशु बराबर अनुभव करते हैं। पशुपक्षी संसारके नाना प्रकारके अनुभवोंको देख कर मनुष्य स्वतः बहुत से स्थानोंपर पशुओंके ज्ञानका ऋणी हो जाता है। ऐसे कर्ज रूपमें ज्ञान देनेवाले एक पशु-उपाध्याय महाशय कुक्कुर भी हैं।

पराशर, वसन्तराज, वराह आदि प्राचीन-ग्रन्थकारोंने नाना प्रकारके घटनास्थलोंमें कुत्तेकी अद्भुत चेष्टाओं और लीलाओंका वर्णन किया है। इनपर ध्यान देनेसे कुत्तेका ज्ञान, सामर्थ्य, अनुभव, बुद्धि, स्मृति और व्यवहारज्ञताका पूरा परिचय मिलता है।

कुत्तेकी आदत है कि वह प्रायः टांग उठाकर मूत दिया करता है। परन्तु ध्यानपूर्वक देखनेसे एक विशेषता देखी जाती है; वह यह कि मूतनेके पहले वह उस वस्तुको सूँघता है। फिर कुछ ठहर कर मूत जाता है। इस क्रियामें कई बातोंका पता लगता है। १. टांग उठाकर अपने शरीरको मलसे बचाता है। २. सूँघकर उस वस्तु की अपने प्रति उपयोगिता और अनुपयोगिता जान लेता है। ३. किसी उठी हुई वस्तुपर मूत्र करनेसे मूत्रके छींटे नहीं उड़ने देता। कुत्तेके अतिरिक्त अन्य पशु भी मल मूत्रादि त्यागनेके अवसर पर कुछ झुक जाते हैं और अपने मल मूत्रके स्थानोंको विशेष रूपसे आगे पीछे करके सावधानीसे अपने शरीरको बचा लेते हैं। इससे देह रक्षा और पवित्रताका विचार पशुओंमें स्पष्ट दीख पड़ता है। इस सामान्य विचारके अतिरिक्त विशेष विशेष

अवसरोंपर विशेष रूपसे चेष्टा होनेके विषयमें विद्वानोंका अपना अनुभव और भी विचित्र है।

वराह मिहिर लिखते हैं :—

"यदि पला हुआ कुत्ता रास्तेमें चलते समय किसी मनुष्य पर या घोड़े, हाथी आदिकी जीनपर या आक आदि दुधारे पौधे पर, ईंटोंके ढेर, छाता चारपाई, आसन, ओखली, झण्डा, चँवर, अनाजके ढेर या फूलोंपर मूत दे तो स्वामीकी कार्यसिद्धि होती है। गोल गाबरपर मूते तो मीठा भोजन मिलता है। सूखेपर मूते तो सूखा भोजन या गुड़ लड्डूका भोजन मिलता है।

जहरके वृक्ष पर, कांटेदार झाड़ीपर काठ, पत्थर सूखा वृक्ष, हड्डी और श्मशान की राखपर मूत कर आगे चले तो यात्रीको अनिष्ट होता है।

जो यात्रीके आगे कुत्ता, बिना बरते हुए नये जूते खड़ाऊँ या चारपाई, या नये कुम्हारके वर्तनोंपर मूतकर चले तो यात्रीको कन्याका लाभ समझना चाहिये। यदि बरते हुए बरतनोंपर या चारपाईपर मूते तो उसकी स्त्री दुश्चरित्रा होती है। गाय, बछड़े पर मूत दे तो वह वर्णसंकर समझना चाहिये।*

* बृहद् वराह संहितायाम्—

नृतुरग करिकुम्भ पर्याण सक्षीरवृक्षेष्टकासञ्चयच्छत्रशय्या सनोलूखलानि ध्वजं चामरं, शद्वलं, पुष्पितं वा प्रदेशं यदा श्वाऽव मूत्र्या अतो यातियातुस्तदा कार्य सिद्धिर्भवेद्। आर्द्रके गोमये मिष्टभोज्यागमः। शुष्कसम्मूत्रणे शुष्कमन्नं गुडोमोदकावाप्ति रेवाथवा। अथ विषतरु कण्टकि, काष्ठपाषाणशुष्क द्रुमास्थिश्मशानिसूत्र्यावहत्याथवा यायिनी अग्रतोऽनिष्ट माख्याति। शय्या कुलालादिभाण्डान्यभुक्ता न्यभिन्नानि व मूत्रयन् कन्याका दोषकृद् भुज्यमानानिचेद्दुष्टतातद् गृहिण्याःस्तथास्याद्वानरफलं। गोस्तु सम्मूत्रणे वर्णजः संकरः॥

गमन सुख मुपानहं सम्प्र ग्रह्य,पतिष्ठेद्यदास्तात्तदा सिद्धये मांस पूर्णानेऽर्थाप्ति राद्रेण चास्थना शुभम्। साग्नलानेन शुष्केण चास्थना गृहीते न मृत्युःप्रशान्तो ल्युकेनाभि घातो। अथ पुंस शिरो हस्त पादादि वक्त्रे भुवोहयागमो, वस्त्र चीरा दिभिर्व्यारद के विदाहुः सवस्त्रे शुभम्। प्रविशतितु गृहं सशुष्कास्थि वक्त्रे प्रधानस्य तस्मिन् वधः शृङ्खला शीर्ण वल्ली वरत्रादि बन्धनम् चोरगृह्योपतिष्ठेद्द्यद्वा स्तात्तदा बन्धनम्॥ वराह संहितायाम् श्वशाकुनम्।

पराशरः—

वस्त्रं खण्डं रज्जुं वा तणत्यग्निभयम्। चेल्लवण वा वनत्तयम् दधितु भार्यायाः। पलायमान उपानहंप्रेष्यायाः। आनयनेतु फलादिष्वेतेषुलाभम्॥

इसी प्रसङ्गपर पराशर कहते हैं—

यदि कुत्ता नये अन्नसे भरी देगची या थालीपर मूतदे तो कन्या (कुमारी) का लाभ होता है। पुराने पर मूते तो स्त्री का लाभ होता है। चारपाईपर मूत दे तो स्त्री या घरवालीकी मृत्यु होती है। यदि उसकी पगड़ी या स्त्री या उसीके देहपर मूत दे तो धनकी प्राप्ति होती है।

भावी होनेवाली घटनाओंका कुत्तेके दिमागपर जब कभी अक्स पड़ता है तो वह उसी समय अपने स्वामीको किसी न किसी रूपमें बतलानेकी चेष्टा करता है। वह उसको कैसे ढंगपर बताता है यही एक विचित्रता है। प्राचीन विद्वानोंने कुत्तेके मनोविज्ञानका बहुत अच्छा निरीक्षण किया था। इसके अतिरिक्त और भी वैचित्र्य सुनिये।

प्रायः देखा जाता है कि कुत्ता प्रायः चमड़ा जूता, हड्डी मांसका टुकड़ा मुंहसे उठा लेता है और खाने लगता है। इसमें तो यह कहा जा सकता है कि मांस लोलुप होनेसे स्वादका मारा हुआ हड्डियां चबाता है, मांस और जूतेको भी नहीं छोड़ता; परन्तु बहुत से अवसरोंपर कुत्ता चीजें उठा लाता है परन्तु खाता नहीं और बहुत से अवसरोंपर ऐसी वस्तुएँ भी उठा लाता है जो कुत्तेके किसी कामकी नहीं होती हैं। इन विशेषताओंपर भी विद्वानों का ध्यान बड़ी प्रबलता से आकर्षित हुआ है। इस प्रसंगमें वराह लिखते हैं कि—

"जब कुत्ता मुखमें जूता लेकर सन्मुख आता है तो यात्रामें सुख रहता है। मांस लेकर आवे तो धन प्राप्ति होता है और हड्डी लेकर आवे तो शुभ होता है। जलती लकड़ी और हड्डी लेकर आवे तो मृत्यु और बुझी लकड़ी लेकर आवे तो मालिकको दण्डे

आदिसे चोट का कष्ट पहुँचता है। यदि कुत्ता मरे मनुष्यका सिर हाथ या पांव उठा लावे तो भूमिका लाभ होता है। कपड़ा या कपड़ेकी चीर मुखमें लावे तो मृत्यु होती है। सूखी हड्डी लेकर कुत्ता घरमें घुसे तो प्रधान पुरुष की मृत्यु होती है। लोहे की जंजीर सूखी बेल, या रस्सी मुखमें लेकर आवे तो क़ैदखाने या बन्धन की सूचना होती है।"

इस प्रसंगमें पराशर कहते हैं—

यदि कुत्ता घरमेंसे रस्सी या कपड़ेके टुकड़े मुंहमें उठाकर बाहर ले जावे तो आग लगनेका भय होता है। नमकका टुकड़ा लेजावे तो धनके चुराये जानेका भय होता है। जूता ले जावे तो नौकर नौकरानियां घर छोड़कर चली जाती हैं। दही उठा ले जावे तो स्त्रीके नाशकी सूचना होती है। यदि इन्हीं वस्तुओंको बाहर न लेजाकर बाहरसे घरमें ले आवे तो उक्त पदार्थों का लाभ होता है।

महाराजा बसन्त ने अपने शकुन शास्त्रमें बहुत उत्तमतासे पशु पक्षियोंकी चेष्टा लीला और शब्दोंका निरूपण किया है। कुत्तेके मूतने और वस्तुएँ मुखमें पकड़ लानेके विषय में कुछ विशेष भी लिखा है। वह कहते हैं, "जिसके घरमें कुत्ता गोबर मांसके टुकड़े और मलके टुकड़े ला लाकर बखेरे उस घरमें सुन्दर स्त्रियां, प्रभूत धन और अनन्त सुखका लाभ होता है ❀।"

इसके अतिरिक्त और भी बहुत सी क्रियाएं हैं जिनका और भी अद्भुत रहस्य है।

कुत्ता एक मांसाहारी जन्तुओंकी कोटिमेंसे है। उसको वानस्पतिक भोजन प्रिय नहीं है। मानव जातिकी गुलामी करनेपर उसको अब अन्नकी आदत भी पड़ गयी है, तो भी वह अपने जातीय रंगमें रंगा हुआ शिकार करता है और मांस और हड्डीको भी नहीं छोड़ता। यह एक परखी हुई बात है कि कुत्ता फल, फूल, कभी नहीं खाता। आगे डाल देनेपर भी सूंघकर छोड़ देता है। परन्तु देखा गया है कि घरका पला कुत्ता फल मुखमें पकड़ करभी ले आता है। इस प्रसङ्गमें बसन्तराजका कथन है कि "यदि कुत्ता मुखमें फल लेकर घरमें घुसे तो गृहमें पुत्र लाभकी सूचना मिलती है ❀

वराह मिहिरने अन्य क्रियाओंके विषयमें निम्नलिखित बातें लिखी हैं—

"किसी ग्राम या नगरमें जब राजा या अधिकारी पदच्युत होनेवाला होता है तब उदित होते हुए सूर्यकी ओर मुख करके एक या बहुतसे कुत्ते रोने लगते हैं।

जब अग्निके लग जानेका भय होता है या चोर पड़ने लगते हैं तो प्रायः कुत्ता आग्नेय कोणमें मुख करके रोता है। अग्निके भयमें कुत्ता मध्याह्न कालमें भी सूर्यकी ओर मुख उठाकर रोता है। खून बहनेकी घटनाके समय कुत्ता सायंकालको सूर्याभिमुख होकर रोता है।

सूर्यास्तके समय सूर्याभिमुख होकर कुत्तेके रोनेसे ही किसानोंपर आपत्ति की सूचना मिलती है। वायव्य कोणमें मुख करके रोवे तो आन्धीकी सूचना और चोरोंका भय विदित होता है।

❀वसन्तराज :—

यस्येक्षते वेश्मनि सारमेयः किरन्नसौ गोमय मांस विष्ठा;
रामां मनोज्ञां द्रविणं प्रभूतं प्राप्नोत्यसौ सौख्य मनश्वरञ्च॥

❀ फलं गृहीत्वा सहसा निवासं पत्तोविशन् जल्पति पुत्र लाभम्।

वराहः—

सूर्योदयेऽर्काभिमुखोविरौति, ग्रामस्य मध्ये यदिसारमेयः
एको यदा वा बहवः समेताः शंसन्ति देशाधिपमन्यमाशु॥२॥
सूर्योन्मुखः श्वानलदिक् स्थितश्च चौरानलत्रासकरोऽचिरेण
मध्याह्नकालेऽकालमृत्युसंसीलशोधितः स्यात्कहोहराह्ने॥३॥
रुदन् दिनेशाभिमुखोऽस्तकाले कृषीवलान्तं भयमाशु धत्ते॥
प्रदोषकालेऽनिलदिङ्मुखस्तु धत्तेभयंमारुत तस्करोत्थम्॥४॥
उदङ्मुखश्चापि निशार्धकाले विप्रव्यथां गोहरणं च शास्ति
निशावसाने शिवदिङ्मुखश्च कन्याभिदूषानलगर्भपातान्॥
उच्चैः स्वरस्युस्तृणकूटसंस्था प्रासादवेश्मोत्तमसंस्थितावा।
वर्षासु वृष्टिं कथयन्ति तीव्रामन्यत्र मृत्युं दहनं रुजश्च॥
प्रावृट् कालेऽवग्रहोऽम्भोवगाह्य प्रत्यावृत्तै रेचकै श्चाप्यभीक्ष्णम्।

ब्राह्मणों पर विपत्ति पड़नेके समय या गौओंकी चोरी होजानेके समय आधी रातको उत्तरकी ओर मुख करके कुत्ता रोता है और घरका कुत्ता कन्याके कुमारीत्व नष्ट होजाने, अग्निके लगने या गृहिणीके गर्भपातके समय ब्रह्ममुहूर्त्तमें ईशान कोणमें मुख करके रोता है।

वर्षाकालमें घोर तीव्र वृष्टिके पहले कुत्ता छप्पर या मकानमें आकर ऊंचा ऊंचा शब्द करता है। और अन्य समयोंमें मुख उठाकर रोनेसे मौत, अग्नि और महामारी आदि रोगोंकी सूचना देता है।

वर्षाकालमें भी यदि वर्षा न हो और कुत्ता पानीमें नहाकर लोटने लगे या शरीरको कंपाकंपाकर बार बार पानी पीवे तो १२ दिनके भीतर वृष्टि होती है।

यदि कुत्ता घरकी मालकिनको देखकर दरवाजे पर सिर रखकर और शेष शरीर घरसे बाहर रखकर बार बार रोवे तो घरमें कठिन रोग आपड़नेकी सूचना मिलती है। यदि शरीर अन्दर और मुख बाहर हो तो घरवालीका दुश्चरित्र बतलाता है।"

प्रायः कुत्ता मालिकके पास आकर उसके हाथ पैर आदि अंगोंको सूंघा करता है। बहुत से अवसरों पर इसमें भी बड़ा रहस्य भरा रहता है, जैसा कि वराह लिखते हैं—

"यदि मालिक यात्रा करनेको उद्यत है तो इस अवसर पर आगे होनेवाली विघ्नबाधाओंको देखकर कुत्ता मालिकके पैरोंको सूंघा करता है। यदि कहीं न जाता हो तब सूंघे तो धनकी प्राप्तिकी सूचना मिलती है। यदि कुत्ता जूतोंको सूंघे तो पता लगता है कि मालिकको अभी शीघ्र ही कहीं जाना होगा।

बाईं टांग सूंघे तो धन लाभ, दांएको सूंघे तो स्त्रियोंके साथ लड़ाई, बांई जांघको सूंघे तो विषय भोग, दाईं को सूंघे तो इष्टमित्रोंसे लड़ाई की सूचना मिलती है।

शत्रु और वीरोंकी सम्भावनापर कुत्ता मालिककी बांहोंको सूघा करता है। अग्निके भय से कुत्ता मांस और हड्डियोंको राखमें छिपा देता है।

गांव या नगरके बड़े आदमीकी मृत्युके अवसरपर गांवमें रोकर कुत्ता फिर श्मशानमें रोता है। यात्रा करनेवालेके सामने खड़ा होकर रोवे तो इससे मार्ग का विघ्न सूचित होता है।

बिना मारे पीटे ही यदि कुत्ता खङ्खः समान दीर्घस्वरसे ऐसा रोवे जैसे दण्डोंसे पिट रहा हो तो इससे ग्राम या गृहके उजड़ने या महा मृत्युके फैलनेकी सूचना होती है।

इसके अतिरिक्त और ग्रन्थोंमें और और भी विशेषताएं बतलाई गई हैं।

वसन्तराजके मतसे—

जब बहुत वर्षा होनी होती है तो कुत्ता पहलेसे घरकी छत पर जाकर सोता है। यदि कुत्ता छत पर जाकर सूर्यकी ओर मुख उठाकर बार बार भौंके तो बहुत देरके बाद वृष्टि होती है। गौओंकी आपत्ति पर कुत्ता गोशालाओंमें जाकर अपने देहको धुनता है; सोनेवालेको आपत्तिसे चेतानेके लिए वह घाटपर चढ़कर धुना करता है।

आधुन्वन्तो वापिबन्सश्च तोयं वृष्टिं कुर्वन्नन्तरे द्वादशाहान्
द्वारे शिरोन्यस्य वहिः शरीरं रोरूयते श्वागृहिणी विलोक्य
रोग प्रदः स्यादथ मन्दिरान्तर्वहिर्मुख, शंसति बन्धकीताम् ॥८
पादौजिघ्रेद्यायिनश्चेदयात्रा प्राहार्थाप्ति वाञ्छतानिश्चलस्य।
स्थानस्थस्यौ पानहौ चेद्विजिघ्रेत् क्षिप्रंयानां सारमेयः करोति॥
वामंजिघ्रेज्जानुवित्तागमाय स्त्रीभिः स्याकंविग्रहो दक्षिणं चेत्।
ऊरुं वामं चेन्द्रिययार्थोप भोगः सव्यं जिघ्रेद् इष्ट मित्रैर्विरोधः॥
उभयोरपि जिघ्रणेहिवाह्वोर्विज्ञयो रिपु चौर सम्प्रयोगः।
अथभस्मनिगोपयीत भक्षान् मांसास्थीनिच शीघ्रमग्निकोपः॥
ग्रामे भवित्वाच वहिः श्मशाने भवन्ति चेदुत्तम पुंविनाशः।
पिपासतश्चाभिमुखो विरौति यदस्तदाश्वानिरुणद्धियात्राम्॥

खंखेति चोच्चैर्मुहुर्मुहुर्यें रुवन्तिदण्डै रिवताड्यमानाः।
श्वानोऽभिधावन्ति च मण्डलेन तेशून्यतां मृत्यु भयंचकुर्युः॥

वसन्तराजः—

उच्चप्रदेशं भाषणोऽभिरुह्य भवन्त्यभीक्ष्णंरविभीतराणः।
यदातदानामचिरेण वृष्टिरम्भोद मुक्ता भवतिप्रभूता॥
गोष्ठे यदाश्वा विधुनोति तद्गोपुरे वापिपुरस्य पीड़ा।
शय्यासु शय्यापतिभीति रुच्चैर्भीतिरतथाऽन्यस्य गृहस्यमध्ये॥

पाराशर कहते हैं—"जल विप्लवके भयके समय बहुत से कुत्ते रोते हैं और कुछ एक उनमेंसे मुखमें मिट्टी उठा उठाकर पानीके बर्तनमें डालते हैं। अन्य प्रकारके भयोंके समयमें भी ऊँचा मुख करके कुत्ते रोते हैं या गांवसे बालकोंको उठा उठाकर दौड़ते देखे जाते हैं।

मत्स्य पुराणमें लिखा है—

महामारीके अवसरों पर कुत्ते अपने मुखमें काठ, जलती लकड़ी हड्डी और सींग ले लेकर भाग जाते हैं।

इस प्रकार समान्यतया विद्वानोंकी सम्मतियोंका हमने उद्धरण कर दिया। परन्तु यह सभी शाकुन शास्त्रका भाग है जिस पर प्रायः लोगों का विश्वास ही नहीं जमता। शाकुन शास्त्र वस्तुतः नेचुरल सायन्स है। जैसे वर्तमानके नेचुरलिस्ट लोग अब एक एक पशु और पक्षीका चरित्रान्वेषण कर रहे हैं और उनसे नाना प्रकारके परिणामों पर पहुँचते हैं; पूर्वके विद्वानोंने भी कुदरतके जीवोंकी जीवन लीलाओं और चेष्टाओंका बड़ी गहरी दृष्टिसे निरीक्षण किया था। उनकी हरकतों, क्रियाओं और भिन्न भिन्न प्रकारके शब्दों को निरर्थक नहीं समझा प्रत्युत वह समझते थे कि जिस प्रकार मानव जीव हैं उसी प्रकार यह भी जीव हैं। जीवनोपयोगी वस्तुओं को जिस प्रकार हमें आवश्यकता है उसी प्रकार इन्हें भी आवश्यकता है। आपत्तियों और कष्टोंसे जिस प्रकार हम बचना चाहते हैं और उसका उपाय करते हैं वैसे ही वह भी करते हैं। जैसे हम अपने परिचितों-के प्रति नाना प्रकारके शब्द संकेतोंसे, आंखके इशा-रोंसे और अनेक क्रियाओंसे, अपने अभिप्रायोंको बतलाते हैं वह भी अपने अपने अभिप्रायोंको अपने ढङ्गपर बतलाते हैं। भेद इतना ही है कि कुत्ते आदि पशु मनुष्यके साथ दोस्ती तो गांठ बैठे हैं, परन्तु उसकी भाषा नहीं सीखे। इससे प्रायः इन सब पशुओंकी अपने अभिप्राय दर्शानेके समय वैसी ही दशा होती है जैसी २ वर्षके बालककी होती है; या सबके बीचमें गूंगेकी; या भाषानभिज्ञको किसी परदेशमें।

यदि कोई भारतीय भूल भटककर जर्मनीमें चला जाय और उसे जर्मन भाषा न आती हो तो चाहे वह कितना ही विद्वान क्यों न हो उनके बीचमें तो वह मूर्ख पशुके समान है। पर वह अपने भाव संकेतोंसे अवश्य प्रकटकर सकता है। यदि जर्मन निवासी उस भारतीयकी भाषाको जान जायँ तो उनको पता लगेगा कि उसका ज्ञान और बुद्धि बहुत अधिक है। इसी प्रकार सम्भव है मनुष्य अन्य पशुओंकी भाषा न जानने और उनकी चेष्टाओं, व्यवहारों और शब्दोंको भी पूरा पूरा न जाननेके कारण, उनकी ज्ञान शक्ति और बुद्धिका पूरा पूरा भेद नहीं जान सका है।

उपरोक्त विद्वानोंकी गवेषणामें हमें कुछ सामान्य सिद्धान्तसे प्रतीत होते हैं।—

(१) कुत्तोंको दिशाका ज्ञान है और वह भिन्न भिन्न दि ाओंका भिन्न भिन्न संकेतोंके लिए उपयोग करते हैं।

(२) मनुष्य पशु, पक्षी आदिपर आनेवाले चोर, अग्नि, जल आदिके उपद्रवोंकी उनको पहलेसे ही सूचना मिल जाती है। फलतः उनके मस्तिष्कमें दूरदर्शिताकी इन्द्रियका प्रबलता होती है। यह वही शक्ति है जो योगियोंको प्राप्त हो जाती है, जिससे भूत भविष्यत् भी उनके आंखोंके समक्ष रहता है।

(३) भयके समयपर वह पहले से ही रोते हैं। उनको आगामी दुःखको देखकर पहले ही रोना आ जाता है अर्थात् उनकी ज्ञानेन्द्रिय बहुत अनुभवशील (सेन्सिटिव) होती है।

(क्रमशः)

पराशरः—

बहुषु प्रथिषुनदत्सु पर चक्र णाशरीरयाताः समेत्यै कश्चे द्वहुशः पांशुंनयन्द्भिक्षिसार्वाएकस्मिन् जलपात्रे क्षिपन्ती ति अम्भो-भयम्। ग्रामाद्बालकान् वासमादायगच्छेद्भयं विधान॥

वैज्ञानिक पुस्तकें

१—विज्ञान प्रवेशिका भाग १—ले० प्रो० रामदास गौड़, एम. ए., तथा प्रो० सालिग्राम, एम.एस-सी. ।)
२—मिफताह-उल-फ़नून—(वि० प्र० भाग १ का उर्दू भाषान्तर) अनु० प्रो० सैयद मोहम्मद अली नामी, एम. ए. ... ... ।)
३—ताप—ले० प्रो० प्रेमवल्लभ जोशी, एम. ए. तथा श्री विश्वम्भरनाथ श्रीवास्तव ... ॥=)
४—हरारत—(तापका उर्दू भाषान्तर) अनु० प्रो० मेहदी हुसेन नासिरी, एम. ए. ... ।)
५—विज्ञान प्रवेशिका भाग २—ले० अध्यापक महावीर प्रसाद, बी. एस-सी., एल. टी., विशारद १)
६—मनोरंजक रसायन—ले० प्रो० गोपालस्वरूप भार्गव एम. एस-सी. । १॥)
७—सूर्य सिद्धान्त विज्ञान भाष्य—ले० श्री० महावीर प्रसाद श्रीवास्तव, बी. एस-सी., एल. टी., विशारद
मध्यमाधिकार ... ... ॥=)
स्पष्टाधिकार ... ... ॥)
त्रिप्रश्नाधिकार ... ... १॥)
चन्द्रग्रहणाधिकारसे ग्रहयुत्यधिकार तक १॥)
उदयास्ताधिकारसे भूगोलाध्याय तक ॥)
८—पशुपक्षियोंका शृङ्गार रहस्य—ले० अ० सालिग्राम वर्मा, एम.ए., बी. एस-सी. ... -)
९—ज़ीनत वहश व तयर—अनु० प्रो० मेहदी-हुसैन नासिरी, एम. ए. ... ... -)
१०—केला—ले० श्री० गङ्गाशङ्कर पचौली -)
११—सुवर्णकारी—ले० श्री० गङ्गाशङ्कर पचौली ।)
१२—गुरुदेवके साथ यात्रा—ले० अध्या० महावीर प्रसाद, बी. एस-सी., एल. टी., विशारद ।-)
१३—शिक्षितोंका स्वास्थ्य व्यतिक्रम—ले० स्वर्गीय पं० गोपाल नारायण सेन सिंह, बी.ए., एल.टी. ।)
१४—चुम्बक—ले० प्रो० सालिग्राम भार्गव, एम. एस-सी. ... ... ।=)
१५—क्षयरोग—ले० डा० त्रिलोकीनाथ वर्मा, बी. एस-सी, एम-बी. बी. एस ... -)
१६—दियासलाई और फ़ास्फ़ोरस—ले० प्रो० रामदास गौड़, एम. ए. ... ... -)
१७—कृत्रिम काष्ठ—ले० श्री० गङ्गाशङ्कर पचौली =)
१८—आलू—ले० श्री० गङ्गाशङ्कर पचौली ... ।)
१९—फसल के शत्रु—ले० श्री० शङ्करराव जोशी ।-)
२०—ज्वर निदान और शुश्रूषा—ले० डा० बी० के० मित्र, एल. एम. एस. ... ।)
२१—कपास और भारतवर्ष—ले० पं० तेज शङ्कर कोचक, बी. ए., एस-सी. ... -)
२२—मनुष्यका आहार—ले० श्री० गोपीनाथ गुप्त वैद्य १
२३—वर्षा और वनस्पति—ले० शङ्कर राव जोषी ।)
२४—सुन्दरी मनोरमाकी करुण कथा—अनु० श्री नवनिद्धिराय, एम. ए. ... ... -)॥
२५—वैज्ञानिक परिमाण—ले० डा० निहाल करण सेठी, डी. एस. सी तथा श्री सत्य-प्रकाश, एम. एस-सी० ... ... १॥)
२६—कार्बनिक रसायन—ले० श्री० सत्य-प्रकाश एम-एस-सी० ... ... २॥)
२७—साधारण रसायन—ले० श्री० सत्यप्रकाश एम० एस-सी० ... ... २॥)
२८—वैज्ञानिक पारिभाषिक शब्द, प्रथम भाग—ले० श्री० सत्यप्रकाश, एम० एस-सी० ... ॥)
२९—बीज ज्यामिति या भुजयुग्म रेखा गणित—ले० श्री० सत्यप्रकाश, एम० एस सी० ... १।)
३०—सर चन्द्रशेखर वेङ्कट रमन—ले० श्री० युधिष्ठिर भार्गव एम० एस-सी० ... =)
३१—समीकरण मीमांसा प्रथम भाग ... १॥)
३२—समीकरण मीमांसा दूसरा भाग—ले० स्वर्गीय श्री पं० सुधाकर द्विवेदी ... ॥=)
३३—केदार बद्रीयात्रा ... ।)

पता—मंत्री विज्ञान परिषत्, प्रयाग।

मुद्रक—शारदा प्रसाद खरे, हिन्दी-साहित्य प्रेस, प्रयाग।

पृष्ठ संख्या— Approved by the Directors of Public Instruction, United Provinces and
२१६ Central Provinces for use in Schools and Libraries. Reg. No. A. 708.

भाग ३७ VOL. 37.

कर्क, संवत् १९९०
जूलाई, १९३३

संख्या ४ No. 4

प्रयागकी विज्ञान परिषत्‌का मुखपत्र

'VIJNANA' THE HINDI ORGAN OF THE VIGNANA PARISHAT ALLAHABAD.

सम्पादक

रामदास गौड़

तथा

ब्रजराज

प्रकाशक

वार्षिक मूल्य ३)] विज्ञान-परिषत्, प्रयाग। [१ प्रतिका मूल्य ।)

विषय-सूची

विज्ञानंब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० । ३।५ ॥

भाग ३७ } कर्क, संवत् १९९० { संख्या ४

मंगलाचरण

विमल बीजसों अंकुर अंकुर सों द्वैदल नव,
द्वैदल सों पौधा प्रिय पौधा सों द्रुम अभिनव।
द्रुम सों नव पल्लव पल्लव सों कली सुहावन,
कली भली सों कुसुम रुचिर विकसत मनभावन।
पुनि कुसुम कोष सों होत फल, कारण कर्म समान है,
जो प्रगटत यह जग सत्य सो वन्दनीय विज्ञान है।

—सत्यनारायण

कहाँ है

[अध्यापक महावीर प्रसाद श्रीवास्तव, बी. एस-सी, एल्-टी., विशारद, बलिया]

जब किसीको किसी गांव घर या और स्थान का पता बतलाना होता है तब किसी ऐसी विशेष बातका सम्बन्ध बतलाना पड़ता है जो बहुतोंको मालूम हो या जो सहज ही मालूम हो सके। यदि ऐसे गांव में जाना हो जो रेल की लाइनके पास हो तो कहा जाता है कि अमुक स्टेशनपर उतरकर लैनके दाहिने या बायें अथवा उत्तर या दक्षिण मील या दो मील तक चले जाओ। फिर घरका पता बतलानेके लिए कोई गली बतलानी पड़ती है और यदि घर किसी कुयें, मन्दिर या किसी पेड़ विशेषके पास हो तो यह भी बतलाना पड़ता है। यदि ये बातें बतला दी जायं तो पता खोजनेमें ज़रा भी कठिनाई नहीं पड़ती।

जैसे गांव या घरका पता किसी सड़कका नाम लेकर दाहिने, बायें या उत्तर दक्षिण दिशाओं आदिका नाम लेना पड़ता है उसी तरह पृथ्वी और आकाशके बड़े बड़े स्थानोंका भी पता बतलाया जाता है। पृथ्वीपर जल, थल, वन, पर्वत इत्यादि इतने नीचे ऊंचे स्थान हैं कि इसपर कोई ऐसा राजमार्ग नहीं बनाया जा सकता जो पता बतलानेका काम दे सके, परन्तु मनुष्य ने अपनी बुद्धि के बलसे और आकाश के तारोंकी सहायतासे ऐसी रेखाओंकी कल्पना कर ली है जो सार्वभौम हैं और जिनपर

किसीका इजारा नहीं हो सकता। आज इन्हीं काल्पनिक रेखाओंका वर्णन किया जायगा।

पृथ्वी नारंगीकी तरह गोल है और आकाशमें सूर्य्य की आकर्षण शक्तिके सहारे स्थित है। इसमें दो गतियां हैं। एक गतिसे यह दिन रातमें अपनेही व्यास के गिर्द घूमती है, जिस प्रकार कुम्हारका चाक कीलपर घूमता है। चाकके घूमनेमें भेद केवल इतना है कि चाक चपटा होता है और पृथ्वी गोल है। यदि नारंगी, अमरूद या कोई गोल फल बीचों बीच किसी लोहेकी छड़में चुभोकर घुमाया जाय तो इसकी या लट्टूके घूमनेकी तुलना पृथ्वीकी दैनिक घूर्णन गतिसेकी जा सकती है। पृथ्वी जिस व्यासके गिर्द घूमती है उसको इसका अक्ष कहते हैं। जिन विन्दुओं पर यह अक्ष भूतलपर मिलता है उन्हें ध्रुव कहते हैं। जो उत्तर दिशामें है उसे उत्तर ध्रुव या सुमेरु कहते हैं। और जो दक्षिण दिशामें है उसको दक्षिण ध्रुव या सुमेरु कहते हैं। यह अक्ष यदि आकाशमें दोनों ओर बढ़ाया जाय तो अनन्त आकाश में जिन विन्दुओंपर इनके सिरे पहुँचते हैं इनको आकाशीय ध्रुव या केवल ध्रुव कहते हैं। उत्तर ध्रुवके पासही एक चमकीला तारा है, जिससे उत्तर ध्रुवका पता सहजही लगाया जासकता है। इसलिये इस तारेको भी ध्रुव कहने लगे। ज्यों ज्यों उत्तर जाइये त्यों त्यों यह तारा ऊपर उठता जाता है यहां तक कि सुमेरु पर यह ठीक सिरके ऊपर दिखाई देता है। यदि सुमेरुसे भी आगे बढ़िये तो आप उत्तर न जाकर दक्षिण जाते लगेंगे, यद्यपि आपने पीछे लौटनेका नाम तक नहीं लिया। इस स्थानपर (सुमेरुपर) आपको उत्तर दिशा न मिलेगी और न पूरब पच्छिम का ही ज्ञान होगा। यहांके निवासियोंको सूर्य्य सिद्धान्तमें देवता कहा गया है। इस जगहसे सूर्य्य सुमेरुकी परिक्रमा करता हुआ दिखाई पड़ता है। यहां सूर्य्योदयसे सूर्य्यास्त तकका समय हमारे ६ महीनेके समान होता है। रात भी इतनीही बड़ी होती है। इस विन्दुसे जिधर जाइये सब दक्खिन है। अब यदि आप दक्खिनकी ओर बढ़िये तो ध्रुव तारा नीचे होता जायगा और एक स्थान ऐसा आयगा जहांसे आकाशीय ध्रुव (स्थल रूपसे ध्रुव तारा) ठीक क्षितिजमें लगा हुआ देख पड़ेगा। यदि इससे भी दक्खिन चढ़िये तो उत्तर ध्रुव आंखसे ओझल हो जायगा और दक्खिन ध्रुव सामने आ जायगा; परन्तु इसके पास कोई चमकीला तारा न होने से इसका पता सहज ही नहीं लगाया जा सकता।

जहां दक्षिण ध्रुव ठीक सिरे पर हो जाता है उसको सुमेरु कहते हैं। यही राक्षसोंके रहनेकी जगह मानी गई है। यहांसे जिधर बढ़िये सब ओर उत्तर होगा। पूरब, पच्छिम या दक्खिन दिशायें यहां लुप्त हो जाती हैं। यहांसे उत्तर और दक्षिण ध्रुव ठीक क्षितिज पर लगे हुए दिखाई पड़ते हैं। इन सबको मिलाने वाली रेखा एक विशेष रेखा है जो पृथ्वी पर का स्थान बतलानेके लिए बहुत काममें आती है। इस रेखापर दिन रात सदा समान होते हैं। बारह घण्टे तक सूरज आंखोंके सामने रहता है और बारह घण्टे तक आड़ में; यद्यपि देखने में वह तीन चार मिनट और सामने जान पड़ता है। इस रेखा को भूमध्य रेखा या विषुवत् रेखा कहते हैं।

भूमध्य रेखासे सुमेरु या सुमेरुकी पूरी पृथ्वी की कुल परिधिका चौथा भाग है और परिधिके ३६० वें भाग को अंश कहते हैं। इसलिये अंशों में सुमेरु या कुमेरु की दूरी ९० हुई। जब आप भूमध्य रेखासे इतना चलें कि क्षितिजसे एक अंश ऊपर आजायं तो आप लगभग ७० मीलके चल चुकते हैं। जिन स्थानोंसे उत्तर ध्रुव एक अंश उत्तर दिखाई पड़ता है उन स्थानोंको एक अक्षांश स्थान कहते हैं। इन स्थानोंको मिलाने वाली रेखा भी गोल होती है, और भूमध्य रेखासे समान दूरीपर होती है। जिन स्थानोंसे उत्तर ध्रुव दो अंश ऊपर दीखता है उन स्थानों का अक्षांश दो कहलाता है। इस प्रकार किसी स्थानका अक्षांश जानकर हम यह बतला सकते हैं कि वह स्थान ध्रुवसे या भूमध्य रेखासे कितनी दूर है। अक्षांश बतलाते समय यहभी बतलाना आवश्यक है कि भूमध्य रेखासे उत्तर या दक्खिन। भूमध्य रेखा ही

ऐसी रेखा है जहां उत्तर दक्खिन अक्षांश शून्य हैं; इसीलिये इस रेखाको निरक्षरेखा और इस पर स्थित स्थानोंको निरक्षदेश कहते हैं। निरक्ष देशके उत्तर भाग वाले गोलार्द्धको उत्तर गोल और दक्षिण भाग वाले गोलार्द्ध को दक्षिण गोल कहते हैं। जब कहा जाता है कि प्रयाग २५° उत्तर अक्षांश पर है या प्रयागका अक्षांश २५° उत्तर है तो यह समझना चाहिये कि प्रयाग भूमध्य रेखासे उत्तर २५ × ७० मील अथवा १७५० मीलके लगभग उत्तर है। इससे अधिक और कुछ नहीं जाना जा सकता। प्रयागकी तरह काशी, मिर्जापुर, मुंगेर आदि नगर भी प्रायः इसी अक्षांश पर हैं। इसीलिये प्रयागका ठीक ठीक पता बतलानेके लिये एक दूसरी बात बतलानेकी भी आवश्यकता पड़ती है, जिससे और किसी स्थानका भ्रम न हो।

उत्तर दक्षिण ध्रुवोंको मिलाने वाली रेखा भूमध्य रेखाको समकोण पर काटती है। यह पृथ्वीकी परिधि भी है। इस रेखासे भी पृथ्वी परके स्थानों परका सहज ही पता लगाया जा सकता है। परन्तु ऐसी हजारों रेखायें पृथ्वी पर खींची जा सकती हैं। इस लिये इनमेंसे किसी एकको निश्चय कर लेना चाहिये। भारतवर्षमें जो रेखा कुरुक्षेत्र, उज्जैन नगरोंसे होकर जाती है वही मध्यरेखा समझी गई है, क्योंकि कुरुक्षेत्र बहुत प्राचीन कालसे भारतवर्ष में एक प्रसिद्ध स्थान है और उज्जैन भी दो हजार वर्ष पहले राजधानी थी। इसके सिवा इस रेखा से ९० अंश पूरब और ९०. पश्चिमके स्थानोंको लीजिये तो इसमें पुरानी दुनियां सब आ जाती है। और भारतवर्ष स्थल भागके केन्द्र में हो जाता है। वह मध्य रेखा भूमध्य रेखासे जहाँ मिलती है वही (ज्योतिष गणनाके लिए) लङ्का मानी गई है। यह एक काल्पनिक स्थान है। रावण वाली लङ्का वर्तमान सिंहल द्वीप है या और कोई द्वीप। इसका अभी तक निश्चयपूर्वक कुछ पता नहीं है। आजकल भी भारतवर्ष के पञ्चांगों में इसी को मध्य रेखा मानते हैं और ज्योतिषकी सारी गणनाएँ की जाती हैं। उत्तर दक्खिन ध्रुवों को मिलाने वाली अन्य रेखायें देशान्तर रेखायें कहलाती हैं। जैसे भारतवर्षमें रोहतक, कुरुक्षेत्र और उज्जैनको मिलाने वाली उत्तर दक्षिण रेखा मध्य रेखा मानी गयी है वैसे ही इङ्गलैंड में ग्रीनिच पर जाने वाली रेखा प्रधान रेखा मानी गयी है। इसलिये नक़शेमें इसी रेखाको शून्य देशान्तर मानकर पूरब या पच्छिमके स्थानोंका विभाग किया गया है।

क्या भूगोल को भी विज्ञान कह सकते हैं ?

इस विषयका नाम देखतेही कई पाठक यह कहने लगेंगे कि वाह! यहतो खूब तमाशा हुआ 'मैंड़की रा जकाम पैदा शुद।' क्या कभी भूगोल विषय भी इस बातका दावा कर सकता है कि मैं भी एक विज्ञान हूँ? उसमें रहता क्या है? द्वीप, प्रायद्वीप, पहाड़, शहर आदिके केवल नाम और वर्णन रहते हैं। खेदकी बात है कि पाठशालाओंमें भूगोलके नामसे केवल ऐसी ही बातें पढ़ाई जाती हैं और यदि इस विषयमें केवल इतना ही हो, तो अवश्य उसकी गणना विज्ञान समुदायमें नहीं हो सकती। कालिदास ने रघुवंशके प्रथम सर्गमें कहा है:—

मन्दः कवियशः प्रार्थी गमिष्याम्युपहास्यताम्।
प्रांशुलभ्ये फले लोभादुद्बाहुरिव वामनः॥

अर्थात् मैं मन्द मनुष्य कविका यश प्राप्त करने की इच्छा करता हूँ, तो मेरी भी वैसीही हँसी होगी जैसी कि उस मनुष्यकी होती है, जो है तो बिलकुल ठिंगना, परन्तु हाथ फैलाकर उस फलको तोड़ना चाहता है जो केवल बड़े लम्बे मनुष्यके हाथ आ सकता है।

महाकवि कालिदासके समान भूगोल विषय भी ऐसी इच्छा कर रहा है, जो उसको अलभ्य दीखती है और इस कारण उसका उपहास होना सम्भव है; परन्तु मुझे पूर्ण आशा है कि यदि कालिदासके समान

प्रथम श्रेणीमें उसकी गणना न भी हो सके, तो भी पाँचों सवारोंमें उसकी गणना अवश्य हो जावेगी।

इस विषय पर आगे कुछ कहनेके पहिले दो बातोंका फैसला कर लेना जरूरी है अर्थात् विज्ञान किन विषयोंको कह सकते हैं और भूगोल विषय किसे कहते हैं। विज्ञान उस विषयको कहते हैं जिसका दिया हुआ ज्ञान कार्य कारण भावसे संगठित हो अर्थात् जो कुछ बतलाया जाय उसका कारण और कारण का फल साफ़ साफ़ दिखला दिया जाय। इसी परिभाषाके अनुसार मनोविज्ञान, वैद्यक शास्त्र और अर्थ शास्त्रकी गणना विज्ञानोंमें होने लगी है। यदि भूगोल यह सिद्ध करदे कि हमारे विषयमें भी जो कुछ बतलाया जाता है वह कार्य कारण भावसे संगठित है, तो उसका दावा भी माना जा सकता है।

अब दूसरा प्रश्न यह है कि भूगोल किन बातोंका अध्ययन करता है? पृथ्वी मनुष्यका घर है, और इस दृष्टिसे पृथ्वीका अध्ययन करना (अर्थात् प्रकृतिके अनुसार मनुष्यके जीवनमें क्या परिवर्तन होता है) भूगोलका क्षेत्र है। साथही साथ इसका भी विचार करना चाहिये कि मनुष्य एक ऐसा जीव है जो प्रकृतिका सामना कर उसे अपने वशमें ला सकता है, इसलिए भूगोल यह भी अध्ययन करता है कि मनुष्यके प्रयत्नसे प्रकृतिरूपी पृथ्वीमें क्या क्या परिवर्तन हो रहे हैं।

भूगोलका क्या क्षेत्र है, यह हमें मालूम हो गया और विज्ञान किस विषयको कह सकते हैं, यह भी मालूम हो गया। अब यह प्रश्न ले सकते हैं कि क्या भूगोल विषय ऐसा है जिसमें विज्ञानके सब लक्षण मिल सकते हैं?

मेरा उत्तर यह है कि भूगोलके विज्ञान होनेमें कोई सन्देह नहीं है, कारण कि उस विषयसे जो कुछ ज्ञान प्राप्त हो सकता है वह कार्य कारण भावसे संगठित रहेगा। परन्तु इस बातको सिद्ध करने की आवश्यकता है। इसका प्रयत्न करनेके पहिले यह कबूल कर लेना पड़ेगा कि भौगोलिक विज्ञान अन्य पाँच विज्ञानों के आधार पर खड़ा है अर्थात् पदार्थ विज्ञान, वनस्पति शास्त्र, भूगर्भ शास्त्र, अर्थ शास्त्र और समाज शास्त्र।

पृथ्वी पर सूर्य की उष्णता पड़ती है, कहीं और कभी अधिक और कहीं और कभी कम। इसी उष्णताकी कमी वेशीसे मनुष्यके जीवनमें अनेक प्रकारके हेर फेर होते हैं और प्रकृतिके अनेक रूप उत्पन्न होते हैं। जैसे हवाका चलना, वर्षाका आना, बर्फका गिरना, तरह तरह की वनस्पतियोंका होना, समुद्रमें जलका आवागमन इत्यादि। उष्णताका अध्ययन करना पदार्थ विज्ञानका कार्य है। उष्णता तथा वर्षाकी कमी वेशी पर वनस्पतियोंकी उपज अवलम्बित होती है। चावल उसी देशमें पैदा हो सकता है जहां उष्णता तथा पानीकी बहुतायत हो और जहां पानी ठहर सके। चायके लिए उष्णता तथा पानी की बहुतायत तो चाहिये, परन्तु जमीन ऐसी चाहिये जहां पानी ठहर न सके। इस प्रकार वनस्पति शास्त्र बतलाता है कि किस प्रकारकी आबहवामें किस प्रकारकी वनस्पति पैदा हो सकती है। खनिज पदार्थ कहां मिल सकते हैं, यह भूगर्भ विद्यासे जाना जा सकता है। वनस्पति [illegible] पैदा करना अथवा भूगर्भ से खनिज पदार्थ निकालना मनुष्यके भरोसे है। इसलिए समाज शास्त्र का भी सहारा लेनेकी आवश्यकता होती है। एक देशका दूसरे देशसे किस प्रकार व्यापार सम्बन्ध होता या हो सकता है, इसका अध्ययन भी भूगोल करता है; परन्तु ऐसा करते समय अर्थ शास्त्रके नियमोंका ध्यान रखना पड़ता है, इन कारणोंसे भूगोलको इन पांच विज्ञानोंका सहारा लेना पड़ता है।

तो फिर यह प्रश्न उठेगा कि जब दूसरे विज्ञानोंके भरोसे यह विषय बना है तो यह खुद कैसे विज्ञान कहलाया जा सकता है? मेरा उत्तर यह है कि पदार्थ विज्ञान और रसायन शास्त्रको छोड़ ऐसे कौन विज्ञान हैं जो दूसरे विज्ञानोंकी सहायता नहीं लेते? चिकित्सा शास्त्रको देखिये, जिसके एकसे एक बढ़ कर धुरन्धर पण्डित बैठे हैं। वह भी शरीर शास्त्र, रसायन शास्त्र, वनस्पति शास्त्र आदिके आधार पर

बना है। शिक्षण शास्त्र एक ऐसा विषय है जिसने गत १०० वर्षों में बहुत उन्नति की है और जिसके कारण शिक्षण पद्धतिमें बड़े बड़े हेरफेर हो रहे हैं। यह विज्ञान भी मनोविज्ञान, नीति विज्ञान, जीवन शास्त्र, समाज शास्त्र आदि विज्ञानोंके आधार पर बना है। यदि इनकी गणना विज्ञानोंमें है तो बिचारे भूगोलने ही क्या खून किया है कि वह जातिसे बाहर कर दिया जाय।

हां, यदि यह सिद्ध हो जावे कि भूगोलमें बतलाई हुई बातें कार्य कारण भावसे संगठित नहीं हैं, तो अलबत्ता उसे फांसीका हुक्म दे दीजिये ; नहीं तो उसे विज्ञानोंमें स्थान दीजिये। अब मैं दो चार उदाहरण देकर यह बतलानेकी कोशिश करूंगा कि भौगोलिक बातोंका परस्पर कैसा सम्बन्ध है ?

मार्च २१ से जून २१ तक सूर्य उत्तरायण रहता है, इस कारण भूमध्य रेखाके उत्तरी भागों में विशेष उष्णता पड़ती है। हिन्दुस्तान एक ऐसा देश है जो भूमध्य रेखाके उत्तरमें है। इस कारण वहां उन महीनोंमें बहुत गरमी पड़ती है। भूमध्य रेखापर स्थित हिन्दमहासागरमें जल ही जल होने से वह इतना गरम नहीं होता। धरती पानीकी अपेक्षा जल्दी और अधिक गरम होती है। इस कारण हिन्दमहासागरकी अपेक्षा मई जूनमें हिन्दुस्तानमें बहुत अधिक गरमी पड़ने लगती है। वहांकी हवा गरमीसे हल्की हो ऊपर को उठती और उसकी जगह नैर्ऋत दिशासे भाप से लदी हुई ठंडी हवा हिन्दमहासागरसे आती है। इसीसे जूनसे सितम्बर तक बरसात होती है। इतनी देरमें सूर्य दक्षिणायन होकर भूमध्य रेखाके दक्षिणी भागको गरम कर देता है और हिन्दुस्तान ठंडा हो जाता है। पदार्थ विज्ञानके नियमोंके अनुसार अब ईशानसे हवाका बहना शुरू होता है। यह हवा थलसे जलको जाती है। इस वास्ते वह सूखी रहती है, परन्तु बंगालका अहाता पार करके जब मद्रास अहातेके कर्नाटक प्रान्तमें पहुँचती है, तब वर्षा वहां पर हो जाती है। इस तरह वर्षाके सम्बन्धमें जो कुछ ज्ञान भूगोल देता है उसमें पदार्थ विज्ञानके सहारे कार्य कारण दिखला सकता है।

किसी देशकी आबहवा उसकी स्थिति पर अवलम्बित है। आबहवा पर वहांके निवासियोंकी रहन सहन और पैदावारी अवलम्बित है। पैदावारी और निवासियोंपर वहांका व्यापार, और व्यापारपर शहर, रेल तथा सड़कों इत्यादिका होना निर्भर है। उदाहरणकेलिए हिन्दुस्तान ही ले लीजिये। उसका नकशा देखते ही मालूम होता है कि कोकण और मलाबार प्रान्तमें भारी वर्षा होनी चाहिये, क्योंकि नैर्ऋत दिशासे जून महीनेमें भापसे लदी हुई हवाका जो प्रभाव शुरू होता है उसे रोकनेके लिए सहियाद्री और नीलगिरि पर्वत उत्तर दक्षिण में खड़े हैं। इन पर्वतों के पूर्वमें महाराष्ट्र देश और मैसूरकी उच्च सम भूमिमें वर्षा कम होनी चाहिये। यथार्थमें है भी ऐसा ही। कोकणमें, मलाबारमें १०० इंच तक सालमें वर्षा हो जाती है। इस कारण वहां चावल, नारियल, सुपारी, लौंग, केले इत्यादि जैसी चीजें बहुतायतसे हो जाती हैं जिन्हें गरमी और सरदी दोनों चाहिए। महाराष्ट्र देश तथा मैसूरकी उच्च सम भूमिमें वर्षाकी कमी होनेसे ऐसी चीजें पैदा होती हैं जिन्हें गरमीके साथ अधिक वर्षा नहीं चाहिए ; जैसे ज्वार, बाजरा, रूई आदि। कोकण मलाबारके निवासी चावल खाकर रहते हैं। मैसूर और महाराष्ट्र देशके निवासियोंका मुख्य आहार ज्वार बाजरा है। बराड़, खानदेश, धारवाड़में पानी बहुत कम बरसता है। इसलिए रुई उत्तम प्रकारकी पैदा होतीहै। इसी कारण इन प्रान्तोंमें रुईके अनेक कारखाने हैं। परन्तु रूईसे कपड़े बनानेके लिए ऐसी जगह चाहिये जहांकी हवा हमेशा तर रहे। सूखी हवामें रुईका धागा बहुत लम्बा पतला नहीं जा सकता, जल्दी टूट जाता है। आर्द्र हवामें लम्बा और पतला धागा निकाल सकते हैं। यही कारण है कि कपड़े बनाने तथा रुई कातनेके कारखाने बम्बई अहमदाबाद आदि ऐसे स्थानोंमें विशेष करके हैं जो समुद्रके किनारे हैं।

इसी तरह निवासियोंकी तरफ देखा जाय और उनके स्वभाव, रहन सहन और शरीरकी बनावटकी ओर ध्यान दिया जावे तो मालूम पड़ेगा कि आब-

हवाका असर प्रत्यक्ष है। गुजराती और मारवाड़ी व्यापारमें क्यों अधिक जाते हैं? कारण यही है कि उनके देशमें वर्षाका भरोसा नहीं, काश्तकारीमें मनुष्यको चैन नहीं, एक साल मुनाफा तो दो साल टोटा। बंगाल देशकी जमीन उपजाऊ है, वर्षा शायद ही धोखा देती है और इस्तमरारी बन्दोबस्त है। इसलिये वहां जिसके पास पैसा हुआ कि उसने जमींदारी लेली और हमेशाके लिए बँधी आमदनी हो गई। ऐसे देशके निवासी व्यापारमें रुपया लगाकर क्यों जोखिममें पड़ने जावेंगे? परन्तु गुजराती क्या करेंगे? रय्यतवारी बन्दोबस्त होनेसे बड़ी जमींदारी तो मिल नहीं सकती, थोड़ी बहुत जमीन मिली भी तो उसमें पैसा डालनेसे बड़ी जोखिम रहती है। इस कारण वह लोग व्यापारमें घुसते हैं। ऐसा ही कच्छियों तथा मारवाड़ियोंका हाल है। नतीजा यह कि बम्बई शहर धनाढ्य व्यापारियोंका केन्द्र है और कलकत्ता आराम तलब धनाढ्य जमींदारोंका।

जैसे जैसे उत्तर हिन्दुस्थानमें जाते हैं वैसे वैसे लोगोंके कपड़े ढीले और साफे, बड़े देखनेमें आते हैं। कारण पंजाबकी हवा बहुत सूखी है। धूपसे बचावके लिए ढीले वस्त्र और बड़े साफे, चाहिये। प्रायः सभी मरुदेशोंमें जैसे अरब, मिसर, बिलोचिस्तान, ईरान आदिमें ढीले कपड़े देखनेमें आते हैं और पैसा मिलनेपर वहांके निवासी पाजामेका घेरा इतना बढ़ाते हैं कि मानों सारे आकाशको उसके भीतर रखनेका इरादा हो। परन्तु बङ्गाल सरीखे उष्ण और तर देशमें शिराच्छादन शून्य मनुष्य दीखते हैं। वहांके मुसलमान भी धोती पहनते हैं। कारण यह है कि उनके देशमें किसानोंको दिन दिन भर घुटने तक पानीमें खड़े हो अपना काम करना पड़ता है। घूम घुमौव्वल पाजामा पहिननेसे उनका काम कैसे चल सकता है? जहां की हवा भापसे पूर्ण है वहां शिराच्छादनकी भी विशेष आवश्यकता नहीं। जहाँ लोग रात दिन पानीमें रहते हैं वहां तेल हलदी शरीर पर अधिक लगाना स्वभाविक ही बात है।

अब जरा शरीरकी बनावटकी ओर ध्यान देना उचित है। मैदानमें रहने वालोंकी पिंडलियां देखी जावें तो लम्बी, पतली सारसके पैरोंके समान निकलेंगी। संयुक्त प्रदेश तथा पंजाब निवासियोंका बहुधा ऐसाही हाल है। क़दके ऊँचे, छाती कम चौड़ी और पिंडली पतली। ऐसा क्यों है? वह मैदान में रहते हैं। वहां सपाट धरती होनेसे वह लंबी डगें भरते हैं। इस वास्ते पैर लम्बे होने ही चाहिये। चलनेमें विशेष परिश्रमकी आवश्यकता नहीं। इस सबब कलेजे तथा पिंडलियोंको विशेष मिहनत नहीं होती। नतीजा यहकि उनकी छाती कम चौड़ी और पिंडली पतली रहती है। अब एक गुरखे को देखिए–पैर छोटे, छाती भरी हुई और चौड़ी, हाथ पैर गठीले और पिंडलियां गसी हुई और चौड़ी। इसका कारण क्या? पहाड़ पर चलने वाले लम्बी डग भर नहीं सकते, इसलिए लम्बे पैरोंकी आवश्यकता नहीं। पहाड़ पर चलनेसे पिंडलियों तथा कलेजेको पूरी मिहनत पड़ती है, इसलिये उनकी पिंडलियां कसी और भरी और छाती चौड़ी रहती है।

आबहवाका स्वभाव तथा चित्तवृत्ति पर क्या असर पड़ता है? इसके दो उदाहरण लीजिये। हिन्दुस्तान देशमें यदि समय पर मौसमी हवा न चले और पानी न बरसे तो बिचारे किसानोंको हाथ जोड़ आकाशकी ओर देखनेके सिवाय उपाय ही क्या है? हजार परिश्रम करने पर आखिरको भाग्यके भरोसे रहना पड़ता है। तो यदि वह ज्योतिषियोंके पास जा अपने भाग्यकी बात जन्म कुंडली दिखा पूछा करें तो क्या आश्चर्य है? एक दूसरा देश हालेन्ड है, जहां समुद्रसे लड़ भिड़ कर जमीन निकाली गई है। समुद्रको हटाकर उसे फिर न आने देनेके लिए डाइक्स अर्थात् बन्द बाँधे गये हैं। हालेन्डके निवासी डचलोगों तथा समुद्रसे रात दिन बारहों मासका युद्ध चल रहा है। डचलोगोंकी खैरियत तभी तक है, जब तक वह अपने परिश्रम तथा कलाकौशलसे समुद्रको हटाये हुये हैं। जिस समय समुद्रने उनको हटा पाया कि डच लोगोंका नाश निश्चय है। ऐसे देशके निवासी ज्योतिषीजीसे ग्रहोंका

फल पूछने कभी न जावेंगे। वह रात दिन उद्योगमें लगे रहेंगे। उद्योगहीसे उनका जीवन है, बिना उद्योग मरण है। यही कारण है कि हालेंड निवासी विलक्षण परिश्रमी और कार्य चतुर होते हैं।

इसी प्रकार यह सिद्ध कर सकते हैं कि भूगोल विषय जो कुछ ज्ञान देता है, वह वैज्ञानिक रीतिसे कारण सहित दिया जा सकता है और आधुनिक भूगोल अध्ययनकी परिपाटी भी यही चाहती है कि प्रत्येक बातका कारण देखा जाय। भूगोलके अध्ययनके समय अनेक चमत्कारिक बातें लक्षमें आती हैं; जैसे प्रायः सब मरुस्थल जैसे राजपूताना, सिंध, बिलोचिस्तान, ईरान, अरब, मेसोपोटेमिया, मिसर, सहारा, बर्बर देश आदि भूमध्यरेखासे २० से लेकर तीस पैंतीस डिगरी उत्तर और दक्षिणमें ही मिलते हैं। नियम विरुद्ध केवल गोबीका ही मरुस्थल है। दीन इसलाम उत्तरीय मरुकटिबन्धमें ही उत्तम रूपसे पाया जाता है। मरुभूमि से जितने दूर जाते हैं उतनी ही उसकी अवनति और मुसलमानोंकी संख्यामें कमी देखते हैं। इसी प्रकार एशियाका एक स्वाभाविक विभाग है, जो उत्तरमें थ्यानशान, आल्टाई और यबलोनाय श्रेणियोंसे घिरा हुआ है और दक्षिणमें हिमालय, नानलिंग आदि श्रेणियोंसे। उत्तरीय बौद्ध धर्म इसी स्वाभाविक विभागमें प्रचलित मिलता है। एशियाका एक दूसरा स्वाभाविक विभाग है जिसे हिन्दी चीन कहते हैं और जिसमें बर्मा, स्याम, अनाम, कम्बोडिया देश हैं। इस स्वाभाविक विभागमें ही दक्षिण बौद्ध धर्म प्रचलित मिलता है, अन्य किसी विभागमें नहीं। यदि एक दृष्टिसे देखा जाय तो हिन्दू धर्म तथा बौद्ध धर्म दोनों आर्य धर्म कहलाये जा सकते हैं, कारण दोनोंकी शिक्षा दीक्षा प्रायः एकसी है और दोनों आर्य ऋषियोंके चलाये हैं। अब यह विलक्षणता देखनेमें आती है कि यह आर्य धर्म केवल उन देशोंमें प्रचलित है जहां मौसमी हवाका प्रभाव पड़ता है, अन्यत्र नहीं। दुनिया भरमें केवल हिन्दुस्तान, हिन्दी चीन, जापान, और चीनी साम्राज्यके देशही ऐसे हैं जिनके बारेमें यह कह सकते हैं कि यहाँ मौसमी हवा चलती है। क्या यह विचार करने योग्य प्रश्न नहीं है कि आर्य धर्मने मौसमी हवाके देशोंमें ही क्यों विशेष अड्डा जमाया है?

ऐसी विचित्रतायें अन्य स्थानोंमें भी देखनेमें आती हैं, जैसे यूरोप महाद्वीपमें मुख्य तीन प्रकार की आबहवाएं देखनेमें आती हैं। एक तो वह देश जहां बारहों महीने नैऋतसे हवा चलती है और जहांके निकटवर्ती समुद्रमें गल्फ स्ट्रीम (गरमजलका समुद्री स्रोत) बहता है और बारहों महीने वर्षा होती है।

ऐसे देश इंगलिस्तान, उत्तर फ्रांस, हालेंड, जर्मनी स्वीडन, डेनमार्क और नार्वे हैं। यहां विशेष कर ट्यूटन वंशके लोग प्रधान हैं और प्रोटेस्टेंट धर्मका जोर अधिक है। एक दूसरे प्रकारकी आबहवा है, जिसे भूमध्य सागरकी आबहवा कहते हैं और जिसमें गर्मी सख्त और ठंड पहिलेकी अपेक्षा कम और ठंडमें ही बारिश होती है। ऐसी आबहवाके देश स्पेन, दक्षिण फ्रांस, इटाली, बालकन प्रदेश और यूनान हैं। यहां टेलिन जातिके लोगोंकी तथा रोमन काथलिक धर्मकी प्रधानता पाई जाती है। एक तीसरे प्रकारकी आबहवा (जैसे रूसकी) है, जहां थोड़े दिनोंके लिये सख्त गरमी और बड़ी लम्बी भयानक ठंडकी ऋतु होती है। वहां स्लाव जातिके लोग बसते और ग्रीकचर्च रूपी ईसाई धर्मको पालते हैं। विचारवान पुरुषोंको इस बात का अध्ययन करना चाहिये कि क्या विशेष प्रकारकी आबहवा विशेष धर्म और सभ्यताके अनुकूल है और यदि ऐसा है तो क्यों?

भूगोलके अध्ययनसे अन्य विज्ञानों तथा इतिहासके अध्ययनमें सहायता मिलती है? क्या कारण है कि मुसलमानोंको संयुक्त प्रदेश, पंजाब, बिहार और बङ्गाल जीतनेमें कोई विशेष कठिनाई नहीं पड़ी। दिल्ली आते ही कन्नौज टूटा और थोड़े ही दिनोंमें बङ्गाल बिहार भी उनके हाथमें आगया; परन्तु अन्त तक मध्य प्रदेश (गोंडवान) प्रायः स्वतन्त्र रह सका। वहाँके निवासी कुछ ऐसे वीर या

युद्ध कुशल न थे कि मुसलमान लोग डर जाते। मध्य प्रदेशकी स्वाभाविक रचनाने ही उसकी रक्षा की। मुग़ल बादशाहत तोड़नेमें मरहठे समर्थ हुए; इसका एक कारण यह भी है कि उनका देश कमज़ोरोंकी सहायता कर सकता है। हिन्दुस्तानके इतिहास देखनेसे मालूम होता है कि बड़ी बड़ी बादशाहतें सिन्धु और गङ्गा नदीके मैदानोंमें ही रहीं, न कि दक्षिणमें। भौगोलिक कारण है। दक्षिणमें उच्च सम भूमि होनेसे लोगोंका आवागमन कठिन होता है और इस कारण बड़े बड़े राज्य वहाँ हो ही नहीं सकते थे। परन्तु उत्तरके सपाट मैदानोंमें सुगमता पूर्वक हो सकते थे। अब मनुष्यने अपनी बुद्धिसे रेल, हवाई-जहाज, तार आदिका आविष्कार कर लिया है। इस कारण आवागमनकी कठिनाइयां कम हो गई और अङ्गरेजी साम्राज्य उत्तर दक्षिण दोनों पर हो गया है। इसी प्रकार इतिहाससे अनेक उदाहरण दिये जा सकते हैं पर विस्तार भयसे यहाँ समाप्त करना चाहता हूँ।

आशा है कि उपरोक्त कथनसे लोगोंको कदाचित निश्चय हो जावे कि भूगोल भी एक विज्ञान है और उसका अध्ययन वैज्ञानिक रीतिसे होना चाहिये।

हर्षका विषय है कि भूगोलका महत्व जानकर प्रयाग विश्वविद्यालयने कालेजमें भूगोलका वैज्ञानिक अध्ययन करानेका निश्चय किया है और उसके लिये प्रोफेसर (आचार्य) और लेकचरर और रीडर (अध्यापक) शीघ्र ही नियुक्त होने वाले हैं।

——

केंचुएका महत्व

[लेखक—श्रीयुत कृष्णदेवप्रसाद गौड़]

संसारमें किसी वस्तुको तुच्छ न समझना चाहिये। संसारके सब प्राणी ईश्वरने बनाये हैं। हमको कोई अधिकार नहीं कि उनको किसी प्रकार कष्ट दें। इतना ही नहीं, न मालूम किसी छोटेसे जीवसे संसारमें क्या काम निकलता हो, या निकले। प्रकृतिकी अद्भुत लीलाका पारावार नहीं है। क्या पता था कि ज़रासी भापसे इतने बड़े इंजनकी उत्पत्ति होगी? कौन जानता था कि साधुओंके माला फेरकर घासपर रख देनेसे और घासके खिंच आनेसे विद्युत्शास्त्रकी नींव पड़ेगी। इसी प्रकार केंचुए भी तुच्छ दृष्टिसे देखे जाते थे और उनकी कोई परवाह न करता था। जीव विज्ञानके न जाननेवाले अब भी इसके गुणोंको नहीं जानते।

पहले इस छोटेसे जानवरके बारेमें हम लोगोंको कुछ विशेष न मालूम था। सम्वत् १८३४ बि० में ह्वाइट नामक एक प्रकृतिवेत्ताने एक मित्रको लिखा, "छोटेसे छोटे कीड़े मकोड़े भी इतने कामके होते हैं और प्रकृतिके मितव्ययमें इतनी सहायता करते हैं कि मामूली लोग उसका अनुभव नहीं कर सकते। वह इतने छोटे होते हैं कि मनुष्य मात्रका ध्यान उनकी ओर नहीं जाता और इस कारण वे अपना काम बेरोक टोक बड़ी तेज़ीसे करते हैं। केंचुआ देखनेमें चाहे तुच्छ हो और प्रकृतिके ज़ंजीरका एक हीन ही कड़ा क्यों न हो, परन्तु यदि संसारसे निकाल दिया जाय तो अनर्थ ही हो जाय। इनसे वनस्पतियोंके उगनेमें बड़ी सहायता मिलती है। यह पृथ्वीको छेदकर मिट्टीको पोली बना देते हैं और इसीसे बरसातका पानी और पौदोंकी जड़ें आसानीसे पृथ्वीमें प्रवेश कर सकती हैं। उनके शरीरमेंसे सेवईं की तरह जो मिट्टी निकलती है वह बड़ी ही महीन होती है और खेती बारीमें वह पौदोंके उगने और उनके खानेमें बड़ी सहायता देती है।" यह ह्वाइटने लिखा तो अवश्य परन्तु केंचुएके विषयमें डारविनने सौ बरससे कुछ ज्यादा हुए भली प्रकार अपनी एक पुस्तकमें लिखा। बरसों उसने बड़ी छान बीन और परिश्रम किये और तब संसारको पता लगा कि जिस जन्तुको हम लोग बिलकुल बेकाम भद्दा और निकृष्ट समझ रहे थे वह वास्तवमें मनुष्य जातिका उपकारक और सहायक है।

जिस समय डारविन केंचुएके रहन सहन, और उसके जीवनरहस्यके पता लगानेमें कठिन परिश्रम कर रहा था, उसके एक मित्रने कहा कि ऐसी तुच्छ वस्तुपर इतना परिश्रम और समय लगाना बिलकुल भूल है। परन्तु डारविन अच्छी तरह समझता था कि उसका परिश्रम व्यर्थ न होगा।

केंचुएका रहन सहन

केंचुएका शरीर अच्छी तरह देखनेसे पता लगता है कि वह छोटे छोटे छल्लोंसे मिलकर बना हुआ है। भिन्न भिन्न जगहोंके केंचुओंमें छल्लोंकी भिन्न भिन्न संख्याएं होती हैं। केंचुएके पेटकी ओर दो दो छोटे छोटे महीन कड़े बालके दो जोड़ होते हैं। यह बाल कुछ पीछेकी ओर झुके रहते हैं और इस कारण पीछेकी ओर केंचुआ नहीं हट सकता क्योंकि जब पीछे हटने लगता है तो यह बाल पृथ्वीमें धंस जाते हैं। सरकी ओरका भाग नोकीला होता है। मुंहके ऊपर कुछ चमड़ेका भाग साहब लोगोंकी टोपीकी तरह झुका रहता है। इसीकी सहायतासे पत्तीके टुकड़े तथा भोज्य पदार्थ वह उठा सकता है। हाथीकी सूंड़की अंगुलीकी भांति इसमें भी बड़ी सचेतनता होती है। यह तो लोग जानते ही हैं कि इसके आंख नहीं होती लेकिन आगेका भाग प्रकाशसे संचेत्य होता है। उसको अंधेरे उजालेका पता लग जाता है, और इसी कारण दिनमें कम निकलता है। बरसातमें उसके बिलमें पानी चले जानेसे वह दिनमें निकल आता है, नहीं तो रातमें ही निकलकर चरता और हवा खाता है। इसके कान भी नहीं होते और न शब्द सुन सकता है परन्तु पृथ्वीके हिलावको तुरंत जान जाता है।

वह रहनेकेलिये बड़े लम्बे लम्बे बिल बनाता है। तीन या चार फुट तक इसके बिल गहरे होते हैं। मुलायम जमीन, जैसे जुते हुए खेतमें, वह केवल अपने मुंहको नीचे करके बरमाकी तरह छेदता हुआ चला जाता है। छेदते समय उसके शरीर लगनेके कारण बिलकी दीवार बिलकुल चिकनी हो जाती है और उसके शरीरके छेदों* मेंसे पसीनेकी भांति एक तरल पदार्थ निकलता है जिससे बिलके दीवारपर पलस्तर हो जाता है और दीवार एक दम गिर नहीं सकती। परन्तु जब कड़ी मिट्टीसे मुक़ाबला करना होता है, या किसी प्रकारसे मिट्टी ऐसी हो जाती है कि वह अपने शरीरसे छेद नहीं सकता तो वह मिट्टी खाने लगता है। जो मिट्टी वह खाता है वह मुहमेंसे गलेमें जाती है। गलेके बाद एक S की शकलकी नली होती है उसमें जाती है। इसके बाद एक मांस-की चक्की होती है जिसमें दो छोटे छोटे पत्थर भी होते हैं। इन्हीं पत्थरोंकी सहायतासे कड़ी मिट्टी अथवा पत्थरके कण या और छोटे छोटे पदार्थ पीसे जाते हैं। यहांसे पिसकर और बारीक होकर मिट्टी पेटमें जाती है। पेटके भीतर मिट्टीमें मिले हुए जो छोटे जानवर अथवा पत्तियां हों वह हज़म हो जाती हैं। बाकी मिट्टी, पेटके अन्दरके भोजन पचानेवाले पदार्थोंसे (digestive juices) मिलकर पीछेके एक छेदसे सेवई के रूपमें बाहर निकल आती हैं। इसको जन्तु मल त्याग ('worm's castings') कहते हैं। दिन भर केंचुआ बिलके भीतर रहता है और रातको भी जब बाहर निकलता है अपनी दुम या पिछला भाग बिलके पास ही रखता है। इसलिए यदि कोई भय हो तो तुरन्त सारा शरीर बिलमें खींच ले। केंचुआ जो मिट्टी खाता है वही उसकी ख़ोराक नहीं होती। इसके अतिरिक्त सड़ी पत्तियां और घास पात भी खाता है। ऐसा करनेकेलिए वह अपनी दुमका थोड़ा भाग छोड़कर सब धड़ बिलके बाहर निकाल लेता है और यथाशक्ति अपने शरीरको लंबा करता है। इसके बाद एक गोलाकारमें जो कुछ पाता है झाड़ू की तरह बिलके मुंहपर बटोर लेता है और तब बिलमें उतरकर थोड़ा थोड़ा खाता है। जो थोड़ीसी पत्तियां ऊपरसे अपने भीतरको कोठरी-में ले जाता है उसे मुंहमेंसे एक प्रकारका लुआब निकालकर ढक देता है। यह भी एक प्रकारका पाच्य पदार्थ है। इससे पत्तियां नरम हो जाती हैं

*Dorsai pores

और केंचुआ अपने बेदांत मगर मजबूत मुंहसे कुतुर सकता है। दिनमें अपना बिल केंचुआ पत्तियोंसे ढांक देता है। एक तो इसलिए कि बिलका मुंह छिपा रहे, दूसरे यह कि गर्मी और धूपसे उसका बिल सूखने न लगे, क्योंकि केंचुआ नम बिलमें ही रह सकता है।

केंचुएसे खेती बारीमें क्या लाभ होता है, इसमें बहुत कुछ तो अभी मालूम ही हो गया होगा। बिल जो कई इंच गहरे होते हैं इनसे पृथ्वीके भीतर हवा और पानीकी बून्दें सरलतासे प्रवेश करती हैं, और पेड़ोंकी बारीक जड़ें भी आसानीसे जमीनके भीतर जाती हैं, जिससे उन्हें खूब भोजन और तरावट मिलती है। जब केंचुए बिल छोड़ देते हैं तो वह कुछ समयमें गिरकर चूर चूर हो जाते हैं। इस प्रकारसे धीरे धीरे परन्तु निरन्तर मिट्टी एक स्थानसे दूसरे स्थानको चला करती है। और नीचेकी मिट्टी ऊपर आती है जिसपर हवा, पानी, का खूब असर होता है। ऊपरकी भी मिट्टी इसी प्रकार नीचे जाती है।
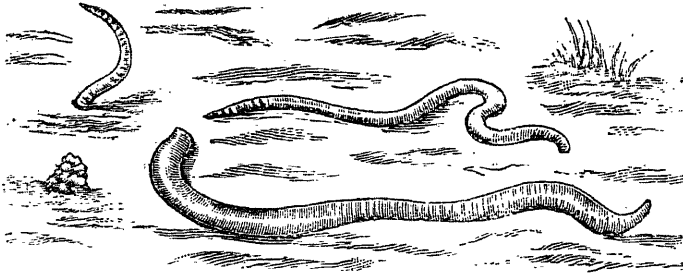
चित्र १

सड़ी हुई पत्तियां जो केंचुआ बिलके भीतर ले जाता है पौदोंके उगनेमें बड़ी सहायक होती हैं। और लुआब जिनसे कि पत्तियां ढकी रहती हैं वह तो पौदोंकेलिए सोनेमें सुहागेका काम देता है। ऊपर जो 'सेवई" होती है वह क्या है? नीचेके तहकी उत्तम मिट्टी जिसे केंचुएने और भी बारीक पीस दी है ऊपर पृथ्वीकी सतहपर आ जाती है और इस प्रकार पृथ्वीके ऊपरकी सतह सुन्दर बारीक मिट्टी से ढक जाती है।

डारविनने किस प्रकार अनुसन्धान किया उसका भी कुछ उल्लेख आवश्यक है। अपने कमरेके चारों तरफ़ उसने गमलोंमें केंचुए पाल रक्खे, और बराबर उनको देखता रहा कि वे किस प्रकारका भोजन बहुत पसन्द करते हैं? किस प्रकारसे ये दो चार तरहके भोज्य पदार्थोंमेंसे अपने रुचिके भोजनको चुन लेते हैं? कैसे वह अन्य अन्य प्रकारकी पत्तियों-को खींचते हैं? एक दिनमें कितनी मिट्टी उनके पेटमेंसे निकलती है? लुआबका पत्तियोंपर क्या असर पड़ता है? किस समय वह बड़े फुरतीले होते हैं? इत्यादि। यह भी समझकर कि शायद गमलोंकी तंग जगह अथवा घरमें रखनेमें उनके रहन सहनमें कुछ परिवर्तन हो जाय रातको लालटेन लेकर खेतोंमें जाकर भी वह देख भाल किया करता था।

इसके अतिरिक्त उसने और भी देख भाल शुरू की। पत्थरके ढोके देखे गये। यह पाया गया कि वह धीरे धीरे धंसते जाते हैं। फिर यह देखा गया कि वह किस हिसाबसे धंस रहे हैं। एक खेतमें कुछ हिस्सेपर खड़ियाके छोटे छोटे टुकड़े बिछा दिये गये। तीस वर्षतक ज्योंका त्यों वह खेत पड़ा रहा। इसके बाद पृथ्वीके सतहके सात इंच नीचे खड़ियाके ढोके बिछे हुए पाये गये। दूसरे खेतमें कड़े पत्थरके टुकड़े बिछा दिये गये। इसे भी तीस साल तक छोड़ दिया। तीस सालके बाद आसानीसे उसपर घोड़ा दौड़ाया जा सकता था और पत्थर लापता थे।

एक और जांच की गयी। वह इससे भी ठीक थी। खेतमें एक गज़ लंबी और एक गज़ चौड़ी ज़मीन नाप ली गयी और सैकड़ों ऐसे टुकड़े नापकर निशान कर छोड़ दिये गये। एक सालतक बराबर हर टुकड़ेकी रोज़ जांच होती रही। सालभरमें एक एक वर्ग गज़की 'सेंवई' वाली मिट्टी तौली गयी और फ़ी वर्ग गज़ एक सेर ११ छटांक पायी गयी। इससे यह स्पष्ट हुआ कि ऐसी ही एक एकड़ ज़मीनपर सालभरमें लगभग १९२ मन मिट्टी नीचेसे ऊपर आती है।

इतिहासमें बहुत ही प्राचीन कालमें हलका वर्णन आता है। इस यंत्रकी ईजाद बहुतही प्राचीन कालमें हुई थी परन्तु उसके पहले भी खेत इस प्राकृतिक हलद्वारा जोता जाता था। अब भी यह प्राकृतिक हल मनुष्यके कामको आसान करता है तथा उसे सहायता देता है। संभव है कि ऐसे और जानवर हों जिनका पता अभी मनुष्यको नहीं मिला है और वह भी मानवजातिको सहायता देते हों।

परन्तु यह हमें न समझना चाहिये कि केंचुए जान बूझकर हम लोगोंको मदद दे रहे हैं अथवा वे इस बातकी चेष्टा करते हैं कि मनुष्यजातिको फ़ायदा पहुँचावें। इसके विपरीत गोभी तथा छोटे छोटे मुलायम पौदोंको कुतुरकर वे हम लोगोंको हानि भी पहुँचाते हैं। गाजर और अजवायन जब नयी नयी पत्तियां पृथ्वीके भीतरसे फेंकती हैं तब तो उनको बेतरह खाते हैं। तब भी उनकी जातिसे कोई विशेष हानि नहीं पहुँच सकती।

हम लोगोंके अतिरिक्त और जीव जन्तुओंको भी इनसे लाभ हो पहुँचता है। गोजर तो इनके बिलोंमें घुस जाता है और इनका ख़ून भोजन करता है। तीतर, श्यामा इत्यादि, ज्योंही इनका सर बिलके बाहर देखते हैं, तुरंत चोंचमें पकड़कर पेटमें पहुँचानेकी कोशिश करते हैं। केंचुए केवल अपना जीवन पूरा करते रहते हैं और अनजानमें उनसे लाभ भी पहुँच जाता है।

संसारके प्रत्येक हिस्से में १०,००० फुट ऊंची ज़मीन तकमें केंचुए पाये जाते हैं जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है उनके रहनेके लिए कुछ नमीकी आवश्यकता है, इस कारण बहुत सूखे स्थानमें वे नहीं रह सकते। एक ही देशमें भिन्न भिन्न स्थानोंपरके केंचुओंकी बनावट भिन्न हो जाती है। उनका प्रयोजन, उनके शारीरिक धर्म, उनकी भीतरी बनावट इत्यादि भी विचित्र होती हैं।

उज्जनके चमत्कार

[ले० प्रो० मनोहर लाल भार्गव, एम० ए,]

उज्जन एक ऐसी गैस है, जिससे विज्ञानकी बारहखड़ी जानने वाले भी परिचित हैं। विज्ञान पढ़ने वाले प्रायः इसी गैसको पहले पहल बनाया करते हैं। इसके बनानेकी सहल तरकीब यह है कि एक परखनलिका लेकर, उसमें जस्तेके कुछ टुकड़े डालकर, गंधकका कुछ पतला तेज़ाब डाल दो, देखोगे कि नलिकामेंसे कुछ बुदबुदे बड़े आनन्दसे यशदके टुकड़ोंके आस पाससे निकल निकलकर नृत्य करते हुए तेज़ाबकी सतह तक आकर ग़ायब हो जाते हैं, हवामें मिल जाते हैं। यदि जलती हुई दियासलाई इस नलिकाके मुंहके पास लगाई जाय तो थोड़ी ही देरमें नलिकामें कुछ जलती हुई ज्वालासी दिखाई देगी। यह ज्वाला जलती हुई उज्जनकी है। यह तो उज्जन बनानेकी खेलकी रीति हुई। प्रयोग करनेकेलिए इस वायुको अधिक मात्रामें तय्यार करके वायुघटोंमें इकट्ठा करके रखनेकी विधि विज्ञान भाग ५ संख्या ४ पृष्ठ १५२ पर दी हुई है। वहांपर इस वायुके कुछ गुण तथा कुछ चमत्कारोंका वर्णन भी दिया हुआ है। संक्षेपसे इसके गुण यहां गिनाये जाते हैं।

उज्जनके भौतिक तथा रासायनिक गुण

जितनी गैसें मनुष्यको मालूम है, उन सबमें यही सबसे ज्यादा हलकी है। हवा इससे लगभग साढ़े चौदह गुनी भारी है। पानीमें यह घुलनशील नहीं है। जलता फ़लीता दिखानेसे यह जल उठती है। यदि हवा या ओषजनके साथ यह मिलाकर जलाई जाय तो ज़ोर का धड़ाका होता है। यदि इस गैसका पान किया जाय तो स्वर बहुत ऊंचा हो जाता है।

उज्जन बनाने की दो नई रीतियां

धातुओंको तेज़ाबोंमें गलानेसे उज्जन पैदा होती है, यह बात पहले बतलाई जा चुकी है। पानीमें भी उज्जन विद्यमान है, यह बात दो प्रकारसे सिद्ध की जा सकती है—संश्लेषणसे अथवा विश्लेषणसे।

उज्जनको जलाइये पानी बन जायगा। पानीमें विद्युद्धारा का प्रवाह कराओ उज्जन और ओषजन पैदा हो जायंगी। अतएव पानीसे भी उज्जन निकाल सकते हैं। इसकी एक तरकीब तो अभी बतला चुके हैं, जब विद्युत्प्रभाव तेज़ाब मिले पानीमें होगा तो धन ध्रुवपर ओषजन और ऋण ध्रुवपर उज्जन निकलने लगेगी। [देखो विज्ञान भाग ७ अंक २ पृष्ठ ५९] दूसरी तरकीब यह है कि पानी और धातुओं की रासायनिक क्रिया कराई जाय। कुछ धातुएं तो ऐसी हैं जो पानीके सम्पर्कमें आतेही पानीमें घुलने लगती हैं और पानीमेंसे उज्जन निकलने लगती है। यह धातुएं सोडियम, पोटाशियम आदि हैं। कुछ धातुयें ऐसी भी हैं जो गरम पानी या भापके साथ क्रिया करती हैं। इनमें लीदियम, मग्नीसियम, लोह आदि हैं। यदि उत्तप्त लोहेके ऊपर होकर भाप निकले तो उज्जन बनेगी और लोह ओषिद रह जायगा। यह एक साधारण क्रिया है, जिसकी जब चाहें परीक्षा कर सकते हैं। परन्तु कमसे कम एक दफ़ा तो यह बड़ी भयानक घटनाका कारण हो चुकी है।

वात भट्टा उड़ गया

बुलपर हेम्पटन नगरमें लोहे बनानेका वात भट्टा कुछ दिनसे यथाविधि कामकर रहा था, पर एक दिन अचानक ऐसा धड़ाका हुआ मानों सैकड़ों जगह बिजली गिरी हो और १०० फ़ीट ऊंचे भट्टेके छोटे छोटे टुकड़े होकर चारों तरफ़ दूर दूर तक ऐसे गिरे जैसे ओलोंकी वर्षा होती हो। इन पत्थर और ईटोंके टुकड़ोंके साथ मट्टी और पिघले लोहेकी वर्षा भी हुई, जिससे आस पासके मकानों और काम करने वालोंको बड़ी हानि पहुँची।

इस दुर्घटनाका कारण यह था कि 'टौवर' से सम्बन्ध रखनेवाली एक नालीमें थोड़ा पानी पहुँच गया था। उधर वात भट्टेके पेंदेमेंसे रिसरिसकर श्वेत उत्तप्त लोहा भी उसी नालीमें पहुँचने लगा। परिणाम यह हुआ कि उत्तप्त लोह और पानीकी क्रियासे उज्जन पैदा हो गई जो वायुके ओषजनके साथ मिलकर बड़े ज़ोरके धड़ाकेके साथ जल उठी। इसी धड़ाकेसे भट्टीका पेंदा उड़गया और उसमें से १००० मन पिघला हुआ लोहा निकल पड़ा। फिर क्या था, जहां जहां इस ज्वालामयी नली और पानीकी भेंट हुई वहीं सलामी दग़ने लगी। पासके कई मकान टूट गये। थोड़ी दूरपर ही छः आदमी कामकर रहे थे वह भी धड़ाकेके वेगसे इधर उधर उड़कर जा पड़े और धूल मिट्टी, कंकड़ पत्थर, और गरमा गरम लोहेके टुकड़ोंसे दब गये। बेचारे बड़ी बुरी तरहसे घायल हुए, पर ग़नीमत इतनी ही थी कि उनकी जान बच गई।

एक जर्मन जंगी जहाज़ का बैलट फट गया।

कुछ वर्ष हुए एक जर्मन जंगी जहाजकेलिए बैलट तैयार हो रहा था। एक बैलटमें कुछ कारीगर काम कर रहे थे। उनके पास कुछ जस्ता था। जब वह बैलट तय्यार हो चुका तो कारीगर जस्ता उसीमें छोड़कर चले गये। बैलट जहाज़पर चढ़ाया गया, उसमें पानी भरकर गरम किया और इंजन अपनी मधुर ध्वनि करते हुए चक्कर लगाने लगे। जहाज़ने बन्दरको छोड़कर समुद्रमें प्रवेश किया। उस दिन उसकी परीक्षा होनेवाली थी। जहाज़की चाल देखकर अफ़सर लोग बड़े प्रसन्न हो रहे थे कि इतनेमें बिजली गिरनेका सा प्रकाश और शब्द हुआ। जहाज़ एकदम रुक गया। सारा जहाज़ भभकती हुई भापसे भर गया और इंजनरूमके प्रायः सभी आदमी मर गये। इस घटनाका क्या कारण था यह किसी की समझमें नहीं आया। जहाज़ फिर बन्दरमें लाया गया और उसकी मरम्मत होने लगी। कुछ दिन बाद बैलट में वही जस्तेके टुकड़े मिले, तब उस दुर्घट घटनाका सच्चा कारण जान पड़ा। खौलते हुए पानीमें जस्ता गलने लगता है। अतएव जब पानी बैलटमें खौलने लगा तो जस्ता उसमें गलने लगा और उज्जन पैदा होने लगी। यह उज्जन बैलटमें मौजूद रहने वाली ओषजनके साथ मिल गयी और इस प्रकार एक विस्फोटक वायुमिश्रण पैदा हो गया। बेचारे काम करने वालोंको इसका बिलकुल पता भी नहीं था कि थोड़ी देरमें इस विस्फोटक मिश्रणके

विस्फोटनसे बैलट फट जायगा । जिन मिस्त्रियोंने जस्ता उस बैलटमें छोड़ दिया था, उन बेचारोंके ख़यालमें भी यह बात नहीं आयी थी, कि इस तुच्छ घटनाका परिणाम इतना भयानक होगा और उनकी-ज़रासी भूलसे उनके इतने निर्दोष भाइयोंकी जान जायगी ।

दियासलाईकी नगड़दादी उज्जन बत्ती ।

उज्जन ज्वलनार्ह पदार्थ है, परन्तु इसको जलाएं कैसे। आजकल तो दियासलाईसे जला सकते हैं, पहले ज़मानेमें तो दियासलाई होती न थी। उस ज़मानेमें प्रत्येक गृहस्थ अपने घरमें आग दबाकर रखता था। जब आवश्यकता होती थी, घास फूस रखकर फूंका और ज्वाला उत्पन्नहो गई। उसीसे अपने लम्प दीपक आदि जला लिया करते थे। परन्तु डोबेरीनर महोदय ने (१७८०—१८४९) जो एक जर्मन रसायनज्ञ थे, उज्जनके एक अद्भुत गुणकी परीक्षा की। उन्होंने यह मालूम किया कि यदि बहुत बारीक प्लाटीनम* पर उज्जन वायुकी बहुत बारीक धारा टक्कर खाय तो गरमी पैदा होती है और उज्जन जल उठती है। उज्जनका यही गुण वह उज्जन बत्तीके बनानेमें काममें लाये। उज्जन बत्तीको हम आधुनिक दियासलाईकी नगड़दादी कह सकते हैं ।

रसायनज्ञोंकी दृष्टिमें उज्जनका महत्व ।

उज्जन उन सब पदार्थों से जो पृथ्वीपर मिलते हैं हलकी होती है। (अनुमान किया जाता है कि सूर्य आदि सितारोंमें एक उज्जनसे भी हलका पदार्थ विद्यमान है, जिसे कोरोनियम नाम दिया गया है।) अतएव रासायनिक नाप तौलमें उज्जनको ही प्रमाण पदार्थ मानते हैं। इसका गुरुत्व १ मानकर समस्त पदार्थों का वाष्प गुरुत्व (वायवीय दशामें गुरुत्व) निकालते है। इसीके परमाणुका भार एक मानकर समस्त मौलिकोंका परमाणु भार निकालते हैं। इसी-को युयुत्ता एक मानते हैं, इसकी योग-शक्ति एक है। इसमें और भी कई विलक्षणताएं हैं, जिनका यहां वर्णन करना रुचिकर न होगा ।

प्रौट (Prout) ने पहले पहल मौलिकोंके परमाणु भारोंकी परीक्षाकी, तो उन्हें पता चला कि परमाणु भार प्रदर्शक संख्याएं प्रायः पूर्णांक होती हैं। इस निरीक्षणसे उन्होंने यह सिद्धान्त स्थिर किया कि परमाणु भारोंमें जो पूर्णांकोंसे अधिकता या न्यूनता है वह प्रयोगोंकी भूलके कारण है और वास्तवमें परमाणुभार पूर्णांक होने चाहिए। इसका कारण उन्होंने यह ठहराया कि उज्जन ही मूल प्रकृति है। उसीसे समस्त मौलिकोंकी उत्पत्ति हुई है। मौलिकोंके परमाणु, उज्जनके परमाणुओंके संग्रह मात्र हैं। अतएव जब उज्जनका परमाणुभार एक माना जायगा, तो अन्य मौलिकोंकी परमाणु भार सूचक संख्याएं आप-ही पूर्णांक होंगी ।

इस सिद्धान्तका विरोध बड़े ज़ोरके साथ हुआ। स्टास, डूमा, मेरिग्क आदिने मौलिकोंके परमाणुभार बड़ी होशियारीके साथ ठीक ठीक निकाले और यह सिद्ध किया कि यह पूर्णांक नहीं हैं। प्रौटने जो मान लिया था कि पूर्णांकोंसे परमाणु भारोंका अन्तर प्रायोगिक अशुद्धियों और त्रुटियोंके कारण होता है, ऐसा मानना न्याय संगत नहीं है ; क्योंकि प्रयोगोंमें इतनी अधिक भूलका होना असंभव हैं। उदाहरण:— यदि क्लोरीन (हरिद) का परमाणु भार ३५.५ है तो इसमें ३.५ की भूल होना असम्भव है। यदि उसका परमाणु भार ३५.१ होता; तो शायद यह मान भी लेते कि वास्तवमें परमाणु भार ३५ है। इस प्रकार प्रौटके प्रोटैल (मूल प्रकृति) वादका अन्त हुआ। पर थोड़े दिनोंसे फिर वैज्ञानिक संसार एक नये प्रोटैल वादको मानने लगा है। जिसमें उज्जनका स्थान विद्युत् कणोंने ले लिया है। अब यह माना जाता है कि विद्युत्कणोंकी भिन्न भिन्न संख्याओंमें भिन्न भिन्न

*यह पदार्थ पहले भारतवर्षमें निकाला जाता था, पर प्रायः फेंक दिया जाता था। जो लोग नदियोंकी रेतको धोकर सोना निकालते थे, उन्हें कभी कभी केवल सफ़ेद रवे मिला करते थे। पदार्थको वह सफ़ेद सोना कहा करते थे और इसका उपयोग न जाननेसे इसे फेंक दिया करते थे। यही सफ़ेद सोना प्लाटीनम था।

प्रकारसे रचना करके एकत्रित हो जानेसे ही भिन्न भिन्न मूल तत्वोंकी उत्पत्ति हुई है।

उज्जनकी द्रवावस्था।

जिस प्रकार अन्य गैसें ठंडक पहुँचाने और दबाव डालनेसे द्रव हो जाती हैं, उसी प्रकार उज्जन भी द्रव रूपमें परिणतकी जा सकती है। बहुत दिनों तक वैज्ञानिकोंका यह ख्याल बना रहा कि उज्जन उन गैसोंमेंसे है जो द्रवी भूत नहीं हो सकतीं। ऐसी गैसोंको स्थायी (Permanent) गैस कहते थे। परन्तु १८८४ में ओलज्यूस्कीने द्रव उज्जन तय्यार करके इस विचारको निर्मूल सिद्ध कर दिया। ओलज्यूस्की केवल थोड़ा सा द्रव तैय्यार कर सका था और वह भी थोड़ी देरकेलिए, परन्तु देवरने बहुत सी द्रव उज्जन तैय्यार कर डाली और उससे परीक्षाएँ भी कीं। द्रव उज्जनका तापक्रम—२५२.६° श होता है। बरफ़के तापक्रमसे भी २५२°श कम नीचे। यह तापक्रम शून्यसे केवल २१°श अधिक है। शून्यका तापक्रम तो महाप्रलयका तापक्रम समझना चाहिये। उस तापक्रमपर पदार्थमें पूर्ण निस्तब्धता आ जाती है। अणुओंकी गति रुक जाती है और पदार्थके गुणोंमें अद्भुत परिवर्तन आ जाता है। तेज़से तेज़ तेज़ाब इस तापक्रमपर पानीसे भी अधिक निष्क्रिय हो जाते हैं। द्रव उज्जन पानीकी तरह निर्मल और स्वच्छ होती है। हां, इसकी शीतलता प्रचण्ड दावानलसे भी अधिक दाहक है। तुलसी दासजी, ने जब यह लिखा कि शीतल सिख भी दाहक प्रतीत हुई, उस समय उनको शून्यके आस पासके तापक्रमोंके विषयमें कुछ नहीं मालूम था। जिस बातको उन्होंने अस्वाभाविक बतलानेकी कोशिश की, वह वस्तुतः स्वाभाविक है। यदि द्रव उज्जनकी एक बूंद किसी अंगपर डाल दी जाय तो त्वचा और रुधिर जमकर पत्थर हो जायं और उसी प्रकारका घाव हो जाय जैसा गरम गरम लोहेके स्पर्श करनेसे होता है। द्रव उज्जन पानीसे १४ गुनी अधिक हलकी होती है। उसमें काग, लकड़ी और तेल उसी भांति डूब जाते हैं जैसे पानीमें पारा या सीसा। इस द्रवको यदि जल्दी जल्दी उड़ाया जाय तो वह स्वयम् ठोस हो जाता है और तापक्रम-२५९°श तक कम हो जाता है। द्रव उज्जनको बड़ी तेज़ीसे वाष्पमें परिणत करनेसे हीलियम गैसको द्रवीभूत किया गया है, जो ४-५° केवल पर उबलती है। द्रव हीलियमको अपने आप उड़नेसे ३°श केवल तक तापक्रम घटा सकते हैं। इस प्रकार द्रव उज्जनने केवल तापक्रम के शून्य अर्थात् महाप्रलयके तापक्रम-का कुछ अनुभव प्राप्त होनेका द्वार खोल दिया है। जिन सूर्य सम्प्रदायोंके सूर्य ज्योतिहीन हो गये हैं, उनके ग्रहों और उपग्रहोंका तापक्रम केवल शून्य है। वायुमण्डलके बाहर यदि हम जा सकें तो प्रायः यही तापक्रम हमको मिलेगा। यदि सूर्य भगवान् ज्योति तथा ताप देना बन्द करदें तो हमारे पृथ्वी मण्डलकी भी यही दशा हो जाय।

उज्जनकी अद्भुत व्यापकता।

यहांपर यह प्रश्न उपस्थित हो सकता है कि उज्जन कहां कहां और किस किस रूपमें पायी जाती है। वायुमण्डलमें थोड़ी बहुत उज्जन सदैव रहती है। यह वायुमण्डलमें आती कहांसे है? सुनिये, आपके उच्छ्वासमें उज्जन रहती है। जो गैसें मिट्टीके तेलके कुओं और ज्वालामुखी पर्वतोंमेंसे निकलती रहती हैं, उनमें उज्जनका कुछ अंश रहता है। पौधोंके उच्छ्वासमें भी उज्जन रहती है। किसी किसी खानमेंसे भी उज्जन निकला करती है। जर्मनी प्रदेशान्तर्गत स्टासफर्टकी पोटाश-की खानोंमेंसेभी यह गैस निकलती रहती है। कभी कभी तो उक्त खानमें कारनेलैटकी तहोंमेंसे बिलकुल शुद्ध उज्जन बड़े वेगसे निकलने लगती है। अनन्त देशमेंभी उज्जन व्याप रही है। अतएव जैसे जैसे सूर्य भगवान अपनी सम्प्रदाय सहित नौ मील फ़ी सैकण्ड के वेगसे न मालूम किस लक्ष्य से दौड़ लगाते हुए आगे बढ़ते हैं, उक्त उज्जनमेंसे थोड़ीसी पृथ्वीके वायुमण्डलमें भी खिंच आती है।

ऊपर जितने उज्जनके निर्गम स्थान बतलाये हैं, उन सबसे आई हुई उज्जन यदि वायुमण्डलमें ही रहती तो अबतक उसकी ख़ासी मिक़दार इकट्ठी हो

जाती, परन्तु ऐसा नहीं होने पाता। इसका कारण ? जब जब बिजली चमकती है, कुछ उज्जन ओषजनसे संयोगकर पानीमें परिणत हो जाती है। दूसरे पृथ्वीका गुरुत्वाकर्षण इतना अधिक नहीं है, कि उज्जनको वायुमण्डलमें ही रख सके। इसलिए उज्जन वायुमंडलमेंसे निकल निकलकर अनन्त देशमें विचरने लगती है।

यौगिकोंमें उज्जन

उज्जनका सबसे साधारण यौगिक पानी है। एक मन पानीमें लगभग साढ़े नौ सेर उज्जन होती है। पानीकी मात्रा इस पृथ्वी मण्डलपर कितनी है यह अनुमान करना भी कठिन है। अतएव उज्जन पृथ्वी मण्डल पर अनन्त परिमाण में मौजूद है। फिर कोयला, मिट्टीका तेल, मीठी शक्कर, कड़वी कोनेन, चिकने घी और चर्बी, आटा, दाल, चावल, आलू, रतालू, शफ़तालू कहां तक गिनाएँ, कोई जीती जागती जिन्स नहीं है जिसमें उज्जन विद्यमान न हो। समस्त वानस्पतिक तथा पार्शव जीवोंमें इसका अंश रहता है। आपके बैठनेकी चौकी, पढ़नेकी मेज़, लिखने की क़लम, पढ़नेकी किताबें, पहननेके कपड़े, जूते और टोप सबमें उज्जन है।

उज्जन ही उज्जन

पृथ्वीपर तो उज्जन इस प्रकार रम रही है, अब ज़रा यहांसे उड़कर तारोंकी सैर कीजिये। पृथ्वीके वायुमण्डलसे निकले नहीं कि बहुत सूक्ष्म रूपमें उज्जन अनन्त देशमें व्यापी हुई मिलेगी इसके बाद चलिये ज़रा सूर्य मण्डलको देखिये। यह क्या, पृथ्वीपरसे तो यह गोल मटोल, चिकना थालीसा नज़र आता था। यहां तो इसमेंसे बड़ी बड़ी ज्वालाकी शिखाएँ निकल रही हैं। ठीक है, तभी दूरबीनमेंसे देखकर यंग (Young) महोदयने १८७१ में कहा था कि सूर्य मण्डलमेंसे बड़ी बड़ी अग्नि शिखाएँ निकलती हैं। एकका आकार इन्होंने १०००००मील लम्बानमें और ५४००० मील ऊंचाई में बतलाया था। १८८० में लेंगलेने तो एक शिखा ३५०००० मील ऊंची देखी थी। यह लौ हमारी पृथ्वीसे हज़ारों गुनी बड़ी हैं, तथापि ज्योतिषियोंका कहना है कि यह अन्य सूर्योंकी लौके मुक़ाबिलेमें हाथीके सामने चींटीके समान भी नहीं। क्योंकि अनन्त आकाशमें कोई कोई सूर्य हमारे सूर्यसे लाखों करोड़ों गुने बड़े हैं। सबसे ज्यादा आश्चर्यकी बात यह है कि यह लौ उज्जनकी हैं। उज्जन सब तारों और नीहारिकाओंमें मौजूद है। कुछ उत्तप्त तारे तो केवल उज्जनके ही बने हुए हैं। उज्जन इन आकाशी पिण्डोंमें उस अवस्थामें नहीं है, जिसमें पृथ्वीपर पाई जाती हैं। इन पिण्डोंमें तो वह अपने दबावसे ही फ़ौलादसे भी ज्यादा कठोर होगई है, पर यह चैनसे एक जगह नहीं रहने पाती, क्योंकि मिनट मिनटमें बड़े बड़े भूकम्प, जिनका अन्दाज़ा हम ख़्वाबमें भी नहीं लगा सकते, हुआ करते हैं और उज्जन सहसा उड़कर वायुके रूपमें लाखों मीलकी ऊंचाई तक पहुँच जाती है। तभी यह लौके रूपमें हमको दीखती है। सूर्य मण्डलमें ४०० मील प्रतिसे कण्डके वेगके इसी प्रकारके अंधड़ चला करते हैं।

उल्का और उज्जन

कभी कभी उल्काओंमें उज्जन पायी जाती है, जिससे उपरोक्त रश्मिचित्रदर्शक द्वारा किये गये निरीक्षणोंकी पुष्टि होती है। उल्का किसी नष्ट हुए ब्रह्माण्ड के या तारेके टुकड़े होते हैं जो कभी कभी बिचरते हुये हम तक आ पहुँचते हैं। यह हमारे वायुमण्डलमें प्रवेश करते ही, बहुधा संघर्षण द्वारा पैदा हुई गरमीमें जलकर राख हो जाते हैं, परन्तु कभी कभी पृथ्वीतल तक पहुंच कर ठण्डे हो जाते हैं। ऐसे ही एक उल्काकी परीक्षा (Grehm) ग्रेहम ने १८६७ में की उसमें उज्जन भरी हुई थी। इसे पता चला कि जिस तारेका यह उल्का अंश था उसमें उज्जन अवश्य होगी। यह भी सम्भव है कि उज्जन आकाशमें से ही इस उल्काने सोखली हो। एक बात और भी हो सकती है कि उल्का केवल आकाशीय धूल कणोंके एकत्रित होनेसे बना गया हो और यह आकाश व्यापिनी उज्जनमेंसे ही आई हो असली बातका पता लगाना कठिन है, परन्तु इतना निश्चय

है कि पृथ्वी मण्डलके बाहर भी उज्जन मौजूद है।

उज्जन मय आदि मध्य और अवसान

सबसे नये अर्थात्, सबसे अधिक गरम तारों में प्राय: उज्जन ही उज्जन पायी जाती है। अन्य गैसोंका बहुत कम अंश रहता है। ज्यों ज्यों तारे ठंडे होते जाते हैं उनमें पदार्थों के चिन्ह भी पाये जाने लगते हैं। किसी तारेका एक या दस बीस मनुष्य-जीवनकी अवधिमें इतना ठण्डा हो जाना सम्भव नहीं, परन्तु आकाशविहारी तारोंकी परीक्षा करनेसे उन्हें हम एक विकाश क्रमसे विभाजित कर सकते हैं; और यह अनुमान कर सकते हैं कि विकाशके आरम्भसे लेकर भिन्न भिन्न अवस्थाओंमें तारोंका रूप परिवर्तन किस नियम से हुआ होगा। इन तारोंका जीवन इतना दीर्घ होता है कि मनुष्य की कल्पनासे परे है। सम्भव है इन तारोंपर हमारे ग्रहकी नाईं हज़ारों क्या लाखों बार विज्ञानकला सम्पन्न जातियोंकी उत्पत्ति, स्थिति और संहार हो चुका हो या होने वाला हो।

तारोंकी उत्पत्ति नीहारिकाओंसे, जो उज्जन प्रधान वायवीय पिण्ड होते हैं, होती है। उनका अन्त कैसे होता है? या तो जब तारे बिलकुल ठण्डे होकर ज्योतिहीन हो जाते हैं, या ऐसे दो या अधिक ज्योतिहीन पिण्ड आपसमें टक्कर खा जाते हैं। टक्करके वेगसे असीम उत्ताप प्रकट होता है और प्राय: दोनों पिंड उत्तप्त होकर वापिस लौट जाते हैं। इनकी टक्करका फल स्वरूप एक नया ब्रह्मांड बीचमें पैदा हो जाता है। यह नीहारिका होता है। एकतो यह विधि है जिससे नये ब्रह्माण्डोंकी उत्पत्ति और मृत पिण्डोंको जीवन दान मिल जाता है। दूसरी एक और विधि है, जिसमें कोई पिंड सहसा जल उठता है, उसमें बड़े ज़ोर का धड़ाका होता है।* यह घटना आकाशमें ज्योतिषियोंने अनेक बार देखी है। प्रतिवर्ष ऐसे अस्थायी तथा अपने आपको जलाकर भस्म कर देने वाले तारे दीखा करते हैं। यों तो ज्योतिषी स्वयम् इस महाप्रलयका दृश्य अपनी आंखों देखते हैं पर छाया चित्रों द्वारा ही इनका ठीक पता चलता है। इन अस्थाई तारोंपर एक विस्तृत लेख (विज्ञान भाग ५ पृष्ठ २६६ तथा भाग ६ पृष्ठ ४३) निकल चुका है। इसलिए यहां केवल एक घटनाका उल्लेख किया जाता है। परसियस नक्षत्रमें एक तारा कुछ दिन हुये दिखलाई दिया। कुछ दिनमें वह आकाशस्थ समस्त तारोंसे अधिक प्रकाशमान होगया। परन्तु चौबीस घण्टे बाद ही वह धीमा पड़ने लगा, उसका रश्मि चित्र बदलने लगा और अन्तमें नीहारका सा होगया। इससे अनुमान किया जाता है परमाणुविक विस्फोटन या फटन हुआ। छायाचित्रोंकी परीक्षासे पता चला कि इसमेंसे छोटे छोटे नीहारिकावत पिंड निकल निकलकर प्रकाशके वेगसे चारों ओर बिथर गये। इस प्रकार एक सच्ची महाप्रलयके देखनेका सौभाग्य कुछ ज्योतिषियोंको प्राप्त हुआ।

*इन दोनों सिद्धान्तों को विस्तारसे पढ़ना हो तो विज्ञान भाग ६ पृष्ठ ४९ पर पढ़ लीजिये।

तारोंका जन्म नीहारिकाओंसे होता है और अन्त भीनीहारिकाओंके रूपमें परिणत होकर होता है। जबतक तारेस्थिर रहते हैं तबतक उनमें उज्जन आदि बहुतसे पदार्थ पाये जाते हैं। इस भांति हम कह सकते हैं कि तारोंका आदि, मध्य, और अवसान उज्जनमय होता है। आदिमें उज्जनही उज्जन रहती है, वह ही सम्भवत: अनेक रूप धारण करलेती है, और अन्तमें फिर उज्जन ही उज्जन रह जाती है। यही अनीन्द्रिक विकाशवाद है।

व्योम विहरण।

पाठक वृन्द! इस लेखकने पृथ्वीसे लेकर करोड़ों मीलकी दूरीपर स्थित तारों तककी खबर ली, परन्तु यह न सोचा कि मनुष्य वायुमण्डलमें ही कितनी दूर जा सकता है। विज्ञानकी कोई भी शाखा इतनी साहस पूर्ण और शोक जनक घटनाओंसे परिपूरित न होगी, जितनीकि व्योम विहरणका इतिहास है। परीक्षा करने वालों और प्रयोग करताओंने जितना निस्वार्थ, सत्यप्रियता, और आत्मत्याग, तथा मृत्युका दार्शनिक निरादर इस कला की पुष्टि और परिवृद्धिमें दिखलाया है, उतना कहीं और देखनेमें नहीं आता।

पर स्मरण रहे कि इस कलाकी सफलता मुख्यतः उज्जनकी बदौलत हुई। यह सबसे अधिक हलकी गैस है। इसका एक घन गज़ डेढ़ सेर बोझको पृथ्वी परसे उठा सकता है। इसका पहले पहल प्रयोग बैलूनमें प्रोफ़ेसर चार्ल्सने फ्रांसमें १८४० वि० में किया था। बैलून बहुत ऊँचे चढ़ सकते हैं। १८६१ वि० में (GuayLussac) गैलुसेक २३००० फ़ीट ऊंचा, १९०७ वि० में बेरल और बिक्सिस (Barral and Bixis) २४००० फ़ीट चढ़े और १८६२ वि० में ग्लैशर और कोक्सवेल (Glaisher and Coxwell) ३७००० फ़ीट तक चढ़े। इतनी ज्यादा ऊंचाई तक अभी वायुयान नहीं चढ़ सके हैं। अन्तिम उड़ान का पूरा विवरण विज्ञान भाग ८ पृष्ठ १९५ पर अद्भुत व्योम-विहरण शीर्षक लेखमें पढ़ चुके हैं।

——

डिफ़थीरिया और उसके जीवाणु

[ले० श्री मुकट विहारीलाल दर, बी० एस-सी]

डिफ़थीरिया शीत प्रधान देशोंका एक भयानक रोग है। इसमें नाक, कंठ और स्वरयंत्रका प्रदाह (वरम) हो जाता है। कभी कभी तो यह ऐसा प्रबल रूप धारण करता है कि एक ही दो दिनमें रोगीकी मृत्यु हो जाती है। परन्तु कभी ऐसा सामान्य तथा हलका आक्रमण होता है कि जुकाम तथा 'गला आकर' ही रह जाता है। यह रोग बच्चोंको ज्यादा होता है। इसकी पूर्वावस्था (Incubation Period) अर्थात् शरीरमें विष प्रवेश होनेके मुहूर्त्तसे रोगके लक्षण दिखलाई देनेका मध्यवर्त्ती समय २—८ दिन तक है परन्तु यह कम भी हो सकता है।

डिफ़थीरियाके जीवाणु

डिफ़थीरियाका जीवाणु एक प्रकारका बीजाणु-बैसिलस (Bacillus) होता है। यह ज्यादातर गलेमें पाया जाता है परन्तु बहुधा मुंह नाक और स्वर नली (Larynx) में भी मिलता है। स्वर नलीके डिफ़थीरियाको ही (Membranous Group) झिल्लीकृत स्वरघ्न कहते हैं।

यह बेसिलस दूधके सिवाय शरीरके बाहर और कहीं नहीं बढ़ता। अगर किसी पदार्थसे चारों ओरसे रक्षित न हो तो सुखानेसे नाश हो जाता है। यह बहुत दिनोंतक जीवित रह सकता है। जो बच्चे रोगकी प्रारम्भिक अवस्था (First stage) में हैं उनके होठोंसे छुई हुई स्लेटकी पेंसिलको सूक्ष्मदर्शन-यंत्र द्वारा देखनेसे मालूम हुआ है कि यह बीजाणु इन पर बहुत दिनों तक जीवित रहते हैं। यह भी देखा गया है कि डिफ़थीरियाके रोगियोंके गलेकी सुखाई हुई झिल्ली (Membranes) में यह बीजाणु महीनों जीवित रहते हैं।

डिफ़थीरियाके जीवाणुओंका शरीरमें प्रवेश

डिफ़थीरियाके जीवाणु शरीरमें मुंह या नाक द्वारा प्रवेश करते हैं। वे एक मनुष्यसे दूसरे मनुष्यमें कई प्रकारसे पहुँच जाते हैं। वे या तो रोगीके खांसने पर या उसके थूकने पर ज़मीनपर गिरकर हवामें मिल जाते हैं और सांसकी हवाके द्वारा दूसरे मनुष्य तक पहुँचते हैं। खांसने, छींकने, हंसने और किसी हद तक बात करनेमें भी थूकके छोटे छोटे बुदबुदे हवामें मिलकर कई फ़ीट (३ से ९ फ़ीट तक) उड़कर दूर जा गिरते हैं। कुछ तो उनमेंसे इतने छोटे होते हैं कि बीस मिनट तक हवामें उड़ते रहते हैं। जब कोई आदमी डिफ़थीरिया, निमोनिया या क्षय जैसे भयंकर रोगसे पीड़ित हो तो उसके थूकके कण इन बीजाणुओंसे भरे होते हैं। इसलिये किसी ऐसे रोगीके पास खड़े न होना चाहिये जो खाँस रहा हो। रोगीको भी हमेशा खांसनेके वक्त मुंहके सामने कोई रुमाल या काग़ज़का लिफ़ाफ़ा रख लेना चाहिये। जिन मनुष्योंके शरीरमें ऐसे जीवाणु होते हैं, उनकी और घरकी चीज़ोंमें भी जैसे रुमाल, किताबें, मेज़, कुर्सी वग़ैरह में इन जीवाणुओंका पाया जाना यक़ीनी है। ये जीवाणु पानी पीनेके गिलास, पेन्सिल, खिलौने या और दूसरी बच्चोंकी खेलनेकी चीजोंपर भी पाये गये हैं। अक्सर स्टेशनोंपर मुसलमान भाइयोंके पानी पीने-

वाले गिलास इन जीवाणुओंके खजाने होते हैं। सोडा-वाटर और शरबतवालों की दुकानोंके गिलासोंका भी यही हाल है। डिफ़थीरियाकी महामारी (Epidemics) कई बार दूधके कारण हुई है। मक्खियां जीवाणुओंको ले जाकर ऐसी जगह छोड़ आती हैं जहांसे वे मुंह और गलेतक पहुंच जाते हैं। इसमें कोई शक नहीं कि पालतू जानवर (ख़ासकर बिल्लियां) अक्सर डिफ़थीरियासे पीड़ित होते हैं और रोग फैलाते हैं।

डिफ़थीरियाके रोकनेमें कठिनाइयां

इस रोगसे बचनेमें सबसे बड़ी कठिनाई तो यह है कि रोगके आक्रमणसे अच्छा होनेके बाद भी ४,५ दिन तक और कभी कभी कई महीनेतक इसके जीवाणु गलेमें मौजूद रहते हैं। इसलिये यह देखा गया है कि (Quarantine) कारनटाइन और (Antitoxin) प्रतिविषके प्रयोगसे कुछ विशेष फ़ायदा नहीं होता। १९६४ वि० में अमेरिकामें यह सब उपाय करने पर भी डिफ़थीरियाके कारण १७००० मृत्यु हुईं। बहुतसे स्वस्थ लोगोंके गलेमें, और जो रोगीके सम्पर्कमें रहे हों उनमें तो प्रायः अवश्य ही तथा उन लोगोंके नाक और गलेमें भी, जो साधारण सर्दी या सामान्य 'गले आनेकी' बीमारी से ही पीड़ित मालूम होते हैं, यह जीवाणु पाये जाते हैं। यह जीवाणु उस आगकी तरह जो कि बुझी हुई मालूम होती है परन्तु मौक़ा पाकर फिर दहक उठती है, डिफ़थीरियाके फिर शुरू होनेके कारण बन जाते हैं। किसी रोगीसे दूसरे मनुष्यमें जीवाणु फैलनेका हरदम डर रहता है। इसीसे यह रोग भयंकर रूप धारण कर सकता है। अथवा यदि उस मनुष्यमें रोग निवारण करने की शक्ति कम हो तो उसे स्वयं हार माननी पड़ती है।

यह मालूम हुआ है कि जब यह रोग किसी शहर या क़स्बेमें फैलता है तो प्रति १००० में दो तीन मनुष्य ऐसे होते हैं जिनके गलेमें सांघातिक रोगके जीवाणु होते हैं। इन मनुष्योंके शरीर जीवाणुओंको रोके रहते हैं इस कारण वह संख्यामें इतने अधिक नहीं बढ़ सकते जिसमें रोग पैदा हो जाय। परन्तु फिर भी शरीर उनका बिलकुल नाश नहीं कर पाता। उन लोगोंके अतिरिक्त जिनमें भयंकर जीवाणु हों और किसी को (Quarantine) कारनटाइनमें रखना ठीक नहीं।

डिफ़थीरियाके रोगियोंके लिये कारनटाइनः—

डिफ़थीरियाको रोकनेके लिये हर एक व्यक्तिको जिसके रुधिरमें सांघातिक डिफ़थीरियाके जीवाणु हों कारंटाइन (Quarantine) में रखना चाहिये चाहे वह मनुष्य स्वस्थ हो अथवा रोगी। शककी हालतमें डाक्टरके लिये केवल गले ही को देखकर यह बता देना कि उसमें डिफ़थीरियाके जीवाणु हैं या नहीं, मुमकिन नहीं है। यह बात मालूम करनेके लिये अणुवीक्षण यंत्र (Microscope) द्वारा परीक्षा होना ज़रूरी है। अमेरिकाकी एक घटना यहां उल्लेखनीय है। १९६५ वि० के आश्विन मासमें रिचमन्ड वरजीनिया (Richmond Virginia) नामी शहरमें डिफ़थीरियाके ८ रोगी ऐसे थे जिनके रोगका कोई कारण नहीं मालूम होता था। लेकिन यह शीघ्र ही पता लगा कि एकको छोड़कर बाक़ी सब डिफ़थीरियाके रोगी एकही जगह से दूध लेते थे। उस गौशालामें जहांसे कि यह लोग दूध लेते थे परीक्षा करनेसे मालूम हुआ कि दो दुहनेवालोंको छोड़कर सब स्वस्थ हैं। इन दो के गलोंमें डिफ़थीरियाके जीवाणु पाये गये। इस घटनासे इस बातका पता चलता है कि डिफ़थीरिया किस प्रकार स्वस्थ मनुष्यों द्वारा भी फैल सकता है और किस प्रकार स्वास्थ्य विभागके कर्मचारी (Health officers) मनुष्योंको रोगसे बचनेमें सहायता दे सकते हैं।

डिफ़थीरियाका टाक्सिन या विषाणु

डिफ़थीरियाके जीवाणुओंसे कभी कभी गला बन्द होनेसे दम घुटकर मृत्यु हो जाती है। परन्तु डिफ़थीरिया रोगमें मृत्यु प्रायः उसके तेज़ टाक्सिन (विष) ही के कारण होती है। यह टाक्सिन इतना विषैला और तेज़ होता है कि अगर अंगूठेके नाख़ूनके बराबर डिफ़थीरिया जीवाणुओंका एक झुंड टन्सिल (Tonsil) पर हो जाय तो वह इतना विष (Toxin)

पैदाकर सकता है कि मृत्यु हो जाय। यह विष (Toxin) स्नायु-मण्डल (Nervous system), मूत्र-यन्त्र (Kidneys) और हृत्पिंड (Heart) पर विशेषत: असर करता है।

डिफ़थीरिया के लिये प्रतिविष (Anti-toxin)

एक पिछले लेखमें हम कह आये हैं कि जब रोगोत्पादक जीवाणु शरीरमें विष (Toxin) पैदा कर देते हैं तो शरीर उस विषको नाश करनेके लिये और स्वयं उससे बचनेके लिये एक प्रकारका प्रतिविष (Anti-toxin) उत्पन्न करता है। इसी सिद्धान्तपर विज्ञान वेत्ताओंने घोड़ेके रक्तसे इस रोगका प्रतिविष निकाला है। यह प्रतिविष इस तरह निकाला जाता है। डिफ़थीरियाके जीवाणु पहिले 'बीफ़' रस (Beefbroth) में रक्खे जाते हैं। वहां वे बढ़ (multiply) कर बहुत सा (Toxin) पैदा करते हैं। इसमेंसे थोड़ासा विष घोड़ेके रक्तमें टीका लगा कर पहुँचा दिया जाता है। इस विषको नाश करनेके लिये घोड़ेके रक्तमें प्रतिविष बनने लगता है। अब और अधिक विष रक्तमें पहुँचाया जाता है जिससे और अधिक प्रतिविष बनता है। इस तरह पर इसके रक्तमें बड़ा प्रबल (Strong) प्रतिविष बन जाता है। इसके बाद घोड़ेका ख़ून निकालकर बहुत साफ़ बरतनोंमें जमा दिया जाता है। पीला पतला द्रव पदार्थ (Liquid Serum) जो कि जमे हुए ख़ूनके चारों ओर निकलता है प्रतिविष कहलाता है। इसकी शुद्धताकी कई बार परीक्षा कर लेने पर इसे शीशियोंमें भर देते हैं और प्रतिविषके नामसे बाज़ारों अथवा डाक्टरोंकी दुकानपर बेचते हैं।

जब कोई मनुष्य डिफ़थीरियासे पीड़ित होता है तो इसी प्रतिविषका टीका लगाकर उसके रक्तमें यह प्रतिविष उत्पन्न कर दिया जाता है। यह प्रतिविष डिफ़थीरियाके जीवाणुओंका नाश नहीं करता बल्कि उनके विषका नाश करता है। और जबतक कि शरीर जीवाणुओंके मारने में सफल हो यह अणु कोषों (Cells) को विषाक्त होनेसे रोकता है।

इस रोगमें जितनी ही जल्दी अविषाणु दिया जाय उतना ही अच्छा है। यह बात नीचे दिये हुए चित्रोंसे स्पष्ट हो जायगी। यह अंक लंदन अस्पताल (London Hospital) के अनुभवपर निर्भर हैं। चित्र (अ) में प्रति सैकड़ा मृत्यु संख्या दिखाई गई है। और इनमें अविषाणु क्रमसे, पहिले दूसरे, तीसरे, चौथे वा पांचवे रोज़ दिया गया था। इससे मालूम होता है कि अविषाणु जितनी देरसे पहुँचता है उतनी ही बचनेकी संभावना घटती जाती है।

पांचवां दिन	मृत्यु संख्या २०
चौथा दिन	मृत्यु संख्या १९
तीसरा दिन	मृत्यु संख्या ११
दूसरा दिन	मृत्यु संख्या ५
पहिला दिन	मृत्यु संख्या ०

चित्र (अ)

मृत्यु संख्या ४४ %
जब प्रतिविष नहीं दिया गया

मृत्यु संख्या ११ %
जब प्रतिविष दिया गया

चित्र (ब)

चित्र (ब) में यह दिखाया गया है कि डिफ़थीरियाके इलाजमें प्रतिविषके प्रयोगका क्या असर होता है। जब प्रतिविषका प्रयोग नहीं हुआ तो मृत्यु-संख्या ४४ फ़ी सदीके लगभग हुई लेकिन प्रतिविषके प्रयोग होने पर देखा गया कि मृत्यु-संख्या चौथाई यानी ११ प्रति सैकड़ा हो गई।

इसलिये यह बहुत आवश्यक है कि प्रतिविष डिफ़थीरियाकी आरम्भिक अवस्थामें दे दिया जाय, क्योंकि जब 'टाक्सिन' विष स्नायु मंडल, मूत्र-यन्त्र और हृत्पिंडके अणु कोषों (Cells) को विषाक्त करके बहुत हानि पहुँचा चुकता है तो फिर उनका विशुद्ध

करना मुश्किल है। प्रतिविषका प्रयोग हर अवस्थामें लाभदायक है और इसे सदा काममें लाना चाहिये। यह डिफ़्थीरियासे बचनेके लिये अच्छा उपाय है। जब किसी आदमीपर इन जीवाणुओंके आक्रमणका भय हो तो भी प्रतिविषकी एक मात्रा रोगको बढ़ने से रोकती है।

प्रतिविष चिकित्साके परिणाम

प्रतिविषसे डिफ़्थीरियाके इलाजमें बराबर सफलता हुई है। कई पाश्चात्य देशोंके अंकोंसे मालूम हुआ है कि जब प्रतिविषका प्रयोग होता है तो उस अवस्थाकी अपेक्षा जबकि प्रतिविष नहीं दिया जाता, रोगकी मृत्यु संख्या चौथाई ही रह जाती है। यहां तक देखा गया है कि अगर रोगकी प्रारम्भिक अवस्थामें ही प्रतिविष दे दिया जाय तो प्रायः कोई भी मृत्यु नहीं होती। हमारे देशमें प्रतिविष चिकित्सा-की ओर ध्यान नहीं दिया जाता है और न यहां इस रोगकी स्वतन्त्र मृत्यु संख्याका पता लगता है। परन्तु प्रतिविष चिकित्साका फल चित्र (अ) और वरजीनिया (Richmond Virginia) के सन् १९०८ के आख़िरी ४ महीनोंके अनुभवसे विदित है। उस कालमें वरजीनियामें १३९ डिफ़्थीरियाके रोगी थे। शहरके स्वास्थ्य-विभाग (Health Department) ने प्रतिविष बिना मूल्य बांटा था और उसका अच्छी तरह प्रयोग हुआ था। उन १३९ रोगियोंमेंसे केवल एककी मृत्यु हुई—इसमें भी डाक्टर तब बुलाया गया था जब बच्चा मर रहा था। यहां पर यह समझा देना उचित है कि पक्षाघात जिसको लक़वा या फ़ालिज भी कहते हैं जो अक्सर डिफ़्थीरियाके बाद हो जाता है वह प्रतिविषके कारण नहीं होता बल्कि रोगके कारण होता है।

प्रकाश विज्ञान

[ले० प्रो० निहालकरण सेठी, एम० एस-सी०]

पाठकोंने यह तो भली भांति समझ ही लिया होगा कि तरंगें किस प्रकार बनती हैं तथा इनके चलनेमें परमाणुओंकी क्या अवस्था होती है। तिर्यक तरंगोंमें परमाणु ऊपर नीचे जाकर कंपन उत्पन्न करते हैं और अनुदैर्ध्य (Longitudinal) तरंगोंमें इनका गमन दाहने बायें अथवा आगे पीछे होता है*। एक नत या उन्नत तरङ्गसे दूसरी तक अथवा एक सघनता या विरलतासे दूसरी तककी दूरीको तरङ्ग-विस्तार कहते हैं। किन्तु यह आवश्यक नहीं है कि यह दूरी केवल उन परमाणुओं से ही नापी जाय जो अपने कम्पनकी सीमापर पहुंच चुके हैं। यदि किसी भी परमाणु प से नापना आरम्भ किया करें और उस परमाणु तक नापें जिसकी गमन सम्बन्धी दशा ठीक प के समान हो, अर्थात् उस-का वेग और वृद्धि प के बराबर हो और अपने वास्तविक स्थानसे वह भी उतना ही हटा हुआ हो जितना प, तो वह नाप भी तरङ्ग-विस्तार के बराबर ही होगा। जैसे प से फ तककी दूरी भी एक तरङ्ग-विस्तारके बराबर हुई। दोनों परमाणु प फ एक ही कला (Phase) में हैं। प से जो परमाणु २, ३, ४ आदि तरङ्ग विस्ता-रोंकी दूरी पर हैं वे भी उसी कलामें हैं। किन्तु यदि प से फ तक पहुँचनेके पहिले ही हम ब पर ठहर जावें जिसकी गमन सम्बन्धी दशा प से उलटी हो तो प ब का अन्तर अर्ध तरङ्ग-विस्तार हुआ। और प और ब विषम कलामें स्थित कहे जावेंगे। जितने भी परमाणु प से अर्ध तरङ्ग-विस्तार या उसके किसी विषम आयवर्त्य (Odd Multiple)) की दूरी पर हों वे सब विरुद्ध कलामें होते हैं।

परमाणु अपने वास्तविक स्थानसे अधिकसे अधिक जितनी दूर हट सकें उसे कम्प-विस्तार (Amplitude) कहते हैं। और यह स्पष्ट है कि तरङ्गें जितनी ही अधिक शक्तिशाली होंगी उतना ही यह कम्प-विस्तार भी अधिक होगा।

तरङ्गोंका बनना और उनका चलना दिखलाने के लिये एक चौड़ा बरतन जिसका पेंदा कांचका हो और २-२॥ इंच गहरा पानी भरा जा सके बहुत उपयुक्त होगा। इस पानीमें छोटी २ लहरें सरलतासे बनाई जा सकती है। उसके नीचे रखा हुआ बिजली-

* विज्ञान भाग १ संख्या २ पेज ७१ का चित्र देखिये।

का लैम्प (Arc Lamp) उनकी परछाईं बरतनके ऊपर रखे हुए तिरछे पतले कागज़के बने हुए परदे-पर डालते है। उंगलीको पानीमें डुबाने और निकालनेसे जो वृत्ताकार लहरें बनती हैं वे उस पर्देपर स्पष्ट दिखाई देती हैं। प्रत्येक वृत्त बढ़ता जाता है और उसके मध्यमें छोटे २ नये वृत्त बन जाते हैं। इन वृत्तोंकी पारस्परिक दूरी एक सी है। इसी दूरी या विस्तारको तरङ्ग-विस्तार कहते हैं।

जब उंगलीसे तरङ्गें बनाई जाती हैं तब तो वे चारों ओर एक ही वेगसे चलती हैं। इस कारण तरङ्ग-क्षेत्र (Wave Front) वृत्ताकार होता है। किन्तु यदि वे एक सीधे लकड़ीके टुकड़ेसे बनाई जाती हैं तो सीधी लहरें एक दूसरीसे समानान्तर चलती हैं। इन तरङ्गोंको समतल तरङ्ग कह सकते हैं।
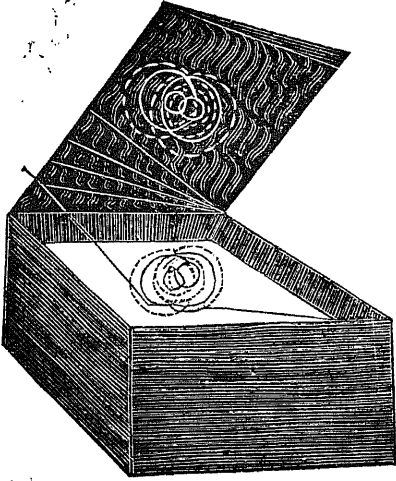
चित्र १

अब हमें आगे बढ़ कर एक अत्यन्त महत्वके प्रश्नपर विचार करना है। मान लीजिये कि एक ही बरतनमें दो केन्द्रोंसे पृथक २ तरङ्गें चल रही हैं। यथा तालाबमें दो पत्थर पास पास डाल देनेसे, अथवा उपरोक्त बर्तनमें दो उंगलियोंसे तरङ्गें उत्पन्न करनेसे, बहुतसे स्थानोंपर दोनों तरङ्गें एक ही साथ पहुँचेंगी और एकके वृत्त दूसरीके वृत्तोंको काटते हुए दिखलाई पड़ेंगे। पानीके परमाणुओंपर ऐसी दशामें दो शक्तियोंका प्रभाव पड़ेगा और उनका गमन दोनों का सम्मिलितफल (Resultant) होगा। दो ही क्यों, चाहे कितनी तरङ्गें एकत्रित हो जायं, परमाणुओंके गमनका नियम यही रहेगा कि उनका लब्धगमन या कम्पन, जुदी २ तरङ्गों द्वारा उत्पन्न किये हुये वृत्तोंका समुदाय मात्र होगा। यदि दोनों तरङ्गोंका उन्नत भाग एकत्रित हो जाय तो स्पष्ट है कि वहांके परमाणु दुगनी ऊंचाई तक उठ जावेंगे। किन्तु यदि एकका नत और दूसरीका उन्नत भाग एकत्रित हों तो परमाणुपर दो विरुद्ध शक्तियां लगेंगी। एक उसे ऊपर उठानेका यत्न करेगी और दूसरी नीचे ले जानेका। फल यह होगा कि जल न
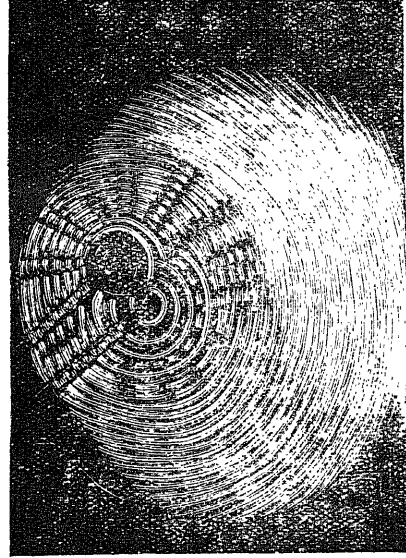
चित्र २

ऊंचा हो सकेगा और न नीचा। ऐसा मालूम होगा कि वहांपर कोई तरङ्ग है ही नहीं। प्रायः पानीकी सतहपर एक विशेष प्रकारका आन्दोलन देख पड़ेगा मानो बड़ी कारीगरीसे, उस पर कुछ खुदाईका काम किया गया है और वह पल २ में कुछ नवीन रूप धारण करता हुआ प्रगट दृश्य-संगीत सा जान पड़ेगा। जिस

मनुष्यको ये सिद्धान्त ज्ञात हैं उसके लिये इससे अधिक सुन्दर दृश्य और नहीं हो सकता। प्यालेमें पारा भर कर उसमें दो तरङ्गें उत्पन्न करनेसे जो आकृति देख पड़ती हैं वह नीचे दी गई है। इस प्रकार एक तरङ्गका दूसरी पर जो प्रभाव पड़ता है उसे व्यतिकरण (Interference) कहते हैं।

यदि एक ही स्थानसे एक ही तरङ्ग-विस्तारवाली दो तरङ्गें साथ ही साथ चलें तो एकका उन्नत भाग दूसरीके उन्नत भाग पर पड़ता है और नत भाग भी दूसरीके नत भागसे मिल जाता है। दोनों तरङ्गें मिलकर दुगने कम्प-विस्तारकी एक तरङ्ग बना देती हैं। यदि दूसरीके चलनेके समय पहिली एक तरङ्ग-विस्तार चल चुकी हो तो भी यही परिणाम होता है। यदि अर्ध तरङ्ग-विस्तारके किसी सम अपवर्त्यके बराबर भी चल चुकी हो तो भी वही बात हो जाती है। किन्तु यदि पहिलीके केवल अर्ध तरङ्ग-विस्तार या उसके किसी विषम अपवर्त्यके बराबर चल चुकने पर दूसरी चले तो उन्नतसे नत और नतसे उन्नत मिलकर, विरोधी शक्तियोंका परिणाम यह होता है कि पानी जरा भी नहीं हिलता। एक तरङ्गसे दूसरी तरङ्ग मिलकर दोनों नष्ट हो जाती हैं।

प्रकाश तरङ्गोंको ठीक २ समझनेके लिये निम्नलिखित दो सिद्धान्तोंको समझ लेना बहुत ही आवश्यक है।
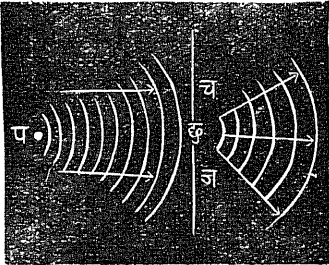
चित्र ३

१—पहिला सिद्धान्त यह है कि तरङ्गें सदा अपने अग्रभागकी समकोण दिशामें चलती हैं। ठीक इसी प्रकार एक पंक्तिमें खड़े हुए सिपाही भी चलते हैं। सब जानते हैं कि पानीकी तरङ्गें इसी प्रकार चलती हैं।

२—दूसरा सिद्धान्त जो हाईगैन्सका सिद्धान्त (Huyghens) कहलाता है यह है कि तरङ्ग-क्षेत्रका प्रत्येक परमाणु नवीन तरङ्गोंका केन्द्र समझा जा सकता है। जिस प्रकार प के कम्पनसे तरङ्गें बनीं उसी प्रकार तरङ्ग-क्षेत्रके प्रत्येक परमाणुके कम्पनसे भी तरंग बन जानी चाहिये। इसका प्रमाण भी सरल है। तरंगके सामने एक पर्दा जिसमें एक छोटा छिद्र छ हो रख दीजिये। तरङ्गों में जब इस पर्देसे टकरावेंगी तब छ के सामने वाले थोड़ेसे भागको छोड़कर शेष प्रायः परावर्त्तित हो जायंगी या वहीं उनका अन्त हो जायगा। वह थोड़ासा भाग छिद्रमें होकर आगे बढ़ जायगा किन्तु चारों ओर बराबर वेगसे फैल जायगा। इन तरङ्गोंका केन्द्र प न होगा
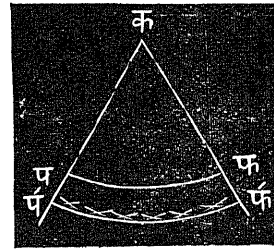
चित्र ४

किन्तु छ होगा। अर्थात् छ भी एक तरङ्ग केन्द्र है। किन्तु यह तरङ्ग-केन्द्र छिद्र और पर्देके होनेसे नहीं बना है वह तो वहां पर मुख्य तरङ्गके पहुँचनेसे ही बनता है परन्तु पर्देके न होने पर हम इस बातको प्रत्यक्ष नहीं देख सकते क्योंकि जिस प्रकार छ तरङ्ग-केन्द्र है उसी प्रकार च, ज आदि अन्य विन्दु भी तरङ्ग-केन्द्र हैं और उनसे उत्पन्न तरंगें भी छ से उत्पन्न तरङ्गोंके साथ ही साथ आगे बढ़ती हैं। ऐसी दशामें व्यतिकरण अवश्य होता है और हम केवल सबका सम्मिलित परिणाम मात्र देख सकते हैं और यह परिणाम वही होता

है जो पहिला सिद्धान्त कहता है। अतः हम कह सक्ते हैं कि पहिला सिद्धान्त इस दूसरे सिद्धान्त और व्यतिकरणके सिद्धान्त दोनोंपर निर्भर हैं। इनके द्वारा हम आसानीसे जान सक्ते हैं कि तरंगें किस प्रकार चलती हैं।

मान लीजिये कि किसी समय तरंग-क्षेत्र क से चलकर प फ तक पहुँच गया, और हमें यह जानना है कि एक सैकंडके दशांशके पश्चात् वह कहां पहुँच जायगा। यदि हमें तरंगोंका वेग मालूम है तो यह जानना सरल है कि इतनी देरमें ये तरंगें कितनी दूर चल सकेंगी। मान लीजिये कि आधे इञ्च चल सकेंगी। एक परकार लेकर उसे इतना खोल लीजिये कि दोनों नोकोंका अन्तर आध इञ्च हो जावे। तब प फ में किसी विन्दु च को केन्द्र मानकर वृत्तका कुछ अंश च खींचिये। यदि च के पासका कुछ भाग ही अकेला आगे बढ़ता तो वह च तक पहुँच जाता। किन्तु छ के पासका तरङ्ग-क्षेत्र भी तो फैलेगा; अतः छ केन्द्रसे भी एक वृत्त छ बनाना चाहिये। इसी प्रकार ज झ आदि विन्दुओंसे भी आध इञ्च त्रिज्या वाले वृत्त खींच लेने चाहिये। अब यदि यह समझ लिया जाय कि पृथक् पृथक् चलनेके स्थानमें इन सब विन्दुओं की तरंगे एक ही साथ फैलती हैं तो हमें ज्ञात होगा कि व्यतिकरणके कारण एक नया बृहत् तरङ्ग-क्षेत्र प

चित्र ५

फ बन गया है जो उन क्षुद्र वृत्तोंका अन्वालोपी वक्र (Envelope) है। अब भी परिणाम वैसा ही हुआ जैसा कि तब होता। यदि प्रथम सिद्धान्तके अनुसार तरङ्ग अपने अग्रभागकी प्रथम समकोण दिशामें आध इञ्च बढ़ जाती तो च ज इत्यादिसे जो तरंगें इधर उधर फैलती हैं वे व्यतिकरण होनेपर एक दूसरे को नष्टकर डालतीं और ऐसा जान पड़ता मानो च से फैलनेवाली तरङ्ग केवल सीधी च तक पहुँच गई।

किन्तु इस स्थानपर यह प्रश्न होना स्वाभाविक है कि यदि यह बात सत्य है तो जिस प्रकार आगेकी ओर एक नया तरङ्ग-क्षेत्र प फ बन गया उसी प्रकार पीछेकी ओर भी एक तरंग-क्षेत्र बन जाना चाहिये। क्योंकि च छ आदिसे जो वृत्त खींचे गये हैं उनका अन्वालोपी वक्र पीछेकी ओर भी अवश्य बनेगा। यह सच है कि यदि जलका एक परमाणु किसी बाहिरी शक्तिके कारण कम्पन करेतो उससे तरंगें चारों ओर फैलती हैं, दाहिनी ओर भी तथा बाईं ओर भी; किन्तु स्थिर जलमें परमाणु बाहिरी शक्तिके कारण कम्पन करें, और उस परमाणुका कम्पन जलमें चलने वाली तरङ्गके कारण ही हो इन दो बातोंमें अवश्य कुछ न कुछ भेद है। पहली दशामें वह परमाणु एक वास्तविक तरङ्ग-केन्द्र है किन्तु दूसरी दशामें वह केवल गौण रूप से केन्द्र बन जाता है।

मान लीजिये कि नीचे दिये हुए चित्रकी वक्र रेखा दाहिनी तरफ़ चलनेवाली तरङ्ग है। यह हम जानते हैं कि वह तरङ्ग आगे बढ़ती जावेगी किन्तु इसकी आकृतिमें कुछ परिवर्तन न होगा और इसके निकल जानेके बाद माध्यम (वह पदार्थ जिसमें तरङ्ग चल रही है) पुनः निश्चल हो जायगा। किन्तु यदि

चित्र ६

किसी उपायसे जलकी यह आकृति बना दी जाय, तो तरङ्गें दोनों ओर चलेंगी। क्योंकि क परके परमाणुपर स्थितिस्थापक शक्ति ऊपरकी ओर लग रही है और ख पर नीचेकी ओर। क और ख दोनों स्थिर

हैं अतः उक्त बलके कारण वे दोनों गमन आरम्भ कर देंगे। किन्तु यदि जलकी यह आकृति तरङ्गके इस स्थानपर बाईं ओरसे पहुँचनेके कारण बनी है तो परमाणु क ऊपरसे नीचे की ओर चलेगा। जिस समय उक्त शक्ति उसे ऊपरकी ओर खींच रही है उसी समय उसमें नीचेकी ओर जानेको कुछ वेग विद्यमान है। अतः वह उस बलके प्रभावसे ऊपरकी ओर नहीं चल सकता। वह स्थिर ही रहता है। इस कारण बाईं ओरको कोई तरङ्ग भी नहीं चल सकती। किन्तु ख इस दशामें भी वेग शून्य, निश्चल है। तरङ्ग उस तक तो अभी पहुँची ही नहीं है। अतः वह स्थितिस्थापक शक्तिके कारण नीचेकी ओर अवश्य चलेगा। और इस कारण तरङ्ग दाहिनी ओर बढ़ सकेगी इसी प्रकार हम यह भी देख सकते हैं कि ख का कम्पन भी पीछेकी ओर तरङ्ग नहीं भेज सकता। मान लीजिये कि वह चलकर ख तक पहुँच गया। किन्तु इसी बीचमें ग भी तो म तक पहुँच जायगा और उसमें ऊपरकी ओर जानेको वेग भी पर्याप्त हो गया। अतः ख के नीचे हट जानेके कारण ग पर भी नीचे हटनेको जो शक्ति लगती है वह उसे नीचे नहीं हटा सकती। वह केवल ग को ऊपर जानेसे रोक सकती है। यदि ग में वेग न होता, अर्थात्, यदि जल तरङ्ग-रहित ग निश्चल होता तो अवश्य ही ख के नीचे हटनेके कारण ग भी नीचे हटता और तरङ्ग पीछेकी ओर भी चलती।

हाईगैन्सके इसी सिद्धान्तानुसार तरङ्गोंका परावर्तन और वर्त्तन सर्वथा स्वाभाविक है। मान लीजिये कि अ इ वह धरातल है जिसमें होकर तरङ्ग नहीं जा सकती और क ख एक तरङ्ग-क्षेत्र है जिसका एक भाग क धरातल अ इ तक पहुँच गया। जिस समय ख के समीप के आन्दोलनके कारण गौण तरङ्ग म तक पहुँचेगी उस समयतक क से उत्पन्न गौण तरङ्ग भी ख म दूरीके बराबर ही त्रिज्या वाले वृत्त पर पहुँच जायगी। इसी प्रकार ग से भी यथा समय गौण तरङ्ग उत्पन्न होगी और वह भी क म, ख ह आदि त्रिज्याओं के वृत्त तक पहुँच चुकेंगी। इन सबका अन्वालोपी वक्र ह म होगा। अतः अ इ धरातल के कारण क ख तरङ्ग क्षेत्र मुड़कर ह म बन गया। अर्थात् तरंगका परावर्तन हो गया। इसी चित्रसे यह भी समझा जा सकता है कि तरंगका आयतन कोण परावर्तन कोणके बराबर है।

इसी प्रकार यदि अ ई उन दो पदार्थोंके बीचका धरातल है कि जिन दोनोंमें तरंग चल तो सकता है किन्तु एकमें अधिक वेगसे और दूसरेमें न्यून वेगसे। तब ठीक परावर्तन ही की भांति गौण तरंगोंसे तरंग-क्षेत्र बनेगा। अंतर केवल यह होगा कि गौण तरंगकी त्रिज्या दूसरे पदार्थमें उतनी न
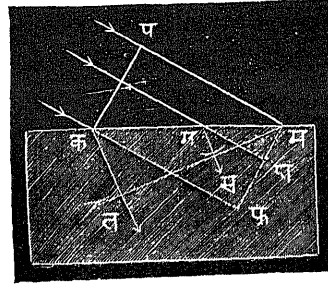
चित्र ७

होगी जितनी कि पहलेमें। इन त्रिज्याओंकी निष्पत्ति तरंग वेगोंपर निर्भर रहेगी अर्थात् दूसरे पदार्थ मेंकी त्रिज्या पहिलेकी त्रिज्यासे छोटी होगी। या

$\frac{क त}{क फ} = \frac{ग स}{ग घ} = \frac{व_1}{व_2}$ जहां व तरंग-वेग है। इस प्रकार

क ख तरङ्ग-क्षेत्र दूसरे पदार्थमें जाकर च छ बन गया। अर्थात् तरंगका वर्तन होगया। इस वर्तनका नियम भी उक्त चित्रसे ज्ञात हो सकता है कि आयतन कोण और वर्तन कोणकी ज्याओंकी निष्पत्ति $व_1$ और $व_2$ की निष्पत्तिके बराबर है।

यह भी स्पष्ट है कि इस चित्रमें एक परावर्तित तरंग-क्षेत्र भी अवश्य बनेगा किन्तु चित्रमें अधिक गड़बड़ हो जानेके भयसे वह दिखाया नहीं गया है। तरङ्गोंका परावर्त्तन और वर्त्तन दोनों इस सिद्धान्तके अनुसार सदा साथ ही होंगे। हां, पूर्ण

परावर्तन भी एक विशेष दशामें हो सकता है जब दूसरे पदार्थमें अन्वालोपी वक्र बन ही न सके। इस दशामें तरङ्ग वेग व, व, से बड़ा होना चाहिये और आयतन कोण भी एक नियत परिमाणसे बड़ा होना चाहिये।

कुत्ता

[गताङ्क से आगे]

अब मैं कुछ अपनी देखी बातोंका उल्लेख करता हूँ। गुरुकुल मुलतानमें कुतिया बच्चे जननेकी ऋतुमें प्रायः रोटियां तथा अन्यान्य भोज्य वस्तुएं किसी एकान्त स्थानपर मिट्टी खोदकर छिपा देती थीं। इसी प्रकार कुत्ते भी करते थे, और जब कभी भूख लगती थी खोदकर खा लेते थे अर्थात् संग्रह करनेकी प्रवृत्ति कुत्तोंमें भी देखी गयी है। वह भावी कष्टको भी बराबर सोचते हैं।

कुत्ते प्रायः ब्रह्मचारियोंकी छोटी बन्द डैस्कोंको नाकसे खोलकर उनमेंसे मिठाई आदि खानेका पदार्थ चुराकर खा जाते थे। चोरी का भाव भी कुत्तोंमें पाया जाता है। मृच्छकटिक नाटककर्ताने कुत्तोंको केवल सामर्थ्य भांप लेनेमें बड़ा ही निपुण लिखा है। आप ध्यान से देखें कि जब कुत्ता किसी घरमें घुसता है, एकदम नहीं घुसता; थोड़ासा मुख डालकर पहले भांप लेता है कि घुसूं कि नहीं। फिर शनैः शनैः दबे पांवोंसे चोरके समान घुसता है।

कुत्तेकी बहुतसे जीवोंसे स्वाभाविक प्रीति होती है और बहुतोंसे बड़ी भारी शत्रुता होती है। वह गौको देखते ही भौंकता है और गाय भी सींगोंसे मारनेको दौड़ती है। बन्दरको देखकर कुत्तेको बहुत क्रोध होता है। मनुष्यके तो तेजसे वह दबता है। बिल्लीसे उसका शाश्वतिक विरोध माना गया है।

मनुष्यकी शिक्षासे कुत्ता जिस वस्तुको अपना लेता है उसके लिए अपना सर्वस्व त्याग देता है। उसके लिए उसके हृदयमें बड़ा प्रेम उत्पन्न हो जाता है।

कुत्ते प्रेम-संयोगके अवसरोंपर चुम्बन करते हैं। मैंने बूढ़े कुत्तोंके मुखोंपर चुम्बन करने और प्रेम परिचय दर्शानेके लिए कूद कूद कर चुम्बन करते हुए छोटे छोटे पिल्लोंको देखा है। वह चुम्बन करते हुए छोटी सी कूं कूं की आवाज़ भी करते हैं।

कुत्तोंको अपने सम्बन्धके प्रायः सभी संकेत मालूम हो जाते हैं।

यदि रसोई करते हुए कुत्ता घुस आता है तो उसे तूचो तूचो की आवाज़से या कह्लोक् कह्लोक् कहकर दुत्कारा जाता है। गवालियरकी तरफ़ कुत्तेको सचेत करनेके लिए दो दोका शब्द कहा जाता है। पिल्लोंको सधानेसे लिए कुरकुरका शब्द कहा जाता है। केवल हाथकी अंगुलियां मिलाकर ही आगे बढ़ाने और पुचकारनेसे कुत्ते खानेकी वस्तुका संकेत समझ लेते हैं। इतने सारे सङ्केतोंसे कुत्ता मनुष्यकी भाषाको समझता है। कुत्तेकी संकेतमयी भाषा का अध्ययन करें तो और भी विस्मय होता है। जैसे, रखवाला कुत्ता, जब किसी परदेशीको घुसता देखता है तो गम्भीरतासे मुख उठाकर देखता है। थोड़ा गुर्राता है। इतने पर भी वह न माने तो तैशमें आकर एकदम भौंकता है।

जिन कुत्तोंको पीछे लगनेकी आदत होती है वह यात्रीको आते हुये खड़े खड़े देखते रहते हैं और ज्योंही यात्री आगे बढ़ता है कि वह पीछे भौंकते हुए लग जाते हैं। एककी भौंक सुनकर महल्लेके और भी कुत्ते आ जुटते हैं।

कुत्ता ऋतु-धर्मके समय स्त्री-संयोगके निमित्त कलहका तो बहुत ही उत्तम नमूना है।

प्रेमी कुत्तोंका परस्पर नाज़ नखरोंसे खेलना उनके कौतूहलमय भावाविष्कारका बहुत उत्तम दृश्य है। इस दृश्यके लिए और ऐसी नर्म लीलाओं के लिए तो मानव समाजके उच्चतम मस्तिष्क भी अपना सर्वस्व अर्पण कर गये हैं। कहाकवि तक उन लीलाओंको देख मोहित हो हो उलझ गये हैं। फलतः जिस केलिको मानव समाज अपने साहित्यका उच्चतम भाग

बनाये बैठा है उसका भावाविष्कार पशुओंमें भी बड़ी उत्तमतासे दृष्टिगोचर होता है।

ऐसे भावाविष्कारोंमें मानव समाजको भी रस मिलता है। वह इस रसमें मत्त हो सम्पूर्ण संसारको तुच्छ समझता है। यही दशा पशुओंमें भी है। फलतः ऐसे भावाविष्कारोंके रस लेनेकी सामर्थ्य कुत्ते में अवश्य माननी पड़ेगी। प्रणय-केलि, प्रणय-कलह, अनुनय, आदि सभी भाव समय समयपर भिन्न भिन्न रूपमें वह प्रकट करते हैं। उनमें भी पिता पुत्रका प्रेम, पिल्लोंमें आपसमें प्रेम, पति पत्नीमें प्रेम, अड़ोसी पड़ोसीका प्रेम बिलकुल स्पष्ट रूपसे देखा गया है।

इसी प्रकार प्रबलके सामने दबना, निर्बलपर आक्रमण, अपनेसे आगे दबे हुएपर दया करना या सूँघकर ही छोड़ देना, प्रबलके सन्मुख पूंछ दबाकर लेट जाना और पिछली टांग उठाकर अपना पेट दिखाना, फलतः अपना सर्वस्व अर्पण कर देना, आदि भाव भी बराबर देखे जाते हैं।

प्रायः देखा होगा कि कुत्ता जब शत्रु कुत्तेपर टूटकर पड़ता है तो गलेको पकड़ कर हिला देता है और खूब काटता है। यह एक विचित्र भाव है। कुत्तेको इस बातका कैसे पता चला कि गलेको काटने से शत्रुसे दुश्मनी निकलती है और गला ही प्राणघातक मर्म है।

इस प्रकार देखनेसे एकसे एक आश्चर्यजनक भाव आपको दीखते जायंगे जिनका उल्लेख करना भी असम्भव है। बस प्रश्न यही है कि क्या यह सब स्वभाव (Instinct) कह कर टाल दिया जाय या बुद्धिपूर्वक क्रिया व्यापार माना जाय।

कपास की किस्में

कपास पर प्रचुर साहित्य प्रकाशित होचुका है। उसीसे "दरिद्रनारायण" ने एक अच्छासा संकलन किया है। वह हम पाठकोंके लाभार्थ यहाँ उद्धृत करते हैं।

हमारे देशमें पैदा होनेवाली कपासोंके अनेक भेद हैं। ये भेद भूमि और जल-वायुके भेदसे होगये हैं। इनके रेशे की लम्बाई मुलायमियत और मजबूतीमें परस्पर बहुत अन्तर है। यहाँ अच्छी कपास रेगर भूमिमें होती है, जो कपासवाली काली मिट्टी कहलाती है। यह गुजरात, काठियावाड़, बरार और मद्रास प्रान्तके कोयम्बटूर और तिनावली के जिलेमें पाई जाती है। इन जिलोंकी रुई अच्छी होती है।

विदेशी नस्लकी बढ़ियासे बढ़िया कपास भी भारतकी जल-वायु और भूमिमें थोड़े वर्षों के पश्चात् घटिया होने लग जाती है। इसलिए इस देशमें यहींकी बढ़िया क़िस्म को चुनकर, अथवा देशी घटिया नस्ल की कपासको देशी बढ़िया नस्लके संयोग (Cross-breeding) से अच्छी जाति उत्पन्न करके प्रचार करना लाभप्रद होगा। पर यह स्मरण रखना चाहिये-कि असावधान रहनेसे प्रत्येक कपासका बीज दिन पर दिन गिरता चला जाता है, चाहे देशी हो या विदेशी। देशी कपास भी जिस स्थानपर अच्छी होती है, प्रायः वैसी ही भूमि और जल वायुकी अनुकूलताके स्थान (आस पास के ज़िलों) में अच्छी और अधिक उपज देगी।

दक्षिणी भारतकी सूरती और कम्बोडिया इत्यादि कपासें उत्तरी भारतमें उतनी सफलता नही देंगी। जितनी जालौनी कपास बुन्देलखण्डमें अच्छी उपज देगी उतनी मुरादाबाद बिजनौरके जिलेमें नहीं। सफ़ेद फूलवाली अलीगढ़, बुलन्दशहर, और मथुराके जिलोंमें अच्छी पैदा होगी और गोरखपूर, बलियाके जिलेमें नहीं।

युक्त प्रान्त और उसके समीपमें पैदा होने योग्य कुछ कपासोंका वर्णन आगे किया जाता है। कातिकमें होने वाली साधारण देशी कपास और वैशाख जेठमें पैदा होने वाली जेठवा या मनवा को सब कोई जानते हैं।

वैज्ञानिक खेती

हलधर में "कृषि की उन्नति" शीर्षक एक लेख प्रकाशित हुआ है। उसने वैज्ञानिक तरीके से

खेती करने से कहाँ तक सफलता मिल सकती है, उसका व्योरा इस प्रकार दिया गया है:—

नाम फसल	मामूली पैदावार (प्रति एकड़)	वैज्ञानिक खेती द्वारा उपज (प्रति एकड़)
१. गन्ना	२५०।३००	८००।१०००
२. गेहूँ	१०।१२	२०।२५
३. धान	१५।२०	२५।३०
४. जव	१५।१६	२५।३०
५. मकई	१५।२०	२५।३०
६. कपास	५।७	८।१०
७. जई	१०।१२	२०।२५
८. जईचारा	१००।१५०	२०।२५
९. ज्वार-चना	१५०।२००	२५०।३००
१०. आलू	२५।३०	१००।१५०

अलीगढ़ की सफेद फूल वाली कपास

देशी कपासमें पीले फूलके साथ कुछ सफेद फूलके पौदे भी होते हैं जिनको चुनकर अलग बोया गया और उनकी कपास ओटनेसे रुईका परता पीले फूलवालीसे अच्छा रहा और साथही उसका तार भी कुछ अच्छा हुआ सफेद फूलवाली कपासका अलीगढ़के फार्मपर अनुभव हुआ है इसलिए यह उपरोक्त नामसे कही जाती है। पीले फूलवाली कपाससे १ मनमें लगभग १३ सेर रुई निकलती है और सफेद फूलवालीसे क़रीब १६ सेर। इसका बीज अलीगढ़ कृषि-फ़ार्मसे मिल सकता है। कहीं कहीं चतुर किसान देशी कपासमें इस किस्म का चुनाव ख़ुद भी करने लग गये हैं।

इसकी खेतीमें सब क्रियाएँ मामूली पीले फूलकी कपासके सदृश्य होती है। इसके लिये दुमट भूमि मिले तो अच्छी है और सम्भव हो तो इसकी बुवाई वैशाख और जेठके महीनोंमें कुएँ, नहर या तालाबसे सिंचाई करके करते हैं, नहीं तो पानी बरसने पर करते हैं। यदि वर्षा ठीक समय पर न हो तो बीच में पानी देते हैं। परन्तु खेतमें नमी रहे, पानी न भरने पावे। जब पौदा छोटा ही हो और जबतक उसपर फूल न लगने लगें उस समय पौदेको नमी अवश्य मिलनी चाहिए। सफेद फूलकी कपासके खेतमें यदि कोई पौदा पीले फूलका दिखाई दे तो उसको उखाड़ देते हैं जिसमें बे मेल कपास न पैदा हो।

कानपुर अमरीकन कपास

यह कपास, कानपुर, इटावा, मैनपुरी, फ़रुखाबाद और फ़तेहपुरके जिलोंमें अधिकतासे होती है। इसके लिए दुमट भूमि या खाद पड़ी हुई रेतीली दुमट भूमि अच्छी होती है। जिस ज़मीनमें देशी कपास सिंचाईके साथ होती है वहीं यह कानपुर-अमरीकन बोई जासकती है। इसकी खेती वहीं लाभ दे सकती है जहाँ बैशाख और जेठमें सिंचाईका प्रबंध नहर, कुआँ या तालाब इत्यादिसे हो सकता है और जहाँ सिंचाईका ठीक प्रबन्ध न होसके वहाँ इसे न बोना चाहिये। वहाँ बोनेके लिये अलीगढ़की सफेद फूल वाली या जालौनी कपास अच्छी होगी। कानपुर-अमरीकन कपासका बिनौला देशी कपासके बिनौलेसे आकारमें बड़ा होता है। किसीका रङ्ग हरापन लिये और किसीका सफ़ेदी लिये होता है। इसके बोनेका समय १५ मईके बाद ही और अधिकसे अधिक १० जून तक समझना चाहिये। वर्षा आरम्भ होनेके पहिले सींचकर बोनेसे पौदे बड़े होजाते हैं और फिर वर्षा कम या अधिक होनेसे इनको इतनी हानि नहीं होती जितनी देशी कपासको होती है। इसका एक कूँड़ दूसरे कूँड़ से लगभग ढाई या तीन फूट दूर होना चाहिए क्योंकि इसका पौदा देशी कपासकी तरह लम्बा और सीधा नहीं होता, किन्तु झाड़दार होता है, इसलिये उसे फैलनेके लिए अधिक जगह की आवश्यकता होती है। इसको छिटकवाँ बोनेकी अपेक्षा कूँड़में ही बोना अच्छा है कूँड़में बोनेसे सिंचाई निकाई और कपासकी चुनाईमें सरलता होती है। एक पक्के बीघे में इसका तीन सेर बीज बोया जाता है। इसको दो तीन बीज हाथसे गढ़ा करके बोते और उनको मिट्टी से ढक देते हैं। जब पौदे हाथ भर के होजाते हैं तब सबसे अच्छे पौदोंको छोड़कर

औरोंको उखाड़कर फेंक देते हैं या उनको उस जगह जमाते हैं जहाँ खेतमें पौदे नहीं जमे होते हैं। देशी कपास अथवा अन्य प्रकारकी कपासके पौदेको उखाड़ कर अलगकर देना चाहिये। ऐसा न करनेसे कपासमें दोगलापन पैदा हो जाता है जिससे प्रायः कपास ख़राब हो जाती है।

इसकी पत्तियाँ चौड़ी, चिकनी और कम फटी हुई होती हैं। फूल सफ़ेद और ज़रा पीला होता है, परन्तु देशी कपासके फूलकी तरह इसके बीजमें लाल धब्बा नहीं होता। इसके टेंटुए चिकने, बड़े और चार या पाँच भाग वाले होते हैं। अच्छे पौदेपर ४०० से ५०० टेंटुए तक लगते हैं। कपास चुननेका समय शुरू भादों या क्वाँरसे पूस तक अर्थात् दिसम्बर या अक्टूबरसे सितम्बर तक है। कपासमें रुई का औसत ३० फ़ीसदी होता है। रुई साफ़, सफ़ेद और अच्छे प्रकारकी होती है। रेशे लम्बे, नरम और चिकने होते हैं। रेशोंकी लम्बाई लगभग एक इंच होती है। रेशे चिकने होनेके कारण पतला सूत कातनेके समय विशेष ध्यान रखना पड़ता है। सूत ५० अंकका साधारणतया कत सकता है। इसकी पैदावार १५ मन से १८ मन तक फ़ी एकड़ होती है।

कानपुर-अमरीकन कपासका पौदा कई वर्ष तक फ़सल दे सकता है, यदि उखाड़ न दिया जावे। सब कपास बिन जानेपर पौदे को खड़ा रहने देते हैं, यदि जनवरीमें महावट न हो तो पानी दिया जाता है और तब निराई-गुड़ाई होती है और मार्च या अप्रैल में फिर एक पानी देते हैं। मई जूनमें फिर फ़सल हो जाती है और वह पहिले से अच्छी होती है।

कानपुर-अमरीकन कपासका रेशा महीन होता है, इसे विलायतवाले बहुत पसन्द करते हैं। उन्हींके सुभीतेके लिये हमारे देशमें बहुतसे कारखाने कानपुर-अमरीकन कपासको ओटकर उसकी रुईकी गाठोंको विदेश भेजा करते हैं। हमें चाहिए कि चर्खा और खद्दरका उद्योग बढ़ा कर यह लाभ देशवासियोंमें विभक्त करें।

जालौनी कपास

इसको अंग्रेज़ीमें जालौन नं० १ कहते हैं। यह देशी कपासकी दूसरी अच्छी क़िस्म है। इसका रेशा कानपुर-अमरीकनके सदृश ही मुलायम तथा चिकना होता है और पैदावार भी अच्छी होती है। यह बुन्देलखण्ड और वहीं सरीखी भूमि और जलवायुके उपयुक्त है। आस पासके ज़िलों में भी खेती अच्छी हो सकती है।

कानपुरके कृषि-फ़ार्म पर देशी कपासोंके संयोग से कुछ अच्छी क़िस्में पैदाकी गई हैं। जिनमें रेशा और पैदावार दोनोंकी तरक़्क़ी करनेकी कोशिश की गई है। उनमें एक किस्म कानपुर न० २२ है और दूसरी किस्म जिसकी जाँच हो रही है कानपुर नं० १०३१ है। इस कपासकी उपजतो साधारणतः देशी की तरह होती है परन्तु उसमें से रुई ४४ सैकड़ा उतरती और रेशा भी अच्छा निकलता है।

(अपूर्ण)

सूरती कपास

यह एक बढ़िया क़िस्म है, इसका रेशा मुलायम मजबूत और लम्बा होता है। यह कपास चिकनी, काली और बलुही तथा रेवटा ज़मीनमें अच्छी होती है। इसके बोने के ६ महीने बाद टेंटुआ लगते हैं और वह कई बार महीनेमें फूलने लगती है। उस समय अगर पानी बरसता रहे तो नुकसान होता है। इस समय उसे धूप की ज़रूरत होती है। इसलिए जहाँ बरसातका मौसम चार महीनेसे ज़्यादा हो वहाँ इस कपास को देर से बोना चाहिए। इसके रेशे करीब १ इंच लम्बे होते हैं। पाखाने की खाद देनेसे इसका रेशा और पैदावार अच्छी होती है।

कपास के वृक्ष

हमारे देशमें कुछ वृक्ष कपास की जातियाँ हैं, अर्थात् इन कपासों का पौदा वृक्ष की तरह होता है और बराबर कपास दिया करता है। जिन स्थानोंमें किन्हीं कारणोंसे कपास की खेती करनी कठिन

होती है वहाँ चरखा चलानेके लिए वृक्षके कुछ पौदे घरके क़रीब या हातेमें लगानेसे बहुत उपयोगी होंगे। इस प्रान्तमें वृक्षकपास को कदाचित 'नरमा' नाम से भी पुकारते हैं।

देव कपास

यह एक प्रकार की वृक्षकपास होती है। बङ्गाल में इसे 'जेठाकपास' कहते हैं और कदाचित नन्दन-बनकपास भी इसीका नाम है। कहीं कहीं इसे 'मनवा' भी कहते हैं। यह कपास प्राय महाराष्ट्र और करनाटकके घर घरमें पाई जाती है और वह मद्रास और बङ्गालमें भी होती है। संयुक्तप्रांतमें पहले इसका अच्छा प्रचार था और अब भी कहीं कहीं बोई गई। है और वहाँ यह खूब उगी और फूली फली है। इसे खेतोंकी मेंढ़पर और फुलवाड़ी या बागों में लगाते हैं। इसको खेतोंमें बड़े पैमानेपर बोनेका चलन अभी नहीं हुआ है। इसे प्रायः चाहे जैसी ज़मीनमें बोया जा सकता है। जहाँ कपासकी सालाना खेती नहीं हो सकती, वहाँ भी यह बोई जासकती है। इसे लगानेमें बहुत दिक्कत भी नहीं होती। इसके बीज काले और परस्पर चिपके हुए होते हैं परन्तु सरलतासे अलग हो जाते हैं। इनमें रुई उगी हुई नहीं होती बल्कि इनके आस पास लिपटी हुई होती है। इसके बीज एक एक करके बोये जाते हैं।

इसे प्रत्येक ऋतुमें बो सकते हैं और केवल सर्दी के दिनोंमें खाद अधिक डालना चाहिए, जिससे बीजको गरमी मिले और वह ज़ोर करके जल्दी उगे। बीज बोनेमें अन्तर ७ या ८ फ़ुटका होना चाहिये। इसका पौदा अण्डीके पौदेके समान बड़ा और झाड़दार होता है और उसकी ऊँचाई ८ से १० फ़ुट तक होती है। इसकी पत्तियाँ गहरे और चमकीले रंगकी होती हैं।

इसका पौदा एक बरसका होने पर बारहों मास फूला करता है और तीसरे सालसे अच्छी तरहसे फूलने लगता है। ५-२० वर्ष तक फूलता रहता है। इसके टेंढुये तीन पंखवाले होते हैं और जब रेशे फूटते हैं तो कपास इनमें सुरक्षित रक्खी रहती है, लटकती नहीं।

देवकपासके ४-५ पेड़ोंसे एक परिवारके लिए काफ़ी रुई मिलती है। इसकी कपासमें प्रति-शत २५ भाग रुई होती है। यह रुई साफ़ सुन्दर, सफ़ेद मुलायम, महीन और धूल तथा कूड़ा से रहित होती है। इसके अच्छे तन्तु एक इञ्च से सवा इञ्च तकके होते हैं। एक पेड़से ७ रतल तक कपास निकलती है। इसकी रुईसे ६० ७० अंक तकका सूत अच्छी सफ़ाईवाला होता है और चर्खे पर ८० से .०० अङ्क तकका सूत कत सकता है।

इसमें कुछ और विशेषतायें भी हैं। देवकपासको ओटनेकी ज़रूरत नहीं है। ताँतसे धुनकनेसे यह ख़राबी हो जाती है अतः इसे हाथ से धुन लेते हैं। इस प्रकार ओटने और धुनकनेमें जो ख़राबी हो जाती है उससेभी बचाव रहता है। कुछ लोग इसे बिना बिनौला अलग किये ही कातते हैं और रुई कत जानेपर बिनौला हाथमें रह जाते हैं। परन्तु इस प्रकार कातनेसे सूत अच्छा और बराबर नहीं कतता। महीन, एकसा और जल्द कातनेके लिए कपाससे रुईको अलग निकाल कर कातना चाहिये। देवकपासको सींचनेसे पौदा अधिक फूलता फलता है और उसकी कपास महीन, हलकी और लम्बे तन्तुवाली हो जाती है।

हीरामणि कपास (रक्त-लाल-कपास)

इसकी उपज पश्चिमी भारतमें पूना, सूरत आदि में अधिक होती है, इसका बिनौले देशी बिनौलेके आकारका और रङ्गमें हरा होता है। इसे प्रत्येक ऋतु में बो सकते हैं, केवल सर्दी के दिनोंमें खाद अधिक डालना चाहिये जिससे बीजको गरमी मिलेगी और वह ज़ोर करके जल्दी उगेगा। लगभग सभी प्रकारकी वृक्षकपासोंके लिये यह बात कही जा सकती है। एक पेड़ से दूसरे पेड़ का अन्तर रहना चाहिये क्योंकि इसका पौदा झाड़दार होता है और १०, १२ फ़ुटसे १५, १६ फ़ुक तक ऊँचा जाता है। इसके फूल लाल रेशमकी तरहके होते हैं। फूल की डंडी छोटी, लाल

और सिरेपर पीली झाँईवाली होती है। इसके फूलोंसे रङ्गका भी काम लिया जाता है। इसका पेड़ पहिले वर्षसे ही फूलने फलने लगता है और यह पाँच वर्ष और कभी-कभी इससे भी अधिक समय तक बराबर फूलता फलता रहता है। इसके टेंटुए लम्बे, गोल और सिरे पर नोकदार ३ या ४ हिस्से वाले होते हैं। इसकी कपास में रुई लगभग २५ फी सदी होती है। यद्यपि रुई की औसत कम है परन्तु हीरा-मणि का पेड़ धीरे धीरे अधिक समय तक रुई देकर इस कमीको पूरा कर देता है। इसकी रुई उजली और चमकीली होती है। बिनौलोंसे झट अलग नहीं होती, रेशे मज़बूत, पतले, मुलायम और पौन इंच से एक इंच तक लम्बे होते हैं जिनसे ४० अङ्क तकका सूत आसानी से काता जा सकता है।

रबर

[ले० श्री महाबीर प्रसाद बी. एस-सी., एल. टी.]

पाठशालेके छोटे छोटे लड़कोंसे लेकर बूढ़े तक रबरके नामसे अवश्य परिचित होंगे। पेंसिल वा स्याहीसे लिखे हुएको मिटाने, बाइसिकिल, मोटरकार घोड़ागाड़ीके पहियोंमें लगाने, गेंदको उछलनेके योग्य बनाने बरसाती पानीसे बचने; मोज़ोंको कसा रखनेके लिये रबरका प्रयोग किसी न किसी रूपमें बहुतसे लोग करने लग गये हैं। वैज्ञानिक प्रयोगशालाओंमें भी रबरका महत्व बढ़ा हुआ है। इसलिए रबरका जीवन चरित प्रत्येक व्यक्तिको जानना उचित और आवश्यक समझना चाहिये।

रबर कहां मिलता है

रबर कई प्रकारके वृक्षोंके दूधसे बनाया जाता है। यह दूध वायुमें रहनेसे जमकर लचीला हो जाता है। इसके वृक्ष भारतवर्ष, अफ्रीका और दक्षिणी अमेरिका में पाये जाते हैं। कोई कोई वृक्ष ३० से ५० फुटतक ऊंचे होते हैं और कोई लताकी जातिके होते हैं। लताकी जातिके अफ्रीकाके कुछ भागोंमें पाये जाते हैं। आसाम, जावा, पैनांग और रंगूनमें जो रबर बनता है वह भारतीय रबर-वृक्षसे निकलता है। दक्षिणी अमेरिकामें रबर ऐसे पौधोंसे निकलता है जो रेंड़की जातिके होते हैं।

कैसे निकाला जाता है

सूखी ऋतुके आरम्भमें मनुष्य उन जङ्गलोंमें जाते हैं जिनमें रबरके पेड़ खड़े होते हैं और जिन वृक्षोंका दूध रबर देनेके योग्य समझा जाता है उनके चारों ओर मिट्टीके पक्के प्याले रख देते हैं। यह प्याले एक ओर चपटे होते हैं ऐसे १५ प्यालों-का रस मिलाकर एक बोतलके बराबर होता है। मनुष्य दाहिने हाथमें कुल्हाड़ी लेकर जितनी ऊँचाईतक पहुँच सकता है गहरा और ऊपरकी ओर ढालू होता हुआ एक खत तनेमें लगाता है। इससे छाल कट जाती है और लकड़ीमें भी एक इंचके लगभग गहरा क्षत हो जाता है। इसकी चौड़ाई भी एक इञ्च होती है।

खत लगा चुकनेपर वह एक प्याला लेता है और गीली मिट्टी लगाकर उसको तनेमें खतके नीचे चिपका देता है। इसी प्यालेमें स्वच्छ दूधकी नाईं रस भरने लगता है।

चार पांच इञ्चकी दूरीपर और उसी ऊँचाईपर दूसरा खत लगाया जाता है। और उसके नीचे प्याला चिपका दिया जाता है इस प्रकार उसी ऊँचाईपर प्यालोंकी एक पंक्ति लगादी जाती है। यह ऊँचाई पृथ्वीसे ६ फुटके लगभग होती है। एक पेड़से दूसरे पेड़ और दूसरेसे तीसरे पेड़में इसी प्रकार खत लगाकर प्याले चिपका दिये जाते हैं। इन खतोंसे तीन चार घंटे तक दूध बहा करता है। यह निश्चित नहीं रहता कि किस खतसे कितना दूध निकलेगा। हां यदि पेड़ बड़ा हो और पहले बहुत खत न लगाये गये हों तो बहुतसे प्याले आधे भर जाते हैं। और कुछ पूरे भर जाते हैं।

दूसरे दिन फिर खत किये जाते हैं। पहिली खतोंकी पांतिसे दूसरे दिन खतोंकी पांति सात आठ इञ्च नीचे होती है। इस प्रकार प्रतिदिन नये खतोंकी पांति सात आठ इञ्च नीचे होते होते पृथ्वी तक पहुँच जाती है तब खतका लगाना बन्द कर देते हैं। जो रस इन प्यालोंमें इकट्ठा होता है वह बड़े बर्त्तन में उडेल लिया जाता है जिसको बटोरनेवाला अपने हाथमें लिये रहता है।

दूध को बाहर कैसे भेजते हैं

दूधको एकत्र करके ढाल देते हैं। सांचा लकड़ीकी बड़ी करछीकी तरह होता है। यह चपटा होता है जिसमें रबर तहकी तह इस प्रकार जमाया जाता है:—एक तङ्ग मुँहवाले बर्तनमें जिसका पेंदा खुला रहता है लकड़ीकी आग बनाते हैं और सांचेपर चिकनी मिट्टी रगड़ देते हैं जिससे दूध चिपकने नहीं पाता। तब उसको धूएंमें गरम करते हैं। कर्म्मचारी एक हाथमें सांचेको थामता है और दूसरे हाथसे दो वा तीन प्यालोंका दूध उसपर उंडेल देता है। तुरन्त ही वह सांचेको आगके बर्तनके मुँहपर रखकर शीघ्रताके साथ घुमाता है जिसमें धुआं चारों ओर बराबर लगे। सांचेके दूसरी ओर भी ऐसा ही किया जाता है। धुआं लगनेपर दूध कुछ कुछ पीला और ठोस हो जाता है। जब एक तहपर दूसरी तह और इसी तरह कई तह जमा चुकते हैं तब एक तख़्तेपर ठोस होनेकेलिए रख देते हैं। ठोस होने पर सांचेके किनारोंपर तराश देते हैं और सांचेको निकाल लेते हैं। इस प्रकार चार पांच इञ्च मोटी तह हो जाती है अच्छी तरह सूखनेपर यह बाज़ार भेज दिया जाता है। ऐसी दशामें सब तह साफ़ साफ़ दिखायी पड़ती हैं।

साँचेको खुरचनेसे जो कुछ मिलता है और प्यालोंमें जो कुछ जम जाता है वह भी इकट्ठा करके बाज़ार भेज दिया जाता है। इसको नीची श्रेणीका रबर कहते हैं।

शुद्ध कैसे किया जाता है

जङ्गलोंमें जमाकर जो रबर बाज़ार भेजा जाता है उसमें मिट्टी, बालू, पत्तियां इत्यादि मिली रहती हैं, इसलिए बिना शुद्ध किये यह कामका नहीं होता। इसलिए कई घंटे तक इसको पानीमें उबालते हैं। आगमें इसको नहीं गलाते क्योंकि यह आग पकड़ लेता है। पानीमें उबालनेसे रबर नरम पड़ जाता है। जो भाग नीचे बैठ जाता है उसको अलग कर देते हैं क्योंकि इसमें बालू मिट्टी इत्यादि मिली होती हैं और जो उतराया रहता है उसमें पत्ती और खर मिले रहते हैं। तब इसको मशीनके द्वारा धोते हैं। इसके पश्चात् रबरको ऐसे कमरोंमें सुखाते हैं जिनका तापक्रम ९०० फ़० भापके नलों द्वारा रक्खा जाता है। सूर्य्यकी किरणें नहीं पड़ने पातीं। इन किरणोंसे बचानेकेलिए खिड़कियां पीली वा सफ़ेद रङ्ग दी जाती हैं। सूखनेपर रबरको बटोरकर रख देते हैं। धुले हुए रबरको मसलनेवाली मशीनमें रक्खा जाता है। बेलनोंको घुमानेसे रबर उनके बीचमें दबकर छोटे छोटे छिद्रोंमेंसे होकर निकलता है। मसल चुकनेपर रबर उस मशीनमें रक्खा जाता है जहां सांचेमें थक्का बांधा जाता है। इन थक्कोंको खूब दबाकर ठंडी जगहमें रखते हैं जिसका तापक्रम बर्फ़से बहुत नीचा रक्खा जाता है। इससे थक्के कड़े पड़ जाते हैं और तब सांचे निकाल दिये जाते हैं। यह थक्के बर्फ़मेंसे तभी निकाले जाते हैं जब इनका काम पड़ता है। कुछ थक्के वर्गाकार और कुछ बेलनाकार होते हैं।

जब रबरके चद्दरोंकी आवश्यकता होती है तब यह थक्के भिन्न भिन्न मोटाईके काटे जाते हैं। काटते समय रबरको ठंडे पानीसे लगातार भिगोते रहते हैं। काट चुकनेपर चद्दरोंको सूखनेके लिए लटका देते हैं।

इन्हीं चद्दरोंसे रबरके फ़ीते काटे जाते हैं। यह फ़ीते कुछ देर तक तानकर फैलाये जाते हैं और इस समय इनको ठंडा भी रखते हैं। गरम पानीमें रखनेसे यह अपने आकार को और दृढ़ हो जाते हैं। यह रीति कई बार करनेसे फ़ीतेकी दृढ़ता ५ वा ६ गुनी बढ़ाई जा सकती है। यदि फ़ीते बहुत पतले हों

तो उनको रबरका सूत कहते हैं जो लचीले कपड़ोंमें प्रयोग किया जाता है।

रबरसे कौन कौन काम निकलते हैं

पेन्सिलके लिखे हुए अक्षर रबरसे मिट जाते हैं। इसीसे इसका नाम अंग्रेज़ीमें रबर पड़ा जिसका अर्थ है घिसनेवाला। यह कहा जा चुका है कि रुई, ऊनी, और रेशमी मोज़ों और दस्तानोंको लचीला करनेके लिए इसके डोरे प्रयोग किये जाते हैं। रबरमें गंधक मिला दिया जाय तो नाम vulcanized rubber पड़ जाता है जिससे स्याहीके अक्षरोंको मिटाने वाले, लचीली पट्टियां, किवाड़ोंकी कमानी, गैस लेजाने वाली नलियां, गेंद इत्यादि बनते हैं। अलकतरासे मिलाकर कंघे, घड़ीके ज़ंजीर, कलम और बहुतसी और चीज़ें बनती हैं। जिससे यह सब बनती हैं उसको वल्कनाइट कहते हैं जो आबनूस की लकड़ीके रङ्गका होता है परन्तु वास्तवमें वह रबर और अलकतरा के योगसे बनता है।

रबरको घोलकर लाख मिला देनेसे गोंदकी नाईं जोड़नेका भी काम लिया जाता है जिसको नाव बनानेवाले बहुधा प्रयोग करते हैं। नफ़्थामें घोलकर ऊनी कपड़ोंपर फैला देनेसे ऊनी कपड़ोंमें पानी नहीं सोखता। ऐसे ही कपड़े बरसाती कपड़े कहे जाते हैं क्योंकि बरसातका पानी ऊपर ही ऊपर बह जाता है। विद्युत समाचार पहुँचानेवाले तार भी इसमें लपेटे जाते हैं जिससे बिजली इधर उधर नहीं बहने पाती।

रबरके रासायनिक गुण—यह गरम वा ठंडे पानीमें नहीं घुलता परन्तु ताड़पीन और नफ़्थामें घुल जाता है। यह आग पकड़ लेता है जिसकी लौ श्वेत होती है। धूआं बहुत देता है और गंध बड़ी तीव्र होती है।

भौतिक गुण—इसका लचीलापन हल्की गरमी पहुँचानेसे बढ़ जाता है। गरम गरम यदि ताना जाय और तनावके रहते हुए ठंडा किया जाय तो लचीलापन चला जाता है और रबर तना ही रह जाता है। गरम करनेपर फिर चलने लगता है। इसी गुणके कारण यह लचीले कपड़ों, गेंद और गैसकी नलियोंके बनानेमें प्रयोग किया जाता है।

गरम पानीमें वा आगके सामने रखनेसे यह मुलायम पड़ जाता है। २५० फ० पर पिघलने लगता है। ताज़े कटे हुए किनारे तनिकसी गरमी और दबावसे जुड़ जाते हैं।

विषय-सूची

१—वैज्ञानिक पारिभाषिक शब्द

[Hindi Scientific Terminology]

प्रथम भाग

इसमें शरीर-विज्ञान, वनस्पति-शास्त्र, भौतिक-विज्ञान, और रसायन-शास्त्र (भौतिक, कार्बनिक और अकार्बनिक) के पारिभाषिक शब्दोंका संग्रह है।

—सम्पादक—सत्यप्रकाश, एम० एस-सी०, मूल्य ॥)

२—बीज ज्यामिति

[Conic Section]

ले० सत्यप्रकाश, एम० एस-सी०

सरलरेखा, वृत्त, परवलय, दीर्घवृत्त और अतिपरवलय का विवरण। मूल्य १॥)

३—प्रकाश रसायन (Photochemistry)

ले० श्री वा० वि० भागवत

रसायन के सम्पूर्ण रासायनिक अंगों का उपयोगी वर्णन। मूल्य १॥)

विज्ञानंब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० । ३।५ ॥

भाग ३७ } सिंह, संवत् १९९० { संख्या ५

मंगलाचरण

हीरा ताँबा सीस खनिज विरचे[1] जिसके बल,
निरमाये[2] नव बीज लता तरु तने फूल फल,
ऊँची अच्छी जाति जन्तुओं की जनमायी[3],
आगामी-आदर्श-मनुज-रचना[4] सिखलायी,
बरबंक रामजी, मयसुअन, जिसकी विमल विभूति[5] है,
जय जिसकी विश्वामित्र[6] सम अनुपम-पुरुष प्रसूति है।

—रामदास गौड़

१—फ्रांस में (Moissan) मयसुअन के वैद्युत भट्टों के प्रचण्ड ताप में लोहे के गर्भ से कोयले के रूपान्तर द्वारा कृत्रिम हीरे का जन्म हुआ। प्रकृति में भी हीरे की जन्म कथा ऐसी ही है। इंग्लैंड के (Ram say) रामजीने रेडियमके रूपान्तरसे तांबा और सीसे की उत्पत्तिकरायी। प्राकृतिक उत्पत्ति भी ऐसी ही है।

२—अमेरिका के (Burbank) बरबंक ने अनेक नये पेड़ फल फूल बनाये हैं, जो अब तक प्रकृति में न थे।

३—जन्तुओं की नयी और उत्तम जातियों का भी इसी प्रकार निर्माण हो रहा है।

४—मनुष्यों की आदर्श जाति की उत्पत्ति की रीतियों पर नवीन विज्ञान (Eugenics) सुप्रसूति विज्ञान का अनुशीलन हो रहा है।

५—यद्यद्विभूतिमत्सत्वं श्रीमदूर्जितमेववा

तत्तदेवावगच्छत्वं मम तेजोंऽश संभवम्। (गीता)

६—प्रसिद्ध ऋषि विश्वामित्र की यह कथा सभी जानते हैं कि उन्होंने नारियल, अरहर, मसूर आदि अनेक वनस्पतियों की सृष्टि की और एक नये संसार की सृष्टि करने को तय्यार थे।

ऐंस्टैनका सापेक्षवाद

(ले० रामदास गौड़)

आजकल विज्ञान संसारमें ऐंस्टैनके सापेक्ष-वादने क्रांन्ति मचा दी है। गणित संसारके न्यूटनके बाद ऐंस्टैनने ही विज्ञान जगत् में क्रान्ति उपस्थित करनेवाली धारणा को जन्म दिया है। भारतके वेदान्त शास्त्रके लिए तो सापेक्षवाद मूलतः कोई नयी और मौलिक बात नहीं है। अद्वैतवेदान्त तो देश कालवस्तुको एकही बतलाता है। "सर्व खल्विदं ब्रह्म" यह अखिल सृष्टि समस्त दृश्य जगत् ब्रह्म ही है। ऐसा माननेवालेके लिए ऐंस्टैन का अद्वैतवाद अनोखा नहीं लगेगा।

इस नयी धारणाको अच्छी तरह समझनेके लिए हमें वैज्ञानिक दृष्टिसे विचार करना पड़ता है। विज्ञान अब तक जो बातें जिस तरह मानता आया है हमारे मानस पटल पर उनकी ऐसी दृढ़ छाप पड़ गयी है कि हमारे निकट वह सर्वथा मिथ्या भी ठहर जायँ तो भी अपने हृदयसे उन विचारोंको हम सर्वथा दूर नहीं कर सकते। करें भी तो उनका अमिट प्रभाव हमें बहुधा भ्रान्त कर देता है और हम ठीक ठीक रीति पर नये सिद्धान्तको ग्रहण नहीं कर सकते। सापेक्षवाद अत्यन्त गहन है, तो भी हम उसे सीधे सादे शब्दोंमें अपने पाठकों को समझानेकी कोशिश करेंगे।

जो लोग समुद्रके किनारे रहते हैं वह ज्वार भाठे की तमाशा बराबर देखा करते हैं। यह बड़े अचरज की बात मालूम होती है कि चन्द्रमा जो हमसे दो लाख ३८ हज़ार मील दूर है और सूरज जो नौ करोड़ से भी ज्यादा मील दूर है हमारी धरती पर ऐसा खिंचाव पैदा करें कि समुद्र में लहरें उठने लगें और धरती दोनों ध्रुवों पर चिपटी हो जाय और बीच में उसकी तोंद निकलती आवे। परन्तु यह बात आज विज्ञानसे सिद्ध मानी जाती है और पहले पहल न्यूटन ने गुरुत्वाकर्षणके सिद्धान्तके साथ साथ ज्वारभाटाके विषय को भी प्रमाणित किया था।

हम धरतीके उस भाग पर यदि विचार करें जिसपर प्रशान्त महासागर का विस्तार है और मानलें कि यही भाग चन्द्रमाके सम्मुख पड़ रहा है तो हम सहज में समझ सकते हैं कि जल के ढीले और चञ्चल कणों पर चन्द्रमा का खिंचाव ऐसा पड़ सकता है कि जल को चबूतरों और टीलों की तरह ऊँचा उठा दे। खिंचाव तो सारी धरती पर पड़ता है परन्तु ठोस भाग पर खिंचाव का वह प्रभाव नहीं पड़ सकता जो ढीले और स्वतन्त्र जल पर पड़ सकता है। वैज्ञानिकों को तो यह भी अनु-मान करने का हेतु है कि धरतीके ठोस चिघड़ में भी ज्वार-भाटा के तरह की एक गति होती है। परन्तु जल भी सर्वत्र फैला और मिला हुआ है। इसलिये प्रशान्त महासागरके दूसरी ओर इसी तरह का जल का टीला बन जायगा। और यदि पृथ्वी का सारा ऊपरी तल जल की तरह तरल होता तो पृथ्वीके दैनिक चक्करके साथ साथ जगद्व्यापी जलके दोनों टीले या उभार चौबीस घंटे में जगत का चक्कर लगाया करते। यह भी सहज में सोचा जा सकता है कि इस प्रकार धरती के किसी भी भागमें समुद्रके जल का दो बार ऊँचे होना अथवा नित्य दो टीलों का होना जरूरी है। ज्वार-भाटेके गुरुत्वाकर्षण वाले सिद्धान्तका यह मोटेसे मोटा रूप है। परन्तु वास्तव में जो बातें देखी जाती हैं वह बहुत जटिल हैं और यह समस्या इतनी सीधी नहीं है जितनी यहाँ समझायी गयी है। समुद्रतटका रहनेवाला यह भी प्रायः जानता है कि ऊंची लहरें ठीक उसी समय नहीं उठतीं जिस समय चन्द्रमा मध्याकाश या याम्योत्तर रेखा से गुजरता है। उनके उठने का समय कई घण्टे पहले या पीछे हुआ करता है। परन्तु ज्यौतिषी लोग हिसाब लगाकर बहुत पहले से ऊँची लहरों के उठने का ठीक ठीक समय बता दिया करते हैं। यद्यपि यहाँ वह हिसाब तो नहीं दिया जा सकता और

पूरे सिद्धान्त की व्याख्या नहीं की जा सकती तो भी इतना सहज में समझा जा सकता है कि अकेले चन्द्रमा ही नहीं खींच रहा है सूरज भी खींचता है। यद्यपि सूर्य्यका पिण्ड चन्द्रमा के पिण्ड से दो करोड़ साठ लाख गुना बड़ा है और इसी लिये उसका खिंचाव अधिक होना चाहिये तथापि वह चन्द्रमासे ३८६ गुना अधिक दूरी पर है। इसी लिये उसका खिंचाव पिंड की इतनी बड़ाई होते हुए भी कम पड़ जाता है और चन्द्रमा का खिंचाव अधिक पास होने के कारण उसके दूने से अधिक बल का होता है। इसी लिये जब सूर्य्य और चन्द्रमा दोनो मिलकर खींचते हैं तो सबसे ऊंची लहरें उठती हैं। उसे पूर्ण ज्वार-भाटा कहते हैं। और जब एक दूसरे के विरुद्ध खींचते हैं तब छोटी लहरें उठती हैं और उसे लघु ज्वार-भाटा कहते हैं। इनके सिवा कई और कारण भी हो जाते हैं जिनसे विविध स्थानों में विविध प्रकार की लहरें उठती हैं।

हम पहले खण्ड में यह दिखा चुके हैं कि धरती की रचना के आरम्भिक युग में यह पिण्ड अत्यन्त वेगसे चक्कर लगा रहा था। चक्कर इतना तेज़ था कि दो तीन घण्टे में दिन और रात दोनो हो जाते थे। उस समय इतने वेगसे चलने के कारण इस पृथ्वीके अनेक टुकड़ों का टूट कर उड़ना स्वाभाविक है। चन्द्रमा उन्हीं मेंसे एक बहुत बड़ा टुकड़ा है जो पहले पहल पृथ्वीसे बिल्कुल रगड़ खाते हुये घूम रहा था। फिर धीरे धीरे दूर होता गया और उसका चक्कर भी धीमा होता गया। धरती का भी चक्कर तबसे बराबर धीमा होता आ रहा है। अब चौबीस घटे का अहोरात्र है। चन्द्रमा का भी चक्कर ऐसा धीमा हो गया है कि वह प्रायः २९ दिनों में धरती की परिक्रमा पूरी करता है। पृथ्वी के धीमे होने में चन्द्रमा का खिंचाव और उससे उठने वाली लहरें भी कारण हैं। यह लहरें पृथ्वीके चक्कर मारनेमें रुकावट डालती हैं और उसकी गति धीमी करती रहती हैं। पृथ्वी को चन्द्रमा और सूर्य्यके खिचाव के विरुद्ध इन लहरों को घसीटते हुए चक्कर लगाना पड़ता है जिससे चक्कर का वेग कुछ न कुछ घटता जाता है। दो चार हज़ार वर्षों में तो इसका पता नहीं लगता परन्तु करोड़ों बरसों में तो इस अत्यन्त थोड़े थोड़े घटाव का बहुत बड़ा प्रभाव पड़ जाता है।

(२) सापेक्षवाद का सूत्रपात

गुरुत्वाकर्षण का सिद्धान्त पाश्चात्य देशमें न्यूटन-के समयसे माना जाता है और भारतवर्षमें उसके कई सौ वर्ष पूर्वसे अबतक ज्यौतिष शास्त्र की जटिलसे जटिल गुत्थियोंको इसी सिद्धान्तसे सुलझाया गया है। परन्तु जर्मनीके प्रसिद्ध गणिता-चार्य्य आलबर्ट ऐंस्टैनने अपने नये सिद्धान्तोंसे विज्ञानकी एकदम काया पलट कर दी है। उनकी यह धारणा है कि गुरुत्वाकर्षण कोई शक्ति या बल या सामर्थ्य नहीं है। यह केवल देशका एक गुण या स्वभाव है। उनकी यह भी धारणा है कि प्रकाश भारवान वस्तु है और उसके परमाणु या कण विशेष मात्राओंमें नापे या तोले जा सकते हैं। और उनकी यह भी धारणा है कि प्रकाशकी लहरोंकी गति जाननेके लिए जो आकाशतत्त्व मान लिया गया है उसकी कोई आवश्यकता नहीं है। उन्होंने कालको एक चौथी दिशा या चौथा परिमाण माना है और गणित विज्ञानसे अपनी इन धारणाओंके द्वारा प्रायः सभी नियमोंको स्थापित कर दिया है और अनेक त्रुटियोंको भी सुधार दिया है। यह सारे क्रांतिकारी विचार ऐंस्टैनके सापेक्ष वादके नामसे प्रसिद्ध हो गये हैं और इनसे वैज्ञानिक संसारमें बड़ा उथल-पुथल मच गया है।

एक सफ़ेद काग़ज़के तख्ते पर एक फुट सीधी लम्बी लकीर एक सेकेंडमें एक पेंसिलसे हम खींचते हैं। हम समझते हैं कि यह बिल्कुल सीधी है और हमने इसे एक सेकेंडमें सादे काग़ज़ पर खींचा है। परन्तु मान लो कि सूर्य्यके पिण्डमें रहनेवाला कोई प्राणी हमारी इस क्रियाको देख सकता है। उसने

क्या देखा ? कि हाथमें पकड़ी हुई पेंसल केवल एक फुट नहीं दौड़ी बल्कि पृथ्वीके धुरे वाले चक्करके साथ एक बहुत लम्बी परन्तु झुकी हुई लकीर बना गयी। बात इतनी ही नहीं हुई। धरती जो सूरजके चारों ओर चक्कर लगा रही है उसके साथ साथ पेंसिल लिये हाथ घूम गया है। और जहाँ केवल एक फुट लम्बी सीधी लकीर हम देखते हैं वहां सूर्य्यके पिंड वाले पुरुषके देखनेमें अन्तरिक्ष देशमें चालीस मील वक्र या झुकी हुई लकीर दिखायी पड़ती है। अब जो कुछ उसने देखा वह ठीक है या जो हमने देखा वह ठीक है ? ठीक दोनों ही हैं। हम बिलकुल पाससे देखते हैं और धरतीके साथ दोनों तरह का चक्कर लगाते हुए देखते हैं। परन्तु सूरजके पिंडवाला दर्शक धरतीके चक्करोंके बाहरसे और नौ करोड़ मीलसे भी अधिक दूरीसे देखता है। दोनों अपने हिसाबसे ठीक देखते हैं और दोनो की दृष्टि अपनी अपनी परिस्थितिसे सापेक्ष है। गति और दिशा सदा देखनेवालेकी स्थितिपर निर्भर हैं। किसी वस्तुको हम चलती हुई इसीलिए समझते हैं कि वह किसी दूसरी वस्तुसे अधिक पास या दूर होती जाती है। अगर दूसरी वस्तु न हो तो पहली वस्तुको चल या अचल कुछ भी नहीं कह सकते। इसलिए गतिका विचार सापेक्ष है। कभी कभी दो रेलगाड़ियां एक ही दिशामें चलती हैं और हम तेज़ गाड़ीमें बैठे होते हैं तो देखते हैं कि दूसरी गाड़ी मन्द गतिसे पीछेकी ओर जा रही है। परन्तु बाहरवाला यही देखता है कि एक गाड़ी दूसरेके साथ चली जा रही है। देखना दोनों का ठीक है और दोनों का विचार अपनी स्थितिमें सापेक्ष है। इस तरह गति और दिशा देखनेवालेकेलिए सापेक्ष हैं।

हम रेलगाड़ीमें बैठे हुए हैं और सारी खिड़कियां बन्द हैं, गाड़ी बहुत तेज़ चली जा रही है मगर रास्ता सीधा है और वेग समान है, गाड़ी हिल नहीं रही है। ऐसी दशामें यह पता नहीं लगता कि गाड़ी चल रही है या नहीं। जबतक गाड़ीके बाहरकी किसी चीज़से हम मिलान न करें तबतक न गतिका पता लग सकता है न दिशाका। खिड़की खोल दी और दूसरी गाड़ी गुज़रती हुई देख पड़ती है तो यह कहना मुश्किल होता है कि वस्तुतः हमारी गाड़ी चल रही है या दूसरी अथवा कौन सी गाड़ी खड़ी है या कौन हमारे साथ या हमारे विपरीत दिशामें दौड़ रही है। सापेक्षवाद देखनेवालेके स्थितिके अनुसार विचार करनेकी विधि है। हमने यह छोटे छोटे उदारहण विचारके ढंगको दिखानेकेलिए दिये हैं। वस्तुतः ऐंस्टैनके विचार बड़े गम्भीर और दुरूह हैं।

भारतीय वेदान्तवालोंके निकट देश, काल, और वस्तुका विचार नया नहीं है। इन्हींपर ऐंस्टैनने भी विचार किया है। उनका कहना है कि देशकी कल्पना भी सापेक्ष है। देशमें अगर कोई वस्तु न रह जाय तो नितान्त शून्य देश हमारे विचारमें आ नहीं सकता। देशमें वस्तुओंकी कल्पना ही हमें देशका मान कराती है। अगर हमारा सारा दृश्य जगत् दब कर नारंगी सा छोटा हो जाय तो उसके भीतर की सारी चीजें उसी अनुपातसे छोटी हो जायँगी। फल यह होगा कि सूर्य्यकी दूरी तब भी हमसे ९½ करोड़ मील ही रहेगी। इसलिये बड़ाई, छोटाई या परिमाण भी सापेक्ष है।

अगर कभी कोई घटना न हो तो समय कहाँ रह जाय ? उसकापता कैसे लगे ? जिस तरह गज़ और हाथसे हम दूरी नापते हैं उसी तरह घड़ीकी सुईकी चालसे हम समय नापते हैं। वस्तुतः देश क्या है कितना है या काल क्या है कितना है, इसका पता हमको नहीं है। यह सोच लेना कि दो घटनाओंके बीचमें जितना समय या जितनी दूरी लगती है सदा बराबर ही होती है भारी भूल है। हर देखनेवाला अपनी तरहपर विचार करता है। हर एकका अन्दाज़ा अलग अलग होता है। समयके लिये हम नपना क्या बनाते हैं ? वह तो किसी वस्तुकी एक विन्दुसे दूसरे विन्दुतक गति मात्र है, चाहे वह वस्तु एक सुई है या एक ग्रह। परन्तु यह गति और ग्रह तो सच मुच कोई वस्तु नहीं हैं बल्कि देखने वालेकी सापेक्ष दृष्टि मात्र हैं। यदि किसी अज्ञात शक्तिके

सहारे इस दृश्य जगत् की सारी घटनाएँ एक हज़ार गुना अधिक धीमी हो जायं तो क्या होगा ? घड़ियां जितनी देर में पांच हज़ार मिनट की दूरी तय करती हैं उतनी देरमें पांच मिनटकी दूरी तय करेंगी। जितनी देरमें हम एक हज़ार बार सांस लेते हैं उतनी देरमें एक बार सांस लेंगे। दिन, रात, महीने, ऋतु, पौधों का अंकुर निकलना और बढ़ना, जीव-जन्तुओं की सारी क्रियाऐं, जीवन-मरण, सब कुछ एक हज़ार गुना ज्यादा सुस्त हो जायगा। हमारा जीवन एक हज़ार गुना अधिक लम्बा हो जायगा। यह सब होते हुए भी किसीको रत्ती भर यह पता न लगेगा कि समयमें कुछ हेर फेर हुआ है। ऐंस्टैनने यह प्रमाणित कर दिया है कि देश और काल सब सापेक्ष हैं और असलमें यह गुण मात्र हैं जिनका हम वस्तुओंपर आरोप करते हैं। ऐंस्टैन यह भी कहता है कि किसी पदार्थकी लम्बाई, चौड़ाई और मोटाई और देखनेमें वह जितने देशमें अमाया हुआ है वह सब उस पदार्थके वेगपर निर्भर है। किसी वस्तुका रूप और उसकी बड़ाई छोटाई उसकी गतिकी दिशापर और वेगपर निर्भर है। यह सब बातें एक सापेक्षवादपर निर्भर हैं।

(३) गुरुत्वाकर्षण पर नया विचार

ऐंस्टैनका विचार है कि गुरुत्वाकर्षण कोई शक्ति या बल नहीं है। यह केवल देशका एक गुण है। इसे समझनेकेलिये कल्पना कीजिये कि आकाशके किसी सुदूर अन्तरिक्ष देशमें किसी स्वतन्त्र तारेकी तरह आपका कमरा अकेला निश्चल शून्य देशमें स्थित है। उसके भीतर आप बैठे हुए हैं तो वहाँ आपके शरीरमें कोई भी भार नहीं हो सकता, आपके पांव नीचे धरती को नहीं दबावेंगे और अगर आप एक गेंद छतकी ओर फेंकें तो वह छतमें जाकर रुक जायगा और वहीं रह जायगा। एक भारी चीज़ कमानीवाले कांटेपर लगा दीजिये तो भी कमानी नहीं खींचेगी क्योंकि खींचनेकेलिये उसमें बोझ नहीं है। अब यह मान लीजिये कि आपका कमरा उस देशमें ठीक वैसे ही बढ़ते हुए वेग से चलने लगा जिस बढ़ते-हुए वेगसे धरतीपर कोई चीज़ गिरती है। अब क्या होगा ? उस कमरेका फ़र्श आपके पांवोंको ऊपरकी तरफ़ दबाने लगेगा। कोई ऐसा प्रयोग नहीं है जिसे आप करके यह जान सकें कि आपका कमरा निरन्तर बढ़ते हुए वेगसे दौड़ रहा है या स्थिर है और सब चीजोंको अपनी ओर खींच रहा है। उसे तो यही ख़याल होगा कि कमरे में आकर्षण शक्ति है। परन्तु उसकी यह भारी भूल हो सकती है। इस प्रकार के सापेक्ष विचारसे इसमें तो सन्देह नहीं रह जाता कि गुरुत्व-कर्षणके समझनेकी और भी विधियाँ हो सकती हैं।

न्यूटनने पेड़से सेब गिरते देखा तो समझा कि धरती उसे खींचती है। ऐंस्टैन कहता है कि सेब इसलिये गिरता है कि देश स्वयं ही वक्र हो जाता है। एक बहुत थोड़े नतोदर दर्पणमें कहीं सीधी रेखाऐं नहीं होतीं और यदि उसपर कोई चीज़ चलायी जाय तो वक्र रेखाओंमें ही चलेगी। एक नतोदर कमरेके ठीक बीचों बीच एक तकिया पड़ा हुआ है उस कमरेमें भीतके पास जिसी ओर गोली फेंको वह लौटकर तकिये के पास आ जाती है। देखनेमें ऐसा मालूम होगाकि तकिया हर तरफ़से गोलीको खींच लाता है। परन्तु असल बात यह है कि कमरेका फ़र्श कुछ नतोदर है जैसे एक चिलमची। इसीसे गोली तकियेके पास चली आती है। वास्तव में तकियासे इससे कोई सम्बन्ध नहीं है। इसी तरह देश वक्र है और इसीलिये जितनी चीज़ें देशके भीतर चलती हैं सबकी ही वक्र गति है। यहां तक कि प्रकाश भी वक्र गतिसे चलता है। इस भौतिक संसारमें जो कुछ हमारे जाननेमें आता है देश, काल और वस्तुसे मिलकर बना हुआ है। यह तीनों एक ही सत्ताके तीन पहलू हैं। वस्तु मात्र देश कालके भीतर चल रही है, भरसक सीधी ही रेखामें चलती है, परन्तु वक्रताको क्या करे। देश और कालमें एक साथ ही स्थिति परिवर्तन मात्र गति है। जितनी ही अधिक वस्तु

की सत्ता होती है उतनी ही अधिक वक्रता देशमें आती है। गुरुत्वाकर्षण देश कालके भीतर वस्तु सत्ताके होनेसे वक्रताके बढ़ जानेका ही नाम है। पृथ्वी सूर्य्यके चारों ओर दीर्घवृत्त मार्गमें घूमती है, इसीलिये नहीं कि सूर्य उसे इस प्रकार खींच रहा है बल्कि इसलिये कि सूर्य्यके महापिण्ड के होनेसे देश कालमें वक्रता बढ़ गयी है। इसीलिये देशके भीतर गति करते हुए भूपिण्डकेलिए चलनेका सबसे निकटका और सीधा मार्ग दीर्घवृत्ताकार है। इसलिये गुरुत्वाकर्षणके सिद्धान्तकी कोई आवश्यकता नहीं है। असल बात यह है कि वस्तुकी अधिकतासे देशकी वक्रता बढ़ जाती है। सूर्य्यके ठीक पीछे रहनेवाले तारेका प्रकाश उसके पाससे झुककर हमारी आंखोंतक ठीक उसी प्रकार पहुँचेगा जैसे कि रेलगाड़ी कभी कभी घूम कर आया करती है। यह बात पूर्ण ग्रहणके समय आँखोंसे देखी जा सकती है और फोटो ली जा सकती है। इस तरह तारा अपनी सच्ची जगहसे हटा हुआ जान पड़ेगा। लगभग बारह तेरह बरसके हुए ग्रहणके समयमें ठीक यही बात देखी गयी और ऐंस्टैनने पहलेसे हिसाब निकाल कर तारेकी जो स्थिति बतायी थी वह भविष्यवार बिल्कुल ठीक निकला।

निष्कर्ष यह निकला कि गुरुत्वाकर्षण देशका एक गुण या धर्म्म है और वस्तुकी कोई शक्ति नहीं है।

(४) वक्रताकी समस्या

प्राचीन उकलैदस के रेखागणितका यह सिद्धान्त है कि जिस रेखाके एक अन्तिम बिन्दुकी सीधमें दूसरे अंतिम बिन्दुको इस तरहपर रख सकें कि पहले बिन्दुके पीछे दूसरा इस तरहपर छिप जाय कि सारी रेखा अदृश्य होकर एक बिन्दु ही दिखाई पड़े तो वह रेखा सीधी रेखा होगी। यह परिभाषा स्पष्ट ही इस बातपर अवलम्बित है कि प्रकाश की किरणें सीधी ही रेखामें चलती हैं। परन्तु अभी हम देख चुके हैं कि प्रकाशका भी सीधी रेखामें होना आवश्यक नहीं है। इसलिये जिसे रेखा गणितमें सीधी रेखा कहते हैं वह शुद्ध कल्पना है क्योंकि जब देशका एक गुण ही वक्रता है तो सीधी रेखा हो ही नहीं सकती। यह विषय बहुत कठिन है परन्तु हम कोशिश करेंगे कि पाठकोंको भरसक कुछ समझमें आ जाय।

हम वस्तुओंके तीन परिमाण जानते हैं और उसीके भीतर हमारा जीवन है। यह तीन परिमाण हैं लम्बाई, चौड़ाई और मोटाई। जितनी वस्तुएं हैं सबमें यह तीन बातें जरूर पायी जाती हैं। परन्तु थोड़ी देरकेलिए मान लो कि कुछ ऐसे प्राणी हैं जिनके शरीरमें लम्बाई और चौड़ाई तो है परन्तु मोटाई नहीं है। उन्हें मोटाईकी खबर भी नहीं है। उनकी दुनियां में लम्बाई और चौड़ाई यही दो चीजें हो सकती हैं। न तो वह ऊंचाई या गहराईका पता रखते हैं और न वह एक रेखाको लांघ कर दूसरी रेखातक पहुँच सकते हैं, क्योंकि लांघने में ऊँचाईका पता होना जरूरी है। वह सीधे चल सकते हैं। परन्तु जहाँ उन्हें रेखा मिलेगी वहाँ उनकी गति रुक जायगी। वह अवश्य ही सीधी रेखाके सिवा कुछ नहीं जानते। वह समानान्तर रेखा खींच सकते हैं और अवश्य ही उनके निकट दो बिन्दुओंके बीचमें सबसे छोटी रेखा ऋजु रेखा ही होगी और ऐसी रेखा इन्हीं दो बिन्दुओंके बीचमें एक ही हो सकती है। अब ऐसे ही किसी प्राणी को ठीक चपटे तलसे उठाकर एक गोले पर रख दो। इस गोलेपर अब वह प्राणी सीधी रेखामें रेंगेगा और सीधे बराबर चलेगा तो जहाँसे पहले चला था वहीं लौट आवेगा। कागजके चपटे तलपर उसकी रेखा अनन्त होती है और वह कभी जहाँसे चला था वहां लौट नहीं सकता। उसकी समझमें गोलेपर की रेखायें भी बिल्कुल सीधी ही होंगी। परन्तु वह ऐसी समानान्तर कई सीधी रेखायें बना सकेगा जो दो ही बिन्दुओं के बीचमें होंगी और जो सबसे छोटी

* उकलैदस के अरबी संस्करण का अनुवाद जयपुर के सम्राट जगन्नाथ ने संस्कृत में चौदह अध्यायों में किया है। उसमें ऋजुरेखाकी यही परिभाषा दी गयी है।

रेखाएं समझी जाँयगी। आज-कलके रेखा गणितमें यह परिभाषा दी हुई है कि दो विन्दुओंके बीचमें सबसे कम दूरी ऋजु रेखाकी होती है और इस प्रकारकी रेखा एक ही हो सकती है। परन्तु इस प्राणी को यह पता चलेगा कि दो विन्दुओंके बीचमें सबसे कम दूरी रखने वाली अनन्त रेखाएं हो सकती हैं और उसके निकट सबकी सब रेखायें बिल्कुल सीधी होंगी। चिपटे तलपर केवल दो ऋजु रेखाओंसे देश का कोई भाग बन्द नहीं हो सकता था। परन्तु गोलेके ऊपर उस प्राणीको यह प्रतीत होगा कि दो रेखाओंसे देशका एक भाग बिल्कुल घिर जाता है। अब हम उन्हीं प्राणियोंकी स्थितिमें रख कर अपनेको देखें तो हमको जान पड़ेगा कि धरतीकी अक्षांश और देशान्तर रेखायें वस्तुतः वक्र होते हुए भी हमारे लिये क्यों सीधी हैं और सीधी रेखा अगर अनन्त देशतक बराबर बढ़ायी जाय तो क्यों अपने पहले बिन्दुपर आकर मिल जायगी। यदि वह कल्पित प्राणी रेखा गणित ठीक ठीक जानते हैं तो ज़रूर यह कहेंगे कि हमारा देश अवश्य ही वक्र है और वक्रताके कारण यह सब बातें होती हैं। साथ ही वह इस वक्रताको ठीक ठीक नाप भी लेंगे। ऐंस्टैनका कहना हैकि देशके सम्बन्धमें हमारे ठीक विचार भी इसी तरहके होंगे। इस देशमें वक्रता प्रधान गुण है इसी कारण पदार्थ मात्र वक्र या गोलाकार होकर निरन्तर वक्र ही गति करता रहता है। वक्र गति होनेसे गति का मार्ग अनन्त नहीं है, सान्त है। हम निरन्तर सीधमें एक ही ओर चले जायँ तो जहाँसे चले थे वहीं फिर पहुँच जायँगे। पृथ्वी आदि ग्रह, चन्द्रमा आदि उपग्रह, नक्षत्र तारे आदि सभी पिण्ड अपने अपने सान्त देशमें निरन्तर चक्कर लगाते रहते हैं, इनमेंसे किसीका देश अनन्त नहीं है। परन्तु प्रत्येक की गति सान्त देशमें होते हुए भी देश स्वयम् सीमा रहित है और अनन्त है। यह वक्र ठीक गोलाकार नहीं है अंडाकार होनेकी इसमें अधिक प्रवृत्ति देख पड़ती है। एक तारेसे प्रकाशकी किरण चलती है तो सारे विश्वमें घूमकर फिर उसी तारेतक पहुँच जाती है। यदि हम सीधे न चल कर इधर उधर भटककर चलते रहें कि देशकी सीमाका पता लग सके तो हम निराश होंगे कि कहीं उसका अन्त न मिलेगा। परन्तु यदि हम सीधे किसी दिशाको चलते जाँय तो फिर अन्तमें वहीं पहुँच जायँगे जहाँसे चले थे। इस तरह देश तो अनन्त है परन्तु वह अण्डाकार है या वक्र है। इसीलिए हमारा या किसी पिण्डका मार्ग अनन्त नहीं हो सकता।

(५) सापेक्षवाद और देश, काल, वस्तुकी एकता

मान लो कि कोई देवदूत जो शुद्ध बुद्धि रखनेवालाकिसी दूसरी सृष्टिका प्राणी है, एकाएकी इस जगतमें आ गया और एक बाग़में होशमें आकर उसने आँखें खोलीं। उसे इस सृष्टिका बिल्कुल पता नहीं है। वह आँख खोलते ही देखता है कि कुछ दूरीपर एक सुन्दर गुलाबका फूल है जिसपर एक भौंरा बैठा हुआ है। देखनेमें उसे भौंरा, फूल और पेड़ एक ही जान पड़ता है। उसे मालूम नहीं कि भौंरा और फूल अलग अलग चीजें हैं, यह अपनेको फूलसे दूर फूल को वहाँ और अपने को यहां पाता है। थोड़ी देर बाद भौंरा जब उसपरसे उड़ता है और देव-दूतके अंगपर बैठ कर काटता है तो उस समय देवदूतको यह पता लगता है कि पहले फूल और भौंरा एक चीजें थीं अब दो हो गईं। इस तरह यहां, वहांसे देश और तब और अबसे काल का विचार पैदा हुआ। परन्तु देवदूतने देखा कि भौंरा वही है जो फूलपर बैठा हुआ था। इसलिये उसे यह पता चला कि भौंरा ऐसी वस्तु है जो देश और काल दोनोंमें बराबर रहता है। अर्थात् देशके भिन्न अंगोंमें और कालके भिन्न भिन्न अंशोंमें मौजूद रहता है। इस प्रकार देवदूतने देखी तो एक ही घटना, एक ही बात अर्थात् वस्तुका बराबर बना रहना,—'वस्तुकी सत्ता, और इसी वस्तुकी सत्ता को उसने तीन नाम दिये वस्तु, उसका देशमें होना—उसका कालमें होना। उसने जिसके तीन विभाग किये वह वास्तवमें एक ही

है। इस एकका विस्तार चार दिशाओंमें है। लम्बाई, चौड़ाई, और मोटाई। यह तीन दिशाऐं तो देशकी हैं और चौथी दिशा सत्ता अर्थात् बराबर बना रहना यह कालकी दिशा है। देशकी तीन दिशाओंका तो हमको इसलिये अनुभव है कि हम देशकी तीनों दिशाओंमें रहते और चलते फिरते हैं परन्तु कालकी एकही दिशाका ज्ञान इसलिये है कि जन्म मरण तक हमारी चेतना कालकी एक ही दिशामें निरन्तर चलती रहती है। जिस तरह दो ही दिशाओंका ज्ञान रखने वाला प्राणी, जिसका उदाहरण हमने पिछले प्रकरणमें दिया है, ऊँचाई या गहराई या निचाईकी कल्पना नहीं करसकता उसी तरह कालकी और दिशाओंकी कल्पना हम नहीं करसकते। देश और काल वस्तुकी सत्ताके दो पहलू हैं जो उससे कभी अलग नहीं हो सकते। जो घटना होती है वह किसी देश और कालके भीतर ही होती है।

परन्तु सबसे बड़ी महत्वकी बात जो ऐंस्टैनने खोज निकाली वह यह है कि हरदो अनुभव करने वालेकेलिये, यदि दोनों अनुभव करने वालोंकी स्थिति भिन्न भिन्न है, दो घटनाओंमें जो देश और कालका अन्तर लगता है वह एक ही नहीं होता। मानलो कि दौड़की बाजीका निर्णय करने वाले दो तरहके हैं। एक तो फीतेके पास खड़े हैं और दूसरे विमानमें घण्टा पीछे सौ मीलके हिसाबसे आकाशमें उड़ रहे हैं। दोनोंकी घड़ियां बिल्कुल ठीक मिली हुई हैं। विमान-वालोंके पास बड़ी अच्छी दूरबीनें हैं। एक आदमी दौड़कर फीतेके पास पहुँच जाता है। उस जगह खड़े निर्णायक एक स्वरसे कहते हैं कि सौ गजकी दौड़ ग्यारह सेकेंडमें हुई परन्तु विमानपर बैठे हुए निर्णायक दोनोमें से एकमें भी सहमत नहीं हो सकते। यह मत-भेद निश्चित है और ठीक ठीक विभागपर अवलम्बित है। यद्यपि साधारणतया यही मालूम होता है कि खड़े और उड़तेहुए निर्णायकोंके देश और कालकी नापमें अन्तर नहीं पड़सकता। असल बाततो यह है कि जितना कुछ कि वास्तविक संसार है वह हर देखने वालेकी दृष्टिसे देश, कालके मिल जाने से एक विशेष ढंगपर अनुभूत होता है। देश, काल इस तरहपर परस्पर मिले हुये हैं कि हम विभेद नहीं करसकते। परन्तु अपने सुभीतेके लिये अपनी अपनी दृष्टिसे देश, कालका अन्तर निकाल लिया करते हैं। परन्तु यह आवश्यक नहीं है कि हर आदमी सदा एकही तरहसे देश और कालका भेद किया करे। जिस तरह एक ही घटनाके सम्बन्धमें दो व्यक्तियोंकी दो भिन्न रायें हुआ करती हैं उसी तरहसे देश और कालके सम्बन्धमें आदमी, आदमीमें अनुभवका भेद हो सकता है। हमने जो दौड़की बाजी वाला उदाहरण लिया है उसमें दोनों प्रकारके निर्णायकोंमें तभी मतभेद हो सकता है। जब उनके देखने और नापनेके यन्त्र असाधारण रीतिसे परम विशुद्ध हों। वास्तविक बात यह है कि इस भूतलके ऊपर जितना वेग हम उत्पन्नकर सकते हैं उससे देश कालके नापमें ऐसा अन्तर नहीं पड़ सकता जिसका हमारे सूक्ष्मसे सूक्ष्म यंत्रोंको पता लग सके। देश और कालके नापमें अन्तर पड़नेकेलिए हमें हजारों मील प्रति सेकेंडका वेग चाहिये। पृथ्वी सूर्य्यके चारों ओर घन्टेमें ६७००० मील चलती है। यदि विमानवाले निर्णायकोंकी गति भी इसी वेगपर होती तो स्थलपर खड़े निर्णायकोंकी घड़ी $\frac{१}{२३००}$ सेकेंड सुस्त होती और एक फुट रूल इंचका केवल पौने दो करोड़वां अँश कम जान पड़ता। परन्तु यदि इससे भी अधिक वेगसे विमान् चल सकते, मानलो कि एक सेकंडमें १६१००० मील चले तो घड़ी बारह घण्टे सुस्त हो जायगी और फुट रूलर ६ इंचका लगेगा। और यदि एकलाख बियासी हजार मील प्रति सेकड चले तो घड़ी तो बिल्कुल बन्द दीखेगी और फुट रूल लापता हो जायगा। यह प्रकाशका वेग है। इससे अधिक वेगकी कल्पना असम्भव समझी जाती है। देश और कालकी अलग अलग सत्तातो कल्पना मात्र है। परन्तु दोनोंको एकमें मिली हुई दशामें जाननेको तो तय्यार हैं। चाहे जो हो विविध विधियोंसे अलगानेमें मतभेद हो सकता है

परन्तु एकमें समझनेमें मतभेद नहीं है।

ऐंस्टैन का सापेक्षवाद केवल दार्शनिक कल्पना नहीं है। वह वैज्ञानिक प्रयोगों पर अवलम्बित है और गणितद्वारा सिद्ध किया गया है। रेलगाड़ी अगर ठहरी हुई है और एक चिड़या उसकी लम्बाई भर एक सिरेसे दूसरेतक उड़ जाती है तो एक निश्चित समय लगाती है। यदि गाड़ी चल रही हो और चिड़ियाकी ओर आती हो तो बहुत कम समय लगेगा। यदि चिड़यासे गाड़ी दूर भाग रही हो तो चिड़ियाको ज्यादा समय लगेगा। माइकेलसन और मार्लेने इसी तरह प्रकाशके वेगके सम्बन्धमें किया। परन्तु वेग समान ही पाया। यह रहस्य समझमें नहीं आया। परन्तु ऐंस्टैनके सापेक्षवादसे इसकी पूरी व्याख्या मिलजाती है। हम गाड़ीसे ही उड़नेकी दूरी और समय नाप रहे हैं परन्तु देश और कालकी नाप हमारी गतिके अनुसार बदलती रहती है और ठीक उतना ही बदलती है जिससे कि लेखेकी कमी वेशी ठीक उतनी ही पूरी हो जाती है। और हर हालतमें प्रकाश-का वेग नापनेसे एक ही ठहरता है। गाड़ी चाहे कितनीही तेज़ जा रही हो। गाड़ीकी तेजी जो अधिकसे अधिक हो सकती है वह प्रकाशके वेगके सामने नगण्य है।

सापेक्षवाद और भी विचित्र बात बताता है। पदार्थका कोई पिण्ड जितना ही अधिक वेगसे चलेगा उतना ही उसका भार बढ़ेगा। साधारण वेगोंपर यह बात नहीं मालूम होती। पृथ्वीकी गति अर्थात् ६७ हज़ार मील प्रति घण्टा वेगपर आध सेरमें केवल २० करोड़वां अंश बढ़ेगा। परन्तु प्रति सेकेंड १६१००० मीलके वेगपर आधसेर की चीज़ सेर भर की हो जायगी और प्रकाशके वेग परतो उसके वज़नका कोई ठिकाना ही नहीं है। इसीसे जान पड़ता है कि प्रकाशका वेग अन्तिम है। ऋणोद किरणें और रश्मिमसे निकलनेवाले कुछ कण लगभग आकाशके वेगसे मिलते जुलते वेग रखते हैं। इनके भारमें जो वृद्धि होती है वह निकाली जा-सकती है जिससे कि सापेक्षवादका समर्थन होता है।

ऐंस्टैनने सापेक्षवादका वर्णन पहले पहल १९६९ वि० में किया था। तबसे अब तककी अवधिमें सापेक्षवाद-की कड़ीसे कड़ी जांच हुई और वह ठीक उतरा। सूर्य्यके सबसे निकट वर्त्ती ग्रह बुधकी गतिमें जो विशेषताएं थीं न्यूटनके गुरुत्वाकर्षणके सिद्धान्तसे उनकी व्याख्या नहीं होसकती थी। ऐंस्टैनने यह कहा कि जहां वस्तुकी जितनी ही अधिकता होती है वहां देशमें उतनी ही अधिक मरोड़ या वक्रता आ जाती है। इसीसे बुधमें भी गतिकी अधिक मरोड़ या वक्रता है। जिसका हिसाब ठीक ठीक मिल जाता है। प्रकाशकी वक्रताके सम्बन्धमें जो सूर्य्यके पाससे चलनेमें हो जाती है हम पहले कह चुके हैं।

सापेक्षवादसे यह सिद्ध होता है कि विश्वमें कोई परमसत्ता है जिसके विषयमें कुछ कहा नहीं जा सकता अर्थात् जो मन और वाणीसे परे है। इसी परमसत्ताके किसी एक विशेष रूपको मनने गोचर कर लिया है जिसको वह वस्तु कहता है और जिसकी सत्ताकेलिए वह देश और काल रूपी दो विभाग बना लेता है। वह परमसत्ता अत्यधिक है और मनबुद्धि और वाणीके अगोचर है।

"पादोऽस्य विश्वाभूतानि त्रियांदस्यामृतन्दिवि"

इतिश्रुतिः।

कमल-पैबंदकी आवश्यकता

[ले० पंडित शंकरराव जोशी, एल्० ए० जी०]

'कलम' यह शब्द फारसी भाषाका है। हिन्दीमें यह शब्द लेखनीकेलिए व्यवहृत किया जाता है। उद्यान-विद्याका व्यावहारिक-ज्ञान रखनेवाले व्यक्ति इस शब्दके असली अर्थसे भले प्रकार परिचित हैं। भारतमें देहाती लोग, पौधेके किसी अवयवको, बीज छोड़कर, जड़ें उगाकर नवीन पौधे तैयार करनेकी क्रियाको 'कलम लगाना' कहते हैं। अँगरेजी शब्द

'ग्राफ्ट' में सभी प्रकारके 'कलम पैबंद' का समावेश हो जाता है, जिनके द्वारा कुशल माली पौधोंकी संख्या वृद्धि करता है। बीज बोकर पौधे तैयार करने की क्रियाका इसमें समावेश नहीं होता है। अतएव ग्राफ्टकी वैज्ञानिक व्याख्या होगी, बीजके अलावा अन्य साधनोंसे वनस्पतिका वँश-विस्तार करना।

दो सजातीय वनस्पतियोंके गुणोंका एकी करण एक ही वनस्पतिमें करके, उनकी वृद्धि करनेकेलिए ही पैबंद-चश्मा बिठानेका आसरा लिया जाता है जिन दो गुण धर्म वाली वनस्पतियोंका एकीकरण किया जाता है उनका एक ही वर्ग और जातिका होना अनिवार्य्य है। दो भिन्न जातीय वनस्पतियोंका पैबंद बाँधनेमें भी सफलता मिली है। किन्तु इस ओर बहुत कम प्रयत्न किए गए हैं। अतएव यह निश्चित रूपसे नहीं कहा जा सकता कि किन किन विजातीय वनस्पतियोंके पैबंद चढ़ाए जा सकते हैं। संभव है, वनस्पति संसारका वर्गीकरण ही गलत हो, और जिन भिन्न जातीय वनस्पतियोंके पैबंद बाँधनेमें सफलता हुई है, वे सजातीय ही हों।

प्राणि-संसारमें पुरुष जननेंद्रियधारी और स्त्री-जननेंद्रिय-धारी व्यक्तियोंके शरीर अलग अलग होते हैं। यह बात वनस्पति संसारमें नहीं पाई जाती है। अतएव वनस्पति संसारमें वँश-वृद्धि बिलकुल जुदे तरीकेसे होती है। वनस्पतिके बीज या किसी अवयव को बोकर या दो पौधोंके अवयवोंको संयुक्त करके, नए पौधे तैयार किए जाते हैं।

सर्वसाधारण नियम यह है कि सभी जीवधारियों में—क्या प्राणी और क्या वनस्पतिमें, सन्तति उसी जातिकी होती है, जिस जातिका बीज बोया जाता है, उसके गुण, धर्म और स्वभाव भी जाति के अनुरूप ही होते हैं। मक्काका बीज बोने पर सन्तान भी मक्काका पौधा ही होता है और फलभी मक्काके ही लगते हैं। बबूलके बीजसे आम या इमलीका पौधा कभी पैदा नहीं होता है। मतलब यह कि जिस पौधेका बीज बोया जाता है, उसकी सन्तान भी वैसा ही होती है। तथापि कुछ पौधे ऐसे भी हैं, जिनके बीजसे पैदा होने वाले पौधोंका गुण, धर्म, और स्वभाव, जिस पौधेका बीज बोया गया है, उसके गुण, धर्म और स्वभावसे कुछ या बिलकुल ही भिन्न होता है। गुलाबाँस और पपीता इसके उदाहरण हैं। चार पाँच सालतक भिन्न-भिन्न रंगके फूलवाले गुला बाँसको पास पास बोते रहने पर, यदि इनके बीज जमा करके बोये जायंगे तो फूलोंका रंग बदला हुआ नजर आवेगा—फूलोंपर भिन्न भिन्न रंगके छींटे दिखलाई देंगे एकही फलके बीजोंको बोकर तैयार किए हुए पपीतेके पौधोंमें, नरमादा और उभयलिङ्गी पौधे पाएजाते हैं। कलमी आमके बीजको बोकर तैयार किए हुए पौधेके फल का स्वाद, आकार आदि जुदेही प्रकारका होता है। इस परसे यह साबित होता है कि बीजसे पैदा होने वाले पौधेमें मातृ-पौधेके सभी गुण पूर्ण-रूपसे नहीं उतरते हैं। अतएव किसी पौधेके गुण-धर्म और स्वभावको सन्ततिमें लानेकेलिए कलम-पैबंद द्वारा नये पौधे तैयार करना ही एकमात्र उपाय है।

बीज बोकर तैयार किए हुए कई पौधे बहुत दिनों में फूलते फलते हैं। आमका पौधा करीब सात आठ सालमें फलता है। सोन चम्पेको करीब तीन सालमें फूल आते हैं और गुलाब करीब दोसाल बाद फूलने लगता है। यदि कलम-पैबंद द्वारा रोपे तैयार किए जायं तो पौधोंकी फूलने फलनेकी अवलधि बहुत घटजाती है। यह एक अनुभव सिद्ध बात है।

तगर, केला, जामफल आदि कई ऐसे पौधे हैं, जिनको भारतके कई प्रान्तोंमें बीज ही नहीं आते हैं ऐसे पौधोंके वँश-विस्तारका एक मात्र साधन कलम पैबंद द्वारा पौधे तैयार करना ही है।

बड़, पीपल, बिगोनिया आदि कई ऐसे पौधे हैं, जिनके बीजोंसे रोपे तैयार करनेकेलिए विशेष कुशलता की आवश्यकता होती है। हर आदमी बीज बोकर इन पौधोंके रोपे नहीं तैयारकर सकता है। कलम पैबंद द्वारा इन पौधोंके रोपे आसानीसे तैयार किए जासकते हैं।

भारत में जंगली बेर और देशी आमके पौधे

बहुतायतसे पाये जाते हैं। यदि इनपर उत्तम जाति के पौधोंका पैवंद या चश्मा चढ़ादिया जाय, तो उत्तम और सुमधुर फल मिल सकते हैं।

कई पौधे बहुत ही नाजुक होते हैं। इन नाजुक पौधोंको मजबूत जड़ वाले पौधेपर—पैबंदसे चढ़ा-दिया जाय, तो बहुत लाभ हो सकता है। कलम-पैबंद (Grafting and Budding)द्वारा तैयारकी हुई सन्ततिमें नीचे लिखी हुई विशेषताएं होती हैं—

१—सन्ततिमें विशेष गुणोंका परिपोष किया जासकता है।

२—पौधेकी जातिके गुण, धर्म और स्वभाव में—काष्ट, पत्ते, फूल, फल आदिमें परिवर्तन किया जा सकता है।

३—पौधेकी फूलने फलनेकी शक्ति बढ़ाई जा सकती है।

४—बगीचे बारहों महीने फूल-फलसे भरे रखे जा सकते हैं।

५—एक ही पौधेपर भिन्नभिन्न प्रकारके फूल-फल लगाये जासकते हैं।

इस धंधे और कलामें सफलता प्राप्त करना, बुद्धि, श्रम अनुभव, और सतत उद्योगपर अवल-म्बित है। इसके लिए—तरु-जीवन की पूरी पूरी जानकारी होना अत्यन्त आवश्यक है। हमारी रायमें, एक सफल मालीके लिए वनस्पति-शास्त्रका समुचित ज्ञान प्राप्त करना अनिवार्य्य है।

फलोंकी रक्षा और व्यवसाय

[ले० श्री बृजबिहारीलाल गौड़]

आर्थिक दृष्टिसे फल व्यवसायका महत्त्व बहुत बड़ा है। पर अफसोस कि हमारे देशवासियोंका ध्यान ही इस विषयकी ओर नहीं जा रहा है। पुराने लगाये हुये बगीचों द्वारा जोफल सालमें प्राप्त हो जाता है उसीको बेंच खाकर हम सन्तुष्ट रहते हैं, न तो उससे अधिक पैदावार बढ़ानेका ही प्रबंध करते और न तो रक्षाका ही। यह हमारी व्यवसायबुद्धि-हीनता नहीं तो क्या है? कोई भी ऐसा फल नहीं है जोकि हमारे देशमें न पैदा होता हो। माना कि हम सब प्रकारके फलोंकी खेती नहीं कर सकते पर जिसकी कर सकते हैं उसकी ओर भी तो ध्यान नहीं देते। यदि अंगूर, अंजीर, सेब और अखरोटकी खेती करना कष्ट और असाध्य है तो आम, नीबू, कटहल, जामुन और नारंगीकी खेती तो आसानीसे कर सकते हैं। पर करे कौन? दस रुपयेकी नौकरीके लिये चारवर्षतक अवैतनिक उम्मेदवारी करना आसान है किन्तु, दस दरख्त लगाकर चार पैसा पैदा करना अत्यन्त कठिन। हमारे देशमें आम एक ऐसा फल है जो संसारके बहुतसे देशोंमें नहीं पाया जाता, तौभी हमने आजतक इस अवसरसे कोई लाभ नहीं उठाया और न तो निकट भविष्यमें उठाने की उमीद ही है। यह इसीलिये कि हम फलोंकी रक्षा करना नहीं जानते। इस कलामें विदेशी बड़े पटु हैं। फल ही क्या, मछली, मांस, दूध, शाक भाजी मटर और कितने ही अन्यान्य पदार्थ ऐसे हैं जिनका रोजगार विदेश बड़े कौशलसे करता है। वैज्ञानिक ढंगोंसे उन्हें वायु-शून्य बरतनोंमें भर भरकर गैर मुलकोंको भेजा करता है। वह चीजें सालोंतक नहीं बिगड़तीं। हम स्वयं नित्य ही ऐसी चीजोंका उपयोग किया करते हैं पर कभी उनकी रक्षा-विधिपर ध्यान तक नहीं दिया कि कुछ लाभ उठावें। यदि हम इस कलामें सिद्धहस्त होते तो आमके ही व्यवसाय द्वारा कितना धन कमा लेते। परहो कैसे हमतो रुपयोंकी कौड़ियां बनाना जानते हैं। कौड़ियोंसे रुपया बनाना तो विदेशियोंकाही काम है।

अमेरिका वालोंने इस विषयमें कमाल करदिखाया है। एक ही फलकी कई क़िस्में पैदा करना और उन्हें वैज्ञानिकरीतिसे वर्षोंतक सुरक्षित रखना उनके बायें हाथका खेल है। इस कामकेलिये वहाँ एक, दो नहीं, हजारों कारखानें हैं जिन्हें (Cannery) कहते हैं और जिसमें लाखों मनुष्य रोजाना काम करते हैं।

व्यवसायकी दृष्टिसे भारतकेलिय यह बड़ा सुंदर काम है। आम एक ऐसा फल है जिसकी चाह हमारे ही देशमें नहीं बल्कि अब विदेशोंमें भी होने लगी है। यदि इस ओर ध्यान न दिया गया तो वह दिन दूर नहीं है जबकि बिदेशी आमोंकी चालान देशमें आने लगेगी और उसके बदलेमें करोड़ों रुपया देशसे बाहर जाने लगेगा।

फल पकनेके बाद स्वाभाविक रीतिपर वह दोचार दिनसे अधिक नहीं टिक सकता। क्योंकि किराव या खमीर (Ferment) पैदा करने वाले कीड़े फलोंके भीतर प्रवेशकर उन्हें पचा डालते हैं। इसलिये फल शीघ्र ही सड़कर नष्ट हो जाता है। यदि इन कीटाणुओंको नष्ट करके फलोंको वायु शून्य बरतनमें रखदें तो वह नष्ट न हों और उनका स्वाद, गंध, रंग आकृति प्रायः ताजा फलके माफिक ही रहे। रक्षाके उपयुक्त वही फल होते हैं जो ज्यादा कच्चे, ज्यादा पके, दाग लगे, और पचे हुये न हों। फलोंमें जब रंगत आने लगे, तभी उन्हें तोड़कर काममें लाया जाय। फल रक्षाकी उपयुक्त विधि पर श्रीयुक्त कृष्णगोपाल माथुरने एक बड़ा सुंदर लेख आजसे लगभग १५ वर्ष पहले विज्ञानमें ही प्रकाशित कराया था। पर, कहते दुःख होता है कि हमारे देश-वासियोंने अबतक उससे कुछ लाभ न उठाया। उस लेखका आशय यह है कि—'पहले फलोंका छिलका अलग करना चाहिये, फिर उनको साफ और ठंडे पानीमें अच्छी तरहसे धोना चाहिये। फल यदि बड़ा हो तो उसके दो भाग करके भीतरकी गुठली निकाल डालना चाहिये क्योंकि फलको सिझाते वक्त गुठलीमें-से एक प्रकारका तिक्त रस निकलकर फलके स्वादको नष्टकर देता है। इसलिये साधारण तौरपर गुठलीको निकाल डालना ही अच्छा है इससे बड़े फल डिब्बोंमें आसानीसे भरे जा सकेंगे। इसके बाद कच्चे, पक्के सब फलोंको टीनके डिब्बोंमें भरकर प्रायः मुंहतक उनमें शरबत भर देना चाहिये। शर्बतके बदले जल भरनेसे भी काम चल सकता है; किन्तु फलका स्वाद कुछ बिगड़ जाता है। अतएव शर्बतका व्यवहारही उचित है। जलके साथ चीनी मिलाकर शर्बत तैयार करलेना चाहिये। शक्करका परिमाण अपने अपने स्वादपर निर्भर है। किस फलमें कितनी शक्कर देना चाहिये यह परीक्षा करके स्थिर करलेना उचित है।

फल और शरबत भर देनेके बाद टीनके डिब्बोंके मुंहपर ढकन लगाकर उन्हें झाल देना चाहिये। इस ढक्कनके बीचमें एक छोटा सा छेद जिसमें—एक मोटी सी सुई घुस सके—रखना चाहिये। फिर डिब्बों को गरम जलके कड़ाहमें, छेद ऊपर रखकर डुबो देना चाहिये। छेद अत्यन्त छोटा होनेकेकारण बाहरका जल भीतर और भीतरका शरबत बाहर नहीं आ जा सकेंगे। इसीप्रकार छोटे डिबोंको ४-५ मिनट और बड़ोंको सात आठ मिनटतक डुबाए रखनेसे उनके भीतरकी वायु उत्ताप पाकर छेदके द्वारा बाहर निकल जायगी। इसके बाद गरम जलसे निकालकर तुरन्त ही उनके छेदोंको टांकेसे बन्द करदेना चाहिये। देर करनेसे काम बिगड़ जायगा क्योंकि अत्यन्त गरम दशामें डिब्बोंके भीतरकी खाली जगह जलीय भापसे भरी रहती है और उसमें वायु बिल्कुल नहीं रहती। देर करनेसे भाप ठंडी होजाती है और उसके स्थानमें वायु प्रवेश करजाती हैं। यह वायु बादमें फलोंको खराबकर देती है। वास्तवमें इस वायुको निकाल देनेकेलिये ही यह क्रियाकी गई थी।

छेद बन्द करदेनेके बाद डिब्बोंको फिर खौलते हुये जलके कड़ाहेमें डुबोकरउनके फलोंको सिझाना चाहिये। यह क्रिया फलोंके भीतरवाले उपरोक्त कीटाणुओंको मार डालनेकेलियेकी जाती है। कितने बार कितना उत्ताप देनेसे फलके कीटाणु मर जाते हैं,—यह बात ठीक ठीक नहीं कही जासकती; क्योंकि जुदे जुदे प्रकारके फलोंमें जुदे जुदे प्रकारके कीटाणु होते हैं। परन्तु अंदाजसे यह कहा जासकता है, कि २०—३० मिनटतक खौलते हुए जल (१००°) के उत्तापमें सिझानेसे प्रायः सब फलोंके कीटाणु मरजाते हैं। पर, यह सिझाना फलों की अवस्थाके ऊपर भी निर्भर है। जैसे कच्चे

फल, पक्के फलकी अपेक्षा ज्याद: देर तक—और खूब पके फल भी थोड़ी देर तक और सिझाना चाहिये । वरन् फलकी आकृति, स्वाद, रंग आदि सब नष्ट होजाते हैं । डिब्बोंमें भरते समय फलोंका श्रेणी विभाग करलेना चाहिये; क्योंकि अलग अलग प्रकारके फलोंको अलग अलग समय की आवश्यकता होती है । सिझानेका समय, उत्ताप की मात्रा मीठेका परिमाण इत्यादि बातें फलों की अवस्थापर निर्भर है । इन बातोंकेलिये कोई निश्चित नियम नहीं बनाया जा सकता । यह सब बातें परीक्षा करके ही स्थिरकी जा सकती हैं ।

निर्दिष्ट समयमें फलोंके सीझ जानेपर डिब्बोंको गरम जलसे निकालकर ठंडे जलके कड़ाहमें डुबा देना चाहिये; क्योंकि यदि तुरन्त ही डब्बे ठंडे न किये जायँ, तो उनके भीतर जो उत्तापके द्वारा सिझाने का काम चलता रहता है, वह बहुत देरतक चलता रहेगा और उससे फल ज्यादा सीझकर बिलकुल खराब होजाँयगे । ५-७ मिनटतक ठंडे जलमें डुबाये रखनेके बाद डिब्बे ठंडे होजायँगे । फिर उनको ठंडे जलसे निकालकर, जिधरकी तरफ मुंह झाला गया हो, उधरकी तरफसे नीचा करके खड़ा कर देना चाहिये । उस समय विशेष दृष्टिसे देख लेना चाहिये कि डिब्बोंमेंसे किसी ओरसे भीतर का शरबत चूतो नहीं रहा है । यदि किसी डिबेमें कुछ संदेह हो, तो उसी समयसे दुरुस्त करलेनेके लिये अलग करदेना चाहिये । हर तरहसे इतमीनान होजानेके बाद डिब्बोंपर लेबिल पुर्जा लगाकर सन्दूकों में भर देना चाहिये । डिब्बोंकी संख्या सन्दूकके आकारपर निर्भर है ।

फलोंकी रक्षाके निमित्त मुख्य मुख्य ये काम हैं :—

(१) फलका छिलका अलग करना और गुठली निकालना (Peeling) ।

(२) श्रेणी विभाग करना (Sorting) ।

(३) डिब्बों में भरना (Canning) ।

(४) डिब्बोंमें शकरका जल भरना (Syruping) ।

(५) हवा बाहर करनेकेलिये खौलते हुये जलके कड़ाहमें डुबाना (Airtighting)

(६) ढक्कन लगाना (Capping)

(७) छोटा छेद बन्द करना (Soldering)

(८) सिझाना (Cooking)

(९) ठंडे जलके कड़ाहमें डुबाना (Cooling)

(१०) झले हुये मुंहको नीचा रखकर खड़े करना ।

(११) लेबिल लगाना (Labelling) ।

(१२) लकड़ी की सन्दूकों में बन्द करना (Casing) ।

विदेशोंमें इस कामकेलिये अनेक प्रकारकी बोतलें और डिब्बे काममें लाये जाते हैं । परीक्षार्थियोंको मगांकर उनका उपयोग करना चाहिये और देशमें उसी प्रकारके बरतनोंको तैयार करवाकर काममें लाना चाहिये । फलोंकी रक्षा-बिधिपर ऊपर जो कुछ कहा गया है । वह इस विषयका दिग्दर्शन मात्र है । इस व्यवसायके करनेकेलिये यदि हम तैयार होकर इस विषयकी ओर भली प्रकार ध्यानदें तो इससे भी अच्छी तरकीबें निकाल सकते हैं । विदेशियोंका ख्यालहै कि भारतवर्षमें इतना आम पैदा होता है कि फलरक्षाके हजारों कारखाने भली प्रकार चल सकते हैं ।

पर भारतवर्षने आजतक इस विषयपर ध्यान न दिया । जैसाकि समाचार पत्रोंसे मालूम हो रहा है थोड़े ही कालमें विलायत आमके फलको नाना प्रकार से तैयार करके भारतमें भेजने लगजायगा । इसी साल इतना आम फला था कि इस प्रकारके कारखानों द्वारा लाखों रुपया पैदा किया जा सकता था । पर इस विज्ञानका अभाव होनेके कारण सारा फल एक ही महीनेमें सड़कर पचखप गया । हमारे देशके नवयुवक कालिजोंमें विज्ञान केवल डिग्री ही प्राप्त करनेके लिये पढ़ते हैं । निजी जीवनमें उसका कुछ भी उपयोग नहीं करते । यदि पढ़े लिखे नवयुवकोंका ध्यान व्यवहारिक विषयों की ओर जाता तो यह काम इतने दिनों तक अछूता न रहता । इस कामके लिये

विशेष धनकी भी आवश्यकता नहीं है, कलाका ज्ञान प्राप्त करनेके लिये भी कहीं नहीं जाना है। मामूली परिश्रम और लगनसे इस विषयका अच्छा ज्ञान प्राप्त किया जासकता है। आशा है कि देशके शिक्षित नवयुवक इस विषयकी ओर शीघ्र ध्यान देंगे।

टिकारी राज्यकी खनिज—सम्पत्ति

[ले० महेश प्रसाद बाजपेयी, एम० एस--सी,
(हि० वि--वि०) रिसर्च स्कालर]

बिहार प्रान्तमें गया जीके निकट टिकारी एक बहुत बड़ी जमीदारी है जोकि टिकारी--राज्यके नाम-से प्रसिद्ध है। गत-वर्ष मुझे इस राज्यके कुछ पर्वतीय भागोंका भौतत्विक निरीक्षण करनेका अवसर प्राप्त हुआ। मैंने यहाँ लगभग तीन सप्ताह काम किया और मैंने यह समय यहाँकी गुरपा, बेला और टेटुआ तहसीलोंमें व्यय किया। निम्न लिखित खनिज पदार्थ मुझे यहाँ मिले।

तहसील—गुरपा

गुरुपा ई० आइ० रेलवेकी ग्रान्ड कार्ड लाइनपर एक छोटा स्टेशन है। इसके आस पास ग्रानित-पाषाणकी ऊँची ऊँची पहाड़ियाँ हैं और इनपर सागोन और बाँसके घने जंगल हैं। धरातलपर और उपत्यकाओंमें शिष्ट-पाषाण मिलता है। नदी और नालोंमें कोई जलप्रपात नहीं है जिससे सिद्ध होता है कि इस प्रदेशकी नदियाँ बहुत प्राचीन हैं।

खनिज

(१) अभ्रकः—यहाँपर अभ्रककी तीन बड़ी शिरायें हैं जोकि आपसमें समानान्तर हैं और प्रत्येक पूर्व-से पश्चिमतक नौ मील लम्बी हैं। इनकी चौड़ाई ३००से ८०० गजतक है। इन शिराओंमें चार प्रकारका अभ्रक मिलता है—लाल,(Ruby mica) श्वेत, हरा और काला। काला अभ्रक जोकि अशुद्ध माना जाता है थोड़ी मात्रामें पाया जाता है। लाल, श्वेत और हरे रंग के अभ्रकमें दूसरे पदार्थोंके कोई अपद्रव्य नहीं मिलते हैं और इनकी मात्रा भी अधिक है। इस अभ्रकमें दबावके कारण जो छोटी छोटी दरारें उत्पन्न हो जाती हैं, बहुत कम हैं। अभ्रक का मूल्य पट्टकाओंकी लम्बाई और चौड़ाई पर अधिक निर्भर है यहाँपर भूमिके धरातलके २० ही फीट नीचे १ फुट लम्बी और १ फुटसे कुछ कम चौड़ी पट्टिकायें मिलना आरम्भ हो जाती हैं और आशा है कि और नीचे इनसे भी बड़ी पट्टिकायें मिलेंगी। इन गुणोंसे प्रतीत होता है कि यहाँका अभ्रक उच्चकोटिका है।

(२) स्फटिक और फेल्सपारः—

स्फटिक और फेल्सपारका अभ्रकसे घना सम्बन्ध है। प्रत्येक स्थानपर यह पदार्थ अभ्रकके साथ पाये जाते हैं। पिसा हुआ स्फटिक और फेल्सपार चीनीके बर्तन बनानेमें काम आता है; स्फटिक का काँच और भट्टीमें लगने वाली ईंटोंके बनानेमें भी प्रयोग होता है।

(३) यातुक—

गुरुपा स्टेशनके ठीक पीछे और निकट नाइस-पाषाणमें यातुक मिलते हैं। अँगरेजी महिलायें यातुकके हारोंको बहुत पसन्द करती हैं। यातुक के टुकड़े अँगूठी व अन्य आभूषणोंमें भी जड़े जाते हैं। पिसे हुये यातुकसे दूसरे पदार्थों पर पालिस भी करते हैं।

अभ्रक इस तहसीलका सर्वोत्तम खनिज पदार्थ है। केवल भूमिके धरातलको ही देखकर यह कहना कठिन है कि यहाँ कितने टन अभ्रक निक-लेगा। शिराओंकी लम्बाई और चौड़ाई देखकर यह अनुमान किया जासकता है कि अभ्रक यहाँ अच्छी मात्रामें मौजूद है। गुरुपा रेलवे स्टेशन और बंगालके कोयलेकी खानोंके निकट होनेसे खानिक कामोंके लिये एक अच्छा स्थान है खदानोंकी छतोंको साधने-केलिए सागोन और बाँसकी यहाँ कमी है ही नहीं। गुरुपाके आसपास खेती योग्य भूमि बहुत कम है।

यहाँके निवासी निर्धन और निरोग हैं। यदि कोई खानिक काम यहाँ आरम्भ किया जायतो मजदूर भी यहाँ सुगमतासे मिल सकते हैं। रेलवे स्टेशन, बंगाल की प्रसिद्ध कोयलेकी खानोंके निकट, सागोनके घने जंगलोंके बीच स्थित और आसपास अभ्रक तथा अन्य खनिजोंके अच्छे निक्षेप होनेके कारण गुरुपा एक अच्छा खानिक-केन्द्र बन सकता है।

तहसील-बेला खनिजः—

(१) ग्रनित-पाषाणः- गयाजीसे ३५ मीलकी दूरी पर ग्रनित-पाषाणकी पहाड़ियोंमें बौद्ध कालकी कुछ सुन्दर गुफायें हैं। ग्रानित पाषाण स्थूल कणिक है और कण कई रङ्गके हैं। गुफायोंमें इसी पाषाणके ऊपर बहुत अच्छी पालिसकी गई है। इससे यह प्रतीत होता है कि यह पालिस भी अच्छी ले सकता है। देखनेमें यह पत्थर बहुत सुन्दर लगता है। इमारती कामोंमें इसका प्रयोग हो सकता है।

(२) हीमेटाइटः—यह लोहेका एक अच्छा धातुक है। गुफाओंके निकट उपत्यकाओंमें इसकी शिरायें मिलती हैं। पहाड़ियोंके निकट मुझे रेलवे लाइन, कुओं और बागोंके कुछ खँड़हर मिले। ऐसा मालूम होता है कि कुछ ही समय पहिले यहाँसे इमारती पत्थर और हीमेटाइट कदाचित् कलकत्ते भेजा जाता था।

तहसील—टेटुआ खनिजः—

(१) शेल—पाषाणः—पथरकट्टी ग्रामके निकट यह पाषाण मिलता है। शेलमें सिलखड़ीका भाग अधिक होनेसे यह पत्थर बहुत नरम है और बिना टूटे सुगमतासे कट जाता है। पत्थरके खिलोने, प्यालियाँ और सजावटीसामान बनानेके लिये यह एक अच्छा पत्थर है।

(२) स्लेटः—जेठिअन ग्रामके पास बेंजनी रंगकी स्लेटें मिलती हैं। इमारतोंकी छत और फर्श बनानेकेलिये यह स्लेटें उपयोगी होंगी। कुछ लाल औरपीली स्लेटें भी यहाँ हैं। यदि यह पिसवाई जाँय तो ये वारनिस और रोगन बनानेके काममें आसकती हैं।

तीन सप्ताहमें जोकुछ मैंने देखा उससे यह ज्ञात होता है कि टिकारी राज्यकी सीमामें कुछ बहुत मूल्यवान खनिजोंके निक्षेप हैं। इन सबमें अभ्रक श्रेष्ठ है। अच्छा अभ्रक बाजारमें ४००) रु० मन तक बिकता है। इस लेख द्वारा मैं टिकारी राज्यके कार्य-कर्त्ताओं और पाठकोंका ध्यान अभ्रकके व्योपार की ओर आकर्षित करना चाहता हूँ। अपने गुणोंके कारण, अभ्रक, आजकल बहुत बड़े कामकी चीज है। यह ताप और विद्युतका कुचालक है। यह पारदर्शक और अगालनीय है। क्षादक अम्लों व तेलों का इसपर कोई असर नहीं होता। लचकदार और स्थितिस्थायकत्व सीमा अधिक होनेसे अभ्रकपर यदि इधर उधरसे कुछ दबाव भी पड़ता है या धक्का पहुँचता है तो यह चटकता नहीं है। किसी एक पदार्थमें इतने गुण नहीं पाये जाते हैं। संसारमें सब देशोंसे अच्छा और अधिक अभ्रक भारतवर्षमें पैदा होता है। यूरोपीय देशों और अमेरिकामें भारतीय अभ्रककी बड़ी माँग रहती है। भारतवर्षमें अभ्रकका भंडार है। बङ्गाल बिहार और मद्रास प्रान्त अभ्रकसे भरे पड़े हैं।

प्राचीन कालमें अभ्रककी पट्टिकायें खिड़कियोंमें लगाई जातीं थीं। लालटेनों की चिमनियाँ भी इसीसे बनाई जातीं थीं। आज कल इन स्थानोंपर सस्ता और कृत्रिम पदार्थ—काँच काममें लाया जाता है। आजकल केवल भट्टिओं की खिड़कियोंमें इसका प्रयोग होता है। अगालनीय होनेके कारण अभ्रक भट्टीके ऊँचे तापक्रम पर पिघलता नहीं है। यह पारदर्शक है इससे भट्टीके अन्दरका सारा हाल दिखाई देता रहता है। तापका कुचालक होनेकी वजहसे भट्टीकी ताप भी कम नहीं होने पाती। अभ्रक पृथग्न्यासक है इससे इसका प्रयोग विद्युतीय कामोंमें बहुत होता है। मशीनोंको ढांकनेके लिये इसके बड़े बड़े जाकिट बनाये जाते हैं। मकान की छतमें यदि कुछ इन्च मोटा अभ्रकका एक परत देदिया जायतो गर्मियोंमें मकान बहुत ठण्डा रह सकता है। तापका कुचालक होनेसे सूर्यकी गर्मीको यह मकानके ऊपर ही

रोक लेता है। $\frac{1}{4}$—इंच मोटा परत देनेसे मकानका तापक्रम, बाहरकी अपेक्षा लगभग १५ डिगरी कम रहता है। अभ्रकके छोटे बक्समें बरफ बहुत समय तक रह सकता है। नोट कीमती दस्तावेज़ व सनदूकों अभ्रकके लिफाफोंमें रखना चाहिये। ऐसे लिफाफोंमें रखनेसे इन चीज़ोंका जलनेका डर नहीं रहता क्योंकि अभ्रक अग्निजित् है।

आयुर्वेदमें अभ्रकको बज्र, गगन, मेघलाल भी कहते हैं। आयुर्वेदिक रीतियोंसे अभ्रकसे २२४ प्रकार की औषधियाँ बनाई जाती हैं जोकि अनेक रोगों को दूर करती हैं आयुर्वेदाचार्य अभ्रक चार प्रकारके बताते हैं——

(१) ब्राह्मण—श्वेत अभ्रक
(२) क्षत्री—लाल अभ्रक
(३) वैश्य—पीली "
(४) शूद्र—काली "

और इन चारोंके गुण भी भिन्न भिन्न हैं।

अभ्रकका व्योपार थोड़े ही धनसे आरम्भ किया जासकता है क्योंकि यह एक ऐसा पदार्थ है जोकि बाज़ारमें रोज़ बिक सकता है और नक़द दाम मिल सकते हैं। आजकल अभ्रकका सारा रोजगार अङ्गरेजों या ऐंग्लोइन्डियनोंके हाथमें है।

डांस

[ले०—श्री शंकरराव जोशी]

पहले हम द्विपक्ष वर्गके एक कीड़े—मक्खीपर विचार करचुके हैं। इस लेखमें उसी वर्गके एक दूसरे कीड़े, डांस, पर विचार करेंगे। एक संस्कृत कविने इस प्राणीके सम्बन्धमें लिखा—

प्राक् पादयोः पतति खादति पृष्ठमासं।
कर्णे कलं किमपि रौति शनैर्विचित्रं।
छिद्रं निरूप्य सहसा प्रविशत्यशङ्कः
सर्वं खलस्य चरितं मशकः करोति॥

हमारे अधिकांश पाठक इस प्राणीको तिरस्कारकी दृष्टिसे देखते होंगे। किन्तु यदि वह उसे सूक्ष्मदर्शक यंत्रकी सहायतासे देखेंगे तो हमें पूर्ण विश्वास है कि उनकी तिरस्कार बुद्धि अवश्य भाग जायगी।

डांसका सर छोटा होता है। सरका अधिकांश भाग पहलूदार आंखोंसे व्याप्त रहता है। आंखोंका रंग हरा होता है। छाती (Thorax) बड़ी और गोल होती है; एवं पेट लम्बा और पतला। सिरके अगले भागपर चोंचके आकारका मुख और दो स्पर्शेन्द्रिय होती हैं। पीठके पहले भागपर दो पंख होते हैं। पंखके पीछेकी ओर झालरके समान बाल होते हैं। पंखकी दूसरी जोड़ीके स्थानपर दो कर्ण होते हैं। इस प्राणीके पांव उसके शरीरसे तीन गुने लम्बे होते हैं। इसके सारे शरीरपर, स्थान स्थान पर, महीन केशके झब्बे होते हैं।

नर और मादामें फर्क होता है। नरकी स्पर्शेन्द्रिय मादाकी स्पर्शेन्द्रियसे बहुत बड़ी और सुन्दर होती है। मादाकी स्पर्शेन्द्रियोंकी शाखाएं छोटी होती हैं अतः वह खूबसूरत नहीं देख पड़तीं।

डांसकी चोंचकी रचना देखकर आश्चर्य होता है। मादाकी तरह नर मनुष्यकी देहमें छेदकर रक्तपान नहीं करसकता। नर निरुपद्रवी होता है। वह घरोंमें आता तक नहीं। परन्तु मादा खूब ऊधम मचाती है। वह नररक्त पीती है। अतः वही ज्यादातर घरोंमें रहना पसंद करती है।

मादाकी सूंड़को देखते ही यह धारणा होजाती है कि वह इसीसे रक्तपान करती है, परन्तु वास्तव में ऐसा नहीं होता। मादाकी सूँड उसकी औज़ार रखनेकी पेटी है। यह सूंड़ बीचमेंसे चिरी हुई होती है और सहजही झुकाई जा सकती है। सूंडके झुकातेही उसमेंसे औज़ार बाहर निकल आते हैं। सूंडमें भिन्न भिन्न प्रकारके छः हथियार होते हैं। अष्टभुजा देवीकी तसवीरमें, देवीके हाथमें जितने हथियार दीख पड़ते हैं, उनमेंसे अधिकांश हथियार मादाकी सूँडमें भी पाये जाते हैं। इनमेंसे

कुछ हथियार तलवारके समान, कुछ भालेके समान और कुछ आरेके समान होते हैं। सबसे अधिक आश्चर्यकी बात तो यह है कि जिस सूँड़में यह सब हथियार रहते हैं वह १ इंचसे ज्यादा लम्बी नहीं होती।

डांसकी सूँडकी रचना देखनेकेलिए स्मर नामक एक विद्वान घंटों उसे अपने हाथपर बिठाकर उसकी सूँडका निरीक्षण किया करता था।

डांसका मधुर गायन मनुष्यको कर्णकटु लगता है। एक संस्कृत कविने लिखा है।

अर्थं ग्रहणेन तथा व्यथयति, कटुकूजितैर्यथा पिशुनः।
रुधिरा-दानादधिकं दुनोति कर्णे क्वणन्मशकः॥

डांसके उड़नेसे एक प्रकारका शब्द होता है। इस शब्दकी उत्पत्ति उसके पंखोंके हिलनेसे होती है। यह एक सिद्धान्त है कि जब किसी पदार्थसे शब्द निकलता है तो वह हिलता होता है। इसी सिद्धान्तके अनुसार डांसके पंखोंके हिलनेसे शब्द होता है। एक विद्वानने पता लगाया है कि डांसके पंख एक सेकन्डमें १५००० बार हिलते हैं।

मादा अपने अण्डे पानीके पृष्ठ भागपर एक दूसरेसे चिपका कर रखती है। यह अ डे इतने हलके होते हैं कि पानीमें डूबते नहीं। अण्डोंमेंसे इल्ली निकलती है। इल्लीके दो पूछ होती हैं। उसका आकार स्क्रूके समान होता है और शरीरपर बालोंके झब्बे होते हैं। हम ऊपर लिख आये हैं कि इल्लीके दो पूछ होती हैं। एकसे वह श्वासोच्छ्वासकी क्रिया करती है और दूसरी उसका गुद-द्वार है। यह प्राणी बहुत बारीक होते हैं और उनका रंग बार बार बदलता रहता है। यह हमेशा पानीमें रहते हैं। परन्तु हवाकेलिए उन्हें अपनी श्वासोच्छ्वासकी पूंछ बार बार पानीसे बाहर निकालनी पड़ती है। और इसीलिए वह बार बार अपना सिर नीचाकर पानीमें औंधे पड़े रहते हैं। यही डांसकी कीटावस्था है। कुछ दिन बाद कीड़ा कोश बनाता है, कोश लम्बाकार लोलकके समान होता है। कोश पानीमें तैरता रहता है। पूर्ण बाढ़को पहुँच जानेपर डांस उसमेंसे बाहर निकलता है। कोशमेंका कीड़ा अपना शरीर फुलाता है, जिससे कोशका सिरके पासका भाग फट जाता है। डाँस इसमेंसे अपना सिर और आगेके दो पैर बाहर निकालता है। शरीरका शेष भाग कोशमें ही रहता है। बेचारे डांसको अपना शरीर कोशमेंसे बाहर निकालनेमें बड़ी तकलीफ़ होती है। वह अपना शरीर बड़ी युक्तिसे बाहर निकालता है। वह अपना सिर ऊपर उठाये रखता है, ताकि पानीसे स्पर्श न होने पावे। बादमें वह अपना पेट आकुंचितकर धीरे धीरे अपना शरीर ऊपर खींचता है। कोशका भीतरी भाग खुरखुरा होनेसे आकुंचित किया हुआ पेटका भाग फिर भीतर नहीं फिसल पाता। ज्यों ज्यों वह अपने शरीरका अधिकाधिक भाग बाहर निकालता है, त्यों त्यों उसे शरीरका अग्र भाग अधिकाधिक ऊपर उठाये रखना पड़ता है। इस समय बेचारे प्राणीको अपनी प्राण रक्षाकेलिए महान कष्ट उठाने पड़ते हैं। डांसकी प्रथम तीन अवस्थाएं पानीमें ही व्यतीत होती हैं, तो भी पूर्णावस्था प्राप्त डांसकेलिए पानीका स्पर्श प्राणनाशक है। सूक्ष्मदर्शक यंत्रकी सहायतासे डांसकी यह दुर्दशा देखकर पत्थरका हृदय भी पिघल जाता है।

दो ही चार सेकंडमें कोशसे मुक्ति पा डांस भक्ष्यकी खोजमें उड़ जाता है। बीस रोज़में डांसकी प्रथम तीन अवस्थाएं पूर्ण हो जाती हैं और तब वह प्रजोत्पादनका काम करने लगता है। एक सालमें डांसकी कई पीढ़ियां बीत जाती हैं।

डांसकी सूंड बहुत ही महीन होती है। ज्योंही वह अपनी सूंड मनुष्यकी देहमें चुभाता है, सूंडमेंका एक प्रकारका विषैला पदार्थ मनुष्यके रक्तमें मिल जाता है। और यही कारण है कि जिस जगह डांस अपनी सूंड चुभाता है, वहां दर्द होने लगता है और शीघ्र ही फुड़िया उठ आती है। यह सबका अनुभव है कि काटे हुए स्थानको खुजानेसे फुड़िया बड़ी हो जाती है। यदि नखसे न खुजाकर

यह स्थान पानीसे धो डाला जाय तो तत्काल दर्द बन्द हो जाता है।

एक और प्रकारका डांस होता है, जिसके पैर बहुत ही बड़े होते हैं। पांवके समान इसके अवयवोंमें भी फर्क होता है तथापि वाह्य शरीरको छोड़कर शेष सब बातें डांसके समान होती हैं। अतः विशेष कुछ लिखनेकी जरूरत नहीं। यह डांस अस्तबलमें ज्यादा पाया जाता है। इस डांसके काटनेपर एक बड़ी फुड़िया उठ आती है, जो कभी कभी चार चार दिनतक भी अच्छी नहीं होती।

ग्रहोंकी चाल

पिछले एक लेखमें बतलाया जा चुका है कि हिन्दू जिसको नवग्रह कहते हैं उनमेंसे केवल पाँच आजकल ग्रह कहलाते हैं, जिनके नाम हैं बुध, शुक्र, मंगल, वृहस्पति और शनि। आजकल पृथ्वी भी ग्रह समझी जाती है और इसका स्थान शुक्र और मङ्गल ग्रहोंके बीचमें है। इन ग्रहोंके सिवा दो ग्रह और हैं जो प्राचीन कालके ज्योतिषियोंको नहीं ज्ञात थे, क्योंकि यह इतनी दूर हैं कि केवल आँखसे देखे नहीं जा सकते। इनके नाम हैं अरुण और बरुण। इनका पता तो तब लगा है जब अच्छे अच्छे दूरबीन तैयार हो गये हैं और गणित शास्त्रका अध्यन भी विस्तारके साथ किया गया है। इन आठ ग्रहोंमेंसे बुध सूर्यके बहुत पास है, शुक्र बुधकी अपेक्षा सूर्यसे दूर है। पृथ्वी शुक्रसे भी अधिक दूरीपर है। इन ग्रहोंकी आपेक्षिक दूरी यह है—

यदि बुध ग्रहकी सूर्यसे दूरी ३.८ समझी जाय

तो शुक्र	"	७.२	होगी
पृथ्वी	"	१०	"
मङ्गल	"	१५.२	"
वृहस्पति	"	५२	"
शनि	"	९५.३	"
अरुण	"	१९१.८	"
और बरुण	"	३००.५	"

पृथ्वी और सूर्यकी दूरी मीलोंमें ९,२०,००,००० मध्यम मानसे है।

यह सब ग्रह सूर्यकी परिक्रमा करते हैं और सूर्यके चारों ओर घड़ीकी सुईकी प्रतिकूल दिशामें जाते हैं, जिससे तारोंके बीच पच्छिमसे पूर्वकी ओर आगे बढ़ते हुए जान पड़ते हैं। यदि हम किसी प्रकार सूर्यमण्डलमें पहुँच जायँ तो हमको दिखाई पड़ेगा कि सूर्यके चारों ओर यह ग्रह भिन्न भिन्न चालसे चक्कर लगा रहे हैं। कभी कभी दो दो तीन तीन चार चार ग्रह एक सीधमें आ जाते हैं। और कभी सभी ग्रह एक सीधमें आजाते हैं। ऐसी घटनाएं सदैव नहीं हुआ करतीं। लाखों वर्षका समय बीतता है तब कहीं सब ग्रह एक सीधमें आते हैं, हां दो दो तीन तीन ग्रहोंकी बात न्यारी है। परन्तु हम लोग सौर मण्डलमें तो पहुँच नहीं सकते हाँ भू मण्डलमें ही बैठे बैठे जो दृश्य दिखाई पड़ते हैं उन्हींका वर्णन संक्षेपमें यहां किया जायगा।

इन आठ ग्रहोंमेंसे दो ग्रह बुध और शुक्र पृथ्वी और सूर्यके बीचमें हैं अर्थात् पृथ्वीकी कक्षाके भीतर हैं मङ्गल, गुरु, शनि, अरुण और बरुण पृथ्वीके कक्षाके बाहर। पहले दोको लघु ग्रह (minor planets) और पिछले पाँचको वृहत् ग्रह (major planets) कहते हैं। प्राचीन कालके विद्वानोंने अनुभवसे जान लिया था कि इन ग्रहोंकी चाल कई प्रकारकी है। कभी यह पूर्वकी ओर चलते हैं, कभी पच्छिमकी ओर और कभी बहुत शीघ्रगामी होते हैं और कभी ठहरे हुए जान पड़ते हैं इत्यादि[1]। उन महात्माओंने यह भी अनुमान किया था कि इनके आगे पीछे चलनेका कारण क्या है[2]। आज

१ वक्रानुवक्रा कुटिला मन्दा मन्दतरा समा।
तथा शीघ्रतरा शीघ्रा ग्रहाणामष्टधा गतिः॥ १२॥
तत्राति शीघ्रा शीघ्राख्या मन्दा मन्दतरा समा।
ऋज्वीति पञ्चधा ज्ञेया या वक्रा सानुवक्रगा॥ १३॥

२ अदृश्यरूपाः कालस्य मूर्तयो भागणाश्रिताः।
शीघ्रमन्दोच्च पाताख्या ग्रहाणां गतिहेतवः॥ १॥

हम यह बतलाना चाहते हैं कि वास्तवमें इनकी चाल एकसी है परन्तु हमको भिन्न भिन्न जान पड़ती है, क्योंकि हम स्वयम् ऐसे ग्रहपर हैं जो स्थिर नहीं है। यदि आप मैदानमें एक झंडा गाड़ दें और झंडेसे ४,७,१०,१५,५२,९५,१९२ और ३०० फर्लांगके अंतरपर एक एक घेरा दो तीन फुट ऊँचा करवा दें; प्रत्येक घेरेके पास एक एक घुड़सवार नियुक्त करदें; आप स्वयम् झंडेके पास खड़े हो जायँ और घुड़सवारोंको आज्ञा दे दें कि प्रत्येक घुड़सवार अपने अपने घेरेके पास इस तरह खड़ा हो जाय कि सब एक ही सीधमें दिखाई पड़ें और तद्नन्तर सब सवार एक साथही घेरेका इस वेगसे चक्कर लगाने लगें कि सबसे पासवाला एक चक्कर ८८ सेकंडमें. इससे कुछ दूरवाला २२४ सेकंडमें, तीसरा ३६५ सेकंडमें, चौथा ६८७ सेकंडमें, पांचवाँ ४३३२ सेकंडमें, छठा १०७५९ सेकंडमें, सातवाँ ४९८ मिनटमें और आठवाँ ९९० मिनटमें चक्कर पूरा करने लगे, तो जिस प्रकार यह घुड़सवार सेकंडोंमें आपकी परिक्रमा करते हुए जान पड़ेंगे वैसेही सौर मण्डलमें ग्रह सूर्यकी परिक्रमा करते हुए दिखाई पड़ते हैं। अंतर केवल इतना होगा कि सवार एक धरातलमें चक्कर लगावेंगेपर ग्रह कुछ उत्तर दक्खिन हट भी जाते हैं।

यदि आप झण्डेके पास न खड़े होकर स्वयम् झण्डेसे तीसरे घोड़ेपर सवार होकर पहले कहे हुए वेगसे चक्कर लगाने लगेंतो आपको झंडे और घुड़सवार जैसे दिखाई पड़ेंगे वही दृश्य हम पृथ्वी निवासियोंको ग्रहोंके सूर्यका चक्कर लगानेमें दिखाई पड़ता है। कभी यह जान पड़ता है कि ग्रह आगे बढ़ते जा रहे हैं और कभी जान पड़ता है कि कोई पीछे हो रहे हैं और कभी ठहरे हुए भी दिखाई पड़ते हैं। इसीको समझानेके लिए पहलेके लोगोंने कल्पना की थी कि शीघ्रोच्च, मन्दोच्च और पात नामक अदृश्य भूतियाँ ग्रहोंकी भिन्न भिन्न गतियोंके कारण हैं। यही अपनी वायुरूपी रस्सियोंके द्वारा ग्रहोंको दाहिने बायें अथवा आगे पीछे ले जाती हैं।

तद्वातरश्मिभिर्बद्धास्तैः सव्येतरपाणिभिः।
प्राक् पश्चादपकृष्यन्ते यथासन्नं स्वादिङ्मुखम् ॥ २ ॥
सूर्यसिद्धान्ते स्पष्टाधिकारे

इस लेखमें यह बतलाया जायगा कि ऊपरवाली कष्ट कल्पनाका कारण अभीतक पृथ्वीको अचला मानकर किसने सन्तोषजनक रीतिसे नहीं सिद्ध किया। परन्तु यदि पृथ्वी भी गतिमान समझी जाय तो इन सब कष्ट कल्पनाओंकी आवश्यकता नहीं पड़ेगी। ऊपर सवारोंके उदाहरणसे आपको विदित होगया होगा कि यदि सवार तीसरे घोड़ेपर बैठकरझंडेकी परिक्रमा करे तो बाहर और भीतर दोनों ओरवाले घोड़ोंकी गतियोंमें वही 'बक्रानुबक्रा कुटिला' तथा 'शीघ्रा शीघ्रतरा' गतियोंकी विलक्षणता दिखाई देती है, जैसी पृथ्वी रूपी घोड़ेपर सवार पृथ्वी निवासियोंको अन्य ग्रहोंकी गतियोंमें विलक्षणता दिखाई देती है। समझानेकेलिए हमको दो उदाहरण लेने होंगे। एक ऐसे ग्रहका जो पृथ्वी और सूर्यके बीचमें है और दूसरा ऐसे ग्रहका जो सूर्य और पृथ्वीके बाहर है। पहलेकेलिए बुध और दूसरेकेलिए मङ्गल ४२ तथा ४४ चित्रोंमें लिये गये हैं।

चित्र ४२ में सबसे बड़ा वृत्त राशिचक्र है, जिसपर घूमता हुआ सूर्य एक वर्षमें एक चक्कर लगाता हुआ जान पड़ता है। जहाँ वसन्त विषुव लिखा हुआ है वहाँ जब सूर्य दिखाई पड़ता है तब वसन्त ऋतुका आरम्भ होता है और इस दिन, दिन रात समान होते हैं। यहींसे आरम्भ करके राशिचक्र बारह भागोंमें बांटा गया है। इसलिए जिस जिस भागपर मेष वृष इत्यादि लिखा हुआ है वह सायन मेष, सायन वृष समझना चाहिये। सायन मेषका आरम्भ २१, २२ मार्चको होता है। सायन मेषसे २३° और आगे निरयन मेष मासका आरम्भ होता है यह १३, १४ अप्रैलको पड़ता है। सूर्य राशिचक्रमें मेषसे मिथुन इत्यादि राशियोंमें जाता हुआ जान पड़ता है।

राशिचक्रसे छोटा वृत्त भूकक्षा है। इसीपर पृथ्वी चलती हुई स सूर्यकी, जो केन्द्रमें हैं, एक वर्षमें एक

परिक्रमा कर लेती है। सूर्य निवासियोंको पृथ्वी भी मेषसे वृष, वृषसे मिथुन, मिथुनसे कर्क, कर्कसे सिंह इत्यादि राशियोंमें भ्रमण करती दिखाई देती है; इसीके भ्रमणसे हम लोगोंको सूर्य भ्रमण करता हुआ जान पड़ता है। चित्र ४२ में इसका भ्रमण प से आरम्भ होता हुआ दिखाया गया है और २, ३, ४ इत्यादि विन्दुओंपर घड़ीकी सुइयां जिस दिशामें चलती हैं उसके प्रतिकूल दिशामें पृथ्वी जाती है। चलनेकी दिशा तीरकी दिशामें जानी जा सकती है।

सबसे छोटा वृत्त बुध ग्रहकी कक्षा है। मान लीजिये कि बुध ब से चलना आरम्भ करता है और अपनी कक्षामें २, ३, ४ इत्यादि बिन्दुओंपर घड़ीकी प्रतिकूल दिशामें तथा सूर्य निवासियोंको मेष, वृष, मिथुन इत्यादि राशियोंमें जाता हुआ दिखलाई देता है। चित्रमें ब१ वहां लिखा है जहां बुध उस समय है जब कि पृथ्वी प१ पर है। जब बुध विंदु २ पर जाता है। तब पृथ्वी अपनी कक्षामें विन्दु २ पर जाती है। जब बुध अपनी कक्षामें विन्दु २ से विन्दु ३ पर जाता है, पृथ्वी अपनी कक्षामें विंदु २ से विंदु ३ पर जाती है। इसी तरह और विंदुओंके लिए भी समझना चाहिये; जैसे जब बुध अपनी कक्षामें विंदु ७ पर होता है तब पृथ्वी अपनी कक्षामें विंदु ७ पर रहती है इत्यादि। यदि यह देखना हो कि पृथ्वीपरसे बुध किस दिशामें राशि चक्रपर दिखाई देगा तो बुध और पृथ्वी उस समय जहाँ हों, उन विंदुओंको मिलाकर राशिचक्रतक लेजाइये। जहां यह रेखा पहुँचेगी वहीं बुधका स्थान होगा। चित्रकी सरलताके लिए पृथ्वी और बुधके मिलानेवाली रेखा नहीं दिखायी गयी है परन्तु बुधसे यह रेखा बढ़ायी जानेपर राशिचक्रमें जहां पहुँचती है वह कटी रेखासे दिखाई गई है जैसे जब पृथ्वी प१ और बुध ब१ एक विंदुओं पर होते हैं तब प१ ब१ को मिलानेवाली रेखा राशिचक्रमें १ विंदुपर पहुँचती है अर्थात् पृथ्वी निवासियोंको बुध राशिचक्रके विंदु १ पर अथवा कुंभ राशिके अन्तमें दिखाई पड़ेगा। जब पृथ्वी $प_2$ पर पहुँचती है तब बुध $ब_2$ पर पहुँचता है और राशिचक्रमें विंदु २ पर अथवा मीन राशिमें दिखाई देती है और $प_3$ (अर्थात् जब पृथ्वी अपनी कक्षामें विंदु ३ पर होती है) से बुध $ब_3$ पर होनेके कारण, राशिचक्रके विंदु ३ पर मीनके अन्तमें दिखाई देगा। जब बुध अपनी कक्षामें ४ पर होगा तब पृथ्वी भी अपनी कक्षामें ४ पर होगी और पृथ्वी निवासियोंको बुध राशि चक्रमें विंदु ४ पर अर्थात् ३ से कुछ ही आगे दिखाई पड़ेगा। जब बुध अपनी कक्षामें १ से २ तक आया तब पृथ्वी भी १ से २ पर अपनी कक्षामें आई और हम लोगोंको बुध राशिचक्रमें कुंभसे मीनमें जाता हुआ दिखाई पड़ा। जब बुध २ से ३ पर अपनी कक्षामें गया तब पृथ्वी भी २ से ३ पर अपने कक्षामें गई और यहांके निवासियोंको बुध राशिचक्रमें २ से ३ तक मीन राशिमें आगे जाता हुआ दीख पड़ा। इस बार बुध राशिचक्रमें उतना आगे नहीं बढ़ा जितना पहले बढ़ा था अर्थात् बुधकी चाल पहलेसे मन्द पड़ गई। ३ से ४ तक पहुँचनेमें बुध राशिचक्रमें बहुत ही कम आगे बढ़ा; इसलिए यदि यह कहा जाय कि बुधकी चाल नहींके समान है तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी। ऐसी दशामें बुध कुछ ठहरा हुआ जान पड़ता है।

जब बुध अपनी कक्षामें ४ से ५ पर जायगा, पृथ्वी भी अपनी कक्षामें ४ से ५ पर जायगी और पृथ्वी निवासियोंको बुध राशिचक्रमें उलटा ४ से ५ तक जाता हुआ दिखाई पड़ेगा अर्थात् बुध वक्री होगया, ऐसा जान पड़ेगा। जब बुध ५ से ६ पर अपनी कक्षामें जायगा तब पृथ्वी भी अपनी कक्षामें ५ से ६ पर जायगी और हम लोगोंको बुध राशिचक्रमें ५ से ६ तक उलटा मीनसे कुंभ राशिमें जाता हुआ दिखाई पड़ेगा; परन्तु चाल बहुत तीव्र हो जायगी। यहां भी बुध बक्री कहा जायगा; यद्यपि वह अपनी कक्षामें उसी क्रमसे जारहा है। जब बुध ६ से ७ तक जाता है, राशिचक्रमें ६ से ७ तक उलटा जाता हुआ दिखाई पड़ता है। परन्तु ८ से ९ तक जाते जाते यह राशिचक्रमें ८ से ९ तक सीधा जाता दिखाई देगा अर्थात् अब बुधकी चाल मार्गी हो जायगी, परन्तु रहेगी बहुत मन्द। अब यह स्पष्ट होगया

होगा कि यद्यपि सूर्यके विचारसे बुध और पृथ्वी दोनों एक ही दिशामें जाते हुए दिखाई पड़ते हैं परन्तु पृथ्वी निवासियोंको बुध राशिचक्रमें १ से ४ तक आगे बढ़ता हुआ जान पड़ता है और ४ से ७ तक पीछे हटता हुआ जान पड़ता है। जब आगे बढ़ता है तब मार्गी कहलाता है और पीछे हटता है तब वक्री हो जाता है। जब मार्गी रहता है तब भी इसकी चाल एक सी नहीं दीखती वरन् कभी बहुत शीघ्र बढ़ती हुई जान पड़ती है, कभी मन्द पड़ जाती है और कभी ठहरी सी जान पड़ती है। और जब वक्री होता है तब भी चाल द्रुत द्रुततर, मन्द, मन्दतर तथा स्थिर सी जान पड़ती है।

यहां एक बात और जानने योग्य है। जब पृथ्वी प' पर होती है और बुध ब' पर तब सूर्य और पृथ्वीको मिलानेवाली रेखा मकरके अंतपर पहुँचती है अर्थात् सूर्य मकरमें दिखाई देता है, परन्तु बुध कुंभके अन्तमें; इसलिए बुध सूर्यके पूरब रहता है और सूर्यास्तके बाद पच्छिममें दिखाई देता है। $प_2$ से सूर्य कुंभ राशिके आदिमें दिखाई पड़ता है और बुध मीनके आदिमें, $प_3$ से सूर्य कुंभमें कुछ और आगे बढ़ा हुआ जान पड़ता है, परन्तु बुध मीनके अन्ततक पहुँचा हुआ दिखाई पड़ता है और इसीके पास सूर्य और बुधका अन्तर सबसे अधिक होता है। ऐसी दशामें यदि पृथ्वी और बुधके मिलानेवाली रेखा बढ़ायी जाय तो वह बुधकी कक्षाको स्पर्श करती हुई जायगी, और पृथ्वी और सूर्यको मिलानेवाली रेखासे जो कोण बनायेगी वह सबसे बड़ा होगा। इसीको सूर्य और बुधका महत्तम अन्तर (greatest elongation) कहते हैं और यह अन्तर सूर्यके पूर्वकी ओर होता है। महत्तम अन्तरके कुछ दिन पीछे ही बुधकी गति वक्री होजाती है और अन्तर घटने लगता है और घटते घटते बुध पृथ्वी और सूर्यके बीचमें आ जाता है अर्थात् अन्तर शून्य हो जाता है। ऐसी दशामें बुध सूर्यके साथ उदय और अस्त होता है। इसीको बुधकी भीतरी युति (Inferior conjunction) कहते हैं। जब सूर्यसे बुधका अन्तर १२°के लगभग हो जाता है तब सूर्यके निकट होनेसे उसके प्रकाशके कारण* कोरी आंखसे बुध नहीं दिखाई पड़ता। इसलिए कहा जाता है कि बुधका अस्त पच्छिममें होजाता है क्योंकि बुध पच्छिममें ही दीखते दीखते छिप जाता है। भीतरी युतिके समयसे बुध दाहिने हाथकी ओर जाता है और सूर्य बायें हाथकी ओर; इसलिए सूर्यसेबुध बहुत ही शीघ्र हटता है अर्थात् पच्छिममें अस्त होनेके बाद थोड़े ही दिनोंमें वह सूर्यसे पच्छिम चला आता है और सूर्योदयके पहले ही उदय होकर पूर्वमें दिखाई देने लगता है; तब कहते हैं कि बुधका पूर्वमें उदय हो गया; जब बुध १२° सूर्यसे पच्छिम होजाता है तब फिर दिखाई पड़ने लगता है। तभी उसका उदय मानते हैं; गति भी वक्रीसे कुछ ही दिनोंमें मार्गी होने लगती है।

इस प्रकार मार्गी होनेके पीछे बुध क्रमशः सूर्य से दूर हो जाता है और जब बुध अपनी कक्षामें बिन्दु ७ और ८ के बीचमें जाता है तब भी सूर्यसे इसका अंतर महत्तम हो जाता है। फिर बुध सूर्यके पास होता जाता है और डेढ़ महीनेमें सूर्यके इतना पास हो जाता है कि आंखसे दिखाई नहीं पड़ता। सूर्य सिद्धान्तके अनुसार जब अंतर १४° का रह जाता है तब अस्त होना मानते हैं। जब बुध सूर्यका अन्तर शून्य हो जाता है तब दोनों एक साथ क्षितिजके ऊपर आते हैं। ऐसी दशामें बुध सूर्यकी बाहरी युति (Superior conjunction) होती है। बाहरी युतिके समय बुध मार्गी रहता है।

बाहरी युतिके समय बुध और सूर्य दोनों बायीं ओरको जाते हुए दिखाई पड़ते हैं, इसलिए बुधको सूर्यसे दूर होनेमें अधिक दिन लगते हैं अर्थात् जब सूर्य पूर्वमें अस्त होता है तब पच्छिमके अस्त कालसे अधिक काल तक अस्त रहता है और पच्छिममें देरमें उदय होता है।

यह लिखा गया है कि पच्छिममें बुध तब अस्त होता है जब सूर्य और बुधका अन्तर १२° से कम

* दिवाकर कराक्रान्त मूर्तीनामल्प तेजसाम्।

हो जाता है और पूर्वमें अस्त तब होता है जब दोनों-का अन्तर १४° से कम हो जाता है। इसका कारण यह है कि भीतरी युतिके समय बुध पृथ्वीसे बहुत पास हो जाता है इसलिए उसका बिम्ब बड़ा दिखाई पड़ता है और जब तक सूर्यसे १२° की दूरी तक नहीं हो जाता तब तक दिखाई पड़ता है। परन्तु बाहरी युतिके समय बुध सूर्यसे भी दूर हो जाता है इसलिए उसका बिम्ब छोटा दिखाई पड़ता है और जब उसकी दूरी १४° रहती है तभी छिप जाता है।※ शुक्र भी भीतरी युतिके समय सबसे बड़ा दीखता है और बाहरी युतिके समय सबसे छोटा।

इससे सिद्ध होगया होगा कि ग्रह अस्त होनेके पीछे कहीं चले नहीं जाते वरन् सूर्यके इतने पास होजाते हैं कि आंखसे दिखाई नहीं पड़ते। हां दूरबीनसे यह सूर्यके चाहे जितने पास हों दिखाई पड़ सकते हैं।

बुध और शुक्र दोनों ग्रहोंकी कक्षा पृथ्वीकी कक्षाके भीतर हैं इसलिए जो बात बुधके लिए कही गयी है वह शुक्रके लिए भी लागू है। अंतर केवल इतना है कि शुक्रकी कक्षा बुधकी कक्षासे बड़ी है इसलिए भीतरी युतिके समय शुक्र पृथ्वी के अत्यन्त निकट हो जाता है।

दूरबीनसे देखने पर बुध और शुक्र दोनोंमें उसी प्रकार कलाए दिखाई पड़ती हैं जैसी चन्द्रमामें। बाहरी युतिके समय दोनों ग्रह पूर्ण गोल दीखते हैं, क्योंकि उस समय पूरा प्रकाशित बिम्ब हमारे सामने रहता है। जब ग्रह कुछ बगलमें होजाता है तब पूरा प्रकाशित भाग हम लोगोंको नहीं दीखता, दिन दिन बिम्ब कुछ खंडित होता जाता है। परन्तु प्रकाश अधिक मिलता है, क्योंकि दूरी कम होती जाती है।

पश्चादस्त मयोऽष्टाभिरुदयः प्राङ्ग महत्तया।
प्रागस्तमुदयः पश्चादल्पत्वाद्दशभिर्भृगोः ॥ ७ ॥
एवं बुधो द्वादशभिश्चतुर्दशाभिरंशकै।
वक्री शीघ्र गतिश्चार्कात्करोत्यस्तमयोदयौ ॥ ८ ॥
सूर्य सिद्धान्त' उदयास्ताधिकारे

इसलिए खंडित ग्रह भी पास होनेके कारण अधिक प्रकाश देता है। भीतरी युतिके समय ग्रहका प्रकाशित भाग सूर्यकी ओर होता है इसलिए हमको ग्रहसे ज़रा भी प्रकाश नहीं मिलता और ग्रह एक काले धब्बेकी तरह दूरबीनमें दिखाई पड़ता है। शुक्रकी कलाएं चित्र ४३ में दिखलाई गई हैं।

चित्र ४४ में राशि चक्रका केवल वह भाग दिखाया गया है जहां मंगल वक्री और फिर मार्गी होता हुआ जान पड़ता है। स सूर्य केन्द्रमें है। पृथ्वी अपनी कक्षामें और मंगल अपनी कक्षामें सूर्यकी परिक्रमा इस प्रकार करते हैं कि वह राशि चक्रमें मेषसे वृष, वृषसे मिथुनमें जाते हुए (सूर्य से) दिखाई देते हैं। सूर्यमें स्थित मनुष्यको कोई ग्रह वक्री होते हुए नहीं दीख सकते; सब ग्रह एक ही तरफसे परिक्रमा कर रहे हैं, उसे ऐसा ही जान पड़ता है। हां पृथ्वी निवासियोंको मंगल मार्गी और शीघ्रगामी तथा मन्दगामी और स्थिर तथा वक्री, मन्दगामी, फिर मार्गी दिखाई पड़ता है। मंगलकी एक परिक्रमा ६८६ दिनमें पूरी होती है

$$\text{इसलिए } 10^\circ \text{ की परिक्रमा वह } \frac{६८६ \times १०}{३६०} \text{ दिनवा}$$

१९ दिनमें कर लेता है और इतने समयमें पृथ्वी १९° के लगभग चलती है, क्योंकि पृथ्वीकी एक परिक्रमा ३६५ दिनमें पूरी होती है अर्थात् १ दिनमें १° परिक्रमा होती है।

मान लीजिये पृथ्वी अपनी कक्षामें विन्दु १ पर है और मंगल भी अपनी कक्षामें विन्द १ पर है, तब पृथ्वी निवासियोंको मंगल राशिचक्रमें १ विन्दु पर दिखाई देगा। जब पृथ्वी १९ दिनमें अपनी कक्षाके विन्दु २ पर पहुँचती है, मङ्गल भी १०° चलकर अपनी कक्षामें विन्दु २ पर पहुँचेगा और हम लोगोंको दिखाई पड़ेगा कि वह राशि चक्रमें विन्दु २ पर है। जब पृथ्वी अगले १९ दिनमें विन्दु ३ पर पहुँचेगी मंगल भी विन्दु ३ पर अपनी कक्षा
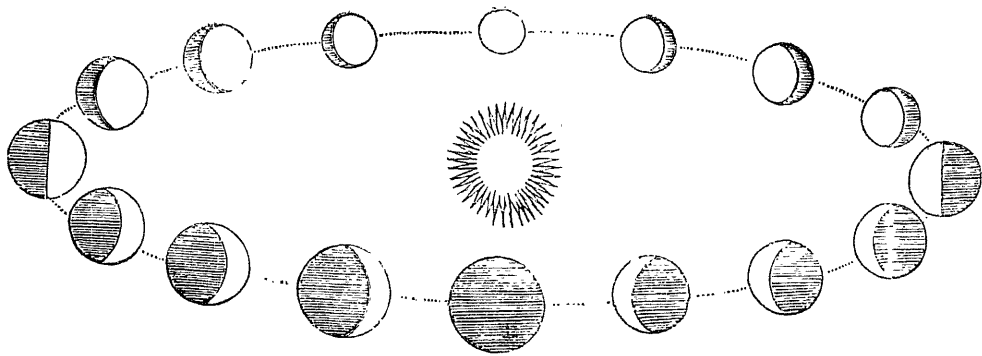
चित्र ४३—शुक्र की कलाएँ
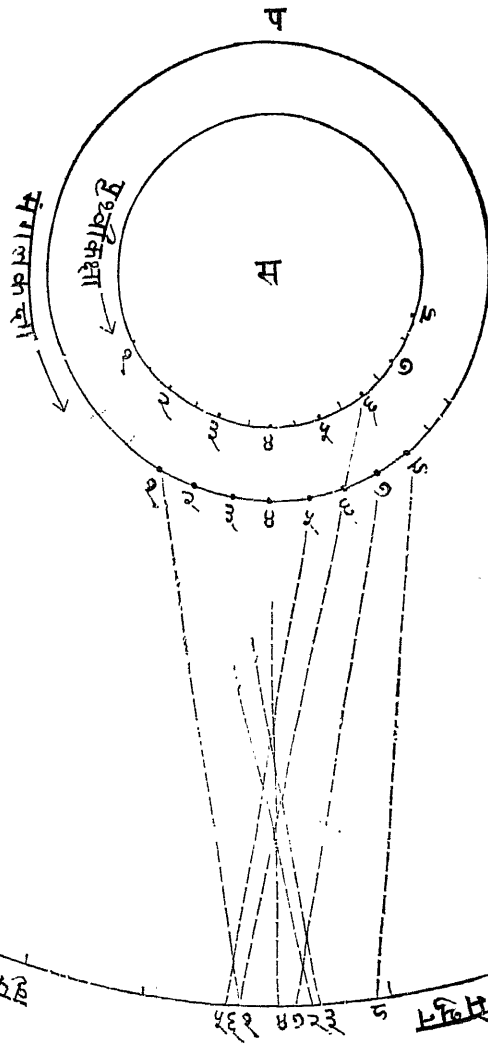
चित्र ४४—मंगल की भिन्न भिन्न गति
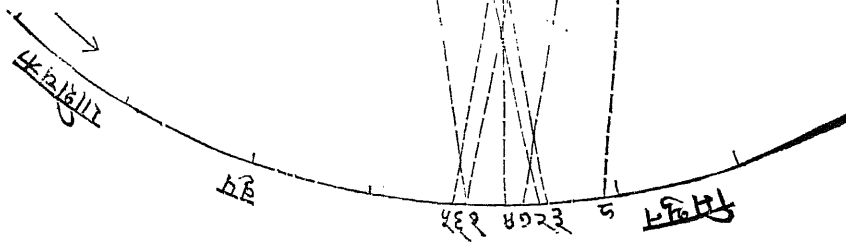
में पहुँचेगा और दिखाई पड़ेगा कि राशिचक्रमें वह २ विन्दुके पास ही ज़रासा आगे हटा है। यहां मंगल कुछ दिनों तक स्थिरसा जान पड़ेगा, क्योंकि १९ दिनके भीतर राशिचक्रमें २ से ३ तक बहुत कम गया है। जब पृथ्वी और मंगल अपनी अपनी कक्षामें विन्दु ४ पर पहुंचेंगे तब मंगल राशिचक्रमें विन्दु ४ पर अर्थात् पीछे हटा हुआ दिखाई पड़ेगा इसीको कहते हैं कि मंगल वक्री है यद्यपि मंगलकी चाल अपनी कक्षामें वैसी सीधी है। ४ विन्दु पर पृथ्वी, मंगल और सूर्यके बीचमें हो जाती है, अर्थात् पृथ्वीके दाहिने सूर्य होता है और बायें मंगल। इस प्रकार सूर्य और मङ्गलका अंतर ६ राशि या १८० का हो जाता है। इस स्थितिमें कहते हैं कि मंगल सूर्यके सामने दूसरी ओर है (षडभान्तर (in opposition)। जब सूर्य अस्त होता है तब मङ्गल पूर्वमें उदय होता है और जब सूर्य उदय होता है तब मङ्गल पच्छिममें अस्त होता है। इस स्थितिमें मंगल पृथ्वीसे अत्यन्त निकट होता है, इसलिए इसका विम्ब बहुत बड़ा दिखाई पड़ता है और दूरबीनसे देखनेपर इसी समय मंगल ग्रहकी बहुत सी बातें दिखाई देती हैं।

जब पृथ्वी और मङ्गल अपनी अपनी कक्षामें ५ विन्दु पर होते हैं तो हम लोगोंको मङ्गल राशिचक्रमें ५ विन्दुपर और पीछे हटा हुआ देख पड़ता है। दोनों ग्रह अपनी अपनी कक्षामें जब ६ विन्दु पर आते हैं तब मङ्गल राशिचक्रमें कुछ आगे खसका हुआ ६ विन्दुपर दिखाई देता है। यहां भी मङ्गल कुछ देरकेलिए स्थिरसा जान पड़ता है। फिर आगे बढ़ता हुआ दिखाई पड़ता है।

जब पृथ्वी और मङ्गलके बीचमें सूर्य होता है अर्थात् जब पृथ्वी ४ पर और मङ्गल 'म' पर होता तब मङ्गल की दूरी पृथ्वीसे अत्यन्त अधिक होती है। ऐसी स्थितिको 'मङ्गलकी सूर्यसे युति होती हैं' ऐसा कहते हैं। इस दशामें मङ्गलका विम्ब बहुत छोटा दीखता है।

इन दोनों चित्रोंसे यह प्रकट है कि पृथ्वी-कक्षाके भीतरवाले ग्रह उस समय वक्री होते दिखाई देते हैं जब भीतरी युति होनेको होती है और भीतरी युतिके समय वह वक्री ही रहते हैं। परन्तु पृथ्वी-कक्षाके बाहरवाले ग्रह उस समय वक्री होते हैं जब वह सूर्यसे ६ राशि अथवा १८० के लगभग दूरीपर होते हैं और जिस समय वह ठीक आमने सामने (in opposition) होते हैं, उस समय वक्री ही रहते हैं। भीतरी ग्रह (inferior planets) प्रत्येक परिक्रमाकी भीतरी और बाहरी दोनों युतियोंके समय अस्त रहते हैं अर्थात् सूर्यकी सीधमें रहनेके कारण सूर्यके प्रचण्ड प्रकाशमें कोरी आंखसे नहीं दिखाई देते हैं परन्तु बाहरी ग्रह (Superior planets) की एक परिक्रमामें केवल एक युति होती है, तभी यह अस्त हुए कहे जाते हैं।

इस प्रकार यह प्रकट है कि पृथ्वीको चलती हुई मान लेनेसे ग्रहोंकी विलक्षण गतियोंका समझना बड़ा ही सहज है। यदि पृथ्वी अचला मानी जाय तो यह किसी प्रकार नहीं समझाया जा सकता कि ग्रहोंकी वक्रीगति क्यों होती है। पिछले लेखोंमें पृथ्वीकी गतिके प्रमाण भी दिये जा चुके हैं।

सहयोगी विज्ञान

अल्यूमीनियम से हानि—सहयोगी स्वराज्य ने अल्यूमीनियमके विषैले बर्तनसे होने वाली हानियों का २३ मईके अंकमें वर्णन किया। सचमुच इन बर्तनोंका प्रचार हमारे देशमें इतना अधिक हो गया है कि इनसे बचनातो दूर रहा, इनका इस्तेमाल घटाना भी कठिन है। यह बर्तन शुरू शुरूमें तो चमकीले होते हैं पर बर्तने के कुछ दिनों बादही धीरे धीरे इनमें बारीक बारीक गड्ढे पड़ते जाते हैं और इन गड्ढोंमें गन्दगी इकट्ठी होती जाती है जिससे कि बर्तनोंकी सफाई असम्भव हो जाती है। इनका रूप इतना भद्दा हो जाता है कि खाने पीनेके काम में लाने योग्य नहीं रह जाते। यहतो केवल मानसिक

बात हुई। हमारे सहयोगीने अपने एक लम्बे लेखमें इन बर्तनोंकी हानियोंपर विस्तार पूर्वक लिखा है। उस लेखसे हम अपने पाठकोंके हितार्थ उपयोगी अवतरण देते हैं।

संयुक्त देश अमेरिकाकी सरकारने इस धातुके गुण-दोषकी यथार्थ जांच करनेके लिये एक कमेटी नियुक्तकी थी, उसकी रिपोर्ट हालहीमें प्रकाशित हुई है। उसमें बतलाया गया है कि इस धातुके बर्तनोंमें भोजन बनाना, रखना या खाना अत्यन्त हानिकर है। इसके पात्रोंमें बना हुआ भोजन पाचन शक्तिको नष्ट कर कई रोग उत्पन्न करता है। अडीठ या कार्बेङ्कल नामक पीठका फोड़ाभी प्रायः इसी धातुके बर्तनोंमें लगातार भोजन करते रहनेसे होता है। इसीलिए अमेरिकन सरकारने कुछ पुस्तकें तथा लाखों विज्ञप्तियाँ इस विषयकी छपा कर लोगोंमें बिना मूल्य बँटवाई हैं; जिससे कि वे इस धातुका उपयोग एकदम बंद कर दें।

'उत्तर ब्रिटिश मेडिकल जनरल'में एक डाक्टरने बतलाया है कि 'एल्यूमीनियमके बर्तनों पर सोडियम-द्वि कार्बोनेटका बुरा असर पड़ता है। क्योंकि ये बर्तन सोड़ा या सोड़ा मिले हुए पदार्थोंसे ही साफ किये जाते हैं।" इसी प्रकार लंदनके "होमियोपेथिक वर्ल्ड" नामक पत्रके संपादक डॉ० क्लार्कने अपने अनुभवसे बतलाया है कि "मेरे एक रोगीके पेटमें बुरी तरह दर्द होता था। इसके कारणकी बारीकीसे जाँच करने पर पता लगा कि वह अपनी दवाई एल्यूमीनियमके बर्तनमें छानकर पीता था। जब मैंने उसे ऐसा करने से रोक दिया तो दो ही दिनमें उसकी बीमारी दूर हो गई।"

दूसरे एक डाक्टरका कहना है कि "इस धातुके बर्तनोंमें रखा भोजन पेट और आंतों पर बुरा प्रभाव डालता और अजीर्ण, पेटका दर्द एवं घबराहट, हौलदिली, क़ै (उलटी) आदि रोग उत्पन्न करता है, तथा इसके सूक्ष्म रोग जन्तु शरीरमें भयङ्कर विष फैलाते रहते हैं। इसीलिये अंग्रेज़ सरकारने फौजी विभागमें इस धातुके विषोत्पादक बर्तनोंका उपयोग एकदम बन्द करवा दिया है।

प्रत्यक्ष अनुभव करनेके लिए यहां कुछ प्रयोग दिये जाते हैं; जिनसे हरएक व्यक्ति इस धातुके गुण-दोषका पता लगा सकता है।

(१) एल्यूमीनियमके बर्तनमें पिसा हुआ नमक भर कर उसे ओसमें रातको रखदिया जाय; तो सुबह उसमें जगह जगह झरे पड़ जायँगे और बाहर पर्त पर नमक जम जायगा।

(२) यदि १५ मिनट तक एल्यू-मीनियमके बर्तनमें साफ पानी खूब गर्म करके उसे एक शीशीमें भर दो, तो उसमेंसे जो भाफ़ उठती दिखाई देगी, उसमें फिटकरीका अंश होगा और वह पानी भी साफ न रहेगा; जबकि साफ़ पानी तांबा-पीतलके बर्तनमें गर्म किया जानेके बाद भी उसी दशामें स्वच्छ बना रहेगा। पीने पर दोनों प्रकारके पानीका भेद भी समझमें आ जायगा।

(३) यदि ३० मिनटतक गाजर आदिका शोरुआ एल्यूमीनियमके बर्तनमें रखा जाय तो उसमें आठवां भाग इस धातुका मिला हुआ दिखाई देगा।

(४) यदि कच्ची खटाई, इमली, अमचूर या खट्टी छाछको इस धातुके बर्तनमें रखकर गर्म किया जाय और वह किसी रोगीको पिलाया जाय तो उसे तत्काल उल्टी हो जायगी और पेटमें दर्द पैदा होकर दस्त लगने लगेंगे। किन्तु अन्य कलई किये हुए अथवा लोहेके बर्तनमें गर्म की हुई खटाईका ऐसा कोई असर न होगा।

इस प्रकारकी हानिकर धातुकी रोकके लिए जहां अमेरिका और इग्लैंड ज़ोरोंसे प्रयत्नशील हैं, वहीं जर्मनी इसके प्रचारके लिए ज़ोर दे रहा है। वहांके 'न्यूहेल्थ' नामक पत्रने प्रकाशित किया है कि "वैज्ञानिक दृष्टिसे एल्यूमीनियम बिलकुल निर्दोष है।" बर्लिनकी केन्सर-रिसर्च हास्पिटलके डा०ने भी अपने अनुभव द्वारा बतलाया है कि कैन्सर (अंतर्व्रण) का एक भी रोगी एल्यूमीनियमके कारण बीमार नहीं हुआ। इसलिए इस धातुसे भयभीत

होने की ज़रा भी ज़रूरत नहीं है किन्तु जर्मनीके इस प्रकार एल्यूमीनियमके प्रचारका समर्थन करनेमें एक विशेष स्वार्थ छिपा हुआ है। वह यह कि एल्यूमीनियमकी पैदावार अकेले जर्मनीमें ही होती है; और वह यदि इसके दोषोंको छिपाकर इसकी उत्तमता को प्रमाणित न करे तो इस व्यवसाय-मंदीके ज़मानेमें उसका यह रोज़गार ही डूब जाय। इसलिए हमें उसकी स्वार्थ-वृत्तिसे सावधान होकर अपने स्वास्थ्यकी दृष्टिसे इस धातुका उपयोग एकदम बन्द कर देना चाहिए।

विशेष विषयके सामयिक पत्रोंमें उन उन विषयों पर विशेष जानकारी वाले लेख तो होने ही चाहियें। परन्तु साधारण सामयिक पत्र जो जनताकी सभी तरहकी रुचियोंके अनुकूल विषय-सामग्री देते रहते हैं, बहुधा, समुचितरीत्या, विशेष विषयोंपर भी लेख देते रहते हैं। इन विषयोंमें इधर पन्द्रह बीस बरसोंसे उन वैज्ञानिक लेखोंके प्रकाशनपर भी पत्र सम्पादकों का ध्यान रहा है जिनकी देशको आवश्यकता है। हमारा देश कृषि प्रधान है। इसीलिये कृषि विज्ञान और वनस्पति शास्त्र सम्बन्धी लेखोंका अधिक निकलना उचित ही है। साप्ताहिक "प्रताप" में मुद्दतसे प्रत्येक अंकमें प्रायः कृषि संबन्धी कोई न कोई उपयोगी और पठनीय लेख रहता ही है। हालका निकला "दरिद्र नारायण" अपनेको कृषि तक ही सीमित नहीं रखता। वह किसानोंको उपदेश देता, दवाइयां बताता वैद्यक सिखाता और तरह तरह की शिक्षा देनेमें तत्पर रहता है। "दरिद्र नारायण" नामसार्थक करता है।

मासिक पत्रोंका तो कर्त्तव्य है कि अपने पाठकों के हितार्थ सभी तरहके विषयोंका समावेश करें। हिन्दीके मासिक पत्र अपने इस कर्त्तव्यका पालन उचितरीतिपर करते हैं। प्रायः सभी पत्रोंमें कोई न कोई लेख वैज्ञानिक विषयोंपर रहता है। अषाढकी सुधामें श्रीयुत विश्वेश्वर रिसर्च स्कालरका "धनुर्वेद" पर खोजवाला एक अच्छासा लेख है। इस विषयपर हमारे यहाँ बहुत विस्तृत साहित्य रहा होगा। रामायण महाभारतादि इतिहास साक्षी हैं आज उनका पता नहीं है। इसपर बड़े अन्वेषणकी आवश्यकता है। मईके "विश्वमित्र" में स्वयं डा० हेम चन्द्र जोशीने "इक्कीसवीं शताब्दीमें भारतके नवीन रूप" के चित्रणमें वैज्ञानिक कल्पनाके घोड़े सरपट दौड़ाये हैं। जूनके अंकमें "ऋषियोंकी अन्धगुफाओंमें विज्ञान" के प्रकाशमें योगियोंके साधनोंके चमत्कारकी साक्षी दी है।

जुलाईके अंकमें "उपवासका स्वास्थायी संबन्ध" डा० रविप्रताप सिंहका एक अच्छा लेख है। महात्माजीके विश्व प्रसिद्ध उपवासने तो उपवासोंपर लेखों के भरमार कर दिये। इस एक उपवास विषयका अजीर्ण हो गया।

हंसके मईके अंकमें "प्राकृतिक स्नान" पर श्री शिवप्रसाद सिंह विश्वेनका एक पठनीय लेख है। जूनके अंकमें श्री वासुदेव शरण अग्रवालने "हिन्दीके कुछ शब्द" पर एक छोटेसे लेखमें पाठकोंको प्राकृतके अनुशीलनकी ओर उत्साहित किया है।

'गंगा' मेंतो विज्ञानकी एक अनवरत धारा बहती रहती है। ज्येष्ठके अँकमें "विजयराज्य वत्सर" पुरातत्त्वपर "कीटाहारी पौधा" वनस्पति विज्ञानपर और श्री पं० किशोरीदास जी बाजपेयीका भाषास्वातन्त्र पर "भाषाभ्रम" भाषा विज्ञान पर बड़े विचार पूर्ण लेख हैं। असाढ़के अँकमें "विटामिन" पर जैवरसायनकी और "इच्छाशक्ति" पर मनोविज्ञान में एवं "आचार्य्य रमन" की जीवनीपर अच्छे लेख हैं। वैज्ञानिक लेख प्रायः सभी बा० ब्रम्हानन्दजीके हैं और सुबोध एवं सुपाठ्य हैं।

विशाल भारतके फरवरीके अँकमें "भारतीय एडीसन-डा० शङ्कर ए० विसे" नामक लेख श्री श्याम नारायण कपूरका बड़े महत्त्वका है। अपने रत्नोंको हम जानते तक नहीं उनका आदर तो क्या करेंगे। अप्रैल के अँकमें "भारतवर्षमें होमियो पैथी" नामक लेखसे पता चलता है कि यहाँ इस विज्ञानका व्यवहार कैसे बढ़ा।

सुधाके जुलाईके अंकमें "रेडियमके चमत्कार" और "निमोनिया" यह दो वैज्ञानिक लेख हैं। दोनोंही

रोचक और उपयोगी हैं। वैशालीके पौषके अंकमें श्री मुरारि प्रसाद जी अडवोकेटका "संगीत विज्ञानका विवेचन" नाम का लेख विवेचना पूर्ण है।

विज्ञानके पिछले वृषके अंकमें हमने जम्बुनाथन जीके "हिन्दी व्याकरणका सुधार" नामक लेखको "हिन्दी प्रचारक" के शताब्दि अंकसे उद्धृत करते हुए अपनी टिप्पणियां दी हैं। पाठकोंने पढ़ा होगा। उस मूल लेखको पढ़कर हिन्दीके अधिकांश लेखक प्रसन्न नहीं हुए। जम्बुनाथनजीके उग्र और कुछ बेढंग प्रस्तावोंपर सहृदयता पूर्वक विचार करनेवाले कम ही निकलेंगे। श्री भालचन्द्र आपटेने तो प्रचारकके छटे अंकमें उन्हें बेतरह फटकारा है। यह हम मानते हैं कि सभी प्रान्तोंकी ओर से प्रस्ताव करना श्री जम्बुनाथन जी की भूल है परन्तु अपनी समझके अनुकूल कोई भला बुरा प्रस्ताव सबके सामने रखना कोई अपराध नहीं है। स्वयं हिंदी भाषाके अच्छे अच्छे लेखक अनेक बातों पर अब भी व्याकरण और लिपिसुधारके सम्बन्धमें प्रस्ताव करते रहते हैं और उनपर वादविवाद होते रहते हैं। इसपर रोषकी कोई आवश्यकता नहीं है क्योंकि इस बातका कभी किसीको कोई डर नहीं होना चाहियेकि कोई अंट सन्ट बना नियम कहनेसे ही चल पड़ेगा और किसी एक व्यक्ति या दसबीस लेखकों की भी सलाहसे हमारे व्याकरणमें क्रान्ति हो जायगी। क्रान्ति जिन प्राकृतिक और वैज्ञानिक नियमोंका अनुसरण करती है जब तक उनका ठीक ठीक प्रहार और सँहार जानने और करने वाला उनका प्रयोग न करेगा तब तक ऐसी क्रान्तिका कोई भय नहीं है। जब ऐसा अपप्रत्याशित अवसर उपस्थित होगा तब शास्त्रार्थ न होगा। तब प्रकृतिके सामने सिर झुकाना पड़ेगा। तब तक सहृदयतासे इन प्रस्तावोंपर शान्त विचार करनेमें कुछ बिगड़ता नहीं।

रोशनी—यह उर्दूकी वैज्ञानिक मासिक पत्रिका है जो बड़ी मुद्दतसे दी सोसैटी फारप्रोमोस्पेसैंटिफिक कालिजकी ओरसे लाहौरसे वहांके सरकारी शिक्षा विभागकी संरक्षकतामें प्रकाशित होती रहती है। इसके भी ३२ पृष्ठ ही निकलते हैं। इसके लेख मनोरंजक और उपयोगी वैज्ञानिक विषयों पर हुआ करते हैं। इसके विज्ञानकी सीमा भी उदार है। ऐतिहासिक खोजका विषय भी समुचित रीतिसे वैज्ञानिक स्तंभोंमें स्थान पाता है। वार्षिक मूल्य २)

कल्पवृक्ष—सेठ कुवेरदास जी कल्याण जी की संरक्षकतामें और पं० दुर्गाशङ्कर जी नागरकी सम्पादकतामें यह अध्यात्मविद्याका मासिक पत्र ११ वर्षोंसे निकल रहा है। इसमें अध्यात्म विज्ञान सम्बन्धी सभी तरहके लेख निकलते हैं। आनुषङ्गिक विषयोंपर भी कोई कोई लेख निकलते हैं। डिमाई आकारका यह पत्र भी ३२ पृष्ठोंमें उज्जैनसे प्रतिमास निकला करता है। वार्षिक मूल्य २॥)।

सृष्टिज्ञान—यह मराठीका वैज्ञानिक मासिक पत्र पांच वर्षसे पूनेके आर्य्य भूषण प्रेससे निकल रहा है। इसका आकार डबल क्राउन १६ पेजी है और प्रति मास ४८ पृष्ठ निकलते हैं। जनवरी, फरवरी और मार्चका संयुक्तांक हमारे सामने है। इसके लेख प्रायः सभी सुबोध, रोचक और जन-शिक्षाके लिये उपयोगी हैं। "रेडियो" "वनस्पतिके शरीरकी अन्तर रचना" "धातु और धातु मिश्रण" "बरसात" "गणित शास्त्र" तेलका रंग "विष" "याही पोटाश" "कपूर" "खनिज तैल" पाताल गंगा" विद्युत आदि बड़े अच्छे २ लेख इस संयुक्तांकमें आये हैं। विषय चयन बड़ा ही सुन्दर हुआ है प्रत्येक अंकमें किसी न किसी वैज्ञानिककी जीवनी है। उपयुक्त और आवश्यक चित्रभी दिये गये हैं कठिन से कठिन विषयको बड़ी सफलता के साथ रोचक और सुबोध बनाया गया है। इस मासिक पत्रका आकार प्रकार छपाई सफाई सब कुछ सराहनीय है। मराठी पाठकोंकेलिये यह मासिक पत्र वही काम कर रहा है जो विज्ञान हिन्दी पाठकोंके लिए

करता है ऐसा सुन्दर पत्र निकालनेके लिए हम प्रकाशकों को बधाई देते हैं।

प्रकृति—यह सचित्र वैज्ञानिक पत्रिका बंगला भाषामें ऋतु ऋतुपर निकलती है। वर्षमें इसके छः अंक प्रकाशित होते हैं। रायल अठपेजे आकारके प्रायः ३२ पृष्ठ इसमेंभी हुआ करते हैं। हमारे सामने शरत् और हेमन्तकी संयुक्त संख्या है। यह पत्रिका नौ बरसोंसे निकल रही है। सजधज सुन्दर है। इसका लेख चयनभी विज्ञानके प्रचारकी ही दृष्टिसे बहुत उपयुक्त हुआ करता है। "प्रसरण शीलविश्व" "कोयला" "पृथ्वीकी शरीर रचना" "संबलपुरकी नरबलि" "बंगालकी मछलियोंके वैज्ञानिक नाम" "बंगला नामकरण में उद्भिद्" "भारतके पेड़" आदि लेख बड़े उपयोगी हैं। इसके सम्पादक हैं श्री सत्यचरण लाहा, ५० कैलास बोस स्ट्रीट कलकत्तेसे प्रकाशित होती है। इसका वार्षिक मूल्य ४) है।

वैदिक विज्ञान—यह मासिकपत्र आर्य्य-साहित्य मंडल अजमेरसे प्रकाशित होता है। आकार विज्ञान जैसा है। इसमें प्रायः ४८ पृष्ठोंमें ठोस सामग्री रहा करती है। इस पत्रका विषय 'वेद' है और वेद और उसपर आश्रित आर्य ग्रंथोंके तत्त्वोंपर गंभीर अनुसंधान, खोज, आलोचनप्रत्यालोचन तथा विशुद्ध वैदिक आर्य सिद्धान्तों और आर्य वैदिक सभ्यताका प्रकाशक रक्षक और प्रचारक है। आषाढ़मासका अंक इसका पहले वर्षका नवां अंक है। आकार प्रकार छपाई सफाई सभी सन्तोषजनक है। इसके अवैतनिक सम्पादक हैं प्रो० विश्वनाथजी विद्यालंकार गुरुकुल कांगड़ी। इसका वार्षिक मूल्य ४) है।

सम्पादकीय टिप्पणियाँ

न टूटने वाला काँच—काँचका उद्योग और व्यवसाय हमारे देशमें आजसे कमसेकम ३००० वर्ष पहले ऐसा साधारण और लोकप्रिय था कि व्याकरणके विद्यार्थी भी उसकी विधियोंसे परिचित थे। यदि ऐसा न होता तो शाकटायन नामक वैय्याकरण जो पाणिनिसे बहुत पहले हो चुका है अपने व्याकरणमें मुख-मण्डलके भीतर वायुके आघातसे स्वरों और व्यञ्जनोंके रूप बन जाने की उपमा काँच वालेके सांचेके भीतर फूँककर विविध रूपोंके बर्तन बनानेसे न देता। सन्सार में जैसे काँचके बनानेकी क्रिया अनादि कालसे जानी हुई है उसी तरह ऐसे काँचका निर्माण जो कि घनसे भी न टूटे कांच निर्माण कलाकी पराकाष्ठा समझी जाती थी। ऐसे काँचको वज्र कहते थे। जान पड़ता है कि हम लोग हजारों बरससे वज्र का बनाना भूल गये हैं। आज कलके वैज्ञानिकोंने ऐसे ही काँचका एक प्लेट बरसोंके अथक परिश्रम से बना पाया है। घनसे जोर जोर पीटे जानेपर भी यह न टूटा। पन्द्रह फुटकी ऊँचाईसे एक बहुत भारी लोहेका गोला इसपर गिराया गया, कोई असर इसपर न हुआ। यदि इस काँचके बनानेमें सब तरहकी सफलता हुई तो इससे यन्त्रोंके काम में अवर्णनीय सुभीता होगा।

गन्नेकी जन्मभूमि चीनवाले विक्रमसे तीन सौ वर्ष पहले तक ईख या गन्नेसे परिचित न थे। ब्रेस्क नीडरने लिखा है कि गन्नेका उल्लेख चीनियोंके प्राचीन ग्रन्थोंमें नहीं पाया जाता। गन्ने की कुछ चर्चा केवल उन्हीं ग्रन्थोंमें मिलती है जो सं-२५७ विक्रमसे पूर्वके इधरके हैं। पेन्टसोओं के अनुसार ६८४ विक्रमीमें एक आदमी चीनसे यहां आया और बिहारमें रहकर शकर बनाना सीख गया। भारत वर्षके प्राचीन ग्रन्थोंमें गन्नेका कई जगह वर्णन है। संस्कृतमें गन्नेके आठ भेद बताये गये हैं—

इक्षुश्च कर्कटो वशः कान्तारो वेणुनिःस्टतिः ।
इक्षुरस्य पौण्ड्क रसालः कुसुमारकः ॥

भारतवर्षसे सिकन्दर आज़म गन्नेको एशिया माइनर लेगया। धर्म युद्धोंके समय गन्ना शाममें उगता था, जब सेना वहाँसे लौटी तो वेनिस वालों को गन्नेका कुछ हाल मालूम हुआ। स्पेन वालों ने संवत् १५२७ में पहले पहल इस पौधेको कैनेरी द्वीप समूहमें पहुँचाया। जब डच वहाँसे निकाले गये तो वह इसे भी वेस्ट इडियन द्वीपमें ले गये। इङ्गलैण्ड आदि देशोंमें सत्रहवीं शताब्दीमें गन्नेकी काश्त शुरू हुई।

इङ्गलैण्ड, स्काटलैण्ड और यूरोपके बखरोंको यह स्वर्गीय पदार्थ, खांड मुसल्मानोंकी बदौलत बराबर मिलता रहा। यह बहुमूल्य पदार्थ समझा जाता था। घरकी बड़ी बूढ़ी स्त्रियां शकर मर्त्तबानों में बन्द करके रखा करती थीं और त्योहारोंपर बच्चोंको थोड़ा थोड़ा दे दिया करती थीं। १३८६ बि० में स्काटलैण्डमें एक छटांक चांदीकी एक सेर शकर मिलती थी। १३३७-१८५६ विक्रमीका भाव ९ पेंस प्रति पौण्ड हो गया। वेस्ट इण्डियन द्वीप समूहके खेतोंपर मुग्ध होकर अंग्रेजोंने खूनकी नदी बहादी और नेपोलियनसे उन्हें छीन लिया परन्तु वहांकी शकर भारतसे जाने वाली शकरके सामने ठहर नहीं सकती थी। अतएव उदार हृदय वाले अंग्रेजोंने उसकी क़द्रकी और ऐलान कर दिया कि जो पवित्र भारतीय चीनीको लेगा वह ३७ पौण्ड प्रति हंड्रेडवेट (३२०) मन अथवा ७) सेर, चढ़ावा (कर) देगा।

परन्तु ईश्वरके घरमें न्याय होता है। सम्वत् १८१४ विक्रमीमें प्रोफेसर मारग्रेफने बीटरूट चुक़न्दर) से चीनी निकाली नैपोलियनने फौरन चुक़न्दरकी काश्त और उससे चीनी बनाने वालोंकी सहायता करनी शुरू कर दी, क्योंकि वह जानता था कि इङ्गलैण्डको शकर मिलना मुश्किल होगा। थोड़ेही दिनोंमें चुक़न्दरकी चीनीने बाज़ार अपने अधिकारमें लेलिया। जो लाभ इङ्गलैण्डको वर्षों तक, प्रचुर धन लुटाकर और आदमी कटाकर हुआ, वही लाभ फ्रांसको नैपोलियनके एक छोटेसे कामसे हो गया।

मानव शरीरका विश्लेषण—हम अपनेशरीरको बड़ी सावधानीसे पालते पोसते हैं, क़ीमती कपड़ोंसे सजाते हैं और भरसक उसमें किसी तरहका दोष नहीं आने देते। हमारे लिये हमारा शरीर ईश्वरका अनमोल देन है परन्तु हालमें ही एक अमेरिका वासी वैज्ञानिकने यह हिसाब लगाकर प्रमाणित किया है कि यदि मानव शरीरकी सब धातुएँ शुद्ध रूपमें अलगा कर बेची जाँय तो ५) से ज्यादा दाम नहीं मिलेंगे। बहुत सतर्कतासे विश्लेषण करके उसने हिसाब लगाया है कि जितनी चर्बी हमारे शरीरमें मौजूद है उन सबका साबुन बने तो केवल सात छड तैयार हो सकेंगे। शरीरका सारा लोहा इकट्ठा करके काममें लाया जाय तो शायद एक छोटी सी कील बन सकेगी, कुल शकर इकट्ठीकी जाय तो एक गिलास शर्बत बन सकता है और शरीर के भीतर जितना स्फुर है सब मिलाकर लगभग ५० दियासलाइयोंके लिये काफ़ी होगा; गन्धक और चूना इतना कम है कि एक घरौंधेमें जलाकर उसके भीतरके कीड़े मारे जा सकते हैं और फिर उसकी सफेदी की जासकती है। यदि वैज्ञानिकके इस लेखमें अत्युक्ति भी हो तो वह बहुत बड़ी नहीं हो सकती। इसी हिसाबसे एक बहुत बड़ी बात यह मालूम होती है कि साधारणतया हमारा शरीर कितना निकम्मा है। ५) तो बहुत ज्यादा होते हैं। मनुष्यका मुर्दा ५) कोभी बहुत महंगा है। पशुओंकी खाल और सींग तक काममें आते हैं। इसीलिये मनुष्यको चाहिये कि अपने निकम्मे शरीरको ऐसा साधे कि अपने जीते जी उससे बड़ी से बड़ी क़ीमत वसूल कर ले। क्या कोई वैज्ञानिक एक लेख ऐसा लिखेगा जिससे यह मालूम हो कि जीवनका अधिकसे अधिक उपयोग कैसे किया जाय कि शरीरकी सबसे ज्यादा क़ीमत वसूल हो सके।

गौरीशंकर शिखरपर उड़ाके—अंग्रेज

उड़ाकोंने इस बर्ष दो बार विमानोंपर सवार होकर गौरीशंकर शिखरपर चढ़ाई की। पहिलीबार मौसिम कुछ विपरीत था; दूसरी बार उससे अधिक अच्छा मौसिम मिला और बहुत स्पष्ट दृश्य देखनेमें आये। लगभग चार घण्टेमें यात्रा पूरी हुई। यात्रियोंका दल पूर्नियाँसे चला था।

गौरीशङ्कर शिखर हिमालयका सबसे ऊँचा शिखर है। इसकी ऊँचाई २९००२ फ़ीट है। इसका नाम अंग्रेजोंने माउँट एवरेस्ट रक्खा है। इस नामकरणकी कहानी कम लोगोंको मालूम है। एवरेस्ट नामके व्यक्तिसे इस पहाड़की चोटीका उतना सम्बन्धनहीं है जितना कि सोडाका सोडावाटरसे। सर जार्ज एवरेस्ट नामका भारतीय अनुसन्धान विभागमें एक सबसे बड़ा अफ़सर होगया है। एवरेस्टके चले जानेपर उसका स्थान सर ऐंड्रू वाफ़ने लिया। सरऐंड्रू पहाड़ोंकी नाप जोख करने गौरीशङ्करके आस पास घूम रहे थे। उनके साथ उनके सहायक राधानाथ सिकदार भी थे। एक दिनकी बात है कि बा० राधानाथ सर ऐंड्रूके खेमेमें एकाएक घुस पड़े और मारे खुशीके चिल्ला उठे "हुजूर मैंने संसारके सबसे ऊँचे पर्वतका पता लगाया है।" साहबने कहा "खूब किया" और राधानाथ सिकदारने जिस चोटी का पता लगाया था उसका नाम सर ऐंड्रूने अपने पूर्व प्रभु एवरेस्टके नामपर रक्खा। राधानाथ सिकदारका नाम लोग भूल गये। राधानाथ सिकदार सम्वत् १८७० में पैदा हुए थे। यह तीस रुपये मासिकपर भारतीय अनुसन्धान विभागमें सर जार्ज एवरेस्टकी मातहतीमें नौकर हुए थे। अपनी अलौकिक प्रतिभा और अद्भुत अध्यवसाय से कुछ ही कालमें उसी विभागमें बाबू राधानाथ सिकदार ६००) मासिक पर एक बड़े पदाधिकारी नियुक्त होगये। बाबूराधानाथ सिकदारने विमानका सहारा नहीं लिया था। सर ऐंड्रूकी मातहतीमें गो० शिखरोंकी ऊँचाईकी नाप कर रहे थे। उन्होंने इस सबसे ऊँचे शिखरका पता लगाया और साधारण पथारोहणकी विधिसे। बिमान पर उड़कर पता लगानेमें उतनी जोखिम नहीं है जितनी कि आरोहण द्वारा। आरोहण की विधिसे जाने वाले अनेक खोजियोंके प्राणपखेरू प्रचण्ड झञ्झावात् में उड़ गये हैं। हाउस्टन दलने इस यात्रामें सफलता पाई इसके लिये उन्हें बधाई है। कुछ हो हमें राधानाथ सिकदार को नहीं भूलना चाहिये। गौरीशङ्कर शिखरका पता पहले पहल राधानाथ सिकदारने हो लगाया है और वह २९००२ फुट तक पहुँच गये थे। सर्वश्री हेरिस, रेगर और लीग लैण्ड २९१४० फुट तककी ऊँचाई तक पैदल पहुँचे, यह सबसे हाल की खबर है इसके आगे न बढ़ सके। उनके और साथी और ऊपर जानेकी कोशिश में है।

साहित्य विश्लेषण

इंजिनियर—इंजिनियरी विद्याका यह अंग्रेजीका मासिक पत्र सुपररायल आकारके ३२ पृष्ठोंमें निकलता है। इसको निकलते ग्यारह बरस हो गये हैं। इसमें इंजिनियरी सम्बन्धी सभी तरहके वैज्ञानिक लेख रहते हैं। इसके सम्पादक हैं श्री वी० एइच० मनोहर तथा श्री डी० वाइ० फाटक। वार्षिक मूल्य ४) हैं। इसके प्रकाशक हैं गोपालराव बलवन्त जोशी, आनन्दप्रेस पूना। अखिल भारतीय संस्था मिक्यानिकल इंजिनीयर्स असोसिएशनका प्रधान कार्य्यालय अकोलामें है। शोलापुरमें उसीकी एक शाखा है। प्रकाशन कार्य्य उसी शाखाकी ओरसे पूनेसे ही होता है। उसके दोनों सम्पादक अकोलेके ही हैं। इस पत्रका सम्पादन बड़ी योग्यतासे होता है।

तत्त्वज्ञानमंदिर—यह मराठीका त्रैमासिक पत्र चौदह बरससे अमलनेरसे निकलता है। इसका विशेष बिषय है अध्यात्म विज्ञान और दर्शन। इसमें इधर कुछ कालसे कुछ हिन्दीके लेखभी रहते हैं। लेख बड़े गंभीर और मौलिक विचारके होते हैं। इसके सम्पादक हैं श्री दिनकर सांवलाराम नाईक।

अमलनेरमें "दि इंडियन इंस्टिट्यूट आफ फिलासफी" नामकी एक संस्था है। उसीकी ओरसे इसका प्रकाशन होता है। पौषकी संख्याके विषय हैं, "कर्म मीमांसा मानसशास्त्रीय दृष्टिसे ज्ञाता के ज्ञानकी संभावना" "ब्रैडलेके आत्म विषयक विचार तथा उनकी विवेचना" "जीवात्माका पूर्ववृत्तित्व और विषय वैलक्षण" "मायाका प्रश्न" "सत्तत्व विचार" और "सदसद् मीमांसा।" ये विषय सुमुद्रित पचास सुपररायल अठपेजे पृष्ठों में आये हैं। यह पत्र उक्त संस्थासे (जि० पूर्व खान देशके) अमलनेरसे प्रकाशित होता है।

रा० गौड़

अचेतको सचेत करनेका उपाय

"कल्प वृक्ष" की विगत जूनकी संख्यामें इसी शीर्षकसे जो लेख छपा है, अत्यन्त उपयोगी है। विज्ञान के पाठकोंके लाभार्थ हम वह अंश उद्धृत करते हैं—

गत चेतन मनुष्यको बैठाकर अपने एक घुटने का सहारा उसकी पीठपर लगाओ। अपना दूसरा घुटना उससे कुछ पीछे रक्खो। फिर अपने हाथोंके दोनों अंगूठोंको गलेकी हड्डी (हँसली) के ऊपरके गड्ढोंमें मसलो। इस स्थानकी रगें पतली होनेके कारण, बहुत-सी नसोंपर अत्यन्त शीघ्र और सीधा प्रभाव पड़ सकता है। अपने हाथोंके शेष भाग उस मनुष्यकी छातीपर चपटे करके रक्खे रहें। अँगुलियोंके सिरे नीचेकी ओर रहें। अँगूठोंको उन गड्ढोंमें खूब जोरसे दबाया जाय और छाती भी दबी रहे। इससे शीघ्र ही श्वासकी गति उत्पन्न हो जायगी। फिर धीरे २ अँगुलियोंको बाहरकी ओर करके (बिना अंगूठेकी अपने पहिले स्थानसे हटाये) छातीको दोनों ओर बाहरकी तरफ खींचो। ऐसा करनेसे छाती फैलेगी और रुधिरकी बड़ी नलियोंमें गति उत्पन्न हो जायगी। अपने हाथोंकी गतिको प्रति सेकिण्ड एक बारसे प्रारम्भ करके प्रति सेकिन्ड छै सात बारतक तेज करदो। इस प्रकार अपने हाथोंसे ऊपर और नीचेकी ओर लगभग १५ सेकण्ड तक मसलते रहो, तब अचानक अपने घुटनेकी एक चोट उस मनुष्यकी रीढ़की हड्डीके मध्य भागके सातवें स्थान पर (The Meg-ion of the seventh dorsal erte brae) लगाओ। और उसी क्षण उसके कानमें "ओरेम्" की ध्वनि जोरसे पहुँचादो तो अवश्य ही वह मनुष्य सचेत हो जायगा।

यदि पहिली बारमें सफलता न भी प्राप्त हो तो घबरानेकी अथवा निराश होनेकी बात नहीं। फिर दूसरी बार और भी जोरसे जल्दी २ और देरतक इस क्रियाको ऊपर बतलाई हुई रीतिसे करें तो अवश्य ही सफलता प्राप्त हो जायगी।

एक बात और स्मरण रखनी चाहिये। पानीमें डूबे मनुष्यके उदरसे पहले सब पानीको बाहर निकाल दें। तब यह क्रिया आरम्भ करें। पानी बाहर निकालनेकी सरल रीति यह है कि डूबे हुये मनुष्यकी टांगोंको अलग २ रखकर सिर नीचेको करके लटका दें। फिर पेटके गड्ढेमें, पसलियोंके नीचे दोनों हाथोंकी खोंपी (कैंची) बनाकर दबावें और तब उसको ऊपर और नीचेकी ओर झटके दें। ऐसा करनेसे फेफड़ोंपर जोर पड़ेगा और पानी उस मनुष्यके मुखमें होकर बाहर निकल जायगा। इस प्रकार पानी निकल जानेके पश्चात्भी यदि मनुष्य को चेतनता प्राप्त न हो तब ऊपर लिखी हुई सब क्रिया उस मनुष्यको बिठाकर करें तो अवश्य चेतनता प्राप्त हो जायगी।

नाश्तेकी जरूरत नहीं है।

"कल्पवृक्ष" के उसी अंकमें नाश्तकी व्यर्थता पर जो लेख है उसके नीचेका अंश भी उपयोगी है। यह बहुतोंने अनुभव करके देखा है।

प्रातःकालमें जब मनुष्य जागृत होता है उस वक्त उसको कोई चीज न खानी चाहिये; क्योंकि क्षीण या

नष्ट पुटोंके स्थानपर नये पुट उत्पन्न करनेकी उस समय आवश्यकता नहीं होती; निद्रा पुटोंका क्षय करनेवाली क्रिया नहीं है। प्रातःकाल जठरकी खुराक को पाचन करने जैसी अवस्था नहीं होती है। जो मनुष्य सुबह दूध पीते हैं या चाय या बिस्कुट लेते हैं या सर्दीके दिनोंमें सात या आठ बजे भोजनकर लेते हैं; वास्तविक देखा जायतो उस समय उनको खानेकी बिलकुल आवश्यकता नहीं होती है। प्रकृति सुबह आहार बिलकुल नहीं मांगती है; इसलिये आरोग्यता चाहने वालोंको सबसे पहले इस नियम का पालन करना चाहिये कि मध्यान्ह होनेसे पहिले और मध्यान्ह बीत जानेतक कुछ भी न खावे।

तृषा लगनेपर पानी पीनेमें कोई हानि नहीं है, फिर भी भोजन करते समय, भोजनसे आध घण्टा पहिलेसे और कई घण्टे बादतक पानी या कोई प्रवाही पदार्थ न पिये। भोजन करते समय यदि तृषा लगे भी तो रसदार फलोंसे अपनी तृषा शमनकरलेनी चाहिये। भोजन करते समय प्रवाही पदार्थ सेवन करनेसे खुराक को प्रवाही पदार्थ की सहायतासे नीचे उतारने की आदत पड़ जाती है और जठरके रसमें प्रवाही पदार्थका मिश्रण होनेसे उसका बल घट जाता है।

शारीरिक मेहनत करने वालोंको और मगजकी मेहनत करनेवालोंको-दोनोमेंसे किसीको भी—सुबह नाश्ता करने या चाय पान करने की कोई आवश्यकता नहीं है।

"पाश्चात्य देशमें हजारों मनुष्योंने सुबह जलपान करनेकी या नाश्ता करनेकी आदत छोड़दी है और इससे उनके स्वास्थ्यमें बहुत सन्तोषजनक परिवर्तन हुआ है।"

"नाश्ता करना छोड़नेसे आरम्भमें कुछ सप्ताह तक बल घटता जान पड़ता है और वजन भी घट जाता है; किन्तु उत्साह और आत्मिक बल की वृद्धि होती है। परिणाम कुछ ही दिन बीतनेपर यह होता है कि शरीरमें बल और वजन भी बढ़ने लगता है और स्वास्थ्य तथा मानसिक शक्तिमें भी आश्चर्य-जनक परिवर्तन दिखाई देने लगता है।"

जो मनुष्य प्रातःकाल भोजन या नाश्ता न करने की दशामें भी स्वास्थ्य स्थिर नहीं रखसकते उनको एक बार दिनमें भोजन करनेका नियम कर लेना चाहिये और सो भी दोपहरके पश्चात्।

सच पूछा जाय तो दिनमें मनुष्यको शारीरिक या मानसिक जो भी श्रम करना पड़ता है वह जब तक पूरा न करले तब तक उसको कुछ भी न खाना चाहिये।

बलका उत्पत्ति स्थान दिमाग है। उसको खुराक खाने और उसका पाचन करनेमें कितना परिश्रम करना पड़ता है। एकतो मनुष्यजो शारीरिक या मानसिक काम करता है इसको पूर्ण करनेमें बलकी पूर्ति करनी पड़ती है, और दूसरे मनुष्य जो खुराक खाता है उसको पाचन करनेका बल जठरमें पहुँचाना पड़ता है; किन्तु यदि कुछ भी न खाया जाय तो सन्ध्या को दिन भरका काम पूरा होनेपर उसको केवल अन्न पचन करनेके एक ही काममें अपनाबल खर्च करना पड़ेगा और इस तरह वह पचनक्रियाका काम अच्छी तरहकर सकेगा वैसेही दिनमें काम करनेसे पहिले कुछ न खानेसे उसको एक ही काममें बल खर्च करना पड़नेके कारण दिनका काम भी बहुत अच्छा होगा।

बिना खाये शारीरिक या मानसिक काम करनेका किसने अनुभव नहीं किया होगा।

जङ्गली पशु सूर्यास्त होनेसे पहिले कदाचित् ही खाते होंगे। दिनके अन्तिम भागमें खाना चाहिये; क्योंकि दिनमें काम करनेसे शरीर पुट नष्ट हो जाते हैं और उनके क्षय होजानेसे जठरमें जठर रसका सिंचन होता जाता है और कड़ाके की भूख लगती है।

धनुर्मासमें प्रातःकाल कितना कम भोजन किया जाता है और उसका पचन होनेमें कितना समय लगता है इसका बहुतोंने अनुभव किया होगा।

बहुतसे मनुष्य और साधु-सन्त एक ही समय भोजन किया करते हैं, उनमेंसे बहुतोंके शरीर रुष्ट-पुष्ट होते हैं और वे भी अलमस्त होते हैं, उनके नखमें रोग तक नहीं होता।

विज्ञानंब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० । ३।५ ॥

भाग ३७ } प्रयाग, कन्या, संवत् १९९० । सितम्बर १९३३ । { संख्या ६

मंगलाचरण

[स्व० पं० श्रीधर पाठक]

करो नित्य सत ज्ञान-अमृत-कन पान प्रेममय
धरो नित्य भगवान भक्ति मन आन प्रेममय
दो सबको सम-मान स्वजन सन्मान प्रेममय
लो स्वदेशको जान स्वजीवन प्रान प्रेममय
बस यही विशद विज्ञानका लक्ष्य परम रमणीय है
जो मति इसके प्रतिकूल हो अतिव तिरस्करणीय है

हिस्टीरिया और भूतविज्ञान

[ले०—रामदास गौड़]

हिस्टीरियापर सामयिक पत्रोंमें तो कभी कभी और चिकित्सा सम्बन्धी पत्रोंमें अकसर लेख निकला करते हैं। ५ अक्टूबर सन् १९३२ के जागरणमें पं० घासीराम शर्म्माका एक लेख "हिस्टीरिया (मूर्छा)" नामका प्रकाशित हुआ था। धन्वन्तरिने तो हिस्टीरियापर अपना एक विशेषांकही निकाल डाला जिसमें एक इसी विषयपर भारतके प्रसिद्ध और यशस्वी वैद्यों और डाक्टरोंतकने लेख दिये हैं। रोगके लक्षण, निदान और चिकित्सापर हर लेखकने विचार किया। परन्तु यह देखकर बड़ा आश्चर्य्य होता है कि आयुर्वेदकी विधिपर यातो जानबूझकर लेखक ध्यान नहीं देते अथवा इस विद्याका उनको तनिक भी ज्ञान नहीं है।

आयुर्वेदके आठ अंग सर्वमान्य एवं प्रसिद्ध हैं। "भूतविद्या" उन आठोंमेंसे एक अंग है और महत्व-का अंग है। चरक सुश्रुत और वाग्भट बृहत्त्रयी कहलाते हैं। तीनों भूतविद्या अथवा भूतविज्ञानका वर्णन करते हैं। उन्माद और अपस्मार दोनोंका बड़े विस्तारसे निदान दिया हुआ है और चिकित्सा भी दी हुई है। इन आर्यग्रंथोंने रोगके दो प्रकार बतलाये हैं,

(१) निज वा दोषज वह जो शरीरके अन्तर्गत दोषोंसे उत्पन्न होते हैं और (२) आगंतुज वह जो बाहरसे आते हैं। आगंतुज उन्माद और अपस्मार अनेक तरहके बतलाये हैं जो प्रेत, पिशाच, वेताल, भूत, यक्ष, राक्षस, किन्नर, गंधर्व, पितर, देवता आदिके शरीरमें आवेश करनेसे उत्पन्न होते हैं। जिन्हें हम हिस्टीरिया कहते हैं लक्षणोंके अनुसार किसी विशेष प्रकारके उन्माद वा अपस्मार हैं। अल्लोपथीमें हिस्टीरिया जिस मूर्च्छाको कहते हैं उसका नाम आधुनिक वैद्योंने खामखाह योषापस्मार रख छोड़ा है यद्यपि यह सबको मालूम है कि हिस्टीरियाके दौरे पुरुषोंकोभी आते हैं। यह कोई नया रोग भी नहीं है, जिसके लिये नये नामकी आवश्यकता हो। फिर भी बृहत्त्रयीके जाननेवाले जानबूझकर आगंतुज कारणोंकी उपेक्षा करते हैं। वाग्भट्टनेही अष्टांग हृदय-में उत्तरस्थानके चौथे अध्यायमें

> अथातो भूतविज्ञानं व्याख्यास्यामः
> लक्षयेज्ज्ञान विज्ञान वाक् चेष्टा बलपौरुषम्
> पुरुषेऽपौरुषं यत्र तत्र भूतग्रहं वदेत् ॥ १ ॥
> भूतस्य रूपप्रकृति भाषा गत्यादि चेष्टितैः
> यस्यानुकारं कुरुते तेनाविष्टं तमादिशेत् ॥ २ ॥

इत्यादि ४४ श्लोकोंमें आविष्ट और आवेशक लक्षण, आवेशके कारण और परिस्थितियां, आवेशकी तिथियां वा समय, देव पितर गन्धर्व, ब्रह्मराक्षस, राक्षस, प्रेत, वेतालादि सबके अलग अलग लक्षण कहे हैं। अगले पाँचवें अध्यायमें आगंतुज रोगकी चिकित्साका ५३ श्लोकोंमें वर्णन है।

कौमारभृत्यवाले अङ्गमें बालग्रहोंका भी वर्णन आता है। स्कन्द, विशाख, मेष, श्वग्रह, पितृ, शकुनि, पूतना, शीतपूतना, दृष्टिपूतना, मुखमण्डलिका, रेवती, शुष्करेवती यह बारह नाम गिनाये हैं। इनके प्रतिषेधके उपायभी बतलाये हैं। जिस अथर्ववेदपर आयुर्वेद अवलम्बित है उसमें अभिचार भरे पड़े हैं और यजुर्वेदमें यज्ञमें विघ्न करनेवाले असुरों और राक्षसोंके वर्णन भरे पड़े हैं। हमारे यहां भाषाविज्ञानका इस दरजेतक विकास हुआ है और हमारे यहांके प्रचुर शब्दभंडारमें ऐसा अर्थगौरव और गांभीर्य्य है कि वेद जैसे अलौकिक साहित्यके वाक्योंके अनेक अर्थ लग सकना एक साधारण सी बात है। थोड़ेसे अक्षरोंमें अति अमित अर्थका निकलनाही तो वाणीवैचित्र्यका रूप है। अतः इसमें तनिकभी आश्चर्य नहीं यदि असुरों और राक्षसादि प्राणियोंके वाचक शब्दोंके अनेकार्थोंसे काम लेकर हमारे आर्य्य सामाजिक पंडित यह दिखाते हैं कि इन अगोचर प्राणियोंका अस्तित्व वेदोंमें नहीं माना गया है। परन्तु सायणादि अन्य भाष्यकारोंके लेखसे तो स्पष्ट हो जाता है कि वेदोंने न केवल ऐसे प्राणियोंका अस्तित्वही स्वीकार किया है, प्रत्युत इनके निवारणके उपायोंकी भी यथामति व्याख्या की है।

जब वेदोंमें और आयुर्वेद ग्रंथोंमें बाहरी या ऊपरी या आगंतुक कारणोंकी स्पष्ट चर्चा है, तब उससे हमारे वैद्य अपनी आँखें क्यों मूंद लेते हैं? उसकी चर्चा करते क्यों हिचिकते हैं? अपने ऋषियोंके वाक्योंपर अविश्वास क्यों करते हैं? क्या उन्होंने झूठका तूमार बांधा है? क्या उनका इरादा था कि अपने पढ़नेवालोंको धोखा दें और असत्य सिखावें? उन्हें क्या इस तरह धोखा देना लाभकर था? कर्म्मकांडके ग्रंथोंमें भलेही इनसे याजकोंको कुछ लाभहो सके परन्तु वैद्योंको आगंतुकोंसे क्या लाभ हो सकता है? फिर उन ऋषियोंका अविश्वास क्यों?

इस अविश्वास और अश्रद्धाका कारण ढूंढनेको कहीं दूर नहीं जाना है। बात यह है कि अंगरेजी सभ्यताके साथही साथ सौ बरस हुए पाश्चात्य विज्ञानने भी जब भारतमें प्रवेश किया तो तथोक्त अन्धविश्वासोंपर नाक भौं सिकोड़ता आया, तथाकथित रूढ़ियोंपर गुर्राता आया। उसने अपनी संकुचित विज्ञतापर दृष्टि न डाली बल्कि जो कुछ उसकी जानकारीसे बहुत ऊँची बातें थीं, जो बातें उसकी बुद्धिकी पहुँचसे बाहर थीं उनपर वह अट्टहास करता था, उनकी अवहेलना करता या उनका तिरस्कार करता था। इसीलिये यहांका वेदान्त उसके प्रति अत्यन्त गम्भीर रहा। उसने इस बालककी अठखे-

लियोंपर ध्यानभी न दिया। यहांका परलोकवाद यहांके अत्यन्त विशाल पौराणिक साहित्यमें निहित रहा। यहांके दर्शनने कभी उसकी ओर न देखा। तब भी यहांकी पढ़ीलिखी जनतापर पच्छाहीं विज्ञानका आतंक छा गया। यहांके पढ़े लिखोंने राजनीतिक पराधीनताके साथ ही साथ मानसिक पराधीनता भी स्वीकार कर ली। बहुतोंने तर्कके अपने पुराने हथियार भी आतंककी गोली बारूदके सामने डाल दिये और आत्मसमर्पण कर दिया। उन्होंने झटपट अपने व्याख्याकौशलका सहारा लेकर अपने विचारोंकी विज्ञानके रूपके अनुसार सँवार सँभाल शुरू की और अपने यहांकी सर्वथा सत्य बातोंको भी विज्ञान बेषधारी चार्वाकके शब्दोंमें ढालना आरंभ कर दिया। फलतः परलोकविद्या अंधविश्वास समझी जाने लगी। इधर भारतवर्षमें जिन दिनों महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती मरणोत्तर जीवनका अर्थ एकमात्र पुनर्जन्म बता रहे थे, प्रेत और पितृ जीवनसे इनकार कर रहे थे उन्हीं दिनों युरोपकी विद्वन्मंडली परलोकसम्बन्धी प्रयोगमें लगी हुई थी। स्वामीजीकी मृत्युके कुछ ही वर्ष पूर्व इंग्लिस्तानमें (Society for Psychical Research) परान्वेषण परिषत्की स्थापना हुई। इसके प्रमुख सदस्य और अधिकारी विज्ञान और साहित्यके धुरंधर विद्वान् थे और हैं। सर विलियम क्रुक्स और सर आलिवर लाज क्रमशः रसायन और भौतिक विज्ञानके आकाशके अव्वल दरजेके चमकते तारे इस परिषत्के प्रमुख, सदस्य और अधिकारी थे। असंख्य प्रयोगोंद्वारा इस परिषत्ने प्रमाणित किया है कि प्रेत पितरादि अगोचर प्राणी मनुष्यके मरणोत्तर जीवनके ही रूप हैं और पुनर्जन्मका होना इस मानव चोलेके छूटतेही आवश्यक नहीं है। इन प्राणियोंके द्वारा लौकिक प्राणियोंको सुखदुःख भी पहुँच सकता है और पहुँचता है। सर विलियमक्रुक्सके पास आज लगभग पैंतालीस बरस हुए एक षोडशी कन्या मिस कुक लायी गयी जिसे तथोक्त "योषापस्मार" हो गया था और किसी इलाजसे अच्छा नहीं होता था। योग्य प्रोफेसर उसका रोग समझ गये और उन्होंने विधिपूर्वक उसके शरीरमें लगी हुई चुड़ैल मिसिज़ केटीकिंग को प्रकट कराया। इस चुडैलसे लगभग तीस प्रयोग किये। इन प्रयोगोंका विस्तार उन्होंने "परलोकविद्याकी खोज" नामक ग्रंथमें दिया है।* इन प्रयोगोंके प्रकाशित हुए आज तीस बरसोंसे अधिक हो गये। तबसे पाश्चात्य देशोंमें प्रयोगपर प्रयोग होते आते हैं और परलोक विद्या आजकल विज्ञानकी एक विशिष्ट शाखा मानी जाती है। प्रोफेसर फ्रोइडने मानसिक विश्लेषण नामकी मनोविज्ञानकी एक नयी विद्या स्थापित की है। उनकी इस विद्याको यदि शरीरकी निजी दशाका अनुशीलन कहें तो परलोक विद्याको शरीरकी आगतुज दशाका परिशीलन कहा जा सकता है। इनविद्याओंको (Prof. Thomson प्रोफेसर टामसनने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक (Outline of Science) विज्ञानकी रूपरेखामें सम्मान्य स्थान दिया है और उसका सप्रमाण वर्णन किया है। अब पारलौकिक प्राणियोंके अस्तित्वको न माननेवाला और परलोकविद्याको अंधविश्वास ठहरानेवाला विज्ञान कबका मर चुका है। उसके आतंकसे पीड़ित वैद्यलोग यदि आज उसके कारण भूतविज्ञानको स्वीकार करते डरते हैं तो सचमुच उस मृत विज्ञानके प्रेतसे ही आतंकित हैं। उन्हें "योषापस्मार" के वास्तविक रहस्य और प्रतिषेधका उपाय आयुर्वेद ग्रंथोंमें खोजना चाहिये और आयुर्वेदीय विधिसे उचित चिकित्सा करनी चाहिये।

बालग्रह, आगंतुजोन्माद, अपस्मार आदि रोगोंके लक्षण निदान और प्रतिषेधपर जो कुछ आयुर्वेदग्रंथोंमें लिखा है उतना पर्य्याप्त नहीं है। उसे सूत्रवत् मानकर अपने नित्यके प्रयोगोंसे उसका विस्तार करें और वैद्यकके सामयिक पत्रोंमें एवं अन्य पत्रोंमें भी अपने प्रयोगोंकी विस्तृत कथाएं प्रकाशित कराते रहें कि आयुर्वेदके इस महत्वशाली अङ्गका उत्तरोत्तर विकास होता रहे और विज्ञानके आतंकसे पीड़ित इस

*Researches in Spiritualism (Longmans)

विद्याको आयुर्वेदमें समुचित पद प्राप्त हो।

वैद्यगण यदि इस तरहके प्रयोग करके उनका विस्तृत वर्णन देंगे तो हम विज्ञानमें सहर्ष प्रकाशित करेंगे।

बिना धुएँ का फ़्लैशलाइट

[ले० डाक्टर गोरख प्रसाद, डी० एस-सी०]

अधिकांश फ़ोटोग्राफ़र जानते हैं कि फ़्लैशलाइट की सहायतासे रातमें भी फ़ोटो खींचे जासकते हैं; परन्तु इनका प्रयोग बहुत कम फ़ोटोग्राफ़र करते हैं। इसके कारणोंमेंसे एक कारण यह भी है कि साधारण फ़्लैशलाइटसे बहुत धुआँ निकलता है, और पासकी वस्तुएँ यदि हटा न दी जायँ तो उनमें आग भी लग जानेकी सम्भावना रहती है। कुछ ही समयसे अब नये प्रकारका फ़्लैशलाइट भी बनने लगा है। पुराने ढंगका फ़्लैशलाइट मैगनीशियम या अल्युमिनियमका बारीक चूर्ण और कोई ओषजन देनेवाला रासायनिक पदार्थ (जैसे पोटैशियम क्लोरेट) मिलाकर तैयार किया जाता है। जलाने पर यह मिश्रण जल उठता है और इससे फ़ोटो खिंच जानेकेलिये काफ़ी प्रकाश हो जाता है। नये फ़्लैशलाइटमें अल्युमिनियमकी अत्यन्त हल्की पन्नी मोड़ मरोड़कर एक शीशेके लट्टूमें बन्दकिया रहता है। यह पन्नी सोनेकी पन्नीसे भी पतली होती है; कहा जाता है कि करीब पचास हज़ार पन्नियोंको एकके ऊपर एक रखनेपर कहीं एक इंचकी मोटाई होगी! अस्तु; शीशेका लट्टू बिजली के लट्टूके समान होता है। यह करीब ६ इंच लम्बा और २½ इंच व्यासका होता है। कारखानेमें लट्टू के भीतरसे हवा निकालकर ओषजन गैस भर दिया जाता है। जलते समय दबाव बढ़ जानेके कारण लट्टू फट न जाय इस ख़यालसे ओषजन का दाब वायु मंडलके दाबसे बहुत कमही—लगभग केवल पाँचवें भागके बराबर—रक्खा जाता है। ओषजन भरनेके बाद, अल्युमिनियमको जलानेके लिये तार लगाकर, लट्टू बन्द कर दिया जाता है और इसके पतले सिरेपर पीतलका छल्ला ठीक उसी प्रकार लगा दिया जाता है जैसे साधारण बिजलीके लट्टुओंमें। इस प्रकार यह फ़्लैशलाइट लट्टू साधारण बिजलीके लट्टुओंके स्थानमें लगाया जा सकता है। स्विचके दबातेही अल्युमिनियम जल उठता है और क्षण भरके लिये तीव्र प्रकाश हो उठता है। जहाँ बिजली न हो वहाँ तीन सेलवाले सूखी बैटरीसे ही काम चलाया जा सकता है, क्योंकि इन फ़्लैशलाइटोंको जलानेके लिये बहुत कम बिजलीकी आवश्यकता होती है।

इन नये फ़्लैशलाइट लट्टुओंके प्रयोगमें फ़्लैशलाइट मिश्रणोंकी अपेक्षा हर तरहका सुभीता है। धुआं न होने और आग लगनेका डर न रहने के अतिरिक्त इसमें ज़रा भी आवाज़ नहीं होती। फिर एक सुविधा यह है कि इसके प्रयोगसे दिनमें भी फ़ोटोग्राफ़ ऐसे स्थानोंमें लिये जा सकते हैं जहाँ प्रकाश तो है, परन्तु क्षणिक प्रकाश-दर्शन देनेके लिये काफ़ी प्रकाश नहीं है। उदाहरणार्थ, मान लीजिये कि संध्या समय शामियानेके नीचे कहीं सभा हो रही है और सभापति, व्याख्यानदाता इत्यादिका फ़ोटोग्राफ़ आप लेना चाहते हैं, परन्तु आप इन लोगों को फ़ोटोग्राफ़ लेनेके लिये स्थिर रहनेपर बाध्य नहीं कर सकते। ऐसी दशामें फ़्लैशलाइटके लट्टूको होल्डरमें लगाकर और होल्डरको बायें हाथमें लेकर इसको आवश्यकतानुसार ऊँचेपर रक्खा जाता है और दाहिने हाथसे कैमरेको पकड़कर (चित्र १) कैमरेके शटरको खोला जाता है। शटरके खुलते ही फ़्लैशलाइटका स्विच दबाया जाता है और तुरन्त ही कैमरेके शटरको बन्द हो जाने दिया जाता है। इस प्रकार ½ सेकंडके भीतर ही प्रकाश दर्शन समाप्त हो जाता है। यदि प्राकृतिक प्रकाश इतना अधिक हो कि ½ सेकंडमें प्लेटपर कुछ प्रभाव पड़ जानेका डर हो और साथ ही यह प्रकाश इतना कम हो कि क्षणिक प्रकाश दर्शन देनेके लिये यह पर्य्याप्त न हो तो ऐसे

कैमरेका प्रयोग किया जा सकता है जिसमें कैमेरेका शटर फ़्लैशलाइटके स्विचसे इस प्रकार संबद्ध रहता है कि शटरका खुलना और फ़्लैशलाइटका जलना ये दोनों क्रियाएँ साथ ही हो जाती हैं। ऐसे कैमेरे मेसर्स ए० ओ० रोट (Roth), ८५ रिङ्गस्टेड रोड, लंडन, और अन्य दूकानोंसे भी, मँगाये जा सकते हैं।

फ़्लैशलाइटके जलनेमें केवल $\frac{1}{50}$ सेकंड समय लगता है। इसलिये बहुत तेज़ीसे चलते हुए विषयों-को छोड़ अन्य सब विषयोंके लिये यह उपयुक्त है। बच्चोंके फ़ोटो लेनेके लिये यह बहुत ही उत्तम है, क्योंकि दिनके प्रकाशमें, यदि कैमरेका लेन्ज़ बहुत तेज़ नहीं है तो बच्चोंको तेज़ रोशनीमें रखना पड़ता है, जिससे उनकी आँखें चकाचौंधके कारण सिकुड़ जाती हैं और फ़ोटो बिगड़ जाता है। फ़्लैशलाइट जलनेपर जबतक आंखें झपती हैं उसके पहलेही फ़ोटो खिंच जाता है। इसलिये इससे आखें सिकुड़ने या झपने नहीं पातीं।

फ़्लैशलाइटके लट्टुओंमें यह भी गुण है कि आँधी या पानीसे उनका कुछ नहीं बिगड़ता। फ़्लैशीं लाइट-मिश्रण बरसातमें बड़ी कठिनाईसे जलते हैं। इन लट्टुओंमें अवगुण एक यही है कि उनका दाम अधिक पड़ता है। प्रति लट्टू लगभग २) पड़ जायगा। बड़ी बड़ी सभाओं या समूहोंके लिये दो या अधिक लट्टुओंको साथही जलाना पड़ेगा, परन्तु कुछ दिनोंमें कदाचित इनका मूल्य कम लगेगा।

फ़्लैशलाइट लट्टुओंके साथ किसी रिफ़लेक्टर का प्रयोग करना अच्छा है। इससे जो प्रकाश पीछे चला जाता उसका अधिकांश विषयपर डाला जा सकता है। बेंटयुक्त रिफ़लेक्टर बिकते भी हैं (चित्र २) ये अल्युमिनियम के बने होते हैं और बेंटमें दो तीन सूखी बैटरीके सेल भरे जासकते हैं। बेंटके ऊपर स्विच भी लगा रहता है, जिससे एकही हाथसे लट्टू ऊँचे पर रक्खा और जलाया जासकता है।

भारतवर्ष में इन फ़्लैशलाइटके लट्टुओंके मिलनेमें कभी कभी कठिनाई पड़ सकती है। परन्तु इनको अमरीकाकी जेनरेल इलेकट्रिक कम्पनी भी बनाती है और वहाँसे ये किसी भी बड़ी दूकानदारकी मारफ़त मँगाये जा सकते हैं।

चित्र १
फ़्लैशलाइट लट्टू का प्रयोग
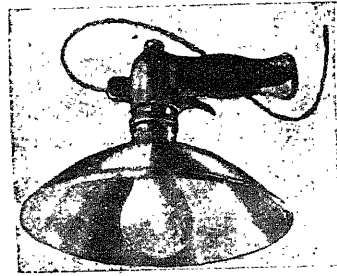
चित्र २
रिफ़लेक्टर सहित फ़्लैशलाइट लट्टू

कैलिडसकोप

[लेखक—डाक्टर गोरखप्रसाद, एम० ए०, डी० एस-सी०]

सर रॉबर्ट बैडन पॉवेलका कहना है कि जिस लड़केने अपने हाथसे कभी कुछ नहीं बनाया उसने कभी अपने जीवनका पूरा उपयोग नहीं किया। इसलिये वे कहते हैं कि बालको ! अपने खिलौने और यंत्र तुम स्वयं बनाओ। संसारमें अपना मार्ग तुम स्वयं बनाओ तो तुमको पता चलेगा कि स्वर्ग तारोंके उसपार कोई अनिश्चित सी जगह नहीं है जहाँ तुम आलस्यमें भरे पड़े पड़े सोनेका सितार बजाया करो; वहतो ठीक इसी

पृथ्वीपर है, वह वस्तुओंके बनानेमें है और विशेष रूपसे औरोंको खुश करनेमें है।

इसीलिये मैं कहता हूँ कि पाठक! यदि तुम्हारे खेलने और खुश होनेकी उमर नहीं बीती है तो तुम एक कैलिडसकोप बनाओ जिससे तुम खुश हो और दूसरोंको खुशकरो और यदि आपकी उमर खिलौनोंसे खेलनेकी नहीं रही तो आप अपने या अपने मित्रके बच्चेके लिये एक बनाइये और खुशी देनेके साथ साथ बच्चेको विज्ञानकी ओर आकर्षित कीजिये।

कैलिडसकोपमें छोटे छोटे दर्पण लगे होते हैं जिनके कारण इसमें परम सुन्दर रंग बिरंगे छ पहल वाले फूल और बूटे दिखलाई पड़ते हैं, जिनका स्वरूप क्षण क्षणमें बदलता रहता है।

इसका बनाना बहुत आसान है। पहले एक टीनकी लम्बी डिबिया ले लेनी चाहिये (चित्र १)। जिन डिबियोंमें हजामत बनानेका साबुन आता है वे इस कामके लिये अच्छी होती हैं। मोटरके पंक्चर मरम्मत करनेके लिये भी लम्बी लम्बी टीनके डिबियोंमें रबर, रबर-सोल्यूशन इत्यादि रखकर बेंचा जाता है। यदि बड़ा कैलिडसकोप बनाना हो तो इस प्रकारके एक डिबियेको किसी मोटर रखने वाले मित्रसे माँग लेना चाहिये।

चित्र १—लम्बी डिबिया

डिबिये की पेंदीमें $\frac{1}{8}''$ व्यासका एक छेद करना चाहिये। इसके लिये $\frac{1}{8}''$ व्यासके पंच (punch) का प्रयोग किया जा सकता है, या $\frac{1}{8}''$ चौड़े धारकी छेनीका। यदि कुछ भी न मिले तो साधारण कीलसे ही वृत्तकी परिधि पर छोटे छोटे बहुतसे छेद करनेसे $\frac{1}{8}''$ व्यासका एक टुकड़ा कटकर निकल जायगा। छेद करते समय यंत्र या छेनी या कीलको हथौड़ेसे ठोंकना पड़ेगा। इससे, यदि कोई विशेष प्रबन्ध न किया जायगा तो पेंदी पचक जायगी। इस लिये पहले एक लकड़ीको, जो डिबियेके भीतर आसानीसे जा सके, लेना चाहिये। इसका सिरा आरीसे साफ और लकड़ी की लम्बाईसे समकोण बनाता हुआ काट लेना चाहिये। इस लकड़ीको वाइसमें या पैरसे पकड़ कर, इसपर डिबिया पहनानी चाहिये। इस प्रकार डिबियेकी पेंदी लकड़ीके सिरेपर पड़ेगी। अब इस पेंदीमें छेद आसानीसे किया जा सकता है (चित्र २)।
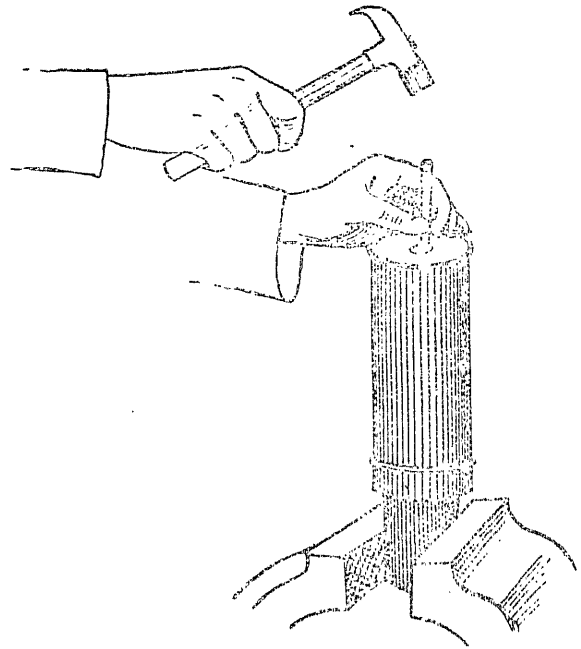
चित्र—२ पेंदीमें छेद करना

ढकना उतार देनेपर डिबियेकी जो लम्बाई हो उससे ¼" कम लम्बे दफ्तीके तीन टुकड़ोंकी अब आवश्यकता पड़ेगी। इनकी चौड़ाई इतनी होनी चाहिये कि तीनोंको त्रिपार्श्व (prism) के आकारमें बाँध देनेसे (चित्र ३ देखो), यह त्रिपार्श्व डिबिये में आसानीसे चला जाय, परन्तु इसके कोने डिबियेको छूते रहें, जिसमें त्रिपार्श्व डिबियेमें खड़खड़ाय नहीं। अब इस त्रिपार्श्वको निकालकर और इनके बंधनको खोलकर तीनो दफ्तियोंको अलग कर लेना चाहिये। तब नापमें ठीक इन्हींके बराबर तीन टुकड़ा आइना किसी आइना बेंचने वालेकी दूकानसे ख़रीद लेना चाहिये। इसके लिये आने दो आनेसे अधिक दाम नहीं लगना चाहिये, क्योंकि अकसर बड़े नापके आइनोंमेंसे टुकड़े बचे रहते हैं जो बहुत कम दाममें मिल जाते हैं। यदि आइनेके टुकड़े न मिलें तो साधारण शीशेके टुकड़े लगाये जा सकते हैं परन्तु तब फूल उतने चमकीले न दिखलाई पड़ेंगे। यदि शीशे ही लगाये जायँ तो इनके एक ओर काला काग़ज़ चिपका देना चाहिये। किसी भी फ़ोटोग्राफ़रसे थोड़ा सा काला काग़ज़ मुफ़्त मिल सकता है।
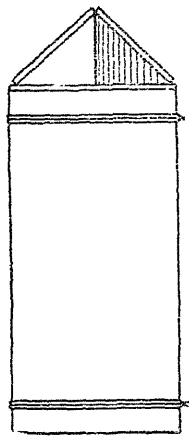
आइनोंकी दूकानसे दो टुकड़ा गोल शीशा भी कटवा लेना चाहिये। एक तो साधारण शीशे का हो, दूसरा अंधे शीशे (ground glass) का हो। इनका व्यास डिबियेके भीतरी व्यासके बराबर हो, जिसमें ये डिबियेके भीतर बैठ सकें। आइनेकी दूकान से लाल, नीले, हरे, इत्यादि, तरह तरहके रंगीन शीशोंके टुकड़ों को, जो ⅛" या ¼" तक और किसी भी शकलके हों, ले लेना चाहिये। यदि ये टुकड़े न मिल सकें तो रंगीन शीशेकी चूड़ियोंके टुकड़ोंसे काम चल जायगा।

चित्र ३—त्रिपार्श्व

अब तीनों आइनोंके टुकड़ों को त्रिपार्श्व की तरह एक साथ रखकर तागेसे बाँध देना चाहिये (चित्र ३)। फिर इसको डिबियेमें डाल देना चाहिये। यदि यह डिबियेमें खड़खड़ाता हो तो अगल बगल कुछ काग़ज़ ठूँस कर इसकी खड़खड़ाहटको मिटा देना चाहिये चित्र ४। फिर, इस त्रिपार्श्वपर सादे शीशेके गोल टुकड़ेको रखना चाहिये (चित्र ५)। अब ⅛" चौड़ी और डिबियेकी भीतरी परिधिके बराबर लम्बी दफ़्तीकी पट्टी काटकर, इसको चूड़ीकी तरह गोल
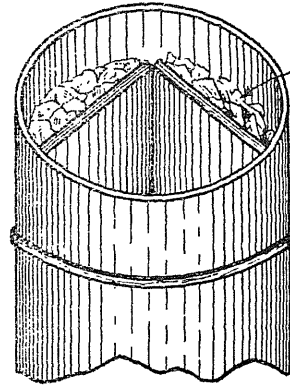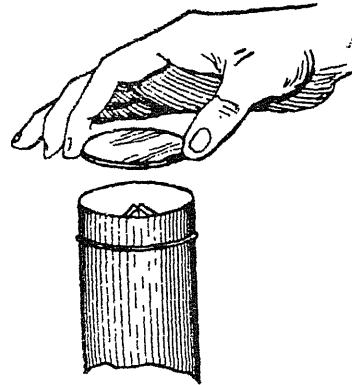
चित्र ४—त्रिपार्श्वको डिबियेमें रखकर इसके अगल बगल काग़ज़ ठूँस देना चाहिये।

चित्र ५—फिर इस पर सादे शीशे के गोल टुकड़े को रखना चाहिये

मोड़ कर, सादे शीशेके ऊपर बैठाना चाहिये चित्र ६)।

इसके बाद सादे शीशेपर बीस पचीस रंगीन शीशोंके टुकड़ोंको रखकर ऊपरसे अंधा शीशा रखना चाहिये (चित्र ७)। रंगीन टुकड़ोंको सादे और अंधे शीशोंके बीच ढीला ही रहना चाहिये। इसीलिये इन दोनोंके बीचमें दफ़्तीकी चूड़ी लगाई गई थी।
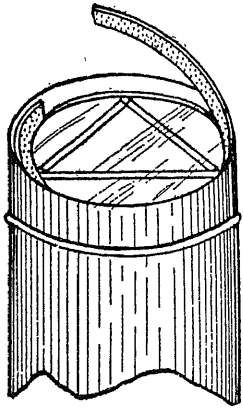
चित्र ६—दफ़्ती को गोल मोड़कर सादे शीशेके ऊपर बैठाना चाहिये। इस चित्रमें इसकी रीति दिखलाई गई है आधी दूरतक दफ़्ती बैठा दी गई है। बाकी अभी बैठानी है।

अंतमें, कोई ऐसा उपाय करना चाहिये कि अंधा शीशा अपनी जगह में पड़ा रहे। इसके लिये यदि डिबियेके ढकनेको लगा देनेसे काम चल जाय तो बहुत अच्छा है, परन्तु तब ढकनेमें अन्धे शीशेके व्याससे $\frac{1}{4}$'' या $\frac{1}{8}$'' कम व्यासका एक छेद कर लेना चाहिये, जिसमें इस यंत्रके भीतर रोशनी जा सके।
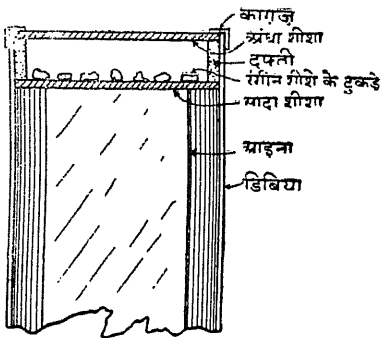
चित्र ७—स्वच्छ और अंधे शीशोंके बीच रंगीन शीशेके टुकड़े रक्खे जाते हैं।

यदि ढकना इतना गहरा है कि यह अंधे शीशे तक नहीं पहुँचता तो कोई दूसरा ही उपाय करना पड़ेगा। यातो डिबियेका किनारा ही थोड़ासा अंधे शीशेपर मोड़ दिया जा सकता है, या किसी गोल कागज़के बीचमें अंधे शीशेके व्याससे $\frac{1}{4}$'' कम व्यासका छेद काटकर (गोल कागज़का व्यास डिबियेके व्याससे $\frac{1}{4}$'' अधिक रहे), इसको अंधे शीशे पर लेईसे चिपकाना चाहिये, और बाहर निकले भागको क़ैंचीसे कई टुकड़े फाँक करके इस बढ़े भागको डिबिये पर चिपका देना चाहिये (चित्र ८,९)। यदि अंधा शीशा डिबियेके सिरे से कुछ भीतर धँसा हो तो सादे शीशे और अन्धे शीशेके बीच वाली दफ़्तीकी चूड़ीको बदल कर, और दूसरी चौड़े नापकी चूड़ी लगाकर ऐसा प्रबन्ध करना चाहिये कि अन्धा शीशा डिबियेके सिरेके बराबर रहे।
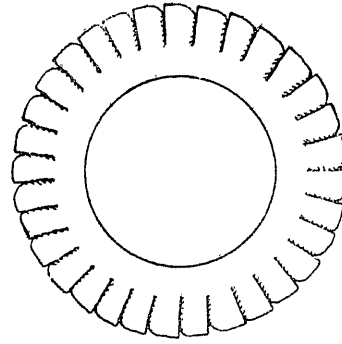
चित्र ८ और ९ अंधे शीशे को चिपकाने की रीति।
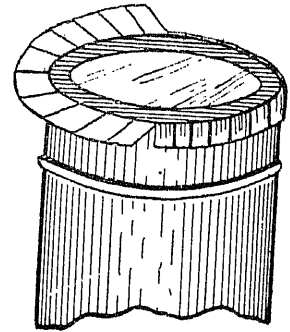
चित्र ९

अब कैलिडस्कोप तैयार है। किसी रोशनीकी तरफ, जैसे जँगले, दरवाजे, या लैम्पकी तरफ, मुँह करके पेंदी में बनाये गये $\frac{1}{4}$'' वाले छेदमेंसे देखना चाहिये (चित्र १०) और यन्त्रको धीरे धीरे घुमाना चाहिये। आप देखेंगे कि घुमानेसे रंगीन शीशोंके टुकड़े भिन्न भिन्न स्थितिमें गिरते

रहते हैं और तीनों आइनोंमें उनके सैकड़ों प्रतिबिम्ब बड़ी सुन्दर रीतिसे फूल बनाते हुए दिखलाई पड़ते हैं।
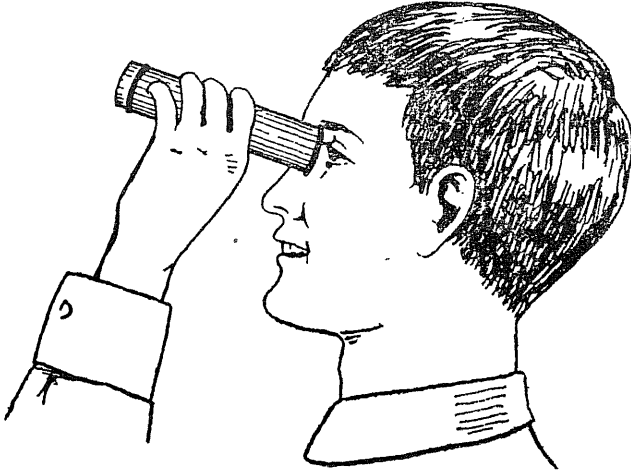
चित्र १० कैलिसकोप तैयार

[″को "इंच" पढ़ना चाहिये। जैसे ½″ का अर्थ है आधा इंच।]

टिप्पणियां

वज्रसे होड़। सताराके कृषिसम्बन्धी खोजके इन्जिनियर श्रीडोनाल्ड बीटन इन्जिनियरोंमें प्रसिद्ध हैं। आटेकी चक्की, शकरकी मिल आदि कारखानोंके यन्त्रोंमें जिस लोहेका इस्तेमाल होता है उससे भी अधिक कठोर और किफायतवाली धातुकी खोजमें श्रीबीटन बहुत दिनोंसे लगे थे परन्तु साधनाभावसे उन्हें सफलता नहीं मिलती थी। यह सभी जानते हैं कि पानी चढ़ानेसे, तपाकर तुरन्त ठन्ढा कर देनेसे, कठोरता बढ़ जाती है। परन्तु श्रीबीटनका यह लक्ष्य था कि साधारण दशामें ही इतनी कठोरता हो कि बिना ऐसी क्रियाके कठोरता भी अधिक हो, स्थायी रहे और चले भी अधिक कालतक। श्रीबीटनने कई नमूने बनाये जिनपर साधारण छेनी या रेतीका प्रभाव नहीं पड़ता था। परन्तु अधिक परखनेके साधन न थे। हालमें पूरी जांच हो सकी है और अप्रत्याशित सफलता मिली है। उन्होंने अधिक जांचके लिये अपना नमूना शेफील्ड भेजा है। उनका अनुमान है कि गन्ने पेलनेके कोल्हुओंके लिये इससे अच्छी धातु नहीं हो सकती और आधे खर्चमेंही कोल्हू बन जायँगे।

शकर-औद्योगिक-सम्मेलन। शकरके उद्योग-व्यवसायपर भारतके बड़े बड़े मस्तिष्कवालोंने बैठकर विचार किया। परन्तु उसकी प्रतिज्ञा ही दोषपूर्ण थी। शकरका व्यवसाय बड़ी बड़ी मिलोंके अधीन करना ही भारी भूल है। यन्त्रद्वारा कम मजदूर लगाकर अत्यधिक माल तैयार किया जा सकता है। परन्तु हमारे देशमें दस करोड़के लगभग खेतोंपर काम करनेवाले सालमें छः छः मास बेकार रहते हैं। ऐसी भयानक बेकारीके होते किसी ऐसे व्यवसायको जो बेकारी दूर करनेमें सहायक हो सकता है मशीनको सौंपना देशके साथ घोर अन्याय है। गांव गांवमें खंडसालें खुलें और देशी विधिसे शकर तैयार हो तो शकर कुछ महँगी जरूर पड़ेगी परन्तु एक थोड़ी पूँजीके व्यवसायके रूपमें उसका मुनाफा और कामकी मजूरी दोनों दरिद्रोंमें बँट जाते हैं। बड़ी बड़ी मिलोंका बहुत बड़ा अंश विदेशी और स्वदेशी पूंजीपतियोंकी जेबोंको भलेही भर दे पर दरिद्रोंको बहुत कम लाभ होता है, धनका बटवारा अत्यन्त असमान रीतिसे होता है। इधर किसानों के पास खेतीको छोड़ बहुत थोड़े काम हैं जो वह अपने गावँमें रहते कर सकते हैं। ढोर पालना, खद्दर-बनाना, आटा पीसना, धान कूटना, दाल दलना, गन्ना पेलना, खांड बनाना आदि खेतीके ही सम्बन्धके काम हैं। इनमेंसे पशुपालनको छोड़ शेष सभी काम मिलोंने छीन लिये हैं। उन्हें उनका काम वापस देनेके

बजाय उनकी ही सहायता लेकर उनकी रोजी छीनना, बड़े अन्यायकी बात है।

धनका उचित बटवारा। संसारमें अनेक उद्योग व्यवसाय ऐसे भी हैं जो बड़ी पूंजीके बिना हो ही नहीं सकते। खानोंसे भू-रत्नोंकी, कोयलेकी और कच्ची धातुओंकी खुदाई ऐसा ही कारबार है। कच्ची धातुओंको साफ करके शुद्ध धातुओंका निकालना, वैज्ञानिक खोजके काम, यन्त्रोंके आविष्कार, जहाजोंका चलाना, नहरोंका निकालना, जल-प्रपातोंसे काम लेना आदि बड़े बड़े काम भारी पूंजीसे ही हो सकते हैं। यह काम पूंजीवालोंके ही हैं। इनमें भी बहुतसे मजूरोंको काम मिलता है, यद्यपि पूंजीका भारी मुनाफा पूंजीवालोंके ही पास जाता है। ऐसे कामोंसे हमारे कामके भूखे मजूरों और खेतिहरोंकी कोई हानि नहीं है। समाजकी सुव्यवस्था तभी हो सकेगी जब पूंजी वाला दरिद्रोंके काम और उनके मुँहकी रोटी न छीनेगा और मजूर और किसान पूंजीवालेके ईमानकी कमाईपर ईर्षा न करेगा, जब गरीबी और अमीरी पांचो अंगुलियोंकी तरह होगी। जैसे कोई अंगुली एक फुटकी हो जाय और मुट्ठी बँध न सके वैसे ही आत्यन्तिक दरिद्रता और धनवत्ता भी समाजका बन्धन ढ़ीला कर देती है, समाजको विशृंखल कर डालती है। समाजकी भलाई इसीमें है कि धनका बँटवारा उचित ढंगपर होता रहे।

प्रकृतिके प्रयोग। संसारकी इस प्रयोगशालामें लगभग दो अरब बरसोंसे प्रकृति अपने प्रयोग निरन्तर करती आरही है। वर्तमान संसार उसके इतने दीर्घ कालतकके धीरे धीरे किये हुए असंख्य प्रयोगोंका फल है। आज वह जो प्रयोग कर रही है आगे लाखों बरसों बाद उसका परिणाम दिखाई पड़ सकता है। इन्हीं प्रयोगोंको आज हम विचित्र घटनाओंके रूपमें सुनते हैं। जैसे, बम्बईके अस्पतालमें एक तीन बरसके बच्चेके सभी अगोंका उलटी ओर पाया जाना, एक स्त्रीके बच्चेकी जगह गर्भसे अनेक अंडे उत्पन्न होना अथवा कई सिर वा कई अंगोंवाले बच्चोंका होना इत्यादि। ऐसे प्रयोग बीच बीचमें होते रहते हैं और उसके विधियोंकी जांच पड़ताल होती रहती है। जब निश्चित नियम कभी बन जायँगे तब विचित्रता न रह जायगी।

गङ्गाका विज्ञानांक। "गंगा" अबके विज्ञानांक निकालने जा रही है। हिन्दी साहित्यके लिये एवं विज्ञान परिषत्के लिये यह अवसर अभिनन्दनीय है। हमारे एक सम्मान्य सदस्य प्रो० फूलदेव सहाय वर्म्मा इसके विशेष सम्पादक होंगे। नीचे लिखे विषयोंपर शीघ्रातिशीघ्र लेखों की आवश्यकता है। अन्य भाषाओंके लेखोंको हिन्दीमें अनूदित करलेनेका भी प्रबन्ध है। लेख भेजनेके लिये पता—गङ्गासम्पादक कृष्णगढ़ पो० सुलतानगञ्ज (भागलपुर)।

१ विज्ञान और उसकी विभिन्न शाखाएँ। २ विज्ञान और उसका महत्व। ३ वैज्ञानिक युग। ४ विज्ञान और देशकी आर्थिक उन्नति। ५ विज्ञान और उद्योग-धन्धे। ६ हिन्दीमें वैज्ञानिक साहित्य। ७ हिन्दीमें वैज्ञानिक पारिभाषिक शब्द। ८ वर्णपट-दर्शन-विज्ञान। ९ अपेक्षावाद। १० रमन-परिणाम। ११ बेतारका तार। १२ एक्स-किरण। १३ धन-किरण। १४ तार। १५ समुद्री तार। १६ विद्युत, उसका इतिहास और विकास। १७ उद्योग-धन्धेमें विद्युत्। १८ विद्युत्-भट्ठी। १९ चुम्बकत्व और उसके व्यावहारिक प्रयोग। २० प्रकाश, उसकी प्रकृति और गमन। २१ वायुमण्डल-विज्ञान। २२ वायुमण्डल-विज्ञान और कृषि। २३ फोनोग्राफ। २४ रेलोंके इंजिन। २५ तापका भाप (विशेषतः अति उच्च और अति नीच)। २६ वायु-पोत (हवाई जहाज़)। २७ वायु-यान। २८ तापके उत्पादनकी भौतिक विधियां। २९ शब्द, उसकी प्रकृति और गमन। ३० संगीत-

विज्ञान। ३१ सिनेमा। ३२ बोलता सिनेमा। ३३ आत्म-चालक गाड़ियाँ। ३४ रसायन और उसका व्यावहारिक प्रयोग। ३५ रसायनका इतिहास। ३६ हिन्दू-रसायन। ३७ विषाक्त गैसें और उनके प्रयोग। ३८ युद्धमें रसायन। ३९ प्राकृतिक और कृत्रिम खाद। ४० कृत्रिम रेशम। ४१ मीठी वस्तुएँ। ४२ भारतमें। काचका व्यावसाय। ४३ रेडियम, उसका आविष्कार और प्रयोग। ४४ तापके उत्पादनकी रासायनिक विधियाँ। ४५ सेलुलायड, उसकी प्राप्ति और प्रयोग। ४६ भारतमें सेलुलायड-व्यवसायका भविष्य। ४७ एलुमिनियम और उसका निर्माण। ४८ विटामिन। ४९ प्राकृतिक और कृत्रिम रबड़। ५० सिमेंट। ५१ वैज्ञानिक कृषि। ५२ कृत्रिम रंग। ५३ प्राकृतिक रङ्ग। ५४ चीनीके पात्रोंका व्यवसाय। ५५ साबुनका व्यवसाय। ५६ लिखने और छापनेकी स्याही। ५७ प्रकाश उत्पन्न करनेकी रासायनिक विधियां। ५८ कृत्रिम औषधियाँ। ५९ अभ्रक, उसकी उपस्थिति और प्रयोग। ६० कोयला, उसकी उपस्थिति और प्रयोग। ६१ भारतमें पेट्रोलियमका व्यवसाय। ६२ हिमालयकी आयु। ६३ पृथ्वीकी आयु। ६४ ज्वालामुखी और भूकम्प। ६५ प्राणविद्या ६६ भारतके सर्प। ६७ मछलियाँ। ६८ लिङ्गका निर्धारण। ६९ बिहारकी चिड़ियाँ। ७० लाहके कीड़े और लाहकी उत्पत्ति। ७१ रेशमके कीड़े और रेशमकी उत्पत्ति। ७२ टिड्डीका प्रश्न। ७३ पशुपक्षियोंमें पैतृक संरक्षण। ७४ पक्षियोंका आवागमन। ७५ पशुओंके जान्तव रोग। ७६ मच्छड़ और मलेरिया। ७७ जगत् सृष्टि। ७८ ज्यौतिष (सौर-परिवार भी)। ७९ फलित ज्यौतिष। ८० प्राचीन हिन्दू गणितज्ञ। ८१ भारतकी अनार्य्य-जातियाँ, उनका स्थान और रस्म रिवाज। ८२ जे० सी० बोसकी जीवनी और उनका कार्य्य। ८३ सर पी० सी० रायकी जीवनी और उनका कार्य्य। ८४ सर सी० वी० रमनकी जीवनी और उनका कार्य्य। ८५ डा० गणेशप्रसादकी जीवनी और उनका कार्य्य। ८६ मेघनाथ शाहाकी जीवनी और उनका कार्य्य। ८७ डारविनका विकासवाद। ८८ मेंडेलिज्म। ८९ पौधोंका श्वास और प्रश्वास। ९० पौधोंकी वृद्धावस्था और नव युवापन। ९१ बिहारके घासपात। ९२ भारतके औषधीय पौधे। ९३ हस्त-रेखा-विद्या। ९४ चीनीका निर्माण। ९५ इस्पातका निर्माण। ९६ पेंट और वार्निशका निर्माण। ९७ ग्लीसिरिनका निर्माण। ९८ आहार। ९९ स्वास्थ्य और उसकी रक्षा। १०० इंडियन सायंस कांग्रेस। १०१ इण्डियन केमिकल सोसायटी। १०२ इण्डियन इन्स्टीट्यूट आफ सायंस बैंगलूर। १०३ भारतकी गणितकी संस्थाएँ। १०४ भारतकी अन्य वैज्ञानिक संस्थाएँ। १०५ भारतके विश्वविद्यालयोंमें विज्ञानका अध्ययन। १०६ भारतके विश्वविद्यालयोंमें विज्ञानकी खोज १०७ ताताका लोहेका कारखाना (जमशेदपुर) १०८ शिवसमुद्रमके जलबलसे विद्युत् उत्पन्न करनेका कारखाना। १०९ पञ्जाबके जलबलसे विद्युत् उत्पन्न करनेका कारखाना। ११० मांसाहारी पौधे १११ पौधे खाते और पीते हैं। ११२ पौधोंका विवाह और विवाहकी रीतियाँ। ११३ पौधोंमें बच्चोंका संरक्षण। ११४ पौधे कैसे गमन करते और नये देशमें बसते हैं। ११५ पौधे कैसे लड़ते और अपनी रक्षा करते हैं। ११६ पौधोंका दीर्घ जीवन। ११७ पौधोंके शत्रु। ११८ जीवाणु या कीटाणु। ११९ पौधोंके रोग। १२० पौधोंका उत्पादन और फसलकी उन्नति।

मुर्देको जिलाना—कभी कभी स्पष्टतः अकारण ही धुकधुकी बन्द हो जाती है और प्राणीकी मृत्यु हो जाती है। ऐसी अवस्थामें ओषधि कोई काम कर नहीं सकती। अचानक अन्त होनेके कारण कोई उपाय मरनेके पूर्व हो नहीं सकता। परन्तु ऐसा देखा गया है कि कभी कभी मृत्युके २४ घंटेके भीतर ही फिरसे मनुष्य जी उठा है। नीचे लिखी क्रिया कई मौतोंमें सफलतापूर्वक की गयी है और फिरसे सांस और धुकधुकीको स्थापना हो गयी है। अतः इस क्रियाको सभी मौतोंपर आजमाना चाहिये। परीक्षामें कोई हानि भी नहीं है। यह क्रिया धुकधुकी बन्द होते ही करनी चाहिये। जितनी अधिक देर होगी उतनी ही सफलताकी आशा कम होगी।

लाश टेढ़ी हो गयी हो तो सीधी कर दो। बायां पैर और बायां हाथ मिलाकर माथेमें जल्दी जल्दी दस बार लगाओ। फिर दाहिने हाथ और दाहिने पैरको मिलाकर ऐसा ही दस बार करो। फिर चारों मिलाकर बीस बार माथेसे लगाओ। फिर बायीं करवट करके, बायें फेफड़ेके ऊपर पीठमें थप्पड़ मारो। बायीं करवट ही रहते दोनों टांगें इस तरह उठाओ कि कमरतक उठ जाय तब बायें चूतड़पर आठ थप्पड़ मारो। फिर चित्त करके नरम हाथसे बायें सीनेपर तीस थपथपी दो। अब दोनों हाथ लेकर घुटनोंतक चालीस बार फैलाओ और बटोरो। इसी तरह टांगें सीधी सीनेतक पचास बार ले जाओ फिर बार-बार लेटाओ और बैठाओ। फिर आंखें खोलकर ठंढा पानी एक एक बूंद डाल दो। फिर मूर्द्धापर अर्थात् सिरपर जहां बच्चोंका तालू होता है धीरे धीरे दस थपथपी दो। मुर्दा जब अपनेसे सांस लेने और ताकने लगे, तब यह क्रिया बन्द कर दो।

अनेक बार अल्पमृत्यु उपायके अभावमें हो जाती है। लोग लाशको जलाने या बहाने या दफनानेकी बड़ी जल्दीमें होते हैं। परन्तु सांपके काटनेपर या विषके प्रभावपर अथवा इसी तरहकी अकाल मृत्युकी दशामें लाशको कमसे कम तबतक देखना और सुरक्षित रखना चाहिये जबतक उसका बिगड़ना न आरंभ हो जाय।

ऐनककी कुटेव छुड़ाओ—आजकल ऐनकोंका प्रचारसा होरहा है। सारा देश चार अँक्खा हुआ चाहता है। कई डाक्टर तो बचपनसे ही ऐनक लगानेकी सलाह देते हैं। शायद ऐनकफरोश इन्हें रिश्वत देते होंगे, क्योंकि ऐनक लगाना नितान्त अस्वाभाविक है। इसे तभी इस्तेमाल करे जब और कोई उपाय न हो और बिना लगाये चल न सके। सहयोगी कायस्थ समाचारके जुलाईके अंकमें बुलन्दशहरके डाक्टर अग्रवालने चुनौती दी है कि बारह बरसके नीचेके बच्चोंकी दृष्टिके दोषको कोई भी अच्छा कर सकता है, और शर्त्तिया अच्छा कर सकता है। बहुत से बड़े और बूढ़े भी अपने दोष दूर कर सकते हैं। रीति यह है कि आंखें बन्दकरके नित्य १५ से लेकर तीस मिनिटतक सूर्य्यकी ओर मुँह किये रहा करो। कष्ट कम करनेको सिर और आंखके गोलोंको इधर उधर हिलाते डुलाते फेरते फारते रहो। स्कूलोंमें समीपदृष्टि दोष दूर करनेको दृष्टिकी जांचवाले तख्तेको टंगा रखो और बच्चोंको नित्य पांच मिनिटतक सबसे छोटे अक्षरोंको मनमें पढ़ते रहनेका अभ्यास कराया करो। पढ़ती बेर आंखें खोलते मूंदते रहें। यह विधि समीचीन जान पड़ती है। सूर्य्यकी किरणोंमेंसे अनेक प्राणप्रद, पौष्टिक और स्वास्थ्य दायक हैं। नंगे बदनपर नित्य घाम लेनेसे क्षमादि भयानक रोगोंसे छुटकारा मिला है। हमारे मरभुक्खे दरिद्र किसान बस्त्रहीन, नंगे, धूपमें खेतोंमें काम करते रहते हैं और लू नहीं लगती बल्कि वे अधिक स्वस्थ रहा करते हैं। आँखोंको भी यही किरणें स्वस्थ और सुखी बनावें तो क्या आश्चर्य्य है।

आकाशमें विज्ञापनबाजी—लोग अंधाधुंध विज्ञापन चिपकाने लगे तो अपनी दीवारोंपर लोगोंने रोक का बिल्ला लगा दिया। अब एक ऐसी रोशनी फेंकने वाला यंत्र बन गया है जो आकाशमें प्रकाशित आकार बना देता है। इस तरह उस यंत्रसे अब आकाशमें विज्ञापन प्रकाशित किये जा सकेंगे। कुछ दिनोंमें बड़े बड़े शहरोंका आकाश रातको विज्ञापनोंका तख्ता बन जायगा और जो तारकारत्नोंसे जटित सुन्दर आकाश पटके दिव्य दर्शन करना चाहेंगे उन्हें शहरोंसे अत्यन्त दूर जाकर कहीं वह दर्शन नसीब होंगे। "इंजिनियर" का अनुमान है कि ऐसा दृश्य सन् १९४० तक देखनेमें आ सकता है।

विज्ञान मजूरी कमको देता है, बहुतों की छीन लेता है।—'इंजिनियर" लिखता है कि जिस अलुमिनियमका नमूना ८५ बरस पहले सोनेकी तरह कीमती था वही आज सालमें २५००० टन निकाला जाता है। आकाशवाणी तारवाणी आदिके काममें

हजारों आदमी लगे हैं। क्या यह बात सच नहीं है कि विज्ञानकी बदौलत हजारों बेकारोंको नया काम मिलता है?" हां, सच तो है। परन्तु मशीनों और मिलोंमें जब वह चीजें तैयार होने लगीं जो पहले हाथसे बनती थीं, तो क्या विज्ञानकी बदौलत संसारके करोड़ों कामकाजी बेकार नहीं हो गये। इस क्रूर सत्यके ऊपरतो दृष्टि डालिये। इंजिनियर कहता है कि "कुछ महीनोंमें फोर्डके नये कारखानेसे दोदो मिनिटमें एक एक कार तैयार होगी। इससे १५००० आदमियों को रोजी मिलेगी।" यह तो बहुत संभव है। परन्तु अगर दो मिनिटमें सस्तीसे सस्ती २ हजार की मोटर बनी तो एक दिन रातमें १५ लाख रुपये का काम होगा। इतनी गाड़ियां रोज खपेंगी तो धनवानोंकी पूंजी अधिक धनवान फोर्डके खजानेमें जायगी। मजूरोंको तो बहुत कम मिलेगा। दुनियांके अधिकांश मनुष्योंका इसमें क्या लाभ है?

साहित्य विश्लेषण

बीजक। कबीरसाहबका ग्रन्थ, विरल टीका और टिप्पणी सहित। टीकाकार बाबा विचारदास। गोंडा जिला निवासी परमानुरागीभक्त श्रीमान् नगेश्वरबख़्श सिंहजी ताल्लुकेदारने अपने व्ययसे सत्यनामप्रैस, मैदागिन, बनारस शहरमें छपवाकर बिना मूल्य वितरित किया। पृ०४३०+६४ =४९४, डबलक्रौन १६ पेजी। स्थान कबीरचौरा बनारस शहर, अथवा श्रीमान् ठाकुर नगेश्वर बख़्श सिंहजी, तालुकेदार, मु० जरौली, डाकखाना परसपुर बाजार, जिला गोंडासे प्राप्य।

योंतो बीजक औरोंनेभी प्रकाशित किया है किन्तु प्रमाणिक शुद्ध पाठ और टीका टिप्पणी सहित बीजक का यही संस्करण हमारे देखनेमें आया है। हमें स्वयं अनेक साखियों और पदोंमें शंका थी जिनका निवारण इस संस्करणसे सहजमें ही हो गया। महात्मा कबीरके सम्प्रदायमें तो शुद्धमूल सदैव सुलभ था, परन्तु सम्प्रदायके बाहरके लोगोंको इस प्रकाशनके द्वारा अब बड़ा सुभीता हो गया है। महात्मा कबीरने साधारण रीतिसे शिक्षा नहीं पायी थी परन्तु उनकी शिक्षा जैसे असाधारण प्रकारसे हुई थी वैसे ही उनकी वाणी भी अत्यन्त असाधारण है। एक ओरसे जैसे वेदान्तके निर्गुणवाद और सार्वभौममान्य मतका अद्भुत रीतिसे सरल शब्दोंमें प्रतिपादन है उसी तरह दूसरी ओरसे अत्यन्त गंभीर रहस्यवादसे उनकी अनुत्तम कविता ओतप्रोत है। कवींद्र रवींद्रने रीझकर उनकी कविताका अंग्रेजीमें अनूदित संस्करण निकाला है। परन्तु यह कहना कठिन है कि वह अनुवाद कहांतक मूलके अनुकूल हुआ है।

महात्मा विचारदासजीने अपने अनुपम सम्पादन और टीका टिप्पणीसे अलंकृत करके उसी ग्रंथरत्नको पाठकोंको सुगम और सुबोध कर दिया है। उनकी टिप्पणियोंसे न केवल म० विचारदासकी अगाध विद्वत्ता प्रकट है, प्रत्युत महात्मा कबीरके विचारोंकी गहराई और प्रामाणिकता भी सिद्ध होती है। हम इस परिश्रम और योग्यताके लिये टीकाकारको और उदारताके लिये प्रकाशकको बधाई देते हैं। वेदान्त तत्त्वज्ञान है और तत्त्वज्ञान विज्ञानका मूल है और बीजकका विषय यही है। इस विज्ञान ग्रन्थको सुलभ करके तालुकेदार साहबने अपरिमित पुण्य कमाया है। अनमोल रत्नको पारखियोंमें लुटा दिया है।

संत। पक्षपातरहित ज्ञान ध्यान भक्ति भाव प्रेमादि की प्रभावशाली ग्रन्थमाला प्रतिवर्ष १२ नंबरोंमें, अवैतनिक सम्पादक महर्षि शिवव्रतलालजी वर्म्मन, राधास्वामीधाम, जिला मिर्जापुर, प्रकाशक दीवान बंसधारीलाल, संत कार्य्यालय, प्रयाग। १२ नम्बरोंका मूल्य ४॥)।

हमारे सामने आठवीं जिल्दके नं २-३-४ का संयुक्तांक है। इन तीन नम्बरों में १९० पृष्ठ हैं।

इन पृष्ठोंमें श्री शिवव्रतलालजी लिखित "कबीर परिचय, अर्थात् कबीरयोगकी विस्तृत भूमिका है। दीवान बंशधारीलालने इसे (शायद उर्दूसे) हिन्दीमें अनूदित किया है। जान पड़ता है कि **संतमें** ऐसे ही अच्छे अच्छे ग्रन्थ धीरे धीरे निकलते हैं। यह पुस्तक वर्म्मनजीकी और पुस्तकोंकी तरह बड़ी रोचक भाषामें लिखी गयी है और ठोस उपयोगी विषयसे ओतप्रोत है। जिस ग्रन्थकी यह भूमिका है वह लगभग १००० पृष्ठोंमें पूरा होगा। ऐसे ग्रन्थकी बहुत बड़ी आवश्यकता है।

सरल भौतिक शास्त्र— लेखक और प्रकाशक श्री रमेशचन्द्र गुप्त, बी० एस-सी, एल० टी०, एम० आर० ए० एस०, विज्ञानाध्यापक, कुबेर हाईस्कूल, डिबाई, बुलन्दशहर, डबलक्रौन सोलहपेजी पृ० ३१२ + १६, प्रथम संस्करण, सजिल्द, मूल्य २।) दोनों भाग। अलग अलग भाग १ सजिल्द १।।), भाग २, १)। पहले भागमें ताप और प्रकाशका वर्णन है।

गत दो वर्षों से संयुक्त प्रान्तके शिक्षाविभागने हाइस्कूलके छात्रोंकी सुविधाके लिये विज्ञान-गणित आदि विषयोंको अंग्रेजीके अतिरिक्त देशी भाषाओंमें भी पढ़ानेकी आज्ञा दे दी है। विकल्प होनेके कारण अभीतक पुस्तकोंका अभाव भी है और मांग भी कम है। आवश्यक और अनिवार्य्य आज्ञा होती तो पुस्तकें कबकी तैयार हो गयी होतीं। ऐसी दशामें गुप्तजीने भौतिकशास्त्रकी पोथी लिखकर बड़े महत्वका काम किया है। आपने इसे सभी प्रसिद्ध विक्रेताओंके पास बिक्रीके लिये रखा है। इसमें दी हुई विषयावली हाइस्कूलके पाठ्यक्रमको पूरा करती है। अधिकांश सैद्धान्तिक तर्कोंको प्रयोगोंसे पुष्ट किया गया है। वर्णनशैली पाठ्य पुस्तकोंकी ही है। अध्यायके अन्तमें अभ्यासके लिये पर्य्याप्त संख्यामें प्रश्नावली दी गयी है। निदान इसे उपयुक्त पाठ्यग्रंथ बनानेके-लिये सभी तरहकी सामग्री प्रस्तुत की गयी है। किसी अन्य ग्रंथके अभावमें यह पुस्तक अवश्य ही अद्वितीय है।

ग्रन्थकारने पारिभाषिक शब्दोंकेलिये नागरी प्रचारिणी सभा काशीके हिन्दी वैज्ञानिक कोश एवं अन्य वर्त्तमान विज्ञानकी पुस्तकोंसे सहायता ली है। सभाका शब्दकोश अपने प्रकारकी पहली पुस्तक है और उसने हिन्दीमें वैज्ञानिक साहित्यके निर्माणमें आधारका काम दिया है। परन्तु वह बहुत पुराना हो गया है। उसमें आरंभिक भूलें भी हैं, शब्दोंकी-कमी भी है और कई अँग्रेजीशब्दोंकी अभिधा तबसे बहुत बढ़ गयी है। अतः उससे तभी सहायता लेनी चाहिये जब आधुनिक परिभाषा कोश काम न दे सकें। परिषत्ने कई बरस हुए "वैज्ञानिक पारिभाषिक शब्द" नामक कोषका पहलाभाग प्रकाशित-किया जिसमें शरीर विज्ञान, वनस्पतिविज्ञान आदि कई विषयोंकी भी शब्दावली है जो सभाके कोशमें नहीं हैं। ताप, प्रकाश, चुम्बकत्व, विद्युत् ध्वनि आदि विषयोंपर तो अलग अलग सूची दी हुई है। अतः गुप्तजी अगर परिषत्के कोशसे काम लेते तो कलारीमापकके लिये "उष्णता मिति" शब्द न रखते। "उष्णता" और "तापक्रम" एक ही बात है। "उष्णता मिति" जो सभाकाशब्द है कलारीमापककेलिये सर्वथा अनुपयुक्त एवँ अशुद्ध है। यदि "उष्णता के बदले "तापमात्रा" का प्रयोग होता तो सर्वथा शुद्ध होता। इसी तरह "असमतापमापक" की जगह "भेददर्शक तापमापक" होना चाहिये। "असम" और "भेद" में अर्थका बड़ा अन्तर है। यद्यपि सभाके कोशमें (Constant) के लिये "स्थिर" दिया हुआ है और यह पर्य्याय बिल्कुल ठीक है तथापि न जाने किस आधारपर गुप्तजीने "स्थिर" की जगह "अवर्धनीय" दिया है। क्या घट जाय तो आपके मतसे "स्थिरांक" बना रहेगा? "अवर्धनीय" शब्द सर्वथा अशुद्ध है। और यह गुप्तजीकी गढ़न्त है। परन्तु कहीं कहीं गुप्तजीकी गढ़न्त बड़ी सुन्दर है, जैसे सेफटी लम्पके लिये "अभयदीप" बहुत ही उपयुक्त पर्य्याय है। यह तो हुई पारिभाषिक शब्दोंकी दशा। साधारणतया भाषा शुद्ध है। कहीं कहीं प्रान्तीयताके दोष भी आ गये हैं। पृ० ३ पर प्रयोग १ में ही "सीलनिवाये"

पानीकी चर्चा है। प्रसंगसे तो "सीलनिवाना" समझमें आ जाता है, परन्तु वैसे तो यह शब्द सर्वथा प्रान्तीय है। हिन्दीशब्दसागरमें इसका पता नहीं। शुद्ध शिष्ट हिन्दीमें इसका कहीं प्रयोग नहीं होता। इस तरहके दोष कहीं कहीं हैं। शैली तत्सम मय है। "अन्य" की जगह और या दूसरा, "प्रथम" की जगह पहला, प्रत्येककी जगह "हरएक"का प्रयोग करनेसे हिन्दीकी शैली बिगड़ नहीं जाती, बल्कि भाषा अधिक सीधी सादी हो जाती है। सीधे सादे चलते रोजमर्राके शब्दोंके साथ साथ पारिभाषिक शब्दोंका प्रयोग होनेसे वह अधिक जाने पहचानेसे लगते हैं। हाँ यह सच है कि सरल भाषाका लिखना कठिन काम है और कठिन भाषाका लिखना सरल काम है। इस पुस्तककी शैली जितनी तत्समसय है उससे कम तत्सममय सुभीतेके साथ की जा सकती है।

चित्रोंकी संख्या यथेष्ट है, परन्तु कई अशुद्ध हैं, अनेक अस्पष्ट हैं, कई भद्दे हैं और साधारणतया चित्रोंकी छपाई साफ़ नहीं हुई है। पृ० ८ पर "सुराही" ['कुप्पी' चाहिये] कांचकी है और उसमें नली भी कांचकी लगी हुई है फिर भी "सुराहीकी" गरदनपर और नलीके मोड़ोंपर ऐसे तीव्रकोण हैं जैसे कि कांचकी वस्तुओंमें, यदि वह ठीक तरहसे बनाये जायँ, हो नहीं सकते और तीव्रकोण रहे तो कांचके उसी स्थानसे चटखकर टूटते देर नहीं लगती। लड़के चित्र बनानेमें ऐसी भूल करते हैं, तो उनके नम्बर कट जाते हैं। पाठ्यपुस्तकोंमें ऐसीभूलें तो लड़कोंके सामनेभी हास्यास्पद होंगी। गुप्तजीने विज्ञान परिषदको [जिसे आपने भूलसे "हिन्दी" विज्ञान परिषद् लिखा है] कुछ ब्लाकोंके लिये धन्यवाद दिया है, परन्तु मुझे पूरा विश्वास है कि ऐसे अशुद्ध चित्र परिषत्के ब्लाकोंके नहीं हो सकते। ऐसे चित्रोंके लिये स्वयं गुप्तजीपर उत्तरदायित्व है। आप भूमिकामें लिखते हैं कि "जल्दीमें छपनेके कारण प्रेसकी असावधानीसे पुस्तकमें जहांतहां कुछ अशुद्धियां रह गयी हैं।" जल्दी तो क्या, प्रेसोंको कितनाही समय दीजिये, सर्वथा शुद्ध छपाई तो हमारे यहांके प्रेसोंने सीखी ही नहीं है, परन्तु हम अपने भरसक भी तो गलतियोंसे वचनेकी कोशिश नहीं करते! ऐसे अशुद्ध चित्र दिये ही न जाते तो ही अच्छा था। इन भूलोंके लिये प्रेसका कुछ भी दायित्व नहीं है।

सब बातोंपर विचार करके फिर भी हम कहेंगे कि पुस्तक सुधारनेके योग्य होते हुए भी बहुत अच्छी और पाठ्य ग्रन्थ बनाने योग्य है। स्कूलोंके विज्ञानाध्यापक सावधानीसे काम लेंगे तो पढ़ाते पढ़ाते भी इसकी भूलोंके सन्शोधन करा देंगे और पढ़नेवाले बालकोंकी कोई हानि न होगी। फिर भी हमारा साग्रह अनुरोध है कि स्वयं गुप्तजी अगले संस्करणमें इसका सन्शोधन साद्यन्त करें और उसके पहले परिषत्के प्रकाशित साहित्यको भी मननपूर्वक पढ़ डालें, कि पारिभाषिक शब्दोंके शुद्ध प्रयोगमें उन्हें पूरी मदद मिल सके।

प्रभात—हिन्दीका साप्ताहिक पत्र, सम्पादक श्री बालेश्वर प्रसाद गुप्त तथा शिवप्रसाद विशारद। प्रकाशक तथा मुद्रक श्री चन्द्रशेखर प्रसाद, प्रभातप्रेस, बलिया। वार्षिक मूल्य ३)।

प्रभातका हालहीमें बलियासे उदय हुआ है। आजकल अच्छे साप्ताहिक पत्र जिस ढंगसे निकल रहे हैं वही रंगढंग इसका भी है। इसमें 'कहानी' "बाल-साहित्य" "काव्यसुधा" "स्वास्थ्यविज्ञान" "वैदेशिक समाचार" "स्थानीय समाचार" "समाचार संग्रह" और "शैतानकी टोकरी" यह स्तंभ स्थायी रूपसे रहते हैं। "स्वास्थ्य विज्ञान"वाले स्तंभमें बड़े महत्त्वके वैज्ञानिक लेख रहा करते हैं। इसका सम्पादन बड़ी योग्यतासे होता है।

विश्वाची रचना आणि उत्क्रांति—कैलासवासी ज्योतिर्विद शंकर बालकृष्ण दीक्षितके स्मरणार्थ लिखा हुआ निबन्ध ले० त्र्यम्बक गोविन्द ढवले, बी० ए, आन्तरिक्ष वेधशाला, पूना, प्रकाशक महाराष्ट्र शास्त्रीय परिभाषा मंडल, २८१ सदाशिव, पूना। मूल्य ।=)। डिमाई अठपेजेके ४२ पृष्ठ, सचित्र। चित्रसंख्या १०।

मराठीमें "सृष्टिज्ञान" नामक वैज्ञानिक मासिक पत्र बड़ी उत्तमतासे निकल रहा है। उसके ग्राहकों को यह पुस्तिका भेंट की गयी है। विश्वकी रचना और विकास इसका विषय है। लेखकने आदिसे अंततक बड़े रोचक और सुबोध ढंगपर यह निबंध लिखा है। अबतक सौर परिवारमें जो ग्रह देखे और जाने गये हैं उनमेंसे प्लूटोका समावेश भी "कुबेर" नामसे किया है। इसे मार्च, १९३० में ही पहलेपहल देखा गया है। लेखकने इस निबन्धमें जिन पारिभाषिक शब्दोंका प्रयोग किया है उनमेंसे कई विचारणीय हैं। नीहारिकाके लिये "अभ्रिका", (Cygnus) के लिये हंस, कुंडल्याकार नीहारिकाके लिये "बलिताभ्रिका" (Andromeda) के लिये देवयानी (theory) के लिये "परिकल्पना", हवाई जहाजके लिये "विमान" और एरोप्लेनके लिये "वियान" ये शब्द भी अच्छे हैं। लेखकने आजतककी धारणाओंपर अच्छे विचार किये हैं। शास्त्रीय-परिभाषा-मंडल ऐसे कई ग्रंथ निकाल चुका है। इस कार्य्यके लिये महाराष्ट्रिय साहित्य अभिनन्दनीय है।

भारतभूमि और उसके निवासी

लेखक तथा प्रकाशक श्री जयचन्द्र विद्यालंकार कमालिया, पंजाब। डबलक्रौन १६ पेजी, पृ० ३६२ + २४, अजिल्द २) सजिल्द २।)।

यह ग्रंथ वस्तुतः एक बृहत् ऐतिहासिक ग्रंथकी भूमिकाके रूपमें ही लिखा गया है। यह ग्रंथभी तैयार है और शीघ्र प्रकाशित होने वाला है। इसका नाम है "भारतीय इतिहासकीरूप रेखा"। जो अंश तैयार है, उसमें केवल प्राचीनकालके इतिहासकीरूपरेखा है। उसमें भी भूमिका है, परन्तु वह ऐतिहासिक भूमिका है। समालोच्यग्रंथ उसीकी भौगोलिक भूमिका है।

इस कथनसे पाठक यह न समझें कि यह कोई स्वतन्त्र ग्रन्थ नहीं है। इसका वास्तविक मूल्य स्वतंन्त्र ग्रंथसे अधिक है। इसका पन्ना पन्ना ठोस सामग्रीसे भरा है। भरतीका एक शब्द नहीं है। बल्कि ऐसा जान पड़ता है कि लेखकको कई जगह अपनी उत्सुकछातीपर पत्थर रखकर विषयको संक्षिप्त करना पड़ा है।

आधुनिक विज्ञानोंमें भूगोलको हालमें ही स्थान मिला है। भूविद्याओंमें भूगोल और भूगर्भ दो प्रधान विभाग हैं। भूगर्भका अनुशीलन भी थोड़ेही कालसे विधिवत् होने लगा है और भूगोलका अध्ययन बहुत कालसे होते हुए भी उसकी महत्ताको इधर कुछ ही कालसे लोग मानने लगे हैं। भारतीय भूगोलका अध्ययनतो यथोचित विधिसे अभीतक हुआ ही नहीं। अबतक वास्तवमें इसका अध्ययन प्रायः उन विदेशी विद्वानोंके हाथमें रहा है जो इस विषयके न तो खोजी थे और न तत्त्वज्ञ और न उन्हें इस विषयका रस था। कुछ बरसोंसे हमारे सहयोगी "भूगोल" का प्रयत्न इस विषयमें यह अवश्य रहा है कि लोग इसमें रस लें, परन्तु हमें यह नहीं मालूम है कि "भूगोल" मंडलीने एतद्विषयक खोजके काममें भी कभी हाथ डाला है, अथवा कोई इस तरहकी मौलिक बात भी प्रकाशित की है। हमारी समझमें भारतकी भौगोलिक खोजकी हमारे मित्र जयचन्द्रजीने दागबेल डाली है। इस कालमें वह पहले लेखक हैं जिनके दरसाये हुए मार्गपर आगेके भूगोल विज्ञानी अपना काम करेंगे।

वर्त्तमानकालमें प्रान्तोंका सरकारी विभाग केवल शासनके सुभीतेसे किया गया है। यह विभाग स्वाभाविक नहीं है। पं० जयचन्द्रजीने प्राचीन मध्यकालीन और वर्त्तमान स्थितियोंपर विचार करके जो विभाग किये हैं वह बहुत समीचीन और स्वाभाविक जान पड़ते हैं। इस भौगोलिक खोजकी आवश्यकता इसलिये पड़ी कि लेखकको यह देखना था कि भारतकी भौगोलिक रचनाका प्रभाव उसके इतिहासपर कब कैसा पड़ा है। इसदृष्टिसे भौतिक भूगोलका अध्ययन सामाजिक भूगोलके साथसाथ विस्तारसे करनेकी आवश्यकता थी। उसकी सब तरहकी सम्पत्ति उसके उत्पादन उपयोग और वितरणपर विचार करना था। सैनिकों और व्यापारियोंके

स्वाभाविक और सुभीतेके मार्गोंका ठीक ठीक पता लगाना था। प्राचीन इतिहासमें जिन जिन देशों, नदियों पहाड़ों और वनोंका उल्लेख मिलता है वह कहां कहां किन किन आधुनिक जगहोंमें थे, यह जानना आसान बात नहीं है। वैदिक साहित्य, इतिहासों, पुराणों और स्मृतियोंके प्रतीकोंसे ठीक समन्वय अत्यन्त कठिन काम है। यह साहित्य चाहे जिस जिस कालके हों, जिन देशों आदिका उनमें वर्णन है वह कब किस नामसे पुकारे जाते थे इस बातका अन्वेषण सहज नहीं है। परन्तु ग्रन्थकारने इन सब दुर्गम स्थानोंमें पर्य्यटन किया है और भरसक लाभके साथ किया है। प्रत्येक खंडके पर्वत और प्रदेशका भौगोलिक निरूपण किया है, पैदावार और धन सम्पत्तिका आर्थिक दिग्दर्शन किया है। साथ ही साथ पद्धति और ऐतिहासिक पर्य्यालोचना भी है। इस प्रकार भूमिका परिशीलन करके उसपरके निवासियोंका अच्छा अध्ययन है। इस अध्ययनमें भारतकी विभिन्न जातियोंके परस्पर साम्य और विभेद पर भी विचार किया गया है। इस प्रसंगमें लेखकने पाश्चात्य जनविज्ञानियोंके ही मार्गका अनुसरण किया है और आर्य्यनस्लके मूल अभिजन और भारतमें आनेके रास्तेके सम्बन्धमें थोड़ेसे ही अन्तरके साथ जस्टिस पार्जिटरके ही मतोंको अपनाया है। आपकी यह निश्चित धारणा दीखती है कि भारतमें आर्य्यजाति कहीं बाहरसे आयी है। इसके विपक्षमें डा० अविनाश चन्द्रदास प्रभृति अनेक भारतीय विद्वानोंका मत है कि आर्य्य जातिका मूल निवास भारतमें ही है। वह यहांसे बाहर गये। बाहरसे यहां नहीं आये।

यह विषय विवादग्रस्त है। निरी समालोचनामें इसके पक्ष वा विपक्षका पोषण इष्ट भी नहीं है। हां यह तो स्पष्ट है कि आर्य्योंके बाहरसे आकर भारतमें बस जानेकी धारणा उन्हीं विद्वानोंकी उठायी हुई है जो स्वयं बाहरसे आये हुए हैं और उसके लिये भारतीय साहित्यमें कहने लायक कोई बुनियाद नहीं है और न कोई बहिरंग प्रमाण ही मिलता है। साथ ही हम यह भी कहेंगे कि जैसे भारतीय भूमिकी भौतिक दशापर विचार करके योग्य लेखकने अनेक धारणाओंकी स्थापना की है वैसे ही प्रागैतिहासिक कालकी भूरचनापर विचार करके आर्य्य जातिके विकासपर भी अभी बहुत कुछ प्रकाश डाला जा सकता है। जो लोग मोहनजोदारोकी खुदाईपर ही "काता और ले दौड़े"के न्यायसे कल्पनाके घोड़े दौड़ानेमें बीचमें सांस भी लेना नहीं चाहते, उनकी तो बात ही न्यारी है। परन्तु हम इस स्थलपर इतना तो जरूर कहेंगे कि सत्यान्वेषियोंको खोजमें उतावली न करनी चाहिये, पृथ्वीकी विपुलताको न भूलना चाहिये और बिना इस विचारके कि हम पूर्व विद्वानोंका अनुसरण कर रहे हैं या विरोध, निरन्तर प्रयत्नशील और सत्योन्मुख रहना चाहिये। यही वैज्ञानिक-प्रवृत्ति है।

इस ग्रन्थका परिशिष्ट जो ५५ पृष्ठोंमें छपा है मूलसे कम महत्त्वका नहीं है। प्राचीन भूगोल विषयक कुछ समस्याओंपर विचार करके ग्रन्थकारने भारत की राष्ट्रीय एकतापर अपने अत्यन्त समीचीन विचार प्रकट किये हैं और पाठकोंका ध्यान पहली बार इस महत्त्वकी बातपर आकृष्ट किया है कि भारतीय वर्णमाला भारत और भारतके बाहर बृहत्तर भारतमें भी एक ही है। सबसे अधिक महत्त्वका विचार भौगोलिक संज्ञाओं और परिभाषाओंपर है। वैज्ञानिक परिभाषाओंके संबन्धमें हमारे लेखक प्रायः यह भूल करते आये हैं कि जब पाश्चात्य भाषाओंसे अनुवाद करने लगते हैं तो पारिभाषिक शब्दोंका भी अनुवाद कर डालते हैं। यह खोज करनेका कष्ट नहीं उठाते कि हमारे साहित्यमें उनके लिये पहलेसे शब्द मौजूद हैं या नहीं। श्री काशी नागरीप्रचारिणी सभाने वैज्ञानिक परिभाषाओंका एक कोष कोई तीस बरस पहले तैयार कराया था। यद्यपि उसमें इस तत्त्वपर ध्यान दिया गया था, तथापि अब तो वह सब तरहसे संशोध्य और परिवर्धनीय है। जैसे परिभाषामें हम विदेशियोंका अन्धानुकरण करते आये हैं उसी तरह इसी अनुकरणकी भूलसे

प्रायः दूरके प्रान्तोंके भौगोलिक नामोंमेंभी भयंकर भूलें होती आयी हैं। काकिनाडा जाते हुए नौ साल पहले मैंने अंग्रेजीमें लिखे (Coconada) को "कोकनद" का भ्रष्ट रूप समझा था परन्तु उस स्थानके १०० मीलके भीतर ही मुझे अपनी भूल मालूम हो गयी। हिन्दीमें हम अंग्रेजीसे अनुवाद करनेके कारण भ्रष्ट भूलें करते फिरते हैं। इराकको मेसोपोटामिया, ईरानको पर्शिया, अरबको अरेबिया, मिस्र देशको ईजिप्ट यूनानको ग्रीस साधारणतया लिखा करते हैं।

अंग्रेजोंके द्वारा भ्रष्ट प्रचारका एक उदाहरण "जर्मन" शब्द है। आज जर्म्मनकी जगह "डोइट्श" शब्द लिखें तो कोई न समझे। परन्तु सच बात यह है कि जर्मन भाषामें "जर्म्मन" शब्द न तो उस भाषाका नाम है और न उसके बोलनेवालोंका और न जर्म्मनी देशका ही नाम है। परन्तु यह भूल रूढि हो गयी है। "इंडियन" शब्दका अर्थ अमेरिकामें और है और इंग्लिस्तानमें कुछ और। हम भारतीय अमेरिकामें हिन्दू कहलाते हैं। इस तरहकी भौगोलिक रूढ़ियां प्रचलित हो चुकी हैं। इनका बहिष्कार कठिन है। ग्रंथकारके इस सम्बन्धके प्रस्ताव समीचीन हैं और व्यवहारमें उसपर हिन्दी लेखकोंका ध्यान रहना चाहिये।

विद्यालंकारजीकी भाषा प्रौढ़ और मंजी हुई है। आपको उन विदेशी शब्दोंसे परहेज नहीं है जो हमारी भाषामें चलनसार सिक्के हो रहे हैं। आप उर्दू की ठीक कीमत समझते हैं। आपकी मातृभाषा खड़ी बोली नहीं है, तो भी आपके ग्रन्थमें पन्जाबीपनकी बू कहीं नहीं आती। इस बातमें गुरुकुल कांगड़ीकी स्नातक मन्डलीमें आप अपवाद हैं। आप जैसे पुराने पारिभाषिक शब्दोंके खोजी हैं वैसे ही आप नये शब्दोंके "टकसालनेमें" भी कुशल हैं। (Nomad) के लिये "फिरन्दर" शब्द मुझे बहुत पसन्द आया। भाषाकी दृष्टिसे भी यह ग्रन्थ अनेक लेखकोंके लिये मार्गदर्शक है।

यह पुस्तक बड़े महत्त्वकी है। इसे विद्यापीठोंके पाठ्यग्रन्थोंमें अवश्य स्थान मिलना चाहिये।

१५-३-९० रामदास गौड़

सहयोगी विज्ञान

(१) सामयिक साहित्य

रोशनी (उर्दू) (लाहौर) के जुलाइके अंकमें (१) शिक्षा और बेकारी, (२) स्वास्थ्यरक्षाका स्वाभाविक ज्ञान, (३) हमारे घरेलू दुश्मन और छूतकी बीमारियां (४) रसायन और राष्ट्रकी भलाई, (५) हैजा और बचनेके उपाय, (६) मुरगियोंका पालन (७) पशुओंके रोग और (८) दूध दुहनेके सिद्धान्त, इन ८ विषयों पर लेख हैं।

इंजिनियर (अंग्रेजी) (शोलापुर)-के जूनके अंकमें (१) विज्ञानकी प्रगति, (२) सूखे जिलोंके लिये घनीकरण गाड़ियां, (३) ऊल नदीकी जल विद्युत् योजना, (४) यांत्रिक गाय, (५) भारतमें औद्योगिक उन्नति आदि कई उपयोगी लेख हैं। जुलाईके अंकमें मिलोंकी आबोहवा और अलुमिनियमपर विस्तृत लेख हैं।

वैद्यकल्पतरु (गुजराती) (अहमदाबाद)-की जुलाईकी संख्यामें (१) वैद्यक विचारपुष्प, (२) नैसर्गिक झरनोंके पानी और इनके गुण, (३) इंजेक्शन चिकित्सा, (४) बंगाली कहावतें, ५ कसरतकी जरूरत, (६) वैटामिन "सी" और दांत, (७) शरीरकी स्थूलता, (८) समुद्रमहिमा, (९) पुरुष तथा स्त्रीकी नाड़ी, और (१०) सर्प विषकी खोज, इन दस विषयों पर बड़े उपयोगी लेख हैं।

कल्पवृक्ष (हिन्दी) (उज्जैन)-के अगस्तके अंक में (१) दिव्य सहायता, (२) आत्मज्ञानका प्रथम सोपान, (३) एकाग्रताका प्रभाव (४) इच्छा सिद्धिका साधन, (५) मानसिक शक्ति बढ़ानेके उपाय (६) अध्यात्म बल, (७) नाड़ी शुद्धि, (८) मुक्तिका मार्ग, (९) वैदिक वेदान्त, और (१०) लालरंग और उसके गुण, यह दस लेख महत्त्वके हैं।

यह तो विशिष्ट वैज्ञानिक पत्र हैं। अब साधारण सार्वजनिक पत्रोंको देखिये।

साप्ताहिक जागरणके—१७ जुलाईके अंकमें निद्रा और जागरण नामक लेखमें निद्राकी आवश्यकता और अति जागरणसे हानिका सप्रमाण वर्णन है। प्रतापके २३ जुलाईके अंकमें "शक्करका व्यवसाय और सरकार" और ३० जुलाईके अंकमें "चम्पारन के किसान और ईखके कारखाने" यह दो लेख शक्करके व्यवसायपर अच्छे निकले हैं। जयाजी प्रतापके २० जुलाईके अंकमें "प्राणिभक्षक पौधोंका" मनोरंजक और उपयोगी वर्णन है। २७ जुलाइके अंकमें "बलयाकार सूर्य्य ग्रहण" और "मनचाही बारिश" यह दो वैज्ञानिक लेख हैं। पिछले लेखकी उपयोगितामें तो कोई संदेह ही नहीं है। इसी अंकमें "पिंडारी ग्लेसियर की यात्रा" का तीसरा अंशभी छपा है। यह साप्ताहिक तो नियमसे "विज्ञान संसार" नामका एक स्तम्भ ही देता है। स्वराज्य (खंडवा) में भी इसी तरह "स्वास्थ्यविज्ञान" नामका एक स्थायी स्तम्भ रहता है। कई अंकोंसे स्वराज्यमें एक विशेष स्तम्भ "भाषा सामंजस्यका" भी रहता है। स्वराज्यकी यह अनोखी सूझ नहीं है तोभी स्वर्गीय "देवनागर" की स्मृतिको जगाकर और तादृश सेवा करके "स्वराज्य" देशका बड़ा उपकार कर रहा है। "मधुमक्खियां" और "देव नागरीलिपिमें सुधार" यह दो लेखभी स्वराज्यमें अच्छे निकले हैं।

मासिक साहित्यमें गंगाने अच्छे वैज्ञानिक लेख प्रकाशित किये हैं। उसके श्रावणके अंकमें श्रीश्याम नारायण कपूरका लिखा तारचित्र या टेलीफोटो, श्रीराम निवास शर्म्माका लिखा "ग्रहण", "कृषक संसार" वाला स्तंभ, "भूतत्त्व विभागका महत्त्व", मनन योग्य लेख हैं। विशाल भारत के जुलाईके अंकमें उन्हीं श्रीश्याम नारायण कपूरका लिखा "विज्ञानकी बलिवेदीपर" है जिसमें विज्ञानके लिये प्राणोत्सर्ग करनेवालोंकी सक्षिप्त चर्चा है। श्रीराजारामजी की अप्रकाशित पुस्तक "स्वप्न मीमांसा"से एक अध्याय "स्वप्नका स्वरूप" इसी अंकमें लेखके रूपमें दिया गया है। यह प्रोफेसर फ्राइडके Interpretation of Dreams के ढंगपर और उसीके आधारपर लिखी पुस्तक जान पड़ती है। अभिनव स्वप्नविज्ञान या अभिनव मनोविश्लेषण एक उदीयमान विज्ञान है जो जीवविज्ञान और मरणोत्तरजीवन विज्ञानके बीच सम्बन्ध उत्पन्न करनेवाली विद्या जान पड़ती है। एक अत्यन्त महत्त्वके विषयपर यह एक ही अध्याय है अतः इसपर सम्मति देना सम्भव नहीं है। वीणाके श्रावणके अंकमें श्री श्यामनारायण कपूरका "ज्वालामुखीके गर्भमें" नामक लेख है जिसमें किर्नरके अनुभव दिये गये हैं। विश्वमित्रके श्रावणके अंकमें श्री परमानन्द ने "टेलीविजनकी चमत्कारपूर्ण कहानी" में सचमुच चमत्कारपूर्ण दूरदर्शन कराया है। अभी इस आविष्कारके पूरे आठ वर्ष भी नहीं हुए हैं। स्वयं डा० जोशीका "प्रेमकी दिव्य विभासे उद्भासित पशु-पक्षी और मनुष्य जगत्" नामक लेख कम चमत्कारिक और मनोरंजक नहीं है। विश्वमित्रमें तो "विज्ञान चमत्कार" नामका एक स्तंभ ही नियमसे रहा करता है। असाढ़के हंसमें भी श्रीराजारामशास्त्रीका "मनोविज्ञानका जीवनमें प्रयोग" नामक एक अच्छा लेख है। जुलाईका बालक भी श्रीभगवान निर्वाणके मुखसे सूर्य्य परिवारका रोचक बखान कर रहा है। निदान सहयोगी साहित्य अब विज्ञान सम्बन्धी लेख बिना अपनेको पूर्ण नहीं समझता।

---

(२) भारतीय एडीसन डा० शंकर बिसे

[विशालभारतके फरवरी (३३) की संख्यामें श्री श्यामनारायण कपूरने डा० भिसेकी जीवनी और आविष्कारोंका विशद वर्णन किया है। डा० भिसे भारतीय एडीसन कहलाते हैं क्योंकि उनके संसारोपयोगी आविष्कार अनेक हैं और बड़े महत्त्वके हैं। भिसे महोदय योगी हैं और योगसाधनको ही उनके आविष्कारोंका श्रेय है। विज्ञानके पाठकोंके लिये इस लम्बे लेखसे आवश्यक अंश उद्धृत करनेके लोभको हम संवरण नहीं कर सकते। विज्ञान—सं०]

डा० शंकर ए० बिसेका जन्म सन् १८६७में बम्बई शहरमें हुआ था। उनके माता-पिता सुशिक्षित और जातिके कायस्थ थे। उनके पिता और तीन चाचा सरकारी न्यायालयोंके उच्च पदाधिकारी थे। अन्तमें १९१६ में वे अपने पुरुषार्थके बलपर अमेरिका पहुँचनेमें सफल हुए, और तबसे वहीं स्थायी रूपसे रहने लगे हैं। इस समय उनकी पत्नी, दोनों पुत्र और कन्या उन्हींके साथ अमेरिकामें हैं।

सन् १८८७ में श्री बिसेका विद्यार्थी-जीवन समाप्त हुआ। उसी वर्ष उन्होंने अपने माता-पिताको प्रसन्न करने और अपने वैज्ञानिक कार्यके लिए स्वतन्त्ररूप से धनसंग्रह करनेके उद्देश्यसे सरकारी एकाउन्ट-विभागमें नौकरी भी कर ली।

उन दिनों वे अपने अवकाशका समस्त समय वैज्ञानिक शोध और योगाभ्यासमें लगाते थे।

सन् १८९०—९५ तक उन्होंने कई चमत्कार-पूर्ण आविष्कार भी किये, जिनकी सहायतासे उन्होंने एक ठोस पदार्थको दूसरे ठोस पदार्थमें परिवर्तन करनेका चमत्कार दिखलाया। इनका प्रदर्शन कई भारतीय वैज्ञानिकों और नरेशोंके सम्मुख किया गया। बादमें इनका प्रदर्शन मैंचेस्टरके 'फ्री ट्रेडहाल' में भी किया गया। सभी विद्वानोंने इन आविष्कारों-की मुक्तकंठसे प्रशंसा की, और यह स्वीकार किया कि उस समयतक यूरोपियनोंने इस सम्बन्धमें जितने आविष्कार किये थे, उनमें श्री बिसेका आविष्कार सबसे बढ़-चढ़कर था। सन् १८९५ में बम्बईके सुप्रसिद्ध नागरिकोंने उनके गुणों और आविष्कारोंके उपलक्ष्यमें एक महती सभा करके अभिनन्दन-पत्र और सुवर्णपदकसे उन्हें सम्मानित किया।

१८९५ तक वे वैज्ञानिक कार्योंके साथ-साथ थोड़ा बहुत समय योगाभ्यासमें भी लगाया करते थे। १८९६ से ९८ तकके तीन वर्ष उन्होंने पूर्णतः योगाभ्यासहीमें लगाये। इस बीच उनके मनकी एकाग्रशक्ति इतनी अधिक उन्नत हो गयी कि वे लोगों-के सम्पर्कमात्रमें आते ही, उनके हृद्गत विचारोंको ठीक ठीक जानने लगे। कई वैज्ञानिकों और डाक्ट-रोंने भी उनकी इस क्षमताको स्वीकार किया। सन् १८९७ में बड़ोदा-नरेशने उनकी आश्चर्यजनक शक्ति-की स्वयं परीक्षा की, और हीरेकी एक बहुमूल्य अँगूठी भेंट करके उन्हें सम्मानित किया। उन्होंने देखा कि सरकारी नौकरी करते हुए योगाभ्यासमें पूर्णतया सफल होना दुःसाध्य है, अतः अपना सम्पूर्ण समय और शक्ति वैज्ञानिक शोध और खोज-सम्बन्धी कार्योंमें लगा दी।

सन् १८९८ में लन्दनके 'इन्वेन्टर्स रिव्यू' और 'साइन्टिफिक रेकार्ड' पत्रोंके प्रकाशकोंने एक ऐसे आविष्कारके लिए, जिससे पिसी हुई काफ़ी, शक्कर, आटा आदि चीज़ोंकी राशिमेंसे थोड़े-थोड़े परि-माणमें चीज़ें तोलने और देनेका काम लिया जा सके, एक प्रतियोगिता-पुरस्कारकी घोषणा की। श्री बिसे इस प्रतियोगितामें सम्मिलित हुए, और विजय प्राप्त की। इस प्रतियोगितामें यूरोपके अठारह प्रति ष्ठित आविष्कारक सम्मिलित हुए थे। श्री बिसेको अपनी अभूतपूर्व सफलताके लिए न केवल पुरस्कार-ही मिला, वरन आविष्कारकी महत्वपूर्ण विशेष-ताओंके लिए बोनस आदि विशेष पुरस्कार भी दिये गये। इसके अनन्तर बम्बईके भूतपूर्व शेरिफ़ सेठ गोकुलदास, सर दिनशा एदलजी वाचा, माननीय श्री गोपालकृष्ण गोखले, न्यायमूर्ति रानाडे, श्री पी० एल० नागपुरकर और अन्य कई प्रतिष्ठित सज्जनोंने उन्हें सरकारी नौकरीसे इस्तीफा देनेको बाध्य किया, और अनुरोध किया कि वे भारतके हितके लिए भारतके विज्ञान और यन्त्र-विद्याका सर्वप्रथम नेतृत्व ग्रहण करें। सरकारी नौकरी करते हुए नौ वर्ष व्यतीत हो गये थे, परन्तु भारतके हितकी कामनासे उन्होंने प्रसन्नतापूर्वक सरकारी पद त्याग दिया, और सन् १८९९में इंग्लैण्डके लिए प्रस्थान किया। तबसे अबतक वे बराबर वैज्ञानिक शोध और आविष्कार-में लगे हुए हैं।

श्री बिसे बहुत ही थोड़ा रुपया लेकर इंग्लैण्ड गये थे। रुपया इतना कम था कि उससे अपना कार्य सफलतापूर्वक करना दुस्साध्य ही सा था। यह देख-

कर भारतके 'भीष्म पितामह' स्वर्गीय दादाभाई नौरोजी, जो उस समय पार्लामेंटके सदस्य थे, उनके कार्यमें विशेष रुचि लेने लगे, और सन् १९०८तक राष्ट्रीय कोषसे उन्हें आर्थिक सहायता देते रहे।

साधारणतः छापेके अक्षर (टाइप) ढालनेके लिए जो मेशीनें व्यवहारमें लायी जाती हैं, वे प्रति मिनट १५० सिंगल टाइप ढालती हैं। श्री बिसेसे पूर्व कई आविष्कारकोंने इस उत्पत्तिको बढ़ानेके उद्देश्यसे एक साथ कई टाइप ढालनेके प्रयत्न किये, परन्तु सफल न हो सके। अस्तु, लोग इस प्रकारके आविष्कारको दुस्साध्य और अव्यवहार्य समझने लगे। बिसे महोदयने इस कार्यको अपने हाथमें लिया, और १९०५ में एक ऐसी मेशीनका आविष्कार किया, जो एकही समयमें ३२ सिंगल टाइप ढाल सकती थी। उनकी कार्य-पद्धति इतनी अपूर्व और आश्चर्यजनक थी कि लोग एकाएक इसकी सफलता और कार्यपटुताका विश्वास भी न कर सके। लन्दनके 'केसलन-टाइपफाउण्ड्री'के इंजीनियरोंने तो आपको ऐसी मेशीन बना देनेकी चुनौती ही दे दी। उन्होंने चुनौतीको सहर्ष स्वीकार कर लिया, और शीघ्र ही अंग्रेजी, पूँजीकी सहायतासे 'बिसे टाइप लिमिटेड' नामक कम्पनीकी स्थापना की। इसी कम्पनीसे (१९०८ में) सर्वप्रथम उन्होंने अपनी उपर्युक्त चालू मेशीन तैयार की, और इस चुनौतीमें विजयी हुए। यह मेशीन न केवल एक ही समयमें ३२ सिंगल टाइप ढाल सकती है, वरन् अपने-आप प्रति मिनट १२०० सिंगल टाइप ढालने और इकट्ठा करनेका भी सामर्थ्य रखती है। कई मुद्रण-कला विशारदों, यन्त्र-शास्त्रियों और मुद्रण-पत्रोंके प्रतिनिधियोंने मेशीनको देखकर पूर्ण सन्तोष प्रकट किया।...... ..

अपने मौलिक आविष्कारोंके उपलक्षमें वे लन्दनके इंजीनियरोंकी प्रतिष्ठित संस्थाके सदस्य मनोनीत किये गये, और लन्दनकी विज्ञान, कला और साहित्य परिषद्ने Society of Science Letters & Arts) भी उन्हें अपना सम्मानित फेलो निर्वाचित किया।

सन् १९०७में श्री बिसेने 'आटोमेटिक (स्वयं चलनेवाली) डुएल मोशन, मेशीनका आविष्कार किया। यह मेशीन बैनरमैन (Bannerman) टाइप कास्टिंग मेशीनोंके साथ बड़ी सफलतापूर्वक व्यवहारमें लाई जाती है।

दिसम्बर १९०८ में वे मद्रासमें होनेवाली भारतीय राष्ट्रीय औद्योगिक कांग्रेसके सम्मानित अतिथि होकर भारत आये। इस कांग्रेसके सभापति रावबहादुर मुधोलकरने अपने सम्भाषणमें उनके आविष्कारोंकी प्रशंसा की। इसी अवसरपर उनके सम्मानमें देशके प्रमुख नगरोंमें सार्वजनिक सभाएँ की गयीं, और अनेक पत्र-पत्रिकाओंने प्रशंसात्मक लेख भी प्रकाशित किये।

स्वर्गीय गोपालकृष्ण गोखले और दादाभाई नौरोजीके व्यक्तिगत आग्रहपर स्वर्गीय सररतन ताताने श्रीबिसेको, अपने सलाहकारोंसे स्वीकृति मिलनेपर, आर्थिक सहायता देना स्वीकार किया, परन्तु सर रतन ताताके सलाहकारोंने श्री बिसेके आविष्कारोंकी सफलतामें सन्देह किया' और उन्हें आर्थिक सहायता न देनेकी अनुमति दी। उन्होंने कहा कि जबतक सर रतनके निजी यन्त्रशास्त्रविशारद श्री बिसेके कार्यपर पूर्ण सन्तोष प्रकट न करें, तबतक उन्हें आर्थिक सहायता न दी जाय, अतएव श्री बिसेको १९०९के जून मासमें पुनः इग्लैण्डयात्रा करनी पड़ी।

ताताके लन्दनके मैनेजरने बिसेके यन्त्रकी जाँचके लिए यन्त्रशास्त्र-विशारदोंका निर्वाचन कर लिया रिपोर्ट पाकर सर रतन ताताने तारद्वारा श्री बिसेको भारत वापस आकर धन और अपने स्त्री-बच्चोंको इंगलैण्ड ले जानेके लिए बुलाया।

भारत वापस आनेपर ताताके सलाहकारोंमेंसे श्री बरजोरजी पादशाने श्री बिसेसे स्वीकार किया कि उन्हें बिसेके आविष्कारपर इतनी उचित और अनुकूल सम्मति पानेकी स्वप्नमें भी आशा न थी। मार्च १९१०में ताताकी सहायतासे वे सपरिवार इंगलैण्डके लिए रवाना हुए। स्वदेश

छोड़नेके पूर्व स्वर्गीय दादाभाई नौरोजीने उन्हें एक बधाई-पत्र लिखा था।

इंगलैण्ड लौटकर उन्होंने 'ताता बिसे सिण्ड केट'की स्थापना की, और अक्टूबर १९१०में फोली स्ट्रीट, लन्दनमें अपने यन्त्रोंकी एक दूकान खोली। इस दूकानमें उनकी अध्यक्षतामें एक दर्जनके लगभग इञ्जीनियर, यान्त्रिक आदिने कार्य आरम्भ किया। इस कारखानेमें काम करके बिसेने अपनी मूल मेशीनका 'रोटरी'तत्वके आधारपर निर्मित किया।

इस मेशीनका पहला नमूना सर्वप्रथम १९१३ में तैयार हो गया। इसके द्वारा एक मिनटमें ३००० टाइप ढाले और इकट्ठे किये जाने लगे। इस भाँति यह मेशीन अँग्रेजी मेशीनोंसे तिगुना कार्य करनेमें समर्थ हुई। इस मेशीनको व्यापारिक रूप देनेके लिए पर्याप्त धन लगानेकी आवश्यकता थी। सर रतन ताताने कुछ रुपया देना स्वीकार किया, परन्तु श्री बिसे समस्त धनका प्रबन्ध न कर सके, अतएव कुछ समयके लिए उन्हें यह विचार स्थगित कर देना पड़ा। लेकिन एक बात थी। अनेक टाइप ढालनेकी यह मेशीन अपनी विशाल उन्नतिके कारण सिर्फ टाइपफौण्ड्रीवालोंके ही उपयोगकी थी, साधारण मुद्रक इससे लाभ नहीं उठा सकते थे। लन्दनकी टाइप ढालनेवाली मेशीनोंके बनानेवाले श्री आर० पी० बैनरमैनको जब विश्वास हो गया कि बिसे गहन यांत्रिक समस्याओंके सुलझानेमें अपने ढंगके एकही हैं, तब उन्होंने बिसेसे अनुरोध किया कि वह एक ऐसी सिंगल टाइप ढालनेवाली मेशीनका आविष्कार करें, जिसका ढाँचा सर्वोपयोगी ढंगका हो, और जिससे मुद्रक लोग अपना टाइप ढाल सकें। वर्षोंसे लोग ऐसी मेशीनकी जरूरत महसूस कर रहे थे। पिछले ६० वर्षोंमें लोगोंने ऐसी मेशीनोंके बनानेके सैकड़ों प्रयोग किये, मगर किसीको व्यवहार्य ढाँचा बनानेमें सफलता प्राप्त न हुई। अतएव बिसेने इस कठिन समस्याको सुलझानेका बीड़ा उठाया, और १९१४में ऐसे ढाँचे के आविष्कारमें सफलता प्राप्त की। १९१५में उन्होंने पहली व्यवहार्य मेशीन बनाकर तैयार की। इसपर श्री बैनरमैन, सर रतन ताता तथा अन्य टाइप-विशारदोंने उनकी मुक्तकंठसे प्रशंसाकी। अमेरिका और इंग्लैण्डके प्रमुख और प्रतिष्ठित मुद्रण-पत्रिकाओंने इस आविष्कारपर सचित्र लेख और प्रशंसात्मक टिप्पणियाँ प्रकाशित कीं। इस नवीन मेशीनके आविष्कार करनेके उपलक्ष्यमें आप पश्चिमीय संसारमें 'भारतीय एडीसन' के नामसे पुकारे जाने लगे।

बिसे-टाइपकी सहायतासे मुद्रक लोग कम लागतपर अपनी जरूरतके टाइप स्वयं तैयार कर लेंगे, और इस प्रकार ५० से७५ प्रतिशत तककी बचत करेंगे। इस नवीन टाइपमें लगनेवाली धातुका मूल्य ५ पेंस प्रति पौंड होता है, और टाइप ढालनेमें १॥ पेंससे ५ पेंस प्रति पौंड टाइपके परिमाणके अनुसार खर्च होता है, परन्तु इसी प्रकारके पुराने ढंग के एक पौंड टाइपके लिए टाइप ढालनेवाली कम्पनियाँ १ शिलिंगसे १२ शिलिंगतक और कभी-कभी इससे भी अधिक लेती हैं।

इस प्रकार इस मेशीनमें टाइप ढालनेकी लागत ही कम नहीं है, वरन् मेशीन भी शीघ्र खराब नहीं होती। जो पुरजे खराब भी होते हैं, वे थोड़ी ही लागतमें बदले जा सकते हैं। अपने इन गुणोंसे बिसे-टाइपने टाइप ढालनेके विज्ञानमें एक नवीन क्रान्ति उपस्थित कर दी है, और धीरे-धीरे इसने टाइप ढालनेके कार्यको अत्यन्त सरल बनाकर थोड़े ही समयमें बृहत् उत्पत्ति करने और कम-से-कम मूल्यमें टाइप ढालनेमें समर्थ बना दिया है। इतना ही नहीं, व्यापारियोंके लिए एक नवीन कार्यक्षेत्र भी प्रस्तुत कर दिया है।

'बिसे-टाइप-मोल्ड' सरलताकी चरम सीमापर पहुँच गया है। टाइप ठीक-ठीक बनानेके उद्देश्यसे इसका प्रत्येक भाग इस तरह तैयार किया गया है कि वह तनिक भी घिस न सके। मेशीनका प्रत्येक भाग और उसकी सम्पूर्ण कार्य-पद्धति पूर्णतया मौलिक है।

अधिक सस्ती, अधिक स्थायी और अधिक उपयोगी होनेके कारण यह मेशीन उन छोटे-से-छोटे मुद्रकों तकके काममें आ सकती है, जो अभी तक स्वयं अपने टाइप ढालनेमें असमर्थ थे। इसके अतिरिक्त मेशीन केवल दो फ़ीट स्थान घेरती है, और उसका वज़न भी सवा मनसे अधिक नहीं होता। जो लोग इस सम्बन्धमें अधिक बातें जाननेके लिए उत्सुक हों, वे Tata Bhisey Inventions Syndicate, 36, Foley Street, London West से लिखकर पूछ सकते हैं।

इन्हीं दिनों यूरोपमें विगत महायुद्ध आरम्भ हो गया था। उस समय इंग्लैंडसे अमेरिका जाना खतरेसे खाली न था, परन्तु इसकी तनिक भी परवा न करके वे अमेरिका पहुँचे। वहाँ पहुँचकर अनेक विघ्न-बाधाओंका सामना करके वे मार्च १९१७ में एक नवीन मेशीन निर्माण करनेमें सफल हुए। इसमेशीनकीसफलतापर उन्हें पूर्ण आशा हो गयी कि सर रतन तातासे नयी आर्थिक सहायता पाकर वे इसमें नवीन सुधारोंका समावेश करेंगे, और मेशीनको अधिक उपयोगी बनायेंगे, परन्तु आकस्मिक आपत्तिने उनका मार्ग कंटकाकीर्ण कर दिया। सर रतन ताता बीमार पड़ गये, और उनकी मृत्यु हो गयी, और उनसे मिलनेवाली आर्थिक सहायता भी बन्द हो गयी। जो कुछ सहायता उस समयतक मिलती थी, ट्रस्टियोंने उसे भी देना बन्द कर दिया।

इसके अतिरिक्त वे स्वयं तो अमेरिकामें थे, और पत्नी और बच्चे इंग्लैंडमें। दोनोंहीको घोर आर्थिक कष्टोंका सामना करना पड़ा। महायुद्धकी स्थिति दिन-ब-दिन भयंकर होती जा रही थी। भोजन और वस्त्र तकका प्रबन्ध करना दुस्तर हो रहा था। लन्दनमें रहना भी आपत्तियोंसे परिपूर्ण था, परन्तु श्रीमती बिसेने इन सभी आपत्तियोंका अत्यन्त धैर्यपूर्वक सामना किया, और बराबर बिसे महोदय को उत्साहित करती रहीं।

श्री बिसेने इन परस्थितियों में इंग्लेण्ड वापस जाना उचित न समझा। स्व० लाला लाजपतराय और अन्य मित्रोंकी सलाह मानकर वे अमेरिकामें ही रुक गये, और वहाँ रहकर एक अमेरिकन फर्मसे सम्बन्ध पैदा करना शुरू किया। अपने प्रतिस्पर्धी 'दि यूनिवर्सल टाइप कास्टर कारपोरेशन'के उच्च अधिकारियोंसे मिले। वे लोग श्री बिसेसे मिलकर बड़े प्रसन्न हुए, और उन्होंने ढाँचे (model) वाली समस्याको सर्वप्रथम हल कर लेनेके लिए उनकी मुक्त कंठसे प्रशंसा की, और अनुरोध किया कि वे अमेरिकनबाज़ारके लिए एक ऐसा नया ढाँचा तैयार करें, जिसके द्वारा टाइपके साथ-साथ लेड और रूलकी पत्तियाँ भी ढलती जायँ। तदनुसार उन्होंने एक ऐसी नवीन मेशी का आविष्कार किया, जिसका ढाँचा और कार्यपद्धति पूर्व आविष्कृत मेशीनोंसे बिलकुल ही भिन्न था। इस नवीन मेशीनके आविष्कार और बनानेकाका काम उन्होंने केवल तीन दिन में ही कर लिया था। बिसेकी इस असाधारण कर्तृत्वशक्ति को देखकर उक्त कम्पनीके इंजीनियरोंके आश्चर्यका ठिकाना न रहा। बाद उन्होंने लेड और रूल अलग ढालनेके लिए भी एक नवीन और मौलिक मेशीनका आविष्कार किया। अबतक जो टाइप ढालनेवाली मेशीने थीं उनमेंसे सिंगल टाइप ढालनेवाली मेशीनमें १५००से अधिक कल-पुरजे हैं 'युनिवर्सल कास्टर'की मेशीनमें क़रीब १००० और 'थामस कास्टर'की मेशीनमें ६००, परन्तु बिसेकी नई मेशीन में केवल २५० कल-पुरजे हैं। अस्तु, यह मेशीन न केवल अत्यन्त सरल और सादी, छोटीसे छोटी और सस्ती-से-सस्ती ही है, बरन अन्य मेशीनोंकी तुलनामें उसकी उत्पादन शक्ति भी अधिक है। इन्हीं सब गुणोंको देखकर विशेषज्ञोंने इसका नाम 'आदर्श टाइप ढालनेवाली मेशीन' (Ideal Type Caster) रखा।

अठारह मासतक निरन्तर कार्य करनेके पश्चात् श्री बिसेने न्यूयार्कमें १९२०में आदर्श टाइप कास्टिंग कारपोरेशन' की स्थापना की। इसकेद्वारा टाइप ढालनेवाली और लेड तथा रूल ढालनेवाली मेशीनें तैयार करने और उन्हें बाज़ारके योग्य बनानेका

काम किया जाता है। टाइप ढालनेकी मेशीन कुछ समय पूर्व बनायी गयी थी। लेड और रूल ढालनेकी मेशीन बादको बनायी गयी। इसमें अबतक अनेकों नवीन सुधारोंका समावेश किया जा चुका है, और ८०,००० स्टर्लिंगसे भी अधिक धन खर्च किया जा चुका है। इसको परीक्षा भी अनेक विशेषज्ञ कर चुके हैं।

श्री बिसेका विचार इस टाइप कास्टरको और भी अधिक उन्नत बनानेका है। लेड और रूल कास्टर अभी पूरा-पूरा बनकर भी तैयार नहीं हुआ है। इन मेशीनोंको व्यापारिक रूप देनेके लिए लगभग ३०,००० स्टर्लिंग धनकी आवश्यकता है। कारपोरेशन इस धनको संग्रह करनेका प्रयत्न कर रहा है।

बिसेकी बहुन्मुखी आविष्कारिणी प्रतिभा केवल टाइप ढालनेकी मेशीनोंका ही आविष्कार करके नहीं रह गयी, वरन उसके द्वारा उन्होंने रासायनिक विद्युत्सम्बन्धी आविष्कारोंमें भी उतनी ही सफलता प्राप्त की, जितनी यान्त्रिक आविष्कारोंमें। अमेरिका आकर उन्होंने सबसे पहले 'रोला' नामक एक 'वाशिंग कम्पाउण्ड' (Washing Compound)का आविष्कार किया। इस कम्पाउण्डके बनानेकी विधि और उसके बनाने के सूत्र (formula) का विश्वव्यापी सर्वाधिकार उन्होंने एक अंग्रेज कम्पनीको दे दिया, जिससे उन्हें अच्छी आय भी हुई है।

'आटोमिडीन'

डा० बिसेका प्रधान रासायनिक आविष्कार 'आटोमिडीन' है। इसको उन्होंने कुछ रासायनिक क्रियाओं द्वारा समुद्री घाससे तैयार किया है। यह शुद्ध आयोडिन (Iodine)का एक कम्पाउण्ड है परन्तु इसके गुण आयोडिन जैसी विषैली और दाह उत्पन्न करनेवाली दवासे बिलकुल ही विपरीत हैं। अत्यन्त शक्तिशाली कृमिनाशक होते हुए भी यह पूर्णतया हानिरहित और विष-शून्य है। अभीतक ऐसा एक भी मिश्रित पदार्थ तैयार नहीं किया जा सका था, जो तीव्रकृमिनाशक होनेके साथ ही साथ शरीरके स्नायुओंको भी पुष्ट बनावे। यह दवा मानव-शरीरके अनेक रोगोंमें फायदा पहुँचाती है। बिसेके इस आविष्कारसे उनकी गणना संसारके बड़े-बड़े रासायनिकोंमें की जाने लगी। हालहीमें इस ओषधिकी उपयोगिताकी जाँच की गयी थी। इक्कीस प्रकारके रोगोंसे पीड़ित १८,१८६ रोगियोंको यह दवा दी गयी थी, जिनमें १७,५०७ रोगियोंको अर्थात् ९६ प्रतिशतको लाभ पहुँचा। डा० बिसे शीघ्र ही भारत आकर इस ओषधिको स्वदेशमें तैयार करानेके लिए एक कारखाना स्थापित करनेवाले हैं। इस आविष्कार द्वारा उन्होंने ओषधि-विज्ञानमें एक क्रान्ति उत्पन्न कर दी है, और मानव-समाजका बड़ा उपकार किया है।

डा० बिसेने कई वैद्युतिक यन्त्र भी तैयार किये हैं। एक यन्त्र ऐसा बनाया है जिसकी सहायतासे वैद्युतिक उपायोंसे वायुमंडलमें उपस्थित विभिन्न गैसोंका विश्लेषण किया जा सकता है। एक दूसरे यन्त्रकी सहायतासे सीधे सूर्य-प्रकाशसे विद्युत्शक्ति प्राप्त की जा सकती है। कल्पना और विधिके लिहाजसे यह दोनों ही आविष्कार पूर्णतया मौलिक हैं। अभी दोनों ही प्रायोगिक अवस्थामें हैं। १९०६में जिस समय वे इङ्गलैण्डमें थे, उन्होंने तारद्वारा फोटो भेजनेकी सरल क्रियाका आविष्कार किया था, परन्तु अर्थाभावके कारण उस विधिको आप व्यापारिक रूप न दे सके।

बिसे महोदय विद्यार्थी अवस्था से ही विज्ञानके प्रेमी रहे हैं। १८९४-९६में बम्बईमें रहते हुए उन्होंने वैज्ञानिक खोजके लिए 'बम्बई वैज्ञानिक क्लब'-का संगठन किया, और क्लबकी मुखपत्रिका 'विविध कलाप्रकाश'का सम्पादन किया था। उन्हीं दिनों उन्होंने अध्यात्म, विज्ञान और कला-कौशल-सम्बन्धी अनेकों लेख भारतीय तथा विदेशी पत्र-पत्रिकाओंमें प्रकाशित कराये थे। हालहीमें उन्होंने 'ताजमहलका तजोरा' नामक उपन्यास भी छपाया है। इस समय वे अध्यात्म, जीव-सम्बन्धी सिद्धान्त और विश्व-मनोविज्ञान, (Como-Psychology)—एक नवीन विज्ञान, जो उनके ज्योतिष और मनोविज्ञान-सम्बन्धी

सिद्धान्तोंपर निर्मित है—सम्बन्धी पुस्तकें और अपनी आत्म-कथा लिख रहे हैं। हाल ही में उन्हें शिकागो-विश्वविद्यालयने दर्शनशास्त्रके डाक्टर (Doctor of Psycho-analysis)की उपाधिसे विभूषित किया है।

महायुद्धसे कुछ पूर्व जब वे इङ्गलैण्डमें थे, तब कतिपय युद्धप्रिय सज्जनोंने उनसे अनुरोध किया था कि वे (Automatic guns) स्वयं चलनेवाली बन्दूकोंकी समस्याको हल करनेका काम अपने हाथमें लें। इसके लिए उन्हें लम्बी-लम्बी रक़में भी देनेका लालच दिया गया, परन्तु उन्होंने अत्यन्त नम्रतापूर्वक इस अनुरोधको अस्वीकार कर दिया, और कहा—"आविष्कारिणी प्रतिभा एक दैवी सम्पत्ति है, जिसका सदुपयोग रचनात्मक वस्तुओंके निर्माणमें ही होना चाहिए, मानव-प्राणियोंके संहार-जैसे घातक काममें नहीं।"

डा० बिसे सफल आविष्कारक हैं। उनके प्रायः सभी आविष्कार महत्वकी दृष्टिसे देखे जाते हैं। इन आविष्कारोंहीसे वे संसारमें सम्मानित भी हुए हैं, परन्तु उनका विचार अब अपना सब समय अध्यात्म, दर्शन और योगमें लगा देनेका है। इसी विचारको कार्यरूपमें परिणत करनेके लिए उन्होंने अमेरिकामें एक 'विश्व-मन्दिर'की स्थापनाकी योजना तैयार की है, जिसमें संसारके सभी प्रमुख धर्म्मोंके माननेवाले एकत्र होकर ईश्वर चिन्तन कर सकें। इस समय वे अपना सम्पूर्ण अवकाशका समय संसारके विभिन्न धर्म-दर्शनोंके अध्ययन और निरीक्षणमें व्यतीत कर रहे हैं।

२९ अप्रैल १९२७ को अमेरिकामें बड़े धूम-धामसे उनकी स्वर्ण-जयन्ती मनायी गयी थी। कई भारतीय और अमेरिकन संस्थाओंने उन्हें अभिनन्दन-पत्र भेंट किये। एक वृहत प्रीति-भोजका आयोजन किया गया, जिसमें उनके आविष्कारों तथा वैज्ञानिक कार्योंकी प्रशंसामें अनेक वक्तृताएँ दी गयीं। उनकी गणना प्रथम श्रेणीके वैज्ञानिकोंमें की गयी, और उन्हें 'डाक्टर आफ साइन्स' और 'डाक्टर आफ फिलासफीकी' सम्मानित उपाधियोंसे विभूषित किया गया।

---

(३) भारतमें खांडका व्यवसाय

(कर्मवीर २१ जुलाईके अंकसे)

अब यह बात बहुत देरसे विदेशी विद्वान् भी स्वीकार करने लगे हैं, कि संसारमें खांडका व्यवसाय सबसे पहिले भारतमें ही शुरू किया गया था। पाणिनि तथा चरकके ग्रंथोंमें, खांडका उल्लेख मिलता है, और चीनी भाषाके एक ग्रन्थ से मालूम होता है कि वहाँ के सम्राट तत्सुगने अपना एक आदमी केवल इस उद्देश्यसे यहां भेजा था कि वह मगधमें रहकर खांड बनानेकी कला का ज्ञान प्राप्तकर ले। सुप्रसिद्ध ग्रीक सम्राट सिकंदर जब भारत आया था, तब उसके सैनिकोंको यहांकी खांड देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होंने भारतीय खांडको, बिना मधुमक्खीका शहद कहा था।

यह तो हुई पुरानी बात; किन्तु समयके फेरसे, इधर एक लम्बे अरसेसे, भारतके अन्य उद्योग-धन्धोंकी तरह, इस व्यवसायकी भी अवस्था शोचनीय हो गयी थी और भारत को, दैनिक आवश्यकताकी इस प्रमुख वस्तके लिए भी परमुखापेक्षी बनना पड़ा था। भारतीय नेताओंके पुनः-पुनः अनुरोध करनेपर, जबसे भारत सरकारने यहांके उद्योग-व्यवसायोंके संरक्षण करनेकी नीति ग्रहण की है, तबसे बराबर इस बातपर ज़ोर दिया जाता था कि चीनीका व्यवसाय भी, भारतके उन प्रमुख व्यवसायोंमेंसे है, जिनका संरक्षण करना आवश्यक है। इसीसे टैरिफ बोर्डकी सिफ़ारिश मान सरकारने २ अप्रैल १९३२ को 'चीनी संरक्षण बिल' स्वीकार किया। इसके अनुसार यह निश्चित हुआ कि मार्च १९४६ तक, चीनीके व्यवसायका संरक्षण किया जायगा और १९३८ के अन्ततक,

विदेशी चीनीपर हर हण्डेडवेट (लगभग ५६ सेर) के पीछे ७) आयातकर लगाया जायगा। यही कारण है कि गत वर्षसे भारतीय पूंजीपतियों तथा सर्व साधारणका ध्यान इस व्यवसायकी ओर विशेष रूपसे आकृष्ट हुआ है। इसके बढ़ते हुए महत्वको देखकर, यहाँ पर दो-चार आवश्यक बातों का विचार करना वाञ्छनीय प्रतीत होता है।

अन्य देशोंसे तुलना

यद्यपि अमेरिकाको छोड़कर, संसारके अन्य किसी देशमें चीनीकी इतनी खपत नहीं होती जितनी हिंदुस्तानमें होती है, फिर भी यहाँके व्यवसायी अभीतक इस सम्बंधमें प्रायः उदासीन भाव धारण किये हुए थे। इसका एक कारण यह था कि विदेशी प्रतियोगिताके कारण, उन्हें इस व्यवसायमें रुपये लगाना लाभ प्रद नहीं मालूम होता था। बाहरी चीनीपर कर लगानेका कानून बन जानेसे, अब उनकी हिचकिचाहट दूर हो गयी है और वे इस व्यवसायमें मुक्त-हस्त रुपया लगानेके लिए अग्रसर हो रहे हैं। किंतु उन्हें यह स्मरण रखना चाहिए कि संरक्षण एक निर्दिष्ट समयके लिए ही दिया गया है। उन्हें कमसे कम समयके भीतर इस व्यवसायकी इतनी उन्नति कर लेनी चाहिए जिसमें संरक्षण हटा लिये जानेपर भी वे विदेशी प्रतियोगिताका सामना कर सकें।

अन्य देशोंके साथ तुलना करनेपर मालूम होता है कि भारतमें चीनीके उत्पादनका औसत व्यय काफी बढ़ा हुआ है। जावामें एक मन चीनीके पीछे लगभग ३॥) उत्पादन-व्यय पड़ता है। किंतु भारतमें उतनी ही चीनी तैयार करनेमें ७) खर्च हो जाते हैं। इसका एक मुख्य कारण यह है कि हमारे यहाँ प्रायः अवैज्ञानिक तरीकोंसे काम किया जाता है। एक तो ऊखसे रसका सम्पूर्ण अंश निकाला नहीं जाता, दूसरे जो निकाला भी जाता है, उसके सम्पूर्ण अंशकी रक्षा चीनी बनानेके समय नहीं की जा सकती। परिणाम यह होता है कि भारतीय चीनी विदेशी चीनीसे महँगी पड़ती है।

उत्पादन-व्यय घटानेके लिए यह आवश्यक है कि नूतन और वैज्ञानिक तरीकों तथा अधिक रस निकाल सकनेवाली मशीनोंका प्रयोग किया जाय। यद्यपि उसीके वज़नके अनुसार चीनीकी उत्पत्ति इधर १०-१२ वर्षोंमें काफी बढ़ गयी है—सन् १९१९में वह ६॥ प्रतिशत थी, किन्तु गतवर्ष ९–१० प्रतिशततक पहुँच चुकी थी—फिर भी जावा तथा क्यूबाकी अपेक्षा वह अभी कम ही है।

इसी तरह ऊखकी खेतीमें भी सुधारकी आवश्यकता है। भारतमें साधारणतया १ एकड़में १२ से २० टनतक ऊख पैदा होती है (१ टन २७$\frac{1}{4}$ मन)। जावाकी तुलनामें जहाँ उतनी ही ज़मीनमें ४० से ८० टनतक ऊख होती है, यह बहुत कम है। इसीसे यहाँ चीनीकी उत्पत्ति का औसत बहुत कम पड़ता है। सन् १९२१में प्रकाशित "इण्डियन शुगर कमेटी"की रिपोर्टसे विदित होता है कि जहां भारतमें चीनीका औसत प्रति एकड़ केवल १·०७ टन है, वहां जावामें ४·१२ टन हैं। हवाई द्वीपमें तो कई क्षेत्र ऐसे हैं जहांका औसत १२ टनतक पहुँच जाता है। यद्यपि भारतमें भी जबसे कोयम्बत्तूरके गन्नेकी खेतीकी जाने लगी है, तबसे औसत कुछ बढ़ा है, फिर भी सुधारकी अभी काफी गुञ्जाइश है। कोयम्बत्तूरके अतिरिक्त और भी कुछ कृषिशालाओंमें विविध प्रयोग किये जा रहे हैं, अतः, आशा होती है कि यहां भी चीनीकी उत्पत्तिका औसत शीघ्र बढ़ जायगा। मज़दूरी यहां भी सस्ती है और यहांकी प्राकृतिक स्थिति भी, ऊखकी खेतीके अनुकूल है, अतः भारतीय चीनीके लिए विदेशी चीनीकी प्रतियोगितामें ठहर सकना कोई कठिन बात नहीं।

अत्यधिक उत्पत्तिकी आशंका

सन् १९३०-३१में ऊखसे सीधे चीनी तैयार करनेवाले ३२ कारखाने थे। किन्तु जबसे इस

व्यवसायको संरक्षण दिया गया है, तबसे इनकी संख्या बराबर बढ़ती रही है। इस समय कोई ७० कारखानोंमें चीनी तैयार की जा रही है और अगले वर्ष तक ५० नये कारखानोंके खुल जानेकी सम्भावना है। कारखानों या मिलोंकी वृद्धि इस तीव्र गतिसे होती देखकर, कुछ लोगोंको यह शङ्का हो रही है कि आगे चलकर इससे भारतीय चीनी के व्यवसायको नुकसान पहुँचेगा।

भारतमें इस समय कितनी चीनी उत्पन्न होती है तथा अगले तीन वर्षोंमें उसमें कितनी वृद्धि होने की सम्भावना है, यह चीनी व्यवसायके विशेषज्ञ श्री आर० सी० श्रीवास्तव द्वारा "इण्डियन ट्रेड जरनल"में प्रकाशित निम्नलिखित अङ्कोंसे स्पष्ट है—

सन्	उत्पत्ति (हजार टन)	खपत (हजार टन)
१९३१-३२	४७८	९८३
१९३२-३३	६२६	९४०
१९३३-३४	८८६	९४०
१९३४-३५	९४६	९४०

इन अङ्कोंको देखनेसे विदित होगा कि १९३४-३५ तक, भारतमें इतनी चीनी तैयार होने लगेगी कि यहाँकी आवश्यकता पूरी हो जानेके बाद भी, छः हजार टन चीनी फ़ालतू बच जायगी। परिणाम यह होगा कि चीनीकी कीमत गिर जायगी और कई छोटे कारखानोंको अपने पावोंपर खड़े रह सकना कठिन हो जायगा।

हमारे खयालसे तो इस सम्बन्धमें अभीसे घबड़ानेकी आवश्यकता नहीं। सम्भव है, उस समय तक भारतमें चीनीकी खपत भी बढ़ जाय*। देशमें काफ़ी चीनी तैयार होने लगनेसे वह कुछ सस्ती बिक सकेगी, जिससे उसकी खपत भी बढ़ जायगी, जैसा कि १९२९-३० तथा १९३०-३१ में हुआ था यदि खपत न भी बढ़े, तो भी इससे चीनीके व्यवसायको हानि होगी, यह कहना कठिन है। कारण यह है कि यदि कुछ कारखानोंकी व्यवस्था खराबहो, वह कम योग्यतावाले कर्मचारियोंसे काम लेता हो अथवा यदि उसका सञ्चालन-व्यय अपेक्षाकृत बढ़ा हुआ हो, तो उसका बन्द हो जाना ही अच्छा है। अतः शिमलाके चीनी सम्मेलनमें कारखानोंकी वृद्धि रोकनेके लिये जो प्रस्ताव रखा गया था, वह अस्वीकृत करार दिया गया, यह उचित ही हुआ।

किसानोंके हितका प्रश्न

चीनी-सम्मेलनमें इस महत्वपूर्ण प्रश्नपर भी विचार हुआ था कि इस व्यवसायको जो संरक्षण दिया गया है, उसका उचित अंश किसानोंको भी मिलता है या नहीं। भारतमें ऊखकी खेती संयुक्तप्रान्त तथा विहारमें सबसे अधिक होती है। और इन्हीं दो प्रान्तोंमें चीनीकी मिलें अधिक संख्यामें खुली हैं। इन मिलोंके मालिक ऊखका कमसे कम मूल्य देनेकी चेष्टा किया करते हैं। वे प्रायः ४-५ आने फी मनके हिसाबसे ऊखका दाम दिया करते हैं। इसमेंसे यदि गाड़ीमें लादकर मिलके फाटकतक ऊख पहुँचानेका खर्च निकाल दिया जाय तो किसानोंको साधारणतया ४ आने भी मिल जाते होंगे, इसमें सन्देह है।

एक बात और है। कई वार देखा गया है कि तौलनेके यन्त्रोंकी खराबी या जान-बूझकर अनुचित उपायोंका अवलम्बन ग्रहण करनेके कारण ऊखका वजन वास्तविकसे बहुत कम लगाया गया है। इस पर भी उसके बदले जो मूल्य मिलता है, वह भी प्रायः किसानोंको पूरा-पूरा नहीं मिलने पाता। उसका एक अंश ठेकेदारों या बीचमें पड़नेवालोंकी जेबमें चला जाता है। अतः यह स्पष्ट है कि किसानोंके हितकी रक्षाके लिए चीनीसम्मेलनमें कोई न कोई उपाय अवश्य किया जाना चाहिये था। किन्तु खेद है कि सम्मेलनने इस सम्बन्धमें कुछ भी करनेकी आवश्यकता नहीं समझी।

* उपज जिस प्रमाणसे बढ़सकती है, उसी प्रमाणसे खपत कभी नहीं बढ़ सकती। भारतके पास कोई उप नवेशादि नहीं जिनमें फालतू माल खप सके। इसलिए बड़े पैमानेपर मिलोंद्वारा मालकी तैयारी संसारके लिए सदा विपज्जनक है। भारतकी दशा भी किसी होड़के अनुकूल नहीं है।—वि० सं०

एक तो भारतीय किसान अत्यन्त गरीब हैं, दूसरे उनमें शिक्षाका भी अभाव है और तीसरे उनका कोई सङ्गठन नहीं, अतः, सरकारका यह कर्त्तव्य है कि वह संरक्षणसे होनेवाले लाभका उचित अन्श ऊखकी खेती करनेवाले किसानोंको भी दिलावें। यदि इस सम्बन्धमें कोई निश्चित कानून न भी बनाया जाय, तो भी, सरकार चाहे तो उनकी सहयोग-समितियां स्थापित करा सकती है और मिलवालोंपर दबाव डाल सकती है कि वे ठेकेदारोंके बजाय इन्हीं समितियोंके जरिये किसानोंसे सम्बन्ध स्थापित करें। यदि इस बुराईको दूर करनेका उपाय शीघ्र नहीं किया जाता तो किसानोंकी स्थितिपर इसका बड़ा हानि-कारक प्रभाव पड़ेगा। अब भी समय है और प्रान्तीय सरकारें चाहें तो इस सम्बन्धमें बहुत कुछ कर सकती हैं।

(४) मनचाही बारिश

द्वापरके अन्ततक लोग इन्द्रकी पूजा करते थे अनेक तरहके यज्ञ करते थे कि वर्षा हो। कलियुगमें भी इस तरहके यज्ञ बहुत कालतक होते रहे। धीरे धीरे बंद होगये। अब उस विधिका प्रचार नहीं है फिर भी भारतमें ही मौसिमी हवा और समयपर वर्षाकी सुविधा प्रकृतिने अबतक कर रखी है। तो भी आये दिन, आजकलकी ही तरह, सूखे सावन भादोंके दृश्य देखनेमें आते हैं। जयाजी प्रतापके २७ जुलाईके अङ्कमें एल् एन् माथुर साहब उद्भिज्ज विशारदने मनचाही बारिश पर बड़े मौकेसे एक लेख दिया है। हमारे पाठक देखें कि उपाय करके वह इंद्रजीसे बरजोरी वर्षा छीन ले सकते हैं या नहीं। यत्न कर देखें। परंतु यत्नमें यज्ञकी अपेक्षा कहीं अधिक व्यय होनेकी संभावना है। सुलहसे लेना और बात है। छीन कर लेना अधिक बलवानका काम है। इंद्रका मुकाबला वृत्रासुर ही कर सकता है।

अमेरिकाके दो वैज्ञानिक प्रोफेसर वारन और बेन्क्राफ्टने आकाशके ऊपरी भागमें जो वास्तविक क्रियाएँ होती हैं उनके आधारपर कई तजुर्बे करके सफलतापूर्वक मेह बरसा कर दिखा दिया है। इस सफलताका कारण बतानेके पहिले हम अव्वल यह बता दें कि आकाशमें होता क्या है तो सुगमता होगी।

ऊपरी आकाशमें नमी छोटी छोटी बूंदोंके आकारमें सदैव रहती है और वे इतनी छोटी होती हैं कि हवामें अटकी रहती हैं, जब धूलके कण बूंदोंसे मिलते हैं वे जमा हो जाती हैं और इस प्रकार बूंदोंका वजन बढ़ जाता है। यह कण सबल या निर्बल विद्युतशक्तिद्वारा इकट्ठे हो जाते हैं और जब वे इतने भारी हो जाते हैं कि अटके न रह सकें तो वर्षाके आकारमें भूमिपर गिरते हैं। इसी प्रकार नमीसे लदे बादल जो हलके होनेके कारण वर्षा नहीं करते यदि विद्युत शक्तिसे बसी हुई धूलिके कणोंसे भारी बना दिये जावें तो इच्छित वर्षा प्राप्त हो सकती है।

इस आधारपर, विद्युतसे बसी हुई रेतीका एक बोझ बेलूनद्वारा बादलोंपर छिड़का गया तो वर्षा तुरन्त हुई। प्रोफेसर बैन्क्राफ्टने हिसाब लगाया है कि २० सेर वजनी विद्युतसे बसी धूल एक वर्ग मील बादलोंको वर्षामें परिवर्तित करनेको काफी होगी। इसके बादके एक तजुर्बेमें एक एरोप्लेनका प्रयोग किया गया, जिसमें १२००० वोल्ट बिजलीसे बसी सबल और कुछ निर्बल धूल भरी थी। मशीन उड़ी और बादलोंमें छुप गई। नीचे खड़े दर्शक उसके किये करश्मेको ताक रहे थे, धूलके बखेरते ही बादलोंसे तुरन्त ही पानीकी झड़ी बंध गयी और जब बादलोंमें पानी शेष नहीं रहा तो आकाश साफ हो गया और सूरज निकल आया।

बीदरलेंडमें (?) इसी आधारपर प्रो० बिराट (?) लगभग १६ वर्ग मीलमें वर्षा करानेमें सफल हुए हैं। धूलके बजाय उन्होंने सूखा बरफ (कर्बनद्वयोषिद्) अर्थात् जमे हुए कारबोनिक गेसके बहुत छोटे

छोटे कणोंका प्रयोग किया। इससे पहिले वैज्ञानिकोंने काओलिन का प्रयोग किया था पर उन्हें अधिक सफलता नहीं हुई। उक्त प्रोफेसर विराट १½ सूखा बरफ आइस एक एरोप्लेनमें, जिसमें फैलानेका एक यंत्र लगाया गया था, लेकर ५ मीलकी ऊचाईपर उड़े और ½ मील नीचे बादलों पर गिराकर छिड़का। फलस्वरूप वर्षा शीघ्र ही होने लगी। उक्त प्रोफेसर महोदय बादलोंसे पानी गिरानेका कारण यह बताते हैं कि ऐरोप्लेनमें बादलों तक गिरनेमें जमे हुए कारबन गेसके कण विद्युत शक्तिसे बसकर बहुत छोटे छोटे द्रव कार्बन एकोषिदमें परिवर्तित हो जाते हैं जो कि बादलोंको ठंढा करके पानी बरसाते हैं। प्रोफेसर विराटके कथनानुसार इस तरीकेसे जब चाहें तब बादलोंसे वर्षा करवाकर धूप निकाल सकते हैं और यह दिक्कत कि कई दिन बादल रहनेके कारण खेतीके कार्योंमें अड़चन पड़े बिलकुल ही नहीं रहेगी।

---

(५) खीराखाते शीतज्वर रफूचक्कर

"प्रतापमें आयुर्वेदमार्तंड पं० शिवचन्द्रजी वैद्यराज हरद्वारसे लिखते हैं—

आज मैं भारतके प्रत्येक स्थलोंके वैद्यों, डाक्टरों हकीमों और हर एक अमीर गरीबको 'अश्विनी-कुमार-संहिता'के एक चुटकुलेको बतलाता हूं जो भादों असौजके मलेरिया बुखार और खास कर शीतज्वरको एक ही दिनमें आराम कर देता है। मैंने इसकी अमोघताका अनुभव भी किया है। इस प्रयोगसे ९० फीसदी रोगी जरूर ही आराम हो जायँगे। संहितामें लिखा है —

त्रपुसं भक्षयित्वाग्रे तक्रं अम्लं पिबेदनु
ततो हुताशनं सेवेत् प्राकृतो वाऽऽतपे स्फुटम्।
ततः प्रस्विद्य सर्वांगं याति शीतज्वरः क्षयम्॥

जिन स्त्री पुरुषोंको शीतज्वर आता हो और कपकपी बंध जाती हो, अथवा जिनको कई रोजसे कुनीन तथा फीवर-मिक्सचर आदि खाकर भी आराम न हुआ हो, वे एक दिनमें ही इस प्रयोगसे आराम हो जायेंगे।

खीरा (त्रपुसं)को, जो सावन भादोंमें होता है, नमक मिर्च लगाकर पेट भरकर खाइये और उसके ऊपर खट्टा मट्ठा तथा गौ के दहीकी लस्सी पी जाइये। उसके बाद कपड़े ओढ़कर धूपमें खड़े हो जाइये या बैठ जाइये, अथवा अंगीठीमें कोयले सुलगा कर नीचेसे ऊपर तक अपने शरीरको सेंक दीजिये। जिन देशोंमें खीरा न मिल सके वहाँ भरपेट अमरूद खाकर ऊपरसे मट्ठा पी लेना चाहिये और बादमें धूपमें बैठना चाहिये। इस क्रिया के फलस्वरूप मनुष्यको बड़े जोरोंका पसीना आवेगा। और शीतज्वर एक दिनमें ही भाग जायगा। यदि किसी महाशयको कुछ शंका समाधान करना हो तो मुझको जवाबी कार्ड भेजकर पत्र-व्यवहार करें।

---

(६) दूधका प्रभाव

शेरका बच्चा बकरी

बकरीका दूध पीते पीते

"न्यू स्टेट्स्मैन एण्ड नेशन में श्री जे० एम० किवेगने बकरीका दूध पीकर बकरी बने हुए अपने शेरका हाल यों लिखा है।

अफरीकामें एक दिन घूमते हुए मुझे शेरका एक बच्चा मिला जिसने अभी आंखें भी पूरी पूरी नहीं खोली थीं। मैं उसको अपने घर उठा लाया और बकरीका दूध पिलाने लगा।

मुझे देखकर आश्चर्य हुआ कि बकरी उस शेरके बच्चेको अपने बच्चेके समान मानने लगी।

जब एक बकरीका दूध काफी नहीं हुआ तो दूसरी ले आया। धीरे धीरे वह १२ बकरियोंका दूध पी जाने लगा। फिर मैं उसको मांस खिलाने लगा।

वह बकरीके बच्चेकी तरह मेरे कन्धेपर चढ़ जाता, गोदमें खेलता, पैर चाटता और एक छोटे बकरेकी सी काररवाई करता था।

बच्चा धीरे धीरे बड़ा होने लगा। उसने मेरे कुत्तेके साथ दोस्ती कर ली। दोनों एक साथ खेलते। उसने किसी दिन अपना शेरपन नहीं जाहिर किया।

एक बार मुझे किसी कामके लिए जल्दीमें बाहर जाना पड़ा। मैंने अपने कुत्ते और नौकरोंको साथ लिया और उस शेरके बच्चेको भी ले लिया। मैं धीरे धीरे दौरा करता हुआ जा रहा था, इतनेमें मुझे अपने अफसरसे जल्द आनेका हुक्म मिला। अब मुझे रोज बीस बाइस मील जाना पड़ता था मगर शेरका बच्चा इतना नहीं चल सकता था। मैंने नौकरोंके साथ उसे छोड़कर जल्दीका रस्ता लिया। मेरे अपने निर्दिष्ट स्थानपर पहुँचनेके बाद शेरका बच्चा भी वहां पहुँचा। पीछे मुझे मालूम हुआ कि मैं जिस रास्ते से वहां गया था उसको छोड़कर दूसरी ही ओरसे भटकता हुआ वह वहां पहुँचा हुआ था और उसको वहां पहुँचनेमें रोज २५-३० मील चलना पड़ा था। इतनी यात्रा करके वह मेरे पास आया था। उसने केवल गंधसे मुझे पा लिया था। उधरके स्थानोंसे वह कुछ भी परिचित नहीं था।

एक रातको मैं तम्बूमें सोया था और मेरा कुत्ता मेरे बिछौनेके पास पड़ा था। इतनेमें एक चीता मेरे कुत्तेको मारकर खानेके लिए मेरे तम्बूमें घुसा। शेर उसपर झपटा। शेरको देखते ही चीता भाग गया। मैंने बुझी हुई रोशनी जलाई तब शेर तम्बूमें वापस आया। उसके चेहरेसे ऐसा भाव टपकता था कि आज उसने कोई बड़ी बहादुरी की है।"

———

(७) वनस्पति विद्या

[प्रतापके २ जुलाईके अंकमें संक्षेपमें बड़ा सुन्दर लेख छपा है जिससे खेती करनेवालोंको इस विषयका अच्छा ज्ञान होता है वह लेख हम यहाँ उद्धृत करते हैं। वि० सं०।]

खेती करनेवालोंको वनस्पति-विद्या जानना उतना ही जरूरी है जितना कि एक डाक्टर, वैद्य या हकीमको शरीरका पूरा पूरा हाल जानना। इस विद्यासे पेड़ोंकी जिन्दगीका पूरा पूरा हाल उनका स्वभाव और उनकी बनावटका ज्ञान होता है और यह भी मालूम होता है कि पेड़ोंका हर एक हिस्सा क्या काम करता है। एकका दूसरेके साथ कैसा सम्बन्ध है और कैसे बढ़ते हैं।

पौधोंको करीब करीब ६ भागोंमें बांटा जा सकता है। जड़, तना, पत्ती, फूल, फल और बीज। अपने इन अवयवोंसे पेड़ वही काम लेता है जो मनुष्य अपने हाथ, पैर आदि अवयवोंसे लेता है। अब एक एक करके इन अवयवोंपर विचार किया जायगा। पेड़का सबसे पहला आवश्यक अवयव उसकी जड़ है। पौधेके उस हिस्सेको जो जमीनके अन्दर चला जाता है जड़ कहते हैं। अगर हम किसी पौधेकी जड़को उखाड़ लें और पानीमें रख दें तो देखेंगे कि जड़के मोटे हिस्सेके नीचेके पतले हिस्सेकी मिट्टी जलमें छूट जाती है। बीचके हिस्सेको जरा ध्यानसे देखनेसे मालूम होगा कि जहाँपरसे मिट्टी देरसे छूटती है वहां छोटे छोटे रोयेंसे हैं और इन्हीं रोयेंदार हिस्सोंसे पौधा अपना भोजन जमीनसे लेता है। पौधा हमेशा अपनी खुराक जमीनके पानीके साथ घुली हुई शकल लेता है। ऊपरवाले मोटे हिस्सेमेंसे जो दूसरी जड़ें निकलती हैं उनको सहायक जड़ें कहते हैं। नीचेके पतले हिस्सेको ध्यानसे देखनेपर उसकी शकल केलेकी सी और आखिरी सिरेपर टोपी सी दिखाई देती है। इसको अङ्गरेजी भाषामें Tap root कहते हैं। इससे जड़को सख्तसे सख्त जमीनमें घुसनेमें मदद मिलती है।

जड़ोंका काम

पौधेको जड़से ही खुराक मिलती है। पौधेको सीधा रखने, तनेको सहारा देने और चढ़नेमें मदद देनेमें जड़ें बहुत जरूरी होती हैं। जड़ें जमीनके अन्दर रहती हैं। उनको अन्धेरे और सर्दीकी बहुत जरूरत होती है।

जड़ें दो प्रकारकी होती हैं। मूसला और झकड़ा। मूसला जड़ें ऊपर मोटी और नीचेसे पतली होती हैं। चना, मटर, शलजम आदिकी जड़ें ऐसी ही होती हैं। झकड़ा जड़ बे-नियम कहींसे भी तने, पत्तियों या जड़ोंसे निकलकर बढ़ती हैं। गेहूँ और ज्वार आदिकी जड़ें ऐसी ही होती हैं।

मूसला जड़ें भी दो तरहकी होती हैं। (१) चना, मटर वगैरहकी जड़ें साधारण मूसला जड़ें कहलाती हैं। (२) भंडाकार जड़ोंके अन्दर भोजन जमा रहता है। गाजर, मूली आदि की जड़ें ऐसी ही होती हैं।

झकड़ा जड़ें, भी दो तरहकी होती है। धागेदार झकड़ा जड़ें जो शुरूमें कुछ बढ़कर गल जाती हैं और उनके पाससे दूसरी जड़ें निकलती हैं, जैसे गेहूँकी जड़ें। (२) भंडाकार झकड़ा जड़ें वे होती हैं जो धागेदार होते हुए भी अपने अन्दर अपनी खुराक रखती हैं, जैसे शकरकन्द। जड़ें निम्न प्रकारकी भी होती हैं:—(१) हवाई जड़ें—जो हवामें लटकी रहें और मौका पाकर जमीनमें घुस जावें जैसे बरगदकी जड़ें। (२) पराश्रित जड़ें—जो कि दूसरी जड़ों, तनों या पत्तोंसे खुराक हासिल करें जैसे अमर बेलि। (३) चढ़नेवाली जड़ें—जो चढ़नेमें या ऊपर बढ़नेमें मदद करें जैसे पान। (४) जलीय जड़ें—जो जड़ें पानीमें रहें जैसे सिंघाड़ा। जड़की पहचान इस बातसे होती है कि उसमें किसी किस्मका रङ्ग, पत्ते, कली, फूल वगैरह नहीं होते और न गांठोंपर पत्ती होती है।

तना

पौधेका वह हिस्सा जो बोनेके बाद जमीन पर आ जाता है तना कहलाता है। लेकिन तने कभी कभी जमीनमें रहते हैं जैसे आलू, शकरकन्द, घुइयां। कुछ तने बिना सहारेके हवामें खड़े रहते हैं। उनको प्रबल तना कहते हैं—जैसे अरहरके तने। कुछ तने जमीनपर फैलते हैं जैसे दुद्धी और कुछ तने सहारा पाकर ऊपर चढ़ते हैं जैसे ककड़ी, करेला, अँगूर। इनके धागे चढ़नेका काम करते हैं। इनके तनेका निर्बल तना कहते हैं। तनेके दो हिस्से होते हैं। (१) हवाई तना जमीनमेंसे निकलकर ऊपर चला जाता है, जैसे कपासका तना। (२) जमीनमें रहनेवाला जमीनके अन्दर ही बढ़ता है जैसे आलू, घुइयां आदि।

तनेको बनावट भी तीन प्रकारकी होती है। १—गोल जैसे जौ, (२) तिकोना जैसे मोथा (३) चोकोना जैसे ज्वार। तनेकी सतह कई क़िस्मकी होती है (१) चिकनी—जैसे जई, (२) रोएँदार जैसे भिण्डी (३) कांटेदार जैसे गुलाब या सेंड। तने दूसरी क़िस्मके भी पाये जाते हैं। नागफनीमें जो पत्ता सा दिखाई देता है वह तना है। नीबूमें जो कांटे दिखाई देते हैं वे तना हैं और तरबूजमें जो धागे होते हैं वह भी तना है।

तनेकी पहचान

(१) शाखाएं वहींपर फूट आवेंगी जहांपर पत्ता होगा (२) तनेके सिरेपर और पत्तेकी बग़लमें कली पायी जाती है (३) तनेमें गांठ पायी जाती हैं।

पत्तियां

पत्तियां पौधेके फेफड़ों और पेटका काम करती हैं। जो खुराक जड़ोंसे चढ़कर पत्तोंमें आती है उससे पत्तियां फल वगैरह बनाती हैं, और जो हिस्सा बचता है वह दूसरे हिस्सोंके बनानेमें काम आता है। पौधोंमें जितनी ज्यादा पत्तियां होती हैं उतना ही अच्छी तरहसे पौधा अपना काम करता है। पत्तियां अपने छोटे छोटे सूराखों द्वारा (यह सूराख बिना अणुवीक्षण यन्त्रके दिखाई नहीं देते) हवामेंसे खुराक लेकर फल बनानेका काम करती हैं। पत्तियोंके

लिये सूरजकी रोशनी बहुत जरूरी है। उसके बिना वे अपना काम अच्छी तरहसे नहीं कर सकतीं। पौधोंके अन्दर जब जरूरतसे ज्यादा पानी हो जाता है तो वह पत्तियोंके ज़रिये भाप बनकर उड़ता है। पत्तियोंके तीन हिस्से होते हैं। पत्तियोंका वह मोटा हिस्सा जो तनेसे जुड़ा रहता है आधार कहलाता है। पत्तियोंका आख़िरी चौड़ा और पतला हरा हरासा हिस्सा फलका (?) कहलाता है। उनका वह हिस्सा जो आधार और पत्तियोंसे जुड़ा रहता है डण्ठल कहा जाता है। कुछ पत्तियां बगैर ढण्ठलके होती हैं। पत्तियां तनेपर नाना प्रकारसे लगती हैं, लेकिन हमेशा तनेकी गांठ परसे निकलती हैं। एक ही विंदुसे बहुत सी पत्तियाँ निकलती हैं जैसे नारंगीकी पत्तियां। ऐसी पत्तियोंको कुञ्ज पत्तियां कहते हैं। कुछ पत्तियां गांठके चारों तरफसे निकलती हैं जैसे कनेरकी पत्तियां। कुछ पत्तियां गांठके आमने सामने निकलती हैं, जैसे आककी पत्तियां। कुछ पत्तियां तनेकी गांठ पर, एक पत्ता दूसरी गांठ पर और दूसरा पत्ता दूसरी गांठ पर उगता है जैसे गुड़हल की पत्तियां, सब पत्तियोंकी सतह एक सी नहीं होती। आम, जामुन आदिकी पत्तियां चिकनी होती हैं। भिण्डीकी पत्तियां बालदार होती हैं। भटकटैया आदिकी पत्तियां कांटेदार होती हैं। हरसिंगारकी पत्तियां खुरदरी होती हैं। कुछ पत्तियोंमें गूदा होता है जैसे घाव पत्ता, ग्वार पाठा। कुछ पेड़ोंकी पत्तियोंमें गूदा नहीं होता जैसे आम, जामुन वगैरह।

पत्तियोंकी चोटी एकसी नहीं होती जैसे कुलफाकी चोटी गोल होती है। कुछका ऊपरका हिस्सा दबा रहता है जैसे मेथीका। कुछ पत्तियोंका सिरा दुमदार होता है जैसे पीपलकी पत्तियोंका। कुछ पत्तियोंकी चोटी कांटेदार होती है जैसे बांस वगैरहकी। पत्तियोंका हाशिया भी कई प्रकारका होता है। आमके पत्तेका हाशिया बगैर कटा हुआ होता है। गुलाबका पत्ता कटा होता है। घावपत्ता गोल होता है; अशोकका लहरदार होता है। करौंदाकी पत्तियां दांतेदार होती हैं।

पत्तियां शकलके लिहाजसे कई तरहकी होती हैं। (१) लम्बी और कम चौड़ी जैसेदूब, घास। (२) नीचेकी ओर कम चौड़ी, बीचमें चौड़ी और ऊपरकी तरफ़ पतली, जैसे कनेर। (३) कुछ पत्तियां अण्डेकी शक्लकी होती हैं, जैसे अमरूद। (४) ऊपरसे चौड़ी और नीचेकी ओर पतली, जैसे कुलफा। (५) नीचेसे चौड़ी और ऊपरसे पतली, जैसे पीपल। (६) कुछ पत्ते ढालकी शक्लके होते हैं जैसे घुइयां और कमल। (७) कुछ पत्ते दिलकी शक्लके होते हैं, जैसे पान। (८) कुछ पत्ते गूदेदार होते हैं, जैसे घावपत्ती ब्राह्मी।

हर पत्तेमें नसें पायी जाती हैं और वह दो प्रकारकी होती हैं। (१) जालदार नसें जैसी पीपलके पत्तेमें हैं। (२) समानान्तर जैसे गेहूँके पत्तेकी होती हैं। जालदार नसें वे हैं जो बे-तरतीब पत्तेमें फैलें और जाल बनायें। सामानान्तर नसें वे हैं जो जाल न बनावें बल्कि हर नस एक दूसरेसे समानान्तर हो। कुछ पत्तियां दूसरी शक्लोंमें पायी जाती हैं या पत्ताके अलावा दूसरा भी काम करती हैं। पीपलकी कलीके ऊपर झिल्लीसी पत्तियां होती हैं। यह पत्ती उसके भीतरकी मुलायम पत्तियोंकी हिफाजत करती हैं। कोई कोई पत्तियां कांटेदार होती हैं जैसे नागफनीकी पत्तियां। मटरकी पत्तियोंमें धागे पाये जाते हैं।

विषयानुक्रमणिका

रसायन

भौतिक विज्ञान

जीवन चरित

वनस्पतिशास्त्र

जीव विज्ञान

वैद्यक

ज्योतिष

साहित्य विश्लेषण

टिप्पणियाँ

सहयोगी विज्ञान

फुटकर

प्रयागकी विज्ञान परिषत्‌का मुखपत्र

Yijnana, the Hindi Organ of the vernacular Scientific Society Allahabad

सम्पादक

रामदास गौड़

तथा

प्रोफ़ेसर ब्रजराज,

भाग ३७

कन्या संवत् १९९०

प्रकाशक

विज्ञान परिषत् प्रयाग ।

वार्षिक मूल्य तीन रुपये

विज्ञानंब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० । ३।५ ॥

भाग ३८ } प्रयाग, तुला, संवत् १९९० । अक्तूबर १९३३ । { संख्या १

मंगलाचरण

[स्व० पं० श्रीधर पाठक]

जय कर्म्मण्य किसान सर्वजग-धन्य-मान्यवर
जयति सर्व-सामान्य-प्रवर, पुंवर वदान्यवर
जय जीवन-सुख-सिद्धि-विविध-सुविधा-विधान-कर
जय धन-धान्य-समृद्धि-सम्पदा-सम्प्रदान-कर
जय प्रसव-ज्ञान-पार्थिव प्रगट अज्ञ-प्रजा-मनमुग्धकर
जय जयति प्राथमिक भू-प्रभू भू-विज्ञान-विदग्धवर

अल्यूमिनियम

[ले० श्री बृजबिहारीलाल गौड]

वैज्ञानिक युगकी इस बीसवीं शताब्दीमें भला कौन ऐसा होगा जो अल्यूमिनियमसे अपरिचित हो। यह धातु आजकल घरघरमें फैल गयी है। इसकी उपयोगिता, हलकाई और सस्तापनही इसका समुचित विज्ञापन है। अमीरोंके घर तो कम, पर ग़रीबोंके यहां तो इसने पूरा, अधिकार जमा लिया है। भारतवर्षमें इसका उपयोग सन् १८९८ ई० से आरम्भ हुआ। उस समय मद्रासमें अंग्रेज़ों द्वारा हाथके बनाये हुए अल्यूमिनियमके बरतन नमूनेकी तौरपर मिलते थे। धीरे धीरे लोग इस धातुकी ओर इतने आकर्षित हुए कि सन् १९०० में मद्रासमें एक फैक्टरी ही खुल गयी। और इधर ३३ वर्षोंमें तो इसके प्रचारका कुछ ठिकाना न रहा। इस समय भारतमें ही अल्यूमिनियमके बरतन बनानेवाली फैक्टरियोंकी संख्या लगभग एक दर्जनके पहुँच गयी है। बम्बई, कलकत्ता, रंगून गुजरानवाला, अमृतसर और बनारसमें इसकी फैक्टरियाँ इस समय काफी चीजें तैयार कर रही हैं।

यह विचित्र धातु लौह मिश्रित सन् १८०९ ईसवीमें डेवीद्वारा आविष्कृत हुई और अर्स्टेलने इसे सर्वप्रथम सन् १८२४में शुद्ध किया पर तो भी १८५४तक शुद्ध अल्यूमिनियम न बनाया जा सका। इसके बाद (StClaire Deville) श्रीडेविल बड़ी कठिनतासे अपने रासायनिक प्रयोगोंद्वारा इसको थोड़े परिमाणमें बना पाये। उस समय यह धातु बहुत महँगी पड़ी। उस समय सेरभर अल्यूमिनियमका दाम ४००) रु०के लगभग था, अर्थात् पांच रुपयेमें एक तोला भर। अतएव कुछ कालतक इसकी महँगाईके कारण प्रचारमें बड़ी रुकावट रही। यदि अमेरिकाके श्रीहाल (Hall) और फ्रांसके (Heroult) श्रीहेरूल्ट अपनी खोजको जन्म न देते तो यह बेचारी धातु अपनी शैशवअवस्थामें ही

मर जाती। यह क्रमसे उन्हीं लोगोंके स्वाधीन उद्योगोंका फल है कि महँगाईकी सारी रुकावटें इस धातुके प्रचार-मार्गसे हट गयीं। यद्यपि इस समय अन्य बहुतसे तरीके काममें लाये जाते हैं पर वह सभी तरीके (Hall) (Heroult) हालहेरूल्ट के आविष्कारोंकी भित्तिपर ही स्थित हैं।

अल्युमिनियमके बनानेमें Bauxite नामक कच्ची धातु काममें लायी जाती है। यह धातु फ्रांसके (Baux) नामक दक्षिणी जिलेमें सबसे पहले प्रयोगमें लायी गयी। इसी कारण इसका नाम (Bauxite) पड़ा। बाक्साइटसे अल्युमिनियम ओषिद और ओषिदको (Cryolite) क्रायोलैटके मिश्रण द्वारा तरल बनाकर रासायनिक प्रक्रियाद्वारा विद्युतशक्तिसे शुद्ध धातुमें परिणत किया जाता है। इस क्रियामें बहुत ऊँचे तापमानकी आवश्यकता पड़ती है। वैज्ञानिकोंका कहना है कि भारमें एक भाग शुद्ध धातुके लिये पांच भाग बाक्साइटकी जरूरत पड़ती है।

इस धातुके बनानेमें अधिक लाभ तभी हो सकता है जब कि बिजलीकी ताकत कमसे कम कीमतपर मिले। इसी कारण लगभग सारे संसारमें जहां कि इस धातुके बनानेका काम होता है जलीय विद्युत शक्तिका प्रयोग किया जाता है। यद्यपि भारतमें भी Bauxite प्रचुर परिमाणमें पाया जाता है पर तौ भी इस देशमें इस रोजगारके पीछे अन्य देशोंकी अपेक्षा कुछ भी खर्च नहीं किया गया। और इसका सारा रोजगार विदेशियोंके हाथमें है। भारतमें कोल्हापुर रियासतके महाराज इस रोजगारकी उन्नतिकी ओर ध्यान दे रहे हैं। विशेषज्ञ द्वारा उन्होंने अपनी रियासतकी खनिज उत्पत्तिकी खोज भी करायी है। उन लोगोंका कहना है कि बयासी करोड़ मन बाक्साइट इस रियासतके अंदर बहुत आसानीसे निकाला जा सकता है। यदि रियासतमें मौजूद सारी धातु साठ सालमें भी निकाली जा सके तो प्रतिसाल १ करोड़ ३६ लाख मन कच्ची धातु निकाली जा सकेगी। इस हिसाबसे हरसाल सत्ताईस लाख मन शुद्ध अल्युमिनियम तैयार होगा जिसकी कीमत आजकलकी दरसे १६ करोड़ रुपया होगी।

भारतमें इसका विशेष प्रयोग तांबे और पीतलके बरतनों की जगह किया गया। पर देशकी अर्थहीनता और इसके सस्तेपनके कारण इसे इतना प्रोत्साहन मिला कि सन् १९३०में इसकी खपत इस देशमें दो लाख अठारह हजार मनके लगभग पहुँच गयी। स्वास्थ्यकी दृष्टिसे कुछ डाक्टरोंने इसे शुद्ध और पवित्र माना है परन्तु इस विषयमें भारी मतभेद है। कुछ कहते हैं कि सोना और प्लेटिनमके बाद पवित्रताके सम्बन्धमें संसारकी धातुओंमें इसका दूसरा नम्बर है।* इसमें खाद्य पदार्थ रखनेसे किसी प्रकारका विकार नहीं पैदा होता। दूधकी चीजों के बनानेमें, शराबके कारखानोंमें, चाय तम्बाकू सिगरेट और चाकलेट ऐसी वस्तुओंके लपेटने और भेजनेमें अब इसका काफी प्रयोग होने लगा है। भारतमें तो केवल बरतन बनते हैं। कंघी आदि कई चीजें और भी प्रचलित हो रही हैं। अन्य देशोंमें बुनाईके उपकरण, हवागाड़ी, ट्रामगाड़ी आदिके सामान, मगनीसियमके साथ इसका मेल करके वायुयानका ढांचा इत्यादि बनने लगे हैं। साधारणतया सभी धातुओंकी जगह अल्युमिनियम काममें आने लगा है।

स्प्रिंग ऐसे कुछ जरूरी पुर्जोंको छोड़कर हालमें एक पूरी ट्राम-कार ही अल्यूमिनियमकी बनायी गयी जो तौलमें अन्य कारोंकी अपेक्षा २४ फ़ी सदी हलकी ठहरी जिस कारण चलानेके खर्चमें २० फी सदीकी बचत हुई। इसी आधारपर अमेरिकामें मोटर गाड़ी और कारोंके बनानेका काम बड़े पैमाने पर हो रहा है। यद्यपि यह प्रयोग अभी इस हद तक

* अल्युमिनियमके बर्त्तनोंके बर्त्तनेमें कितनी हानि है और भारतीयोंको इससे कितना सावधान रहना चाहिये इसका विस्तृत वर्णन "विज्ञान"के पिछले (भाग ३७ अंक ५) अगस्तके अंकमें पृ० १५२—१५४ तक दिया गया है उसे पाठक पढ़ लें।

नहीं पहुँचा है कि व्यवसायका रूप धारण कर सके पर इतना तो सिद्ध ही हो चुका है कि अल्यूमिनियम धातु अन्य धातुकी जगहोंमें मोटर, कार तथा मोटर-बाडोके लिये आसानीसे इस्तेमालमें लायी जा सकती है।

इससे अनुमान किया जा सकता है कि निकट भविष्यमें रेल, जलकल, स्टीमबोट जहाज और हवाई जहाज तथा इस प्रकारकी और सभी चीजें अल्यूमोनियमकी बनेंगी। हवाई जहाज और रेलकी चाल आजसे कहीं अधिक तेज़ हो जायगी और चलानेका खर्च घट जायगा। आशाकी जाती है कि १० वर्षमें इसकी पैदावार दूनी हो जायगी। इसके उज्ज्वल भविष्यको देखकर आगामी युगको यदि अल्युमिनियम युग कहें तो बेजा नहीं। पर साथही यह भी कह देना अनुचित न होगा कि इस तिजारतसे भारतवर्षको अधिक लाभ होनेकी निकट भविष्यमें सम्भावना नहीं है, क्योंकि यदि यह धातु भारतमें आज उपजायी भी जा सके तो भी अभी इसके निकालनेके सारे उपकरण आचूड़ान्त विदेशी ही होंगे और यह धंधा ग़रीबोंका न होकर पूंजीपतियों काही होगा।❋

प्रसरणशील विश्व

[ले० आचार्य अमियचरण वन्द्योपाध्याय]

Einstein आयन्स्टाइनके Theory of Relativity सापेक्षवादने वैज्ञानिक संसामें एक नया युग पैदा कर दिया है। पुराने मतके अनुसार देश और काल बिल्कुल पृथक हैं। देश का प्रसार आगे, पीछे, दाएँ बाएँ तथा ऊपर नीचे गिना जाता है। और काल के विषयमें ऐसा विचार है कि मानों यह हमारी ओरसे अनन्तकी ओर निरन्तर बहा चला जा रहा है। परन्तु आयन्सटाइनके नवीन मतने दोनोंमें टाँका लगा दिया और इस प्रकार जोड़ा है कि दोनोंमें भेद नहीं किया जा सकता अर्थात् दोनोंको मिलाकर देश-काल (Space-Time) बना दिया। पुराने मतके अनुसार Three-dimensional space त्रिपरिमाण देशका पारस्परिक प्रयोजन था और काल बिलकुल स्वतंत्र मात्रा थी। किन्तु आधुनिक धारणाके अनुसार देश और काल पृथक नहीं माने जाते। यह चतुःपरिमाणके भिन्न भिन्न अक्ष हैं। यह भी मान लिया गया है कि नवीन चतुर्थ परिमाण काल ही है।

आयन्स्टाइनके मतके अनुसार पदार्थहीन आकाशके विश्वमें देश कालका आकार टेढ़ा मेढ़ा नहीं हो सकता तथा न उसकी कोई सीमा ही हो सकती है परन्तु जिस विश्वमें पदार्थ (Matter) होगा, वह टेढ़ा होना चाहिए और उसका आकार तथा आयतन आन्तरिक पदार्थकी मात्रासे निरूपित होना चाहिए। आयन्स्टाइनके (Law of Gravitation) गुरुत्त्वाकर्षण नियममें (Repulsion) विकर्षण शक्तिका भी एक पद (Term) है। इस कारणसे आकर्षण तथा विकर्षण दोनों ही शक्तियोंका प्रभाव प्रदर्शित होता है। विकर्षण दूरीसे बढ़ता है और इस कारण थोड़ी दूरीपर यह शक्ति बहुत कम प्रदर्शित होती है। इसी शक्तिको भौतिक विकर्षण शक्ति (Cosmic Repulsion) कहते हैं। अत्यन्त विशाल ब्रह्माण्ड की अपेक्षा हमारा सौर जगत् बहुत ही क्षुद्र है। हमारे जगतमें भौतिक विकर्षण शक्तिका प्रभाव अत्यन्त ही अल्प और उपेक्षणीय है। कुछ वैज्ञानिकोंका यह अनुमान है कि विश्वकी प्रथम अवस्थामें आकर्षण तथा विकर्षण शक्तियोंका प्रभाव समान था। जिसके कारण विश्व स्थिर अवस्थामें

❋ यह धातु १००–१५०° शके भीतर पीटकर बढ़ायी जा सकती है और इसका तार भी खिंच सकता है। बारंबार धीरेधीरे गरम और ठंडा करते हुए इसके पत्तर तार आदि बनते हैं। ६५७° के लगभग आंचपर पिघलने लगती है और इससे बहुत ऊँचे तापक्रमपर द्रव अवस्थामें हो जाती है और तापक्रम यदि घटे नहींतो द्रव बना रहता है। तापक्रम भट्टीके अन्दर बराबर ऊँचा बना रहे इसके जाननेके साधन भी चाहियें। तापक्रमके अत्यधिक बढ़ जानेका कोई डर नहीं क्योंकि इसका द्रव १८००° पर उबलता है।

रहना चाहिए था। इसी स्थिर स्थितिमय विश्वको आयन्सटाइन जगत् (Einstein's world) कहते हैं।

बेलजियमके ज्योतिषी (Abbe la Maitre) 'अबे ला मतैर' ने गणित द्वारा स्थापित किया है कि ऐसे जगत्की स्थिर अवस्था अस्थायी है। यदि किसी कारणसे भी अल्प हलचल हो जाय तो विकर्षण और आकर्षण शक्तियोंके प्रभाव की समानता भंग हो जाती है जिससे यह स्थिर विश्व प्रसारित या संकुचित होने लगता है। कुछ वर्ष पहिले होलेंड वासी वैज्ञानिक विद्वान (De Sitter) 'डि सिटर'ने भी गणनाद्वारा विश्वका प्रसारित वा संकुचित होना बतलाया था।

आधुनिक वैज्ञानिकोंका यह अनुमान है कि आलोक द्वैतगुण-विशिष्ट है। द्वैतवाद का मत Principle of Duality मनोविज्ञानमें बहुत पुराना है परन्तु पदार्थ-विज्ञानमें इस मतका प्रचलन एक नया प्रयोग है। कभी तो आलोक रश्मि ऐसे सूक्ष्म-कणका रूप धारण कर लेती है कि जिसका वेग बहुत ही ज्यादा है। और कभी उन्नतिशील तरंग मालाके स्वरूपमें प्रकट होती है। आलोकके पहिले स्वरूपके अनुसार ज्योतिर्म्मय पदार्थसे एक प्रकारके छोटे छोटे कण बहुत वेगसे निकलते हैं। वही कण चक्षुमें प्रवेशकर आघात करते हैं और इस प्रकार हमें प्रकाशका ज्ञान देते हैं। यह सब कण आलोकके बहुत ही छोटे भाग हैं तथा अविभाज्य हैं अर्थात् यह इससे अधिक सूक्ष्म नहीं हो सकते। इसलिए इनका नाम प्रकाशाणु (Photon) है। इनका वेग १,८६,३२६ मील प्रति सेकेन्ड है। आलोकके दूसरे स्वरूपके अनुसार ज्योतिर्मय पदार्थके परमाणु काँपते रहते हैं और यही कम्पन आलोकतरंग उत्पन्न करते हैं। यह तरंग जब हमारे चक्षुओंमें आघात करते हैं तब हमें आलोकका ज्ञान होता है। शब्द-तरंग और आलोक-तरंग विशेष रूपसे समानान्तर हैं। शब्द तरंग हवामें उत्पन्न होकर कानमें प्रवेश करते हैं और इस प्रकार शब्दका ज्ञान देते हैं।

गतिशील मोटरके भोंपों और गतिशील अंजिन-की सीटीकी ध्वनि दूरी परसे असली कठोर ध्वनिकी अपेक्षा कोमल प्रतीत होती है। गतिशील मोटर और अंजिन जैसे जैसे हमसे दूर होते जाते हैं वैसे ही वैसे उनके भोंपों और सीटीका स्वर जो हमारे पास आता है उसकी स्पन्दन संख्या (Pitch) घटती जाती है। इसी कारण उनका स्वर पहलेसे कोमल मालूम होता है। इसी प्रकार आगमन शील वस्तुसे निकले हुए शब्दकी स्पन्दन-संख्या हमें बढ़ती हुई मालूम होती है और उसका स्वर भी पूर्वकी अपेक्षा बढ़ता प्रतीत होता है। यदि किसी गतिशील वस्तुसे निकले हुए स्वरकी स्पन्दन संख्याके बढ़ाव वा घटावका हिसाब मालूम हो तो (Doppler's Principle) 'डोपलरके नियम' के अनुसार उस वस्तुका आने या जानेका वेग सुगमतासे जाना जा सकता है। दूरगामी अथवा आगमनशील ज्योतिर्म्मय वस्तुसे निकले हुए आलोककी स्पन्दन-संख्या भी इसी डोपलर नियमके अनुसार ही घटती या बढ़ती है।

सूर्यके प्रकाशका रङ्ग शुभ्र है। यदि सूर्यकी किरण किसी त्रिपार्श्वकांच फलक (Triangular prism) के भीतरसे भेजी जाए तो यह शुभ्र किरण अनेक रङ्गोंमें बँटकर फैल जाती है। और यदि उचित स्थानपर एक पर्दा रख दिया जाय तो उसपर (Spectrum) वर्णच्छटाका एक सुन्दर चित्र बन जाता है। इस वर्णच्छटामें अनेक वर्णोंकी आलोक रेखाएँ पास पास दिखाई देती हैं और कहीं कहीं बीच में आलोकके बदले काली रेखाएँ दीख पड़ती हैं जिनको (Fraunhofer) 'फ्रानहोफ़रकी रेखाएँ' कहते हैं। सूर्य किरणकी वर्णच्छटामें सात प्रधान वर्ण होते हैं—कासनी, नीला, आसमानी, हरा, नारंगी, पीला तथा लाल। ज्योतिर्म्मय सूर्यमें धातु और मूल पदार्थ वायव्य (Gaseous) अवस्थामें हैं। कई पदार्थ अत्यन्त आंच पाकर वायव्य हो जाते हैं तब वह स्वयं आलोकमय हो जाते हैं तथा एक विशेष प्रकारकी किरणें चारों ओर भेजते हैं। इन किरणोंका यदि (Spectroscope) रश्मि-

विश्लेषक यंत्र द्वारा विश्लेषण किया जाय ते बहुत सी चमकदार रेखाएँ देख पड़ती हैं। यह रेखाएँ भिन्न वस्तुओंके लिए भिन्न हैं। हरएक रेखाका सम्बन्ध आलोककी विशेष स्पन्दन-संख्याके साथ होता है। किसी वस्तुकी आलोक-रेखाएँ एक दूसरे-से पृथक देख पड़ती हैं। यह सूर्य किरणकी वर्ण-च्छटाके समान निरन्तर नहीं होतीं। सूर्य मण्डलमें बहुतसे मूल पदार्थ हैं। इन्हीं सब पदार्थोंसे निकली हुई बहुत रङ्गकी किरणें परस्पर मिलकर निरन्तर अपूर्ववर्णच्छटा बनाती हैं। प्रत्येक आलोक-रेखाका उसको स्पन्दन संख्याके अनुसार विशेष तरङ्ग दैर्घ्य (Wave-Length) होता है। किसी तरङ्गके कोई दो निकटके शिरोभागके बीचकी दूरीको तरङ्ग दैर्घ्य कहते हैं। तरङ्ग दैर्घ्य और स्पन्दन-संख्यामें विपरीत अनुपातका सम्बन्ध है अर्थात् जिस तरङ्गकी स्पन्दन संख्या अधिक है उसका तरङ्ग दैर्घ्यकम है। दृश्यमान वर्णच्छटामें लाल रेखाका तरङ्ग-दैर्घ्य सबसे अधिक है और इसलिए उसकी स्पन्दन-संख्या सबसे कम है। कासनीका तरङ्ग दैर्घ्य सबसे कम है इसलिए उसकी स्पन्दन-संख्या सबसे अधिक है।

(Nebulae) निहारिकाओंका घनत्व बहुत ही कम होता है। इनमें बहुत ही थोड़े मूल पदार्थ हैं और वह भी अनिलावस्थामें हैं। इनका किरण चित्र (Spectrum) पृथक पृथक रेखाओंसे बना होता है। ज्योतिषके विद्वानोंने दूरकी निहारिकाओं-के किरण चित्रका विशेष रूपसे अध्ययन किया है। उन्होंने मालूम किया है कि निहारिकाओंसे आयी हुई आलोक रेखाएँ अपने निश्चित स्थानसे हटकर किरण चित्रकी लाल रेखाकी ओर मुड़ी हुई होती हैं। इससे ज्ञात होता है कि दूरवाली नीहारिकाएँ क्रमशः हमसे और दूर होती जा रही हैं। अमेरिका देशमें विलसन पर्वतकी वेधशालामें दुनिया का सबसे बड़ा दूरवीक्षण यन्त्र लगा है। इसके साथ आलोक-रश्मि-विश्लेषण-यन्त्र भी लगा है। ज्योतिषी डा० हबलने इन यन्त्रोंकी सहायतासे अनेक नीहारिकाओंके किरण-चित्रोंका अध्ययन किया है।

सौर जगत अथवा निकटकी सौर मंडल सम्बन्धी दूरियोंको मीलों या किलोमीटरोंमें नापा जाता है। पर विश्व अत्यन्त ही विराट है जिसमें बहुत सी नीहारिकायें और अन्य नक्षत्र मण्डली बहुतही दूरी पर स्थित हैं इस कारण इनके सम्बन्धी दूरीको मीलों अथवा किलोमिटरोंमें नापनेसे सुविधा न रहेगी। यह विराट विश्व विश्व-रचयिताकी अपूर्व लीला है। इसकी विशालताका ज्ञान क्षुद्र मनुष्य पूर्ण रूपसे नहीं कर सकता। बहुत दूरीवाले ज्यौतिष समूह सम्बन्धी दूरी नापनेके लिये उचित नाप ((unit)) होना चाहिए। आलोकका वेग १,८६,३२६ मील प्रति सेकेण्ड है। अनेक नीहारिकाएँ हमसे इतनी दूर हैं कि उनसे हमतक प्रकाश आनेमें करोड़ों वर्षसे भी अधिक समय लग जाता है। ऐसे दूर ज्यौतिष समूह सम्बन्धी दूरी ज्यौतिषी लोग प्रकाशवर्ष ((Light year) में नापते हैं। अर्थात् जितनी दूर प्रकाश-रश्मि एक वर्षमें जा सकती है। उसे एक प्रकाश वर्ष कहते हैं एक प्रकाश वर्ष ५८,७४,९७,६७,३६,००० अर्थात् पौने उनसठ खरब मीलके बराबर होता है। डा० हबलने गणना करके निकाला है कि यदि नीहा-रिकाओंके किरण-चित्रकी रेखाओंके लाल रेखाकी ओर हटनेका सम्पूर्ण कारण उनकी गति है तो जो निहारिका हमसे एक करोड़ प्रकाशवर्षकी दूरीपर है वह हमसे ९०० मील प्रति सेकेण्ड दूर भागी जा रही है। इसी प्रकार जो नीहारिका ८ करोड़ प्रकाशवर्षकी दूरीपर है वह प्रति सेकेण्ड ७००० मीलके प्रखर वेग से भागी जा रही है। डा० हबल इस परिणामपर पहुँचे हैं कि गतिशील निहारिकाका वेग और उसकी दूरी समानुपात हैं। १९३१ में(Dr. Heuman)डा० ह्यूमानने एक ऐसी नीहारिकाकी खोजकी है जो कि १२००० मील प्रति सेकेण्ड दूर भागी जा रही है। अर्थात् उसकी गति प्रकाशके वेगका पन्द्रहवां भाग है। आधुनिक विचारोंके अनुसार यह निहारिका बृहत् विश्वकी सीमापर स्थित है। उपरोक्त अनुमान सत्य-मानकर (Eddington) एडिंगटन महोदयने निर्णय किया है कि विश्वका आयतन प्रत्येक १४० करोड़ वर्ष-

में दुगुना हो जाता है। प्रथम अवस्थामें प्रसारित होनेके पूर्व आइन्स्टाइन जगत्का व्यास केवल ६० करोड़ प्रकाशवर्ष था। इस हिसावसे विश्वकी आयु केवल कुछ करोड़ वर्ष ही रह जाती है। यदि यह सत्य है तो विश्व अभी तरुण है। परन्तु भौतिक तथा भूगर्भ विज्ञान और ज्योतिषके विद्वानोंके प्रमाणोंके अनुसार विश्व इतना तरुण नहीं हो सकता।

हमें विज्ञान यह बताता है कि रेडियम (Radium) यूरेनियम (Uranium) आदि रश्मि शक्ति-शाली (Radioactive) पदार्थ क्रमशः विश्लिष्ट होकर अन्तमें निम्नतर अनुसार वाले पदार्थोंमें परिणत होते रहते हैं। पदार्थविज्ञानके विद्वानोंने मालूम किया है कि कुछ रश्मिशक्ति वाले पदार्थ सम्पूर्ण रूपसे अत्यन्त शीघ्र ही विश्लिष्ट हो जाते हैं और कुछको करोड़ों वर्ष लग जाते हैं। यह विश्वासयोग्य प्रतीत होता है कि बहुतसे दीर्घ काल स्थायी (Longest lived) रश्मिशक्ति शाली पदार्थ पृथ्वीकी आरम्भिक अवस्थामें पूर्ण शक्ति धारण किये हुए थे परन्तु वे सब अब पूर्ण रूपसे निष्क्रिय हो गये हैं। इन पदार्थोंकी सहायतासे भौतिक विज्ञानके विद्वानोंने पृथ्वीकी आयुका अनुमान किया है। उनके हिसाबसे विश्वकी आयु अरबों वर्ष होगी।

अब यह देखना चाहिये कि विश्वकी आयुकी इन दो भिन्न गणनाओंमें कुछ समानता होनी संभव है कि नहीं। केलिफोर्निया (California) निवासी डाक्टर (Zwicky) ज्विकी दूरकी निहारिकाओंसे आयी हुई आलोक रश्मिके लाल हो जानेका एक और भी कारण बताते हैं। उनका अनुमान है कि दूरकी निहारिकासे निकली हुई आलोक रश्मिके प्रकाशाणु पथमें अवस्थित ज्योतिष्क वर्गोंके अणु और परमाणुसे बहुत वेगसे टकराते हैं और इस कारण रश्मिका थोड़ासा वर्ण बदल कर लाल हो जाता है। सुप्रसिद्ध प्रोफेसर कोम्पटनने प्रयोग द्वारा स्थापित किया है कि जब (X ray) रंजन रश्मिके प्रकाशाणु ऋणाणुओंसे संघर्ष करनेके कारण टकराते हैं, तब रंजन रश्मि तनिक लाल हो जाती है। इस प्रयोगके फलके आधारपर विचार कर डा० ज्विकी उपरोक्त अनुमानपर पहुँचे हैं। ज्योतिषी टैन बरगनकेटने डा० ज्विकीके अनुमानकी सत्यता जाननेका प्रयत्न किया है। उन्होंने पृथ्वीसे समदूर स्थित (Globular Cluster) ज्यौतिषमालासे निकले हुए आलोकका अध्ययन किया। ज्यौतिषमालाके अनेक अंग पृथ्वीसे बराबर दूरीपर हैं परन्तु यह इस प्रकार चुने गये कि भिन्न भिन्न ज्योतिष्कोंसे निकली हुई आलोक-रश्मि भिन्न भिन्न मात्राके वायव्य (Gaseous) पदार्थोंके भीतर होकर आयीं। यदि रश्मिके लाल होनेका कारण अपने प्रकाशाणुओंका अणु और परमाणुओंसे टकराना नहीं है और नीहारिकाओंकी वर्धनशील गति ही लाल होनेका मुख्य कारण है तो समदूर स्थित ज्योतिष्क समूहोंसे निकली हुई रश्मि एक ही प्रकारसे लाल होनी चाहिए। परन्तु डा० बरगेनकेटने दिखलाया है कि यदि रश्मि अधिक मात्रावाले (Gaseous) वायव्य पदार्थोंमें से होकर आए तो वह अधिक रूपसे लाल होगी। कुछ वैज्ञानिकोंका अनुमान है कि दूरकी नीहारिकाओंसे आयी हुई रश्मि अधिकतर पथमें स्थित अणु और परमाणुओंसे टकरानेके कारण लाल होती है। लाल करनेमें नीहारिकाकी गतिका थोड़ा सा ही भाग है। और यह अनुमान ठीक भी प्रतीत होता है। अब तो विश्वको तरुण समझना भी आवश्यक नहीं रहता। इस विचारसे तो विश्वकी निहारिकाएँ प्रति सेकण्ड सौ मील दूर होती जा रही हैं। तब विश्वकी आयु भी कमसे कम अरबों वर्षोंसे भी अधिक होगी। भौतिक और भूतत्वके विद्वान् तो पहिले ही इस फल-पर पहुँच चुके हैं। इस कारण अब विश्वकी आयुकी दोनों गणनाओंमें भी भेद नहीं रहता।

कुछ समयसे कुछ वैज्ञानिकोंने विश्वके प्रसरण-शील होनेके विचारकी समालोचना की है। ऑक्स-फोर्ड विश्व-विद्यालयके गणितके अध्यापक प्रोफेसर (Milne) मिलनका प्रश्न है कि विश्व प्रसरण ही क्यों करता है सिकुड़ता क्यों नहीं? उन्होंने आयन्स्टाइन-के सापेक्षवादकी देशकालकी वक्रताको न मान कर देशको त्रिपरिमाण-शील माना है और तब निहारि-

काचोंसे आयी हुई आलोकका लाल रेखाकी ओर मुड़नेका कारण दिखानेका प्रयत्न किया है। वह यह भी मानते हैं कि ज्योतिष्क पदार्थोंके अणु और परमाणु शून्य-वेगसे लेकर आलोकके वेगतक भिन्न वेगोंसे भ्रमण करते हैं, पर उनके इस विचारकी सत्यतामें बहुत सन्देह है।

अवश्य ही यह निश्चित रूपसे नहीं कहा जा सकता कि विश्व प्रसारित ही हो रहा है। नहीं कह सकते कि इस विषयमें भविष्यमें वैज्ञानिक लोग किसी निश्चित सिद्धांतपर पहुँच सकेंगे या नहीं। पिछली शताब्दीतक भौतिक घटनाओंका होना कार्य-कारणकी नीतिके आधारपर समझा जाता था। परन्तु आधुनिक वैज्ञानिक लोग इस नीतिको त्याग कर अनिश्चय वाद (Principle of Uncertainty) और सम्भावना वाद (Law of Probability) के अनुगामी हुए हैं। उपसंहारमें सम्भावना वादके पक्षपाती होकर यह कहा जा सकता है कि विश्वका प्रसरणशील होना असम्भव नहीं है।

———

अवकाश-रसायन तथा कीटाणु संबंधी विज्ञानका आरम्भ और पासत्यूरके अनुसन्धान

[लेखक श्री आत्माराम, एम० एस-सी०]

विश्वविख्यात रसायनज्ञ (Berzelius) बरजेल्यूस का कथन था कि दो भिन्न भिन्न वस्तुओंका एकही आणविक सूत्र नहीं हो सकता परन्तु इस सिद्धान्तके विरुद्ध सबसे पहिले बरजेल्यूसके शिष्य (Wohler) वोलरके अनुसन्धान हुए। वोलरने श्यामिकाम्लके कार्य्यसे यह दिखला दिया था कि एक ही आणिवक सूत्रवाली दो वस्तुओंका होना सम्भव है जैसे (उ क नो ओ) से श्यामिक तथा सम-श्यामिकाम्ल दोनों दर्शाये जा सकते हैं। कार्बनिक रसायनमें यह घटना एक महत्वकी बात है क्योंकि समरूपता कार्बनिक रसायनका एक मुख्य लक्ष्य है जैसे ($क_२$ $उ_६$ ओ) से दो बिल्कुल भिन्न और विपरीत पदार्थों-को दर्शाया जाता है।

$क\, उ_३\, ओ\, क\, उ_३$ तथा $क_२\, उ_५\, ओउ$

दारील ज्वलक   ज्वलील मद्य

(Methyl Ether)   (Ethyl Alcohol)

इन दोनों वस्तुओंमें कितना भारी भेद है एक ज्वलक है और दूसरा मद्य। अब इसी प्रकार का एक दूसरा उदाहरण लीजिये। जैसे ($क_४$ $उ_{१०}$ ओ) इस सूत्रसे निम्नलिखित दो यौगिक दर्शाये जा सकते हैं।

$क_२\, उ_५\, ओ\, क_२\, उ_५$ तथा $क\, उ_३\, ओ\, क_३\, उ_७$

ज्वलील ज्वलक   दारील अग्नील ज्वलक

यद्यपि यह दोनों ही ज्वलक हैं तथापि इनके रसायनिक तथा भौतिक भावोंमें भेद है। अथवा, दो समरूपिक यौगिकोंके स्वभावोंमें भेद होता है और होना भी चाहिये क्योंकि दो भिन्न भिन्न वस्तुएं हैं पिछला उदाहरण (metamerism) मध्य रूपताका है अर्थात् दोनों यौगिक एकही समुदाय (Family)के होने चाहिये। इन सब अनुसन्धानोंसे यह बात सिद्ध हुई कि दो ऐसी वस्तुएं जिनका आणविक सूत्र एक ही हो रासायनिक तथा भौतिक स्वभावोंमें एक सी नहीं हो सकतीं। क्या ऐसी वस्तुएं भी हो सकती हैं जिनका आणविक सूत्र भी एक ही हो और रासायनिक तथा भौतिक स्वभाव भी एक ही से हों? इस प्रश्नका उत्तर अवकाश-रसायनके ज्ञानसे मिला। वास्तवमें ऐसी वस्तुएं होती हैं जो एक ही आणविक सूत्र रखती हुई और भिन्न होनेपर भी एकसा ही रसायनिक तथा भौतिक स्वभाव दिखलाती हैं। अगले कुछ पृष्ठोंमें अवकाश-रसायनका कुछ वर्णन करनेकी चेष्टा की जायगी और उनके पढ़नेसे यह पता लग जायगा कि किस प्रकार ऐसी दो भिन्न वस्तुओंका होना जिनका आण्विकसूत्र एक ही हो और रासायनिक तथा भौतिक स्वभाव भी एकहीसे हों संभव है।

अवकाश-रसायनका आरम्भ

पाठकोंको ज्ञात होगा कि द्रव्यावर्जनकी घटना

(double refraction) न्यूटन तथा हाइगन मालूम कर चुके थे, परन्तु इस ओर कोई विशेष कार्य्य न हो पाया था। साधारण तथा असाधारण किरणोंका स्वभाव ठीक ठीक तौरपर मैलसने ही सन् १८०८में मालूम किया। इसी वर्ष उसने यह बात बतलायी कि परावर्तन (refraction)से भी दिग्प्रधानता (polaisation) उत्पन्न हो सकती है तथा आइसलैंड स्पारमें से हो कर गुज़रनेवाली किरणें दिग् प्रधान हो जाती हैं और इस प्रकार साधारण किरणोंसे भिन्न हो जाती हैं।

मैलसके थोड़ी अवस्थामें मर जानेपर इस अद्भुत घटनाका विस्तार जो कि विज्ञान और विशेषकर भौतिक विज्ञानकी पूँजी है बायो तथा अरेगोके अनुसन्धानोंसे हुआ। बायोके अनुसन्धानोंके मूल्यका और विशेषकर उस लाभ और सेवाका जो उनसे रसायन विज्ञानको हुई है अनुमान लगाना कठिन क्या असंभव है। अभीतक यही विदित था कि केवल कुछ ठोस पदार्थ ही द्वयावर्जक होते हैं ? परन्तु कुछ और भी ऐसे कार्बनिक पदार्थ हैं जो इस स्वभावको प्रत्येक दशामें दर्शाते हैं, चाहे घोल और चाहे द्रव दशामें हों। साथहीसाथ बायो इस घटनाकी महत्ता जानने तथा बतलानेमें पिछड़ा हुआ न था। उसने तुरन्त ही बतलाया कि बिल्लौर (quartz) तथा आइसलैंड स्पारके रवोंका द्वयावर्जन-स्वभाव रवोंकी दशापर निर्भर है अर्थात् यदि किसी प्रकार इन रवोंकी दशा या बनावट भङ्ग कर दी जाय तो इनका यह स्वभाव भी जाता रहेगा। परन्तु कार्बनिक यौगिकोंमें यह बात नहीं पायी जाती। उन्हें चाहे रवेकी दशामें लीजिये और चाहे घोल बनाइये किसी दशामें उनको लीजिये उनका द्वयावर्जन स्वभाव नहीं बदलता। इससे यह विदित हुआ कि बिल्लौर इत्यादिमें यह स्वभाव केवल रवोंकी विशेष बनावटपर ही निर्भर है, अणुका कोई स्वभाव नहीं है, और न इससे कोई संबध ही रखता है परन्तु कार्बनिक यौगिकों जैसे शर्करा, कपूर, इमलिकाम्ल इत्यादिमें यह स्वभाव एक आणविक गुण है। इस प्रकार कार्बनिक यौगिकोंके एक विशेष गुणका पता जिससे कार्बनिक रसायनमें और विशेषकर यौगिकोंके गठन निकालनेमें अमूल्य सहायता मिली है, बायोके कार्य्यसे लगा। अगले कुछ पृष्ठोंके पढ़नेसे इस गुणके लाभ तथा उपयोगका पता पाठकोंको पूरे तौरसे लग जायगा, तथा यह भी विदितहो जायगा कि रसायनज्ञ इस प्रसिद्ध भौतिकज्ञके कितने कृतज्ञ हैं।

लगभग इसी समय या इससे कुछ पहिले मिटशरलिक जो बरज़ेल्यूसका मुख्य शिष्य था समरूपक नियम (Law of Isomorphism) विदित कर चुका था और इमलेत तथा परइमलेतोंका स्वभाव जाननेकी चेष्टा कर रहा था। इस कार्य्यको करते हुए उसको विदित हुआ कि संदस्तक अमोनिया इमलेत तथा परइमलेत (अभ्रामिकेत) का रासायनिक संगठन, आपेक्षिक गुरुत्व, द्वयावर्जनता तथा रवेदार दशा एक ही हैं इसलिये उनके प्रकाश अक्षों (optic axis) के बीचका कोण भी बराबर होना चाहिये और उनके घोलोंका द्वयावर्जन भी बराबर हो। परन्तु इमलेतका घोल प्रकाश-भ्रामकता दिखलाता है परन्तु परइमलेत का घोल नहीं दिखलाता यद्यपि और सब स्वभावोंमें वह समान हैं।

पास्तयूर अभी युवक ही था। उसने अपने कालेज का अध्ययन समाप्त किया था कि उसको रवेसम्बंधी विज्ञान (Crystallography)का शौक़ हो गया और इसी शौक़को लेते हुए उसने डेला प्रोवेस्टके कार्य्यको दोहराया। आश्चर्य्यकी बात है कि इतने बड़े भौतिकज्ञने भी इमलेतके रवोंपर छोटे छोटे चपटे सिरे (Facets) नहीं देखे थे जो कि पास्टयूरने विदित किये। बिल्लौर इत्यादिमें ऐसे सिरे (Facets) हायने विदित किये थे और बायोका कथन था कि बिल्लौरके कुछ रवे दांई ओर और कुछ बांई ओरको प्रकाश भ्रमण दिखलाते हैं और यह स्वभाव रसायनिक संगठनसे कुछ न कुछ सम्बंध अवश्य रखता होगा। इन सब अनुसन्धानोंका पास्टयूरपर बड़ा प्रभाव पड़ा और इमलेतके रवोंपर चपटे सिरों (Hemihedral facets)का होना भी रसायनिक सगंठनसे कुछ सम्बंध अवश्य रक्खेगा। इस बातको जाननेके लिये उसने

भिन्न भिन्न १९ इमलेतोंके रवे तैय्यार किये और सब रवोंमें चपटे सिरे (hemihedral facets) पाये। और सबसे महत्व पूर्ण बात यह थी कि इन सब इमलेतों पर यह सिरे एकही प्रकारके थे, एक ही दिशामें थे और सब एक ही ओरको प्रकाश-भ्रमण दिखलाते थे। इस कार्य्यमें सफलता प्राप्त करके पास्तयूरको और कार्य्य करनेके लिये उत्तेजना हुई और जैसा कि पाठक देखेंगे इसी कार्य्यसे उस मुख्य विषयकी स्थापना हुई जिसके महत्त्वका समयोगी सारे रसायन विज्ञानमें और कोई दूसरा नहीं।

पास्त्यूरने अब मिटशरलिकके कार्य्यपर दृष्टि डाली। वह पहिलेही दिखला चुका था कि इमलेतों तथा (अभ्रामेत) परइमलेतोंमें कितनी समानता है। अन्तर केवल यही है कि इमलेत प्रकाश-भ्रामक है और अभ्रामेत नहीं। इस बातको जानकर कि एक इमलेत ऐसा भी है जिसमें प्रकाश भ्रमणकी शक्ति नहीं है, इस बातकी अति उत्कंठा हुई कि इसके रवों-की भी खोज की जाय। अस्तु उसने अभ्रामेतके रवे तैय्यार किये। पास्तयूरका विचार था कि इन रवोंपर चपटे सिरे(hemihedral facets) नही होंगे, परन्तु इस विचारके विरुद्ध इन रवोंपर भी सिरे (Facets) दिखलाई पड़े। परन्तु गौरसे देखनेसे ज्ञात हुआ कि अभ्रामेतके सब रवोंपर एक ही ओर सिरे (facets) नहीं हैं बल्कि कुछपर दाहिनी ओर हैं और कुछपर बाईं ओर। अपने सिद्धान्तको ठीक मानते हुए पास्तयूरने दाहिनी ओरवाले रवे एक बर्तनमें और बाईं ओरवाले दूसरे बर्तनमें इकट्ठा किये और उनके घोलोंका प्रकाश-भ्रमण एक (Polariscope) दिग्प्रधान दर्शकमें देखा। इस प्रयोगके फलोंको विज्ञान पढ़नेवाले तो कम से कम जानते हैं कि वह क्या हुए और उनसे कितनी बेहद खुशी पास्तयूरको हुई। दिग्प्रधान दर्शकमें दाईं ओरके घोलको रखनेसे दांई ओरको प्रकाश भ्रमण हुआ और बांई ओरवालेसे बांई ओरको। इस प्रयोगकी सफलतापर पास्तयूरको इतनी प्रसन्नता हुई कि तुरन्त बरट्रैंडको जो उस समय प्रयोगशालामें था चिपटा लिया और उसके साथ चिल्ला चिल्लाकर नाचने लगा।

जब कोई नवयुवक महत्त्वपूर्ण कार्य्य करता है तो बड़े लोग उसको आरंभमें ठीक नहीं समझते और ऐसा ही पास्तयूरके साथ हुआ। जिस समय इन प्रयोगोंके फल फ्रांसकी वैज्ञानिक सभामें प्रकाशित करनेके लिये भेजे गये तो अधिकतर वैज्ञानिकोंको इसपर कुछ सन्देह हुआ; इसलिये इसकी जांचका कार्य्य बायोको जो उस समय इस विषयका विशेषज्ञ माना जाता था सुपुर्द हुआ। बायोने पास्तयूरको अपनी प्रयोगशालामें बुलाया और सब प्रयोगोंको अपनी अध्यक्षता तथा उपस्थितिमें दोहरानेका अनुरोध किया। पास्तयूर तो यह चाहता ही था। अभ्रमिकाम्ल बायोने अपनी प्रयोगशालासे ही दिया जिसको कि वह पहिले देख चुका था कि उसके घोलमें प्रकाश-भ्रमण शक्ति नहीं है। इस अम्लका लवण बनानेके लिये सोडा तथा अमोनिया भी अपने ही पाससे दिये। लवण बनाकर घोल वाष्पीकरणके लिये रख दिया गया जब बहुत थोड़ा रह गया तो ठंडा किया गया ताकि रवे उत्पन्न हो जावें। बायोने पास्तयूरसे रवे इकट्ठे करनेके लिये कहा और यह भी अनुरोध किया कि दाहिनी ओरको प्रकाश भ्रमण करनेवाले दांई ओर रक्खे जायें और बाई ओर भ्रमण करनेवाले बाईं ओर। इसके पश्चात् बायोने स्वयं ही इन रवोंके घोल तैयार किये और सबसे पहले बाईं ओर प्रकाश-भ्रमण करनेवाला घोल दिग्प्रधान-दर्शकमें रक्खा। दोनों अर्धोंमें प्रकाश देखते ही उसको पता लग गया कि वास्तवमें घोल बाँई ओरको प्रकाश-भ्रमण करता है। इस प्रयोगका प्रभाव वृद्ध वैज्ञानिकपर इस क़दर पड़ा कि वह तुरन्त पासत्यूरका हाथ पकड़ कर नाचने लगा और कहा "मेरे प्यारे बच्चे, मैंने विज्ञानको इतना प्यार किया है कि इन अर्धोंका प्रकाश देखकर मेरा हृदय प्रसन्नताके कारण गद् गद् हो रहा है"।

एक प्रकारसे यह पता लग गया कि बहुतसे ऐसे यौगिक जो प्रकाश-भ्रमण नहीं करते ऐसे दो यौगिकोंसे मिलकर बने हैं जो एक दूसरेके विपरीत

दिशामें भ्रमण करते हैं जिससे कि मिश्रित यौगिकमें प्रकाश-भ्रमण शक्ति ज्ञात नहीं होती। इस विषयपर पास्त्यूरने सबसे अधिक कार्य्य किया। इन प्रयोगों के प्रकाशित होते ही एक हलचलसी मच गई और वास्तवमें यह एक ऐसी बात भी थी जिसके लिये वैज्ञानिक वर्षोंसे तत्पर थे। पास्त्यूर यह तो सब कुछ कर सका परन्तु इस घटनाका कारण समझानेमें उसे विशेष सफलता न हुई। इस कार्य्यमें विश्व-विख्यात भौतिक रसायनज्ञ फांट हाफ़ Vant Hoff तथा ला बेल्को सफलता हुई और अबतक उन्हींका सिद्धान्त ठीक माना जाता है। इस विषयपर विसलिकेनसका कार्य दुग्धिकाम्लकी प्रकाश-भ्रमण-शक्ति पर महत्वपूर्ण हुआ है। इन सब कार्यों का वर्णन पास्त्यूरकी जीवनीके साथ दिया जायगा। इस प्रकार एक नये रसायनका उद्घाटन पास्त्यूरके हाथोंसे इतनी युवावस्थामें हुआ।

लुई पास्त्यूर (१८२२-१८९६)

पास्त्यूरका जन्म २७ दिसम्बर १८२२को डोल (फ़्रांस) में हुआ। जब कि वह केवल दो वर्षका ही था उसका पिता अपने पुराने घरको छोड़कर आरबोयमें चमड़ा बनानेका काम करने लगा। इसके पिताको स्वदेश-भक्तिकी तो मूर्ति ही समझना चाहिये क्योंकि जिस समय फ्रांसमें युद्ध हुआ तो वह नेपोलियनकी ओरसे लड़ाईपर गया। और स्वयं नेपोलियनने रंगभूमिमें आकर सुसज्जित किया। उसने अद्भुत पराक्रम दिखाया। इस स्वदेश भक्तिके पुरस्कारमें पासत्यूरके पिताको "लीजन डे आनर"की उपाधि मिली जो कि मुख्य मुख्य व्यक्तियोंको ही मिलती है।

पासत्यूरके माता पिताको अपने युवक बच्चेकी शिक्षाका बड़ा ध्यान था और इसके लिये सर्वदा उनको बड़ी चिन्ता रहती थी। यहांतक कि अपनी आय कम होनेपर भी वह पासत्यूरको पूरा व्यय देनेकी कोशिश करते थे। आरबोयमें पासत्यूर (College Communal) कम्यूनल कालेजमें भर्ती हो गया परन्तु यहां उसने पढ़नेकी ओर विशेष रुचि न दिखलाई बल्कि इसके विपरीत वह मछलीके शिकार तथा चित्रकारीमें विशेष रुचि रखता था। इस प्रकार उसको शुरूहीसे चित्रकारीका अच्छा अभ्यास हो गया और इनसे उसे अगले कार्य्यमें विशेष सहायता मिली।

परन्तु यह देखकर कि उसकी पढ़ाईसे माता पिताको बहुत दुःख होता है पासत्यूरने चित्रकारी इत्यादिको बिल्कुल त्याग दिया और सब क़ीमती क़ीमती यंत्र सर्वदाके लिये बन्द करके रख दिये ताकि किसी प्रकारसे उसके पढ़नेमें कोई बाधा न पड़े। आरबोयके कोलेजमें सायन्सके पढ़नेकी विशेष सुविधा न देखकर पासत्यूर बीसैंकोमें पढ़ने चला गया जहां उसने बी० एस-सीकी उपाधि ली। इस समय युवक वैज्ञानिककी रुचि रसायनकी ओर काफ़ी बढ़ चुकी थी और वह अपने बूढ़े अध्यापकको बहुतसे टेढ़े टेढ़े प्रश्नोंसे परेशान कर देता था। अन्तमें उसे यही कहना पड़ता था "मैं नहीं जानता" और कभी कभी यह भी कह डालता था कि मुझे तुम लोगोंसे पूछना चाहिये न कि तुमको मुझसे। परन्तु नवयुवकके हृदयमें ज्ञानकी खोजकी लगन लग चुकी थी, इसलिये वह अपनी रुचिको पूरा करनेके लिये वहींके एक दूसरे वैज्ञानिकके पास जाने लगा जो उस समय काफ़ी प्रसिद्ध था।

इसके पश्चात् पासत्यूर एकोल नारमेल (Ecole normal) यानी विश्वविद्यालयमें पढ़ने गया। यहां जब प्रवेशिका परीक्षामें चौदहवां स्थान मिला तो उसे ज़रा शर्म सी प्रतीत हुई और इस बार सम्मिलित न होकर दूसरी बार फिर परीक्षामें सम्मलित हुआ और चौथा स्थान पाया। नये विश्व विद्यालयमें भर्ती होनेसे पासत्यूरको रासायनिक ज्ञानकी पूर्तिकी काफ़ी सुविधा तथा अवकाश मिला क्योंकि यहां बैलार्ड (अरुणिन्का अन्वेषक) तथा डूमा (रूप सिद्धान्तका निर्माता) जैसे महारथियोंके व्याख्यान सुनने तथा उनके पास रहनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ। वैज्ञानिक विषयोंसे उसको इतनी रुचि

बढ़ती गई कि रविवारको भी जब कि सब लोग (वैज्ञानिकतक) अपना कार्य्य स्थगित कर देते हैं वह अपने कार्य्यमें बराबर जुटा रहता था और यह सुनकर अश्चर्य्य होगा कि एक रविवारको ही उसने हड्डियोंसे ५० ग्राम स्फुर तैयार किया था जो कि सुबहके चार बजेसे शामके ९ बजे अर्थात् १७ घंटे तक बनाया गया। इसको कहते हैं ज्ञानकी खोजमें मरना! क्या बिना किसी लगनके कोई मनुष्य १७ घंटे बराबर इस प्रकार कार्यमें लगा रह सकता है। कभी नहीं। यह है वैज्ञानिकोंके कार्य-परायणताका एक मार्ग और एक उदाहरण। यह बेचारे सर्वदा बिना किसी लालचके अपनी प्रयोग-शालाओंमें जब कि संसार आराम करता है विज्ञानदेवीकी पूजा किया करते हैं।

यों तो विशेषकर आचार्य्यके उत्साह तथा परिश्रमसे शिष्योंमें काम करनेकी रुचि प्रबल होती है परन्तु कभी कभी सहकारी कार्य्यकर्त्ताओंका प्रभाव उससे भी अधिक प्रबल होता है। कमसे कम पासत्यूर-के साथतो ऐसा ही हुआ। यद्यपि पासत्यूरको वैज्ञानिक खोजकी ओर आकर्षित करनेमें डूमा तथा बैलार्डका विशेष भाग है परन्तु उससे कम डेलाफ़ोसका भी नहीं हैं जो विख्यात हायका शिष्य था। डेलाफ़ोसने ही पासत्यूरकी दृष्टि आणविक भौतिक विज्ञानकी ओर आकर्षित की जिसमें उसने अपने क्या, संसारके सर्वोच्च कार्य्योंमेंसे एक कार्य्य किया।

रवे सम्बन्धी विज्ञानमें पासत्यूरके अनुसन्धान पहिलेही बतलाये जा चुके हैं कि किस प्रकार अभ्रमेत-के रवे दो प्रकारके भिन्न रवोंसे मिलकर बनते हैं जो स्वयं पृथक् पृथक् दांई तथा बाई ओर प्रकाश-भ्रमण दिखलाते हैं। पासत्यूरके इस कार्य्यसे उसकी प्रायोगिक चतुराई कार्य्यकौशल तथा अनुभवशक्तिका एक साधारण प्रमाण मिलता है। उसने केवल यही नहीं दिखलाया कि अभ्रमिकाम्ल दक्षिण-भ्रामक Dextro-rotary तथा उत्तर (वाम) भ्रामक laevo-rotary अम्लोंमें परिवर्तित हो सकता है, बल्कि इन दोनों अम्लोंको ठीक अनुपातमें मिलानेसे अभ्रमि-काम्ल फिर बन जाता है। पारीकी वैज्ञानिक सभाके सामने भाषण देते हुए पासत्यूरने अपने सिद्धान्तको किस हिम्मत और कितने गूढ़ तथा प्रभावशाली शब्दोंमें समझाया इसका पता पाठक स्वयं निम्नलि-खित शब्दोंसे लगा सकते हैं।—

"सम-रूपी वस्तुओंमें तत्त्व तथा उनका अनुपात जिसमें कि वह एक दूसरेसे मिलते हैं समान हैं, केवल उनके परमाणुओंका क्रम Arrangement भिन्न होता है। सबसे बड़े महत्त्वकी बात तो यह है कि इस प्रकार समरूपतासे यह सिद्ध होता है कि केवल परमाणुओंके भिन्नभिन्न arrangement क्रम से ही दो भिन्न प्रकारके अणु उत्पन्न हो सकते हैं। इसलिये रासायनिक तथा भौतिक समानता तथा अन्तरसे परमाणुओंका गठन निकालनेकी एक साधारण विधि ज्ञात हो गई है। यह सब बातें निम्न-लिखित शब्दोंमें समझाई जा सकती हैं—

१—जब कार्बनिक यौगिकोंके परमाणु असमसंग-तिक Asymmetric रूपमें arranged क्रमित दिये जाते हैं तो उन अणुओंमें प्रकाश-भ्रमण शक्ति आ जाती है।

२—इस आणविक असमसंगतिके प्रभाव या कारणसे ही कार्बनिक यौगिक प्रकाश भ्रामक हो जाते हैं इसलिये प्रकाश भ्रमण का कारण आणविक असम-संगति है।

३—जब कि यह आणविक असमसंगति दो विपरीत रूपोंमें दर्शित होती है तो उन दोनोंके रासायनिक स्वभाव बिल्कुल एकसे होते हैं अथवा इस प्रकारके अन्तर तथा समानतासे रासायनिक संयोग रीतिसे कोई भेद उत्पन्न नहीं होता।"

पाठक देखेंगे कि पासत्यूरके इन शब्दोंमें जो आजसे ७३ वर्ष पहिले उच्चारित हुए थे कितनी सत्यता है। यदि पासत्यूरकी विचारशक्ति तथा अनुभवका हमपर प्रभाव पड़ता है तो उसकी प्रायोगिक चतुराई तथा कार्य्य-कौशलके लिये हृदयमें और भी प्रतिष्ठा बढ़ती जाती है। अभ्रमिकाम्लको उसके दोनों Enantiomorphous विषम-रूपोंमें परिवर्तन

करनेकी रवे सम्बन्धी एक विधि पहिले ही बतलाई जा चुकी है। यह पासत्यूरके कार्य्य कौशलका दूसरा प्रमाण है कि अभीतक इस विधिमें कोई विशेष अन्तर नहीं आया है हालांकि इसको लगभग ८० वर्ष वीत चुके। इसकी दूसरी विधि भी पासत्यूरके ही कर कमलोंसे विदित हुई। यदि किसी अभ्रमिकाम्लके लवण किसी प्रकाश-भ्रामक क्षारके साथ बनाये जांय तो दो प्रकारके लवण उत्पन्न होंगे क्योंकि अभ्रमिकाम्लमें दो प्रकारके अम्ल हैं। इन दोनों लवणोंकी घुलनशक्तिमें अन्तर पाया गया है। इसी कारण एक लवणके रवे शीघ्र ही घोलसे पृथक् होने लगेंगे और दूसरा घुला रहेगा। इस प्रकार इस विधिसे बहुतसे ऐसे अभ्रामिक पदार्थ जिनका प्रकाश भ्रामक भागोंमें पृथक् करना एक प्रकारसे असम्भव ही था प्रकाश-भ्रामक भागोंमें परिवर्तित किये गये हैं। इस विधिका विशेष प्रयोग एमिल फ़िशरने कर्बोदेतोंके कार्य्यमें तथा लेडेनबर्गने क्षारोदोंके कार्य्यमें बड़ी चतुराईसे किया है। मार्कवाल्डको इस विधिको और उपयोगी तथा सहल बनानेमें काफ़ी सफलता प्राप्त हुई है।

तीसरी विधिजो सबसे अद्भुत तथा महत्वपूर्ण है, पास्त्यूरकी ही निकाली हुई है। यह तो पहिलहीसे विदित था कि खटिक इमलेत Calcium Tartrate वायुमें छोड़ देनेसे कुछ दिनों पश्चात् धुंधला पड़ जाता है और खमीरण Fermentation होने लगता है। पासत्यूरने भी एक रोज़ अपना एक इमलेत घोल इसी प्रकार देखा। यदि कोई और रसायनज्ञ होता तो केवल यह कहकर "ओह, यह प्रयोग बिगड़ गया" घोलको फेंक देता परन्तु पासत्यूरको तो हर प्रकारसे धुन लगी हुई थी, इन बिगड़ी हुई बातोंसे ही तो अनुसन्धान होते हैं। उसने तुरन्त इस घोलको दिग्प्रधान-दर्शकमें रखकर देखा तो बाईं ओरको प्रकाश-भ्रमण हुआ। इस प्रयोगका उसपर क्या सारे वैज्ञानिक जगतपर इतना प्रभाव पड़ाकि उसका वर्णन असम्भव है। यह विदित ही था कि दक्षिण-भ्रामक लवणको कीटाणु शीघ्र ही नाश कर देते हैं। इस लिये पासत्यूरने विचारा कि अभ्रमेतका दक्षिण-भागतो कीटाणुने नाश कर दिया और वाम भ्रामक भाग शेष रह गया है। इस प्रकार अभ्रामिक पदार्थ इस विधिसे भी पृथक् किये जा सकते हैं। इस विधिसे बहुतसे ऐसे पदार्थ पृथक् किये गये हैं और विशेषकर एमिल फ़िशरने इस विधिका प्रयोग किया है। इस विधिसे केवल यहही नहींकि अभ्रामक वस्तुओंको पृथक् करनेकी एक विधि ज्ञात हुई बल्कि इससे शरीर तथा वनस्पति विज्ञानको समझने में विशेष सफलता प्राप्त हुई। क्योंकि इससे विदित हुआ कि प्रकृतिमें भी अधिकतर पदार्थ प्रकाश भ्रामक हो सकते हैं और ऐसा निस्सन्देह पाया गया है कि अधिकतर क्षारोद तथा कर्बोदेत जो पौधोंमें होते हैं प्रकाश भ्रामक हैं। पासत्यूर सर्वदा प्रकृतिके असमसंगतिक स्भावको विचारता रहता था। इस प्रयोगसे इस विचारकी पूर्तिकी एक सीधी साधी कुंजी मिल गई। इक गुणका नाम पासत्यूरने ऐच्छिक खमीरण (Selective Fermentation) रक्खा।

इमलिकाम्ल के सम्बन्धमें केवल यही कार्य्य इस महारथीके कर कमलोंसे नहीं हुआ बल्कि कुछ और भी महत्वपूर्ण बात विदित हुई। यदि दक्षिणक इमलिकाम्ल या उसका सिनकोनीन लवण जलके साथ गरम किया जाय तो एक बड़ा अद्भुत परिवर्तन हो जाता है जिससे कि दक्षिणक इमलिकाम्लका वाम इमलिकाम्लमें बदलना सिद्ध होता है क्योंकि दक्षिणिक इमलिकाम्लके घोलमें कुछ अभ्रमिकाम्ल बन जाता है और यह अभ्रमिकाम्ल बिना वाम इमलिकाम्लके नहीं बन सकता क्योंकि अभ्रमिकाम्ल दक्षिणिक तथा वाम इमलिकाम्लके योगसे बनता है इसलिए इस प्रयोगसे यह सिद्ध हुआ कि दक्षिणक इमलिकाम्ल वाम इमलिकाम्लमें परिवर्तित हो जाता है और सबसे आश्चर्यजनक बात तो यह है कि इसी घोलमें एक ऐसा अम्ल बन जाता है जो न तो प्रकाश भ्रामक ही

और न (Enantiomorphcus) विषमरूपोंमें परिवर्तित हो सकता है अथवा अभ्रमिकाम्लसे भिन्न है। इस प्रकार चार प्रकारके इमलिकाम्ल विदित हुए हैं दो प्रकाश-भ्रामक और दो प्रकाश-भ्रमण न करनेवाले। इस अनुसन्धानका प्रत्यक्ष प्रमाण एमिल फिशरके कर्वोदेतके कार्य्यसे और भी अच्छी तरहसे मिला है। और वास्तवमें इस कार्यकी प्रशंसा करना कमसे कम लेखककी शक्तिके बाहर है। पासत्यूरने सेबिकाम्लकी प्रकाशशक्तिपर भी काफी कार्य किया परन्तु उसमें उसे कोई सफलता प्राप्त न हो सकी क्योंकि उसका सर्वदा यही विचार था कि प्रकाश-भ्रमणका जीवसे अधिक संबन्ध है अथवा जबतक इन रासायनिक प्रक्रियाओंमें जीव भाग नहीं लेता तबतक उनमें प्रकाश-भ्रमण करनेकी शक्ति होना असम्भव है।

खमीरणपर पास्त्यूरका कार्य

सन् १८५४ ई० पासत्यूरके जीवनमें एक महत्व पूर्ण वर्ष है क्योंकि इस वर्ष ३२ वर्षकी आयुमें ही लिली 'विश्वविद्यालयमें वह वैज्ञानिक विभागका अधिष्ठाता नियुक्त किया गया। उसकी इच्छा हुई कि इस जगहपर उसके कार्यका सम्बन्ध लिलीके किसी न किसी व्यवसायसे होना चाहिये। जैसे मद्यका शकरकन्द इत्यादि बनाना। इसी विषयकी खोजमें पासत्यूरका सबसे प्रसिद्ध तथा महत्व-पूर्ण कार्य हुआ। जिस समय इस महान व्यक्तिने यह कार्य आरम्भ किया, उस समयखमीरण प्रक्रियाको समझानेके लिए केवल लीबिगका सिद्धान्त था जब कभी किसी वस्तुका खमीरण होता है तो उस वस्तुके साथ जो कुछ चीजें जैसे यीस्ट (yeast) इत्यादि स्वयं ही विभाजित होने लगती हैं और इस प्रकार उस वस्तुके अणुओंमें जो उनके समीप होती है यह विभाजन आरम्भ हो जाता है और इसी विभाजनका नाम खमीरण है। अर्थात् इस सिद्धान्तमें खमीरणका जीवसे कोई सम्बन्ध नहीं है। परन्तु पासत्यूरका इस प्रक्रियासे मुख्यतः उसके असमसंगतिके अनुसन्धानोंके कारण हुआ। उस समय केलील मद्य प्रकाश-भ्रामक वस्तुओंमें से विदित था और यह वस्तु बहुत सी खमीरण प्रक्रियाओंमें बतौर गौण (By-Product) पदार्थके नहीं थी। लिबिगके सिद्धान्तके अनुसार केलील मद्यकी प्रकाश-भ्रमणशक्ति उस शर्कराकी भ्रमण-शक्तिपर निर्भर होगी जिससे खमीरण किया गया हो। परन्तु पासत्यूरका विचार था कि केलील मद्य-के अणु शर्करासे कोई विशेष सम्बन्ध नहीं रखते। इसलिए शर्कराकी असमसंगतिक शक्तिसे केलील मद्यका कोई सम्बन्ध नहीं हो सकता अथवा शर्कराकी यह शक्ति केलील दशातक पहुँचनेतक नहीं रह सकती क्योंकि उसका यह भी विचार था कि प्रकाश-भ्रामक वस्तुएं कड़ी रासायनिक प्रक्रियाके पश्चात् इस शक्तिको स्थिर नहीं रख सकतीं। दूसरे पासत्यूरके विचारके अनुसार बिना जीवके भाग लिये हुए कोई भी असमसंगतिक पदार्थ नहीं बन सकता। इसलिये वह खमीरण क्रिया जिसमें केलील मद्य बना है जीवसे अवश्य 'सम्बन्ध रखती होगी और केवल साधारण रासायनिक प्रक्रिया नहीं हो सकती।

(क्रमशः)

टिप्पणियां

नागरीकी छपाईमें सुधार । इस विषयमें बहुत-से विशेषज्ञ अपना अपना दिमाग लड़ा रहे हैं। श्री गौरीशंकर सिंहलने स्वराज्यमें लिपिमें सुधारके कई उपयोगी प्रस्ताव किये हैं। आपका मुख्य लक्ष्य यह है कि प्रत्येक ध्वनिके लिये अलग अलग अक्षर होने चाहियें। शब्दतत्वविदोंके अनुसार कमसे कम तीन-सौ विभिन्न ध्वनियां हैं। अत: ३०० अक्षर होने चाहिये। भारतकी ही ध्वनियां लें तो कमसे कम ढाई सौ तो हो ही जायँगे। परन्तु ऐसा हो भी जाय तो भी सिंधीकी कई ध्वनियां हम अनुकृत नहीं कर सकते। बंगलाका अनुकरण परतो बोलनेवालोंको कठिन होगा। मराठीकी अनेक ध्वनियां इधर उत्तरमें कोई नहीं जानता। निदान लिपिकी शिक्षाकी कठिनाई बढ़ जायगी। अँग्रेजीके John को यदि हम "जॉन" लिखें तो अँग्रेजी उच्चारणसे अनभिज्ञ मनुष्य चन्द्राकारकी विशेषता न समझ सकेगा। दिल्ली वालोंके "मैं" और उज्जैनवालोंके "में" का अन्तर व्यक्त करना सहज है- परन्तु "मैं" केही उच्चारणमें दिल्ली और लखनऊ और काशीका अन्तर व्यक्त होनेपर भी अनुकरण काठिन्यके कारण अलग अलग चिह्नोंका होना निरर्थक होगा। हमारी समझमें देव-नागरीकी वर्त्तमान वर्णमाला पर्य्याप्त है, प्रत्येक प्रान्त-वाला अपने उच्चारणकी विशेषताका आरोप मिलते जुलते अक्षरोंमें उसी तरह कर लेगा जिस तरह ह्रस्व और दीर्घ दोनों तरहके उच्चारण एकही चिह्न "ए" और "ओ" में व्यक्त करते हैं और जैसे "ऐ" और "औ" के दो दो उच्चारण हैं और एक एक चिन्हसे ही काम चल जाता है।

श्री विश्वनाथजी शास्त्रीने "अर्जुन" में सिंहल-जीके प्रस्तावका विरोध किया है। श्री मदनलालजी गर्गजीके विचार छपाईमें सुधारके सम्बन्धमें हैं। छपाईमें सौकर्य्य तभी हो सकता है जब चिन्हों-वा अक्षरोंकी संख्या घटायी जाय। आपकी शिका-यत बजा है कि संयुक्ताक्षरोंके कारण नागरी चिन्हों-की पूर्ण संख्या बहुत बढ़ी हुई है। अत: आपने सुधरी हुई लिपिका प्रस्ताव किया है। आपका प्रस्ताव भी व्यवहारिक दृष्टिसे समीचीन नहीं है, यद्यपि उसके विस्तारमें बहुतोंको मतभेद हो सकता है। आप ऐसी लिपि पद्धति चाहते हैं जो कम्पाजिटर और टैपिस्ट दोनोंके सुभीतेकी हो। सिंहलजी और गर्गजी दोनों-को मिलकर ऐसे सुधारका सम्मिलित प्रस्ताव प्रका-शित करना चाहिये जिससे वर्त्तमान लिपिमें इतना परिवर्त्तन न करना पड़े कि हम लोगोंको फिरसे वर्ण-माला पढ़नी पड़े, अथवा अँग्रेजीकी तरह लिखनेके अक्षर और हों और छपनेके और हों। गर्गजीने लैनो-टैप बननेकी कठिनाईकी चर्चाकी है, परन्तु मासिक-विश्वमित्रने तो हमें यह खुशखबरी सुनाई है कि श्री हरिजीगोविलने नागरी लैनोटैपका आविष्कार किया है और भारतके एडीसन डा० शंकर बिसे अभी मौजूद हैं जो हमारी यांत्रिक कठिनाईको फिर भी हल कर सकते हैं।

"विज्ञान" के अंक बहुत कालसे पिछड़े हुए हैं। अनेक कारणोंसे विज्ञानकी छपाईमें देर भी होती रही है और छापेकी भूलें तो भरी रहती हैं। इन दोषोंको दूर करनेका हम पूरा यत्न कर रहे हैं। पिछले अंकसे "विज्ञान" प्राय: समयपर निकल रहा है और छापेकी भूलें भी अब भरसक न रहा करेंगी। विज्ञानकी छपाईमें भी हम सुधार कर रहे हैं।

—रा० गौड़

❀ ❀ ❀ ❀

हवागाड़ीका रोजगार । इधर गत तीस बरसों-में हवागाड़ीका रोजगार इतना बढ़ा कि अब हवा-गाड़ी धनी जीवनकी आवश्यक वस्तुओंमें गिनी जाने लगी है और फोर्ड तो इसकी बदौलत संसारके इने-गिने कुबेरोंमें समझा जाने लगा है। परन्तु हवा-गाड़ियोंकी बदौलत जहां कुछ शिल्पी कुबेर हो गये वहां नक्काल देशोंकी दरिद्रता भी बढ़ी। तुर्कोंके देशमें तो वहांकी अंगोरा सरकारने इस तरह धननाशका अनुभव करके विदेशी गाड़ियोंके आयातपर ऐसा भारी कर लगाया है कि अब वहां बाहरसे बहुत कम

गाड़ियां जाती हैं। भारतमें तो हवा गाड़ियोंकी अव्याहत गति है। कलकत्ता कारपोरेशनने कलकत्तेमें ही एक मोटर लारी तैयार करानेकी कोशिश की है और २७००) में उसका बहुत कुछ अंश तैयार होकर भी धनाभावसे आगेका काम रुका हुआ है। हवा-गाड़ीके व्यापारी मैडेन्सकी राय है कि भारतमें मोटर गाड़ियां जरूर बन सकती हैं परन्तु कुछ कालतक उचित साधनोंके अभावमें बहुत महंगी पड़ेंगी और इस शिल्पको सरकारी प्रोत्साहनका बहुत कालतक मुँह देखना पड़ेगा। विज्ञान सम्बन्धी भविष्यवाद बड़े दुःसाहसका काम है। यह कोई नहीं कह सकता कि कब क्या आविष्कार हो जाय जो वर्त्तमान स्थितिको एकदम पलट दे। सुननेमें आया है कि जापानने एक हवागाड़ी ऐसी बनायी है जिसमें घड़ी-कीसी कमानी है जिसे एक बार कूकनेसे कई मीलकी निर्विघ्न यात्रा हो सकती है। बारंबार कूकना कोई कठिन काम नहीं है। इस तरह पेट्रोलका बहुत बड़ा खर्च बच जायगा। पेट्रोलके रोजगारी तो ऐसी हवा-गाड़ीकी चर्चासे जल उठेंगे। परन्तु विज्ञान तो सदा सौकर्य्यकी ही कोशिशमें रहता है। भारतीयोंको उतावला नहीं होना चाहिये। कोशिश यह होनी चाहिये कि हम यांत्रिक या रासायनिक किसी प्रकार-के साधनके सम्बन्धमें किसी विदेशके मुहताज न रहें। —रा० गौ०

× × ×

सुप्रजनन विज्ञानके प्रयोग। हमारी स्मृतियोंमें सुप्रजनन विज्ञानके ही आधारपर समाजके नियम बनाये गये दीखते हैं और यह बहुत प्राचीन हैं। इनका विकास गृह्यसूत्रोंसे हुआ जान पड़ता है। परन्तु पाश्चात्य देशोंमें तो यह विज्ञान सबसे नया है और विकासवादकी ही एक सन्तान है। इसपर अनेक प्रयोग हुए हैं और हो रहे हैं। प्रायः दस बरसकी बात है कि प्रो० टोलमैनने चूहोंपर कुछ प्रयोग किये। प्रो० ट्रायन अबतक उन्हें जारी रखे हुए हैं। पहले कुछ ऐसे चूहे लाये गये जिनका वंश और इतिहास मालूम था। इनसे विविध गुणोंवाले चूहे पैदा किये गये। आठ पीढ़ियों पीछे प्रो० ट्रायनने देखा कि इन चूहोंके मिश्रणसे ऐसी दो जातियां उत्पन्न हो गयी हैं जिनमें किसी तरहका पारस्परिक साम्य न था—एक अपूर्व प्रतिभावाली थी तो दूसरी निरी बोदी। प्रतिभाशाली वंशके दो विभाग किये गये, एक साधारण और दूसरा असाधारण प्रतिभावाले। इन्हें अलगाकर रखा गया कि मिश्रण न हो सके। इस तरह असाधारण प्रतिभावाली जाति और अधिक प्रखर प्रतिभावाली बन गयी। प्रो० ट्रायनका निष्कर्ष है कि यदि इन नियमोंका पालन मानव समाजमें किया जाय तो नीत्शेके कल्पित महीसुरोंकी उत्पत्ति हो सकती है।

अपने यहांके प्राचीन नियमोंसे जान पड़ता है कि पहले सर्वोत्तम प्रतिभाशाली ऋषियोंकी उत्पत्ति उस समयके सुप्रजनन विद्याके नियमोंसे हुई थी। आर्य्योंके संस्कार और विवाहादिके नियम सुप्रजननके ही नियम हैं। इसी दृष्टिसे ब्राह्मण महीसुर कहे जाते थे।

दस बरसके लगभग हुए अमेरिकाके ही एक जर्म्मन डाक्टरने ऐसा कानून बनवाना चाहा था कि जिन वंशजोंमें वंशगत रोगोंकी संभावना हो उनको विवाह करके सन्तान उत्पन्न करनेकी आज्ञा न दी जाय। वह निर्वीर्य्य कर दिये जायँ। आज जर्म्मनीमें हिटलरने वह कानून बना ही डाला है कि अयोग्य मां बाप निर्वीर्य्य कर दिये जायँ जिसमें देशमें अयोग्य सन्तान उत्पन्न ही न होने पावे।

परन्तु क्या अयोग्यता-निवारणके प्रयोगोंका दिवाला निकल गया? क्या यह सिद्ध हो गया कि आतशकका रोग जड़से दूर नहीं हो सकता? उतावलीमें समाजके लिये एक शासक चाहे जैसे कानून बना दे परन्तु समाज मनुष्योंका है, चूहों या वशमें रहकर आचरण करनेवाले पशुओंका नहीं है। अतः अयोग्योंको स्वाभाविक जातिरक्षावाले नियमोंका पालन न करने देना क्या उनकी वैयक्तिक स्वतंत्रतापर कुठाराघात नहीं है? क्या हम यह नहीं चाहते कि ठोकर खाकर सीखनेकी हमारी स्वतंत्रता हमारे

अधिकारमें रहे ? समाजके लिये नियम बनाकर उसमें बांधनेका अधिकार बहुत बड़ा अधिकार है और वह ब्रह्मा सरीखे शक्तिमान और बुद्धिमानके ही हाथोंमें रहना चाहिये। "संस्कारात्प्रबला जातिः"को हम मानते हैं परन्तु संस्कार क्या अयोग्यताको दूर करनेमें सहायक नहीं होते ? रा० गौ०

औद्योगिक भारत--महीशूर वाणिज्य व्यवसाय संघके सामने व्याख्यान देते हुए सर विश्वेश्वरैय्याने कहा कि "हमारे देशकी प्रकृत औद्योगिक स्थितिका ज्ञान तभी हो सकता है जब इसी दृष्टिसे पहले उसकी व्यापक पड़ताल की जाय और तब उसका पूरा परिशीलन हो। हमारा देश औद्योगिक व्यवसायमें पिछड़ा चला जा रहा है क्योंकि पाश्चात्य देशोंकी तरहका श्रम-कर्म्म-संगठन यहां नहीं होता। कई प्रान्तोंमें तो छोटे मोटे उद्योगोंमें कोई उस विज्ञानके दक्षोंसे कभी सलाह नहीं लेता, वरन अपने पुराने ढंगपर औद्योगिक कारबार चलाये जाता है। फलतः सुसंगठित व्यापारोंकी होड़में न टिककर और उनके बराबर उपजाऊ न सिद्ध होकर यह कारबार बन्द हो जाते हैं। इस तरह धीरे धीरे पुराने कारबार बन्द ही हो गये।" भारतका सूती कपड़ेका अपना उद्योग हमारे देशने इसी ढंगपर खो दिया। और और उद्योग भी हमारी इसी भूलसे विनष्ट हो गये और एक महान उद्योगशील राष्ट्रसे हमारा धीरेधीरे ऐसा पतन हो गया कि खेतीके सिवा हमारे पास कोई काम ही न रह गया।

परन्तु हम अपनी उद्योगशीलता यदि फिरसे लौटा लेना चाहें तो क्या हमको उसी विधिसे काम लेना होगा जिस विधिसे पच्छाहीं राष्ट्र चल रहे हैं? उनकी वर्त्तमान विधि यह है कि वह यंत्रोंके द्वारा थोड़े श्रममें इतनी भारी पैदावार करते हैं जो अपने राष्ट्रके भीतर खप नहीं पाता। इतना अधिक हो जाता है कि और और देशोंके मत्थे मढ़ना पड़ता है। परन्तु सभी देश धीरेधीरे एक दूसरेकी देखादेखी उद्योग शील होते जायँगे और फिर पराये देशोंके उपजकी खपत दिनपर दिन घटती जायगी। कुछ कालमें वह समय आ सकता है कि वही देश विदेशी उपजोंके लिये अपने द्वार बन्द कर दें। इस तरह जब सभी देश स्वावलम्बी हो जायँगे तो अधिक उपज करानेवाले उद्योग आगे न बढ़ सकेंगे और अपने देशको ही अपनी उपजसे आप्यायित करके रुक जायँगे। उपजकी कोई सीमा अगर हो सकती है तो वह खपत है। और खपतकी सीमा बढ़ानेसे कुछ ही बढ़ सकती है, परन्तु उसकी वृद्धि अनन्त नहीं हो सकती। जीवनकी आवश्यकताओंके सम्बन्धमें ही हमने उपर्युक्त आर्थिक विचार प्रकट किये हैं। जो आवश्यकताएँ नहीं हैं परन्तु कृत्रिम रीतिसे आवश्यकताका पद भोग रहे हैं, उन उद्योगोंकी भी ऐसी ही दशा हो सकती है। हां, कुछ ऐसे उद्योग हो सकते हैं जो किसी देशकी विशेषता हैं, जैसे बंगालका पटसन या जूट। परन्तु भविष्यकी बात कोई नहीं जानता। संभव है कि संसारमें और देशोंको उसकी भी जरूरत न रह जाय। अतः देशकी उद्योगशीलताका चरम उद्देश्य उसी देशको आप्यायित करना हो सकता है और भारतकी इस हदतककी उद्योगशीलतामें भी जब विदेशी होड़से उसे हानि पहुँचती रही है तो उसका उपाय यह कदापि नहीं है कि सभी बातोंमें हम पाश्चात्य विधिकी ही नकल करें और उनसे होड़में जीतनेका असंभव प्रयास करें। हमारे उद्योगोंकी रक्षा होनी चाहिये, बाहरकी अनुचित और घातक होड़से हमारी रक्षा शासनयंत्र द्वारा होनी चाहिये। और राष्ट्रकी स्वेच्छा-द्वारा भी होनी चाहिये। इस सिद्धान्तकी रक्षा करते हुए भी कुछ वस्तुओंका देशान्तरोंसे विनिमय होता रहना चाहिये।

रा० गौ०

एक भारतीय आविष्कार—जहां जहां शहरोंमें बिजलीकी रोशनी होती है लोगोंने देखा होगा कि बैसिकिलपर सवार एक आदमी आकर एक यंत्र द्वारा बिजलीकी बत्ती जलाया या बुझाया करता है। इस तरह एक तो सारे शहरकी बत्तियों या लट्टुओंको जलाने और बुझानेके लिये एक दलके दल कर्म्मचारियोंकी आवश्यकता पड़ती है और ठीकठीक निश्चित क्षणपर जलना और बुझना

संभव भी नहीं होता। कलकत्ता कारपोरेशनके बिजलीके इंस्पेक्टर श्री एस० सी० राय चौधरी महोदयने एक अपनेआप चलनेवाली सूचका आविष्कार किया है जिससे कि सभी बत्तियां एक साथ एकही क्षणमें जल उठेंगी और बुझ जायँगी। यह सूच बड़ी सीधी सादी चीज है और नाममात्रके व्ययसे बनायी जा सकती है। कलकत्तेकी कुछ गलियोंमें यह सूच काम कर रही है और आशा है कि सारे शहरमें इसका प्रचार हो जायगा। कलकत्तेके बाद और बड़े शहरोंमें इसके फैलते देर न लगेगी।—रा० गौ०

छः दिनमें भूपरिक्रमा। यूल वर्ण और एच० जी० वेल्स यह दो प्रसिद्ध वैज्ञानिक औपन्यासिक समझे जाते हैं। दोनोंने वैज्ञानिक आविष्कारोंके भावी रूपोंकी कल्पनाके आधारपर कहानियां लिखी हैं। वर्णकी एक कहानी है "अस्सी दिनोंमें भूपरिक्रमा"। यह पुस्तक तब लिखी गयी थी जब इतने थोड़े कालमें यह बात असंभव समझी जाती थी। परन्तु आज विमानोंकी बदौलत वास्तविक जगतमें लोग उस कल्पनासे कहीं आगे बढ़ गये हैं। श्री वैलीपोस्ट एक प्रसिद्ध अमेरिकन उड़ाके हैं। सुना जाता है कि इन्होंने कुल छः दिनोंमें यह परिक्रमा कर डाली है।—रा० गौ०

साहित्य विश्लेषण

स्वास्थ्य और रोग*

डा० त्रिलोकीनाथ वर्म्माकी "हमारे शरीरकी रचना" हिन्दी संसारमें प्रसिद्ध हो चुकी है। डाक्टर महोदयको उस उत्तम पुस्तकके लिये मंगलाप्रसाद पारितोषिक भी मिल चुका है। निदान हिन्दी संसार डा० वर्म्मा और उनकी पूर्वकृतिसे पूर्णतया परिचित है। "स्वास्थ्य और रोग" नामक ग्रंथ भी उन्हीं यशस्वी विद्वानकी रचना है।

जैसा कि नामसे प्रकट है स्वास्थ्य और रोगका इसमें पूर्ण विवेचन है। बड़े विस्तारसे विचार है और भरसक इन दोनों विषयोंका कोई पहलू जिसकी हमारे देशके लिये बड़ी आवश्यकता है इन लगभग एक हजार पृष्ठोंकी पोथीमें छूटा नहीं दीखता। स्वास्थ्यके विषयका जितना विस्तार है उतना ही इस अर्थमें रोगविषयका विस्तार नहीं है कि न तो सब रोगोंका क्रमिक वर्णन है और न उनकी चिकित्सा सम्बन्धी विस्तृत विवेचना है। इस बातकी आवश्यकता भी न थी, क्योंकि इसका मुख्य विषय स्वास्थ्य है और उसकी हानिसे जो कुछ परिणाम होते हैं उनका विशद वर्णन है। चिकित्सा ग्रंथ तो यह है नहीं।

परन्तु स्वास्थ्यके नामसे कोई ऐसा न समझे कि बाजारमें स्वास्थ्य रक्षापर तो कोड़ियों पुस्तकें छोटी बड़ी हिन्दीमें मिल सकती हैं फिर एक हजार पृष्ठ इस विषयके विस्तारमें रंगनेकी क्या आवश्यकता थी। ऐसी पोथियां प्रायः मेरी देखी हुई हैं और यह मैं मुक्त कंठसे कह सकता हूँ कि जितनी स्वतन्त्रता और विवेकसे विषयके हर पहलूपर इसमें विचार हुआ है किसी छोटे ग्रंथमें न है और न हो सकना संभव है।

इस ग्रंथका आरंभ विकासवादके आधारपर हुआ है। पहले मनुष्यकी स्थितिपर विचार किया गया है। फिर जीवन-संग्रामकी विस्तृत चर्चा है। जीवनका उद्देश्य आत्मरक्षा और जातिरक्षा दिखलाकर मानव जातिकी परिस्थितिपर विचार किया गया है। फिर भोजन, पान, सांस, पोशाक व्यायाम और मैथुनपर विस्तारसे विचार हुआ है। इन सबके अन्तर्गत बाहरी और भीतरी, निज और आगंतुज सभी तरहके रोगोंके कारणोंपर विस्तृत विचार है। रोगाणुओंके कारण कैसी कैसी भयानक अवस्था उत्पन्न होती है और इन रोगाणुओंको कौन कौनसे प्राणी मनुष्यके शरीरमें किस किस प्रकार पहुँचाते हैं और किननिक

* लेखक और प्रकाशक डा० त्रिलोकीनाथ वर्म्मा, B. Sc., M. B., B. S, D. T. M., L M., F. R. F. P. S. इत्यादि, सिविल सर्जन, जौनपुर। ४०७ चित्र। पृष्ठ ८६६+४०=९३६। जिल्द मजबूत और सुन्दर। मूल्य ७)। यह पुस्तक साहित्य भवन लिमिटेड प्रयागसे भी मिल सकती है।

गंदगियोंसे मनुष्य स्वयं इन भयानक परन्तु सूक्ष्म प्राणियोंको अपने शरीरमें आश्रय देता और आत्मघात करता है और फिर इनसे आत्मरक्षा और जातिरक्षाके लिये क्या क्या उपाय कर सकता है, किस किस तरहका रहन-सहन स्वास्थ्यकेलिये विघातक है और किन-किन सुधारोंसे रोगोंसे बचना संभव है इन विषयोंका पर्य्याप्त विस्तार है। यद्यपि यह चिकित्सा ग्रंथ नहीं है, तथापि चिकित्साका संक्षिप्त वर्णन है और उसके प्रकारपर भी प्रकाश डाला गया है। परन्तु सबसे महत्वकी चीज है रोगक्षमता और रोगनाशक शक्तिका शरीरमें होना जिसके लिये भोजनादिपर बहुत ही नियमित रोचक और विस्तृत वर्णन है जिससे समझदार पाठक ऐसा सुधार अपने जीवनमें कर सकता है कि वह अपनेको अधिक स्वस्थ, सुखी और दीर्घायु बना ले।

मनुष्य कैसे गरमी सोजाक आदि मोल लाता है कैसे क्षयका शिकार हो जाता है। इसके चित्रबड़े ही शिक्षाप्रद हैं। सेवासमिति वालोंको चाहिये कि ऐसे ऐसे चित्र दिखाकर प्रचार करावें और शिक्षासंस्थाओं को चाहिये कि इस ग्रंथका जी खोलकर प्रचार करें।

विषयका प्रतिपादन ठीकठीक राष्ट्रीय दृष्टिसे हुआ है। हिन्दू मुसलमानोंके ही रहन सहनपर और हिन्दुस्तानी ही बस्तियोंपर सचित्र सोदाहरण निर्भीक विचार हैं। लखनऊ शहरके अन्दर हलवाइयों और खोंचेवालों और उनके खरीदारोंकी ही दशाका सचित्र उदाहरण लेकर आपने यह दिखलाया है कि भारतके अच्छेसे अच्छे शहरोंकी हालत कैसी है। आपकी कसौटीपर कसनेसे भारतकी एक भी बस्ती ऐसी न निकलेगी जिसे दोषपूर्ण न कह सकें। फल तो स्पष्ट है कि भारतकी आबादी उसी रेटसे नहीं बढ़ती जिस रेटसे अच्छे अच्छे सभ्य देशोंकी बढ़ती रहती है। बल्कि प्लेग, हैजा, इंफ्लुएंजा, चेचक आदि वबाओंके होते भी कम ही क्षय होता है, क्योंकि प्रकृति स्वयं रक्षा करनेके लिये हमारे शरीरोंमें रोगक्षमता उत्पन्नकर देती है। आपजो आदर्श सफाई चाहते हैं यदि हम वैसा करना भी चाहें तो अनेक अंशोंमें हमारी दरिद्रता बाधा डालती है। जो बस्तियां बन चुकी हैं, उन्हें तोड़कर नयी बसाना तो सहज नहीं है। शहरोंमें जहां स्थान-संकोच रहता है सकरी गलियां तो हैं ही परन्तु देहातोंमें जहां जगहकी कमी नहीं है अक्सर सकरी गलियां हैं। क्या देहात क्या शहर जगह जगह थूकते, कूड़ा फेंकते, गंदगी करते रहनेकी जो आम आदतें हैं उन्हें छुड़ाना क्या सहल है? जनता तो ठीक रीतिसे आबदस्त लेना और हाथ धोना भी नहीं जानती। सुधारक समुदाय शिक्षाके पीछे हाथ धोकर पड़ा है परन्तु वह कौनसी शिक्षा? अक्षर-ज्ञान। परन्तु वास्तवमें अक्षर-ज्ञानकी शिक्षाकी हमें आज उतनी जरूरत नहीं है जितनी सफाईकी शिक्षाकी। यही बात है कि ग्रामसुधारका पहला और मुख्य अङ्ग सफाईही सर्व-सम्मत है।

यह भी बात नहीं है कि गंदगी दरिद्र जनतामें ही सीमितहो। भारतके धनवान भी कुशिक्षा वा उचित शिक्षाके अभावमें साधनके होते भी गन्दे रहते हैं। उनकी बुद्धिमें सफाई केवल बाहरी शोभा और तमाशे की चीज है। यह दुर्बुद्धि उनमें विदेशियोंके अन्धानुकरणसे ही आयी। यहां सच्ची शिक्षाका अभाव ही कारण है। जिस दरिद्रके पास बदलनेको कपड़ा नहीं है वह बेचारा साबुन तो क्या साधारण जलसे भी अपने बदनका कपड़ा धो नहीं सकता। इस तरहके दरिद्र थोड़े नहीं हैं और यही मिलजुलकर हमारी बस्तियोंकी परिस्थिति बनाते हैं। जब परिस्थिति गन्दी है तो व्यक्तिकी सफाई पूरी न हुई। परन्तु समझदार व्यक्तिको अपनी सफाईके साथ साथ परिस्थितिकी सफाईके लिये यत्नवान होना ही चाहिये। ग्रन्थकारके विचार इस पक्षमें बिलकुल सही हैं।

रोगके फैलनेके कारण और बचनेके उपाय जिस विस्तारसे दिये हैं उसके प्रचारसे बड़ा उपकार हो सकता है और हमारे दरिद्र देशमें जिसकी सिर पीछे दैनिक आमदनी सात पैसेसे भी कम है और जिसमें अपने नामकी सही कर सकनेवाले सौमें सात आदमियोंसे भी कम हैं, सात रुपयेकी ऐसी उपयोगी पुस्तकको पढ़

कर लाभ उठा सकनेवाले सात सात हजार आदमियों पीछे सात सात आदमी भी इसके ग्राहक मिल सकें तो इस पुस्तकका प्रयोजन बहुत कुछ सिद्ध हो जाय और प्रकाशकको शीघ्रही नया संस्करण और दूसरा भाग भी निकालनेकी जरूरत पड़ जाय। परन्तु बड़े खेदकी बात है कि हमारी दरिद्रता इतने थोड़े प्रचारके भी अनुकूल नहीं है।

हमारे देशकी वर्त्तमान दरिद्रता, पराधीनता और ह्रासके अनेक कारणोंमेंसे मुख्य कारण देशका अस्वास्थ्यकार ढंगपर रहनसहन है? यह ग्रंथकारका मत है और उससे हमारे जैसे अनेक लोग सहमत होंगे। और "धर्म्मार्थकाममोक्षाणामारोग्यं मूलकारणम्" ऐसा हमारे शास्त्रोंका कथन भी उनका समर्थक है, यद्यपि डा० वर्म्मा हमारे प्राचीन साहित्य और संस्कृतिसे कुछ नाखुशसे ही दीखते हैं। उन्होंने ऐसा अच्छा उपयोगी ग्रंथ रत्न लिखकर भी कई विवादास्पद और प्रसंगसे बाहरकी बातें आरम्भमें लिखकर उसकी उपयोगिता और अच्छाईमें बट्टा लगा दिया है। ईश्वरवादका बिना खंडन वा निन्दा किये उनका काम चल सकता था। संकटमें पड़े हुए मनुष्यको ईश्वरकी प्रार्थना बहुत बड़ी सान्त्वना देती है और श्रद्धा विश्वास मनुष्यको पशुत्वसे उठाकर देवत्वको पहुँचा देता है। विज्ञानने परमात्माकी सत्ता अभी सिद्ध कर पायी हो या न कर पायी हो, किसी सुदूर भविष्यमें सिद्ध कर सके वा न कर सके, पर ईश्वरका विश्वास और परलोकका भय बहुधा कष्टको कम कर देता है और दुराचारसे रोकनेका साधन हो जाता है। इसमें दो मत नहीं हो सकते। ग्रंथकारने चित्र देकर दिखाना चाहा है कि मजहब और ईश्वरको माननेसे ही हिन्दू मुसलिम दंडमुंड-सम्मेलन हुआ करता है, मन्दिर और मसजिद ही इसका प्रधान कारण है। परन्तु डा० वर्म्माने तर्ककी भूल की है। उन्होंने जो दोष ईश्वरवादको लगाया है वह वस्तुतः ईश्वरवादका अपराध नहीं है। वह साम्प्रदायिकताके कारण है जो एकेश्वरवादका व्यावहारिक खंडन है।

कोई मजहब या धर्म्म पारस्परिक कलह, गन्दगी, कपट या स्वार्थ नहीं सिखाता। स्वार्थी, कपटी, कलही और गन्दे लोग मजहबकी आड़ लेकर उपद्रव करते हैं। अगर पुलीसकी वर्दी पहनकर कोई डाका डाले, तो क्या पुलीस विभाग ही दूषित समझा जाना चाहिये? हिन्दू मुसलमान दोनों मजहबोंमें अहिंसा, सत्य, आर्जव, क्षमा आदि सद्‌गुण समझे जाते हैं। शौचाचारको मुख्य स्थान दिया जाता है। परन्तु मोहवश इन सद्‌गुणोंका ठीक प्रयोग और सदाचारका ठीक तत्व न समझकर मनुष्य अनेक उपद्रव खड़े करता रहता है। जो लोग ईश्वरमें आस्था नहीं रखते वे भी सदाचारके इन गुणोंको सबसे आगे रखते हैं। आस्तिक और नास्तिकमें इस विषयमें यह अन्तर है कि आस्तिक परलोक और ईश्वरका भय मानकर प्रायः अपनी दुर्वासनाओंको रोकता है और औचित्य पर बिना विचार किये भी सत्पथ ग्रहण करता है। परन्तु नास्तिकको ऐसा कोई भय नहीं है। यदि उसमें औचित्यका विचार और चरित्रबल नहीं है तो कदाचारमें वह निरंकुश होगा, इससे कोई इनकार नहीं कर सकता। औचित्यका विचार और चरित्रबल जो दुर्वासनाओंपर प्रबल हो जाय कितने मनुष्योंमें है? काम क्रोध लोभ इतने प्रबल मनोविकार हैं, कि पुलीस, सेना, प्राणोंकी भीति और भावी यातनाएँ अपना अपना अंकुश लिये रह जाती हैं और आतशकका रोग, हत्या, और धनापहरणके पापसे औचित्यके विचार और चरित्रबलकी डींग हांकनेवाले भी नहीं बच सकते। विश्वामित्र जैसे चरित्रवान और विचारशील तपस्वी काम और क्रोधसे और बेकन जैसे न्याय-मूर्त्ति लोभसे बच नहीं सकते। इसलिये यदि हम थोड़ी देरके लिये यह मान भी लें कि ईश्वर और परलोककी वास्तविक सत्ता कुछ नहीं है तो भी इन तथोक्त परिकल्पनाओंको सत्यमाननेसे मानवजातिको सुधारनेमें बड़ी सहायता मिलती है और इनके तथोक्त कल्पित भयसे वस्तुतः कोई हानि नहीं है। ईश्वर और परलोक वास्तवमें हैं या नहीं हैं, इसपर चार्वाकसे लेकर उत्तर मीमांसातक छः नास्तिक और छः आस्तिक मिलकर बारह दर्शन भारतीय हैं।

पाश्चात्यकी चर्चा हम यहाँ छोड़ देते हैं। क्या ऐसे गहन विषयको "स्वास्थ्य और रोग" नामक ग्रंथमें सरसरी तौरपर छेड़कर और उसपर उतावलेपनसे अपने निष्कर्ष दे देना उचित था ? मेरी समझमें यह सरासर अनुचित हुआ है। एक तो मजहबकी चर्चा ही इस ग्रंथमें अप्रासंगिक हुई। दूसरे सम्प्रदायवादकी बुराइयां यदि बिना नास्तिकतापर जोर दिये कह भी दी जातीं तो उनका कोई अनिष्ट परिणाम नहीं हो सकता। तीसरे स्वास्थ्य और रोग विषयकी चर्चा जिन पाठकोंके अनुशीलनमें आवेगी, क्या सभी नास्तिकता या आस्तिकताके ऊँचे दार्शनिक विचार के पात्र या अधिकारी हैं ? कदापि नहीं। साधारण कोटिके पाठक तो मङ्गलाप्रसाद-पारितोषिक प्राप्त विद्वान् और डाक्टरकी बातोंमें आस्था रखनेवाले होंगे। उनके मनमें यदि दृढ़ आस्तिकता न हुई तो बुद्धिभेद उत्पन्न हो जायगा और बहुतेरे मार्गच्युत हो जायँगे।

ईश्वर और परलोकका भय न रहनेसे जो दुर्वासनाएँ कि पुलिस, समाज आदिसे छिपकर पूरी हो सकती हैं उनमें उन्हें तनिक हिचकिचाहट न रह जायगी। इस ग्रंथमें यह अप्रासंगिक विषय न आता तो कोई हानि न थी। ईश्वरके सम्बन्धमें डाक्टरसे पूछनेकी कोई जरूरत भी नहीं समझता।

आस्तिकताके विरोधके सिवा नीतिके सम्बन्धमें आपके कई कथन निर्विवाद नहीं हैं।

"हर तरह पर बल बढ़ाना हर एक समझदार मनुष्यका कर्त्तव्य है।" पृष्ठ १९। इस विषयमें किसीको इनकार नहीं हो सकता। हमारे हिन्दू विज्ञानमें तो शिक्षा है कि निर्बल अपनेको खो देता है और बिना बलके उसे फिर पा नहीं सकता और अपनेको खो देनेसे बढ़कर और क्या हानि है ? परन्तु यह कहना कि कर्म्मोंका फल या दंड देनेवाला कोई नहीं' बहुत भयानक कथन है, निरंकुशताका प्रवर्त्तक है और अत्यन्त भ्रामक और असत्य है, क्योंकि प्रकृतिके नियम अवश्य फल और दंड देते हैं। वाक्य तर्कसंगत नहीं है। आप कहते हैं कि (पृ०७८) "बलही सत्य है वैसे तो अक्सर सत्यमें भी बल होता है।" यह यूरोपकी राजनीतिका सूत्र है और वहां भी विवादास्पद है। भारतकी संस्कृति तो बल और सत्यको अपने अपने स्थानमें ही ठीक मानती है। "नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः" और "सत्यान्नास्ति परोधर्म्मः" भाव यह कि बल एक व्यक्तिगत भूति है और सत्य आचरण करनेकी वस्तु है। विज्ञानकी दृष्टिसे यदि बल उसे कहें जिसमें आचरणकी क्षमता हो तो सत्यमें आचरणकी जितनी क्षमता है उतनी असत्यमें कहीं नहीं है, बल्कि बिजली सत्य इसीलिये है कि वह अपनी कार्य्यक्षमतासे अपनेको प्रकट करती है, शक्ति इसीलिये सत्य है कि वह अपनी कार्य्यक्षमतासे ही अपना प्रतिपादन करती है। बलकी सत्यता उसकी कार्य्यक्षमतामें है। सत्य ही बलकी कसौटी है। अतः यह कह कर कि वैसे तो अक्सर सत्यमें भी बल होता है" डाक्टर साहब मानों सत्यके साथ बड़ी रिआयत करते हैं। कहना तो यह चाहिये था कि सत्य ही बल है क्योंकि अन्तमें सत्यकी ही जीत होती है। सत्यमेव जयते नानृतम्।" ईश्वरको न मानना और बात है, परन्तु सत्यकी बलवत्ता और अजेयताको तो घोरसे घोर नास्तिक भी स्वीकार करता है, यदि वह एकदम अनीतिवादी या घोर जड़वादी नहीं है।

परन्तु "स्वास्थ्य और रोग"में नास्तिकता, आस्तिकता, नीतिवाद या जड़वादका प्रसंग ही असंगत है। यदि यह ग्रंथ विशेष रूपसे मानस रोगोंपर होता, अथवा अभिनव मनोविश्लेषण इसका विचार्य्य विषय होता तो इन विषयोंकी चर्चा सुसंगत होती। इसके बदले हिन्दू शौचाचारकी चर्चा आजकलकी हमारी गन्दगीके साथ होनी चाहिये थी। उसके नियम विशुद्ध वैज्ञानिक, अत्यंत उपयोगी और वर्णनीय हैं। स्वास्थ्य और रोगके संबन्धमें आज कलका अशौच दिखाते हुए प्राचीन शौचाचारका वर्णन न होना हिन्दू संस्कृतिके साथ सरासर अन्याय है।

इस ग्रंथमेंसे यह अप्रासंगिकता निकाल दी जाय तो कोई कमी नहीं आती। इन विवादास्पद विषयोंको रखनेसे पुस्तकके सम्पूर्ण विषयकी

निर्विवादता नष्ट हो जाती है और पाठकोंकी नैतिक हानि होती है।

इस ग्रंथकी भाषामें कहीं कहीं दोष हैं। त्रुटियोंके लिये ग्रंथकारने भूमिकामें क्षमा मांगी है, सही, परन्तु वह तो दस्तूर सा हो गया है। लिंग और मुहावरोंकी कुछ भूलें उपेक्षणीय नहीं कही जा सकतीं। (पृ० १९७) नाकों चने "चबादे"की जगह "चबवा दे" और (पृ० ७१) "फ़ाके नोश" की जगह "फाका-कश" चाहिए। (पृ० ६८) "मात्रा धारण करता है।" 'करती' है चाहिये पृ० ८३) "जोखू" अशुद्ध है "जोखों" चाहिए (पृ० ८९) "अकस्मातिक' की जगह "आकस्मिक" चाहिये। (पृ० ३२०) "कीटाणु जनक रोगों से भिन्न आदि प्राणि जनक रोग हैं" इस वाक्यमें लेखकका तात्पर्य्य है "जनित" से, "जनक"से नहीं, यद्यपि इन रोगोंको "कीटाणु जनक" और "आदिप्राणि जनक" भी कहना विज्ञानतः असंगत नहीं है। (पृ० २२८ और ८१२) "आननफाननमें" यहां "में" अशुद्ध एवं व्यर्थ है।

भाषाके दोष प्रामाणिक पुस्तकोंमें जहां विषयके समझनेमें प्रमाद उत्पन्न करते हैं वहां कदापि क्षम्य नहीं हैं। जैसे पृष्ठ ९९पर एक वाक्य इस प्रकार है—

"भयानक रोग, विशेषकर छूतके रोग, लगभग सभी जीवाणुओं द्वारा उत्पन्न होते हैं।"

इसका साधारण पाठक क्या अर्थ समझेगा? "लगभग सभी जीवाणुओंद्वारा भयानक रोग उत्पन्न होते हैं।" परन्तु जीवाणुओंके तो अनन्त प्रकार हैं। क्या ९९ प्रतिशत जीवाणु भयानक रोग ही पैदा करते हैं? यह तो वैज्ञानिक तथ्यसे नितान्त विपरीत है। परन्तु साधारण पाठक इस वाक्यसे यही अर्थ लगाकर अनर्थ करेगा। "सभी" के बाद एक कामा होता तो यह भ्रम न उत्पन्न होता, यद्यपि वाक्य फिर भी असुन्दर होता। उसे होना चाहिये इस प्रकार—

"भयानक रोग, विशेष कर छूतके लगभग सभी रोग, जीवाणुओंद्वारा उत्पन्न होते हैं।"

पृ० २२८ पर लिखा है। "पेशाब उतारने के लिए गुर्दोंपर चोकरकी पोटलीका सेंक करो।" यहां "गुर्दों" बहु बचन होनेसे विज्ञ पाठक समझ सकता है कि "गुर्दे" के रेफके उड़ जानेसे यह खराबी पैदा हुई है, परन्तु एक साधारण पाठक बिना विचारे मलद्वारपर सेंक करके रोगीको हानि पहुँचा सकता है। परन्तु यह प्रमाद प्रेसके प्रेतने पैदा किया है।

सौभाग्यवश इस तरहके भ्रामक वाक्य एक हजार पृष्ठोंमें बहुत नहीं हैं। ऐसे उपादेय ग्रंथमें ऐसे दो चार वाक्योंका होना उसकी निर्दोषताका ही सूचक है। छापेकी भूलें मात्राओंके टूट जानेसे भी अनेक हैं, परन्तु इनसे समझदार पाठक प्रायः धोखेमें नहीं पड़ता।

पुस्तकके अन्तमें शब्दकोष है जिसमें अँग्रेजी पर्य्याय देकर भाषाको सुबोध बनानेका विशेष यत्न किया गया है। तो भी आदिसे अन्ततक दुर्बोधता-का नाम नहीं है। शैली सुबोध है, स्वाभाविक और जोरदार भाषा है, सच कहनेमें ग्रंथकार जरा भी नहीं झिझका है। गन्दी आदतोंकी शाब्दिक तस्वीर खींच दी है और तस्वीरें भी बड़ी शिक्षाप्रद जीती जागती हैं। डाक्टर वर्म्मा इस पुस्तकमें बड़े अच्छे और उच्च कोटिके देशके सुधारक और पक्के राष्ट्रवादी दिखाई देते हैं। पुस्तक अत्यन्त उपयोगी और उपादेय है। यदि हर आदमीके नहीं तो हर सुधारकके हाथों-में तो अवश्य होनी चाहिये। छपाई सफाई सभी उत्तम है। चित्रोंके बाहुल्यके कारण उत्तम चिकने दबीज कागजपर सारी किताब छपी है। जिल्द मज-बूत है। ७) को ऐसी बढ़िया पुस्तक बहुत सस्ती है, महँगी नहीं है।　　　　—रामदास गौड़

———

सहयोगी विज्ञान

१—व्याकरणका सुधार । [हमने अपने पिछले बृषांकमें हिन्दी प्रचारकके दशाब्दि अङ्कसे इस विषयका प्रोफेसर जम्बुनाथनका लेख उद्धृत करते हुए अपनी विस्तृत टिप्पणियोंमें दो बातें तो स्पष्ट ही कर दी थीं । एक तो यह कि हिन्दीभाषी करोड़ों आदमियोंपर अपने बनाये नये नियम आप अभी नहीं लाद सकते और दूसरे यह कि अन्य प्रान्तवासी सुभीतेके नियम बनाकर उन्हें प्रयोगकी कसौटीपर कसें। जब खरे उतरेंगे तब आपही धीरे धीरे अपना लिये जायँगे । प्रो० जम्बुनाथनने शायद विज्ञानका वह अङ्क नहीं देखा । उन्होंने प्रचारकके जुलाईके अङ्कमें आक्षेपोंपर विचार करते हुए हमारे स्वाभाविक प्रस्तावोंपर ध्यान नहीं दिया । उनके लेखके साथ ही हमारे ही मतका सर्वथा पोषक काका कालेलकरका मत छपा है । वह सभी प्रान्तोंके लिये विचारणीय है और सर्वथा वैज्ञानिक है । पाठकोंके लिये उसे हम यहाँ उद्धृत करते हैं । रा० गौड़]

"हिन्दी राष्ट्र भाषा है, उसका मुख्य कारण करोड़ों भारतवासियोंकी आज वह जन्म-भाषा है। उनका अधिकार हिन्दीपर अधिक है। उन्होंने सदियोंसे उस भाषाकी सेवा भी की है। सेवाके नाते ही उनका अधिकार उसपर अबाधित है। उनके व्याकरणमें हम दक्षिणके लोग मनमाने हस्तक्षेप नहीं कर सकते। हिन्दी राष्ट्र-भाषा तभी हो सकती है जब दक्षिणके लोग उसको स्वीकार करें। इसलिये दक्षिणके लोग हिन्दीके व्याकरणकी सरलता अवश्य मांग सकते हैं। ऐसी हालतमें, जो कुछ सरलता हम चाहते हैं, वह विकल्प (ऐच्छिक) रूपसे ही हमें मांगनी चाहिये। उत्तरके करोड़ों हिन्दी-भाषा-भाषी आपके सुभीतेके लिये अपने मुहावरोंको न छोड़ेंगे। आप दक्षिणी मुहावरोंकी आदतसे हिन्दीमें जितनी भूलें करेंगे, उनमेंसे, एक नियम ढूँढकर, उसके अनुसार आपकी भूलें, भूलें न गिनी जायँ, लेकिन मुहावरोंका एक विकल्प गिना जाय। इतनी ही आशा आप रख सकते हैं। मैं उत्तर दक्षिणके बीचमें रहनेवाला हूँ। मेरा यह निर्णय तटस्थ भावसे दिया हुआ है।

हिन्दीव्याकरण और मुहावरोंमें जो परिवर्तन आप पेश करेंगे, वह अगर सरल हो, तो उत्तरीय लोगोंको भी वह अधिक पसन्द आयेगा और उसीका राज चलेगा। रोमन साम्राज्यमें रोमन लोगोंको अपने कानूनोंका बड़ा अभिमान था। जब उन्होंने बहुतसे देश जीते, तब उन उन देशोंके रस्मोरिवाजके अनुसार नये नये कानून बनाने पड़े। शुरू शुरूमें रोमन कानून श्रेष्ठ या आर्य गिने जाते थे, अन्य देशोंके कानून अनार्य, प्राकृत या हीन गिने जाते थे। लेकिन समयके प्रभावसे नतीजा यह हुआ कि अनेक राष्ट्रोंके लिये जो सामान्य कानून बनाये गये वे ही अधिक सरल, न्यायपूर्ण और बुद्धि-युक्त बन गये। उनके सामने असली रोमन कानून संकुचित और एक देशीय दीख पड़ने लगे। उनका प्रभाव कम हुआ।

अगर हम दक्षिणके लोग हिन्दीकी सेवा प्राणपणसे करेंगे, उसका व्याकरण अधिक सरल, अधिक तर्क शुद्ध बनायँगे, तो जो आज हमारी भूल क्षम्य गिनी जाती है, वही कल गौण, विकल्प, गिनी जायगी और परसों यही विकल्प अपनी योग्यतासे प्रधान विकल्प बन जायगा और अन्तमें असली हिन्दी मुहावरे कालग्रस्त हो जायँगे।

दक्षिणकी ओरसे जितने विकल्प या अपवाद सूचित किये जायँ, वे सब समंजस (उचित), सरल और थोड़े हों। हिन्दी और दक्षिणी, दोनों भाषाओंसे सुपरिचित प्रजा-सेवकोंद्वारा ही वे सूचित हों और हिन्दी भाषाके स्वाभाविक प्रवाहसे वे विसंवादी (विरोधी) न हों। इतना होनेपर उत्तरके हिन्दीभाषीजन आसानीसे उन्हें स्वीकार कर सकेंगे।

इतना होनेपर भी काम पूरा न होगा। दक्षिण भारतमें प्रभावशाली हिन्दी लेखक अब पैदा करना ही चाहिये। भाषामें जबर्दस्तका ही राज्य चलता है। एक फ्रेंच लेखकने शिष्ट फ्रेंच भाषामें न लिखनेका प्रण लिया। फ्रांसके किसी देहातमें रहकर वहींकी

भाषामें वह आग्रहपूर्वक लिखने लगा, लेकिन उसका साहित्य इतना भावपूर्ण और तेजस्वी था कि अन्तमें उसे "नोबल प्राइज़" (नोबल पुरस्कार) मिला। अब उसके मुहावरे फ्रेंच भाषामें शिष्ट गिने जाते हैं।

टागोरको बँगला भाषामें पूर्व-बंगालके मुहावरोंकी भरमार है। अब उसे अशिष्ट कौन कहे? गान्धीजीकी गुजरातीमें काठियावाड़ी शब्द प्रयोग मनमाने आते हैं। अब उन्हींकी चलती है। दक्षिण भारतके साहित्य-वीर अगर हिन्दीका दिग्विजय करना चाहें, तो कर सकते हैं।

लेकिन, आजसे हिन्दी व्याकरणमें आमूलाग्र-परिवर्तन करनेका साहस नहीं करना चाहिये। "चंचु-प्रवेशे मुसलप्रवेशः।"

जब फ्रेंच भाषाकी प्रतिष्ठा यूरोपके अन्य देशोंमें बढ़ी और उन देशोंमें फ्रेंच भाषाकी परीक्षाएँ भी होने लगीं, तब वहांके लोगोंके सुभीतेके लिये फ्रांसकी विद्वत्परिषद्ने अपने व्याकरणके नियम आसान कर दिये। उसमेंभी विकल्पकी नीति ही रखी गयी थी।

मैं समझता हूँ कि हिन्दी व्याकरण और भाषाकी सरलताके बारेमें उत्तर भारतपर चढ़ाई करनेके पहले दक्षिणमें उत्तर भाषाभिज्ञ और भाषाव्यवहारके उत्तम ज्ञाता लोगोंको मिलकर कुछ प्रस्ताव तैयार करने चाहिये और फिर बिनतीके रूपमें वे उत्तरकी "हिन्दी विद्वत् परिषद" के पास भेजने चाहिये और जितने प्रस्ताव हम पेशकरें वे सब युक्ति-युक्त हैं यह भी आसानीसे सिद्ध हो, कमसे कम हमारे परिवर्तन कर्णकटु तो न हों, इतना तो अवश्य देखना चाहिये।"

२—**लहसुन**—स्मृतियोंने लहसुन प्याज शूद्रोंद्वारा ग्राह्य बताया है। द्विजोंके लिये त्याज्य है। इनके नामोंमें एक नाम यवनेष्ट है, जिसका अर्थ है, यवनोंका इष्ट। परन्तु आयुर्वेदके निघंटु ग्रन्थोंमें इसकी बड़ी प्रशंसा है। अम्लरसके अभावसे यह पंचरस युक्त ओषधि "रसोन" भी कहलाती है। इसे पुष्टिकारक, शुक्रवर्धक, स्निग्ध, उष्णवीर्य्य, पाचक, सारक, कटु मधुर रस, कटु विपाक, तीक्ष्णवीर्य्य, भग्नसन्धान कारक, कंठशोधक, गुरु, पित्त और रक्त वर्धक, बलकारक, वर्णप्रसादक, मेधाजनक, नेत्रोंको हितकारी और रसायन बतलाया गया है। हृद्रोग, जीर्णज्वर, कुक्षिशूल, मलविबन्ध, गुल्म, अरुचि कास, शोथ, बवासीर, कुष्ठ, अग्निमांद्य, कृमि, वात, श्वास और कफवाले रोगोंमें देते हैं। लहसुन खानेवालोंको मद्य, मांस और खटाई हितकर है, और उन्हें व्यायाम, क्रोध, धूप, अधिक जल, अधिक दूध, अधिक गुड़ हानिकर होता है। यह तो प्राचीन शास्त्रोंकी बात हुई। "जागरणमें २८ अगस्तके अंकमें स्वामी सत्यदेवजी परिव्राजकने लहसुनपर एक उपयोगी लेख दिया है जिसका आवश्यक अंश यहां उद्धृत है।

"अब मैं लहसुनके लाभोंका जिक्र करता हूँ। मैं इस नतीजे पर पहुँचा हूँ, कि यह कायाकल्प करनेवाली वस्तु है। यदि किसीके शरीरमें किसी प्रकार विषैले पदार्थोंका प्रवेश हो गया हो, अथवा चर्म-रोग या खून बिगड़ गया हो, तो लहसुनका सेवन करनेसे कायाका नया जन्म हो जाता है, परन्तु वह उसी अवस्थामें, जबकि बीमार इसे इस दर्जेतक सेवन करे कि शरीरके प्रत्येक रन्ध्रमेंसे उसकी गन्ध आने लगे और वह सारे शरीरमें व्यापक हो जाय। पेटके कीड़ोंको मारनेके लिये लहसुन राम-बाणका काम देता है। जिन दिनों इसका सेवन किया जाय, उन दिनों मुनक्का अथवा शहदके साथ दिनमें तीन बार लहसुनका प्रयोग करना चाहिए। लहसुनको जब हम काटते हैं, तो उसकी बीसबाईस गिरियाँ अलग-अलग हो जाती हैं। उन्हें छीलकर पाँच गिरी प्रत्येक बार छोटे-छोटे टुकड़ोंमें काटकर पन्द्रह बीस मुनक्काके दानों अथवा शहदके साथ खा लेना चाहिए और किसी प्रकारकी दाल अथवा खटाई आदि खानी उचित नहीं। हरे शाकको अच्छी तरहसे पकाकर खाना और भी अधिक उपयोगी होगा। दूधके स्थान पर घी जितनी मात्रामें लिया जा सके, उतना ले लेना चाहिए और रोटी जितनी थोड़ी हो सके, खानी

उचित है। फलोंका प्रयोग किया जा सकता है; लेकिन खट्टे फलोंसे बचना होगा। इस प्रकार बीमारकी अवस्थाके अनुकूल लहसुनका इस्तेमाल करना चाहिए। जो लोग नियम-पूर्वक महीने, दो महीने अथवा तीन महीनेतक इसका इस प्रकार सेवन करेंगे और किसी प्रकारकी त्रुटि उपचारमें न आनेदेंगे तो वे देखेंगे, कि उनका शरीर कैसा बन जाताहै।

सचमुच, मैं तो लहसुनको शक्तिका पुंज मानता हूँ। जब मैं पाँच-चार दिनतक लगातार मुनक्काके साथ इसका सेवन कर लेता हूं, तो मुझे ऐसा मालूम पड़ता है, मानों मुझमें बिजलीका प्रवेश हो गया हो। यह अद्‌भुत् ढंगका टॉनिक है, जो शरीरमें स्फूर्तिका संचार करता है। इसका स्वभाव है, सब प्रकारके कफको मारना। जिन लोगोंको बलगमका विकार हो और जिन्हें बार-बार थूकनेकी बीमारी हो, वे भी ज़रा कृपाकर इसका प्रयोग करें और देखें, कि उनके लिये यह चीज़ कैसी लाजवाब है। रातके समय पाँच-सात दाने यदि ऐसे ही खा सकें और कड़वापन सह सकें, तो वैसेही खाएँ और यदि तीखेपनको बर्दाश्त न हो, तो मुनक्काके साथ काममें ला सकते हैं। मैं चाहता हूँ, कि कफ और जोड़ोंके दर्दसे पीड़ित लोग ज़रा इसका सेवन करके देखें। कुदरतने इसे बहु-गुण-सम्पन्न बनाया है, केवल इसमें दुर्गन्ध भर दी है; किन्तु वह दुर्गन्ध भी इसका अत्यन्त उपयोगी अंश है। जैसे आप फिनाइलकी गोलियाँ अपने गर्म कपड़ोंमें रख देते हैं, ताकि कीड़ा न लगे, उनके स्थानपर यदि आप लहसुन रखदेंगे, तो भी कीड़े निकट नहीं आ सकते। मैं उन पाठकोंसे, जिनके शरीरमें वायुका दर्द हो, अनुरोध करता हूँ, कि वे इस अमृतफलको चखकर देखें और मुझे अवश्य ही लिखें कि उन्हें इसके खाने से लाभ हुआ या नहीं। यह भी स्मरण रखना चाहिए कि प्रत्येक दवा अपना नियम और प्रतिबन्ध रखती है। आप अंटसंट चीजें खाकर और विषयमें रत रहकर, अपने शरीरको नहीं सुधार सकते, चाहे आपको अमृत ही क्यों न पिला दिया जाय।

अब आइये आँखोंके इलाजकी ओर, जिसके लिये मुख्यतया इस विषयको आरम्भ किया है। जिनकी आँखोंकी पुतलीके मध्यमें बीनाईकी कमी हो गई हो, जिसे अँग्रेजीमें ओपेसिटी (Opacity) कहते हैं, उनके लिये लहसुनका खाना अत्यन्त लाभकारी होगा। वे मेरे, ऊपर बतलाये हुए, ढंगसे इसका सेवन करें। आँखोंमें ज्योतिकी कमी होनेका बड़ा भारी कारण रक्तकी मन्दगति होती है।

यदि लहसुनका प्रयोग किया जाय और साथही सवेरे जंगलोंमें घूमा जाय, तो निश्चय ही आँखोंकी ज्योतिमें आशातीत उन्नति होती है। शरीरका रक्त शुद्ध रहनेसे आँखोंकी प्रभा भी बढ़ती है। मुझे जब जब आँखें कष्ट देती हैं, तब-तब मैं अवश्य ही लहसुनका सेवन करता हूँ; लेकिन मेरा समाज ऐसा निबुद्धि है कि वह एक सन्यासीका लहसुन खाना बर्दाश्त नहीं कर सकता, इसी कारण मुझे अत्यन्त संकोच करना पड़ता है; क्योंकि सभा-सोसाइटियोंमें आना जाना नहीं हो सकता। इसी कारण अपनी इच्छाके अनुसार मैं इसका उपयोग यहाँ नहीं कर सका। जब मैं विदेशमें था, तो बे-रोक-टोक इसे खाया करता था, और वहाँ मेरी आँखें काम देती थीं। अब, जब मैं किसी एकान्त स्थानमें कुटिया बनाकर बैठ जाऊँगा, तो फिर स्वतन्त्रतासे अपनी इच्छानुकूल ऐसे प्रयोग करूँगा जिन लोगोंकी आँखोंकी पुतलियाँ सख्त हो गई हों और रातके समय आँखें खोलनेपर दर्द करने लगें, उन्हें सोनेसे पहले और जागनेपर १५ मिनटतक आँखोंके ऊपर दोनों हाथ रख कर, नेत्र बन्द कर, बाहरके प्रकाशको बिल्कुल रोककर अभ्यास करना चाहिए। आँख ज़ोरसे न दबाएँ; बल्कि धीरेसे हाथोंको प्याला-सा बनाकर उन्हें ढक दें और किसी प्यारी वस्तुका ध्यान करें, या ऐसे दृश्यका, जो उन्हें बिल्कुल ताज़ा हो-इस प्रकार अभ्यास करनेसे उनकी आँखोंको बड़ा लाभ होगा। यदि वे दिनमें एक दो बार लहसुनका प्रयोग करते होंगे और साथ ही हथेलियोंके प्याले बनाकर दोनों आँखोंपर रखनेका अभ्यास करेंगे, तो वे देखेंगे, कि

उन्हें इस प्रयोगसे कितना अधिक लाभ होता है। हाथोंकी दोनों हथेलियाँ बन्द आँखोंपर इस ढंगसे रखिये कि माथेपर दोनों हाथोंकी उँगलियाँ एक दूसरेपर आ जावें, और हथेलियाँ प्याले-नुमा होकर आँखोंको ढकलें, जिससे बाहरकी रोशनी बिलकुल आँखोंपर न जाय। यह प्रयोग दिनमें कई बार किया जा सकता है, परन्तु रातके समय पन्द्रह मिनट सोनेसे पहले और सबेरे उठनेके बाद इसका अभ्यास नेत्रोंको बड़ा लाभकारी होगा।

पश्चिमी यूरोपके देशोंमें कई पेटेन्ट दवाइयाँ लहसुनकी दुर्गन्ध निकालकर बनाई गई हैं। वे रस के रूपमें अथवा गोलियोंके रूपमें बाजारोंमें बिकती हैं। उन देशोंके व्यापारी तो रुपया खींचनेमें बड़े चतुर होते हैं; इसलिए उन्होंने कई तरीकोंसे उन दवाइयोंके लाभ बतलाए हैं। हमें उन पेटेन्ट दवाइयों के पीछे नहीं पड़ना चाहिए; बल्कि सीधा मार्ग, जो प्रकृतिने बतलाया है, ग्रहण करना उचित है। लहसुन इतना सस्ता बिकता है कि गरीब-से-गरीब आदमी भी इसे काममें ला सकता है। अबतक इसकी उपयोगिताको हमारे जन-साधारणने इसलिये नहीं समझा; क्योंकि बड़े-बड़े शास्त्रज्ञ इस अमृतफलकी निन्दा करते हैं। यह भी सत्य है कि एक ओषधि, जो एक व्यक्तिके लिये लाभकारी होती है, जरूरी नहीं कि वह दूसरे व्यक्तियोंको भी वैसी ही गुणकारी हो तिसपर भी मैं यह विनय-पूर्वक अपने प्रेमियोंसे निवेदन करूँगा कि वे समाजका भय त्यागकर जरा इसको खाकर देखें। जो कुछ बदनामी होगी, उसे मेरे सिर डाल दें। यदि बदनामी सहकर भी इस वस्तुके प्रचारसे दुखी व्याधिग्रस्त स्त्री-पुरुषोंको लाभ हो, तो ऐसा अपयश भी बुरा नहीं।"

३—खांड़का मिलव्यवसाय। दरिद्र भारतके लिये खांड़का मिलव्यवसाय कभी लाभदायक नहीं हो सकता। थोड़ी पूंजीवाली गाँवकी खँडसालें किसान को रोजगार और मजूरी देनेवाली संस्थाएं थीं। मिल कारखानोंसे बड़े बड़े पूंजीपतियोंको ही लाभ है और उनके हाथ गन्ना बेचनेवालोंकी भी अनेक तरहकी हानि है। वह हानि स्वामी सहजानन्द सरस्वतीके उसपत्रमें भली भांति दिखायी गयी है जो "प्रताप" के २७ अगस्तके अंकमें छपा है। उसमेंसे नीचे लिखा अंश हम उद्धृत करते हैं।

गुड़ बनानेमें और भी कई लाभ हैं जो ऊख बेचनेमें नहीं है। (१) आश्विन, कार्तिक और अगहनमें नीची जमीनकी ऊख पेरकर गुड़ बना लेते तथा ४-५ रुपया फी मन बेंचकर उस जमीनमें गेहूँ चना बोते और ५ से १०-१२ मन फी बीघा पैदा कर लेते हैं। मिलवालोंको देनेमें यह बात न होगी क्योंकि वे अपने मनसे जब चाहेंगे ऊख लेंगे। (२) गुड़ बनानेमें खोइया, (छिलका) जलावन और ईंधनका काम देती है और मवेशियोंके गोबरकी खाद बनाकर खेतमें डालते हैं। ऊख बेचनेपर तो गोबर ही जलावनके काममें आवेगा और खेतमें खाद या तो पड़ेगी ही नहीं या खरीदकर डालनी होगी। (३) गुड़ बनानेमें सालभर गरीब कृषक एक ही समय रोटी भात खाते और दिनमें रस, गुड़, ऊख और साग सत्तू से ही काम चलाते हैं। यह बात ऊख बेचनेमें नहीं होगी और आगे चलकर रस, गुड़ दुर्लभ हो जायगा। (४) ऊख पेरनेमें धीरे धीरे उसकी गेड़ी वगैरह बैलोंको खिलाकर पुआल और नेवारी गृहस्थ लोग बेंचलेते हैं। मगर मिलवाले तो धीरे धीरे गृहस्थकी मर्जीसे ऊख लेंगे नहीं। फल यह होगा कि पुआल नेवारी पशुओंको खिलानी होगी। जो लोग मिलमें ऊख पहुँचानेका ठेकालेते हैं उन्हें तो हजारों रुपयोंके मिलनेका लोभ है। मगर किसानको क्या लोभ है कि उनके कहनेसे कम दाममें ऊख दे? किसान यदि एक मन ऊखके दाममें एक पैसा कम कर दे और उसके पास ५ बीघा ऊख हो तो २५--३० रुपयेका घाटा उसे हो जायगा। वह ऐसा क्यों करेगा? इस लिये किसानोंको न तो मिलवालोंके साथ कोई लिखापढ़ी करनी चाहिये, न उनसे पेशगी या दादनी लेनी चाहिये। जो लोग मिलवालोंके यहांसे रुपयेके लोभमें ठीका लिखवाकर ऊख पहुँचानेका बीड़ा उठा

आये हों किसानोंको उनसे भी सजग रहना होगा और उनकी बातोंमें न पड़ना होगा। ऊख बोनेवालोंका संगठन करके सिर्फ ऊख-संघ या किसान सभाके द्वारा मिलवालों या उनके आदमियोंसे बातें करनी होंगी।

४—विटामिन वा खाद्योज—अपने स्वास्थ्य विज्ञानके स्तंभमें 'स्वराज्य' ने विटामिनोंका संक्षेपसे वर्णन किया है। डा० त्रिलोकीनाथ वर्म्माने विटामिनके लिये हिन्दीमें खाद्योज शब्द रखा है। यह शब्द बहुत उपयुक्त लगता है। इसी तरह ए, बी, सी, डी, ई, की जगह पहली, दूसरी, तीसरी, चौथी और पांचवीं खाद्योज कहना भी समीचीन जँचता है। अपने पाठकोंके लाभार्थ उक्त लेखसे यहां आवश्यक अंश देते हैं कि पाठक यह देखकर विचार करें कि वह ठीक भोजन पाते हैं या नहीं।

विटामिन 'ए'। यह तत्व चर्बी उत्पन्न करता है। बच्चोंकी बाढ़के लिये इस तत्वकी बड़ी आवश्यकता होती है। घी-तेल-चर्बी आदिमें यह बहुतायतसे पाया जाता है। १०० डिग्री गर्मी तक यदि इसे गरम किया जाय तो यह कायम रहता है। इससे अधिक गरम करने पर यह नष्ट हो जाता है। इसीसे घीकी बनिस्बत मक्खनमें यह तत्व अधिक सुरक्षित रहता है। इसके सेवनसे शरीर बढ़ता है और खूनमें वृद्धि होती है। यदि बच्चोंको यह 'विटामिन' नहीं दिया जायगा तो उनकी हड्डी कमजोर रह जायगी और वे ढीली रीढ़ वाले बन जायेंगे। इसके अभावमें बीमार न रहनेपर भी बच्चा बीमार-सा दिखलाई देता है क्योंकि उसके शरीरमें रक्त अधिक परिमाणमें नहीं बन पाता। अतः शरीर पीला दीख पड़ता है।

विटामिन 'बी'। यह तत्व नस-दिमाग आदिको पुष्ट बनानेमें सहायक होता है। यह तत्व गेहूँ और चावल आदि अनाजोंके छिलकेमें ऊपरके भागमें अधिकतासे पाया जाता है और मक्खन, चर्बी, साग-भाजी आदिमें कम। पानीमें यह घुल जाता है। १२० डिग्री तककी गर्मी यह तत्व सह सकता है। इससे अधिक गर्मी लगानेपर नष्ट हो जानेका भय रहता है।

पालिश मिलसे तैयार किये गए चावल खानेवाले व्यक्तियोंको यह तत्व नहीं मिलता और वे बीमार हो जाते हैं।

विटामिन 'सी'।—यह तत्व आम्ल-पदार्थोंमें बहुतायतसे पाया जाता है। जैसे खट्टे फल, नीबू, संतरा, ताजी शाक आदि। दूध और मांसमें इस तत्वकी अधिकता नहीं पाई गई! यह तत्व यदि ८० डिग्रीकी गरमीसे ऊपरतक गरम किया जाय तो वरबाद हो जाता है। अतः जिस पदार्थमें यह तत्व पाया जाता हो उसे अधिक गरम नहीं करना चाहिये। इसमें यदि खारी पदार्थ सम्मिलित कर दिया जाय तो वह वरबाद हो जाता है। जब इस तत्वका सेवन नहीं होता तो मसूढ़ोंके रोग होनेकी संभावना हो जाती है!

विटामिन 'डी'।—'विटामिन' 'ए' और विटामिन 'डी' प्रायः एकही पदार्थमें साथ-साथ पाये जाते हैं। अतः यदि आप विटामिन 'ए'के पदार्थ खा रहे हैं तो आपको इस विटामिनके लिये भिन्न पदार्थके सेवनकी आवश्यकता नहीं होगी!

विटामिन 'ई'।—यह तत्व गेहूँ, मछली और जुआरमें अधिक पाया जाता है। अभी इसकी अधिक जांच नहीं हुई। यह कहा जाता है कि यदि यह तत्व बहुत समयतक नहीं मिलेगा तो पुरुष नपुंसक और स्त्री बांझ हो जायगी! अतः इस तत्वका उपयोग पौरुष कायम रखनेके लिये अनिवार्य्य है।

५—सायबीन, एकनया अनाज। "स्वराज्य"ने एक नये अनाज सायबीन नामककी सूचना दी है। हमारे लिये यह बिलकुल नया अनाज है। हम "स्वराज्य" के उस अंशको यहां उद्धृत करते हैं। भारतमें पौष्टिक अनाजोंकी कोई कमी नहीं है। तो भीजब पच्छाहँमें इसका प्रचार दिनपरदिन बढ़ रहा है तो हमें भी इसके विषयमें जानना एवं हो सके तो अनुभव करना आवश्यक है। शाकाहारी मधुप्रमेही

बहुधा ऐसे भोजनकी खोजमें रहते हैं जिसमें स्टार्च अर्थात् मंड न हों। मांसकी तरह सायबीनमें भी मंड नहीं होता।

"हमारे यहांके बाल-चवले जैसा यह अनाज होता है। इसकी उत्पत्ति चीन-जापानमें बहुतायतसे होती है। चीनके पंचकुआ स्टेटमें तो इसकी उपज प्रतिवर्ष ५० लाख टनके लगभग होती है। इस अनाजकी निर्यात यूरुपमें बहुत होती है इंग्लैण्डमें सायबीनका भाव १२५) फी-टन है! इसमें पौष्टिक आहार तत्व होनेसे इसकी मांग यूरप और अमेरिकामें बढ़ती ही जा रही है। इसकी उपज बढ़ानेकी ओर भी उनका ध्यान है। कहते हैं, सायबीनकी डेढ़ हजार जातियां हैं! आहारकी दृष्टिसे विचार करने पर सायबीनमें निम्न तत्व पाये गये है—

तेल २०, प्रोटीन (मांस-वर्धक तत्व) ४०, तथा जब इसे पानीमें डालकर तैयार किया जाता है तो इसमें विटामिन—ए० बी० डी० ई० (जब ताजा लाते हैं तब सी० भी) रहते हैं। स्टार्च इसमें नहीं पाया जाता। अन्य कड़े (रूक्ष) धान्यमें तेल-तत्व बहुत कम परिमाणमें रहता है; परन्तु सायबीनमें यह पर्याप्त रूपसे पाया गया है। कहते हैं, इसका तेल ऊँचे दर्जेका और बल-वर्धक होता है। सायबीनमें जो तत्व पाये जाते हैं, वे पशु और मनुष्य दोनोंके आहारमें आने योग्य हैं। और ९०-९५ प्रति-शत पाचक हैं।

दूसरी महत्वकी बात यह है कि इसमें अम्ल-कारक गुण नहीं है। इसमें मांसवर्धक और पोषक पदार्थ एक साथ ही बड़े परिमाणमें मिलते हैं।

कहते हैं, इस अनाजके सेवनकी वजहसे ही चीन-जापानके आदमी बड़े कष्ट-सहिष्णु और मजबूत बनते जा रहे हैं। तुलनात्मक दृष्टिसे सायबीनमें पोषक पदार्थ इस प्रकार पाया जाता है—

सायबीन प्रोटीन	४०,
मांसमें "	२,
अंडेमें "	४,
अन्य अनाजोंमें "	४,
पावभर बिस्कुटमें— ,,	४-५,

अस्थि-वर्धक और शक्ति दायक तत्व केलसियम और फास्फरस भी सायबीनमें बहुत मिलते हैं। अतः अमेरिकामें कई स्वास्थ्येच्छुक वैज्ञानिक सायबीनसे दूध, मक्खन, खोवा, बिस्कुट आदि खाद्य पदार्थ तैयार करनेकी धुनमें लगे हैं। वहां बड़े-बड़े नगरोंमें ये पदार्थ तैयार भी मिलने लगे हैं! पाश्चात्य देशमें शाकाहार आन्दोलन जोर पकड़ रहा है। इसलिये यह स्वाभाविक है कि वहां सायबीनका इस प्रकार विपुल प्रचार हो रहा है।

६—छात्रोंकी फजूलखर्ची। युनिवर्सिटीकी पढ़ाई और होस्टेलोंमें रहनेका खर्च कैसी भयानक रीतिसे बढ़ गया है और बढ़ता जा रहा है, कौन नहीं जानता। इस विषयपर आचार्य्य प्रफुल्लचन्द्ररायसे बढ़कर कौन बोलनेका अधिकारी हो सकता है? आर्थिक दृष्टिसे यह समस्या बड़े महत्त्वकी है। आचार्य्यके शब्दोंको अनुवाद रूपमें हम यहां उदधृत किये बिना नहीं रह सकते। इसपर टीका अनावश्यक है।

साठ-सत्तर वर्ष पहिले बड़े-बड़े जिलोंमें उच्च अंगरेजी विद्यालयके छात्र वहांके बड़े-बड़े वकील-मुख्त्यारोंके घरमें आश्रय लिया करते थे। वे ओसरी बांधकर बाजारसे सौदा पत्ता लाते, भोजन बनाते और अपने हाथसे बर्तनतक मलनेमें संकोच न करते थे। विद्या-लाभके लिए, वे इन सब बातोंको तुच्छ समझते थे। इस प्रकार जीवन व्यतीत करनेसे उनके माता-पितापर भी खर्चका अधिक बोझ नहीं पड़ता था। स्वर्गीय पं० शिवनाथ शास्त्रीने अपने आत्म-चरितमें लिखा है कि वे विद्यार्थी-जीवनमें कलकत्तेके एक बहुत मामूली वेतन पानेवाले कम्पो-जिटरके घर रहते थे। सौदा-पत्ता लाना, रसोई बनाना आदि सब काम उन्हें करना पड़ता था। प्रतिदिन मसाला—हल्दी, धनिया—पीसते-पीसते उनकी उंगलियोंके नाखून पीले पड़ गये थे! परन्तु आजकल वे सब बातें एकदम गायब हो गई हैं।

न-जाने कैसी अशुभ घड़ीमें लार्ड हार्डिजने कलकत्ता-विश्वविद्यालयको होस्टल (छात्रावास) बनानेके लिये दस-बारह लाख रुपये दिये थे। उस

समय चारों ओर इसकी वाहवाही हुई थी और लार्ड हार्डिंजका उद्देश भी अच्छा था। छात्रोंके स्वास्थ्य-के लिये अच्छे हवा और रोशनीदार निवास-स्थानोंका होना अच्छा है; लेकिन दशा यह हुई कि हम लोग शिवकी मूर्ति गढ़ने बैठे और गढ़ गई बन्दरकी मूर्ति! इन छात्रावासोंमें नई सभ्यताकी सभी चीजें मौजूद हैं। बटन दबातेही बिजलीकी रोशनी, दोमंजिले-तिमंजिलेपर पम्पके जरियेसे चढ़ा हुआ पानी, घंटा बजते ही तैयार किया हुआ भोजन—सभी आरामकी चीजें मौजूद हैं। किसी किसी छात्रावासमें मेसका प्रबन्ध भी है, लेकिन विद्यार्थीगण इतने शौकीन हो गये हैं कि उनका इन्तज़ाम खुद नहीं करते—सब बातें नौकरोंपर छोड़ रखी हैं। अक्सर नौकरोंको यह ठेका दे दिया गया है कि महीनेमें इतने रुपये देंगे, बदलेमें वे दोनों वक्त उन्हें भोजन प्रदान करेंगे। नतीजा यह है कि नौकर लोग पैसा बचानेके लिये बज़ारमें सबसे गली-सड़ी, बासी-कूसी तरकारियां और रद्दीसे-रद्दी सामान ला रखते हैं। यह बात नहीं कि लड़कोंको पढ़नेसे ही समय न मिलता हो, बल्कि ताश, शतरंज, केरम, गप और पिंगपांगमें जितना समय जाता है, उसके दसवें हिस्सेमें ही, यदि वे चाहें तो, अच्छेसे अच्छा बन्दोबस्त कर सकते हैं।

इधर गई वर्षोंमें मुझे समस्त भारतवर्षका भ्रमण करना पड़ा है। मैंने देखा कि पंजाबके विद्यार्थियोंमें विलासिता और शौक़ीनी सबसे ज्यादा बढ़ी हुई है। अठारह वर्ष पहिले जब मैं लाहौर गया था, तभी मैंने देखा था कि गवर्नमेंट-कॉलेजके विलायती ढंगका होस्टल लड़कोंको साहबी ठाठ सिखलानेका अच्छा फन्दा था। उस समय सौ रुपये महीनेमें एक विद्यार्थीका खर्च पूरा नहीं होता था। क्रिकेटके लिये फ्लैनलका सूट और टेनिसके लिये अलग पोशाक आदिमें ही उनका अधिकांश पैसा उड़ जाता था। हालमें फिर दो बार लाहौर जाना पड़ा। इस बीचमें पोशाक और साज-समानका खर्च कहीं अधिक बढ़ गया है। एक पंजाबी अभिभावकने मुझसे कहा—"अधिक क्या कहूं, लड़कोंका खर्च पूरा करनेमें ही सर्वान्त हुआ जाता है, जीते-जी चमड़ी उधड़ी जाती है। बहुतसे छात्र तो डेढ़-दो सौ रुपये महीना खर्च करनेमें भी कुंठित नहीं होते।"

उस दिन इलाहाबादमें भी कई होस्टल देखे। इलाहाबादमें बंबई और कलत्तेकी तरह तंग जगहमें कई मंजिले होस्टल तैयार करनेकी जरूरत नहीं है। वहां सभी होस्टलोंके चारों ओर लम्बे-चौड़े अहाते और खुली जगह है। अनेक लड़कोंसे पूछनेपर मालूम हुआ कि प्रत्येकका सब मिलाकर पैंतालीस रुपया महीना खर्च पड़ता है।

मगर एक बात ध्यानमें रखनी ज़रूरी है कि एक माता-पिताके एक ही पुत्र नहीं होता। अक्सर जहां पैसेकी तंगी होती है, वहां संतान अधिक होती है। मैं बंगालकी बात कहता हूँ। यदि एक एक लड़केके लिये पैंतालीस-पैंतालीस रुपया खर्च करना पड़े, तो प्रत्येक माता-पिताको अपने सब पुत्र-पुत्रियोंकी शिक्षाके व्ययका भार उठाना कितना कठिन है, यह कहा नहीं जा सकता। फिर कन्याके विवाहमें बहुतोंके घरकी ईंट-ईंट बिक जाती हैं। इसलिये आजकलके इस मन्दीके ज़मानेमें इस प्रकारका व्यय विचारणीय विषय है।

कितना कष्ट उठाकर माता-पिता लड़केको शिक्षाके लिये कलकत्ते भेजते हैं, किन्तु महीने-महीने मनि-आर्डर पाकर सपूतराम क्या करते हैं, उसका भी कुछ आभास लीजिये। पहले धोबी कपड़ा धोता था, परन्तु अब वह उन्हें नहीं भाता। इसलिये चारोंओर डाइंग-क्लीनिंग कम्पनियोंकी भरमार हो रही है। पहले मामूली नाई बाल काटता था, मगर अब यह लड़कोंको पसन्द नहीं। इसलिये 'हेयर-कटिंग-सैलून' पैदा हो रहे हैं। फिर रोज़ शामको रेस्तरांमें जाकर चाय-केटलट खाये बिना जीभकी तृप्ति नहीं होती। हफ़्तेमें कमसेकम दो दिन, किसी-किसीको तीन दिन सिनेमा देखे बिना खाना हज़म नहीं होता।........ बरखुरदार यह भूल जाते हैं कि इस तरह आरामकी ज़िन्दगी नहीं कटेगी। जिस दिन वे यूनिवर्सिटीका दरवाजा खोलकर जीवन-संग्राममें पैर रखेंगे, उस दिन

चारों ओर अंधकार देखकर उन्हें आटे-दालका भाव मालूम होगा।

....

छात्रोंमें, शहरोंमें जाकर पढ़नेका प्रबल आकर्षण देख पड़ता है। क्योंकि और जगह शहरोंका-सा विलास-प्रिय और परिश्रम-हीन जीवन-यापन नहीं हो सकता।

७-सामयिक साहित्यमें विज्ञान

जयाजी प्रताप—२४ अगस्तमें "सूर्य्यग्रहण और उसका महत्व।" "वर्षा ऋतुके कर्त्तव्या कर्त्तव्य कार्य। ३१ अगस्तमें, "मक्खी और उससे हानियां।"

प्रताप—२० अगस्तमें, "विज्ञानका महत्व"।

जागरण—२१-२८ अगस्त तथा ४ सितम्बर { "निद्रा विज्ञान" "लहसुन"

स्वराज्य, २९ अगस्त "देवनागरी लिपिकी छपाईमें सुधार।"

प्रभात, १५, १९ अगस्त। "पौधे कैसे खाते पीते हैं।" "मच्छर और मलेरिया।"

विकास, २ सितम्बर। "रोग और उसका निदान" "शिक्षा समस्या" "स्मरण शक्ति और उसका विकास।"

गंगा, अगस्त "नेत्र" बा० ब्रह्मानन्दसिंह। "आगामी सूर्य ग्रहण" श्री रजनीकान्त शास्त्री बी० ए०, बी-एल०। "जीरेकी खेती"

विश्वमित्र। "भारतमें नवीन उद्योग धंधोंका भविष्य"—श्री धर्म्म चन्द्र सरावगी। "नग्नवाद नैतिक अराजकता है"—श्री रामनारायण यादवेन्दु। "विषके प्रकार और उनका व्यवहार"—श्री इला चन्द्र जोशी। "नागरी लैनोटैपके आविष्कारकश्रीगोविल"

हंस, श्रावण। "खनिज द्रव्य", पं० रणजित-राव आयुर्वेदालङ्कार। "भारतमें ब्राडकास्टिंग," श्री श्याम नारायण कपूर।

वैशाली, वैशाख। "क्या, क्यों और कैसे" श्री रमेशप्रसादजी।

८—चांदीका संसार-व्यापी सिक्का

वर्तमान मंदीकी एक औषधि

दुनियाका आपसी लेन-देन बन्द हो सकता है? इस प्रश्नका जवाब 'नहीं' के रूपमें देना होगा। आवागमनके बढ़ते हुए साधनों, विज्ञानकी करामातों और मनुष्य-जातिके परस्पर व्यवहार और परिचयकी वर्तमान अवस्थाको देखते हुए कौन कह सकता है कि दुनियाका आपसी लेन-देन, व्यापार-व्यवसाय बन्द हो सकेगा?

और पुरातन-कालसे यह लेन-देन चला आ रहा है! जब मनुष्यके पास बड़े-बड़े जहाज नहीं थे, जब केवल हवाकी सहायतासे चलनेवाली किश्तियों-द्वारा लेनदेन होता था। समुद्रके किनारेपर जो शहर बसे हुए हैं, उनकी उत्पत्ति और विकास इसी व्यापारके कारण हुई है।

खुश्कीके रास्तेभी, अनादि कालसे मनुष्योंका लेन-देन होता रहा है। बैल, घोड़े, ऊँट आदि प्राणियोंकी पीठोंके सहारे पुरातन 'त्रिखण्ड' पृथ्वीका व्यवसाय चलता रहा है।

मनुष्योंके व्यवसायको अधिक सुगम बनानेके लिये कीमती धातुओं और उनके सिक्कोंका आरंभ हुआ। दुनियाने जबसे इन कीमती धातुओंको ढूंढ निकाला है, तबसे अबतक लगातार व्यापार-व्यवसाय बढ़ता जा रहा है। हजारों मीलकी दूरीसे करोड़ोंका माल आता है और उतनी ही कीमतका दूसरा माल पुनः लाखों मीलोंके फासलेपर जाता है। आधुनिक 'सवारियोंने यह काम और भी सरल कर दिया है इसीलिये दुनियाके आपसी लेन-देनके बन्द होनेकी कोई संभावना निकट-भविष्यमें नहीं दिखाई देती!

❀ ❀ ❀ ❀

जब संसारका परस्पर व्यवसाय जारी रहेगा, तब कीमती धातुओंका—अर्थात् सोने और चांदीका आवागमन भी जारी रहेगा। भूमि-गर्भसे मनुष्य-प्रयत्नद्वारा प्रतिवर्ष पैदा होनेवाली संपत्ति है अनाज।

इस अनाजसे अनेकों वस्तुएँ और व्यवसाय उत्पन्न हुए हैं। दूसरी भूगर्भ संपत्ति है—खदानोंसे निकलने वाली चीजें। इन 'कच्चे' पदार्थोंसे मनुष्यकी बुद्धि और परिश्रमने अनेकों चमत्कार निर्माण किये हैं। इन चमत्कारों और परिश्रमोंका मूल्य चुकाया जाता है, चांदी अथवा सोनेके रूप में।

परन्तु संसारमें सोना कम तादादमें पैदा होता है—इसीलिये वह मँहगा भी है। और जब कोई एक व्यक्ति, व्यापारी अथवा देश सोनेको अपने घर, दूकान अथवा खजानेमें कैद कर रखता है, तब चारों ओर 'सिक्के' की कमी होती है। देशान्तर व्यापारोंकी गति रुकने लगती है। क्योंकि लेन-देनका मूल्य चुकानेकी प्रमुख वस्तु सोने की कमी हो चुकी होती है।

यही सवाल आजकी व्यवसाय-मन्दीकी उलझनों में प्रमुख है। संसारके सभी देश सोनेको मानते हैं—मूल्यके रूपमें उसको स्वीकार करते हैं। प्रायः सभी देशोंका बड़ा सिक्का, आजतक सोनेका रहा है। केवल चीन और भारतवर्ष ही ऐसे देश हैं, जहां चांदीका जोर है। यहांके सबसे बड़े सिक्के चाँदीके हैं।

और इन दोनों देशोंमें लगभग ८० करोड़ आदमी बसते हैं। यह संख्या समस्त दुनियाकी लोकसंख्याके दो-तिहाई अर्थात् रुपयेमें दस आनेके बराबर है! परन्तु लोक-संख्याकी विपुलताके साथ इन देशों में राजनैतिक-ताकत नहीं है। इसीलिये इनके चांदीके सिक्केका चलन इन्हींतक सीमित है! बाहरी देश, इनसे, अपनी वस्तुके मूल्यमें सोना मांगते हैं! परन्तु सोना तो फ्राँस और अमरीकाके खजानोंमें कैद है।

तब क्या किया जाय? इसी प्रश्नको सुलझानेके लिये यूरोपके पचासों देशोंके सरकारी प्रतिनिधि एकत्र हुए थे। राष्ट्र-सन्घकी सिक्काकमेटीमें उनकी रायें ली गयी थीं। बड़े-बड़े सम्पत्ति-शास्त्रियों ने निर्णय दिया कि दुनियामें सिक्के की कमी हो गयी है—सिक्का बढ़ाना चाहिये। और जब सोनेका 'सिक्का' खजानोंमें कैद है, तब दूसरे नम्बरकी धातु—चाँदीका ही सिक्का बढ़ाना और जारी करना चाहिये।

इस निर्णयका प्रकट स्वरूप अभीतक दुनियाके सामने नहीं आया है। परन्तु दो मास पूर्व इङ्गलैण्डने अमरीकाका कर्ज चांदीके रूपमें ही चुकाया था। इसीसे अनुमान किया जाता है कि जब साहूकार अमरीका सोनेके बजाय चांदीको स्वीकार कर रहा है, तब चांदीका मूल्य भी शीघ्र ही बढ़ने वाला है!

दुनियामें आजकल प्रतिवर्ष लगभग ७८ लाख सेर चांदी पैदा होती है! दुनियाके बाजारोंमें इस समय चांदीकी कीमत लगभग ३२ रुपये सेर है, और आजके भावसे ६५०० करोड़ रुपयोंके मूल्य की चांदी हिन्दुस्थान और चीनमें भरी पड़ी है। यदि अमरीकाके साहूकारोंकी उखाड़-पछाड़से चांदीका सिक्का और चांदीकी ईंट लेन-देनकी वस्तु बन गयी, एक देश दूसरे देशकी वस्तुओंका मूल्य चांदीके रूपमें लेने-देने लग गया, तो चांदीकी कीमत एकदम बढ़ जायगी। हिन्दुस्तान, चीन और ब्रिटेनसे चांदीकी नदी बह निकलेगी और अमरीकाके बाजारमें सफेदी उछलने लगेगी!

और चांदीकी बड़ी-बड़ी खदानोंके शेअर रखनेवालोंकी भाग्य-रेखा पलट जायगी। दक्षिण अमरीकाके मैक्सिको प्रदेशमें सैकड़ों चांदीकी खदानें हैं। लाखों अमरीकनोंने उक्त खदानोंके लिये शेअर ले रखे हैं। आज उन शेअरोंकी कीमत कुछ नहीं है। चांदीकी कीमतके साथ-साथ उनकी कीमतमें ज़मीन-आसमानका फर्क पड़ जायगा। सारी व्यवसाय-व्यवस्था उथल-पुथल हो जायगी।

परन्तु इस उथल-पुथलकी रोकका भी उपाय है। चांदीकी पैदावार और कीमतपर नियंत्रण रखनेवाले अन्तर राष्ट्रीय नियमों-कानूनोंके बन्धनसे चांदीकी कीमत विशेष न बढ़ने पायेगी।

चीन और हिन्दुस्थानकी ८० करोड़ जनताके व्यापार-व्यवसायपर अमरीका और इङ्गलैण्ड दोनों चचेरे भाइयोंकी दृष्टि है। चांदीकी पैदावारका रुपयेमें बारह आनेका हिस्सा अमरीकाकी खदानोंकी

सम्पत्ति है। इन बातोंका विचार करनेसे अनुमान निकलता है कि अपने स्वार्थके लिये अमरीकन साहूकार चांदीके चलनको बढ़ानेकी कोशिश करेगा। चीन और हिन्दुस्थान जैसे खरीददार, तभी खरीदनेकी शक्ति पैदा कर सकते हैं जब चांदीका चलन शुरू होगा। अमरीका और इङ्गलैण्ड ऐसे बढ़िया खरीददारोंको छोड़ना नहीं चाहते और इसीलिये सोनेके साथ-साथ चांदीका चलन भी शुरू करना चाहते हैं।

९—उड़ाकोंका हवाई सुख! स्वप्न भी सच्चे हो रहे हैं! धरतीसे ऊपर हवाई जहाजमें उड़ते हुए कितना हर्ष, कितना उन्माद बरस उठता है! हम पृथ्वी और उसके प्राणियोंको कितना नगण्य समझने लगते हैं—ऊपर—ऊपर-ऊँचे—ओह! कितने ऊँचे उड़रहे हैं हम! वे देखो, नदीके किनारे 'मगर' सूर्यकी रश्मियोंमें मस्त पड़े हुए हैं—वे देखो, जंगलोंमें शेर-चीते कैसे यत्र-तत्र प्रभावित हो रहे हैं! वह बादल आया—टकरायेगा? 'न', पायलाट चतुर है। खे ले गया—वह नीचे दीख रहा है! "जहाज आगे मत बढ़ाना—आंधी आ रही है।" वायरलेससे कई सौ फुट ऊँचे उड़नेवाले हवाई जहाजमें सुनपड़ा। हवाई जहाज नीचे उतर रहा है—किसी जंगली स्टेशनपर जनरवसे बहुत दूर।

"यहां कौन है, हेरी?"

"क्यों?"

"अरे इस वियावानमें कहां उतरे हैं हम?"

"क्यों घबड़ाती हो—देखो, सामने वह अफ्रीकन आ रहा है।"

एक अफ्रीकन आता है। वह हवाई जहाजके यात्रियोंको अपने यहां भोजन कराने ले जाता है—इतना स्वादिष्ट है उसका भोजन कि यूरपके कई होटलोंको मात कर देता है! हवाई हजाजके उड़ाकूको जंगलमें भी मंगल दिखाई देता है! कभी-कभी जहाज जंगलके किसी "अड्डे" पर उतरनेको होता है, तब जरा ऊँचाईसे केबिनसे सर निकालकर यात्री देखता है—"पायलाट, यह क्या? वहां तो चीता घूम रहा है।" देखते देखते 'जहाज' नीचे "खर खर" करता उतर पड़ता है, केबिनसे झांकनेवाले महाशय देखते हैं—"चीता गायब है।"

❀ ❀ ❀

लंदनसे अफ्रीकाकी सोनेकी खदानोंमें पहुँचनेके लिये पहिले कई दिन लगते थे, आज हवाई जहाजसे पहुँचनेमें कुछ घण्टे ही लगते हैं। दुनियाको आज हवाई जहाजोंने बहुत छोटी बना दिया है। यह कुछ घण्टोंकी ही चीज रह गई है! अरेबियाके 'मोती गोताखोरों' को लीजिये। पहिले वे हफ्तोंमें अपने 'मोतियों' को लेकर बाजारमें पहुँच सकते थे, आज घण्टोंमें वे बाजारका "भाव" देख सकते हैं। 'शारजाह' से करांची ९ घण्टेमें 'मोतियों' के डब्बे उतर पड़ते हैं। रेगिस्तानका पुराना दृश्य भी बदल रहा है, शेखोंके ऊँट अब केवल सामान ही ढोनेके काम आते हैं, वे "रेगिस्तानके जहाज" अब नहीं रहे। 'शेख' जिन्हें ऊँटोंकी सवारीका नशा था, अब मोटरोंमें तो बैठने ही लगे हैं, हवाई जहाजोंमें भी उड़ने लगे हैं। बहरीनके एक मशहूर शेखने हालही बगदादकी यात्रा कर शेखोंमें उड़नेका नया शौक पैदा किया है! शेखोंको हवाई-जहाज सचमुच तमाशा बन गया है। जब कभी हवाई जहाज उनकी सरहदोंमें उतरता है तो वे यातो उसपर "सवारी" करते हैं या हवाई-अड्डे पर झुंडोंमें एकत्र हो हवाई यात्राकी गाथाएं ही सुना करते हैं।

हवाई-जहाजके अड्डोंपर कई विषयोंके ज्ञाता रखे जाते हैं जो यात्रियोंमें उड़नेकी रुचि पैदा कर सकें। ये व्यक्ति बड़े चतुर और फुर्तीले होते हैं। अपनी ड्यूटीमें बड़े सतर्क! वे फुर्सतके समय अपने निवास स्थानों आदिमें 'बागीचा' लगाते हैं।

❀ ❀ ❀

"बेतारसे तार" ने हवाई-जहाजोंकी उन्नतिमें बड़ी सहायता पहुँचाई है। यदि इसका आविष्कार न होता तो आज हवाई-जहाजोंकी यात्रा भीषण खतरोंसे खाली न होती। जो "जादू" के खेल हवाई-

जहाज आज दिखलानेमें समर्थ हो रहे हैं वे सब इसी आविष्कारकी बदौलत ! हालमें ही अफ्रीकाकी राहसे एक हवाई-जहाज उड़ रहा था। खबर आई कि भयानक आंधी झाड़ों और तारोंके खम्बोंको उखाड़ और काटकर फेंक रही है। इस हवाई-जहाजमें महत्व पूर्ण व्यक्ति और 'डाक' थी। 'पायलाट'ने खबर सुनते ही हवाई-जहाजको खूब ऊँचा उड़ाना शुरू किया—इतना ऊँचा कि 'आंधीके क्षेत्र'से वह कई फुट दूर हो गया। "बेतारके तार"के संवाद उसे मार्ग दिखा रहे थे-वह ऊँचाईसे उड़ते-उड़ते, धीरे-धीरे नीचे आया। अपने यंत्रको बचाते हुए और ठीक समयपर 'खर्र' से हवाई-जहाजके स्टेशन पर—जहां उसे पहुँचना था—उतर पड़ा ! काहिरा और केपटाउनके बीच उड़नेवाले एक हवाई जहाजकी यात्रापर दृष्टिपात कीजिये—वह एक स्टेशन छोड़ता है—दूसरेपर पहुँचता है। बीचमें लगातार 'बेतार के तार'द्वारा उसके पास 'हवा'के संदेश पहुँचते रहते हैं। कई घण्टोंबाद उठनेवाली आंधियोंका पायलाटको पता दे दिया जाता है—वह सावधान हो जाता है। यह सब कार्य बड़ी व्यवस्थासे, ठीक ढंगसे, होता रहता है। कई फुटोंकी ऊँचाईपर भी पायलाटको दुनियाकी घटनाओंका पता चलता रहता है। वह 'अंधकारपूर्ण प्रदेश'में रहकर भी दुनियाके प्रकाशसे दूर नहीं रहता ? अफ्रीकाके भयको वायुयानने निर्मूल बना दिया !

❀ ❀ ❀

वायुयानकी इस प्रगतिने दुनियाकी सभ्यतापर एक नया रंग चढ़ा दिया है। क्रमशः मनुष्य राष्ट्रीयता-वादसे हटकर विश्ववादकी ओर आकर्षित होने लगेगा। वह विश्वका नागरिक बननेकी हौस रखेगा ! क्योंकि उसे वायुयानद्वारा विश्व कई राष्ट्रोंका समूह नहीं रहेगा एक ही 'राष्ट्र' बन जायगा ! विज्ञानमें जहां नाशकारी साधनोंकी भरमार है, वहां निर्माण-कारी तन्तु भी पाये जाते हैं। यहां भी 'जाकी रही भावना जैसी' वाली बात चरितार्थ होती है।

———

विज्ञानंब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० । ३।५ ॥

भाग ३८ } प्रयाग, वृश्चिक, संवत् १९९० । नवम्बर १९३३ । { संख्या २

मंगलाचरण

सूर्य्य, अग्नि, जल, व्योम, वायुमें जिसका बल है
जो सर्वत्र सुविज्ञोंका जिज्ञासा-स्थल है
संचालक सबका परन्तु जो स्वयं अचल है
जगत दृश्य जिसकी केवल मायाका छल है
उस अटल तत्त्वके ज्ञानसे माया-पटल विनाश हो
उस ब्रह्मबीज विज्ञानका सब थल सुखद प्रकाश हो

अवकाश-रसायन तथा कीटाणु संबंधी विज्ञानका आरम्भ और पास्त्यूरके अनुसन्धान

(गतांकसे आगे)

[लेखक श्री आत्माराम, एम० एस-सी०]

इस विषयमें सबसे पहिला कार्य lactic fermentation दुग्ध-खमीरणपर हुआ। खमीरणके अध्ययनमें उसे पता लगा कि मद्य खमीरणके समान इसमें भी ऊपरकी ओर एक भूरी भूरी पतली तह जम जाती है जो यीस्टके (cell) सेल या कोषसे भिन्न है । इस भूरी वस्तुका कुछ भाग शर्कराके एक नये घोलमें जिसमें यीस्ट औ खड़िया मिलायी जा चुकी थी, मिलाया गया। मिलनेके कुछ ही समय पीछे उसमें भी दुग्ध-खमीरण बड़े वेगसे आरम्भ हो गया। इस प्रकार बार बार नया घोल लेनेसे इसी प्रकारके फल प्राप्त हुए। परन्तु लीबिगके सिद्धान्तको बिल्कुल हटानेमें यह प्रयोग फलीभूत नहीं हो सकता था। सम्भव है कि यीस्टके साथ जो अण्डसितोद Albuminoid वस्तुएँ रही हों उनके विभाजनसे खमीरण आरम्भ हुआ हो, इस बातको जांचनेके लिए पासत्यूरने अण्डसितोद सम्बन्धी वस्तुएँ बिलकुल ही हटा दीं और उनके बजाय अमोनियाके लवणोंका उपयोग किया। इस प्रकार करनेसे भी यीस्टके सेल शर्करामें भले प्रकार रहते तथा बढ़ते रहते हैं और यह बात दुग्ध-खमीरणके कीटाणुओंमें होती है। खमीरणपर कार्य करते हुए ही पासत्यूरको एक ऐसी अद्भुत बात विदित हुई जिसका वर्णन यहां आवश्यक है। नवनीतिक खमीरण करते समय पासत्यूरने घोलका कुछ भाग एक कांचके टुकड़ेपर रखकर अनुवीक्षण Microscope यन्त्रके नीचे रखकर देखा तो बाहरके भागके कीटाणुओंमें कोई

विशेष गति Motion न दिखाई पड़ी। परन्तु जो बीचमें थे अथवा जिनसे वायुका कोई सम्बन्ध न था वह भली भाँति चलते हुए दिखाई पड़ते थे।

इससे यह सिद्ध हुआ कि इन कीटाणुओंके लिये वायुमण्डल का ओषजन हानिकारक है अर्थात् ऐसे भी प्राणि हैं जो ओषजनके बिना जिसपर संसारका जीवन निर्भर है जीते हैं और यही ओषजन उनके लिये लाभदायक होनेके बजाय हानिकारक है। इस क्रिया का नाम उसने अवायवीय श्वासोच्छ्वास क्रिया (Anaerobic Respiration) और इस जीवनका नाम अवायवीय जीवन रक्खा। इस कार्य्यसे वैज्ञानिक जगतमें एकदम हलचलसी मच गयी परन्तु पासत्यूर को अपने प्रयोगोंपर पूरा पूरा विश्वास था और इसी कारण वह इस बातको सत्य मानता था और उसने इसीके आधारपर एक नया सिद्धान्त बनाया जो निम्नलिखित शब्दोंमें दिया हुआ है।

"इस प्रकार ऐसे जीवोंके अतिरिक्त जो बिना ओषजनके जीवित नहीं रह सकते कुछ ऐसे भी जीव हैं जिनको ओषजनकी केवल आवश्यकता ही नहीं वरन् उसकी उपस्थिति इन जीवोंके लिये हानिकारक है। यह जीव अपने जीवनके लिये कुछ यौगिकोंसे ओषजन खींचते हैं। इस प्रकार इन वस्तुओंका धीरे धीरे विभाजन होता जाता है। इस प्रकारके जीवोंका नाम 'खमीर' है और यह भी दूसरे जीवोंकी भांति कर्बन, उद्जन तथा नोषजन इत्यादि चाहते हैं परन्तु इनके विरुद्ध साधारण ओषजनकी आवश्यकता नहीं रखते और कम दृढ़ यौगिकोंसे अपने लिये ओषजन खींचते हैं।

स्वयं उत्पत्ति

खमीरणके अनुसन्धानोंके पश्चात् पासत्यूरकी दृष्टि एक ऐसे कार्य्यकी ओर आकर्षित हुई जिसका किसी प्रकार विश्वास दिलाना असम्भव कार्य्य था। क्या जीव स्वयं भी उत्पन्न हो सकता है? इस प्रश्नको वर्तमान जगत्में हल करना तो दूर रहा सोचना भी एक मूर्खता समझी जाती है। अरस्तू तथा विरजिलने इसकी सम्भावना दर्शायी है कि बहुतसे जीव कूड़े, गोबर इत्यादिमें नमी उत्पन्न होनेपर पैदा हो जाते हैं। ऐसा ही कुछ विचार फान हेलमण्टका भी था जिसने चूहेकी उत्पत्तिकी विधि बतलायी है। सन् १७४५ ई०-में फ़ादर नी-धेमने भी एक प्रयोग किया जिसके आधारपर उसको विश्वास हो गया कि वास्तवमें जीवकी स्वयं भी उत्पत्ति हो सकती है। एक बर्तनमें सड़नेवाला पदार्थ रखकर उसका मुहँ बिल्कुल बन्द कर दिया गया और उसको गरम किया गया ताकि सब कीटाणु मर जायँ। परन्तु इस बर्तनको कुछ दिनों-तक रखनेपर इसमें कुछ छोटे छोटे कीड़े फिर उत्पन्न हो गये। परन्तु इन प्रयोगोंपर काफ़ी गड़बड़ होती रही जब कि १८५९ ई०में पोकेटने फिर स्वयं उत्पत्तिकी सम्भावना बतलायी और साथ ही इसका यह भी कथन था कि सड़नेवाली चीजोंसे साधारण वायुकी विद्यमानतामें भी कीटाणु उत्पन्न हो सकते हैं। इनसब झगड़ोंको मिटा देनेकेलिये फ़रांसीसी वैज्ञानिक सभा ने एक पुरस्कारका विज्ञापन दिया है जो ऐसे मनुष्यको दिया जाय जो इन प्रयोगोंकी सत्ता सिद्ध करे। इसी समय सन् १८६०में पासत्यूरने अपनी दृष्टि इस ओर दौड़ायी।

पासत्यूरने श्रोडर इत्यादिके प्रयोगोंको दोहराया और रुईके बजाय गनकाटनका उपयोग किया। इस प्रकार वायुमण्डलके बहुतसे कीटाणु इस रुईमें फंस गये जैसा कि इस रुईको मद्य तथा ज्वलकके मिश्रणमें घोलनेसे विदित हुआ क्योंकि इसके घुलनेसे मद्यका खमीरण आरम्भ हो गया। दूधको यदि दो तीन मिनट तक उबाला जाय तो भी रखनेपर इसमें कीटाणु उत्पन्न हो जाते हैं। इसका आशय यह हुआ कि इसमें भी स्वयं उत्पत्ति होती है परन्तु पासत्यूरने विचार किया कि यह घटना स्वयं उत्पत्तिकी नहीं है बल्कि दूधमें कुछ ऐसे कीटाणु रह जाते हैं जो इतने तापक्रमपर भी जीवित रहते हैं क्योंकि यदि दूधका तापक्रम १०० कर दिया जाय तो फिर कोई कीटाणु उत्पन्न नहीं होता।

पासत्यूरने बड़ी चतुराईसे यह सिद्ध किया कि वायुमें अनेकानेक प्रकारके कीटाणु होते हैं और यदि किसी प्रकार यह कीटाणु वायुसे निकाल दिये जायँ तो खमीरी वस्तुओंमें कोई भी परिवर्तन नहीं होता ! इस प्रयोगमें उसने बड़ी चतुराई दिखलायी परन्तु इन प्रयोगोंके फलोंके विपरीत पोकेटके प्रयोग थे जिनसे इनके बिल्कुल विरुद्ध फल मिले । वास्तवमें दोनों ठीक भी थे, केवल प्रयोगोंमें ज़रासे अन्तरके कारण इतना वादविवाद फैला । इन अनुसन्धानोंके करनेमें पासत्यूरने एक बिल्कुल नयी बात विदित की कि ऐसे भी बहुत छोटे छोटे कीटाणु होते हैं जो केवल गरम करनेसे ही नहीं मरते और यही कारण है कि बहुतसे वैज्ञानिकोंने इन्हीं कीटाणुयोंके रह जानेके कारण स्वयं उत्पत्तिकी सम्भावना जतायी है । स्वयं उत्पत्तिके सिद्धान्तसे कीटाणु सम्बंधी अनुसन्धानोंके विषयमें अधिक लाभहुआ । इस प्रकार पासत्यूर ने यह सिद्ध कर दिया कि स्वयं उत्पत्तिकी सम्भावना बिल्कुल ग़लत है और वायुमण्डलमें ही कीटाणु होते हैं जिनसे खमीरण आरम्भ होता है । इस कार्य्यके लिये १८६२ ई० में फ्रांसीसी वैज्ञानिक सभाका पुरस्कार पासत्यूरको मिला ।

इसके पश्चात् पासत्यूरने सिरकिकसे खमीरण-पर कार्य्य आरम्भ किया । यद्यपि इस खमीरणपर बरज़ेल्यूस, कूटज़िंग इत्यादि काफ़ी कार्य्य कर चुके थे परन्तु तबभी इस कार्य्यको वैज्ञानिक जगत्में मान दिलानेमें अधिकतर भाग पासत्यूरने ही लिया । क्योंकि शवां कूटज़िंग इत्यादिके किले रेतीली दीवारों-परबने थे परन्तु पासत्यूरने अपने कार्य्यको एक दृढ़ नीवपर स्थिर किया था । पासत्यूरका यह विशेष स्वभाव था कि जब कभी किसी महत्त्वपूर्ण अनुसन्धानको स्वयं करता और उसको ठीक ठीक समझ लेता तो वह बात औरोंके मस्तिष्कमें ठीक घुसानेके लिये कुछ भी उठा न रखता । वह सर्वदा कहा करता था कि जब मैं इस बातको ठीक समझता हूँ तो और भी ठीक क्यों नहीं समझते । इसलिये जबतक प्रत्येक विरोधी उसकी ओर न हो जाता तबतक उसको चैन कहाँ। इसका ज्वलंत उदाहरण पोकेटको फ्रांसीसी वैज्ञानिक सभाके सामने स्वयं उत्पत्ति सिद्धान्तपर हराना है । इन सब अनुसन्धानोंका पूरा पूरा वृत्तान्त फ्रांसीसी पत्रिका (Comptes Rendus) में दिया हुआ है । पासत्यूरने दिखलाया कि सिरकिक खमीरणके कीटाणु केवल इस क्रियाके ही योग्य नहीं बल्कि और भी ऐसी कई क्रियाओंके करनेमें समर्थ हैं जैसे अम्लील मद्यसे अम्लीकाम्ल इत्यादि का बनाना । पासत्यूर केवल यहीं नहीं ठहरा, बल्कि अब उसने अपनी दृष्टि कई और कार्य्योंपर डाली जैसे मद्य इत्यादिके रोग । कीटाणुपर कार्य्य करनेसे पासत्यूर-को रोगोंके कारण जाननेका अवसर मिला और "रोगोंके कीटाणु सिद्धान्त"का बतलाने तथा गौरव दिलानेवाला यही विख्यात व्यक्ति था । उस समयतक यह विश्वास न था कि प्रत्येक रोगके कुछ कीटाणु होते हैं जिनके कारण रोग उत्पन्न होता है । मद्यके रोगके कीड़ोंका नाश करनेके लिये क्या-विधि होनी चाहिये ? इस प्रश्नको हल करनेके लिये पासत्यूरने कई रीतियोंसे प्रयोग किये । कुछ कीटाणु नाशक (Antiseptic) वस्तुएं कार्य्यमें लायी गयीं परन्तु इसपर पासत्यूरको सन्तोष न हुआ । उसने सोचा कि यदि मद्यको गरम किया जाय तो शायद सब कीटाणु मर जायँगे क्योंकि इस विधिपर उसको अधिक विश्वास था । इस प्रकार कीटाणुओंका नाश करनेकी यह नयी, सबसे अधिक लाभदायक तथा अमूल्य विधि मिल गयी जो उसके नामपर 'पासत्यूर-करण' कहलाती है । पिछले ५० वर्षोंमें जो प्रयोग इस विधिका हुआ है उसका वर्णन करना दुस्तर कार्य्य है क्योंकि लगभग प्रत्येक ऐसे अवसर-पर जहाँ कीटाणुओंका नाश करना होता है विशेष-कर यही विधि काममें आती है ।

कीटाणु तथा चिकित्सा-सम्बन्धी कार्य्य

१८६५ ई०में पासत्यूरको रोगोंपर कार्य्य करने-का एक विशेष अवसर मिला जिससे उसको अपने

खमीरण सम्बन्धी अनुसन्धानोंका पूरा पूरा लाभ मिला। यहींसे उसके कीटाणु सम्बन्धी तथा रोग सम्बन्धी विज्ञानके उन महत्वपूर्ण कार्य्योंका आरम्भ होता है जिन्होंने उसके नामको सर्वदाके लिये संसारमें चमका दिया है और शिक्षित समुदायमें ऐसा कोई बिरलाही होगा जो उसके नाम तथा कार्य्यसे थोड़ा बहुत परिचय न रखता हो। १८६५ ई० में फ्रांसमें रेशम व्यवसायमें एक बड़ी हलचल मची क्योंकि इस साल रेशमके कीड़ोंमें एक भयानक नया रोग फैल गया जिसके कारण व्यवसायियोंको बड़ी हानि हुई। सरकारने इस कार्य्यका भार किसी जीव वैज्ञानिकको न देकर पासत्यूरके सुपुर्द किया। पासत्यूरने इस कार्य्यको बड़ी चतुरता तथा धैर्यके साथ अपने प्रसिद्ध सहकारी डुकलाके साथ आरम्भ किया। आरम्भमेंतो इतनी कठिनाइयाँ पड़ीं कि एक रोज़ तो यह महर्षि अपनी प्रयोगशालामें आँसू भरे हुए आया और अपनी असफलतापर क्रुद्ध हुआ। परन्तु यहीं पर सफलता इस वीरकी बाट देख रही थी क्योंकि यह बहुधा देखा गया है कि अत्यन्त असफलताके पश्चात् ही सफलता प्राप्त हुआ करती है। अन्तमें दो वर्षके कठिन परिश्रमके बाद पासत्यूर इस कार्य्यमें पूर्ण सफल हुआ। इसके पश्चात् चिकित्सा सम्बंधी विद्यालयों तथा वैज्ञानिकोंमें पासत्यूरका नाम फैल गया और लोग जगह जगहसे उसकी प्रयोगशालामें रोग सम्बन्धी विषयोंपर कार्य्य करने आने लगे परन्तु वह सर्वथा इनसे कहा करता "पहिले कोकून इत्यादिका बनाना सीखो तब इन अनुसन्धानोंपर कार्य्य कर सकते हो"

इस प्रकार रोगोंके कारणों तथा उनकी चिकित्सा विधिपर पूरा पूरा विश्वास करानेवाला पासत्यूर ही था। उसने यह दिखा दिया था कि प्रत्येक रोग किसी न किसी कीटाणुके कारण होता है। यद्यपि वह बात अब ठीक नहीं समझी जाती क्योंकि अब एक नये प्रकारके रोग 'न्यूनता रोग' (deficiency diseases) जिनका किसी कीटाणुसे सम्बन्ध नहीं है विदित हो गये हैं। परन्तु तब भी कीटाणु विज्ञान तथा उनके नाश करनेके सम्बन्धमें जो कार्य्य पासत्यूरने किया वह इन टूटे फूटे शब्दोंमें वर्णन नहीं किया जा सकता। शल्य-चिकित्साके सम्बन्धमें जो सहायता या सेवा इन अनुसन्धानोंसे मिली वह अमूल्य है क्योंकि पहिले उन यन्त्रोंको जो चीर फाड़में लाये जाते हैं केवल धो लेना ही काफ़ी समझा जाता था परन्तु कीटाणु तो केवल धोनेसे नहीं जाते। ऐसा करनेसे एकका रोग दूसरेमें प्रवेश कर जाता था। परन्तु पासत्यूरने दिखलाया कि वायुमण्डलमें कीटाणु होते हैं और इसलिये प्रत्येक यन्त्र गरम पानीमें खूब गरम करना चाहिये ताकि उसपर कीटाणुओंका प्रभाव न रहे। इस प्रकार करनेसे एकका रोग दूसरेपर प्रभाव नहीं डाल सकता। क्या यह चिकित्सा के लिये अमूल्य कार्य्य नहीं है? साथही साथ विषाणु (Toxins) तथा (Anti-Toxins) प्रतिविषाणु परभी पासत्यूरने अधिक कार्य्य किया और सूईसे दवा पहुँचानेकी विधि जो आजकल इतनी प्रचलित है इसी मस्तिष्कके चमत्कारका फल है। जनताकी एवं चिकित्सा सम्बन्धी विषयोंकी जितनी सेवा पासत्यूरके कार्य्योंसे हुई इतनी शायद ही किसी और वैज्ञानिकके कार्य्यसे हुई होगी। एक बार जब फ्रांसमें इस बातका निर्णय होने लगा कि फ्रांसका सबसे बड़ा पुरुष कौन था क्योंकि उसका ही चित्र ख़तों तथा और भिन्न भिन्न देशी मोहरोंपर रक्खा जाना था तो नेपोलियन तथा पासत्यूरके नाम रक्खे गये। वोट लिये जानेपर पासत्यूरका नाम ही सर्वोच्च निकला। एक तो उस सेवाके वीरको देखिये जिसने फ्रांसका माथा देशोंमें ऊँचा कर दिया और इस वैज्ञानिक वीरको देखिये जिसने केवल फ्रांसको ही नहीं बल्कि सारी सृष्टिको लाभ पहुँचाया और सर्वदाके लिये चिकित्साको ऐसे भूषणसे सुसज्जित कर दिया जिसके बिना वह आज भी एक विधवाके समान रह जाती। कौन सा ऐसा डाक्टर या वैद्य है जो कीटाणु दूर (Sterilisation) किये बिना चीर फाड़में सफलता प्राप्त कर सकता है।

पासत्यूरका स्वभाव एक वैज्ञानकका ही रहा।

वैज्ञानिक खोजके मुक़ाबलेमें वह किसी भी वस्तुको अच्छा नहीं समझता था। इस विषयमें यह बताना आवश्यक है कि अपने अनुसन्धानोंमें वह इतना जुटा रहता था कि अपने विवाहके दिवस वह कार्य्यकी धुनमें विवाह भी भूल गया और मण्डपमें अपने एक मित्रके खींच लानेपर आया। इससे अधिक प्रमाण देनेकी आवश्यकता नहीं है। पासत्यूरकी जीवनी पढ़कर प्रत्येक नवयुवकके हृदयमें कार्य्य करनेकी उमंग उठनी चाहिये तभी कमसे कम भारत जैसे पिछड़े देशका उद्धार हो सकता है। यह वीर १८९६ ई०में ही सर्वदाके लिये हमसे छीन लिया गया। मुझे तो पूर्ण विश्वास है कि यदि वह १९०१ तक जीवित रहा होता तो पहिला नौबेल पुरस्कार उसीको मिलता। क्योंकि उसके कार्य्यसे अधिक महत्वपूर्ण तथा जनताको लाभदायक और किसीका नहीं हुआ। गढ़ जीतना और बात है और एक राज्य स्थापन करना और बात है। इसी प्रकार अनुसन्धान करना और बात है और अनुसन्धानोंका महत्व तथा चमत्कार दूसरोंके हृदयपर अंकित करना कुछ और ही गौरव रखता है। यह बात पासत्यूरमें थी। उसने केवल उस समयमें कार्य्य ही नहीं किये वरन् उनका महत्व भी दूसरोंपर अंकित किया और अपने जीते जी ही सबका अगुवा बना रहा। बहुधा यह देखा गया है कि मृत्युके पश्चात् ही कार्य्यकी महत्ता जानी जाती है जैसे अवेगोड्रोका सिद्धान्त, परन्तु पासत्यूरके तो जीवनकालमें ही उसके अनुसन्धानोंको सब लोग मानने लगे थे तथा इसके लिये उसकी संसारभरमें प्रतिष्ठा थी। पासत्यूरकी यादगारमें फ्रांस सरकारने उसके नामपर एक नयी प्रयोगशाला खोली जिसमें पासत्यूरकी खोज संबन्धी तथा अनेकानेक विषयोंपर विशेषकर उसके प्रतिष्ठित शिष्य, डुकला विनोग्रैडस्की इत्यादिने कार्य किये हैं तथा कर रहे हैं।

फफूंदी

[ले० बी० एस० निगम, एल० जी०, बी० एस-सी०]

संसारमें अनेक प्रकारके अनोखे तथा आश्चर्य-जनक पौधे देखनेमें आते हैं। इस बातको जानकर अचरज होगा कि फफूंदी भी एक क़िस्मका पौधा है। फफूंदीकी ओर प्राचीन कालसे बहुत कम ध्यान दिया गया है और इसी कारण इनके विषयमें साधारण मनुष्य बहुत कम जानते हैं और जो जानते हैं वह भी बहुत थोड़ा। इनके विषयमें ज्ञानके अभावका कारण इनकी सूक्ष्मता है। इनके पौधे इतने छोटे होते हैं कि बिना अणुवीक्षण यंत्रकी सहायताके नहीं देखे जा सकते यद्यपि उनकी सुन्दरता और रंग मनुष्यके विचारोंको आकर्षित करनेवाले होते हैं। कुछ फफूंदियां बड़ी भी होती हैं जैसे कठफूल खुम्मा गुच्छी इत्यादि। इतनी सूक्ष्म होनेपर भी वैज्ञानिकोंने खोज करके फफूंदी शास्त्र (Mycology) नामकी नयी विद्या बना ली है।

फफूंदियां और हरे पौधोंसे कुछ परे हैं। केवल सूक्ष्म ही नहीं बल्कि थोड़े ही समयमें नष्ट होनेवाली हैं। सबसे बड़ा अंतर उनके खाद्य पदार्थोंमें है। मनुष्य और पौधोंका मुख्य खाद्यपदार्थ कर्बन (Carbon) है जो कि कोयला, काजल, शक्कर, इत्यादिमें होता है। हरे पौधे इसको हवासे लेते हैं। जड़ें धरतीसे खींचकर तनेद्वारा जो पानी पत्तियोंतक पहुँचाती हैं उसमें कर्बनद्वयोषिद् वायु मिलाकर पत्तियां शक्कर बनाती हैं। पत्तियां यह वायु हवासे लेती हैं। यह शक्कर गलकर मांड़के रूपमें बदल जाती है। मनुष्यको कर्बन आटा, फल, मांड़ इत्यादिसे मिलता है और हरे पौधे मनुष्यके कर्बन पानेका मुख्य साधन हैं। फफूंदीका कर्बन लेनेका तरीक़ा और पौधोंसे भिन्न है क्योंकि फफूंदीमें हरियाली (Chlorophyll) न होनेके कारण वह हवासे कर्बन लेकर शक्कर नहीं बना सकती। इसके खाद्यपदार्थ लेनेके दो साधन हैं। कुछ तो हरे जीवित पौधोंसे खाद्य पदार्थ चूसती हैं। ऐसी फफूंदियोंको चूसने-

वाली या पराश्रित फफूंदी (parasitic fungi) कहते हैं। परन्तु कुछ सड़ी हुई चीज़ोंपर रहती हैं और उनसे खाद्य पाती हैं। इन्हें घूरेपरकी फफूंदी कहते हैं। इस प्रकार पौधे जीव और फफूंदीतक सबके सब हवासे ही किसी न किसी रूपमें घूमकर कर्बन पाते हैं। हवामें इस वायुका अंश नाममात्र है और इस बातका भय हो सकता है कि वायुमण्डलमें इस वायुका अभाव हो जानेके कारण किसी समय वनस्पति सर्वथा नष्ट हो जावे। परन्तु न आजतक ऐसा हुआ है और न होनेकी संभावना ही है। इस विचित्रताका कारण यह है कि हरघड़ी वायुमण्डलमें इसकी कमी पूरी होती रहती है। यह कमी चार प्रकारसे पूरी होती है।

(१) सारे जीव और पौधे सांस लेते हैं। सांस लेनेमें ओषजन (Oxygen) हवासे खींचते हैं। ओषजन जलानेवाली वायु है। इसमें शरीरके भोजनके कर्बनमय पदार्थ जल जाते हैं और कर्बनद्वओषिद वायु बन जाती है। बाहर निकलनेवाली सांससे यही अधिकांश निकलती है। इस प्रकार सांसद्वारा वायुमण्डलमें इसकी कमी पूरी होती रहती है। गोदाममें भरे हुए बीज भी सांस लेते हैं। सांसद्वारा निकली हुई हवा पौधोंके लिये खाद्य पदार्थका काम देती है।

(२) लकड़ी, कोयला और पत्ती इत्यादि जलनेपर भी यही वायु (carbon dioxide) धुएँके साथ निकालते हैं और धुआं हवामें मिलकर इसकी कमीको पूरा करता है।

(३) ज्वालामुखी पहाड़ोंसे भी कार्बनिक वायु निकलती है।

(४) अंतिम परन्तु इस कमतीके पूरे होनेका मुख्य सहारा पत्तियोंका सड़ना है। पत्तियोंके सड़नेमें फफूंदी और जीवाणु काम करते हैं। गिरी हुई पत्तियों लकड़ी घास इत्यादिमें कर्बनका बड़ाभारी भंडार होता है। फफूंदी और जीवाणु इस भंडारपर छापा मारकर कर्बनको कर्बनिकाम्लवायुमें बदल देते हैं। इस प्रकार हवामें इसकी कमी क्षण क्षण पूरी होती रहती है। यदि हरी पत्तियों और घासका जमाव होता रहे और फफूंदी और जीवाणु न हों तो पृथ्वीपर इनका इतना ढेर हो जाय कि धरती निर्जीव देख पड़े। इससे मालूम होता है कि फफूंदी और जीवाणु प्रकृतिकी जंजीरकी आवश्यक कड़ियां हैं। यह कड़ियां हर घड़ी काममें लगी रहती हैं और इन्हींके कारण प्रकृतिका तराजू टंगा है। यह संसारके प्राणिमात्रके जीवनके आधार हैं। यदि फफूंदी न होती तो संसार निर्जीव होता।

फफूंदी कई और प्रकारसे मनुष्य केलिये लाभदायक है। सिरका, अर्कनाना और शराब इत्यादि बहुतसे मनुष्य सेवन करते हैं परन्तु यह जाननेकी कभी कोशिश नहीं करते कि उनको यह चीजें कैसे मिलती हैं। इन चीज़ोंके तय्यार करनेमें ख़मीर काममें आता है। खमीर भी एक तरहकी फफूंदी है जिसका पौधा गुरियोंकी मालाकी तरह होता है। इस फफूंदीको अगर शरबत या रसमें उगाया जाये तो इनके उठने या उगनेपर सिरका, शराब इत्यादि बनते हैं। घूरेपरकी फफूंदीकी ही एक क़िस्म ख़मीर है। इसके फैलनेके लिये ओषजनकी आवश्यकता नहीं होती। फफूँदी सांस लेकर रसको सिरका या शराबके रूपमें बदल देती है। शराब बननेके लिये ओषजनकी आवश्यकता नहीं होती क्योंकि ख़मीरका पौधा ओषजन न होनेपर भी सांस लेकर इसको शराबके रूपमें बदल देता है। ओषजनके अभावमें सांस लेनेको उठना (Fermentation) कहते हैं। इससे पहले शराब बनती है और फिर शराबके बदलनेसे सिरका बनता है। आटेमें ख़मीरके बढ़नेसे आटा उठकर रोटी बनाने योग्य हो जाता है। ख़मीरके पौधेके सांस लेनेसे कर्बनिकाम्ल वायु पैदा होती है जो कि आटेमें बुलबुलोंके रूपमें इकट्ठा हो जाती है।

छेना मिठाई बनानेके काममें आता है और इसको पकानेमें फफूंदी काम करती है।

दालके वंशके पौधे खाद बननेके लिये जोतकर खेतमें दबा दिये जाते हैं। यह पौधे सड़कर खादका काम देते हैं। सड़ानेके लिये जीवाणु और फफूंदीकी

आवश्यकता होती है। खादके ढेरोंमें भी फफूंदी गोबरको सड़ाती है।

बहुत सी फफूंदी बड़ी होती हैं जो कि खादके ढेरोंपर, पेड़के तनोंपर और खेतोंमें पायी जाती हैं। इनमेंसे कुछ खायी भी जाती हैं। और उन खायी जानेवाली क़िस्मोंकी खेती भी होती है। खायी जाने वाली क़िस्में खुम्मा; कुच्छी इत्यादि हैं। दाम ५) रु० सेरतक होते हैं। इनकी खेती करनेमें बहुत लाभ होनेकी संभावना है।

कुछ फफूंदी पानीकी (Algae) काईके साथ संयुक्त होकर रहती हैं। इस संयुक्त रूपका उदाहरण छरीला है। बर्फसे ढकी हुई पहाड़ियोंपर काई और छरीला ही जीविकाके आधार हैं।

इस प्रकारसे फफूंदी मनुष्यके लिये केवल लाभदायक ही नहीं है बल्कि संसारमें जीविकाका आधार भी है। कुछ ऐसी भी फफूंदियां हैं जो पेड़ और पौधोंमें बीमारी पैदा करती हैं और इस तरह फफूंदीद्वारा मनुष्यको बहुत कुछ आर्थिक हानि पहुँचती है। जिस वस्तुसे मनुष्यको इतना लाभ और बहुत हानि होनेकी संभावना है उसके विषयमें ज्ञान पैदा करनेका उद्योग करना परम आवश्यक है। हर एक मनुष्य विशेषकर फफूंदी-शास्त्र-ज्ञाताओंको इनके विषयमें खोज करना बहुत उचित है। केवल उनके विषयमें ज्ञान ही अधिक न होगा बल्कि उनसे मनुष्य लाभ उठा सकेगा और अपनेको उनके द्वारा हानि पहुँचनेसे बचा सकेगा।

परवर्ती बाटरियां

[ले० श्री सालिग्राम भार्गव, एम० एस-सी०]

एक कांच या मिट्टीका बरतन ब जिसपर गंधकके तेजाबका कोई असर न पड़े लेकर उसमें हलका गंधकका तेजाब (पानीमें मिला हुआ प्रायः ऐसा मिश्रण जो आयतनके हिसाब से ५ हिस्से पानीमें एक हिस्सा शुद्ध गन्धकका तेजाब मिलाकर बनाया हो) भर दीजिए। दो नलियां लीजिए जिनके पेंदोंमेंसे प्लेटिनमके तार गला दिये गये हों। बाहरकी ओर इन तारोंका लम्बा होना आवश्यक नहीं है परन्तु भीतरकी ओर नलियोंके बराबर (अथवा कुछ ही कम) लम्बे होने चाहिएं। इनमें हलका तेज़ाब भरकर डट्टोंके सहारे तेज़ाब भरे बरतन 'ब' में उलटे लटका दीजिए जैसा कि चित्रमें दिखलाया गया है।
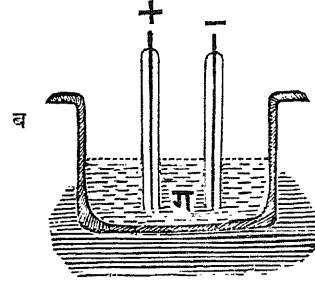
चित्र १

किसी बाटरीका (या अन्य एकदिक-धारा-जनकका) धन सिरा बायीं नलीके तारसे और ऋण सिरा दहिनी नलीके तारसे जोड़कर धारा बहाइए, बायीं नलीमें ओषजन और दहनी नलीमें उज्जन जमा होते जावेंगे। कुछ देर धारा बहाकर बाटरीको खोल दीजिए और किसी धारासूचक या धारामापक-को नलियोंके प्लेटिनमके तारोंसे जोड़ दीजिए, जोड़ते ही धारासूचकसे पता चलेगा कि उसमें धारा बहने लग गयी है। नलियोंमें जो गैसें जमा हो गयी थीं उनके आयतन कम होते जाते हैं और कुछ देर बाद गैसें ग़ायब हो जावेंगी और धारा भी चलना बन्द हो जावेगी।

अब यदि फिर पहलीकी नाई बायीं नलीके तारसे किसी बाटरीके धन सिरेको और दहिनी नलीके तारसे ऋण सिरेको जोड़कर धारा बहावें तो नलियोंमें गैसें फिर भर जावेंगी, और बाटरीको फिर अलग कर यदि उसकी जगह धारामापक अथवा कोई दूसरा यंत्र जोड़ दिया जावेगा तो उसमें धारा बहने लगेगी, और जबतक गैसें समाप्त न हो जावेंगी बहती रहेगी

यह उलट फेर कितनी ही बार किया जा सकता है।

यों कहिए कि इस यंत्रने थोड़ी देर बाटरीका काम किया। धारामापकमें धाराकी दिशासे ज्ञात होगा कि बायीं नलीका तार इस बाटरीके धन सिरे और दायीं नलीका तार इसके ऋण सिरेका काम करता है। पहलेपहल इस प्रयोगको ग्रोवने किया और इस बाटरीका नाम गैस बाटरी रखा। हम इस बाटरीको गैस परवर्ती बाटरी कहेंगे। जिस बाटरीसे इसमें पहिले धारा बहाते हैं उसको भरनेवाली बाटरी कह सकते हैं। बाटरीके अतिरिक्त किसी अन्य धारा-जनकसे भी यह काम लिया जा सकता है। भरनेवाली बाटरीसे इस परवर्तीय बाटरीमें धारा बहाना इसका भरना कहलाता है। भरनेवाली बाटरीको अलगकर धारामापक अथवा किसी अन्य यंत्रमें इस परवर्तीय बाटरीसे धारा बहाना इसका खाली करना कहलाता है। भरनेके समय धारा बायीं नलीके तारसे तेजाबमें प्रवेश करती है और दहनी नलीके तारद्वारा निकलती है अर्थात् बायेंसे दायेंको जाती है, परन्तु खाली करते समय धाराकी दिशा उलट जाती है, क्योंकि जैसा अभी बतलाया, धारा बाहरी चक्करमें बायीं नलीके तारसे प्रवेश करती है और दायीं नलीके तारसे बाटरीके अंदर दाखिल होती है। धारा तो बंद चक्करमें चलती है इसलिए इसको भीतर दायींसे बायीं ओर जाना चाहिए। अर्थात् भरते समय बाटरीके भीतरी चक्करमें धारा जिस दिशामें बहायी जाती है खाली होते (करते) समय बाटरीके भीतरी चक्करमें धाराकी दिशा उलटी होती है या यों कहिये कि खाली करनेवाली धाराक दिशा भरनेवाली धाराकी दिशाकी उलटी होती है।

यहां हमने पहले बाटरीमें धारा बहाकर नलियोंमें गैसोंकी मात्रा भर ली और फिर बाटरीसे धारा बहाकर उनको गायब करा दिया। गैसोंकी मात्राओंका बिजलीकी मात्रासे यह सम्बन्ध है।

मा = म क

= म धस

यहां मा किसी पदार्थकी मात्रा जो ध धाराके स, सेकंडतक बहनेसे निकलती है और म उसका विद्युत योगभार है। 'क' कूलम्बोंकी संख्या अथवा एम्पों और सेकंडोंका गुणनफल है।

इस समीकरणसे यह तो स्पष्ट ही है कि जितनी अधिक देरतक एक नियत प्रबलताकी धारा बहायी जावेगी गैसोंकी मात्रा उतनी ही अधिक जमा होगी और खाली करते समय एक नियत प्रबलताकी धारा अधिक समयतक मिल सकेगी। जितनी बिजलीकी मात्रा किसी बाटरीसे मिल सकती है वह उसकी समाई कहलाती है। कूलम्ब बहुत छोटी इकाई है इसलिए इसकी ३६०० गुणी अर्थात् एम्पियर-घंटा इकाई मानकर बाटरीकी समाई एम्पियर घंटोंमें दी जाती है। जैसे किसी मोटरकारकी बाटरीकी समाई ८० एम्पियर-घंटे हो तो इससे यह अभिप्राय है कि पूरी तौरसे भरी हुई बाटरीसे ८ एम्पकी धारा १० घंटेतक ली जा सकती है। जितनी बिजलीकी मात्रा किसी बाटरीमें भरी जा सकती है और जितनी उससे खाली करते समय ली जा सकती है दोनोंमें सम्बन्ध अवश्य ही है। इसलिए यदि खाली करते समय अधिक मात्रा मिल सकती है तो भरते समय भी अधिक मात्रा भरना पड़ेगी। ग्रोववाली बाटरीमें जो मात्रा भरी जा सकती थी नलियोंके आयतनपर निर्भर थी। आयतन बढ़ा देनेसे समाई बढ़ जावेगी और घटा देनेसे घट जावेगी।

ग्रोवकी बाटरी प्रचलित नहीं है क्योंकि इससे प्रबल धारा नहीं मिल सकती। प्लांटेने दो सीसेकी पत्तियां हलके तेजाबमें रखी और बाटरीसे दोनों पत्तियोंके बीचमें धारा बहायी। जो पत्ती बाटरीके धन सिरेसे जुड़ी हुई थी और जिसपर ओषजन आता था उसका सीसा ओषजनसे मिलकर सीसा द्विओषिद (सी ओ$_2$ Lead peroxide PbO_2) बनता जाता था। थोड़ी देरके बाद ओषिदका खोल उस पत्तीपर चढ़ गया। इसके बाद अधिक सीसा ओषजनसे नहीं मिल सकता था। जिस पत्तीपर उज्जन जाता था उसपर सिवा उसके साफ़ हो जानेके और कोई परिवर्तन उसमें नहीं हुआ। यह दोनों पत्तियां

तेजाबमें रखी हुई बाटरीका काम दे सकती हैं। यदि किसी धारामापकसे यह जोड़ दी जावें तो पता चलेगा कि द्विओषिद्से ढकी हुई पत्तीसे बाहरी चक्करमें धारा दाखिल होती है और दूसरी पत्तीको लौटती है अर्थात् द्विओषिदसे ढकी हुई पत्ती धन सिरे और दूसरी पत्ती ऋण सिरेका काम देती है। द्विओषिदसे ढकी हुई पत्तीको धन पत्ती और दूसरीको ऋण पत्ती कहेंगे। प्लांटेने यह भी देखा कि यदि यह बाटरी थोड़ी देर बिना कामके छोड़ दी जावे या दोनों प्लेटोंको एक छोटे तारसे जोड़ दें जिससे बाहरी चक्कर छोटा हो तो ओषिद् गंधेतमें बदल जाता है। फिर उसी दिशामें धारा बहानेसे (ताकि ओषजन इस पत्तीपर आवे) गन्धेत द्विओषिदमें बदल जाता है। अधिक समयतक धारा बहानेसे सीसेकी अधिक मात्रा ओषिदमें बदल जाती है। हर बेर भरने और ख़ाली करनेसे ज्यादा ज्यादा सीसा बदलता जावेगा अर्थात् प्लेटकी समाई बढ़ती जावेगी। कोरे सीसेवाली बाटरीको ख़ाली करनेपर भी ऋण प्लेटमें कोइ परिवर्तन नहीं आया। इसके बाद यह देखा गया कि यदि ओषिदसे ढकी हुई प्लेटको बाटरीके ऋण सिरेसे जोड़कर पत्तियोंके बीचमें धारा बहायी जावे, जिससे इस प्लेटपर उज्जन आने लगे, तो ओषिद् गन्धेतमें बदलता हुआ अधिक देरतक धारा बहानेसे स्पंजी सीसेमें बदल जावेगा। ऐसे स्पञ्जी सीसेवाली पत्ती ख़ाली करते समय गन्धेत-में बदल जाती है जो भरते समय फिर स्पञ्जी सीसे में बदल जावेगी। साधारण सीसेकी पत्तियोंको ओषिदसे ढकना और स्पञ्जी सीसेमें बदलना (धन और ऋण) पत्तियोंका बनाना कहलाता है।

प्लांटेने यह साबित कर दिया कि यदि तेज़ाब मिश्रित पानीमें सीसेकी दो पत्तियाँ रखकर उनके बीचमें किसी धारा-जनकसे धारा बहायी जावे तो धारा-जनकके धन सिरेसे जुड़ी हुई पत्ती द्विओषिद्के खोलसे ढक जाती है। ऐसी ओषिदसे ढकी हुई पत्ती और दूसरी सीसेकी पत्ती तेज़ाबमें रखी हुई बाटरीका काम करती है। ओषिद वाली पत्ती इस बाटरीकी धन पत्ती है और कोरे सीसेवाली इसकी ऋण पत्ती कहलाती है, जिससे यह मतलब है कि जो यंत्र इन प्लेटोंसे जोड़ा जावेगा उसमें ओषिद् ढकी हुई प्लेटसे धारा प्रवेश करेगी और दूसरी प्लेटको लौट जावेगी। यह भी उन्होंने दिखला दिया कि यदि ओषिद् ढकी हुई प्लेटको धारा-जनकके ऋण सिरेसे जोड़ दें अर्थात् पत्तियोंके बीचमें धाराकी दिशा बदल दें तो ओषिद् ढकी हुई प्लेट स्पञ्जी सीसेमें बदल जाता है जो कोरे सीसेकी प्लेटकी अपेक्षा कहीं अच्छा काम करता है। कोरा सीसा बाटरी खाली करते समय गन्धेतमें नहीं बदल जाता था और भरते समय यदि कोरा सीसा हो तो स्पञ्जी सीसा नहीं बनता क्योंकि उज्जन गन्धेत-को ही भरते समय स्पञ्जी सीसेमें बदल सकता है। स्पञ्जी सीसेमें भरते और खाली करते समय परिवर्त्तन होने लगा जो कोरे सीसेमें नहीं होता। इतने वृत्तान्तके बाद यह समझमें आना आसान है कि एक ऐसे बरतनमें जिसपर तेज़ाबका असर न पड़े तेज़ाब भरकर यदि उसमें दो सीसेकी पत्तियां रख दें और इनके बीचमें थोड़ी देरतक धारा एक दिशामें और थोड़ी देरतक उलटी दिशामें बहावें तो चंद बेर ऐसा करनेसे प्लेटें बन जावेंगी और अन्तमें एक दिशामें कुछ देरतक धारा बहाकर इस परवर्ती बाटरीको भर लिया जा सकता है। भरनेके बाद इससे काम ले सकते हैं। जब यह खाली होनेको आवे फिर भर लिया जावे। इसी प्रकार इसको मुद्दततक इस्तेमाल कर सकते हैं।

यह तो पाठकोंको साफ़ मालूम हो गया होगा कि प्लांटेकी विधिसे प्लेटोंके बनानेमें बड़ी देर लगती है क्योंकि कई बार धारा एक दिशा और उलटी दिशामें बहानी पड़ती है। फौरेने दिखलाया कि प्लेटोंके बनानेका समय बहुत कम किया जा सकता है और धाराकी दिशाके भी बदलनेकी आवश्यकता न होगी यदि कोरे सीसेकी प्लेटें न लेकर सिंदूरसे ढकी हुई प्लेटें ली जावें। सींदूर भी सीसेका ओषिद है जो कि द्विओषिदसे कम दर्जेका है। द्विओषिदमें सीसेके ७ भाग ओषजनके एक भागसे मिले होते हैं और सींदूरमें १० भाग सीसेके एक भाग ओषजनसे मिले होते हैं। इसलिए फौरेने

कहा कि जब ऐसे प्लेटोंको तेज़ाबमें रखकर धारा बहायी जावेगी तो धन सिरेसे जुड़ी हुई प्लेटका सींदूर जिसपर ओषजन आवेगा द्विओषिदमें जलदी जलदी बदल जावेगा और धन प्लेट बन जावेगी। दूसरी प्लेट भी जो ऋण सिरेसे जुड़ी हुई है द्विओषिदसे ढकी हुई प्लेटके मुकाबिले जलदी स्पञ्जी सीसेमें बदल जावेगी और ऋण प्लेट बन जावेगी। उन्होंने सीसेकी टट्टियां बनाकर उनके खानोंमें गंधकके तेज़ाबमें सींदूरकी लेई सी बनाकर भर दिया और जोरसे दबा दिया जिससे कि सींदूर खानोंमें ठहरा रहे। इनको फौरेकी लेईदार प्लेटें कह सकते हैं।

आजकल फौरेकी विधिमें केवल इतना परिवर्तन कर दिया गया है कि ऋण प्लेटकी टट्टीको भी धन प्लेटकी टट्टीकी तरह सींदूरसे न भरकर मुरदारसंगसे भरते हैं। मुरदारसंग भी सीसेका एक ओषिद सींदूरसे भी कम दर्जेका है। उसको स्पंजी सीसेमें बदलनेमें सींदूरसे भी कम समय लगता है। इन दोनोंको प्लेटोंपर थमानेके लिए अनेक प्रकारकी टट्टियां बना दी जाती हैं जिनका पूरा हाल बताना कठिन है क्योंकि बहुतसे बाटरियोंके बनानेवाले उनको बकसके अन्दर बन्द करके भेजते हैं जिस कारण प्लेटें दिखलाई भी नहीं देती हैं। देखनेमें ऐसा ही आया है कि धन प्लेटें टट्टीके ही रूपमें होती हैं। टट्टीके खानोंमें सींदूर भरा रहता है। इनका रंग गेरुवा होता है। ऋण प्लेटें आजकल बकसके ढंगकी अधिक प्रचलित हैं। जालीदार टट्टियां बनाकर दोनोंके बीचमें मुरदासंग रखकर दोनोंको दबा देते हैं। मुर्दारसंग दोनोंके बीचमें ठहरा रहता है। गोया मसाला जालीदार टट्टियोंके बकसके अन्दर बन्द रहता है। इन प्लेटोंके चित्र नीचे दिये जाते हैं।

बाटरीकी समाई मसालोंकी मात्रापर निर्भर है। यदि सब मसाला एक ही प्लेटपर लगाया जावे तो बड़ी समाईवाली बाटरियोंकी प्लेटें बड़ी लम्बी चौड़ी और बेढंगी हो जावें। धन प्लेटपर १ पौंड मसाला (सींदूर) १०९ एम्पियर घंटेके लिए आवश्यक है इसलिए समाईके अनुसार जितने मसालेकी जरूरत है उतना एकही लम्बाई चौड़ाईकी कई प्लेटोंपर लगा दिया जाता है। धन प्लेटोंको एक डन्डेसे जोड़ देते हैं। इसी तरह ऋण प्लेटोंको दूसरे डन्डेसे जोड़ देते हैं। ऋण प्लेटपर १ पौंड मसाला (मुर्दारसङ्ग) ७२ एम्पि घण्टेके लिए आवश्यक है। इस प्रकार कई प्लेटें भी ऐसा ही काम करती हैं जैसे एक प्लेट। यदि हारबद्ध बाटरियां ध्यानमें हों तो यह बात आसानीसे समझमें आ जावेगी।
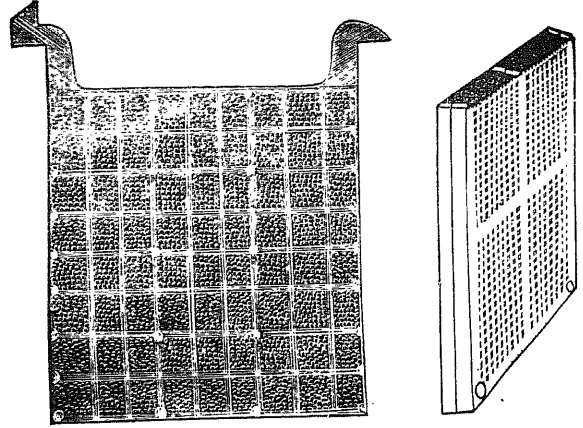
धन प्लेट ऋण प्लेट

चित्र २

मान लीजिए कि एक बाटरीके लिए समाईके हिसाबसे ९ इञ्च लम्बी और ८ इञ्च चौड़ी ३ धन प्लेटोंकी आवश्यकता है तो उनको एक ओर एक सीसेके डन्डेसे जोड़ देंगे। इस बाटरीमें चार ऋण प्लेटें होंगी जो दूसरी ओर एक सीसेके डन्डेसे जुड़ी होंगी। आमने सामने डन्डे रखनेसे धन और ऋण सिरोंके मिल जानेका भय कम रहता है। यदि वह किसी प्रकार मिल जावें तो छोटे (सूक्ष्म) चक्करमें प्रबल धाराके बहनेसे भरी हुई बाटरियां केवल खाली ही नहीं हो जावेंगी बलकि प्लेटोंके खराब हो जानेका भी भय है।

साधारण और बिजली घरकी बाटरियोंके बकस या तो शीशेके होते हैं या सीसेके होते हैं जो लकड़ीके बकसके अन्दर रहते हैं। मोटरकारवाली बाटरियोंके

बकस एबोनाइटके होते हैं। एबोनाइटका एक बक्स लेकर उसमें दीवारें बनाकर जितनी बाटरियां रखना हो उतने उसके भाग कर दिये जाते हैं। इन प्लेटोंके ऊपर सीसेकी कोहनियां लगी होती हैं जो शीशेके बकसकी दीवारोंपर रखकर प्लेटें बकसके अन्दर भुला दी जाती हैं। वह बकसके पेंदेके ऊपर रहती हैं। नीचे मसालेका कचरा जमा होता रहता है क्योंकि कुछ न कुछ कचरा अवश्य ही गिरता है। यदि इन प्लेटोंके बीच कचरा जमा हो जावे तो बाटरी तुरन्त खाली हो जावेगी। प्लेटोंके आपसमें मिलने और किसी वाहकसे जुड़ जानेसे सदैव बचाना चाहिए। यदि सीसेका बकस हो तो उसकी दो आमने सामने वाली दीवारोंके बग़लमें शीशेकी प्लेटें रखी रहेंगी और प्लेटें इन शीशेकी प्लेटोंपर झूलती रहेंगी। प्लेटोंको अलग और समानान्तर झूलनेके लिए इनके बीचमें शीशेकी उसी मोटाईकी नलियां जितना इनको दूर रखना चाहें रख दी जाती हैं। कभी कभी एबोनाइटके चिम्टे वा लकड़ीकी प्लेटें या किसी मसालेकी बनी हुई मसामदार प्लेटें भी रख दी जाती हैं। किसी बाटरीमें भी ऋण प्लेटें धन प्लेटोंसे अधिक होंगी और उनकी संख्याओंमें भेद एकके बराबर होगा क्योंकि ऐसा देखनेमें आया है कि यदि धन प्लेटका कोई पृष्ठ भी ऋण प्लेटसे ख़ाली रह गया तो धन प्लेट बरड़ जाती है और दूसरे जो पृष्ठ ऋण प्लेटके सामने नहीं आया उतना उसका मसाला खराब गया। सिरेकी ऋण प्लेटोंपर उसी तरफ़ जालीदार टट्टी रहती है जो धन प्लेटके सामने होती है, दूसरी तरफ़ ठोस रहती है।

ऐसा नहीं है कि प्लांटे विधिसे बनायी हुई प्लेटें काममें आती ही न हों। इस विधिसे बनायी हुई धन प्लेटें बड़ी मज़बूत और कीमती होती हैं। जहाँ प्रबल धारा बहानेकी ज़रूरत होती है (जैसे रेल अथवा ट्राम चलानेमें) वहाँ इसी विधिसे बनायी हुई धन प्लेटें बाटरियोंमें इस्तेमाल करते हैं। बाक़ी सब कामोंके लिये बाटरियाँ लेईदार ही होती हैं।

चाहे जिस विधिसे तैयार किये हुए प्लेट लिये जावें, बना हुआ धन प्लेट सीसा द्विओषिद् सी ओ$_{२}$ से ढका होगा और ऋण प्लेट स्पंजी सीसेसे खाली हो लेनेपर दोनों प्लेटोंपर सीसा गंधेत आ जावेगा फिर भरनेपर द्विओषिद् और स्पंजी सीसा हो जावेंगे। इसी क्रियाको नीचे दी हुई समीकरणसे सूचित करते हैं।

$$\text{सी ओ}_{२} + \text{२ उ}_{२}\text{ ग ओ}_{४} + \text{सी} \rightleftharpoons \text{सी गओ}_{४} + \text{२ उ}_{२}\text{ ओ} + \text{सी ग ओ}_{४}$$
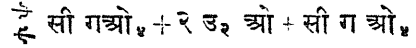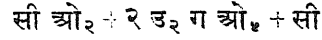
अभीतक रसायनज्ञोंका ऐसा मत था परन्तु अब (Fery) फेरीके प्रयोगोंद्वारा उनके मतके अनुसार क्रियाएँ नीचे दी हुई समीकरणसे सूचित करनी चाहिए

$$\text{सी} + \text{उ}_{२}\text{ ग ओ}_{४} + \text{सी}_{२}\text{ ओ}_{५} \rightleftharpoons \text{सी ग ओ}_{४} + \text{२ सी ओ}_{२}$$
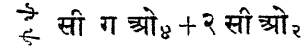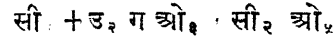
इस समीकरणमें सी$_{२}$ ओ$_{५}$ और सी ग ओ$_{४}$ ऐसे पदार्थ हैं कि जिनसे लोगोंका बहुत ही कम परिचय है परन्तु फेरी कहता है कि सी$_{२}$ ओ$_{५}$ यौगिक तो नयी बनी हुई प्लेटपर उसको मिला। इसका रंग काला होता है और यह धीरे धीरे सी ओ$_{२}$ में बदलता जाताहै। इसके साथ साथ धनप्लेटका रंगभी हलका पड़ता जाता है। सी$_{२}$ ग ओ$_{४}$ स्लेटके रंगका होता है और Rollet रोलेटने इसकी जाँच इस प्रकार की। नयी बनी हुई प्लेटको धोकर (Ammonium Acetate) अमोनियम सिरकेतमें डाला जिसमें सी$_{२}$ ग ओ$_{४}$ घुल जाता है और घोलकी जांचपर पता चला कि सीसेकी और गंधककी मात्राएं घोलमें इतनी ही थीं जितनी सी$_{२}$ ग-ओ$_{४}$ के होनेसे होतीं। ७२ घंटेतक प्लेटको हवामें छोड़नेके बाद सी$_{२}$ ग ओ$_{४}$ के सिवाय और कुछ न मिला। यह मान लेनेसे कि पहले नये यौगिक बनते हैं तो दोनों प्लेटोंपर खाली होते समय सीसम गंधेतका बनना समझमें आने लगता है। पुराने मतमें यह बड़ी भारी त्रुटि थी क्योंकि यह तो मानी हुई बात है कि गन्धकके तेजाबके घोलमें उ और ग ओ$_{४}$ दो ही यवन होते हैं। धारा बहानेपर

एक एक ओर दूसरा दूसरी ओर चला जाता है जिस प्लेटपर ग ओ, गया वहांतो गन्धेत बन गया। परन्तु दूसरी प्लेट पर गन्धेत कैसे बना, फेरीकी मतसे यह त्रुटि दूर हो गयी।

यह भी कहा जाता है कि फेरी कार्वान Fery Carbone बाटरीमें वे खराबियाँ नहीं होतीं जो साधारण बाटरियोंमें पायी जाती हैं। क्योंकि यह नये सिद्धान्तको ध्यानमें रखकर बनायी गयी है।

बाटरियोंको भरनेके लिए बहुधा १·१९० घनत्वका तेज़ाब बनाया जाता है। यह १ हिस्सा तेज़ाब ५ हिस्से पानीमें (आयतनके हिसावसे) मिलानेसे बनता है। तेज़ाबका यह घनत्व तो जब होगा जब उसका तापक्रम १५°श हो। यदि अधिक हो तो पानी और तेज़ाब इन मात्राओंमें मिलानेपर भी घनत्व कुछ कम ही मिलेगा। तेज़ाव बनाते समय इस बातका भी ध्यान रखना चाहिये। पानी और तेज़ाब बिलकुल शुद्ध होने चाहिये। पानी कलई किये हुए भपकेका खिंचा हुआ होना चाहिये और तेजाबमें भी कोई चीज़ मिली हुई नहीं होनी चाहिये। पानीमें तेज़ाब मिलानेके लिये पानीको एक सीसेके बकसमें भरते हैं, तेज़ाब मिलाते जाते हैं और किसी लकड़ीके डंडेसे हिलाते जाते हैं। हिलाना बहुत आवश्यक है यदि हो सके तो बाटरीमें छोड़नेके पहले तेज़ाबको पहले बरतनसे दूसरे बरतनमें उलट फेरकर खूब मिला लेना चाहिये जिससे कुल मिश्रितका एक ही घनत्व हो जावे। हमारे देखनेमें ऐसा आया है कि यदि तेज़ाब मिलाकर पानी छोड़ दिया जावे तो मिश्रितकी ऊपर नीचेकी तहोंका घनत्व एकसा नहीं होता। बाटरी बनानेवाले अपनी हिदायतोंमें जो बाटरीके साथ भेजते हैं अवश्य ही लिख देते हैं कि किस घनत्वका तेज़ाब चाहिये। जब पानीमें तेजाब मिलाया जाता है तो मिश्रित बड़ा गरम हो जाता है। गरम मिश्रित बाटरीमें कभी नहीं छोड़ना चाहिए। तेज़ाब मिलाकर मिश्रितको ठण्ढा होनेके लिए रख देना चाहिए। जब कमरेके तापक्रमपर आ जावे और बाटरीके भरनेकी तैयारी हो जावे तब बाटरीमें डालना चाहिए। तेज़ाब डालनेके बाद बाटरीको "भरना" अर्थात् उसमें भरनेवाली बिजलीकी धारा बहाना चाहिए। यदि देर हो जायगी तो प्लेटोंके खराब हो जानेका डर है। कोई कोई बाटरी ऐसी होती है जिसके बनानेवाले तेज़ाब भरकर कुछ देर बाद भरने की हिदायत करते हैं। ऐसे मामलोंमें उनकी हिदायतकी पाबन्दी अत्यन्त आवश्यक है।

नीचे दिये हुए चित्रोंमें यह दिखलाया गया है कि तेज़ाबकी विशिष्टबाधा पानीमें तेज़ाबकी मात्रा बढ़ाने घटानेसे किस प्रकार बदलती है। इससे यह मालूम होगा कि जब तेज़ाबकी मात्रा पानीमें ३% हो तो विशिष्ट बाधा कमसे कम होती है। भीतरी बाधा कम करनेके लिए यह अच्छा होगा कि जहाँतक हो सके तेज़ाब इसी दरजेका हो। यहां यह बतला देना आवश्यक है कि देखनेमें यह आया है कि यदि तेज़ाबका घनत्व १·३००से अधिक होता है तो ऋण प्लेटको खाने लगता है जिससे यह मतलब है कि इससे कम घनत्ववाले तेज़ाबमें रखी हुई ऋण प्लेटपर तेज़ाब-

चित्र ३—प्रतिशत तेज़ाब के हिसाब से मात्रा
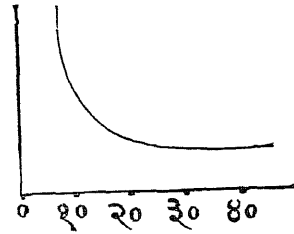
का असर तभी पड़ता है जब उसमें धारा चलती है वरना कोई असर नहीं पड़ता। यदि तेजाबका घनत्व १·३००के आसपास या अधिक हो तो बिना धाराके भी प्लेटपर तेज़ाबका असर हो जायगा। यदि तेज़ाबका घनत्व १·१०० से कम हो तो बाटरीमें रासायनिक क्रिया (घन प्लेटका द्विओषिदसे ढक जाना और ऋण प्लेटको स्पंजी सीसेमें बदलना) ठीक ठीक नहीं होती। इसलिए तेज़ाबका घनत्व इनही संख्याओंके बीचमें रखना पड़ता है। जब १·१९० घनत्वका तेज़ाब भरकर बाटरी भरी जाती है तो जब

बाटरी भर चुकते हैं तो उसका घनत्व १'२०० हो जाता है। खाली करते समय चूंकि प्लेटोंपर ओषिद और स्पंजी सीसेके बदले गंधेत बनने लगता है तेज़ाबका घनत्व गिरने लगता है। इसीलिए बड़ी बाटरीमें घनत्वमापक डालकर रखा जाता है क्योंकि तेज़ाबके घनत्वसे बाटरीकी अवस्थाका पता लगता रहता है। परन्तु कोरे घनत्वपर भरोसा न करके बाटरीके सिरोंका अवस्थाभेद भी देख लेना चाहिए। जब तेज़ाब छोड़ा जाता है तो बाटरीके सिरोंका अवस्थाभेद १'५ वोल्टके लगभग होता है। जब बाटरी भरनेको आती है तो यह अवस्थाभेद उस अवस्थामें जब कि भरनेवाली धारा बह रही हो २'५ वोल्टके बराबर होगा। कोई कोई छोटी छोटी बाटरियोंमें यह २'७५ वोल्टके बराबर भी हो जाता है। जितना अवस्थाभेद (वोल्टन) बाटरीके पूरे भर जानेपर होगा वह बाटरी बनानेवाले हिदायतोंमें लिख देते हैं। जब बाटरी खाली करने लगते हैं तो उसके सिरोंका अवस्थाभेद बहुत देरतक तो दो वोल्टके लगभग ही रहता है परन्तु जैसे जैसे बिलकुल 'खाली' अवस्थाको पहुँचती है यह कम होने लगता है। कितने अवस्था भेदपर बाटरीसे धारा लेना बंद कर देना चाहिए यह भी हिदायतोंमें दिया रहता है। बहुधा उस समय खाली करना बिलकुल बंद कर दिया जाता है जब वोल्टन १'८५ वोल्टके लगभग होता है।
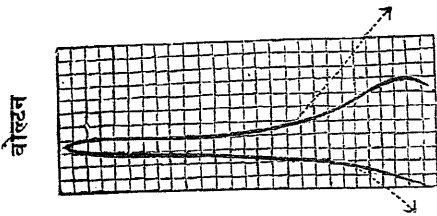
चित्र १८—इस चित्रके वक्रोंसे पता चलता है कि खाली करते और भरते समय वोल्टनमें कैसे अन्तर पड़ता है।

बाटरीको जिस धारासे साधारणतः भरना चाहिए वह बनानेवाले लिख देते हैं। भरनेवाली धारा उससे अधिक कभी नहीं होना चाहिए। बहुधा उससे आधी या तिहाई प्रबलताकी धारा बहाते हैं। इससे भरनेमें समय तो कुछ अधिक लगता है परन्तु किसी दुर्घटनाका भय नहीं रहता। तिहाईसे कम धारा अवश्य नहीं होनी चाहिए। साधारण धारासे भरनेमें ४०—६० घंटे लगते हैं। साधारण धाराकी आधी धारासे भरनेमें ७०—८० घंटे लगेंगे। बाटरीको जब भरने लगते हैं तो गैसें बहुत कम (या बिलकुल नहीं) निकलती हैं। यदि निकलती हैं तो एक गैस ओषजन धन प्लेटसे। परन्तु जब बाटरी भरनेकी अवस्थाको पहुँचती है तो दोनों प्लेटोंसे दोनों गैसें (ओषजन और उज्जन) निकलने लगती हैं। उनके बुलबुले बड़े बड़े होते हैं। इसी कारण जब भरनेकी अवस्थाके निकट पहुँचते हैं, यदि साधारण धारासे भी भरना आरंभ किया हो, तो धारा दुर्बल कर देते हैं क्योंकि बड़े बड़े बुलबुले प्लेटोंको हानि पहुँचा देते हैं।

इन बुलबुलोंका उठना बाटरीका 'गैस करना' कहलाता है। यह बाटरीके भरनेकी निशानी है।

बाटरीकी भरनेकी साधारण धाराके साथमें जो प्रबलसे प्रबल धारा उनसे ली जा सकती है (खाली करनेके समय) वहभी बाटरी बनानेवाले लिख देते हैं। खाली करनेवाली धारा भी कभी इससे अधिक नहीं होना चाहिये क्योंकि इससे भी प्लेटोंको हानि पहुँच जाती है। यदि हिदायतें खो जावें तो धन प्लेटोंके दोनों पृष्ठोंका क्षेत्रफल (वर्ग इञ्चोंमें) निकाल कर २५से भाग देकर जो संख्या मिले उसको साधारण भरनेवाली धारा समझना चाहिये। साधारण खाली करनेवाली धारा तो इससे कम या बराबर ही होगी।

बनानेवाले बाटरियोंकी समाई भी लिख भेजते हैं जिससे आप यह अनुमान लगा सकते हैं कि खाली करते समय कितनी देरतक आप एक नियत प्रबलताकी धारा उससे ले सकते हैं। मान लीजिये कि एक बाटरीकी समाई ८० एम्पियर घंटे दी हुई है

और इससे प्रबलसे प्रबल धारा जो ली जा सकती है वह ८ एम्प है तो इसका यह मतलब है कि ८ एम्प की धारा १० घंटेतक (४ एम्पकी धारा २० घंटे तक) ली जा सकती है। परन्तु इससे पहिले ही धारा बहाना बन्द करके फिर भर लेना ज्यादा उचित है।

बाटरियोंमें तेज़ाब प्लेटोंके आध इञ्च ऊपर रहना चाहिये और ज्यों ज्यों पानी उड़ता जावे त्यों त्यों पानी शुद्ध खिंचा हुआ डालते जाना चाहिये। तेज़ाब केवल एक बेर बाटरी 'भरते' समय डालना चाहिये।

बाटरीको जब पहली बार भर लेते हैं तो जो उसके तेज़ाबका घनत्त्व होता है वह लिख लेते हैं। यदि कभी ऐसा हो कि भरनेके अंतमें उसका घनत्व उतना न हो तो बाटरीमेंसे तेज़ाब निकालकर इतना घना तेज़ाब मिला देते हैं जितना पहले घनत्वके लिए आवश्यक हो। ध्यान रहे कि यदि सब तेज़ाब बाटरीमेंसे निकाल दिया जायगा तो बाटरीको फिर (धारासे) भरना आवश्यक हो जावेगा। परन्तु ऐसा कभी कभी करना चाहिये। देखनेमें ऐसा आवेगा कि थोड़ी देर ज्यादा धारा बहानेसे घनत्व आ जावेगा।

भरनेसे पहले धन प्लेटका रंग गेरवी होता है भरनेपर कत्थई हो जाता है। ऋण प्लेटके रंगमें भेद नहीं पड़ता। प्लेटोंके रंगोंमें भेद होनेसे उनके रंगों-को ही देखकर धन और ऋण प्लेटोंका पता चल जाता है। यदि बाटरी बहुत देर खाली अवस्थामें छोड़ दी जावे तो प्लेटोंपर सफेदी आ जाती है। यह सफेदी एक न घुलनेवाला सीसेका गंधेत है। इसके आजानेसे बाटरीकी समाई कम हो जाती है। इसीको बाटरीका गंधकाना कहते हैं। कभी कभी तो धीमी धीमी धारा बहुत देरतक बहानेसे यह सफेदी चली जाती है और कभी कभी यह नहीं हटती और बाटरीका लाइलाज रोग होकर बैठ जाती है जिससे बाटरी सदैवके लिए बेकार हो जाती है। इससे हमेशा डरना चाहिए। इस लाइलाज रोगका कोई संतोषजनक इलाज (उपाय) अभी नहीं निकला है। कुछ लोगों-की राय है कि सोडा गंधेतका घोल (१५।°) तेज़ाबके बदले छोड़कर बाटरी भरनेसे इस रोगको कुछ फ़ायदा पहुँचता है। जब बाटरी भर जाती है सोडा गंधेत निकाल लिया जाता है और उसके बदले तेज़ाब छोड़ दिया जाता है। तेज़ाब छोड़ देनेके बाद बाटरी भरनेकी ज़रूरत नहीं पड़ती जैसे कि तब पड़ती है कि जब कभी बाटरी तेज़ाबसे खाली हो जावे।

जब बाटरी गैस करने लगती है तब गैसोंके बुल-बुलोंके साथमें तेज़ाब भी ऊपर उछटता है और इसके छींटे इधर उधर गिरकर चीज़ोंको खराब करते हैं इसलिए बाटरीके ऊपर एक शीशेकी प्लेट टेढ़ी रखी रहती है जो छींटोंको रोक लेती है।

जिस कमरेमें इन बाटरियोंका समूह रहता है उस कमरेमें जो जो चीज़ें ऐसी होती हैं जिनपर तेज़ाबका असर पड़ सकता हो उनको एक प्रकारके काले रोग़नसे (जिसको Anti Sulphuric Enamel कहते हैं) ढक देते हैं। बाटरीके सिरोंपर भी वेसलीन लगा देते हैं जो तेज़ाबका रसरसकर ऊपर पहुँचना बंद कर देता है और पेचोंको खराब होनेसे रोक देता है। यदि तेजाब रसरसकर ऊपर पहुँच जावेगा तो बकसकी दीवारोंपर बाहरकी ओर गिरेगा और बाटरीके लिए एक बाहरी चक्कर बना लेगा जिसके द्वारा बाटरी खाली होती जावेगी।

इन बाटरियोंकी भीतरी बाधा बहुत कम होती है इसलिए इनके सिरोंका अवस्थाभेद इनकी वि० सं० श० के बराबर ही समझना चाहिये इसलिए इनके सिरोंका वोल्टन लोगोंकी बोलचालमें सुननेमें आवेगा।

जिसका ऊपर वर्णन किया यह वही बाटरी है जिसको अंग्रेजीमें Secondary Battery, Storage Cell या Accumulator कहते हैं। इसको हमने परवर्ती बाटरी नाम दिया है जो इसके गुणको देखकर आजकल लोगोंको ज्यादा पसंद आता है।

यदि काम भी न लिया जावे तो भी बड़ी बड़ी बाट-रियोंकी तो देख भाल करते ही रहना चाहिये और पन्द्रह बीस रोजमें उनको 'भरते' रहना चाहिये। घंटे २ घंटे गैस कराकर छोड़ देना चाहिये। परन्तु छोटी

छोटी (जैसे मोटरकार वाली) बाटरियोंको तो खाली करके रखना ज्यादा उचित होगा। इनको खाली करके रख छोड़नेकी एक विधि हम बतलाते हैं (शायद और भी तरीके हों) जिससे अकसर हमने काम लिया है। बाटरीमेंसे तेजाब निकालकर उसके बदले शुद्ध (खिचा हुआ) पानी छोड़ कर बाटरीसे धारा लेना चाहिये। जबतक कि उसके (प्लेटों) सिरों का अवस्था भेद १°५ वोल्टके बराबर आ जावे उसके बाद पानी भी फेंक दीजिये और 'खाली' बाटरी रख छोड़िये। जब उससे काम लेनेका समय आवे तेजाब छोड़कर मामूली तौरसे भर दीजिये।

आजकल ऐसी बाटरियां भी मिलती हैं जो सूखी भरी बाटरी कहलाती हैं जो तेजाब भरते ही काममें लायी जा सकती हैं। इनके प्लेट' बने हुए होते हैं। प्लेटें बनानेके लिए ही तो पहली बार देरतक भरनेकी जरूरत पड़ती है। जब वे 'बने हुए' हुए तो पहले भरनेकी जरूरत नहीं रहती।

यह बाटरियां बड़ी नाजुक होती हैं। जरा ही लापरवाहीसे काम लेनेपर हमेशाके लिए बिलकुल खराब हो जाती हैं। सवारियोंमें बुरी सड़कोंपर चलनेसे झटकोले लगनेपर प्लेटोंके टूटने और मसालेके गिरजानेका भय रहता है। भारी भी बहुत होती है इसलिए सवारियोंके लिये ऐसी बाटरीकी आवश्यकता समझी जाती है जो झटकेंसे (कभी कभी कुछ ऊंचाईसे गिरनेपर भी) न टूटे और कुछ लापरवाहीके साथ भी इस्तेमाल की जा सके, कभी साधारणसे प्रबल धारा भी ली जा सके और खाली अवस्थामें बहुत देरतक बिना हानिके छोड़ी जा सके। इन बातोंके ख्यालसे लोगोंकी राय है कि एडीसन बाटरी (वह भी परवर्ती है) इस सीसेकी बाटरीकी अपेक्षा कहीं अच्छी है। इसके धन प्लेटपर निकल-ओषिद और ऋण प्लेटपर लोह-ओषिद होते हैं। इन मसालोंको निकिल चढ़े हुए ईस्पातकी जालीदार नलियोंमें भरते हैं, नलियोंकी मजबूतीके लिए ईस्पातके बंद लगे रहते हैं। निकिलके खोलके गिर जानेका भय रहता है इसलिये निकिल चढ़े हुए ईस्पातको बहुत गरम कर लेते हैं ताकि निकिल और ईस्पात दोनों मिल जावें। निकिल ओषिद कुचालक है इसलिये जिननलियमें निकिल ओषिद रहता है उनमें निकिलकी जालियां दी जाती हैं। धन प्लेट कई नलियोंका एक समूह होता है। कभी कभी ऋण प्लेटका मसाला गोलाकार नलियोंमें न रखकर चौखूँटी नलियोंमें रखते हैं। लोह-ओषिद भी कुचालक है इसलिए थोड़ा सा पारा मिला दिया जाता है। प्लेटोंको अलग रखनेवाले एबोनाइटके बने होते हैं। जिस द्रवमें यह प्लेटें रखी जाती हैं वह कास्टिक पोटेशका घोल (२१°।°) होता है। इनका वोल्टन १'२के लगभग होता है। इसलिये एक नियत वोल्टनके लिए इन बाटरियोंकी सीसेके बाटरियोंके मुकाबिले ५° ज्यादा संख्या लेना पड़ती है। यह बड़े अड़चनकी बात है। ज्यादा बाटरियोंकी देखभाल करना पड़ती है और जगह भी ज्यादा घिरती है।

कास्टिक पोटेशसे कार्बन द्विओषिद मिल जाता है। इसलिए बाटरीमेंसे गैसें निकलनेके लिए रास्ता बहुत छोटा होता है और बाटरी चारों ओरसे ढकी रहती है। इस द्रवके घनत्वमें बाटरीके भरने और खाली करनेके समय कोई भेद नहीं पड़ता। इसलिए इस बाटरीकी अवस्थाका पता वोल्टनसे ही चलता है।

प्रधान और परवर्तीय बाटरियोंका हाल पढ़नेसे पाठकोंको विदित हो गया होगा कि बाटरीके लिए दो पदार्थोंकी आवश्यकता होती है चाहे वह भिन्न भिन्न पदार्थ हों जैसे तांबा और जस्ता या एक मौलिक पदार्थ और दूसरा इसी मौलिक और किसी दूसरे मौलिक पदार्थका यौगिक हो जैसे स्पंजी सीसा और सीसेका द्विओषिद। यह एक द्रव या दो द्रवोंमें रखे होते हैं। वास्तवमें जितने मौलिक पदार्थ हमको मालूम हैं हम उनसे एक ऐसी श्रेणी बना सकते हैं कि यदि उस श्रेणीमेंसे कोई दो पदार्थ किसी उचित द्रवमें रखे जावें तो जो पदार्थ इस श्रेणीमें नीचे है उनसे धारा बाहरी चक्करमें होती हुई दूसरे पदार्थको जावेगी और भीतरी चक्करमें ऊपरवाले पदार्थसे नीचेवाले पदार्थको। ऊपरवाले पदार्थको धन और नीचेवालेको ऋण पदार्थ कहते हैं। धाराकी भीतरी चक्करमें दिशाको

ध्यानमें रखते हुए पदार्थोंकी ऐसी श्रेणीको विद्युत अवस्था श्रेणी कहेंगे।

धन—

एल्यूमीनियम	जस्ता	लोहा	नकलम्
सीसा	रांगा	तांबा	उज्जन
पारा	चांदी	सोना	परप्लैटिनम
कार्बन	नोषजन	गंधक	ओषजन

पदार्थ जितने एक दूसरेसे इस श्रेणीमें दूर होते हैं उतनी ही बाटरीकी वि० सं० श० अधिक होती है। सीसा और ओषजन बहुत दूर हैं। ओषजन जब सीसेसे मिल जाता है तो सीसेवाली परवर्ती बाटरीमें सीसेको ही सीसेके मुकाबले धन कर देता है. भीतरी चक्रकी धाराकी दिशाके ख्यालसे और प्रबल वि० सं० श० वाली बाटरी बना देता है।

पानीवाले वोल्टामापकमें हम देख चुके हैं कि उज्जन उसी दिशामें जाता है जिस दिशामें वोल्टामापकमें धारा बहती है और ओषजन उलटी दिशामें। उज्जन इस श्रेणीमें ओषजनके ऊपर है इसलिये उज्जन ओषजनके मुकाबिले धन पदार्थ है, इसी बातको यों भी कह सकते हैं कि यदि किसी वोल्टामापकमें दो पदार्थ धाराके बहनेसे उत्पन्न हो जावें तो जो पदार्थ इस श्रेणीमें ऊपर हैं वह धाराकी दिशामें जावेंगे और नीचेवाला पदार्थ उलटी दिशामें। नमकके घोलमें धारा बहाकर यदि नमकका विश्लेषण कर दें तो सैंधकम् जो हरिनके मुकाबिले धन पदार्थ है धाराकी दिशामें जावेगा और हरिन उलटी दिशामें।

वैज्ञानिक पद्धति

[ले० श्री गुलाबराय एम. ए., एल-एल. बी.]

विज्ञान विशेष ज्ञानको कहते हैं। विशेष और साधारण ज्ञानमें यही अन्तर है कि साधारण ज्ञान फुटकर पदार्थोंका होता है और उसमें कोई नियम वा व्यवस्था नहीं होती। विज्ञानका ज्ञान फुटकर बातोंका नहीं होता। वह ज्ञान सिद्धान्तोंका होता है और नियम और व्यवस्था ही उसका जीवन है। साधारण मनुष्य एक बातको देखकर सन्तुष्ट हो जाता है। वह देखता है कि पेड़ोंपरसे फल गिरते हैं, इस ज्ञानसे उसको केवल इतना ही प्रयोजन है कि पेड़के नीचे जाकर वह फल उठा लाये अथवा यह कि उसके तोड़नेमें उसे परिश्रम नहीं पड़ेगा। वैज्ञानिक इस तरहकी फुटकर बातोंके ज्ञानसे सन्तुष्ट नहीं होते। वह केवल फलोंके गिरनेके ऊपर ही विचार नहीं करते। वह सारे संसार भरके बोझ रखनेवाले पदार्थोंको एक ही नियमसे बंधा हुआ देखते हैं। जिस शक्तिके कारण वृक्षसे फल गिरता है, उसी शक्तिके कारण झरनेमेंसे पानी गिरता है और उसी शक्तिके वश छतसे कूदनेवाला मनुष्य गिरता है। साधारण मनुष्यके लिए फलका गिरना और छतपरसे कूद कर गिरना भिन्न भिन्न दृश्य हैं, किन्तु वैज्ञानिक केलिए यह दोनों ही घटनाएँ एक ही नियमका उदाहरण हैं। साधारण मनुष्य अनेकतासे सन्तुष्ट हो जाता है। वैज्ञानिक पण्डित अनेकतासे सन्तुष्ट नहीं होता। वह नियमकी खोज करता है। अनेकतामें एकता देखना ही सच्चा ज्ञान है। विभक्तमें अविभक्तको देखना इसीको श्रीमद्भगवद्गीतामें सात्विक ज्ञान कहा है। अनेक घटनाओंमें एक व्यापक नियमकी खोज करके ज्ञानमें एकता स्थापित करना, यही विज्ञानका कार्य है। इस व्यापक नियमको व्याप्ति ज्ञान–आगमन (इनडकशन Induction) कहते हैं। उस व्याप्तिके स्थापन करनेमें जिस पद्धतिका प्रयोग होता है उसको वैज्ञानिक पद्धति कहते हैं। यह व्याप्ति दो गुणोंका एक आधेयमें सहचार (co-existence) बतलाती है अथवा दो गुणोंमें आनुपूर्वी (sequence) सम्बन्ध कर उनका कार्यकारण सम्बन्ध स्थापित करती है। एक गुणको देखकर दूसरेका अनुमान होने लगता है। जो पदार्थ बने हुए हैं वह अनित्य हैं। जहां जहां बने हुए का गुण देखा जाता है, वहां वहां अनित्यताका भी गुण देखा जाता है। यह ज्ञान इन गुणोंके आकस्मिक संयोगका नहीं है। ऐसे आकस्मिक संयोगसे ज्ञानका लाभ नहीं होता और न यह ज्ञान

क्रियामें फलदायक होता है। गरम किये जानेसे पदार्थ बढ़ते हैं। संसारमें बहुतसे काम इस ज्ञानके आधार-पर किये जाते हैं। इन गुणोंका आनुपूर्वी सम्बन्ध आकस्मिक नहीं। संसारके सारे कार्य इन सम्बन्धोंके अटल होनेपर ही निर्भर हैं। यदि कल पानीको गरम करनेसे भापका बनना बन्द हो जाय तो मालूम नहीं संसारके कितने कार्य रुक जायं। गुणोंके आकस्मिक संयोगके ज्ञानसे कुछ लाभ नहीं होता। वैज्ञानिक पद्धतिसे यह निश्चय हो जाता है कि कौनसा संयोग आकस्मिक है और कौनसा कारण सम्बन्धी है। वैज्ञानिकोंको यह कार्य कारण सम्बन्ध स्थापित करनेमें बड़ी खोज करनी पड़ती है।

इस क्रियाकी कई श्रेणियां हैं। सबसे पहिले तो होशियारीसे घटनाओंकी देखभाल होती है। इसको निरीक्षण (observaton) कहते हैं। उनकी देख भालसे (hypothesis) कल्पनाका उदय होता है। यह तो निश्चित प्रकारसे नहीं कहा जा सकता कि कल्पनाका उदय निरीक्षणके पश्चात् ही होता है। कुछ थोड़ी बहुत कल्पना मनमें रखकर ही देखभाल की जाती है। निरीक्षणमें जो उद्देश्य होता है वही एक प्रकारकी कल्पना होती है। निरीक्षणके (observation) पश्चात कल्पना (hypothesis) बनायी जाती है। कल्पनाकी पूरी जांचके अर्थ उससे नये निगमन (deduction) निकाले जाते हैं और फिर उन निगमोंकी अनुभवमें परीक्षा की जाती है। जब वह अनुभवसिद्ध हो जाते हैं तभी कल्पनाको नियम वा सिद्धान्तकी (law) पदवी दी जाती है। विज्ञानके इतिहासमें इस परीक्षा पद्धतिके अच्छे अच्छे उदाहरण मिलते हैं। उनमेंसे एक यहांपर दिया जाता है। पहले जमानेके लोग पम्पमें पानी उठनेका कारण यह बतलाते थे कि प्रकृतिमें शून्यके लिए स्थान नहीं है (Nature abhors vacuum)। उन लोगोंको यह बात ज्ञात नहीं थी कि पम्पमें पानी ३३ फुटसे ज्यादा ऊँचा नहीं उठता। इस बातको पहिले पहल गैलीलियोने (Galileo) देखा था। वह इसकी कुछ व्याख्या नहीं कर सका। उसकी मृत्युके पश्चात उसके मित्र टोरीचेलीने (Torricelli) इस विषयमें विवेचन करना शुरू किया। उसने प्रश्न किया कि पानी ऊपर उठता ही क्यों है। तब उसके विचारमें आया कि वायुका कुछ न कुछ बोझ होगा और इसी बोझ-के कारण पम्पके शून्य स्थानमें पानी उठ जाता है। इस कल्पनाकी सत्यता जाननेके लिए इस कल्पनासे निगमनात्मक अनुमान किया। पारेका बोझ पानीसे चौदह गुना है। यदि कल्पना ठीक है तो हवाका बोझ पारेको ३३ फुटके चौदहवें हिस्से तक उठावेगा। उसने एक ३४ इंच लम्बी नलीमें पारा भरा और उसको पारेसे भरे हुए खुले बर्तनमें लौट दिया। पारा करीब ३० इञ्चकी ऊंचाईपर ठहर रहा। उसका अनुमान अनुभव-सिद्ध हो गया और उसने वायुका दबाव नापनेका यंत्र, जिसको बेरोमीटर कहते हैं बनाया। पेसकलने (Pascal) इस कल्पनाको और भी पुष्ट कर दिया। पहाड़पर हवाका बोझ कम होता है, वहांपर हवाकी, पारा वा पानीको उठानेकी, शक्ति और भी कम हो जानी चाहिये। यदि हवाके ही बोझसे पानी या पारा उठता है तो ऊंचे स्थानपर हवाकी कमीके कारण उसी अंशमें पारेका चढ़ना भी कम होना चाहिये। पहाड़ोंपर बेरोमीटर ले जानेसे यह बात अनुभवसिद्ध हो गयी। कल्पनाकी पुष्टि हो गयी। इसी प्रकार कल्पनाओंकी पुष्टि होती है। कल्प-नाओंकी पुष्टिकी और भी कई रीतियां हैं। जिनका आगे संक्षेपतः वर्णन किया जावेगा। बहुत सी कल्पना-ओंमेंसे ठीक कल्पनाको निकालना वैज्ञानिकका मुख्य कर्त्तव्य है। भावात्मक और निषेधात्मक उदाहरणों द्वारा योग्य कल्पनाओंकी पुष्टि और अयोग्य कल्प-नाओंका निषेध होता रहता है। कभी ऐसा भी होता है कि दो ऐसी प्रतिद्वन्दिनी कल्पनाएँ उठ खड़ी होती हैं, जो परीक्षित घटनाओंकी पूरी पूरी व्याख्या कर देती हैं। ऐसी अवस्थामें कोई ऐसी नयी घटना ढूंढ़नी पड़ती है, जिसकी व्याख्या एक कल्पना कर सकती है और दूसरी नहीं। ऐसी घटना वा उदाहरणको निर्णायक उदाहरण (crucial test) कहते हैं। हमको ऐसे निर्णायक उदाहरणोंका प्रयोग साधारण

जीवनकी घटनाओंमें अनेक बार करना पड़ता है।

विज्ञानमें भी निर्णायक उदाहरणोंका बहुत काम पड़ता है। प्रकाशके (Light) विषयमें दो कल्पनाएँ की गयी हैं। एक तो यह है कि प्रकाश एक प्रकारकी तरंगोंका (waves) फल है। यह तो तरङ्ग-सिद्धान्त (आंडुलेटरी थियोरी Undulatory theory) के नामसे प्रसिद्ध है। दूसरी कल्पनाके अनुसार प्रकाशके छोटे छोटे कण व परमाणु होते हैं, जिनकी गतिसे प्रकाशका अनुभव होता है। इसको कण-सिद्धान्त (कोरपसक्यूलर Corpuscular theory) कहते हैं। यह दोनों ही कल्पनाएँ रेखागणितके नियमोंके अनुकूल पड़ती हैं और दोनों ही साधारणतया सन्तोषजनक हैं। इनमें से कौन वस्तुतः ठीक है, इस बात का निश्चय करनेके लिए निर्णायक उदाहरणोंकी आवश्यकता पड़ी। लोगोंने विचार किया कि यदि तरङ्गकी कल्पना ठीक है तो घने माध्यममें पतले माध्यमकी अपेक्षा प्रकाशकी गति घट जानी चाहिये और दूसरी कल्पनाके माननेवालों-का यह मत था कि घने माध्यममें आकर्षणके बलसे प्रकाशकी गति बढ़ जावेगी। जब कांचके लम्बे लम्बे टुकड़ोंको ऐसा रखा गया कि उनकी लम्बाईमें होकर प्रकाशकी किरणें निकलें तो देखा गया कि वास्तवमें प्रकाशकी गति घट गयी। ऐसे ही प्रयोगको निर्णायक प्रयोग (experimentum crucis) कहते हैं। यह प्रयोग पहली कल्पनाके अनुकूल पड़ा और दूसरीके प्रतिकूल, इसीसे पहिली कल्पनाकी पुष्टि हुई और दूसरी कल्पनाका पक्ष गिर गया।

कल्पनाओंके बनाने और सिद्ध करने तथा कार्य्य-कारण सम्बन्धको पुष्ट करनेमें जो पद्धतियां काममें लायी जाती हैं उनका संक्षेपसे नीचे विवरण दिया जाता है। कारणकी परिभाषापर विचार करनेसे यह पद्धतियां स्वयं ही समझमें आ जाती हैं। तर्कभाषामें कारणकी परिभाषा इसप्रकार दी है— "यस्य कार्यात्पूर्वभावो नियतोऽनन्यथा सिद्धश्चतत्कारणम्" अर्थात् जिसका भाव कार्य्यसे पहिले हो और जो नियत और अनन्यथा सिद्ध हो (हमेशा पहिले आता हो, आकस्मिक न हो और वृथा न हो)। जिसके होने या न होनेसे कार्यकी स्थितिमें कुछ अन्तर न पड़े उसे कारण नहीं कह सकते।

अन्वय रीति (method of agreement)

यदि किसी घटनाकी पहिले आनेवाली बातोंमें कोई एक बात उस घटनाके सब उदाहरणोंमें पायी जावे, तो अधिक सम्भावना है कि वह बात उस घटनाका उदाहरण हो।

उदाहरण—यदि किसी मनुष्यका अनुभव ऐसा हो कि जब वह रातको चाय पिये तभी उसे रातको देरसे नींद आवे तो अन्वय रीतिसे यह अनुमान होगा कि चाय उसको निद्रा न आनेका कारण है। बहुत लोगोंका विचार था कि सीपमें जो रंग दिखाई पड़ते हैं वह उसकी सामग्री विशेषका फल है। ब्रूस्टरने (Brewster) एक बार सीपकी छाप मोम और रालपर ली, उसको वैसे ही रंग दिखाई पड़े। फिर उसने सीपकी छाप अन्य पदार्थोंपर उठाई, रंग वैसे ही दिखाई पड़े। पदार्थ बदलते रहे। आकार सीपका ही रहा। इससे यह निश्चय होगया कि सीपमें रंगोंका कारण उसकी रासायनिक सामग्री नहीं, वरन् उसका आकार है।

(व्यतिरेक रीति method of difference)

अन्वय रीतिसे कल्पनाका उदय तो हो जाता है, किन्तु कल्पनाकी सिद्धि पूरी तौरसे नहीं होती। गुणोंका अनुपूर्वत्व आकस्मिक नहीं, इस बातके लिए यह आवश्यक है कि पूर्व गुण वा घटना-से उत्तर गुण वा घटनाका अभाव होता है या नहीं। सच्चा कारण वही समझा जायेगा जिसके अभावसे कार्य्यका भी अभाव हो। यदि ऐसा नहीं होगा तो उसमें अन्यथा सिद्ध होनेका दोष आ जावेगा। कौनसी बात किसी दूसरी बातके उत्पन्न करनेमें आवश्यक है, इस बातके जाननेके लिए एक एक बातका अभाव करके देखते हैं, जिसके अभावसे अभीष्ट गुण वा वस्तुका अभाव हो जावे वही कारण समझ लिया जाता है। यदि दो ऐसे उदाहरण लिये जावें कि एकमें किसी घटनाका भाव हो और दूसरेमें

उसी घटनाका अभाव और भाव और अभावकी प्राग्भाविनी बातोंको मिलाकरदेखनेपर उन बातोंमें एक ही भेद पाया जावे अर्थात् घटनाके भाववाले उदाहरणमें एक किसी बातका भाव और अभाववाले उदाहरण में उसी बातका अभाव हो तो वह बात उस घटनाका कारण समझी जावेगी। यदि किसी बर्तनकी हवा निकाल ली जावे तो उसके भीतर घंटा बजानेसे शब्द नहीं होता है। वायुके अभावसे शब्दका भी अभाव हो जाता है, इस कारण वायु शब्दके संचारका कारण माना गया है। यह रीति प्रायः प्रयोगात्मक (experimental) है। इस रीतिमें प्रायः एक घटनाके दो ही उदाहरण लिये जाते हैं और उनदो उदाहरणोंमें केवल एक ही बातका भेद होता है। वही भेदकी बात कारण मानी जाती है।

अन्वय-व्यतिरेक रीति

इसमें ऊपर कहीं दोनों भावात्मक वा अभावात्मक रीतियां मिला दी जाती हैं। यदि हम कई ऐसे उदाहरण लेलें जिनमेंसे कुछमें तो किसी घटना विशेषका भाव हो और कुछमें अभाव होवे, फिर हम इन उदाहरणोंकी सब बातोंका विशेष निरीक्षण करें और यदि निरीक्षण करनेपर यह ज्ञात होवे कि जिन उदाहरणोंमें घटनाका भाव था उनमें और सब बातोंका भेद होनेपर भी एक बातकी समानता पायी जाती है और अभाववाले उदाहरणोंमें और बातों का भेद होनेपर भी एक बातकी समानता पायी जाती है अर्थात् जिस बातका कि भाववाले उदाहरणोंमें भाव था उसी बातका अभाव सबमें पाया जावे तो वह बात उस घटना विशेषका कारण समझी जायेगी।

उदाहरण यदि हम कुछ ऐसे देश लें जो धनवान हैं और कुछ ऐसे लें जो धनहीन हैं और उन देशों की मुख्य बातों के देखने और उनपर विचार करनेसे यह मालूम पड़े कि धनवान देशोंमें और सब बातों का भेद होते हुए भी जो एक बात समान है वह यह है कि यहाँपर शिक्षित लोगोंकी अधिकता है और धनहीन देशों में और बातों का भेद होते हुए भी एक बातकी समानता है अर्थात् शिक्षित लोगों की अधिकताका अभाव है तो हमारा यह अनुमान होगा कि शिक्षित लोगोंकी अधिकता देशको धनवान बनाती है।

भेद सहचार-रीति method of concomitant variation

यह रीति पहिली रीतियोंसे भिन्न नहीं है। जो बातें कि पिछली रीतियोंमें पूर्णभाव और अभावसे सिद्ध की जाती हैं वही बातें दो चीजोंके साथ साथ घटने बढ़नेसे सिद्ध की जाती हैं। इस रीतिकी इस कारण और आवश्यकता पड़ती है कि प्रकृतिमें किसी चीज़का पूर्ण भाव या अभाव बहुत कम होता है। जब एक चीज़के घटनेके साथ दूसरी चीज बढ़ती घटती और बढ़ने केसाथ दूसरी चीज़ है तब उन दो चीजोंका कार्यकारण सम्बन्ध माना जाता है। यदि हम दो लकड़ीके टुकड़ोंको घिसें और जितने जोरसे घिसें उतने ही वह ज्यादह गरम होते जावें तो यह समझा जायेगा कि रगड़ गरमी पैदा करती है। व्यक्तिरेक रीतिमें बर्तन में रखे हुए घंटे का उदाहरण दिया गयाा था। इस उदाहरणमें यह रीति भली प्रकार लग सकती है। जैसे जैसे बर्तनकी हवा कम होती जावेगी वैसे ही घन्टे की आवाज़ भी धीमी पड़ती जायेगी। इससे भी वायु और शब्द सञ्चारका कार्य-कारण सम्बन्ध स्थापित किया जा जा सकता है।

समुद्रमें ज्वार भाटोंका कारण भी इसी रीतिसे निश्चय किया गया है। चन्द्रमाके बढ़ने और घटनेके अनुकूल ही समुद्रके जलकी बाढ़ बढ़ती और घटती है। इससे लोगोंने निश्चय किया कि चन्द्रमा किसी न किसी प्रकारसे जलकी बाढ़का कारण है।

परिशिष्ट रीति (method of residues)

यदि किसी घटनाकी कुछ बातोंकी व्याख्या उसकी पूर्व भावनी बातों से हो जाती है तो उस घटनाकी बाक़ी दो एक बातोंकी व्याख्या बाकी पूर्व भाविनी बातोंसे हो जावेगी। मसलन एक

घटना घ में प फ ब तीन बातें शामिल हैं और उसकी पूर्वभाविनी च छ ज तीन मुख्य बातें हैं। हमको मालूम है प का कारण च है और फ का कारण छ तो सम्भवतः ब का कारण ज है। किसी बड़े कमरेमें शामके वक्त ८० दर्जेकी गर्मी थी, फिर उसमें एक बड़ा भारी किटसन लम्प जलाया गया और बीस आदमियोंकी एक सभा हुई। घन्टे भर बाद उस कमरेकी गर्मी नापी गई तो देखा गया कि ८०° से ८५° हो गयी थी। इससे पहिले दिन भी उस कमरेमें घन्टे भर किटसन लम्प जला था, लेकिन उस दिन आदमी एक भी न था। उस दिन घन्टे भरमें कमरेकी गर्मी सिर्फ ४ दर्जे बढ़ी थी एक दर्जे गर्मीका कारण और कुछ नहीं मालूम पड़ता उस कमरेमें बीस आदमियोंकी उपस्थिति ही उसका कारण मालूम पड़ती है। यह परिशिष्ट रीतिसे ही ज्ञात हुआ। इसका एक अच्छा उदाहरण ज्योतिषसे मिलता है। सन् १८८१में यूरेनस उरणनामक ग्रह शनीचर ग्रहके बाहर पाया गया। फिर देखा गया कि वह आकर्षण शक्तिके नियमको पूर्णतया नहीं मानता है अर्थात् जिस कक्षामें उसको चलना चाहिये उससे थोड़ा हटकर चलता है और सब ग्रहोंके हिसाबसे जो उसकी कक्षा निर्धारित की गयी थी, उससे यूरेनसकी कक्षा भिन्न थी। फिर सोचा गया कि शायद यूरेनसके बाहर कोई ऐसा ग्रह हो जो उसको खींचता है। फिर हिसाब लगाया गया कि अमुक स्थानमें उस ग्रहकी स्थिति होनी चाहिये। दूरबीन लगाकर देखा गया तो इसी स्थानमें वह ग्रह पाया गया। यह ग्रह नेपट्यून (वरुण) के नामसे प्रसिद्ध है। यह परिशिष्ट रीतिका तो उदाहरण है ही, किन्तु इस बातका यह अच्छा उदाहरण है कि यदि हमारा अनुमान सर्वांग शुद्ध है तो वह अवश्य अनुभवसिद्ध पाया जावेगा।

यह सब रीतियां वैज्ञानिक आविष्कारों तथा सिद्धान्तोंके निरूपणमें सहायक मात्र हैं। इनके जान लेनेसे ही कोई वैज्ञानिक नहीं बन जाता। इनके ज्ञानके साथ मनुष्यमें मौलिकता, कल्पना शक्ति, धैर्य, परिश्रम शीलता, द्वेषाभाव आदि अनेक गुण होने चाहियें जभी वह इस वैज्ञानिक पद्धतिसे पूर्ण लाभ उठा सकेगा।

— —

टिप्पणियां

बिजलीका उपयोग—आजकल बिजलीका उपयोग हदसे ज्यादा बढ़ गया है। यह विश्वकी महान शक्ति विलासिताकी सामग्री बना ली गयी है। इसकी मोहनी मायामें फँसकर आजकलका आसुरी संसार पतङ्गकी तरह नष्ट हो रहा है। उत्तुंग गिरि-शिखरपर सुशोभिता सुन्दरी गिरिकन्या भगवतीने प्रतिज्ञा करली है कि जो मुझसे भी अधिक शक्तिशाली होगा उसको मैं वरूँगी। शुम्भ निःशुम्भ ही नहीं आज सभी असुर उन्हें वरण करनेके लिये विमोह-वश लपक रहे हैं, और वह खेला खेलाकर उनका नाश कर रही हैं। जिसे आंखें हैं वह भी उनके तेजसे विह्वल हो उनकी मायाको देख नहीं सकते। पाश्चात्य व्यवसायी यह समझता है कि हमने बिजलीको दासी बना रखा है, परन्तु यह दासीही उसपर जादू करके उसके प्राण चूस रही है, और वह अपनी मोहित आंखोंसे इस कृत्यको देख नहीं सकता। वह प्रचुर परिमाणमें माल तैयार कर लेता है पर उसे खपा नहीं सकता। एक ओर लाखों प्राणी मुट्ठी भर अनाज और चार गज कपड़े बिना भूखे और नङ्गे मर रहे हैं, उधर लाखों टन गेहूँ जला दिया जाता है और कपड़े पड़े बरबाद होते हैं। कोई खरीदार नहीं। वैज्ञानिकने भारी शक्ति व्यवसायीके हाथमें दी, परन्तु मूर्ख व्यव-सायी उसके संचालनकी यथार्थ विधिके अज्ञानमें उस शक्तिको अपनेही विरुद्ध चलाया करता है।

बनारसमें भी इसका एक छोटासा उदाहरण देखनेमें आ रहा है। बनारसको न जल-कलकी जरूरत थी न बिजली की। घर घर कुएं थे। गङ्गाजी थीं। लोगोंके हाथ पाँव थे। जलका कोई कष्ट न था।

विलासिताके शैतानने अँगुली दिखायी और मायामें फँसाकर कुए बन्द करा दिये और जबरदस्ती जल-कल लगवा दिया। आज कहीं कल बिगड़ा तो आये दिन जल-कष्ट धरा हुआ है। कुए तो अब हैं नहीं। मरे बे पानीके! स्वावलम्बन नष्ट करके परावलम्बी हो गये।

हिन्दू विश्वविद्यालयने अपने यहां बिजलीके उत्पादनका एक दानवी यंत्र स्थापित किया। आखिर दानवको चाहिये कुम्भकरणी आहार। उसने म्युनिसिपलिटीकी ओर दृष्टि डाली। माया मोहित मेंबरोंने बिजली लेनेकी चर्चा चलायी। एक सदस्यने इस विलासिताके जालमें फँसने, इसकी जोखिम, इससे आर्थिक नाश, तन मन धनकी हानि आदि बातोंपर सब का ध्यान दिलानेकी कोशिशें कीं, परन्तु मोहके आवरणने बड़े बड़े ऋषियोंकी बुद्धिपर परदा डाल दिया था, उसकी कौन सुनता है। बिजलीकी "उपासना" निश्चित हो गयी। परन्तु विश्वविद्यालय वालेसे भी बड़ा दानव मुँह बाये बैठा था। उसने इस प्रस्तुत आहारको झपट लिया। वह काशी-निवासियोंसे भरपूर बलि कई बरसोंसे लेता रहा। इधर बहुत कुछ खोनेपर हमारे भाइयोंको होश आया। उन्होंने निश्चय किया कि बिजलीका रेट बहुत भारी है। घटाओ तो लेंगे नहीं तो हम इस रोशनीसे बाज आये। रेट यथेष्ट नहीं घटा। देखते हैं कि जहाँ बाजार बिजलीसे जगमगाता था आज मैदागिनसे गोदौलियातक लोग अपनी अपनी रोशनी कर रहे हैं।

दुनियांमें सभी देशोंमें यह रीति है कि जीवनकी जो बड़ी आवश्यक वस्तुएँ हैं वह सस्ती कर दी जाती हैं। परन्तु भारत में जब पङ्के दिन आते हैं तो बिजली मँहगी हो जाती है। बात यह है कि पूँजीपति विज्ञानसे नाजायज्ञ फायदा उठाता है। और अपनी तिजोरी भरनेकी ज्यादा फिक्र करता है। जिन वैज्ञानिकोंने मौलिक आविष्कार किये उनका उद्देश्य कभी यह न था कि अधिक धन लूटनेमें वह पूँजीपतियोंके सहायक हों।

बिजलीसे, वा भौतिक शक्तियोंसे जहांतक सर्वसाधारणका उपकार होता है वहीं तक उसका सदुपयोग है। धन लूटनेमें प्राणहरणमें, वा किसी तरहकी हिंसा वा शुद्ध विलासिताके लिये काममें लाना दुरुपयोग है, पातक है। विज्ञानका जो दुरुपयोग करता है उसे दंड अवश्य मिलता है। प्रकृति क्षमा करना नहीं जानती।

— रा० गौड़।

\+ + +

ब्रिटिश शहरोंमें बिजलीका भाव—२९ सितम्बर सन् १९३३ के "एलेक्ट्रीशियन" नामक साप्ताहिक पत्रमें लिखा है कि शेफ़ील्ड के कारखानोंमें कर्मचारियोंको दुर्घटनाओंसे बचानेके लिये बिजलीघरने यह नियम किया है कि जितनी सामर्थ्य कलोंके चलाने में खर्च हो उसका पंचमांश रोशनीमें बिना दाम खर्च किया जा सकता है। क्योंकि ऐसा विचार किया जाता है कि अच्छी रोशनी होनेसे दुर्घटनाएं कम होंगी। वास्तव में ऐसा ही है। शफ़ील्डतो कारखानों हीका शहर है। इस सुविधासे जनताको अधिक लाभ होगा।

केवल इतनाही नहीं। इस सर्दीमें मकानों और दफ़्तरोंको गर्म रखनेके लिए जिससे लोग आरामसे रहें और अधिक काम कर सकें बिजलीकी उतार चढ़ाव वाली दरको उड़ाकर एक खुली दर आधा पैंस फी (यूनिट) इकाई कर दी है और साथ ही साथ मापकों (मीटरों) का किराया भी उड़ा दिया है। इसका यह प्रभाव पड़ा कि लोगोंने बिजलीके चूल्हे और घरोंमें काम आनेवाले अन्य बिजलीके यंत्र अधिक संख्यामें खरीदना आरंभ कर दिया जिससे कारखानोंकोभी लाभ हुआ।

इसी साप्ताहिकके १५ सितम्बर वाले अंकमें यह भी खबर थी कि लन्दनके बिजलीघरने भी मकानोंको गर्म करनेके लिये शामके ७ बजेसे सबेरेके १० बजे तक बिजलीका भाव आधा पैंस (२ पैसे) फी (यूनिट) इकाई कर दिया है और दिनके १० बजेसे शामके ७

बजेतकके लिए भाव आधा पैंस है। एक साधारण गर्मा जो छोटे कमरेको जिसमें ४ या ६ सज्जन बैठ सकते हैं १ इकाईमें ४ घंटे गर्म रख सकता है जिसका यह मतलब है कि बिजलीकी इस दरमें ऐसे कमरेको रातभर गर्म रखनेके लिए ५ पैसेके लगभग खर्च करना पड़ता है। इतनी सस्ती बिजली मिलती है तब तो गाँव गाँव प्रचार होगा। फिर वहाँ सिर पीछे आमदनी भी तो यहाँकी बारह गुनी है।

— सा० भा०

× × ×

अर्थशास्त्र और भौतिक विज्ञान— विज्ञान शब्दके जो संकुचित अर्थ लेते हैं वह अर्थशास्त्रको उससे भिन्न विषय समझते हैं। सञ्चित शक्तिका ही एक स्थूल रूप सम्पत्ति है। कमसेकम मात्राका अधिक से अधिक उपयोग करना अर्थशास्त्री और भौतिक विज्ञानी दोनोंका लक्ष्य रहता है। वैज्ञानिक बराबर इसीको शिशमें है कि हम ऐसी रोशनी पैदा करें जिसमें गरमी न हो, क्योंकि देखनेके लिये हमको गरमीकी जरूरत नहीं है। गरमीका रोशनीके साथ अपव्यय होता है। हमें खाना पकाने, पानी उबालने आदिके लिये ऐसी आंच चाहिये जिसमें रोशनी न हो, क्योंकि इसमें रोशनीका अपव्यय होता है। वैज्ञानिक इस तरहकी खोजमें इसलिये नहीं है कि किसी फोर्ड या राकफेलर या निजामकी तिजोरी भरे। वह तो केवल अपव्यय रोकना चाहता है क्योंकि दुरुपयोग या अपव्यय वस्तुतः प्रकृतिका निरादर है। सदुपयोग ही उस देवीकी पूजा है। वैज्ञानिककी साधारण गतिविधि ऐसी न होती तो अनेक मौलिक खोजोंके जन्म न होते और विज्ञान जहां तीन सौ बरस पहले था वहीं आज विक्रमकी बीसवीं शताब्दीके अन्तमें भी पड़ा होता और धरतीका अचला माना जाना कमसे कम इस अर्थमें सिद्ध हो जाता। फरडेने झिड़के जानेपर भी नलिकाके तैलविन्दुओंकी अवहेलना नकी। तभी तो यह हरिन् वायुका द्रवीभवन सिद्ध हुआ। फेंक देता तो रसायन शास्त्र कूड़ेखानेमें चला जाता और शायद आज भी न निकलता। यदि चांदीके थक जानेकी उठी हुई कल्पनाका सर जगदीश निरादर करते तो आज चराचर प्राणिशास्त्रका पता न होता। वैज्ञानिकोंने किसी कूड़ेको भी हेय दृष्टिसे न देखा। बिगड़ी, सड़ी गली वस्तुओंका भी आदर और सदुपयोग किया। असम्भव प्रतीत होती हुई कल्पनाओंका भी सम्मान किया और उन्हें भी परीक्षाकी कसौटीपर कसा।

परन्तु आज हम विलासिताके इतने वशीभूत हो रहे हैं कि अपने सादे जीवनके सौन्दर्य्यको उसपर वारकर अनेक सत्योंसे वंचित हो रहे हैं। अपना तन-मन धन लुटा रहे हैं। विज्ञानसे लाभ उठानेवाले सभ्य वंचकोंकी तिजोरियां भर रहे हैं। हमें चाहिये कि हम अपनी पुरानी सादगीकी ओर फिर लौटें और प्राकृतिक जीवनको फिरसे अपनावें। पद्पदपर विचार करें कि हम शक्तिका, सम्पत्तिका, पूरा पूरा सदुपयोग कर रहे हैं या नहीं, कहीं उसका अपव्यय तो नहीं हो रहा है। कहनेमें यह बिचार बहुत साधारण है, परन्तु यदि हम प्रत्येक क्षण इसपर ध्यान रखें तो हमारे जीवनका कायापलट हो जाय।

—रा० गौड़।

× × ×

सोनेकी वर्षा—सम्पत्तिका हम किसी श्रमसे, किसी व्यवसायसे उपार्जन करते हैं। हवा, पानीकी तरह यथेष्ट सभी जगह मिलनेवाली वस्तुका मूल्य हम नहीं जानते, उनका आदर हमारी निगाहोंसे हट जाता है। ऊँचेपरसे गिरनेवाले पानीसे और झोंकेसे बहती हुई हवाकी धारासे हजारों काम होते हैं। विज्ञानसे लाभ उठानेवालोंका ध्यान अभी उस अतुल सम्पतिकी ओर नहीं गया है भूतलपर जिसकी निरन्तर वर्षा होती रहती है। भगवान् हिरण्यगर्भ धूपके रूपमें सोना बरसाते रहते हैं। परन्तु जैसे नदियोंमें–बहते–सोनेको बटोरनेमें और अलगानेमें श्रम लगता है उसी तरह इस निरन्तरके बरसते हुए सोनेका संग्रहभी श्रमसाध्य है। विज्ञानके पहले वर्षके एक अंकमें स्वर्गीय प० श्री कृष्णजोशीके भानुतापका हमने वर्णन किया था। भानुतापके द्वारा इस सौर शक्तिका संग्रह

करके बिजलीमें परिणत करना और उस बिजलीको काममें लाना सुसाध्य है। प्रकृति बराबर यहीकर रही है। मिट्टीका तेल यही जमी हुई सौर शक्ति है जिससे हम रातमें रोशनी पाते हैं। लकड़ी, कोयला आदि यही जमी हुई सौर शक्ति है जिससे हम यथेष्ट गरमी पैदा कर लेते हैं। नाज फल तरकारियां जो कुछ हम शरीरके पोषणके लिये आत्मसात् करते हैं वह सब जमी हुई सौर शक्ति है जो शरीरको गरमी देती है। और हम जो काम कर सकते हैं वह बल भी इन्हीं पोषकोंद्वारा धूपसे ही ली हुई शक्ति है। अतः यह धूप जो धरती और उसके ऊपर रहनेवाले संसारको नहलाती रहती है, सोनेकी अनवरत वर्षा है। इसे प्रकृति अपने तिजोरियोंमें भरकर रखती है और हम लोगोंको जो उसकी सन्तान हैं आवश्यकतानुसार देती रहती है। क्या इस असपत्न ऋद्धिसे हम यथेष्ट लाभ उठाते हैं? बिना यंत्रके सहारे यह सोना हम बटोर सकते हैं। धूपमें तेल गरम करके धूपमें ही बदनमें मालिश करके हम सूर्य्यजनित वैटामिनोंको, खाद्योजोंको शरीरमें सोख सकते हैं। जाड़ोंमें अधिकांश धूपमेंही नंगे बदन रहकर शरीरमें सूर्य्यके स्वास्थ्यदायक प्राणप्रद किरणोंका अमृत रोम रोमसे पी सकते हैं। धूप दिखाकर शुद्धि और वृद्धि दोनोंके उपाय सदासे सभी जानते हैं।

—रा० गौ०

× × ×

जोड़नेके लिये उत्तम सीमेंट—नलके दो हिस्सोंके जोड़पर अकसर पानी टपकता है। बालटी या ऐसे ही बड़े कंडाल या टब भी टपकने लगते हैं। नये जोड़ोंपर जहां पुटीन लगाकर काम चलाते हैं, वहां इस प्रकार बना हुआ सीमेंट खूब काम देता है, पुटीनसे कहीं अच्छा है, जल्द सूखकर पत्थर हो जाता है। तौलमें ११ भाग उत्तम सीमेंट, ४ भाग सीसेवाला सफ़ेदा और एक भाग मुर्दासङ्ग लेकर खूब रगड़ो कि एक दिल और बारीक हो जाय। अलसीके ऐसे उबाले हुए तेलमें जिसमें वजनमें सैकड़ा पीछे तीन भाग राल गलायी हुई हो, इस चूर्णको मिलाकर खूब सानलो और पुटीनके ढङ्गका बना लो। जबतक सूख न जाय तब तक यह काम दे सकता है।

बारीक फाड़ा या धुना हुआ चीथड़ा या रुई तोलमें दो भाग, वे बुझाया चूना तोलमें एकभाग और उबला हुआ अलसीका तेल तोलमें तीन भाग खूब मिला लो। खूब कुटी हुई यह पुटीन तुरन्त काममें लानी चाहिये।

× × ×

एकही ओरसे पारदर्शी कांच—ऐसा कांच भी बन गया है जो एक ओरसे तो पारदर्शी है और दूसरी ओरसे आईनेकी तरह अ-पारदर्शी है। इसे खिड़कियोंमें लगाकर यह लाभ उठा सकते हैं कि भीतरवाला बाहरका सारा दृश्य स्पष्ट देखे परन्तु बाहरवाला भीतर का कुछ भी न देख सके और भीतर रोशनी भी खूब आवे। ऐसा शीशा खिड़कियोंमें लगानेसे परदा भी खूब रहता है और रोशनी भी आती है। शिकागो अमेरिका की पुलीस पहचाननेवाले गवाहोंको ऐसीही खिड़कियों के भीतरसे अभियुक्तोंको दिखाकर पहचनवा लेती है और अभियुक्त गवाहोंको देख नहीं सकते। रेलगाड़ियोंमें परदेनशीनोंकी गाड़ीमें ऐसे ही शीशे लगने चाहिये।

× × ×

गाँव गाँवमें बिजली—इंग्लिस्तानमें पिछले साढ़े पांच बरसोंमें साढ़े तीन अरब रुपयोंसे भी ज्यादा खर्च करके एक ऐसी योजना पूरी हुई है जिससे कि इंग्लिस्तान वेलस और दक्खिनी स्काटलैंडके गाँव गाँवमें बिजली व्याप जायगी।

❀ ❀ ❀

रेलकी पटरीपर चलनेवाली हवागाड़ी—

शिकागो अमेरिकामें रेलकी पटरीपर चलने वाली हवागाड़ी बन गयी है। यह लारी या बस थी जिसके आगेवाले पहियोंके आगे और पीछेवालोंके पीछे एक एक जोड़ा पहिया रेलकी पटरीपर चलने वाला खांचेदार लगा हुआ था। यह रबरटैरको बरा-

बर पटरीपर रखता है इसमें और ऐसीही गाड़ियां जुट सकती हैं और साथही ट्रेनकी तरह चली जाती हैं। आदमी असबाब जो चाहे ले जाइये। जब राह तय कर चुकें तो यह सहज ही पटरीपरसे उतरकर अलग अलग मामूली सड़कसे चलकर अपने अपने ठिकाने पहुँच सकती हैं। ब्रिटेनमेंभी इसी तरहकी परीक्षा हो रही है।

\+ + +

छोटे-छोटे रोजगार।—छोटे छोटे स्वदेशी रोजगार हमारे देशमें बहुतेरे चल सकते हैं जिनकी मांग है और जो विदेशी रोजगारी हथियाए हुए हैं। आजकल देखते हैं कि हमारे पूंजीपति चीनीके चक्करमें बेतरह पड़ गये हैं। वह और रोजगारोंकी ओर ध्यान भी नहीं दे रहे हैं। एक ही ओर भेड़ियाधसानसे जो कुछ लाभकी संभावना रहती है वह हानिमें परिणत हो जाती है।

रोजगारीको यह विचारना चाहिये कि जो माल विदेशोंसे आ रहा है उसमेंसे कौनसी चीज अपने यहांके कच्चेमालसे तैयार हो सकती है। यदि वह चीजें स्वदेशी बनती हैं तो भी बाहरसे आनेवाला माल खप रहा है तो समझना चाहिये कि वह माल अभी मात्रा और चोखाई दोनोंमें अपने यहां अधिक बनानेकी गुंजाइश है। हमारे पास कोई उपनिवेश या विदेशी बाजार नहीं है जहां अपने यहांकी फालतू उपज हम पटक सकें। इसलिये हमें तो वही माल तैयार करना चाहिये जो अपने ही यहां खप सके। इस तरहके रोजगार बहुत हैं। कपड़ा, साबुन, लोहा, पीतल, सीमेंट, अलकतरा, कांच, रंग, यद्यपि बनते हैं तथापि इनके अधिक बननेकी भारी गुंजाइश है। जूते, ब्रश, बटन, पेंसिल, निब, फौंटपेन, स्याही, ताले, चटखनी, कीलकांटे, बालटी, तामचीन, या इनामेल और चीनीके बरतन, चाकू, अस्तुरे, ब्लेड आदिके कारखाने खूब चल सकते हैं। कागज, गत्ते, स्लेट आदि भी बड़ी मात्रा और संख्यामें बन सकते हैं। बैसिकिल और टैपराइटरके तो कारखाने खोलकर पूंजीवाले भारी लाभ उठा सकते हैं।

बिजलीका किस धड़ल्लेसे प्रचार हो गया है। टार्च, होल्डर, वालप्लग, क्लिप, स्विच आदिके तो विदेशसे आनेकी जरूरत ही नहीं। कुछ बन्धन और कठिनाइयाँ हट जायँ तो बल्ब बनानेके कारखाने भी खुल सकते हैं। मोटर गाड़ीके सम्बन्धमें तो हम पिछले एक अंकमें लिख चुके हैं। रासायनिक वस्तुओं केमिकलोंके तैयार करनेको कारखाने भी अनेक खुलने चाहियें।

बहुतसी चीजें तो हम रद्दीमें फेंक देते हैं। लोहे और टीनके कतरनसे बटन, डिब्बियां, चश्मेके खाने, नंबरवाली तख्तियां, स्टेंसिल, आलपीन, चुटकी, फुटरूल आदि अनेक कामकी वस्तुएं बन सकती हैं और गुड़के रसके साथ रद्दी लोहा सड़ा गला डालें तो पपड़ी तैयार हो जाय जिससे अनेक तरहके काले हरे नीले श्यामल रङ्ग तैयार हो सकते हैं। इसे गंधकके तेजाबमें गला देनेसे हराकसीस तैयार हो जाता है। कागज कपड़ा टाट आदिकी रद्दी तो कागज बनानेके काम आती ही है। परन्तु उसे सड़ाकर घरोंमें टोकरी, बरतन, कलमदान आदि बड़े अच्छे बनते हैं। इनमें बहुतसे काम इस तरहके हैं जिनमें बिना भारी पूंजीके भी आदमी सफल हो सकता है।

"स्वल्पेनापि हि पण्येन कुशलो धनमर्जयेत्"

—रा० गौ०

साहित्य-विश्लेषण

बेकार सखा—यह मासिकपत्र एक सालसे शिकोहाबादसे निकल रहा है। इसमें बेकारोंके लिये उपयोगी कामकी सलाह और नुसखे रहा करते हैं। दूसरे वर्षकी पहली संख्या हमारे सामने है। इसमें कई लेख बड़े कामके हैं। सँगृहीत लेख भी अच्छे हैं। इतना दोष जरूर है कि जिन पत्रों या पुस्तकोंसे सँग्रह है उनके नाम नहीं दिये हैं। विद्वत्समाजमें

इसीको मजमूनकी चोरी कहते हैं। जहांसे संग्रह किया गया है उस ग्रंथ और लेखकका नाम दे देनेसे लेखका गौरव बढ़ता है, सम्पादककी जिम्मेदारी नहीं रह जाती और पाठकोंकी आस्था दृढ़ होती है।। बेकार सखा, आशा है, सखित्त्वमें पाठकोंको ठोस सामग्री देकर अपनेको उपयोगी सिद्ध करता रहेगा ताकि कोई यह न कहे कि "बेकार" सखा है। वार्षिक मूल्य २), विद्यार्थियोंसे और गरीबोंसे १) इन बत्तीस पृष्ठोंके मासिकके लिये अधिक दाम नहीं है। इसके सम्पादक कोई "देशभक्त" महाशय हैं जो "अद्भुत खेलतमाशे," "अनोखी पुस्तकें," "नारी विजय यंत्र" "रसिक जनोंके अद्भुत तोहफे" "आनन्दजीवन" आदिके विज्ञापन देकर अपना खास रोजगार भी चलाना चाहते हैं। कुछ ऐसी ही बात है कि यह मासिकपत्र इतना सस्ता है। यदि यह स्वार्थ मुख्य साध्य है तो सचमुच "बेकार" सखा है जो गरीबों और विद्यार्थियोंके भोलेपनसे अपना उल्लूसीधा करना चाहता है। और यदि स्वार्थ गौण है तो विज्ञापनोंका ढंग तुरन्त बदल देना चाहिये और अधिक गंभीरता और उपयोगिता सम्पादन करनी चाहिये।

—रा० गौड़।

× × ×

भूगोल, संसार-शासन ।मई-सितम्बर, संख्या १-५। इस अंकके सम्पादक जगदीशप्रसाद अग्रवाल, बी० ए० हैं। इस प्रतिका मूल्य २)। रायल अठपेजेके २४० पृष्ठ। मैनेजर, भूगोल, इविंगक्रिश्चन कालिज प्रयागसे प्राप्य।

भूगोलके सम्पादक पंडित रामनारायण मिश्र बी० ए० जब यूरोपयात्रामें चले गये थे तब पांच मासमें श्री अग्रवालजीने पांच अंक अलग अलग निकालनेके बदले इस एक सम्मिलित अंकमें संसार-शासनपर एक पुस्तक ही लिखकर निकाल दी। राजनैतिक भूगोलका यह संकलन एक अच्छा ग्रंथ है। हिन्दीमें तो अपने ढंगकी यह एक ही पुस्तक है। इसकी सामग्री संकलित है। इसीलिये इसमें दिये गये मत अधिकांश स्टेट्समैन्स इयर बुकके से लगते हैं। और मूल संकलनकर्त्ता जिस राष्ट्रका होता है, यदि उसीके अनुकूल उस संकलनमें मतभी प्रकाशित हुए हों तो कोई आश्चर्य्यकी बात नहीं है। फिर भी जहां हमारे हिन्दीसाहित्यमें राजनैतिक भूगोलकी एक भी पोथी नहीं है, वहां तो इसका होना ही गनीमत है।

आरंभमें एक अनुक्रमणिका दी गयी है। परन्तु अन्तमें एक वर्णक्रम-सूची या अनुक्रमणिका भी होनी चाहिये थी, इसकी कमी ऐसी बड़ी पुस्तकमें दोष है। ईरान, अफगानिस्तान, शाम, तुर्किस्तान, छोटी एशियाके भी विशद वर्णनकी आवश्यकता थी। जर्म्मन राष्ट्रका गौण वर्णन खटकता है। स्कन्दनवीयादि राष्ट्र क्या कम महत्त्वके हैं? हमें आशा है कि इनकी कमी पूर्त्ति की जायगी।

—रा० गौड़।

× × ×

यांत्रिक चित्रकारी, प्रथम भाग। उद्योगमंदिर ग्रंथावली, पुस्तक १। लेखक श्री ओंकारनाथ शर्मा, ए० एम० आइ० एल० ई०। प्रकाशक, उद्योगमंदिर, अजमेर। सं० १९८० । प्रथम संस्करण, सस्ता २।।), बढ़िया ३।।।) सर्वाधिकार लेखकके अधीन। आकार डबल क्रौन १६ पेजी, पृष्ठ संख्या २६+२५६=२८२।

"भारतीय उद्योग-धंधोंका प्रोत्साहन करने और कारीगरोंकी ज्ञान-वृद्धिके उद्देश्यसे अजमेरके उद्योग-मन्दिरका जन्म हुआ है। इस संस्थाके दो मुख्य विभाग हैं—एक औद्योगिक परामर्श-विभाग और दूसरा औद्योगिक प्रकाशन-विभाग, जिसके द्वारा इस समय "उद्योग-मंदिर-ग्रन्थावली" नामक एक ग्रन्थ-माला प्रकाशित हो रही है। इस ग्रन्थावलीमें निम्नलिखित और इसी प्रकारके अन्य विषयोंपर एक-एक अथवा अधिक स्वतंत्र ग्रन्थ हिन्दीमें प्रकाशित होंगे। इन ग्रन्थोंकी भाषा इतनी सरल और उनमें चित्र इतनी अधिकतासे रहेंगे कि कोई भी प्रयत्नशील पाठक उस विषयको सरलतासे समझ सके।

१—यंत्रशास्त्र, यंत्र-रचना, यंत्र-निर्माण, यांत्रिक

गणित, चित्रकारी, औद्योगिक रसायन, भाफ और तेलके इंजन, बिजलीकी मोटरें और डायनमो, फरमे बनाना, लोहे, पीतल और स्पातकी ढलाई, लोहारका काम, तांबे और टीनका काम, बिजली और गैससे झाल लगाना, क़लई करना, औज़ारोंपर आबदारी लगाना, खराद और मिलिंग मशीन वग़ैरा-का काम, किर्रे काटना, चूड़ी काटना, इमारतोंका बनाना, कारखानोंका प्रबन्ध और विक्रय-कला आदि।

२—दरज़ीका काम, कताई और बुनाई, बेत और बाँसकी टोकरियाँ और अन्य उपयोगी सामान बनाना, ब्रश बनाना, चित्रकारी, फोटोग्राफी, घड़ी-साज़ी, जिल्द-साज़ी, चीनी मिट्टीका काम, काचका काम, साबुन, तेल, मोमबत्ती, रङ्ग, स्याहियाँ, रोग़न आदि तैयार करना, यन्त्रोंकी मरम्मत करना, छतरी, ताले, चाक़ू, क़ैंची, खिलौने आदि लोहे, पीतलकी नित्य उपयोगकी छोटी-छोटी वस्तुएं तैयार करना।

३—तेलके इंजनों, मोटरगाड़ियों और मोटर बाइसिकलोंको चलाना, उनकी मरम्मत करना और उनका निर्माण आदि उपयोगी विषयोंपर भी पुस्तकें प्रकाशित होंगी।"

अजमेरके उद्योगमन्दिरके परिचयसे ऊपरका अंश उद्धृत है। इसी उद्देश्यकी पूर्त्तिमें "यांत्रिक-चित्रकारी" प्रथम भागका प्रकाशन हुआ है। आरंभ भी बहुत ही उचित हुआ है। यांत्रिक चित्रका-रीका होना तो दूर रहा समझना भी हमारे साधारण हिन्दीपाठकोंके लिये संभव नहीं है। शिक्षालयोंमें ड्राइंगकी शिक्षा एक तो इस सीमातक पहुँचती ही नहीं दूसरे कारीगरीकी ओर जो अत्यन्त थोड़े ध्यान देनेवाले हैं वह यंत्रोंको समझनेके लिये चित्र पा भी जायँ तो समझ नहीं सकते। इस ग्रंथरत्नमें ठीक वैज्ञानिक रीतिसे पहले सिद्धान्तका परिचय दिया है, फिर रेखाओं और पैमानों का विवरण है। आन्तरिक दृश्य वा सेक्शनका वर्णन, नकशोंमें नाप दिखानेके तरीक़े, पेचोंकी चूड़ियां, रिवेट, किर्रें आदिके विविध प्रकार और नाप विस्तारसे दिये हैं। इन सात अध्यायोंके बाद आठवां तो चित्रकार ही नहीं यंत्र-शास्त्रीमात्रके लिये हर घड़ीके देखभालकी जरूरी ठोस सामग्रीसे भरा हुआ है। कोई वैज्ञानिक ऐसा नहीं जो इन सारणियोंसे लाभ न उठा सके। वैज्ञानिक परिमाणोंका कोई ग्रंथ इनके बिना पूर्ण नहीं कहला सकता। अन्तमें योग्य लेखकने हिन्दी-अंग्रेजी और अंग्रेजी-हिन्दी शब्दकोष भी दे दिये हैं। आजकलकी वैज्ञानिक पुस्तकोंकी यह जरूरी सामग्री है और हिन्दीके किसी वैज्ञानिक ग्रंथको तो हम शब्दकोष बिना रद्दी ही ठहराएंगे, क्योंकि हमरे पारिभाषिक शब्द तो ढल रहे हैं, ऐसी दशामें प्रत्येक ग्रन्थके शब्दों-पर विचार करनेके लिये और उनके शब्दान्तर समझनेके लिये और कोई उपाय ही नहीं है। पारि-भाषिक शब्दोंके चुनावका जो सिद्धान्त आपने अपने वक्तव्यमें दिया है वह समीचीन है और उसका पालन भी ग्रन्थमें उपयुक्त रीतिसे हुआ है। चित्रोंके निर्म्माणमें और प्रूफ़ संशोधनमें बड़ी सावधानी बरती गयी है। अपने विषयकी यह पोथी हिन्दीमें तो सब तरहसे अद्वितीय है और आचार्य्यप्रवर सर प्रफुल्लचन्द्र रायकी प्रस्तावनाका सम्मान जो इसे मिला है वह वास्तविक योग्यतापर मिला है। हम पं० ओं-कार नाथ शर्म्माको एवं उद्योगमंदिरको ऐसे सफल प्रथम प्रयासपर हृदयसे बधाई देते हैं और चाहते हैं कि दस्तकार समुदाय एवं यंत्र-विज्ञानी इसका पूरा लाभ उठावें।

\+ + +

वैक्युम-ब्रेक—उद्योगमंदिर ग्रंथावली, पुस्तक लेखक पं० ओंकारनाथ शर्म्मा, ए० एम्० आइ० एल्० ई०, प्रकाशक, उद्योगमन्दिर, अजमेर। प्रथम संस्करण, मूल्य २)।

रेलके गार्ड, ड्रैवर और कैरेज-एक्ज़ामिनरोंके लिये तो यह प्रामाणिक पाठ्य ग्रन्थ है। प्रत्येक अध्यायके अन्तकी प्रश्नावली तो इनकी परीक्षाओंमें बड़ी उपयोगी चीज़ है।

पाठकोंको मालूम है कि खतरेके समय खींचकर गाड़ीको रोक देनेके लिये जंजीरें लगी रहती हैं। यह

जंजीर खींचते ही गाड़ी रुक जाती है। यह क्यों रुकती है, कैसे रुकती है, इसका पता यात्रीको नहीं होता और न पता होना आवश्यक ही है। परन्तु रेलवेके कर्म्मचारियोंमेंसे गार्ड, ड्राइवर और कैरेज-इक्ज़ामिनरको तो इसका पूर्ण और यथार्थ ज्ञान होना चाहिये। प्रस्तुत पुस्तकका नाम तो केवल इसी एक प्रकारके ब्रेकका द्योतक है, परन्तु अन्य ब्रेक और उनके सम्बन्धके सभी यंत्रोंका वर्णन इस पुस्तकमें आया है। इसके सिद्धान्तोंके समझानेमें कोई वैज्ञानिक बात छोड़ी नहीं गयी है। ईजेक्टर, वाल्व, गेज, ब्रेक सिलिंडर, ट्रेनपैप आदिके वर्णनके अतिरिक्त इन तीन कर्म्मचारियोंके कर्त्तव्योंका पूरा विवरण इसमें दिया गया है। पुस्तक सचित्र है, नक़शे स्पष्ट और शुद्ध हैं। यह तीनों कर्म्मचारी एवं इन पदोंपर नियुक्त होनेके लिये यत्नवान् परीक्षार्थी अक्सर अंग्रेजी इतनी थोड़ी जानते हैं कि बिना हिन्दी पोथीके वह परीक्षामें सफलता नहीं पा सकते। ऐसी अच्छी पुस्तक लिखकर शर्म्मा जीने इन देशभाइयोंके साथ बड़ा एहसान किया है। कागजके कवरकी १६०+११२ पृष्ठोंकी डबल क्रौन १६ पेजी पुस्तकके दाम २) कुछ अधिक लगते हैं, परन्तु एक तो इसमें नक़शे और चित्र अधिक हैं दूसरे ऐसी पुस्तकोंकी बिक्री कम होती है अतः यह दाम वास्तवमें अधिक नहीं है। जो लोग जंजीरवाले ब्रेककी क्रिया समझना चाहें उन्हें यह पुस्तक अवश्य पढ़नी चाहिये।

रा० गौड़।

× × ×

प्रकाशकी किरणें—लेखक अखिल जगत्के सेवक श्री १०८ स्वामी भोलानाथजी "नाथ"। (स्थायी पता मार्फ़त मिस्टर आर० आर० खन्ना, रजिस्ट्रार लखनऊ युनिवर्सिटी लखनऊ, मिलनेका पता, नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ। फुलिस्केप अठपेजीके १२० पृष्ठ। सुन्दर कपड़ेकी जिल्द। मूल्य १॥)।

यह पुस्तिका प्रेमके नशेसे भरी एक पवित्रात्माकी रचना है। इसके पृष्ठ पृष्ठ ईश्वरके प्रेमसे लबालब हैं। इसे पढ़कर स्वामी रामतीर्थकी याद आ जाती है। भेद यह है कि वह एड़ीसे चोटीतक स्वामी ही स्वामी थे, मजज़ूब थे, ब्रह्मके सिवा कुछ और देखते न थे, अपने आपको उसीमें खो बैठे थे। परन्तु यह "स्वामी" और "नाथ" होते हुए भी अखिल जगत्के सेवक हैं, दास हैं, क्योंकि सबको राममय देखते हैं, अनन्य-भक्त हैं। इस पुस्तिकाके दाम १॥) हैं तो बहुत ज्यादा, परन्तु जान पड़ता है कि इसके प्रकाशक इसका प्रचार केवल समर्थ प्रेमियोंमें ही चाहते हैं। मेरी रायमें तो ऐसी पुस्तकें अवश्य दो दो आनेमें मिलनी चाहियें। बल्कि गीताके दाम ज्यादा कर देने चाहियें।

× × ×

कुरान और धार्म्मिक मतभेद—अर्थात् मौलाना अबुल कलाम आज़ाद लिखित 'तरजुमानुलकुरआन'के एक अध्यायका हिन्दी अनुवाद, अनुवादक सय्यद जहूरुल हुसैन हाशिमी, भागलपुरी। डबलक्रौन १६ पेजीके ८+१६+६८=१२२ पृष्ठ। सजिल्द। मूल्य ॥)। मिलनेका पता—सय्यद जहूरुल हुसैन हाशिमी, बैतुल अमान, डाकखाना कोलगावँ, जिला भागलपुर। १९३३ ई०।

"तुममेंसे हरएक गिरोहके लिये हमने अलग अलग धार्मिक नियम और रास्ते ठहरा दिये हैं। चाहता तो सबको एक ही संप्रदायका बना देता। यह इसलिये कि जो कुछ तुम्हें दिया गया है उसीमें परीक्षा ली जाय। पस, नेकीकी राहमें परस्पर आगे बढ़ निकलनेकी कोशिश करो। अन्तमें तुम सबको एक उसी तरफ लौटना है। आपसके भेदका रहस्य लौटनेपर ही बतलाया जायगा"। कुरान शरीफके सूरा ५ आयत ५२से इस अवतरणके दर्शन पुस्तक खोलते ही होते हैं। सच है। "गुलहाए रंग रंगसे है ज़ीनते चमन। ऐ ज़ौक़ इस जहांको है ज़ेब इख्तिलाफ़में।" जिसने जगत्की रचना "एकोऽहं बहुस्याम्" के संकल्पसे किया है उसीकी मरजीसे तो एक सत्यके बहुत रूप हैं, एक धर्म्मके अनेक सम्प्रदाय हैं। सब ही मान्य और सम्मान्य हैं।

तरजुमानुलकुरानमें जो असली ग्रंथ है इसलाम धर्म्मके बड़े उदात्त विचार हैं। उसीके एक अध्यायका

भावानुवाद इस पुस्तिकामें दिया गया है। आरंभमें विहाररत्न बाबू राजेन्द्रप्रसाद लिखित एक सुन्दर प्रस्तावना है। इस पुस्तकमें यह दिखाया गया है- और उसमें सर्वत्र कुरानशरीफसे प्रमाण दिये गये हैं— कि सभी सम्प्रदायोंके मूल तत्त्व एक ही हैं, सभी सत्यपर अवलम्बित हैं, सभी ईश्वरादिष्ट हैं, एक दूसरेका विरोध वा निन्दा गर्हित है, और परस्पर सहनशीलता और सम्मान उचित है। यह ठीक भी है कि जहां वहदानियत है, अनन्यता है, वहां विरोधभाव कैसा ? 'तत्र को मोहः कः शोकः एकत्वमनुपश्यतः।' (यजु० ४०। ३।) वाहिदहू-लाशरीक, एक-अनन्य, उपास्य परमात्माकी उपासना तो सभी ईश्वरवादी सम्प्रदाय मानते हैं। हां, वहदत और लाशरीकका अर्थ न तो मुसलमान यथार्थ-रीत्या समझता है औरन "एकत्त्व" और "अनन्यता" का अर्थ हिन्दू ही समझता है। फिर एक दूसरेको समझना तो और भी कठिन है। जो सचराचर निज एक प्रभुमय देखता है वह किससे विरोध करेगा और मोह शोक किस बातका होगा। हिन्दूमुसलिम लड़ाई आपसकी इसी बे-समझीपर निर्भर है। मुसलमानको तरजुमानुल कुरानका मुताला करके अपने तईं हिन्दू पड़ोसीके प्रति उदार बनाना चाहिये और हिन्दूको इस छोटीसी पुस्तिकाको पढ़कर यह समझ लेना चाहिये कि कठमुल्लेका कट्टरपन और जाहिल मुसलमानोंके अत्याचार उनकी मूर्खता और अपने उदार-इसलाम-धर्म्मकी अनभिज्ञताके कारण है। कुरान शरीफ इन मज़ालिमको रवा नहीं रखता।

इस बातकी जरूरत है कि कोई इसी तरहकी पुस्तक "वेद पुराण और धार्मिक मतभेद" उर्दूमेंलिख डाले जिसमें हिन्दू धर्म्मके इन्हीं मतोंका हवालेके साथ विवरण हो। उसका प्रचार मुसलिम भाइयोंमें किया जाय। अबतक एक दूसरेका खंडन करने केलिये ढूँढ ढूँढ़कर जो दोष निकालकर प्रचार किया करते थे, दोनों पक्षोंको चाहिये कि इस पुस्तिकाके दिखाये मार्गको ग्रहण करके भाई भाईके गुण देखें और दोषोंको हिन्दू हिन्दू और मुसलमान मुसलमान रहते हुए दूर करें। परस्परका खंडन भी हिंसा है जिसका आवरण सत्यके तात्विक रूपको ढक लेता है। यह हिंसा बहुत हो चुकी, इसने पारस्परिक द्वेषको चरमसीमातक पहुँचा दिया।

तरजुमानुल कुरानके और इस समालोच्य ग्रंथके दोनोंके सस्ते संस्करण निकलने चाहियें। यह पुस्तकें दो दो चार चार आनेमें निकलनी और जनताको सुलभ हो जानी चाहियें।

रा० गौड़

सहयोगी विज्ञान

१—साधारण सामयिक साहित्य

वीणा—(आश्विन)भारतमें चीनी काव्यवसाय। (कार्त्तिक)—"रुपयेकी स्वतंत्रताका महत्व।"

गंगा—(आश्विन)—हिमालयका अभियान। "दियासलाईका व्यवसाय"। "निरुद्देश।"

बालक—(सितम्बर तथा अकटूबर)--'विलायती सिक्के"। "हिन्दीसीखना।" "पूछताछ।" 'खेती।"

विशाल भारत-(सितम्बर)--"धनी दरिद्रता।" "जरासन्धकी राजधानीमें।" "शिक्षकोंसे।" (अकटूबर)--"टोमाटो। "भारती सिनेमाकी अधोगति।"

हंस--(सितम्बर)--"शिक्षा और मनोविज्ञान।"

वैदिक विज्ञान—(वर्ष १ अंक १२, तथा वर्ष २ अंक १,२) "महर्षि दयानन्द और वेदोंमें विज्ञान।" "मोंटिसोरी-शिक्षापद्धति।" "पुनर्जन्मका कारण।"

सुधा—(१ नवम्बर)--भारतीय फिल्म व्यवसाय" "विकासवादमें स्पेंसरका स्थान" "मिट्टीके प्रयोग।"

प्रताप—(२६ अकटूबर)--"एक नये प्रकारकी खाद।"

जागरण—(१८ सितम्बर तथा ३० अकटूबर)--

"रूसकी हवाई सेना।" "हमारा भोजन।" "देशी-राजोंमें शिक्षा सम्बन्धी प्रयोग"। "फूलोंका काम-विज्ञान"। "तुलसीका महत्व" (६ नवम्बर,) "काशीमें बिजलीकी पोल।" "मशीनें शत्रु हैं या मित्र ?" "समाजमें बालकोंका स्थान"।

प्रभात–(२४ अकटूबर)–"प्राणायाम।"

विकास–(२३ सितम्बर)–"इंडियन हिमालय एक्सपीडीशन क्लब।"

जयाजी प्रताप–(७,१४ सितम्बर)–"बच्चोंपर अत्याचार।" "हमारा भोजन कैसा है ?" "उच्च श्रेणीके भारतीय कपासमें हलकी जातिका कपास मिलानेसे हानि।"

स्वराज्य–(२६ सितम्बर) "स्वास्थ्यविज्ञान।"

कर्म्मवीर–(२३ सितम्बर ४ नवम्बर)–"लहसुनका स्वास्थ्यसे सम्बन्ध।" "गंगा माहात्म्य"।

२—वैज्ञानिक सामयिक साहित्य

वैद्यकल्पतरु (गुजराती) (अहमदाबाद) सितम्बर मासके अंकमें "आरोग्यता और आसन" "मनुष्यपर ग्रहोंसे होनेवाला असर" "सर्पविषकी खोज" सर्पविषका उत्तम इलाज' "जिज्ञासुओंको जवाब" "स्त्रियोंको व्यायामकी आवश्यकता" "दांतका बँधना और मजबूती" "धन्वन्तरी आरोग्य मन्दिर" और अकतूबर मासके अङ्कमें "एक शरीरके अनेक उपचार" "निदान संभाषा परिषदके प्रमुखका भाषण" "खांड और दांत" "मोटे आदमी" "चन्द्रलोकमें क्या है ?" "शरदऋतु" "आसनोंसे लाभ" "गंगागुण महिमा" "कबजियत मानव जीवनका भयंकर दुश्मन है" यह लेख हैं।

प्रकृति (बँगला कलकत्ता) शीत और वसन्त संख्यामें ये लेख हैं–"जड़के उपादान" "सोडा बनानेका इतिहास" "जलपाइगुड़ीके नेपालियोंका एक धार्म्मिक विश्वास" "चरकसुश्रुतमें वर्णित कई पशुओंका परिचय" "एक-पाद" "प्राचीन हिन्दू वनस्पतिशास्त्र" "मृत्तिका" "हम थकते क्यों हैं ? और "जलस्तंभ"।

रोशनी (उर्दू लाहौर)–सितम्बरके अँकमें ये लेख हैं–"क्षय और उसके कारण" "माताओंके चलनका असर अपने घर पर" "तपे मुहरिक्रा" "चेहरोंपर पौडर मलनेका रवाज और उसके जोखिम" "सीसेका जहर कैसे फैलता है ?" "सभ्य जातियोंमें दृष्टि दौर्बल्यका कारण" "भारतके प्राचीन पुस्तकालय" "सिनेमाओंमें नंगा नाच" और "फूलोंकी रक्षा।"

कल्पवृक्ष-उज्जैन, अकतूबर की सँख्यामें यह लेख हैं----"प्रतिभाको जागृत करनेका उपाय"। "आत्म-ज्ञान प्राप्त करनेका तीसरा सोपान" "शारीरिक सौन्दर्य्य बढ़ानेवाले साधन।" "सुन्दर दृष्टि" "पर-मात्माका विचार ही सब दुःखों को मिटानेका साधन है।" "स्वास्थ्य साधनका प्राकृतिक उपाय।" "सुख और शान्ति" "अनिष्ट प्रभावसे मुक्त होनेका मार्ग।" और नवम्बरकी संख्यामें यह लेख हैं----"अन्तःकरण चिकित्सा" "प्रार्थना करते रहो" "इच्छा शक्तिके विकासके साधन" "साधारण गृहस्थोंके उद्धारका उपाय" "मौनका प्रभाव" "अपवित्र मनको पवित्र बनानेका उपाय" "'मैं' की शक्ति" तथा "विचार शक्तिका भला और बुरा उपयोग"।

बेकार सखा, शिकोहाबाद, सितम्बरकी संख्या-में ये लेख हैं–"बेकारोंको स्तेमाली टिकटोंका व्या-पार" "स्वदेशी डैरेक्टरी" "अश्लील विज्ञापन और समाचार पत्र" "गिलटसाजीका व्यापार" "रोगोंसे बचनेका उपाय" "शीशेपर कलई करना" "बेकारीके कारण और उपाय" "स्वदेशी शर्बत" "बेकारोंके लिये अमूल्य नुसखे" "सुनारी"।

भूगोल-प्रयाग, अकतूबर। "मेरी विदेशयात्रा"। "बरेली जिलेका कारबार"। "अँग्लोपर्शियन आयल कम्पनी"। "अमेरिकाके स्कूलोंमें ब्राडकास्टिंग" "बिहार प्रान्तकी भौगोलिक कहावतें" "हमारी पृथ्वीकी आयु" और "चीनी भूगोल" यह लेख इस संख्या-में हैं।

२—पुनर्यौवन प्राप्तिके उपाय

इस विषयपर वैशाख, १९९० के विश्वमित्रमें पं० इलाचन्द्र जोशीने एक वृत्त-पूर्ण लेख दिया है। उपायोंकी खोजमें प्राचीन कालसे अबतक जो काम हुए हैं उनकी चर्चा करके लेखक कहता है—

पोयेल (poehl) नामका एक आधुनिक रूसी वैज्ञानिक भी अपने प्रयोगों द्वारा इस सिद्धान्तपर पहुँचा है कि जानवरोंकी मांस-ग्रन्थियोंका सत्त्व मनुष्यके शरीरमें प्रवेश करानेसे विशेष सुफल प्राप्त होता है। उसने जानवरोंके भीतर क्षरित होनेवाले कुछ विशेष रसोंके भीतर एक ऐसे क्षार पदार्थका (Alkali) आविष्कार किया है जिसका लवण-अंश, उसकी सम्मतिमें, यौवन-शक्ति-वर्द्धक होता है। इस लवण-पदार्थका नाम Spermine (अर्थात् वीर्य-तत्त्व) है। बहुतसे डाक्टरोंने इसका प्रयोग किया है और वे भी इस सिद्धान्तपर पहुँचे हैं कि इस पदार्थके इञ्जेकशन मानव-शरीरमें दिये जानेसे अथवा चूर्णके रूपमें उसका व्यवहार होनेसे वृद्धावस्था अथवा श्रमके कारण उत्पन्न दुर्बलता नष्ट होकर बल बढ़ता है। पोयेलने इस सम्बन्धमें अपने तथा अन्य डाक्टरोंके प्रयोगोंके उदाहरणोंका विस्तृत वर्णन किया है, जिनमें एक उदाहरण ६९ वर्षकी एक वृद्धाका भी है। इस बुढ़ियाकी नसें बिलकुल शुष्क और क्षीण हो गयी थीं, उसे बिलकुल भूख नहीं लगती थी और न नींद ही आती थी, वह बहरी हो गयी थी और मैलेरिया ज्वरसे अक्सर आक्रान्त रहती थी। जब उसे प्रायः पन्द्रह महीने तक स्परमीन (Spermine)के इञ्जेकशन दिये गये तो उसकी हालत यहां तक सुधर गयी कि वह कानोंसे बहुत अच्छा सुनने लगी थी, उसकी भूख खुल गयी थी और आरामसे सोने लगी थी। स्परमीन केवल अण्डग्रन्थियों द्वारा ही तैयार नहीं किया जाता, अन्यान्य मांसग्रन्थियोंसे भी यह तत्त्व निकाला जा सकता है।

पहले किसी एक स्थानपर कहा जा चुका है कि नवीना सुन्दरियोंके संसर्गमें रहनेसे जो मनोवैज्ञानिक, इथीरियल (ethereal)प्रभाव पुरुषपर पड़ता है उससे सभी शारीरिक तथा मानसिक वृत्तियोंको नव-चेतना तथा स्फूर्ति प्राप्त होती है। हमारे देशमें स्त्रियोंकी अकाल-मृत्यु तथा पुरुषोंके अकाल वार्द्धक्यका एक जबर्दस्त कारण यह भी है कि युवक-युवतियोंको सहयोगपूर्वक जीवन बिताकर भावोंके पारस्परिक आदान-प्रदानकी कोई सुविधा तथा स्वतन्त्रता प्राप्त नहीं है। यूरोपमें यह सुविधा होनेसे वहांके बूढ़े भी कैसे जवान रहते हैं, यह बात किसीसे छिपी नहीं है। भारतीय क्षीण स्वास्थ्य, क्लिष्ट-काय युवकगण जब यूरोप जाकर देशको वापस आते हैं तो उनके चेहरोंमें काया-पलटके जो चिह्न दिखायी देते हैं वे इस बातके प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। भारतमें फिर उनकी दशा धीरे-धीरे पूर्ववत् हो जाती है। इसपर कुछ लोग यह कहेंगे कि यूरोपके जलवायुके प्रभावके कारण ही उनके मुख तथा शरीरमें यह परिवर्तन सम्भव होता है। कुछ अंशतक यह बात सत्य हो सकती है, पर इस आश्चर्यजनक परिवर्तनका विशेष कारण वही है, जो ऊपर कहा जा चुका है, इसमें सन्देहकी कोई गुञ्जाइश नहीं है। जीवन और यौवनकी तरङ्गोंकी गति रुद्ध होनेसे केवल जलवायु कोई विशेष फल प्रदान नहीं कर सकता। हमारा तात्पर्य यह नहीं है कि स्त्री-पुरुषका ऐसा अवारित स्वच्छन्द मिलन हो जिससे कामाचार बढ़ जाय। शरीर तथा मनकी वास्तविक शक्ति प्राप्त करनेके लिए आध्यात्मिक मिलनकी आवश्यकता है।

लेखकके इन विचारोंका आधार नित्यका निरीक्षण है। परन्तु इसका वास्तविक तत्त्व इन उतावले निष्कर्षोंसे कहीं अधिक गहरेमें छिपा हुआ है। यौवन जीवन-कालके मध्याह्नकी अवस्था है। वार्धक्य उतार है। परन्तु जीवनी शक्ति तो उस घड़ी तक बनी रहती है जबतक शरीरकी क्रिया चलती रहती है। उसका कोश तो आत्मा है। निग्रह, संयम, ब्रह्मचर्य्यादि साधनोंसे योगी इसी कोषमेंसे यौवन यथेच्छ परिमाणमें प्राप्त कर सकता है और अपनी आयुको बहुत बड़ी सीमातक बढ़ा सकता है। श्री रामचन्द्रादि चारों भाइयोंका यौवन-सम्पन्न दीर्घ जीवन एक उदाहरण है। अपनी वृद्धावस्थामें सात सौ युवतियोंके संसर्गमें रहते हुए राजा दशरथ यौवनावस्थाकी न तो रक्षा कर सके और न ला सके, परन्तु उनके एक-नारिव्रती अखंड ब्रह्मचारी चारों पुत्र अपने जीवनभर पूर्ण यौवन सम्पन्न बने रहे। रामायणमें इस प्रकार युवतियोंके संसर्गकी व्यर्थता और ब्रह्मचर्यकी महत्ता

यौवन प्राप्ति वा रक्षाके लिये दरसायी गयी है ।

युवतियोंके संसर्गसे, वारनाफ़वाले प्रयोगसे अथवा स्पर्मीनकी पिचकारीसे कुछ कालके लिये विषयोपभोगकी लिप्सा-पूर्त्तिकी क्षमता भले ही हो जाय परन्तु क्या इसीको यौवन कहते हैं ? यह एक संयोगकी बात है कि जाति रक्षाकी सबसे अधिक क्षमता युवावस्थामें होती है और उसके लिये प्रवृत्त करनेको यौवनोन्माद परम सहायक है । परन्तु यौवन और जाति रक्षाकी क्रिया का, जीवनके वेग और प्राजापत्य धर्म्मका, कोई अनिवार्य्य सम्बन्ध नहीं है । बूढ़ोंके और वृद्ध-प्राय दुर्बलोंके भी सन्तान होती है और बहुतसे जवान स्त्री पुरुष सन्तान के लिये तरसते रह जाते हैं । दैहिक संसर्गमें सुख तो जाति-रक्षार्थ प्रकृतिने रखा है । उस सुखसे यौवनावस्थासे कोई विशेष संबन्ध नहीं है । हां यदि जीव उस सुखके लालचमें पड़कर अपनी जीवन शक्तिको गंवाने से बचा रहे, तो उसी सुखको चिर-यौवनमें परिणत कर सकता है । दैहिक संसर्ग चाहे किसी अवस्थामें हो यौवनका विनाशक है, रक्षक नहीं है । अतः हम लेखककी नीचे लिखी हुई सम्मतिको ही ठीक समझते हैं—

हमारी तुच्छ सम्मतिमें यदि खोया हुआ यौवन किसी भी अंशमें फिरसे प्राप्त किया जा सकता है तो वह किसी आयुर्वेदिक तथा वैज्ञानिक उपाय द्वारा नहीं, बल्कि मनोवृत्तियों तथा इन्द्रिय-सम्बन्धी विकारोंके सुचारु तथा सुनियमित परिचालन द्वारा । हमारे यहां राजयोग तथा हठयोगमें जो-जो उपाय इन्द्रिय-निग्रह तथा मनोविकासके लिए बताये गये हैं उनका प्रयोग हमें अन्य सब उपचारोंमें अधिक उपयोगी तथा प्रत्यक्ष फलदायक मालूम होता है । प्राणायामके अभ्यास द्वारा यदि प्राण-स्पन्दिनी वायुको अपने वशमें किया जाय और फलतः मनका चाञ्चल्य भी इच्छानुसार दमन किया जाय तो आत्माके भीतर जो दिव्य शान्ति प्राप्त होती है, वह वार्द्धक्यके निराकरणमें विशेष सहायक होती है, और यौवनकी दीप्ति फिरसे शरीर तथा मनमें ला सकती है ।

इसके आगे लेखक एक और प्रकारके योग, भक्तियोगके साधनोंकी ओर लक्ष्य करके कहता है—

वास्तविक शक्ति तथा वास्तविक सौन्दर्यका चिन्तन, मनन तथा भजन हमारे यहां योगका एक साधन है । पुनर्यौवनकी प्राप्तिका भी यह सबसे निश्चित मार्ग है । हमारे यहां किसी पुराणमें एक रानीके सम्बन्धमें कहा गया है कि ६० वर्षकी अवस्थामें वह इस बातका चिन्तन करने लगी कि सुन्दर क्या है ? पवित्र क्या है ? मङ्गल क्या है ? समस्त मन तथा आत्मासे वह प्रतिक्षण इन्हीं विषयोंका मनन किया करती थी । धीरे-धीरे "उसके मुखकी शोभा नवकमलिनीकी तरह विकसित होने लगी और वह वृद्धा नवमुकुलिता लताकी तरह यौवनशीला बन गयी ।" कभी किसी पाठकको यदि किसी वास्तविक सिद्ध योगीके दर्शनका सौभाग्य प्राप्त हुआ हो तो उसे मालूम होगा कि उसके मुखमण्डलमें सदा, सब समय यौवनकी कमनीय कान्ति झलकती रहती है ।

राम और कृष्णके सगुणोपासक भक्त अपने भगवानका परम सुन्दर नित्यकिशोर रूपमें ध्यान करते हैं । स्वयं शिवम् सुन्दरम्के मूर्त्तिमान् आदर्शका चिन्तन करते रहते हैं । इससे यह तो नहीं देखा गया है कि वह स्वयं किशोरावस्थामें बने रहते हों । उनका उद्देश्य भी यह नहीं होता कि वह व्याधि जरा मरणसे रहित हो जायं । वह तो भगवत्प्राप्तिके लिये ही पुरुषोत्तम रूपका ध्यान करते हैं । यह बात दूसरी है कि सख्यभाववाले उपासक कभी आध्यात्मिक रीति से बूढ़े हो नहीं सकते । परन्तु उनका उद्देश्य यौवन-प्राप्ति वा रक्षा कदापि नहीं होता । अतः हम लेखकसे कदापि सहमत नहीं हैं कि—

'हमारे सिद्धगण तथा भक्तजन कृष्णके चिर-यौवन-सम्पन्न, अनन्त रूप-राशि-विभासित, तेजोदीप्त मुखमण्डलका ध्यान इस उद्देश्यसे करते हैं कि उसकी प्रेरणासे उनकी आत्माओंको जराका कोप बिलकुल भी जर्जरित न करने पाये । शरीरकी उन्नति यद्यपि उनका लक्ष्य नहीं रहता, तथापि इसका असर, विशेष न होनेपर भी, शरीरपर पड़ता ही है ।

फिरभी अन्तिम वाक्यसे हम सहमत हैं ।

—रा० गौ०

३—एक नये प्रकारकी खाद

पटना हाई कोर्टके चीफ जस्टिस सर कोर्टनी टरेलने एक नयी विधिसे देशी खाद तय्यार करायी है। उसकी रिपोर्ट उन्होंने सामयिक पत्रोंमें प्रकाशित करायी है। उसे संकलित करके हम यहां देते हैं।—

"चैत्रके अन्त या वैशाखके आरम्भमें सूखी पत्तियाँ इकट्ठी कर ली जायँ। इसके साथ ही उसे अलग गोबर और पानी मिलाकर घोल सा बना लिया जाय। इसका सुगम उपाय यह होगा कि कोई दो फुट गहरा एक गढ़ा बना लिया जाय, जिसकी दीवारें संभव हो तो सीमेन्टसे पक्कीकर दी जायँ या मिट्टीसे ही ऐसी बना दी जायँ, जिससे पानी न रसे। उस गढ़ेमें ताजा गोबर और पानी मिलाकर खूब घोल दिया जाय। फिर गाय और बैलका जितना भी मूत्र मिल सके, उसमें घोल दिया जाय। इसके बाद इकट्ठी रखी गयी, सूखी पत्तियां भी उस गढ़ेमें डालकर उस घोलमें खूब सराबोर कर दी जायँ। गोबर और पत्तियोंका अनुपात मोटे तौरपर इस प्रकार रहे कि ३॥ मन गीला गोबर हो तो १० मन सूखी पत्तियाँ उसमें डाली जायँ। घोलमें पत्तियां मिलाने के बाद २४ घण्टे तक उन्हें गढ़ेमें वैसे ही पड़े रहने देना चाहिये। इतनी देरमें वे पत्तियाँ घोलके पानी को सोख लेंगी तथा गोबरका अंश पत्तियोंमें लिपट जायगा। इसके बाद उन पत्तियोंको गढ़ेसे इस प्रकार निकाल लिया जाय कि बचा खुचा पानी चूकर उसी गढ़ेमें ही रह जाय, ताकि वह फिर आगे काम आवे। अन्तमें गोबरमें सनी उन पत्तियों का, जमीनपर ही ढेर (गांज) लगा देना चाहिये। यह ढेर इस प्रकार बनाया जाय कि नीचे उसकी चौड़ाई ५-६ फीट हो और ऊपर तीन फीट, तथा ऊँचाई ढाई फीटसे अधिक न हो। पर पत्तियोंके अधिक या कम होनेपर यह चौड़ाई तथा ऊँचाई भी घट बढ़ सकती है। ढेरका भीतरी भाग तर अवश्य रहना चाहिए, पर इसके साथ ही इस बातका भी ख्याल रहना चाहिये कि वह गीला न हो जाय। तीन चार दिन के अन्दर उस ढेरमें गर्मी बढ़ने लगेगी। यहांतक कि गर्मी ६०° डिग्री सेन्टीग्रेड तक पहुँच जायगी। पर किसानोंके लिये संभव नहीं कि वे इसके लिये थर्मामीटर रखें और उससे इस ढेरकी गर्मीको देखें। इसलिये उन्हें अपने देहाती तरीकेको ही काममें लाना चाहिये। यानी वे ढेरके अन्दर अपनी उँगली घुसेड़कर गर्मीके घटने बढ़नेका अन्दाजा लगा लें। जब उस ढेरके भीतरकी गर्मी घटकर उँगली सहने लायक हो जाय तो उस ढेरको तोड़कर उसे फैला दिया जाय तथा उसपर पानी छिड़का जाय। जिसमें थोड़ा गौ-मूत्र या गोबर भी मिला रहे तो अच्छा हो। इस समय भी इसका ख्याल रहे कि खाद तर तो हो जाय, पर गीला न होने पावे। इसके बाद फिर उसका पहलेके जैसा ही ढेर लगा कर छोड़ दिया जाय। इस बार भी फिर उसमें गर्मी पैदा होगी और वह फिर ठण्डा भी होगा। अस्तु ठण्डा पड़नेपर उसे फिर पहले जैसे तोड़ कर फैलाना तथा उसपर गो-मूत्र या गोबर मिश्रित पानी छिड़कना चाहिये। इसके बाद उसे उभाड़ने और ढेर लगानेकी क्रिया एक बार और की जाय। यानी ढेर लगाने और उसके गर्म होकर ठण्डा होनेपर उसे उभाड़कर पानीसे तर करने का काम अमूमन तीन बार होना चाहिये। चौथी बार उसे नहीं उधेड़ना चाहिये। हर बार ढेर उभाड़नेपर यह दिखाई पड़ेगा कि उसके पत्ते टुकड़े-टुकड़े होते जा रहे हैं। तथा उसमें छोटे छोटे कुकुर मुत्ते लग गये हैं। ढेर को तीनों बार उभाड़ने और लगानेमें अमूमन ४० दिन लग जाते हैं। उसके बाद वह खाद तैयार हो जाती है। अब उसे वहीं छप्पर डालके ढक देना चाहिये तथा आवश्यकता पड़नेपर काममें लाना चाहिये। इस समय यह खाद साफ, भूरे रंग की और गन्ध-हीन होगी।"

सर कोर्टनीका यह भी कहना है कि अगर कोई इस खादका बनाना और इस्तेमाल करना देखना चाहे तो वह हमारे मालीके पास आकर देख सकता है। (संकलित)

विज्ञानंब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते,
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० । ३।५ ॥

भाग ३८ } प्रयाग, धनु, संवत् १९९० । दिसम्बर १९३३ । { संख्या ३

मंगलाचरण

(स्व० पं० श्रीधर पाठक)

जिसने सागर की तरंग पर रंग जमाया
आँधी, पानी अँधियारी पर तंग चढ़ाया
बिजलीपर भी विकट मोहिनी मंत्र चलाया
किया निपट परतंत्र स्वर्ग संसर्ग छुड़ाया

उस विद्या बुद्धि विलास का जग में जयजयकार हो
उस वर विज्ञान विकास का घर घर में संचार हो

कोसों दूरसे साफ़ फ़ोटो खींचना

उपरक्त रश्मियोंका चमत्कार

[ले० डा० गोरखप्रसाद, डी० एस-सी०]

फोटोग्राफ़ी संबंधी सबसे नया आविष्कार उपरक्त रश्मियोंके लिये बनाया गया प्लेट है। सभी जानते हैं कि श्वेत प्रकाश कई रंगोंकी रश्मियोंसे बनता है। इन सबकी तरंग-दैर्घ्य लहर-लंबाइयाँ भिन्न-भिन्न होती हैं। सबसे लंबे तरंग लाल प्रकाशके होते हैं। इनसे अधिक लंबे तरंगोंमें प्रकाश नहीं बनता, केवल गरमी पैदा होती है। इनको उपरक्त रश्मियाँ कहते हैं।

फ़ोटोग्राफ़ीका थोड़ा बहुत भी ज्ञान रखनेवाले जानते हैं कि फ़ोटोग्राफ़ी-संबंधी साधारण प्लेटोंपर लाल प्रकाश का प्रभाव नहीं पड़ता। प्लेटोंको विशेष रासायनिक पदार्थोंमें विशेषकर तारकोलसे बनाये गये रंगोंके घोलोंमें रंगनेसे उन लाल प्रकाशका प्रभाव पड़ता है। ऐसे प्लेट पैनक्रोमैटिक कहलाते हैं। तारकोल से बने अब ऐसे रंगों का भी पता चला है जिनमें रंगनेसे प्लेट पर उपरक्त रश्मियोंका भी प्रभाव पड़ सकता है। ऐसे प्लेट इलफ़ोर्ड, कोडक और ऐगफ़ा कंपनियाँ अब बनाती और बेंचती हैं। इनके साथ लेंजपर लगानेके लिये प्रकाश-छनने भी बिकते हैं जिनको उपरक्त रश्मियों को छोड़कर अन्य राश्मयाँ पार नहीं कर सकतीं।

ऐसे प्रकाश-छननेको (ताल) लेंज़पर लगा कर उपरक्त प्लेटोंपर फ़ोटोग्राफ़ लेने में विशेषता यह है कि बहुत दूरकी वस्तुओंका फोटो भी स्पष्ट आता है। बात यह है कि वायुमें छोटी लहर-लंबाईके लहर बिखर जाते हैं। इसीसे तो आकाश नीला दिखलाई पड़ता है। साधारण प्लेटपर फ़ोटो लेनेसे विषय और कैमेराके बीचके वायुमें बिखरे हुए प्रकाशसे दूरस्थ विषय मिट जाता है। पैनक्रोमैटिक प्लेट और लाल प्रकाश छननेसे दूरस्थ विषयोंकी फ़ोटोग्राफ़ीमें बहुत कुछ सहायता मिलती है। परंतु उपरक्त प्लेट और उचित प्रकाश छननेसे कोसों दूरके विषयोंका स्पष्ट चित्र खींचा जा सकता है। ऐसे प्लेटोंपर कैप्टेन स्टिवेंसने २३००० फुटकी ऊँचाईसे ३३१ मीलकी दूरीपर स्थित पहाड़का स्पष्ट चित्र खींचा है, यद्यपि बीचका वायु इतना धुँधला था कि पहाड़ तनिक भी दिखलाई नहीं पड़ता था।

उपरक्त प्लेटों का अँधेरे में भी फ़ोटो खींचा जा सकता है। बिजुलीके लट्टूओंमें यदि इतनी कम बिजली जाने दी जाय कि वे खूब गरम हो जायँ, परंतु लाल न होने पावें तो उनसे काफी उपरक्त प्रकाश निकलेगा। इसीलिये बिलकुल अँधेरेमें भी यदि वहाँ ऐसे लट्टू लगे हों, तो अच्छे फ़ोटोग्राफ़ खींचे जा सकते हैं और खींचे गये हैं। जो इसके भेदको नहीं जानते उनको अत्यंत आश्चर्य होता है कि अँधेरेमें किस प्रकार फ़ोटो उतर आता है।

उपरक्त फ़ोटोग्राफ़ीमें एक अवगुण भी है। उपरक्त प्लेटोंसे हरी पत्तियाँ सफ़ेद उतरती हैं और नीला आकाश काला छपता है। परंतु इस अवगुणसे सिनेमावाले लाभ उठाते हैं। जब उन्हें चंद्रमाके प्रकाशसे आलोकित कोई दृश्य प्रदर्शित करना होता है तब वे दिनमें ही फ़ोटो खींचते हैं, परंतु उपरक्त फ़िल्मपर और लेंज़के सामने उपरक्त छनना लगाकर। इससे आकाश काला आता है और ऐसा जान पड़ता है कि रातका दृश्य है।

लड़ाईके समयमें उपरक्त फ़ोटोग्राफ़ी बहुमूल्य सिद्ध होगी। ज्योतिष संबंधी और सूक्ष्मदर्शी फ़ोटोग्राफ़ीमें भी इसके उपयोगसे अनेक नवीन बातोंके पता चलनेकी संभावना जान पड़ती है।

उपरक्त प्लेट गरमीसे शीघ्र बिगड़ते हैं, इसलिये उनका प्रयोग भारतवर्षमें केवल जाड़ोंमें ही हो सकेगा।

पहाड़ियोंकी करामात

पानीसे विषम-ज्वर भागता है

[ले० श्री पंडित किशोरीदास वाजपेयी शास्त्री]

श्री लुई कूनेकी जल-चिकित्सासे संसार परिचित हो चुका है। और इसकी उपयोगिता सिद्ध हो चुकी है। भारतमें भी इस चिकित्साका पर्याप्त प्रचार है। महात्मा गांधी भी इसमें अत्यधिक विश्वास रखते हैं।

यों लुई कूनेका नाम अमर हो गया है। उनका नाम ही ऐसा है। परंतु कुछ ऐसी बातें हैं, जिनसे प्रतीत होता है कि बहुत प्राचीन कालसे भारतमें जल-चिकित्सा प्रचलित थी। वेदोंमें कितने ही ऐसे मंत्र आये हैं, जिनमें जलको तथा उसके अधिष्ठातृ-देवता वरुणको सर्वरोग-हर कहा गया है। संभव है, इस विषयपर भी पहले स्वतंत्र ग्रंथ रहे हों। जैसे कालवश हमारे और अनेक विज्ञान विलीन हो गये, वैसे ही यह भी। आर्य-समाजकी सुप्रसिद्ध शिक्षा-संस्था गुरुकुल-महाविद्यालय ज्वालापुर-हरिद्वारके आचार्य मित्रवर पं० श्रीहरिदत्तजी शास्त्रीके कथनानुसार इस संस्थाके पुस्तकालय-में एक 'सहस्र-धारा' नामक प्राचीन हस्तलिखित संस्कृत ग्रंथ है। इसमें विविध प्रकारसे स्नानों द्वारा अनेक रोगोंके दूर करनेकी विधियाँ लिखी हैं।

हमारे पहाड़ी प्रदेशोंमें अभी नवीन सभ्यता प्रायः नहीं पहुँची है। हिमालय पहाड़की आबादी भी ऐसी ही है। यहाँके लोग साधारणतः किसी डाक्टरपर विश्वास नहीं करते। कहते हैं 'न जाने, क्या दे देगा।' वे वैद्य-हकीमसे नहीं डरते और उनकी बात मान भी लेते हैं; क्योंकि गावोंमें वे ऐसी चीजोंका चूरन-काढ़ा आदि बतलाते हैं; जिनके गुण-दोष सब जानते हैं। कम-से-कम इतना तो होता ही है कि ये चीजें घातक नहीं हैं।

परंतु जहाँ नयी रोशनीकी पहुँच है, और डाक्टरको लोग देवता करके समझते हैं, वहाँ भी डा० लुई कूनेकी बातोंमें साधारण जनताका विश्वास नहीं है। साधारणकी कौन कहे, पढ़े-लिखे समझदार आदमी भी उनके प्रयोगोंसे डर जाते हैं! कौन आदमी अपने बच्चेको शीतल जल-से स्नान करानेमें भयभीत न हो जायगा, जब उसे भीषण ज्वरने दबा रखा हो? ज्वरमें ठंढे पानीसे नहाना! तब भला पहाड़ी लोग इस प्रकारके डाक्टरकी बात कब मानने लगे?

इतना होनेपर भी उन पहाड़ी प्रदेशोंमें एक प्रकारसे जल-चिकित्सा खूब प्रचलित है। वहाँकी जनतामें इस चिकित्साके प्रति दृढ़ विश्वास है। ये लोग रूढ़िके उपासक होते हैं। अपनी पुरानी बातें बिना किसी विशेष कारणके छोड़ते नहीं और नयी अपनाते नहीं। इससे प्रतीत होता है कि इनमें यह चिकित्सा चिरकालसे प्रचलित है। ध्यान देने की बात यह है कि जो आबादी शहरोंके संपर्कसे एकदम शून्य है, वहीं इस चिकित्साका चलन है।

जब किसी पहाड़ी ग्राममें किसी व्यक्तिको ज्वर बहुत सताता है और साधारण जड़ी-बूटियों-द्वारा ठीक नहीं होता, तब उसके लिए जल-चिकित्सा-का प्रयोग होता है। गाँव बिलकुल छोटे-छोटे होते हैं। रोगी व्यक्तिके घरवाले गाँवके लोगोंके पास खबरें पहुँचा देते हैं कि आज अमुक समयपर सब-को इस कार्यके लिए हमारे यहाँ एकत्र होना चाहिए। खबर पाकर सब लोग, अपने और सब काम छोड़कर, निर्दिष्ट समयपर वहाँ पहुँच जाते हैं और अपने-अपने घरसे एक-एक घड़ा साथ लेते जाते हैं। यों पचीस-पचास घड़े भरनेसे भरकर सब लोग रोगीके घरकी छतपर चढ़ जाते हैं।

रोगीके घरके लोग उसे लाकर और सब कपड़े अलग करके, घरके पनालेके नीचे बैठा देते हैं और उसे खूब कसकर पकड़ लेते हैं। यदि घरमें आदमी कम हुए तो गाँवके दूसरे आदमी उसे पकड़कर बैठ जाते हैं। तब छुतके आदमियोंको सूचना दी जाती है। सूचना पाकर एक एक आदमी क्रमशः अपने-अपने घड़ेका पानी उस पनालेपर उँड़ेलता जाता है और पुनः झरनेसे भरने चलता जाता है। यों रोगीकी शक्ति और अवस्थाके अनुसार पचास-सौ घड़े पानी उसके सिरपर धार बाँधकर गिराया जाता है। रोगीके रोने-चिल्लानेकी कोई परवा नहीं करता। जब समुचित जल-प्रपात हो चुकता है, तब लोग रोगी को उठाकर भीतर ले जाते हैं। रोगी कभी-कभी बेहोश भी हो जाता है। भीतर उसे ले जाकर घरके खिड़की-किवाड़ सब बन्द कर लिये जाते हैं और तब सूखे कपड़ेसे उसका शरीर खूब पोंछ दिया जाता है। बादमें उसे गरम कम्बलोंमें लपेटकर खाटपर लिटा देते हैं। और ऊपरसे खूब गरम कपड़े ओढ़ा देते हैं। बहुत देर बाद रोगी आराममें आ जाता है।

आवश्यकतानुसार दो-तीन दिनतक भी इस प्रकार जल-स्नान कराया जाता है और रोगी इससे भाला-चंगा हो जाता है।

यदि इस प्रकार शीतल जलके स्नानसे रोगी को लाभ न पहुँचा, तो फिर दूसरी प्रक्रियाकी जाती है। घर का एक आदमी सवेरे उठ जाता है और जंगलमें प्रत्येक प्रकारके पेड़-पौधे और लता-गुल्म-के पत्ते नोच-नोचकर अपनी झोलीमें भरता जाता है। झोली भरकर घर आ जाता है। वे सब पत्ते एक बड़े बर्तनमें भरकर उसमें घड़ा-दो घड़ा पानी भर देते हैं और ढँककर आग पर चढ़ाते हैं। खूब उसे औटाते हैं। फिर रोगीको खरारी खाटपर, उसके सब कपड़े अलग करके लिटा देते हैं। इधर-उधर से लोग उसे पकड़कर बैठ जाते हैं। रोगी को लिटा देने पर वह खौलता हुआ पानी लाकर उसकी खाट-के नीचे रख दिया जाता है। रोगीके शरीरपर, खाटके चारों ओर लटकता हुआ कम्बल ओढ़ा दिया जाता है। इस प्रकार खूब भाफ़ लगने दी जाती है। जब भाफ़का निकलना बन्द हो जाता है, तब धीरे-से भीतर हाथ करके रोगीका शरीर पोंछ दिया जाता है और उसे उसी प्रकार लेटे रहने दिया जाता है। कुछ देर बाद रोगीको आराम हो जाता है।

जो लोग कभी बदरीनारायणकी यात्रा करें या मंसूरीकी सैरको जायँ, वे जरा शहरसे दूर हट कर, गाँवोंमें जाकर, मेरे इस कथनकी जाँच करें। मैंने बदरिकाश्रमके इधर-उधर, टिहरी-गढ़वाल रियासतके गाँवोंके आधारपर लिखा है; परन्तु समस्त पहाड़पर यह प्रथा प्रचलित है, यह उन पहाड़ियोंसे ही मालूम हुआ।

हमारे निरन्तर चलनेवाले पंप और धौंकनी

[ले० बालगोविन्दप्रसाद श्रीवास्तव]

शरीरकी प्रत्येक गतिमें कुछ न कुछ बलक्षय होता है, तथा निर्वाहके लिये मनुष्यके अङ्ग-प्रत्यङ्ग कितना पौरुष करते हैं, उस पर ध्यान देनेसे शरीर भी एक ख़ासा पुतलीघर जँचने लगता है। आप शरीरके किसी भागपर ध्यान दीजिये और देखिये कि वह किस प्रकार अपना कार्य्य पूरा करता है। उसी अनुमानसे आप अपने पूरे शरीरके कर्तव्य-का अन्दाजा लगा सकते हैं। और जब हम यह देखते हैं, कि अङ्ग-प्रत्यङ्ग कैसा लगातार अपने काम-में स्थिर हैं—न आराम, न विश्राम,— तब आप सोच सकते हैं कि यह भीतरवाला एञ्जिन कैसा ठीक और कैसा दृढ़ है। आश्चर्य इस बातका है कि यह एञ्जिन कैसा चुपचाप अपने काममें व्यस्त है कि हमलोगों को साधारणत: उसका कुछ पता ही नहीं चलता!

पाठक महाशय! आप अपनेको किसी अँधेरी कोठरीमें बैठा समझ लीजिये। मैंने वहाँ आकर दीपक जला दिया है और आपका ध्यान एक पम्प-की ओर आकर्षित किया है। वह क्या है? वह इस शरीरका स्वामी अर्थात् हृदय है।

यह पानके आकारका दृढ़ मांसपेशियोंसे भरा हुआ है, जो अपने जीवनभर सदा फैलता और सिकुड़ता रहता रहता है। इसके लिये न कभी छुट्टी है न तिवहार। आठ पहर चौंसठ घड़ी इसे अपने कामसे काम। जहाजी एञ्जिनकी तरह रात-को भी इसे आराम नहीं। इस एञ्जिनको बालसे पतली नसोंमें रुधिर पहुँचाना होता है और फिर इतना जोर लगाना पड़ता है कि रुधिर शरीरकी नसोंमें चक्कर करके, फिर वहींका वहीं आ जाता है।

हृदय की एक ओरवाली एक कोठरीमें अनुमान तीन छटाँक रुधिरकी जगह है, और नाड़ीकी गति साधारणत: मिनटमें ७५ बार है, अर्थात् एक मिनटमें २२५ छटाँक रुधिर इस कोठरीसे आता जाता है। एक घण्टेका काम जाननेके लिये यदि हम इसे ६०से गुणा करें तो २१ मनसे ऊपर हुआ। और जो रात दिन अर्थात् २४ घन्टेका हिसाब लगाया जाय तो ५०० मनपर बात पहुँचती है!!! क्या आप को इस बातका अनुमान भी है कि आपके भीतर ऐसा बलशाली एञ्जिन है।

अब ज़रा ऊपर चलिये। आपको एक जोड़ा धौंकनी दिखानी है। आपने ऐसी अद्भुत धौंकनी शायद ही देखी हो। यह श्वास लेनेका यन्त्र है। इन्हींके फूलके सिकुड़नेसे हमारा रुधिर शुद्ध होता है। मनुष्य एक मिनटमें १७ बार श्वास लेता है। अर्थात् प्रति ६० सेकण्डमें १७ बार शुद्ध वायु भीतर ले जाता है और इतनी ही दूषित वायु वह बाहर निकालता है। अर्थात् घण्टेमें मनुष्य १०२० बार साँस लेता है। यह कार्य रात-दिन २४ घण्टे चलता रहता है। सबको मिलानेसे २४४८० हुए!* इतनी बार प्रति दिन यह धौंकनी फूलती और सिकुड़ती है? एक बारमें ३० घन इञ्च वायु भीतर जाता है और फेफड़ोंमें पहुँचकर अपना प्राणप्रद अंश ओषजन वायुको रुधिरमें मिला देती है। इसके स्थानमें दूषित वायु कर्बनद्वयोषिद लेकर बाहर आता है। फेफड़े

---

* आदमी कभी जल्दी-जल्दी साँस लेता है, कभी देर-देर में और फिर हर आदमी और हर उम्रके आदमीकी श्वास-गति एक-सी नहीं होती। यदि औसत १ मिनिट १५ बार रख लें तो २४ घंटोंमें कुल २१,६०० का औसत होता है। —सं०

ऐसे लचीले तन्तुओंसे बनाये गये हैं कि हर बार, श्वास, प्रश्वासके साथ, स्वतः फैलते सिकुड़ते रहते हैं।

अब आप कोठरीसे बाहर आइये, और उसकी दीवारोंपर ध्यान दीजिये, कि भीतरका मल निकालनेके लिये कैसी हिकमत रक्खी गयी है। खुली आँखोंसे तो देहका चर्म साफ़ दिखाई देता है, परन्तु यह एक प्रकारके छिद्रोंसे चलनी-सा बना हुआ है। उनकी संख्या ७० लाख कूती गयी है! ये छिद्र पसीनेकी नालियोंके मुँह हैं। इन्हींके द्वारा भीतरकी कलोंसे निकाला हुआ सब मल बाहर आता है। यदि किसी प्रकार ये छिद्र बन्द कर दिये जायँ तो उसी समय मृत्यु आ उपस्थित होती है। ये नालियाँ ¼ इञ्च लम्बी हैं और एक इञ्च वर्गमें इनकी संख्या २,८०० है। यदि इन नालियोंको एक लम्बाईमें जोड़नेका हिसाब देखा जाय तो प्रति मनुष्यमें २८ मील लम्बी नाली निकलेगी!!! प्रत्येक छिद्रसे हर मिनटमें ११ ग्रेन पसीनेका मैला जल बाहर होता है जिसमें जिस फ़ी सैकड़ा ठोस पदार्थ घुले मिले रहते हैं। इस तरह शरीर से प्रतिदिन १५,८३० ग्रेन या ८८ तोले पसीना और सवा तीन सौ ग्रेन या २ तोलेके लगभग मल निकलता रहता है।

अब ध्यान दीजिये कि ७० लाख नालियाँ कितना काम करती हैं; और फिर कितनी चुपचाप, कि विज्ञानके किसी-किसी पाठकको इस लेखके पढ़नेसे पहले शायद उनका पता भी न हो!

बी० पी० श्रीवास्तव

बनावटी रेशम तैयार कीजिये

हिंसासे बचिये। रेशमी खद्दर पहिनिये

[ले० प्रो० फूलदेवसहाय वर्म्मा, एम्० एस्-सी०, एफ़्० सी० एस्०, हिन्दू विश्वविद्यालय, काशी।]

[केलेके रेशमके नामसे बाजारमें बनावटी रेशम फैला हुआ है। मैला जल्द नहीं होता। टिकाऊ है। रंग सुन्दर चढ़ता है। देशी वस्तुओंसे बन सकता है। पिछले वार्षिकोत्सवपर परिषत्में इसी विषयपर परिषत्के सदस्य प्रो० फूलदेव सहाय वर्म्माने एक बड़ा ही मनोरंजक व्याख्यान दिया था। उसीका सारांश हम यहाँ देते हैं। सं०]

१—केलेके रेशमका बढ़ता व्यापार

बनावटी रेशम का व्यापार बहुत आधुनिक है। सं० १९४६ में इसका पहला कारखाना खुला। दो वर्ष प्रारम्भिक कठिनाइयों के हल करने में लगे। सं० १९४८ से सूत बननेका कार्य सफलता से होने लगा। पहले बहुत थोड़ी मात्रामें बनावटी रेशमका सूत बनता था और ऐसा होना आवश्यक भी था। स्वभावसे ही मनुष्य पुरानी लकीरका फ़कीर होता है अथवा समाज और सामाजिक संस्कार मनुष्यको पुरानी लकीरका फ़कीर बना देता है। बनावटी रेशमके सूत और उससे बनी चीजों को लोग पहले हेय दृष्टिसे देखते थे। उसे तुच्छ वस्तु समझकर उसके इस्तेमालसे हिचिकते थे। पर यह संकोच धीरे-धीरे कम होता गया और बनावटी रेशमका व्यापार बढ़ता गया। सं० १९७०में केवल २ करोड़ ९० लाख पाउन्ड (वा ३ लाख साढ़े ५३ हजार मन) बनावटी रेशम बना। सं० १९८५में यही बढ़कर ३५ करोड़ पाउन्ड (वा पौने चवालीस

लाख मन) हो गया। सं० १९८६में यही ८५॥ करोड़ वा एक करोड़ पौने सात लाख मन हो गया।

जितनी रुई और अन्यान्य सूत संसारमें काम आता है उसका यह प्रायः ५ प्रतिशत भाग है।

ऊपरके अंक सारे संसारकी उपजके हैं। किस देश में कितना-कितना अंश इस उपजका सैकड़ा पीछे बनता है यह भी देख लीजिये—

संयुक्त राज्य (अमेरिका)	सौ में	२७	भाग
इटली	,,	१४	,,
जर्मनी	,,	१४	,,
फ्रांस	,,	११	,,
महाब्रिटेन	,,	११	,,
जापान	,,	७	,,
हौलैण्ड	,,	५	,,
बेलजिअम	,,	३	,,
स्वीटजलैंण्ड	,,	३	,,
अन्यान्य देश	,,	५	,,

१९८४ वि०में १३४ कम्पनियाँ बनावटी रेशमका सूत तैयार करती थीं। लण्डनके Financial Ipitlcs News नामक पत्रने भविष्यवाद किया है कि १९९७ वि०में एक नील पाउन्ड (अर्थात् सवा खरब मन) बनावटी रेशमका सूत बनेगा। अर्थात् संसारमें जितना रूई आदिका सूत आज काममें आता है उस सम्पूर्ण मात्रासे भी कहीं अधिक बनावटी रेशम तैयार होगा। सं० १९८५में भारतमें बनावटी रेशमके सूत और सामान ४ से ५ करोड़ रुपये तकके आये।

जापानसे	१ करोड़ ७५ लाख रुपयेका आया			
ग्रेटब्रिटेनसे	९६	,,	,,	,,
इटलीसे	९७	,,	,,	,,
फ्रांससे	२४	,,	,,	,,
जर्मनीसे	२५	,,	,,	,,
	कुल ४, १७ लाख रुपयेका आया।			

जहाँतक मुझे मालूम है बनावटी रेशम तैयार करनेका कोई कारखाना हिन्दुस्तानमें नहीं है। हिन्दू-युनिवर्सिटीमें एक विद्यार्थी कुछ वर्ष हुआ बनावटी रेशम तैयार करनेका कुछ काम करता था, इसमें दक्षता प्राप्त करनेके लिये वह जर्मनी गया। मैंने सुना है कि वह वहाँसे फिर अमेरिका गया और इसमें दक्षता प्राप्त कर लौटा है और किसी सेठजीके कारखानेमें जिन्होंने बाहर जानेका खर्च उसे दिया था वह काम कर रहा है। अभीतक वह बनावटी रेशमका सूत तैयार करके बाजारोंमें नहीं रख सका है।

कारखानेकी कठिनाइयाँ तथा व्यापारी रहस्य आदिकी रुकावटें चाहे जो हों उनपर तो विजय प्राप्त करना ही होगा। परन्तु विदेशोंमें इसके कारखाने पूंजीपतियोंको खासा मुनाफा दे रहे हैं, इस बातमें तो जरा भी शक नहीं है।

२. रेशम उगलनेवाले लोहेके कीड़े

कीड़ेकी सहायताके बिना ही रेशम तैयार करनेका विचार पहले-पहल विक्रमकी १८ वीं शताब्दीके पहले चरणमें उठा। इस विचारके उठानेवाले डा० रौबर्ट हूक (Robert Hooke) हैं जिन्होंने अपने विचारोंको संवत् १७२०में प्रकट किया था। उन्होंने इस विचारको प्रकाशित करते हुए सच ही कहा था कि ऐसे आविष्कारका क्या उद्देश्य होगा और इस आविष्कारसे क्या लाभ होगा इसका वर्णन मैं आवश्यक नहीं समझता।" रेमुर (Reaumur) नामक फ्रांसीसी भौतिक विज्ञानवेत्ता और पदार्थ विज्ञानीने सं० १८१०-११में कृत्रिम रेशम तैयार करनेकी सम्भावनाका अपनी पुस्तक 'कृमिके इतिहास'में उल्लेख किया है। उन्होंने इन शब्दोंमें कृत्रिम रेशम तैयार करनेकी सम्भावना प्रकट की है।

रेशम केवल एक द्रव गोंद है जो सूख जाता है। क्या गोंद रोजिनसे हमलोग रेशम तैयार नहीं कर सकते ? यह विचार पहले-पहल कुछ असंगत जान पड़ता है पर अधिक ध्यानसे देखनेपर बिलकुल सम्भव मालूम होता है। यह सिद्ध हो गया है कि ऐसे वार्निश बन सकते हैं जिनमें रेशमके गुण हों। चीनी तथा अन्य वार्निशोंपर विलायकोंकी कोई क्रिया नहीं होती। जलका इनपर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। जिस तापक्रमतक रेशम अथवा रूईके रेशे गरम होते हैं उस तापक्रमतक गरम करनेसे उनमें कोई परिवर्तन नहीं होता। यदि ऐसे वार्निश-का सूत बन सकता तो हमलोग उसका वस्त्र बना सकते। ऐसा वस्त्र चमक और मजबूतीमें रेशमके वस्त्रसे कम नहीं होगा। अच्छे वार्निशके सूख जानेपर उनमें कोई गन्ध नहीं होती। पर ये वार्निश सूतमें कैसे खींचे जा सकते हैं ? यह हो सकता है कि रेशमके ऐसे महीन सूत हमलोग वार्निशके न बना सकें पर ऐसा महीन सूत बनानेकी कोई आव-श्यकता भी तो नहीं है। ऐसे सूतका कपड़ा बननेमें कोई बाधा नहीं मालूम होती।"

संवत १८९७तक कृत्रिम रेशमके निर्माणके क्षेत्रमें कोई विशेष कार्य नहीं हुआ। केलर नामके एक जुलाहेने लकड़ीके गूदेको यांत्रिक विधिसे तैयार करनेका एक महत्त्वपूर्ण आविष्कार किया। जिस समय केलर गूदा बनानेकी धुनमें लगा था उसी समय मानचेस्टरका लुइस श्वाबे (Louis Schwabe) रेशमके एक कारखानेका मालिक और पेटेंट दस्तकारी मशीनका बनानेवाला उन पदार्थोंके साथ प्रयोग कर रहा था जो बहुत महीन छिद्रोंके द्वारा बहुत पतले रेशम खींचे जा सकते थे, इस प्रकार श्वाबे पहला मनुष्य था जिसने बनावटी रेशम तैयार करनेकी मशीन मानचेस्टरमें प्रदर्शित की। कृत्रिम रेशम तैयार करनेकी राह दिखानेवाला पहला मनुष्य श्वाबे हैं। दुर्भाग्यवश जो सहायता उसे चाहिये थी वह न मिल सकी और निराश होकर उसने अपने हाथों अपनी हत्या कर ली।

उस समय जितने पदार्थ ज्ञात थे उनमें किसीसे अच्छा सूत न बन सका, पर ऐसे लोगोंकी संख्या अवश्य ही बढ़ गयी थी जो ऐसी वस्तुओंकी खोजमें लगे जिनसे अच्छा सूत बन सके। संवत् १९०१ में (Schonbein) शोनबैन ने (नाइट्रो-सेल्यूलोस) नोषो-छिद्रोजका आविष्कार किया। उन्होंने यह भी सिद्ध किया कि नोषोछिद्रोजसे ऐसा सूत बन सकता है जो रेशमके सदृश हो। लुसानका (Audemarc) ओदमार्क पहला प्रयोगकर्ता था जिसने १९१२ वि०-में विलीन नोषो-छिद्रोजको सूतमें परिणत करने का पेटेंट लिया। इस कृत्रिम सूतका नाम उन्होंने "बनावटी रेशम" रक्खा। पर इस कार्यमें उन्हें बहुत सफलता नहीं मिली। (Chardonnet) शारदोने पहला मनुष्य था जिसको इस कार्यमें पूरी सफलता मिली। इस कृत्रिम सूतके तैयार करनेमें अनेक व्यक्तियोंके हाथ हैं जिनमें ह्यूगेज (Hughes) स्वान (Swan), पौवेल (Powell) वाइने (Wynne), क्रूक्स (Crookes), स्विनबर्न (Swinburne), और वास्टनके नाम उल्लेखनीय हैं।

शारदोने ही कृत्रिम रेशमका जन्मदाता कहा जाता है। यह फ्रांसके (Ecole Polytechnique) पोलिटेकनिक स्कूलका सुशिक्षा प्राप्त एक व्यक्ति था। उसने इस सम्बन्धमें जो आविष्कार किये वे अकस्मात् नहीं थे वरन् बड़े अध्यवसाय और प्रयोग-के फल थे। जब वह इस स्कूलका विद्यार्थी था तब वह सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक (Pasteur) पास्च्युरका छात्र था जो एक समय रेशमके कीड़ोंकी बीमारियोंके अध्ययनमें लगे हुए थे। बहुत कालसे लोगोंको

मालूम था कि रेशमके कीड़े तूत या (Oak) सिंदूरके पत्तोंको खाकर गोंदको बहुत महीन सूतके रूपमें निकालते हैं जिससे रेशमका (Cocoon) कोष बनता है। इसी कोकूनसे सूत निकालकर वस्त्र बनता है जिसका प्रचार और व्यवहार बहुत प्राचीन कालसे राजाओं और धनिकोंके बीच है और जो वस्त्र सब अवसरोंके लिये बहुत उपयुक्त समझा जाता है।

अतः वैज्ञानिकोंको सबसे पहले उसी मार्गका अनुसरण करना चाहिये जिसे रेशमके कीड़े कोश बनानेमें अनुसरण करते हैं। चूँकि ये कीड़े पत्तोंके खानेसे ऐसा करते हैं और ये पत्ते सेल्युलोसके बने होते हैं अतः किसी न किसी रूपमेंसे ल्युलोससे ही कृत्रिम रेशम तैयार हो सकता है। शारदोनेका यही सिद्धान्त था। और इसी सिद्धान्तको लेकर उसने कार्य करना शुरू किया।

पहले-पहल इस प्रकारके प्रयोग १९३५ वि०में आरम्भ हुए। अनेक वर्ष रेशमके कीड़ोंके जीवन, अभ्यास और उनके (Secretions) उत्पादनके अध्ययनमें लगे। तूतकी पत्तियों और धड़ोंका बड़ी सावधानीसे अध्ययन हुआ। ये किन-किन पदार्थोंसे बने हैं उसका अन्वेषण हुआ। सं० १९४१में शारदोनेने तूतके धड़ और शाखाओंसे प्राप्त गूदेसे कृत्रिम सूत पहले-पहल तैयार किया। फ्रेंच-एकडेमी-आफ-सायंसके विवरणपत्रमें इन्होंने सं० १९४१में इस रेशमके सदृश कृत्रिम सूत तैयार करनेकी विधिका वर्णन किया। ऐकेडमीने उन्हें और प्रयोग करनेके लिये धनसे सहायता दी और वे बड़े पैमानेपर सूत तैयार करनेमें लगे।

पाँच वर्ष बाद सं० १९४६ वि०में उन्होंने अपने तैयार किये सूतके नमूने जनताको प्रदर्शित किये। इस प्रदर्शनसे पूंजीपतियोंका ध्यान इस ओर अकर्षित हुआ और बनावटी रेशम तैयार करनेका पहला कारखाना फ्रांस देशके उत्तर भागके Besancon बेजांकों नगरमें जहाँ शारदोनेका घर था खुला। दो वर्षोंके अन्दर आरम्भिक कठिनाइयाँ हल हो गयीं। परन्तु यह रेशम बड़ी जल्दी जल उठता था। इसके अकसर पहननेवाले एक सिगरेट जलाते समय ही तुरन्त अग्निमें स्वाहा होने लगे। यह भारी दूषण था। इसके पीछे इसकी ऐसी बदनामी हुई कि बनावटी रेशमका बहिष्कार होने लगा। परन्तु अध्यवसायी लोग खोजमें लगे हुए थे। अन्तको इस नोषोछिद्रोजको अदाह्य बनानेके प्रयत्न सब सफल हुए और कम्पनी लाभके साथ काम करने लगी। यह कम्पनी संवत् १९७१ वि०तक कृत्रिम रेशम बनाती रही। जर्मनीसे युद्ध छिड़नेपर फ्रांस सरकारने इसे गन-काटन बनानेके कारखानेमें बदल डाला। युद्धके बादसे यह कम्पनी फिर कृत्रिम रेशम बना रही है। रेशमका पहला कारखाना यही था। सं० १९५७में कुछ हज़ार पाउन्ड ही बनावटी रेशमका सूत बना था। सं० १९८५में इसका उत्पादन ३५ करोड़ पाउन्ड हो गया और सं० १९८७में यह ८० करोड़ ५० लाख पाउन्ड हो गया। इस समय कृत्रिम रेशमके सैकड़ों कारखाने खुल गये हैं। कौंट शारदोनेकी मृत्यु सं० १९८०में सौर १० चैत्रको रोममें हुई। अनेक वर्षोंतक उसे अपने उद्योगकी सफलता देखनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ।

३—बनावटी रेशमको अदाह्य कैसे बनाते हैं?

सेल्युलोस, रूई या काष्ठके गूदेको पहले नोषोछिद्रोज (नाइट्रोसेल्युलोस) या गनकाटनमें परिणत करते हैं। इसे फिर (अलकोहल और ईथर) मद्य और ज्वलकके मिश्रणमें घुलाते हैं। इससे जो विलयन प्राप्त होता है उसे छानकर, कुछ

देरके लिये स्थिर होनेको छोड़ देते हैं। इस विलयनको फिर बहुत अधिक दबावसे बड़े महीन छेदोंके द्वारा दबाते हैं जिससे बहुत पतले रेशे बन जाते हैं। इस क्रियामें जो विलायक लगा है वह फिर काममें आनेके लिये निकाल लिया जा सकता है। इन बहुत बारीक रेशोंको इकट्ठा कर मोटा सूत बनाउसे नरी या बाबिनपर लपेटते हैं। तब यह सूत सुखाया जाता है। इसे फिर (अलकली सल्फ़ाइड) क्षारगंधिद्के द्वारा निर्नोषीकरण करते हैं। फिर इसके रंगको दूर करते, सूतको धोते कातते और परेते पर चढ़ाते हैं। इस रीतिसे चमकदार मजबूत और लचकदार सूत प्राप्त होता है।

शारदोनेकी विधिमें पहला सफल सुधार (Lehner) लेनरद्वारा हुआ जिन्होंने स्वीटज़लैंडमें एक कारखाना खोला। इसमें सुधार केवल यही था कि विलायकको वायुमें सुखाकर अलग करनेके स्थानमें उन्होंने पानीके कुंडमें रखकर (नाइट्रो-सेल्युलोस) नोषोछिद्रोजको स्कंधित (coagulated) किया। इस सुधारकी सफलतासे अन्य विधियोंकी खोजकी ओर वैज्ञानिकोंका ध्यान आकर्षित हुआ।

४–बनावटी रेशम बनानेकी और विधियाँ

एक दूसरी ताम्र-अमोनियम विधिके अविष्कारकी घोषणा (Despeissis) देसपेसिद्वारा सं० १९४७में पहले-पहल हुई। इस विधिमें छिद्रोजको अमोनियाँके ताम्रौषिदमें विलीन करते हैं। ऐसे विलयनको बड़े महीन छेदोंसे गन्धकाम्ल और जलके मिश्रणमें ले जाते हैं। इससे जो रेशे प्राप्त होते हैं उन्हें नरियोंपर लपेटते हैं। पुनः उन्हें सिरकिकाम्लमें धोते, सुखाते, कातते और तब परेतेपर लपेटते हैं। इस विधिका बहुत कुछ सुधार पौलीने किया। उन्होंने इस विधिको ग्लाडबाखमें सर्व-प्रथम प्रदर्शित किया जिसका फलस्वरूप सं० १९५४में एक कारखाना (Elberfield) एल्बरफील्डमें Glauzstoff Fabriken "रेशमके कारखाने"के नामसे खुला। इस विधिमें फिर अनेक सुधार फ़रमरी (Fermery) बौनेर (Bonnert) और (Urbain) उरबेनद्वारा हुए। सूतकी उत्तमताके विचारसे यह विधि बड़े महत्वकी है।

एक तीसरी विधिका आविष्कार प्रायः इसी समय हुआ। इस विधिको विसकोज़ या स्नेहन विधि कहते है। (Cross और Bevan) क्रौस और बेवानद्वारा किये गये क्षारछिद्रोजके अध्ययनसे इस विधिका आविष्कार हुआ। इस विधिमें छिद्रोजपर क्षारकी क्रियासे क्षारछिद्रोज प्राप्त होता है। जब इसका कर्बन द्विगंधिद्के साथ उपचार किया जाता है तो जलमें विलेय गंधकी कर्बनेत बनता है जिसे क्षार-छिद्रोज-जंथेत कहते है। इसका नाम "विसकोयड" (Viscoid) "स्निग्धल" रखा गया। शीघ्रही (स्निग्धोज-संघ) विसकोज़ सिंडिकेट लिमिटेड कम्पनीकी स्थापना हुई और शीघ्र ही इससे बने सूतका तापप्रदीप्त (इनकैंडेसेंट) लम्पमें व्यवहार करनेके प्रयोग होने लगे। इसी उद्देश्यसे Kew-Works of the Zurich Lamp Company की स्थापना स्वीट्ज़लैंडमें हुई। इसमें सबसे अधिक कठिनता इस बातमें थी कि एक बारीक (स्निग्धोज) विसकोज़ रेशेको किस प्रकार लपेटकर सूत बनावें। जब टौपहमने "टौपहम Centrifugal Spinning Box केन्द्रापगामी चरखेका आविष्कार किया जिसमें प्रति मिनिट ५ हज़ारसे १० हज़ार चक्करतक लगाया जा सके तब इस विधिमें सफलता हुई। अब स्निग्धोज सूतके उद्योग-धंधेकी बड़ी शीघ्रतासे वृद्धि हुई। इस विधिसे बने सामानोंका प्रदर्शन पारीमें सं० १९५७में

पहले-पहल हुआ। इस विधिकी उत्तरोत्तर वृद्धि-का कारण यह है कि इसमें जो सामग्री लगती है सभी जगहोंमें आसानीसे मिल सकती है।

ब्रिटिश सेल्युलोस और केमिकल मैनुफैक्चरिंग कम्पनीने एक चौथी विधि छिद्रोजसिरकेतवाली चलायी। इससे बने पदार्थका नाम सीलानेज़ (Celanese) दिया गया है। संवत् १९२६में पहलेपहल छिद्रोजसिरकेत नामक यौगिक (Naudin) नौदिनने तैयार किया था। क्रौस और बेवानने छिद्रोजसिरकेतको (संवत् १९४७ से १९५१ वि०-तकमें) उद्योग-धन्धोंमें प्रयुक्त करनेकी चेष्टाएँ कीं। Baeyer and Co., Knoll and Co.ने भी छिद्रोजगंधेतके अध्ययनमें प्राप्त धन लगाया और समय खर्च किया। इस विधिकी सफलताका श्रेय Dreyfuss ड्रेफुसको है जिन्होंने सिरकोनमें विलेय छिद्रोज सिरकेत तैयार किया। सीलानेज़ व्यापारका आधार यही सिरकोनमें विलेय छिद्रोज-सिरकेत है। गत यूरोपीय महायुद्धके समाप्त होनेके बाद ही इसका व्यापार शुरू हुआ। वायु-यानों के पंखोंको रंगनेके लिये "dope" का व्यवहार होता था। यह डोप छिद्रोज गंधेत था। जब युद्ध समाप्त हो गया तब डोपकी आवश्यकता न रही। इस कम्पनीने तब इस डोपके स्थानमें कृत्रिम रेशम तैयार करनेका व्यापार शुरू किया और इसमें उन्हें पूरी सफलता मिली।

सं० १९८५में जितना कृत्रिम रेशम बना था उनमें भिन्न-भिन्न विधियोंके योग निम्न-लिखित थे।

स्निग्धोज विधिसे	८४ प्रतिशत
नोषोछिद्रोज विधिसे	९ ,,
ताम्रिकामोनियम विधिसे	५ ,,
छिद्रोज सिरकेत विधिसे	२ ,,
	१०० ,,

५—हमारे देशके लिये क्या करणीय है ?

बनावटी रेशमका बढ़ता हुआ प्रचार देखकर ऐसा अनुमान होता है कि इसका व्यवहार रोका नहीं जा सकता। जब यह संसारव्यापी वस्तु हो रही है तो हमारे देशकी भलाई इसीमें है कि हमारे पूंजीपति इसकी तैयारीपर पूरा ध्यान दें और स्वदेशी बनावटी रेशम बड़े पैमानेपर तैयार करावें जिसमें शुद्ध स्वदेशी बनावटी रेशम या केलेपरके कपड़े हमें शुद्ध भारतीय मिल सकें। इस तरहके कारखाने खुल जायँ तो उससे अन्य भी लाभ है। नोषोछिद्रोज वा छिद्रोजके अन्य यौगिक बनावटी रेशमके सिवा और कामोंमें भी आते हैं जिनका स्वतंत्र व्यवसाय अपार आर्थिक लाभ देनेवाला है। इससे फ़ोटोग्राफ़ीके फ़िल्म, बकसोंपर लपेटनेके पत्र, बकस, थैले, खिड़कियोंके परदे, बोतलोंके ढक्कन, मोमजामा, दीवारपर चिपकानेके कागज, रंग, कपड़े और सूतकी मांडी, बनावटी रबर, बनावटी चमड़ा, बिजलीके अचालक यंत्र, बनावटी ऊन, बनावटी घोड़ेके-बाल, बनावटी पयाल, बनावटी फीते आदि सैकड़ों चीजें तैयार हो सकती हैं और ऐसा कांच भी बन सकता है जो घनकी चोटसे भी न टूटे। इसकी बनी चीजें लचीली, मजबूत, कोमल चमकीली और पराकासनी किरणोंके लिये पारदर्शी होती हैं। इनपर पानीका या नमीका प्रभाव नहीं पड़ता। इसका रबड़ स्वाभाविक रबड़से सस्ता पड़ता है। कहाँतक कहें, यह चीज आगे किन-किन और कैसे-कैसे कामोंमें आ सकेगी यह कहना कठिन है। हमारे देशको चाहिये कि यदि व्यापारिक होड़में सदा पिछड़ा नहीं रहना चाहता तो इस वस्तु-के उद्योग व्यवसायसे गाफिल न रहे। इस देशमें इसके बनानेके साधन सुलभ हैं। सिरकोन और सिरकाम्ल जिनकी एक विधिमें आवश्यकता पड़ती है चीनीके

कारखानोंके बचे शीरेकी जो आज बिना मोलके मिल सकता है, आसानीसे बन सकते हैं। रूई या लकड़ीके चूर्णकी यहाँ क्या कमी है? इतनी जरूरत है कि पूँजीपति इस कामकी ओर ध्यान दें और होशियार रासायनिक शिल्पियोंद्वारा सुसज्जित कारखानोंमें बनावटी रेशम तैयार करावें।

विकासका उद्देश्य क्या है?

पूर्णसे निकला, पूर्ण होकर दम लेगा!

[ले० श्री व्रजबिहारीलाल गौड़]

सृष्टिका आरम्भ कैसे और कब हुआ? इसके आरम्भकी पहली सीमा कहाँपर माननी चाहिये? विकास-क्रमका वास्तविक इतिहास क्या है? ये प्रश्न अनादि-कालसे विद्वानोंके विचारके विषय रहे हैं। प्राच्य और पश्चात्य सभी विद्वानोंने अपने अपने धर्म-ग्रन्थोंमें इस विषयपर काफी विचार किया है। विकास-विज्ञान तो हालकी चीज है। इस विषयपर इस विद्याकी खोज भी आधुनिक है। तो भी वैज्ञानिकोंने अपने सतत परिश्रम और सत्यानुरागके भरोसे इस क्षेत्रमें काफी सफलता पायी है।

हिन्दू, ईसाई, यूनानी और रूमी सभी पुराणों में सृष्टि विकासका क्रम कुछ थोड़े-थोड़े अन्तरके साथ प्रायः एक-सा है। देशकाल और भाषा भेदसे से आपसमें मत-भेद स्वाभाविक है। पर मूल-सिद्धान्तमें बहुत कम भेद है और जो जान भी पड़ता है उसका कारण कुछ तो अपनी अल्पज्ञता है और कुछ प्राचीन लेखोंकी दुरूह शैली है। जिस तरह सृष्टिका क्रमशः विकास हुआ है उसी तरह मानव तर्क और दर्शनका भी। विज्ञानमें भी कहीं-कहीं विचित्रता पायी जाती है। इसका सबसे उज्ज्वल प्रमाण प्राच्य द्वादश दर्शनोंका क्रमगत विकास है। इस सम्बन्धकी सभी प्राचीन सामग्री वैज्ञानिकोंके अनुशीलनके लिये बड़े महत्त्वकी वस्तु है।

पुराण सर्ग प्रतिसर्ग चक्रको अनाद्यन्त मानता है। उपनिषदोंमें सृष्टिका विकास अव्यक्त प्रकृति अथवा मायासे बताया गया है। विश्वके क्रम-गत विकासके सम्बन्धमें तैत्तिरीय उपनिषद्‌में यह कहा गया है कि—"मूल प्रकृतिसे महत्तत्व, महत्तत्त्वके संक्षोभसे अहंकार, अहंकारके संक्षोभसे बुद्धि, बुद्धिसे मन, मनसे आकाश और आकाशसे वायु और वायुसे अग्नि, अग्निकी उत्तप्त अवस्थाके क्रमशः घटनेपर जलकी सृष्टि हुई। और जलके विशेष शीतल होनेके बाद पृथ्वी और पृथ्वीके ठंढी होनेपर जीवनका विकास हुआ। पहले ऐसे प्राणी हुए जो न तो जंतु कहे जा सकते थे और न उद्भिज्ज। दोनोंका साथ-ही-साथ दो दिशाओंमें विकास हुआ। सूक्ष्म प्राणी एक ओर और छोटे उद्भिज दूसरी ओर फिर बड़े वनस्पतियोंका और व्यालोंका फिर पशुओंका फिर सबके पीछे मनुष्योंका हुआ। इसी रहस्यका प्रतिपादन पुराणोंमें अनेक कथाओंद्वारा बड़ी मोहक और आलंकारिक भाषामें किया गया है।

वैदिक साहित्यमें विकास-सम्बन्धी यह वर्णन संसारके साहित्यमें सबसे प्राचीन है। बादको

इसी आधारपर भारतीय दार्शनिकों और वैज्ञानिकोंद्वारा खोजें हुईं और पुष्टसे पुष्ट सिद्धान्त स्थिर किये गये। षट्दर्शनोंमें कपिल मुनिका सांख्य-दर्शन इस सम्बन्धका मुख्य दर्शन है। जिसमें विकास-क्रमका बहुत ही सुन्दर क्रम-गत और तर्क-संगत वर्णन है। पाश्चात्य विद्वानोंद्वारा कपिलका समय ईसासे लगभग सात शताब्दी पहले माना जाता है परन्तु भारतीय पंडितोंके मतसे वह मानव सृष्टिके आरंभमें हुए। प्रोफेसर हापकिन्सका कहना है कि—"इतिहासके बहुत विचार-पूर्ण और गम्भीर अनुशीलनके बाद मैं बिना इस निष्कर्षपर पहुँचे नहीं रह सकता कि यूनानी दार्शनिकोंके विचारोंका आधार भारतीय दर्शन ही हैं। अफलातूनके विचार सांख्यमतसे बिलकुल मिलते-जुलते हैं। और साधारणतः यह विश्वास किया जाता है कि यूनानमें सांख्य-दर्शनका प्रचार फीसागोरसद्वारा किया गया जिसने सांख्य-दर्शनकी शिक्षा भारतवर्षमें पायी थी।

सांख्यने प्रकृति और पुरुष दोनोंको अनादि माना है। असत्से सत्की उत्पत्ति नहीं हो सकती। सत्से ही सत् होना सम्भव है। संसार कार्य्य-कारण-व्यवस्थित है और प्रकृतिके विकाससे सृष्टि, और नाशसे तिरोभाव समझना चाहिये। सत-रज-तमकी साम्यावस्था प्रकृति है। क्षोभ होनेसे सृष्टि होती है। यह क्रिया अरबों बरसतक चलती रहती है फिर इसका ह्रास आरम्भ होता है। सत्व रज तम तीनों शक्तियाँ साम्यावस्थामें आकर जब हिल-डोल नहीं सकतीं, स्थिर अवस्था हो जाती है, क्रिया नहीं रह जाती, शिथिलता आ जाती है तब "प्रलय" होती है। सृष्टिके बाद प्रलय और प्रलयके बाद सृष्टि यह सिलसिला अनादिकालसे चला आता है। प्रलयके समय सृष्टि अपने कारण अवस्थामें बदल जाती है। सृष्टिसे लेकर उसके अन्ततकके समयको संस्कृतमें "कल्प" कहते हैं।

प्रकृतिकी साम्यावस्थामें पहलेपहल क्षोभ उत्पन्न होता है। क्षोभसे महत्तत्त्व, महत्तत्त्वसे अहंकार, फिर अहंकारके तीन भेद हुए, राजस तामस, और सात्त्विक। इनसे पाँच विषय और ग्यारह इन्द्रियाँ हुईं। ग्यारहवीं इन्द्रिय मनसे आकाश हुआ। आकाशसे वायु, वायुसे अग्नि, अग्निसे जल और जलसे पृथ्वीकी उत्पत्ति हुई। इसका वर्णन सांख्यकारने बड़ी उत्तमतासे किया है। अकार्बनिक या अजीव विकासके सम्बन्धमें आधुनिक वैज्ञानिकोंका मत कुछ मिलता जुलता सा है। पर वैज्ञानिक आकाशतत्व अथवा ईथरसे आगे नहीं बढ़ सके*। यह देखकर आश्चर्य्य होता है कि जो बातें वैज्ञानिक अनुशीलनद्वारा हमें आज प्राप्त हुई हैं उन बातोंका पता हमारे शास्त्रकार कितने हजार वर्ष पहले लगा चुके थे। और उस समय जब कि उनको वैज्ञानिक आविष्कारोंके लिये आजकल जैसे सुसाध्य उपकरण भी प्राप्त न थे।

प्राचीन विकासवादका यही अंत नहीं होता। बल्कि इसके आगे भी अहंकार स्थित चेतनाके बीजद्वारा खानिजसे लेकर मनुष्य सृष्टिके जीवन-विकासका वर्णन मिलता है। अब प्रश्न यह है कि जीवनके विकासका कोई उद्देश्य भी है या यों ही यह केवल एक आकस्मिक घटना है जो अपने आप हुआ करती है। कुछ पाश्चात्य विद्वानों तथा प्राच्य चार्वाक जैसे दार्शनिकोंका तो यह कहना है कि जीवनका उद्देश्य इसके सिवा और कुछ नहीं है कि खाओ पीयो और मौज करो क्योंकि हमें विकास-

* इधर पाँच छः वर्षोंके भीतर वैज्ञानिक भी ईथरसे आगे बढ़ रहे हैं। सं०

क्रममें अनादिसे यही शिक्षा मिलती है कि जिसकी लाठी उसकी भैंस।

"सारी सृष्टि पराश्रित है अतएव पराश्रय ही हमारा उद्देश्य है।" पराश्रयका यह मिथ्या सिद्धांत है। जीवनके विकासक्रमके साथ साथ यदि ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियोंके विकासका भी सूक्ष्म अन्वेषण किया जाय तो इस बातका पता भलीभाँति चल सकता है कि जीवन-विकासके साथ साथ ग्यारह इन्द्रियोंका भी क्रमशः विकास होता है। इस विकासमें बुद्धि और मनका स्थान सबसे प्रधान है। बुद्धि-विकास, स्वार्थ परार्थ और नाना प्रकारके बहिरंग और अंतरंग ज्ञानका अनुभव मनुष्य शरीरमें ही होता है। जब इन्द्रियविकास और बुद्धि-विकासके सम्बन्धमें मनुष्य इतना आगे है तो यह बात बिल्कुल पोच सी जान पड़ती है कि उसका कर्तव्य भी पशुओंकी तरह हो। अतएव पराश्रयका सिद्धान्त मनुष्यत्वके साथ नहीं लगता।

विकास-क्रमको देखने से पता चलता है कि विकासकी अन्तिम अवस्था पूर्णता है। पूर्णसे ही सृष्टि पैदा होती है, और पूर्णमें ही लय हो जाती है। जीवन-विकास खनिजसे आरंभ होकर मनुष्य-तक पहुँचकर पूर्णताको प्राप्त होता है। मनुष्यसे और अधिक विकसित लौकिक शरीरवाले प्राणी-का पता सृष्टिमें नहीं चलता। यदि इस आधार-पर विकासके उद्देश्यकी पूर्णता कहें तो कोई हर्ज नहीं। इस पूर्णताका उद्देश्य क्या है? इसका उत्तर आजकलके वैज्ञानिक शायद ही दे सकें। क्योंकि विज्ञानने अभी जितनी भी उन्नति की है वह भौतिक है। अध्यात्म-विज्ञानका तो अभी जन्म ही नहीं हुआ है। विकासक्रमसे जीव जिस समय मनुष्यके शरीरमें पूर्णताको पहुँचता है उसी समयसे उसका अध्यात्मिक विकास आरम्भ होता है। और उसका उद्देश्य है उस पूर्ण को प्राप्त करना जिस पूर्णसे वह बिलग हुआ है। भारतके प्राचीन शास्त्रकारोंका यही मत है। जबतक जीव उस पूर्णताको नहीं पहुँचता इस विकास और ह्रासके मामलेसे उसे फुरसत नहीं। अतएव मनुष्य-जीवन-का उद्देश्य है, आध्यात्मिक जीवन और आध्यात्मिक जीवनद्वारा उस पूर्णताको प्राप्त करना।

भिन्न-भिन्न तिथियों और तारीखोंका संबंध *

विक्रमीय तिथि और ईस्वी तारीख

[ले० श्रीमहावीरप्रसाद श्रीवास्तव्य, बी० एस-सी०, एल० टी०, विशारद]

१—विक्रमीय तिथिके साथ विक्रमीय संवत, चैत्रादि मास और शुक्ल या कृष्णपक्ष दिये रहते हैं। ईस्वी तारीखके साथ ईस्वी सन् और जनवरी आदि मास दिये रहते हैं। हमारे यहाँ बच्चोंका जन्मकाल साधारणतः विक्रमीय तिथियोंमें लिखा जाता है। परंतु जब उनका नाम स्कूलोंमें लिखाया जाता है तब जन्मकाल ईस्वी तारीखोंमें देना पड़ता है। परन्तु इसका ठीक-ठीक निश्चय करना कठिन होता है इसलिये लोग अटकलसेही काम लेते हैं। संयुक्त-प्रान्तके इस पूर्वी भागमें तो लड़कोंके जन्मकी

तारीख १ ली जनवरी या १ ली जुलाई अधिकांशमें लिखी पायी जाती है। इस लेखमें यह बतलानेकी कोशिश की जायगी कि विक्रमीय तिथियोंसे ईस्वी तारीख और ईस्वी तारीखसे विक्रमीय तिथि किस प्रकार जानी जा सकती है। इसलिये सबसे पहिले इन तिथियों और तारीखोंकी गणना-पद्धतिपर संक्षेपमें लिखना आवश्यक है।

२—**विक्रमीय संवत्**—हिन्दू वर्ष दो प्रकारके हैं—सौर और सौर-चान्द्र। मेषकी संक्रांतिसे जिस वर्षका आरम्भ होता है उसे सौर वर्ष और चैत्र शुक्ल प्रतिपद्से जिस वर्षका आरम्भ होता है सौर-चान्द्र वर्ष कहते हैं। हमारे यहाँ व्यवहारमें प्रायः दूसरेही प्रकारका वर्ष प्रचलित है। ऋतुओं-का क्रम सौर वर्षसे स्थिर किया जाता है और पर्वों त्यौहारोंका क्रम अधिकांशमें सौर-चान्द्र वर्षसे स्थिर किया जाता है। सूर्य्य-सिद्धांतके अनुसार सौर वर्ष ३६५·२५८७६ दिनका होता है और सौर-चान्द्र वर्ष ३५४·३६७०६ दिनका। सौर-चान्द्र वर्षका बारहवाँ भाग चान्द्र-मास कहलाता है जिसका मध्यम मान २९·५३०५९ दिनका होता है। यदि सूर्य्य और चन्द्रमाकी गति सदा एकसी होती रहती तो हमारे चान्द्र-मास और सौर-चान्द्र वर्ष सदा उतनेही दिनके होते जितना ऊपर दिया गया है। परन्तु इनकी गतियोंमें भिन्नता होने के कारण मध्यम और स्पष्ट-चान्द्र मासोंमें कभी कभी १५ घण्टेका अन्तर हो जाता है। प्रत्येक चान्द्र-मासका आरम्भ उस क्षणसे होता है जिस क्षण चन्द्रमा और सूर्य्य एक सूत्रमें आ जाते हैं अर्थात् जिस समय चन्द्रमा सूर्य्य और पृथ्वीके बीचमें आ जाता है। इसी समयको अमावास्या या अमावस कहते हैं। परन्तु यह घटना दिनरातके किसी समय हो सकती है इसलिए व्यवहारमें सुविधाके लिये चान्द्र-मासका आरम्भ दूसरे दिन सूर्योदय-कालसे माना जाता है। यह प्रथा दक्षिणी-भारत, गुजरात आदि प्रान्तों-में प्रचलित है। हमारे प्रान्तमें चान्द्रमासका अन्त पूर्णिमाको और आरम्भ कृष्ण पक्षकी प्रतिपदासे समझा जाता है। पूर्णिमा उस समय होती है जिस समय सूर्य्य और चन्द्रमाके बीचमें पृथ्वी हो जाती है। जब चन्द्रमा च पर रहता है तब अमावस्याका अन्त और शुक्ल प्रतिपदाका आरम्भ होता है, और
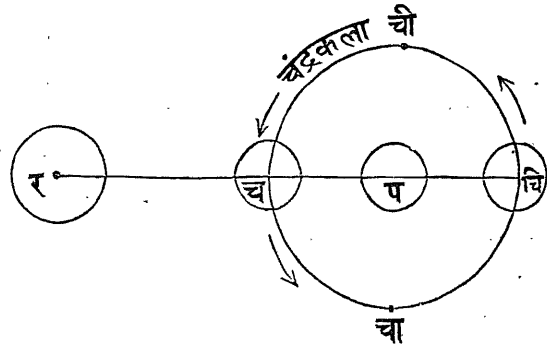
चित्र १

र सूर्यका केन्द्र, प पृथ्वीका केन्द्र, चा शुक्ल पक्षकी अष्टमी च चन्द्रमाका स्थान और ची कृष्णपक्षकी अष्टमीको चंद्रमाका स्थान।

जब चि पर होता है तब पूर्णिमाका अन्त और कृष्ण प्रतिपदाका आरम्भ होता है। जब चन्द्र अपनी कक्षाके च चा चि भागमें रहता है तब शुक्ल-पक्ष और जब चि ची च भागमें रहता है तब कृष्ण-पक्ष होता है। इन दोनों रीतियोंमें भेद होनेके कारण पहिले प्रकारके चान्द्र-मासको अमान्त चान्द्र मास और दूसरे प्रकारके चन्द्रमासको पूर्णिमान्त-चान्द्र-मास कहते हैं। इसी कारण दक्षिणके पंचांगों और हमारे यहाँके पंचागोंके कृष्ण-पक्षके महीनेमें भेद देख पड़ता है और शुक्लपक्षके महीने एक होते हैं। हमारे यहाँ चैत्र शुक्लपक्षके बाद बैसाख कृष्णपक्ष माना जाता है परन्तु दक्षिणमें बैसाख कृष्णपक्ष

न कहकर चैत्र कृष्णपक्ष कहते हैं। इसी प्रकार और मासोंके बारेमें समझना चाहिये।

३—प्रत्येक चान्द्र-मासमें ३० तिथियाँ होती हैं। जो चन्द्रमाकी कलाओंके अनुसार बदलती हैं। ऊपर कहा गया है कि एक चान्द्रमासका मध्यम मान २९·५३०५९ दिन है। इसमें ३० से भाग देनेपर ०·९८४३५३ दिन आता है जो एक तिथिका मध्यम मान है। सूर्य्य और चन्द्रमाकी विभिन्न-गतियोंके कारण तिथियोंका मान सदा इतना ही नहीं रहता। कभी-कभी यह २४ घण्टेसे बड़ी हो जाती हैं और कभी-कभी इससे बहुत कम। इसी कारण कभी-कभी सूर्यके उदयकालमें एक तिथि होती है बीचमें दूसरी पूरी हो जाती है और सूर्योदय कालसे पूर्व तीसरी तिथि आरम्भ हो जाती है। जो तिथि दो सूर्योदय-कालोंके बीचमेंही आरंभ होकर समाप्त हो जाती है उसकी गणना नहीं होती और इसको क्षय तिथि या अवम तिथि कहते हैं। इसी प्रकार जो तिथि २४ घण्टेसे बड़ी होनेके कारण दोनों सूर्योदय कालोंमें रहती है वह दो दिन मानी जाती है। ऐसी तिथिको अधितिथि कहते हैं। तिथियोंकी इस विषमताके कारण विना पंचांग देखे यह नहीं बताया जा सकता कि कौन तिथि किस दिन माननी चाहिये। इस प्रद्धतिमें यह बड़ा भारी दोष है जिसके कारण लौकिक व्यवहारों-में बड़ी असुविधा होती है।

४—जैसे तिथियोंमें अधितिथि और क्षय-तिथि होती है वैसेही मासोंमें भी अधिमास और क्षयमास होते हैं। एक संक्रान्तिसे दूसरी संक्रान्ति तकके समयको सौर मास कहते हैं। सूर्य्यकी विषम गतियोंके कारण सब सौर मास भी समान नहीं होते। १२ सौर मासोंके मान सूर्य्य-सिद्धान्तके अनुसार नीचे दिये जाते हैं—

सौर मास	दिनों की संख्या
मेष या वैशाख	३० · ९३५२८
वृष या ज्येष्ठ	३१ · ४२०२८
मिथुन या आषाढ़	३१ · ६४४७२
कर्क या श्रावण	३१ · ४७५२८
सिंह या भाद्रपद	३१ · ०१८६१
कन्या या आश्विन	३० · ४४१३८
तुला या कार्त्तिक	२९ · ८९३३३
वृश्चिक या मार्गशीर्ष	२९ · ४९०२७
धनु या पौष	२९ · ३१७७७
मकर या माघ	२९ · ४४८०५
कुम्भ या फाल्गुन	२९ · ८२०२७
मीन या चैत्र	३० · ३५३४८

मेष या सौर बैसाख मास मेष संक्रान्तिके आरंभसे वृष संक्रान्तिके आरम्भतक होता है। उसके बाद वृष या सौर ज्येष्ठका आरम्भ होता है। इसी प्रकार और सौर मासोंके लिये समझ लेना चाहिये।

५—ऊपर दिये हुए सौर मासोंके दिनोंकी संख्यासे प्रकट है कि ९ सौर मास चन्द्रमासके मध्यममान २९·५३०५९ दिनसे बड़े हैं। इसलिये किसी वर्ष ऐसा हो सकता है कि इनमेंसे किसी एक-की संक्रान्ति दो अमावस्याओंके बीचमें न पड़े। ऐसे अमान्त चान्द्रमासको जिसमें कोई संक्रान्ति नहीं पड़ती अधिमास या मलमास कहते हैं। परंतु वृश्चिक, धन, मकर नामक सौर मास चान्द्रमाससे छोटे होते हैं इसलिये इन तीनों मासोंमें यह सम्भव है कि दो अमावस्याओंके बीचमें दो संक्रान्ति पड़ जाय। ऐसी दशामें उस चन्द्रमासकी गणना नहीं होती है और वह क्षय समझा जाता है। जिस वर्ष क्षयमास होता है उस वर्ष उसके पहले और पीछे साधारणतः दो अधिमास होते हैं। ऐसी घटना एक

वैज्ञानिक विचारोंमें क्रान्ति
ऐन्स्टैनका सापेक्षवाद

[ले० प्रो० दत्तात्रेय गोपाल मटंगे, एम्-एस्०सी० (प्रयाग), एफ्० पी० एस्० (लंडन), भौतिकाचार्य्य, राबर्ट्सन कालिज, जबलपुर। अनुवादक, श्री भगवानदास दुबे।]

१—प्रस्तावना

प्रो० आल्बर्ट ऐन्स्टैन नामक सुप्रसिद्ध वैज्ञानिकने संवत् १९६२में और दस वर्ष पीछे फिर संवत् १९७२में जो सिद्धान्त प्रकाशित किये, उन्होंने वैज्ञानिकोंकी दृष्टिमें दृश्य जगतके सम्बन्धमें परिवर्तन कर दिया। "काल अनादि और अनन्त है, उसका प्रवाह एकसा होता है, जड़ जगतके कारण आकाश वा देशमें कोई विकार उत्पन्न नहीं होता।"—इत्यादि जो विचार वर्तमान समयतक प्रचलित है उनमें अब अदल-बदल हो गया है। ऐसा नहीं है कि इस विचार-परिवर्तनसे लौकिक-जीवनमें कोई क्रान्ति हुई। न्यूटनने गुरुत्वाकर्षणका सिद्धान्त निकाला, उससे लोगोंके प्रतिदिनकी गतिविधिमें कहाँ परिवर्तन हुआ? लौकिक जीवनपर उन्हीं विचारोंका प्रभाव पड़ता है जो वस्तुस्थितिको बदल दें वा बदल सकें। परन्तु वस्तुस्थितिके समझने वा व्याख्या करनेकी शैली वा प्रकृतिमें अन्तर पड़नेसे वस्तुस्थितिमें कोई अन्तर नहीं पड़ता। फिर भी जब शालाओंमें गुरुत्वाकर्षणका सिद्धान्त पढ़ाया गया और विद्यार्थियोंने उसका अध्ययन किया, तब नित्य होनेवाली घटनाओंके सम्बन्धमें उनका दृष्टिकोण बदल गया। ऐंस्टैनके इस नये सिद्धान्तका भी यही फल होगा।

स्वयं ऐन्स्टैनने अपने सिद्धान्तोंका एक सुगम विवेचन प्रकाशित किया है। गणितका उपयोग किये बिना ही, सुगम कहलाये जानेवाले, अनेक ग्रन्थ भी इस विषयपर लिखे गये हैं, किंतु गणितको बिलकुल छोड़ देनेसे इन पुस्तकोंकी सुगमता नष्ट हो जाती है। गणितसे सिद्ध होनेवाले जिन विधानोंको गणितकी सहायतासे ही लेखकने स्वयं समझा परन्तु उसे ही बिना गणितके अपनी पुस्तकमें लिख देता है तो गणितके अभावमें वेही विधान पाठकोंको अत्यन्त दुर्बोध लगते हैं। अतः कम-से-कम परन्तु आवश्यक गणितका इस पुस्तकमें उपयोग किया गया है। वैसे तो यह गणित कठिन नहीं है, कठिन तो वे आधारभूत कल्पनाएँ हैं, जिनको लेकर इसका प्रारम्भ किया जाता है। इसलिए यदि मूल कल्पनाओंको ही ठीक तरहसे समझ लिया जावे, तो गणितके समझनेमें कठिनाई न पड़ेगी। फिर गणित समझमें आनेपर उससे प्राप्त अनुमान सुगम हो जाते हैं और बहुधा यह भी निश्चय हो जाता है कि कल्पना ठीक समझमें आ गयी।

इस निबन्धका विषय पूर्णतया आधिभौतिक है, आध्यात्मिक नहीं, इस बातको पाठक सर्वदा ध्यानमें रखें। गत ५० वर्षोंमें जो अनेक प्रयोग किये गये और आकाशीय ज्योतिर्मण्डलका जो निरीक्षण किया गया, उनसे बहुतसे अद्भुत और महत्वपूर्ण अनुमान निकले। इस सिद्धान्तने उन सबको एक ही सूत्रमें बाँधकर एक ही सत्य विधान सिद्ध किया है। इन सिद्धान्तोंसे एक यह अनुमान निकलता है कि "जड़ पदार्थोंके होनेसे उसके आस-पासके आकाश वा देशमें वक्रता आ जाती है। यदि इस अनुमानको पुरानी आध्यात्मिक दृष्टिसे देखा जावे, तो इसपर अनेक शंकाएँ हो सकती हैं। इसी प्रकारकी गड़बड़का फल यह हुआ कि यूरोपके विज्ञान वेत्ताओं

शताब्दीमें एक या दो बार होती है और मार्गशीर्ष पौष या माघमेंसे ही कोई मास क्षय होता है। (क्रमशः)।

और दार्शनिकोंमें इसके कारण विवादकी आँधी आ गयी। इससे बचनेका एकमात्र उपाय यही है, कि इस विषयको शुद्ध आधिभौतिक दृष्टिसे देखा जावे।

इस पुस्तकको समझनेके लिये मैट्रिक-परीक्षाकी योग्यताके गणितकी आवश्यकता है। इसके सिवा न्यूटनके गतिशास्त्रके मूल सिद्धान्त—विशेषतया एकसा सरल वेग, बढ़ता हुआ वेग तथा जड़ पदार्थोंपर बलकी क्रिया आदिका ज्ञान भी जरूरी है। जो पाठक इनसे अनभिज्ञ हैं उनके लिए आरंभिक अध्यायोंमें इनका स्पष्टीकरण किया गया है।

विषयका वर्णन जहाँतक हो सका, बहुत ही सुबोध और सरल रखा गया है। किन्तु विषय नया है और पूर्णतया मौलिक है, इसलिए यह असम्भव नहीं है, कि कुछ क्लिष्टता रह गयी हो। ऐसे स्थलोंपर पाठकको अपनी बुद्धिसे ही काम लेना चाहिए।

२—ये ऐंस्टैन कौन हैं ?

अल्बर्ट ऐन्स्टैनका जन्म जर्मनीके वुर्टेम्बुर्ग प्रदेशके उल्म नामके गाँवमें संवत् १९३६वि०में हुआ था। ये यहूदी हैं।

इन्होंने संवत् १९५३से लेकर १९५७तक स्विट्ज़र्लैंडके सूरिक विद्यालयमें रहकर गणित और विज्ञानका अध्ययन किया। कुछ समयतक शिक्षा देकर ट्यूशन करके उन्होंने अपना निर्वाह किया। फिर सं० १९५९में तो सूरिकमें ही इंजीनियरके पदपर काम करने लगे। इसी पदपर रहते हुए उन्होंने सं० १९६२में अपने सिद्धान्तोंका पहला भाग प्रकाशित किया। इसके बाद भी भिन्न-भिन्न समयोंपर मौलिक-सिद्धान्त-विषयक अपने विचार वे प्रकट करते गये।

सूरिक और प्रागमें नौकरी करते हुए उन्होंने सं० १९७१तकका समय बिताया। उसी साल फ़ानटाऽफ़के बदले वे बर्लिन विश्व-विद्यालयमें आचार्य्य-पदपर रख लिये गये। यहाँपर वे साधारण विषयोंके पढ़ानेसे इधर वे मुक्त कर दिये गये थे, जिससे वे अपना अधिक समय गहन विचारोंमें लगा सकते थे। विशेष विषयों-पर ही वे विद्यालयमें समय-समयपर व्याख्यान देते रहे हैं। इसके अतिरिक्त वे कैसर-विल्हेल्म-गेजेलशाफ़्ट विद्यालयके खोज-विभागके प्रधान भी रहे हैं। आज-कल जर्म्मनीमें राज्य-परिवर्तनके कारण देश त्याग करके वह जर्म्मनीके बाहर रहते हैं।

उनका पहला विवाह सं० १९६०में सर्विया देशकी निवासिनी उनकी एक सहाध्यायिनीसे सूरिकमें हुआ। इस विवाहके फलस्वरूप उनके दो पुत्र उत्पन्न हुए जो सूरिकमें रहते हैं। उन्होंने कुछ बरस हुए दूसरा विवाह कर लिया और अपनी नवविवाहिताके साथ बर्लिनमें रहते थे।

यद्यपि उन्होंने न्यूटनके सिद्धान्तोंमें मौलिक परिवर्तन कर दिया है तो भी उनके हृदयमें उस प्रख्यात अँग्रेज वैज्ञानिकके प्रति अपार श्रद्धा है। इंग्लैंडमें भी उनके बहुतसे अनुयायी हैं जिनमें सर आर्थर एडिंग्टन प्रमुख हैं। (२९ मई सन् १९१९) संवत् १९७६ के सौर १५ ज्येष्ठको जो सूर्यग्रहण होनेवाला था, उसके विषयकी गणितसे सोब्राल और प्रिंसीपी नामक ग्रामोंमें खग्रास होनेका संयोग पड़ा। यह अवसर उस सिद्धान्तकी जाँचके लिए उपयुक्त था, जिसमें ऐन्स्टैनने किरणोंमें वक्रता आ जाना प्रतिपादित किया है किन्तु महायुद्धके कारण स्वयं ऐन्स्टैन न जा सके। इंग्लैंडमें सर आर्थर एडिंगटन प्रभृति वैज्ञानिकोंकी प्रेरणासे लन्दनकी रॉयल सोसायटीने इस जाँचका प्रबन्ध किया। फलतः ऐन्स्टैनका सिद्धान्त ही सत्य निकला। इस जाँचके लिए उन्होंने अँगरेज वैज्ञानिकोंके प्रति कृतज्ञता प्रकट की।

वे शान्तिवादी हैं और युद्धके विरुद्ध उन्होंने कई बार अपने विचार प्रकट किये हैं। अर्थ-लोलुपता उनको छू भी नहीं गयी है। अमरीकाकी एक बोलती फिल्म-कम्पनीने उनका एक छोटा-सा फिल्म बनाना चाहा, जिसके बदले वह उन्हें चालीस हजार डॉलर देनेको तैयार थी, परन्तु ऐन्स्टैनने इसे स्वीकार नहीं किया !

३—इस निबन्धको समझनेके लिये आवश्यक संकेत और सूचनाएँ

वेग—वेग जाननेके लिए आक्रमित अन्तर और उसके लिये लगे हुए समयका जानना जरूरी है।

$$\therefore \quad \text{वेग} = \frac{\text{अन्तर}}{\text{काल}}$$

१५ फु। से = १ सेकंडमें १५ फुटका वेग।

५ मी। से = १ सेकंडमें ५ मीलका वेग।

१ प्र० = १ प्रवे { प्र=प्रकाश, वे=वेग
= १,८६,००० मील।
= ३, ००००० किलोमीटर।

१ प्र। से = १ सेकंडमें १ प्रवे।
यह प्रकाशका वेग प्रतिसेकंड है।

स > त = 'स' संख्या 'त' संख्यासे अधिक है।

स < त = 'स' संख्या 'त' संख्यासे कम है।

प्रवृत्ति— जब किसी वस्तुका वेग एकसा बढ़ता है, तब उसके वेगकी वृद्धिकी दरको प्रवृत्ति कहते हैं।

$$\therefore \text{प्रवृत्ति} = \frac{\text{वेगकी वृद्धि}}{\text{वृद्धिमें लगा हुआ काल}}$$

उदाहरण—मान लिया जाय कि एक कणका वेग शुरूमें 'य' था। वह 'स' सेकंडोंमें 'व' हो गया। यदि वृद्धि एकसी हुई हो, तो

$$\text{प्रवृत्ति} = \frac{\text{व} - \text{य}}{\text{स}}$$

५ फु। से। से—ऊपर लिखी हुई रीतिसे गणित करनेपर यदि १ सेकंडमें ५ फु। से वेगकी बाढ़ हुई तो इस वृद्धिकी दर संक्षेपमें "५ फु। से। से" लिखी जाती है।

उदाहरण—यदि एक पत्थर ऊपरसे जमीनकी ओर छोड़ा जावे तो उसकी प्रवृत्ति पृथ्वीकी ओर ३२ फु। से। से रहती है। इसलिए, पदार्थोंकी।

पतन-प्रवृत्ति = ३२ फु। से। से

आवेग—पदार्थके जाड्यमें उसके वेगका गुणा करनेपर प्राप्त संख्याको उस पदार्थका आवेग कहते हैं।

१ मीटर = १'०९४ गज।

१ से. मी. = १ सेन्टीमीटर।
= १/१०० मीटर।

१ कि. मी. = १ किलोमीटर।
= १००० मीटर

$$\frac{१}{१+\text{क}} = १ - \text{क} + \text{क}^{२} - \text{क}^{३} + \text{क}^{४} \cdots\cdots$$

$$\frac{१}{१-\text{क}} = १ + \text{क} + \text{क}^{२} + \text{क}^{३} + \text{क}^{४} + \cdots\cdots$$

किन्तु जब 'क' का मान एक अत्यन्त सूक्ष्म अपूर्णांक होता है तब '$\text{क}^{२}$' '$\text{क}^{३}$', '$\text{क}^{४}$' इत्यादि इतने अधिक सूक्ष्म हो जाते हैं; कि 'क' के अतिरिक्त ये सब संख्याएँ छोड़ दी जा सकती हैं, इसलिए,

$$\left.\begin{array}{l} \dfrac{१}{१+\text{क}} = १ - \text{क} \\[2ex] \dfrac{१}{१-\text{क}} = १ + \text{क} \end{array}\right\} \text{जब 'क' एक सूक्ष्म अपूर्णांक हो।}$$

$$(१+\text{च})^{\text{न}} = १ + \text{नच} + \frac{\text{न}(\text{न}-१)}{१\times२}\text{च}^{२} + \frac{\text{न}(\text{न}-१)(\text{न}-२)}{१\times२\times३}\text{च}^{३} + \cdots$$

ट ⟶ ठ = ट से ठ तक का प्रवास, अथवा ट से ठ की ओर।

चित्र १
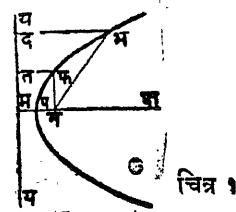
परवलय—$\underline{\text{य}}\ \underline{\text{य}}$ एक सरल खड़ी रेखा है, जिसपर $\underline{\text{म}}$ विन्दु लिया गया है। $\underline{\text{म}}\ \underline{\text{क्ष}}$ एक आड़ो

रेखा है। म त पर न विन्दु लिया गया है और प म न का मध्यविन्दु है। इसके बाद फ प के पास एक दूसरा विन्दु लिया गया है, जिससे उसकी न से दूरी न फ, रेखा य य पर की लम्बदूरी फ त के बराबर है। इसी प्रकार भ आदि विन्दु उसके पास लिये गये हैं। इन सब विन्दुओंको जोड़नेसे जो वलय बनता है, उसको परवलय कहते हैं। इसकी दोनों ओरकी भुजाएँ एक दूसरीसे अधिकाधिक दूर होती जाती हैं।
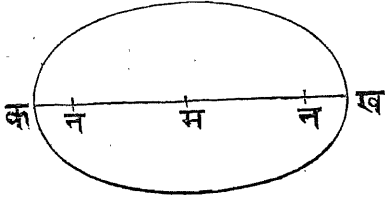
चित्र २

दीर्घवृत्त—इसके बनानेकी सरल रीति यह है। बारीक धागेका एक टुकड़ा लेकर उसको दोहरा किया। मध्यमें गांठ देनेपर जो फन्दा बना, उसको एक कागजपर दो पिन लगाकर उनमें फँसा दिया फन्देकी लम्बाई पिनोंकी दूरीसे थोड़ी अधिक रखी। पेन्सिलकी नोक फन्देके बीचमें रखकर उसकी दोनों ओर तानकर फैलाया। फन्देको इस प्रकार फैला हुआ रखते हुए पेन्सिलकी नोक फिरायी। नोकद्वारा इस तरह जो आकृति बनी, वही दीर्घवृत्त कहलाती है। जिन स्थानोंके ऊपर पिन गड़े हुए थे, उनकी न न संज्ञा दी। ये दोनों दीर्घवृत्तकी नाभियाँ हैं। इन दोनोंको जोड़नेवाली रेखा दोनों ओर इतनी बढ़ायी कि वह दीर्घवृत्तको काटने लगी। इस प्रकार प्राप्त रेखा दीर्घाक्ष है जिसका केन्द्र म है।

जगत्—केशवका जगत् वह स्थान है जिसके प्रति स्थिरताका भाव रखते हुए वह अपनी और अपने आस-पासकी अन्य वस्तुओंकी गतिका गणित करता है। यदि केशव रेलगाड़ीसे यात्रा करता है, तो गाड़ीका डब्बा उसका जगत् है। वह डब्बेमें रखी हुई बेंचों, लगी हुई खूंटियों और फर्शको स्थिर मानता है और ऐसा मानते हुए ही वह उठता है, बैठता है, एक स्थानसे दूसरेको जाता है और एक वस्तुको उठाकर दूसरी जगह रखता है। यद्यपि डब्बा स्थिर हो अथवा समवेगसे चल रहा हो, तो भी वह अपने कार्योंको तथा गतिको एक सरीखे भावसे करता है। उसी प्रकार हमलोग पृथ्वीको अपना जगत् समझते हैं, क्योंकि उसके प्रति स्थिरताका भाव रखते हुए ही हम उठते हैं बैठते हैं, चलते हैं और पत्थर फेंकते हैं।

गतिशक्ति—अपने वेगके कारण पदार्थ कुछ कर्म कर सकता है। बन्दूककी गोली हाथसे कितने ही वेगसे क्यों न फेंकी जावे उससे बाघ नहीं मरेगा। उस गोलीमें आवश्यक शक्ति उत्पन्न करनेके लिए उसको आवश्यक वेग देना चाहिए। यदि एक पदार्थका जाड्य 'ज' और वेग 'व' हो, तो

$$\text{गतिशक्ति} = \tfrac{1}{2}\text{जव}^2$$

प्रकाश-वर्ष—प्रकाशका वेग १, ८६, ००० मील प्रति सेकंड है। यदि इसी वेगसे प्रकाश १ सालतक जाता रहे, तो जितनी दूरी उससे आक्रमित होगी उसे १ प्रकाश-वर्ष कहते हैं। यह दूरी ५८६७०० कोटि मील होती है।

आकर्षण—न्यूटनका आकर्षणका नियम इस प्रकार है—यदि एक कणका जाड्य 'ज^1' और दूसरेका 'ज^2' हो और उनके बीचकी दूरी 'ल' हो तो

$$\text{आकर्षण} = \text{अ} \times \frac{\text{ज}_1\text{ज}_2}{\text{ल}_2}$$ जिसमें 'अ' एक अचल राशि या स्थिरांक है।

प्रतिसारण—प्रकाशकी लहरें, या उनसे भी बड़ी या उनसे भी छोटी लहरें, जब किसी पदार्थसे टकराती हैं, तब उसके पृष्ठभागपर दाब पड़ता है। इस अपरिमित विश्वके एक पदार्थसे दूसरे पदार्थपर किसी न किसी प्रकारकी लहरें उठकर टकराती हैं, इससे उन पदार्थोंकी प्रवृत्ति एक दूसरेसे दूर हटनेकी होती है। इस प्रवृत्तिको प्रतिसारण-प्रवृति कहते हैं।

४—न्यूटनके वे गतिसूत्र जिनका विज्ञान-संसारपर राज्य है

न्यूटनने गतिके सम्बन्धके तीन सूत्र बनाये। विज्ञान संसारमें उनकी इस अनुपम खोजका अखंड राज्य है। वह सूत्र इस प्रकार हैं—

१—किसी दूसरे बाह्य कारणकी अनुपस्थितिमें एक स्थिर कण स्थिर ही रहा आता है, और गतिप्राप्त कण एक सरल रेखामें समवेगसे यात्रा करता रहता है।

स्पष्टीकरण—यदि एक गोली सादी जमीनपर सरपट फेंकी जावे, तो वह कुछ दूरतक जाकर स्थिर हो जावेगी, किन्तु यदि इसी गोलीको एक चिकने फर्शपर इसी तरह फेकें तो वह अधिक दूरीपर जाकर ठहरेगी। दोंनों दशाओंमें रुकनेका कारण रगड़ या घर्षण ही है। जमीनकी अपेक्षा फर्शपर यह रगड़ बहुत कम रहता है, अर्थात् वेग कम होनेका कारण जो रगड़ है, यदि उसका लोप हो जावे तो वह वेग सदा एकसा रहेगा और वह गोली सरल रेखामें चली जावेगी। घर्षणसे वेग कम होता है और आकर्षणसे अधिक होता है! इसलिए वेग एकसा रहनेके लिये न बाह्यघर्षण चाहिए और न बाह्याकर्षण ही। वेग एकसा ही रहे, किन्तु यदि दिशामें भी परिवर्तन हो, तो इसके लिये भी किसी बाह्य कारणका होना आवश्यक है।

२—बाह्य बलकी क्रियासे एक कणके आवेगमें जो प्रति सेकंड वृद्धि अथवा न्यूनता हो, वह उस बाह्यबलका माप है।

इस नियमको पूरी तरह समझ लेना आवश्यक है। मान लें कि एक कणका जाड्य 'ज' आरंभिक वेग 'य' और 'ब' बलकी 'स' सेकंडतक क्रिया होनेपर अन्तिम वेग 'व' है तो

आरंभिक आवेग $=$ ज $\times$ य

अन्तिम आवेग $=$ ज $\times$ व

आवेग वृद्धि $=$ जव $-$ जय

$=$ ज (व $-$ य)

लगा हुआ समय $=$ स

$\therefore$ आवेगवृद्धिकी दर $= \frac{\text{ज (व} - \text{य)}}{\text{स}}$

परन्तु प्रवृत्ति $= \frac{\text{व} - \text{य}}{\text{स}}$

$\therefore$ आवेगवृद्धिकी दर $=$ ज $\times$ प्रवृत्ति

परन्तु यही 'ब' का मान है, इसलिए

बल $=$ जाड्य $\times$ प्रवृत्ति

उदाहरण १—जाड्य १ पौंडपर जिस बलकी क्रियासे १ फु। से। से की प्रवृत्ति उत्पन्न हो जाती है, वह बल$=$१ $\times$ १ $=$ १पौंडल है। ब्रिटिश मापमें 'पौंडल' शक्तिका पैमाना या इकाई है।

उदाहरण २—यदि १ पौंड जाड्यका पत्थर हाथसे जमीनकी ओर छोड़ा जावे, तो उसका वेग बढ़ता जावेगा।

उसकी प्रवृत्ति$=$३२ फु। से। से

$\therefore$ बल$=$१ $\times$ ३२ $=$ ३२ पौंडल।

उदाहरण ३—एक धागेमें पत्थर बाँधकर यदि उसे अंगुलीसे घुमाया जावे तो अंगुलीपर उसका तनाव मालूम पड़ता है, यह सभीका अनुभव है। इस तनावका कारण यह है कि यद्यपि वेग एकसा ही रहा किन्तु उसकी दिशा बदल गयी। यह दिशा-परिवर्तन उस तनावके बिना नहीं हो सकता।

३—क्रिया और प्रतिक्रियाका परिणाम समान रहता है, किन्तु उनकी दिशा विरुद्ध रहती है।

जब बन्दूक चलायी जाती है तब उसका स्थूलाग्र कंधेको धक्का देता है। घूमते हुए फव्वारेमें पानीकी धारा जिस दिशामें निकलती है, उसकी बिरुद्ध दिशामें नलीको धक्का देती है। इसलिए वह नली चारों ओर चक्कर लगाती है।

आगेके विषयको स्पष्ट रूपसे समझनेके लिये पाठकोंको इन गतिसूत्रोंको अच्छी तरह हृदयंगम कर लेना चाहिये।

५—प्रकाशके वेगसे हमें क्या क्या धोखे होते हैं ?

सूर्य जैसा हमलोगोंको किसी समय दीखता है, यथार्थमें वह वैसा उस समयसे आठ मिनिट पहिले रहता है, क्योंकि सूर्यसे पृथ्वीतक आनेमें प्रकाशको आठ मिनिट लगते हैं। प्रकाशके वेगकी अपेक्षा पृथ्वी-परकी नापी हुई दूरियाँ बहुत ही छोटी होती है। यदि प्रकाशकी एक किरण पृथ्वीकी प्रदक्षिणा करे तो वह एक सेकंडमें सात प्रदक्षिणा करेगी। इसलिए सामान्य व्यवहारमें जो बात जिस क्षणमें होती दीखती है उसी क्षणमें सचमुच होती है यह मान लेने-में कोई हानि नहीं। किन्तु यथार्थमें जो घटना जिस समय होती दिखती है उसके कुछ समय पहिले हो चुकी रहती है।
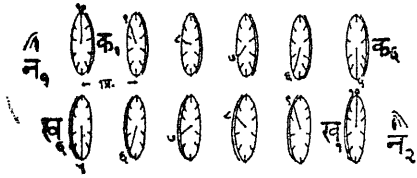
चित्र ३

छः घड़ियाँ लेकर और उनका समय बिलकुल एक सा मिलाकर एक एक प्रवेके अन्तरपर उनको जमाया। प्रत्येक घड़ीमें दोनों ओर घड़ीका चेहरा है जिनमेंसे हर चेहरेपर एक सेकंडका कांटा है और दस सेकंडके निशान लगे हैं। $न_1$की जगह एक आँख है और $न_2$पर दूसरी। वे विरुद्ध दिशाओंसे घड़ीमें देख रही हैं। मान लें ये घड़ियाँ $क_1$, $क_2$,······$क_6$ हैं। जिस समय $क_1$ घड़ीका काँटा दसपर होगा, उस समय सब घड़ियोंका काँटा दसपर रहेगा, किन्तु जिस समय पहिली घड़ीमें दस सेकंडपर काँटा दीखेगा, उस समय $न_1$की मिलनेवाली किरणें $क_2$-से १ सेकंड पहले निकलेंगी क्योंकि उनके बीचकी दूरी १ प्रवे है, और इसलिए $क_2$में कांटा ९ सेकंडपर रहेगा। इसी प्रकार $क_3$में ८ पर, $क_4$में ७ पर,······ और $क_6$में ५ पर दीखेगा। इसी तरह दूसरी तरफ-से देखनेवाले $न_2$को उसी क्षण $क_6$में १० पर,······ $क_5$में ९ पर,········और $क_1$में ५पर दीखेगा। सब घड़ियोंमें समय एक सा होनेपर भी $न_1$ और और $न_2$की अलग अलग स्थिति होनेके कारण तथा प्रकाशके वेगके कारण $न_1$ और $न_2$के अवलोकनों-में अन्तर पड़ जाता है। यदि $न_1$ और $न_2$ गतिमें हों तो उनके इन अवलोकनोंमें और अधिक भेद पड़ेगा।

आकाशके किसी एक भागका फोटो लिया। उनमें जितने तारोंकी जैसी परिस्थितिका चित्र आया उसे हम एक ही क्षणमें होनेवाली समझते हैं, पर जो तारे पासमें हैं उनके प्रकाशको आनेमें उन तारोंकी अपेक्षा देरी लगेगी, जो उनसे बहुत दूर हैं। इसलिए जो दृश्य हम पासके तारोंका देखते हैं, वह यथार्थमें कुछ थोड़े समय पूर्वका है, और जो दृश्य दूरके तारोंका देखते हैं वह इस समयसे अधिक पहले हुआ है, इसलिए फोटोमें तारोंकी जो परिस्थिति आयी है, वह सभी की एकही समयको नहीं है। तारोंकी इस दीखनेवाली समकालीन परिस्थितिमें शायद इतना या इससे भी कहीं अधिक पारस्परिक अन्तर हो जितना छत्रपति शिवाजीके समयका अन्तिम पेशवा बाजीरावके समयसे या राणाप्रताप और राजा रणजीतसिंहके समयका वर्तमान समयसे है।

अब एक परिचित उदाहरण लेकर देखें, कि प्रकाशका वेग वस्तुओंके आभासमें क्या अन्तर पैदा कर देता है। मान लें कि एक धोबी नदीके किनारे कपड़े धो रहा है और हम उसे कुछ दूर खड़े हुए देख रहे हैं। उसकी दो क्रियाएँ जिस कालके अन्तरसे होती हैं, उसी कालके अन्तरसे हमको दीखती हैं। यदि एक पछाड़के बाद दो सेकंडमें दूसरा पछाड़ होता हो, तो हमको भी इन दो पछाड़ों-के बीचका अन्तर दो सेकंड मालूम पड़ेगा। अब यह समझ लें कि एक पछाड़के होते ही हम प्रकाशके वेगसे कुछ कम वेगसे उस धोबीसे दूर जा

रहे हैं। इससे दूसरी पछाड़ होनेतकका समय हमको दो सेकंडसे बहुत अधिक मालूम पड़ेगा, क्योंकि दूसरी पछाड़पर निकलनेवाली किरणें अब अधिक दूर चल कर हमें पावेंगी। इसी प्रकार धोबीकी सभी दशाएँ हमको बहुत मंद होती दीखेंगी। जैसे उसकी गति मन्द हो गयो है, उसी प्रकार उस धोबोके आसपास-की सभी क्रियाएँ, जैसे नदीका बहना, मनुष्यका चलना इत्यादि मन्द होती दीखती हैं।

अब यदि हम यह मान लें, कि हम प्रकाशके वेगसे धोबीसे दूर जा रहे हैं। इस स्थितिमें जो किरणें हमारे साथ होंगी, वेही हमारे साथ रही आवेंगी। इस कारण उस धोबीकी बादकी क्रियाएँ देखना हमारे लिए असम्भव है। इसलिए हमको जो पहली बार दीखा, वही सर्वदा दीखता रहेगा। धोबीने पछा-ड़नेके लिए कपड़ा उठाया हो, मनुष्यने चलनेके लिए पैर बढ़ाया हो, नदीमें लकड़ी दिखो हो, ये सब क्रियाएँ स्थिर दिखेंगी। इसलिए सब गतियोंका लोप होकर वह स्थान हमको वैसाही दीखेगा जैसे एक फ़ोटोमें दीखता है। ऐसा मालूम होगा, कि धोबीके आसपासकी परिस्थिति स्थिर हो गयी है, अर्थात् वृद्धि, ह्रास, कालकी गति सभी रुक गये हैं।

अब मान लें कि हम प्रकाशके वेगसे अधिक वेग-से जा रहे हैं, तो जो किरणें हमसे पहले निकल चुकी हैं, उनको पाकर हम पीछे छोड़ते जावेंगे। मान लें कि स्थिर रहते हुए हमने ये दृश्य देखे थे, धोबीने मले कपड़े गट्ठरमें बाँधे, बैलके ऊपर रखे, फिर वह नदीपर आया, गट्ठर छोड़ा, मैले कपड़े धोकर स्वच्छ किये, नदीका जो पानी स्वच्छ था वह मैला होकर नीचे बह गया, स्वच्छ कपड़े निचोड़कर गट्ठरमें बाँध लिये, उस गट्ठरको बैलके ऊपर रखा—अब इस क्षण इस प्रकाशके वेगसे जब अधिक वेगके साथ चले तब वही क्रियाएँ हम इस उलटे क्रमसे देखेंगे—धोबीने बैल परसे गट्ठर उतारा साफ़ कपड़े धोये, मैला पानी ऊपरकी ओर आया, उस पानीसे साफ कपड़ोंके धोनेसे वे मैले हो गये, मैले पानोसे साफ कपड़ोंके धोनेसे कपड़े मैले हो गये, पानी स्वच्छ होकर ऊपरकी ओर चला, सब कपड़े जब मैले और सूखे हो गये तब उनका गट्ठर बनाकर और नदीकी ओर मुँह करके धोबी और बैल चले।

जिस प्रकार यह क्रिया हुई, उसी प्रकार उस जगत्‌की सभी क्रियाएँ उलटी होती दीखती हैं। मनुष्य-का आयुष्क्रम ही उलटा हुआ दीखता है—चिताकी राखपर लोग आये, धुआँ और ज्वालाओंके अन्दर जानेपर चिता बन गयी, लोगोंने चितापरसे मृत मनुष्यका शरीर बाहर निकाला, उसे घरपर ले आये, बिस्तरपर रखा, वह जीवित हो गया, वह स्त्री-सहित तरुण हो चला, उसके लड़के भी छोटे होते चले, योग्यकाल आनेपर अपनी माताके उदरमें प्रवेशकर गये, वह स्त्री छोटी होती गयी फिर अपने पिताके घर चली गयी। इस मनुष्यकी स्त्रीको भी लोग चितासे ले आये, वह जिन्दा होकर तरुण होने लगी, योग्यकालमें इस मनुष्यने अपनी माताके उदरमें प्रवेश किया और उसका जीवन इस प्रकार पूर्ण हुआ।

यदि सिनेमाके चित्रपट धीरे-धीरे या उलटे चलते हुए हम देखें, तो ऊपर लिखे प्रकारसे किन्हीं क्रियाओं-का क्रम मन्द या उलटा हुआ दीखेगा।

ऊपर लिखे उदाहरणोंसे स्पष्ट होगा, कि मनुष्यके अवलोकनों और प्रकाशके वेगमें कितना निकट संबंध है। व्यावहारिक जीवनमें मनुष्यकृत सबसे अधिक वेग ३/५ मील प्रति सेकंड है। यह तोपके गोलेका वेग है। मनुष्य स्वतः २५४ मील प्रतिघंटासे [=१/१४२ मील प्रति सेकंड—सर मालकम कैम्बेल, २४-२-३२] अधिक वेगसे अबतक नहीं जा सका है। ज्योतिर्मण्डलमें जो सबसे अधिक वेग देखा गया है वह १२,५०० मील प्रति सेकंड है। इसलिए यह स्पष्ट है कि प्रकाशके वेगसे थोड़ा कम बराबर या अधिक वेग उत्पन्न करना असं-भव है। अतः क्रियाओंका मन्द अथवा उलटा हुआ दीखना सम्भव नहीं है, परन्तु स्पष्ट करनेके लिये ही ये परमावधिके उदाहरण लिये गये हैं।

सम्पादकीय टिप्पणियाँ

व्याख्यान फैलानेका नया यंत्र—व्याख्याता जब बड़े भारी जनसमुदायके सामने बोलता है तो उसकी आवाज दूर-दूर पहुँचानेके लिये आजकल एक यंत्र लगा दिया जाता है। परन्तु उस यंत्रके सामने ही निश्चित दूरीसे ही बोलना पड़ता है और व्याख्याता उस निश्चित स्थानसे हट नहीं सकता। इस तरह बोलनेवालेकी गतिविधि संकुचित हो जाती है। उसके हिलने डोलनेकी आजादी छिन जाती है। इस दोषको दूर करनेके लिये "लापेल-मैक्रोफोन" नामका यंत्र बन गया है। इसका वर्णन जोन्स और बेलने* किया है। इसमें विशेषता यह है कि यह यंत्र व्याख्याताके कपड़ोंमें लगा दिया जाता है। बोलनेवाला चाहे जिस तरह हिले-डोले कोई हर्ज नहीं होता। इस यंत्रकी बनावट ऐसी है कि आस-पासकी और आवाजें अत्यन्त कम सुनाई देती हैं। शरीरके कम्पनसे निकले हुए शब्द भी कम सुन पड़ते हैं। कुछ दिनोंमें रंगशालाओंमें, गिरजोंमें, सम्मेलनोंमें और सार्वजनिक स्थानोंमें जहाँ साधारणतया व्याख्यान होते हैं लापेल—मैक्रोफोनका प्रचार हो जायगा।

—रा० गौ०

× × ×

उपजकी वृथा बरबादी—यह तो अब सबको मालूम हो चुका है कि अत्यधिक उपजके कारण अमेरिकामें हजारों टन गेहूँ समुन्दरमें डुबा दिया गया। अमेरिकामें हजारों वैज्ञानिक कृषि विभागमें इसलिये रखे गये थे कि वह खोजद्वारा उपज बढ़ावें। उन्होंने अपने कर्त्तव्यका बड़ी योग्यतासे पालन किया और पूरी सफलता पायी। अब वहाँकी सरकारने देखा कि उपजका बढ़ना लाभके बदले हानिका कारण हो रहा है, इसलिये उसने उन वैज्ञानिकोंके वेतन घटा दिये हैं। ९ मई सन् १९३३ को फ्रंकलिन इंस्टिट्यूटमें "कृषि और विज्ञान"पर व्याख्यान देते हुए माननीय हेनरी वालेसने जो अमेरिकाकी सरकारके कृषि मंत्री हैं, उन वैज्ञानिकोंके यह कहकर आँसू पोछे हैं कि आपका काम सर्वतोभावेन उपयोगी रहा है, कोई उसपर रत्तीभर दोष नहीं लगा सकता। दोष या भूल उन लोगोंकी है जिन्होंने समाज-विज्ञान और सम्पत्ति-विज्ञानकी ओर ध्यान नहीं दिया कि उपज उतनी ही होनी चाहिये जितनी खपत हो। यह बात बिलकुल सच है और इतनी स्पष्ट है कि दौड़ते हुए आदमीको भी दीखनी चाहिये परन्तु पूँजीवादकी प्रतियोगिता मनुष्यको ऐसा अंधा बना देती है कि वह देखकर भी नहीं देखता और आसन्न लाभके तिलकी ओट भावी हानिके पहाड़की अवहेला करता है। चीनीके व्यवसायकी मिलें भी आज इसी अंधा-धुन्धीसे खुल रही हैं और चल रही हैं। विदेशोंकी मशीनें खूब बिकीं और बिक रही हैं। जो कुछ बची-बचायी देशकी पूँजी है वह इस लोहेके दानवके पेटमें चली जा रही है और आजकी बहती नदीमें पाँव-पखार लेनेवाले कल स्रोत सूख जानेपर पछताते रह जायँगे। चीनीकी खपत तो गेहूँसे कहीं कम है और खरीदनेकी ताकत दिन पर दिन कमी पर ही है। परिणाम स्पष्ट है।

—रा० गौ०।

× × ×

बनावटी रेशमसे फायदे—बनावटी रेशमपर पाठक इसी अंकमें छपा लेख देखें। इस रेशमकी तैयारीमें एक लाभ और है। स्वाभाविक तैयारीमें कीड़ोंको मार डालना जरूरी होता है। वैश्य लोग हिंसा कर्म्मसे बचना भी चाहते हैं। वैष्णवों और जैनोंके लिये तो यह जरूरी बात है, यद्यपि हम तो हिन्दूमात्र नहीं बल्कि प्राणिमात्रका परमधर्म्म अहिंसा समझते हैं। एक सम्प्रदाय

* Journal S. M. P. E., Sept. 1932.

विशेषके लोग तो रेशमके कपड़े पहनना पाप समझते हैं। परन्तु कीड़ोंको मृत्युसे बचाना भी अहिंसा प्रेमियोंका परम धर्म्म है। जो ऐसा चाहते हैं और सौभाग्यवश पूँजीवाले हैं उन्हें तो चाहिये कि कोशिश करके कीड़ोंवाले रेशमकी चाल उठा दें और उसके बदले स्वदेशी बनावटी रेशम तैयार करके धर्म और अर्थ दोनों कमायें।

अर्थ उपार्जन करनेकी बात यह है कि आज हमारे बाजारमें भी बनावटी रेशमकी धूम है। "केलेपरका रेशम" या नकली रेशमका नाम मशहूर है। मूर्ख लोग इसे इसीलिये स्वदेशी कहते हैं कि विदेशी सूत यहाँ बुन लेते हैं। परन्तु यहाँ के पूंजीपति चाहें तो यहाँकी देशी रूईसे नकली रेशम बनानेके लिए सामग्री यहाँकी और काम करने वाले भी यहाँके हो सकते हैं। वह रेशमके रेशेमात्र तैयार करें। कातनेका काम न करें। कताईका काम हाथके चरखेवालोंको सौंपें। यह क्यों? इसलिये कि हमारे देशमें बेकारी संसार भरमें सबसे ज्यादा है। दस करोड़ किसानोंको सालमें ६ महीने बेकार रहना पड़ता है। उन्हें काम चाहिये। स्त्रियोंको काम चाहिये। उनकी आधीसे अधिक आबादी बेकारीका जीवन बिताती है। कताईका काम बड़े आरामका काम है। बेकार रहनेवालोंकी आयु घट जाती है। हमें काम चाहिये, भोजन चाहिये आयु चाहिये। अगर हमारे सौ आदमियोका काम मशीन चलाकर एक आदमी कर देगा तो निन्नानबे बेकार रहेंगे, उन्हें काम, भोजन और जीवन कहाँसे मिलेगा? इसीलिये हमारे पूंजीपतियोंको चाहिये कि ऐसा काम करें कि जो धन विदेश जाता हो उसे स्वदेशी कच्चा माल तैयार करके बचा लें और कताईका काम देशके बेकारोंको बाँटें। जो नकली रेशमके शौकीन हैं उनका शौक भी मारा न जाय और स्वदेशी बनावटी रेशमसे पूंजीपतिको मुनाफा और मजूर और किसानका मजूरी मिले।

× × ×

रा० गौ०

पूंजीपति ऐसा क्यों करें?—यह भी प्रश्न हो सकता है कि हमारे देशके पूँजीपति ऐसा क्यों करें? क्यों न वे कातनेकी मशीन भी चलाकर एकदम सारा मुनाफा अपने ही पेटमें भर लें? यह बड़े महत्वका प्रश्न है, और इसका उत्तर भी अत्यधिक महत्त्वका है। सुनिये! संसारमें इस घड़ी पूँजीवाद और साम्यवादका भारी संघर्ष चल रहा है। पूंजीवादी थोड़े हैं। भूखों मरनेवालोंकी संख्या अपरिमित है। संसारका विकास जहाँ गुणोत्तर श्रेणीसे हो रहा है वहाँ इन दरिद्र बहुसंख्यकोंका वेगसे सुसंगठन हो जाना आश्चर्य्य भी नहीं है। पूंजीवालोंके लिये उनका वर्त्तमान असंतोष निकट भविष्यमें भारी खतरा है। इस जोखिमसे बचनेका एकमात्र उपाय है कि उनका असंतोष दूर किया जाय। उनकी बेकारी दूर हो, उन्हें भोजन मिले, यही उपाय है। भारतके पूंजीपति अगर इस जोखिमसे समय रहते बचना चाहें तो ऐसे उपाय करें कि यहाँके करोड़ों बेकारोंको रोजी मिले और उनकी पूंजीसे उन्हें लाभ भी हो। वह लोग चाहें तो ऐसे व्यवसाय कर सकते हैं कि विदेशोंमें जो धन बहता जा रहा है उसका प्रवाह बदलकर स्वदेशकी ओर हो जाय, देशी पूंजीपतियोंकी तिजोरीमें जाय और जो धन उनके पास पहुँचे उसका अधिकांश देशके दरिद्रोंमें मजदूरीके रूपमें बँट जाय। इस व्यवस्थाकी संभावना उपपातकों महायंत्रोंकी स्थापनामें, मिलोंके कायम करनेमें, नहीं है। मिलोंसे मजूरीका बँटवारा नहीं होता, उलटे छिन जाती है। लघुयंत्रोंसे, चरखोंसे, ही यह व्यवस्था चल सकती है। हम महायंत्रोंके सर्वथा विरोधी नहीं हैं। लोहा, ताँबा आदि धातुओंके निकालनेमें, रेल जहाज चलानेमें या इसी तरहके बड़े बड़े काम करनेमें महायंत्रोंके बिना काम नहीं चल सकता। सिद्धान्त यह होना चाहिये कि जितने काम एक दो आदमी अपने घर बैठे कर सकते हों वह काम महायंत्रोंको न सौंपा जाय। धनका समुचित बँटवारा इसी ढंगसे हो सकता है। ऐसा न हुआ तो बढ़ते हुए असन्तोषके क्या क्या बुरे

परिणाम हो सकते हैं, कौन कह सकता है ?

फिर पूंजीपति महायंत्र निर्माण करके धड़ल्लेसे उपज बढ़ाता चलेगा तो उसका परिणाम क्या होगा, यह भी सोचनेकी बात है। जिन पाश्चात्य देशोंके पास, अपना उबारू माल पटकनेके लिये उपनिवेश हैं या खपाऊ देश हैं उन्हें भी अपनी फालतू पैदावारको लाचार हो नष्ट कर डालना पड़ता है, तो भारतके पूंजीपातयोंके पास तो ऐसा साधन है ही नहीं। उनकी फालतू उपज तो बहुत शीघ्र ही बुरे परिणाम लायेगी और उनकी पूंजीको अन्ततोगत्वा विनष्ट करनेका कारण होगी।

—रा० गौ०

× × ×

स्त्रीकी जाँघमें गर्भ—सौर २५ मार्गशीर्षके "आज"में फ्री प्रेसका दिया हुआ यह समाचार छपा हैकि पटनेके जेनरल अस्पतालमें मुन्नी नामकी तीस बरसकी एक स्त्री गाड़ीसे दब जानेके कारण जब ८ दिसम्बरको लायी गयी तो "डाक्टर पटनायकने देखा कि उसकी दायीं जाँघ बेतरह फूली हुई है और टटोलनेसे गुलगुल मालूम पड़ती है। उनको संदेह हुआ कि वह गर्भ तो नहीं है। जाँघमें गर्भका रहना कभी सुननेमें नहीं आया था। उन्होंने बड़े डाक्टरोंको इसकी खबर दी। प्रसूति-विभागके प्रधान डाक्टर अखिल सरकारने उसकी जाँच की तो उनको भी गर्भ होनेका सन्देह हुआ। अन्तमें किरणपरीक्षाकी गयी तो सन्देह सच साबित हुआ। साफ ही मालूम हो गया कि गर्भ था। विशेषज्ञोंने कहा कि गर्भका बच्चा मर गया है। अब उस स्त्रीकी जाँघ चीरी जानेको है।"

"कभी सुननेमें नहीं आया था" तो अब तो देखनेमें आया! अनेक विज्ञान-लव-दुर्विग्ध पंडित-म्मन्य लोग बुद्धिकी दुहाई देते हुए बड़े गर्वसे कहते सुने जाते हैं कि "अमुक बात असंभव है, क्योंकि ऐसा हो नहीं सकता, या ऐसा कभी सुननेमें या देखनेमें नहीं आया" परन्तु इस तथ्यको भूल जाते हैं कि न्यूटन जैसा वैज्ञानिक संसारका क्रान्तिकारी पंडित भी लाचारीसे कहता है कि "विज्ञानका अथाह और अपार पारावार सामने लहरें मार रहा था और मैं तो किनारे परके कुछ कंकर ही बटोर सका।" सच्चा वैज्ञानिक अत्यन्त विनम्र साक्षी है। वह देखता है और वर्णन करता है। जिस बातको नहीं समझता उसके विषयमें वह बहुत दब और और डरकर कोई कथन करता है। जीव-विज्ञानके गंभीर अनुशीलन करनेवालेके निकट जहाँ कहीं सभी आवश्यक उपादानोंका संघट्ट हो वहीं गर्भका आरंभ और विकास संभव है।

—रा० गौ०

साँपोंके जहरसे लाभ—आजकल पेरिसमें कैंसर फोड़ेकी दवा तैयार की जा रही है। जाँचसे पता चला है कि जहरीले काले साँपका विष कैंसर फोड़ेके लिए अत्युत्तम इलाज है। इसके लिये एक वैज्ञानिक साँपका जहर संग्रह करनेके लिए बम्बई आया है। इनका नाम एम० राबर्ट हेमडिकर है। दो पौंडसे अधिक जहर इन्हें इकट्ठा करना है। एक साँपसे एक बारमें बहुत ही कम विष निकलता है। दो पौंड जहर इकट्ठा करनेके लिए कम-से-कम पाँच हजार काले साँप चाहियें। इस कामके लिए बम्बईके "हैफ़किन इन्सटीट्यूट" में इन्होंने सापोंका एक क्षेत्र खोला है। वहीं आप ज़हर इकट्ठा करते हैं। शराब पीनेके गिलासके ऊपर कैनवेसका एक टुकड़ा फैला दिया जाता है। इसे साँपसे कटाया जाता है। इससे उसके दाँतोंसे निकला हुआ विष इसी गिलासमें इकट्ठा होता जाता है। एक बारमें १५० से २०० मिलीग्रामतक निकलता है। कहते हैं कि अबतक ५० काले साँप उन्हें मिल सके हैं, जिनमें अधिकतर दक्षिण भारतसे लाये गये हैं। उनका कहना है कि फिलहाल ५०० साँपोंसे उनका काम चल जायगा, किन्तु इससे प्रयोगमें अधिक देर होगी क्योंकि कैन-वेसको काटनेसे साँपोंके दाँतोंका अगला भाग नष्ट हो जाता है और साँपको फिरसे कामके योग्य

बनानेके लिए उसे कुछ दिनों तक दूध और अण्डों-पर रखना पड़ता है। श्रीहेमडिकर अभी यहाँ चार महीने और ठहरेंगे। इसके बाद वे इसी कामके लिये अफ्रिका चले जायँगे। पर भारतमें उनका काम उनके एक असिस्टेण्ट करते रहेंगे। इनका कहना है कि कैंसरकी दवाका प्रयोग अभी आरम्भ ही हुआ है। साँपका जहर दूसरी दवाओंमें मिलाकर फोड़ेमें सुई द्वारा भरा जाता है।

(संकलित)

कोयलेसे पेट्रोल निकालना—अब विलायतमें पेट्रोल कोयलेसे निकाला जाना शुरू हो गया है। मिट्टीके तेलकी खानें तो आखिर खान ही हैं। इनकी उपज तो घटती ही जायगी। अतः पेट्रोलके नित्य बढ़ते हुए खर्चको सँभालनेके लिये पेट्रोलका तैयार होना आवश्यक था। भारतमें मोटरकारोंकी संख्या दिनोंदिन बढ़ती जा रही है। अब भारतमें भी कोयलेकी उपयोगिता बढ़ानेके लिये पेट्रोल निकालने-का प्रस्ताव हो रहा है। यदि ऐसा हो जाय तो स्वदेशी पेट्रोल मिलना भी संभव हो जाय।

—रा० गौ०।

× × ×

स्वदेशी गैस मैंटिल—गैस-लम्पोंके मैंटिल जो बाजारमें बिकते हैं इतने नाजुक होते हैं कि छूते ही टूट जाते हैं। जलने पर उनमें पीलापन देख पड़ता है। उनके दोषोंको दूरकर विदेशोंमें जो अच्छी जालियाँ बनती हैं, बड़े दामोंको आती हैं। इधर बंगलोरके डाक्टर कृष्णमूर्त्तिने ऐसे मैंटिल बनाये हैं जो जर्म्मनी आदि विदेशोंकी जालियोंसे कहीं अच्छे टिकाऊ और प्रकाश देनेवाले हैं। इनमें खूब लचक होती है और कितनेही धक्के खानेपर भी ये नहीं टूटते। छूनेसे रबड़की तरह चिमड़े होते हैं। बंगलोर केमिकल एंड मैनुफैक्चरिंग कम्पनीने इसे तैयार करना शुरू किया है। बंगलोरमें भविष्यमें इस कारखानेके बड़ी सफलतासे चलनेकी आशा है।

—रा० गौ०।

× × ×

बैलगाड़ियोंके लिये रबर टायर—बम्बईमें डनलप कम्पनीने बैलगाड़ीमें रबर-टायर लगाकर यह दिखा दिया है कि रबड़ लग जानेसे वही बैल डेवढ़े दूने बोझको सहजमें ढो सकते हैं। सड़क जल्दी नहीं घिसती, आवाज़ नहीं होती, हचका कम लगता है, गाड़ी जल्दी चलती है, जानवरको आराम मिलता है यह भी सुभीते हैं। रबर टायर लोहेवालों-से अधिक टिकाऊ भी होते हैं। परन्तु चाहिये यह भी कि लोहेके हालोंसे ये रबड़के हाल ज्यादा सस्ते भी हों और बनें अपने ही देशमें।

—रा० गौ०।

× × ×

वैज्ञानिक खोजोंसे निराश न होना चाहिये—कुछ काल हुए अरुणिन्की कमीकी चर्चा उठी थी। समुद्रमें अनेक तरहके नमक घुले रहते हैं। यद्यपि दो हजार गैलन जलमें मुश्किलसे आधसेर अरुणिन् निकलता है, तथापि समुद्रका जल तो अपरिमित है। फोटोग्राफीमें, चिकित्सामें, दुर्लभ वायव्योंकी तैयारीमें तथा इसी तरहके कई कामोंमें अरुणिन्की आवश्यकता पड़ती है। अतः कभी ऐसा समय नहीं आ सकता कि अरुणिन्का संसारमें टोटा पड़े। कोई पैंतीस बरस हुए गेहूँकी घटती हुई उपजपर विज्ञान-संसारमें बड़ी चिन्ता हो गयी थी। सर विलियम क्रुक्स ने "गेहूँकी समस्या" नामक एक ग्रंथ लिख डाला और उपज बढ़ानेके लिये उद्भिज्जों द्वारा नोष-जनके शोषणपर बहुत अन्वेषण हुआ। आज इतनी अधिक पैदावार है कि इसपर अंकुशकी आवश्यकता पड़ी। वैज्ञानिक अन्वेषणोंसे निराश होनेकी आव-श्यकता नहीं है।　—रा० गौ०।

× × ×

विज्ञानमें क्रान्ति

(१) अनेक प्रकार के जल—"विज्ञान" जबसे निकलता है, तबसे लेकर आजतक संसारमें विज्ञान-ने जितनी उन्नति की है उसका वर्णन सुबोध शब्दोंमें होना अत्यन्त कठिन है। परंतु तोभी हमारे पाठकों

को कुछ-न-कुछ उसकी जानकारी होनी चाहिये।

रसायन विज्ञानियोंने तबसे अनेक नये मौलिकों-का पता लगाया है। पर यह उतने महत्त्वकी बात नहीं है जितनी यह कि अब दो तरहके उज्जन मालूम हो चुके हैं। दोनों समस्थानिक हैं। ओषजनके साथ दोनोंके दो-दो परमाणुओंके मिलनेसे जल बनता है। इनका अलग-अलग नामकरण सुभीतेके लिये करना ही पड़ेगा। हम इन्हें प्रथमोज्जन तथा द्वितीयोज्जन कहेंगे। इनको ब्रिकवेड, मरफी और ऊरेने द्रव-उज्जनको जमनेके आसपासके शीतमें राशिभाग स्रवणकी क्रियासे अलगाया। साधारण जलमें दोनों प्रकारके जल पाये जाते हैं। जिस जलमें द्वितीयो-ज्जनोषिद् अधिक होता है उनके क्थनांक और हिमांक ऊँचे होते हैं। उनका विशिष्ट गुरुत्व भी अधिक होता है। जैसे, १·०००१५ विशिष्ट गुरुत्वके जलका क्थनांक १००·०२° श और हिमांक + ०·०५ पाया गया। इस अन्तरसे यह भी स्पष्ट होता है। कि दोनों प्रकारके जल स्रवण वा हिमीकरण दोनों विधियोंसे अलगाये जा सकते हैं। वाशबर्न, लुई और कार्निशने इन्हें इन विधियोंसे सफलतापूर्वक अलगा भी लिया। द्वितीयोज्जनोषिद्को अलगा लेने पर पता लगा कि इस शुद्ध जलका हिमांक ३ या ४° श होगा और क्थनांक १०१-१०२° श होगा। यह भी पता लगा कि इस द्वितीय जलको [हम इसी नाम-से इस समस्थानीय जलका उल्लेख करेंगे] कर्म्म-शील कोयला अधिक सोखता है।

यह अद्भुत बात जान पड़ती है कि जलके भी यौगिक रूपसे एकसे अधिक प्रकार हैं। वेदोंमें सर्वत्र जलके लिये बहुवचनका जो प्रयोग हुआ वह तो अब ठीक प्रमाणित हुआ चाहता है। तीन प्रकार तो यही हुए, प्रथमोज्जोषिद, द्वितीयोज्जोषिद् मिश्रि-तोज्जोषिद।

उज्जनके दो प्रकारके होनेका रहस्य बड़े दूरगामी परिणाम रखता है। उज्जनके यौगिक अनन्त हैं। कर्बन-रसायन तो उज्जनके ही यौगिकोंसे भरा पड़ा है। नोषजनके कुछ थोड़ेसे यौगिकोंको छोड़कर शेष सभी कर्बन यौगिक उज्जनके ही यौगिक हैं, यदि ये यौगिक सवालाख मान लिये जायँ तो तुरन्त ही इनकी संख्या शुद्ध और मिश्रके तीन विभागके कारण पौने चार लाख हो जाती है। फिर अबतक कर्बन रसायनमें इन यौगिकोंके जो गुण वा पहचानके स्थिरांक निश्चित किये हुए हैं उनकी फिरसे जाँच करनी होगी और उन सबमें अन्तर देखनेमें आयेगा। यह खोज रसायन विज्ञानमें क्रान्ति उत्पन्न करने वाली है। अभी इसका आरंभ ही हुआ है। कौन जाने इसी तरह उज्जनके और कितने प्रकार निकल आवें और इसी तरह कर्बनके और नोषजनके परमाणुके जो प्रकार मालूम हैं उनके विधायक सूक्ष्म कणोंमें भी ऐसे ही अन्तरोंके कारण अवकाश-रसायनमें भी बड़ी दूरगामी क्रान्ति संभव है।*

—रा० गौड़

(२) विद्युत् कणोंके अनेक प्रकार—पहले हम इतना ही जानते थे कि कुछ विशेष मौलिकोंके परमाणु खंड-खंड होते रहते हैं। इन्हें हम रश्मि-शक्तिक कहते थे। हम समझते थे कि हम इनका तमाशा भर देख सकते हैं। ये हमारे अधिकारसे बाहर हैं। परन्तु अब हम यह जानते हैं कि सभी मौलिक पदार्थोंसे विद्युत्कण निकलते रहते हैं यद्यपि कुछ का ही हम जान सके हैं (२) किसी वस्तुके अत्यन्त उत्तप्त होनेमें या चुम्बक या प्रकाशकी धारामें वास्तवमें विद्युत्कणोंकी धारा बहती है। ये विद्युत्कण पहले दो ही प्रकार के समझे जाते थे, ऋणाणु और धनाणु, परन्तु अब ऋणाणु, धनाणु, हीनाणु [अर्थात् ऋण और धन नहीं, किन्तु उदासीन] इत्यादि कम-से-कम छः प्रकारके कण मालूम किये गये हैं। इस विषयपर हम पाठकोंकी ज्ञानवृद्धिके लिये एक विस्तृत लेख देंगे। इन कणोंने

* Urey: Chemical Properties of the Hydrogen Isotopes. (The Review of Scientific Instruments, August, 1933.)

हमारे परमाणुवादके ज्ञानके क्षितिजको बहुत बहुत विस्तृत कर दिया है।

—रा० गौ०।

(३) दो और रश्मि शक्तिक मौलिक— रश्मिशक्तिपर खोज होते आज पैंतीस बरस हो गये। अब भी रश्मिशक्तिवाले मौलिक मिलते जा रहे हैं। हालहीमें पता लगा है कि दुर्लभ रजोंमें सामरम नामक मौलिक पदार्थ, जिसकी परमाणु संख्या ६२ है, किरणें निकालता है। यह इतनी कोमल हैं कि १.३ मैक्रन स्फटम् (अल्युमिनियम) उसकी तेजीको आधा कर देता है। जाँचसे पता लगा है कि यह किरणें आलफांश हैं। एक ग्राम सामरमसे एक सेकंडमें ७५ कण निकलते हैं और यदि सामरमके समस्थानीय नहीं हैं, अर्थात् सभी परमाणु एकसे हैं, तो सामरमकी अर्धायु १०२× $१०^{१२}$ साल अर्थात् सवा खरब बरसोंके लगभग होगी। जिस धरतीपर यह चीज पायी जाती है, उसकी आयु फिर कितनी होगी?

बेरीलम दूसरा मूल पदार्थ है जो रश्मि निकलता है और इसकी परमाणु संख्या ४ है और परमाणु भार ९.१ है। पहले समझा जाता था कि जिनके परमाणुभार अधिक हैं वे ही परमाणु टूट-टूटकर हलके हो जाते हैं। परन्तु बेरीलम तो अत्यन्त हलके मौलिकोंमें है। अतः परमाणुकी अस्थिरताका कारण भाराधिक्य नहीं है। इससे भी आलफांशु निकलते हैं, परन्तु एक मैक्रनके स्फट-पटसे तेजका चालीसवाँ अंश ही घटता है। बेरीलमकी अर्धायु एकनील बरसके लगभग अटकल की गयी है।

—रा० गौ०।

(४) परमाणुभार एकसे नहीं हैं— पहले ऐसा समझा जाता था कि एक मूलपदार्थके सभी परमाणु प्रायः एकसे ही होंगे। परन्तु अब यह अनेक मूलपदार्थोंके सम्बन्धमें निश्चित हो गया है कि परमाणु एकसे नहीं हैं। अतः परमाणुभार भिन्न भिन्न परमाणुओंके भिन्न होते हैं। जो परमाणुभार सारणियोंमें दिखाया जाता है, वह अनेक परमाणुओंके मिश्रणसे निकाला हुआ औसत परमाणुभार है! जैसे कर्बनका परमाणुभार जो १२ बताया जाता है वह तो औसत है क्योंकि किसीका वजन ११ है किसीका १३ किसीका १२। ओषजनके परमाणुओंमें भी कई जातिके हैं। किसीका भार १७ है किसीका १८ और किसीका १६ भी हो सकता है यद्यपि औसत परमाणुभार १६ ही है। प्रायः सभी मौलिकोंके परमाणुभारमें ऐसा व्यतिक्रम पाया जाता है।

(५) कस्मिकांशु और धनाणु— विज्ञान जगत्‌में एक तरहकी नयी किरण चमक उठी है। जगत्‌में कोई वस्तु नहीं जिनके आरपार यह न जा सकें। यह कहाँसे आती हैं और कहाँ जाती हैं, कोई नहीं कह सकता। यह किरणें इन चर्मचक्षुओंसे देख नहीं पड़तीं। इनके मार्गमें पड़े हुए यवनोंके संसर्गमें आनेवाले उनके सूक्ष्मपिंडपर जो वाष्प-बिंदु संचित होते हैं वह अदृश्य होते हैं पर इन किरणों के सहारे वह मार्गरूपमें देख पड़ते हैं और यह किरणें चौम्बक क्षेत्रमें वक्र हो जाती हैं। इनका नामकरण अंग्रेजीमें "कोस्मिकरेज़" अर्थात् "सर्गीय किरणें" हुआ है। परन्तु "कहाँसे आती हैं?" इसका पता न होनेसे हम "कस्मिकांशु" कहेंगे जो "कोस्मिक" से रूपमें मिलता जुलता भी है। इन किरणोंकी प्रकृतिके अनुशीलनमें विल्सन-एंडरसनने अनेक परीक्षाएँ की हैं। वह इस निष्कर्षपर पहुँचे हैं कि इन कस्मिकांशुओंके मार्गमें धनाणु, ऋणाणु कण बहुतायतसे प्रकट हो जाते हैं जो उनके मार्गमें बन जाते है। यह धनाणु भारमें ऋणाणुके ही समान हैं और अबतक माने हुए प्रथाणुसे भिन्न हैं। वैज्ञानिकोंका अनुमान है कि कस्मिकांशुओंके आघातसे मौलिक अणुओंके बीजोंका विश्लेषण हो जाता है जिससे ऋणाणु और धनाणु बन जाते हैं।

हीनाणु तड़ित-लेश-हीन होते हैं और उज्जनके अणुभारके प्रायः बराबर होते हैं।

—रा० गौ०

विज्ञान परिषद्‌का वार्षिक अधिवेशन और वार्षिक विवरण

१. अधिवेशन

विज्ञान-परिषद्‌का वार्षिक अधिवेशन बुधवार सौर १३ मार्गशीर्ष सं० १९९०, २९ नवम्बरको ५॥ बजे शामको प्रयाग विश्वविद्यालयके फिजिक्स लेक्चर थियेटरमें हुआ। बनारस हिन्दू विश्वविद्यालयके आचार्य फूलदेवसहाय वर्माजीने "बनावटी रेशम"पर एक रोचक व्याख्यान दिया, जो इसी अंकमें अन्यत्र छपा है। व्याख्यानके समय प्रयाग विश्वविद्यालयके वैसचांसेलर श्रीमान् पं० इकबाल नारायणगुर्टू साहब, बी० ए०, एल-एल० बी०, सभापतिके आसनको सुशोभित कर रहे थे। श्रीमंत्रीजीने निम्नलिखित रिपोर्ट पढ़कर सुनायी।

२. वार्षिक विवरण

श्रीमान् सभापति महोदयकी सेवामें सादर निवेदन।

श्रीमन्, चार पाँच बरसोंसे हम इस वार्षिक अधिवेशनके अवसरपर बराबर कहते चले आये हैं कि यह रिपोर्ट परिषत्‌के कार्य्यकर्त्ताओंका कार्य्य-वृत्तान्त नहीं है बरन् उसके सेवकोंकी कठिनाइयोंकी कहानी है जो आपको आज सुनायी जाती है। वह कठिनाइयाँ दिनदिनों बराबर बढ़ती ही जाती हैं, यहाँतक कि हमारी समझमें यह कठिनाइयाँ अब इतनी बढ़ गयी हैं कि पुराने कर्मचारियोंकी जगह नये कर्मचारी चुने जावें जो नयी रीतियोंसे काम करके परिषद्‌के उद्देश्योंकी पूर्तिमें सफलता प्राप्त करावें तभी परिषत्‌का कल्याण संभव है, नहीं तो यदि ऐसी ही शिथिलता रही तो दो-चार वर्षमें परिषद्‌को बंद ही कर देना पड़ेगा।

आमदनी हरसाल घटती ही जाती है। यह हरसालके हिसाबोंके देखनेसे साफ मालूम हो जावेगा। इसी धनाभावके कारण, पुस्तकोंका छपाना बन्द ही होता चला जाता है और विज्ञानका आकार भी घटा दिया गया है।

पिछले साल पहले महीनेतक तो विज्ञानका सम्पादन डा० सत्यप्रकाशजी करते रहे परन्तु उनको किसी कारण सम्पादन छोड़ना पड़ा। कौंसिलने यही उचित समझा कि सम्पादनका काम श्रीरामदासगौड़के सुपुर्द किया जावे। गौड़जी विज्ञान-परिषद्‌के स्थापित करनेवालोंमेंसे हैं। इसलिए उनके पास समय न होते हुए भी उन्होंने सम्पादनका भार लेना स्वीकार कर लिया और चार पाँच महीनेसे यह काम कर रहे हैं। परिषद् सत्यप्रकाशजीकी बड़ी कृतज्ञ है कि उन्होंने सात वर्षों तक विज्ञानका सम्पादन किया। केवल सम्पादन ही नहीं, किन्तु साधारण रसायन और कार्बनिक रसायन सरीखी पाठ्य-पुस्तकें भी तैयार कर दीं। इन सब कामोंके लिए आपको धन्यवाद देना तो कठिन ही है। वास्तवमें भविष्यमें काम करनेवाले और पढ़नेवाले ही आपको इस महत्वपूर्ण कामके लिए धन्यवाद देंगे जब वे देखेंगे कि आपने उनके लिए कितनी सुविधा कर दी है।

गवर्नमेंटसे हमको ६००)की सहायता बराबर मिलती चली जाती है। इसके विना परिषद्‌का काम चलना असम्भव ही था। परिषद्‌की सदस्य-संख्या और विज्ञानकी ग्राहकसंख्या स्थायी सी है। इस कारण यह सहायता आयका महत्वका अंश है जैसा कि नीचेके हिसाबसे मालूम होगा। इस सहायताके लिए हम गवर्नमेंटको धन्यवाद देते हैं।

आमदनी		खर्च	
सदस्योंका चंदा	९६)	डाक महसूल	७१॥-)
विज्ञानके ग्राहकों का चंदा	१९०।=)	ब्लाक बनवाई	२९।)।
पुस्तकोंकी बिक्री	१८७॥)	क्लर्कका वेतन	७५)
विज्ञापनसे	२१॥)	विज्ञानकी छपाई	६०६।≥)
गवर्नमेंटसे	६००)	कागज	१५१।।।)॥
		रिप्रिंट	२०)
	१०९५।=)	प्रकाश रसायन की छपाई	५७)
पिछले सालकी बचत	३८३॥-)॥।१	फुटकर	१६=)॥
	१४७८।।।≥)॥।१	कुल खर्च	१०२७।≥)।)।१
		इस वर्षकी बचत	४५१॥)॥।२
कुल जमा	१४७९।२	कुल जमा	१४७९।२

निम्नलिखित प्रस्ताव स्वीकृत हुए—

१—मंत्रीजीने जो रिपोट पढ़ी है स्वीकार की जाती है।

२—कौंसिलकी २८ अक्तूबरकी बैठकका पास किया हुआ बजट स्वीकृत हुआ।

३—निम्नलिखित पदाधिकारी और सभासद सन् ३३-३४के लिए नियुक्त हुए—

सभापति—श्रीमान् डाक्टर गणेशप्रसाद साहब एम० ए०,डी०एस-सी०, हार्डिंज गणिताचार्य, कलकत्ता-विश्वविद्यालय।

उपसभापति—(१) डाक्टर नीलरत्न धर,डी. एस-सी. प्रयाग विश्वविद्यालय।

२—रसानाचाय डाक्टर एस०बी०दत्त, डी० एस-सी०, प्रयाग-विश्वविद्यालय।

प्रधान मंत्री—श्रीमान् प्रोफेसर सालिगराम भार्गव, एम० एस-सी, प्रयाग विश्वविद्यालय।

मंत्री—श्रीमान् प्रोफेसर ब्रजराज, एम० ए०, बी० एस-सी०, एल-एल० बी०, कायस्थ पाठशाला कालेज, प्रयाग।

कोशाध्यक्ष—श्रीमान् डाक्टर सत्यप्रकाश, डी० एस-सी, प्रयाग विश्व-विद्यालय।

स्थानीय कौंसिलर—(१) श्रीमान् डाक्टर श्रीरंजन, पी-एच० डी०, प्रयाग विश्व-विद्यालय

(२) पं० कन्हैयालाल भार्गव, रईस, प्रयाग

(३) डाक्टर हरूराम मेहरा, पी-एच० डी०, प्रयाग विश्वविद्यालय।

(४) प्रोफेसर गोपालस्वरूप भार्गव, एम० एस-सी० कायस्थ-पाठशाला-कालेज, प्रयाग।

अन्य स्थानीय कौंसिलर—(१) श्रीमान डाक्टर निहाल करण सेठी, डी० एस सी०, आगरा कालेज आगरा।

(२) पं० महावीरप्रसाद श्रीवास्तव्य, बी० एस-सी०, एल० टी०, विशारद, बलिया।

(३) प्रोफेसर रामदास गौड़, एम० ए०, काशी।

(४) श्रीमान् प्रोफेसर फूलदेवसहाय वर्मा, एम्०एस्-सी०, एफ० सी० एस, काशी हिन्दू-विश्व-विद्यालय।

(५) ,, प्रिंसिपल हीरालाल खन्ना एम० एस-सी०, विश्वम्भरनाथ सनातनधर्म्म कालेज, कानपुर।

४—डाक्टर श्री गोरखप्रसाद, डी० एस-सी०, प्रयाग विश्व-विद्यालय परिषद्के सदस्य चुने गये।

५—यह मीटिंग पंडित वंशलाल पांडेयके प्रति कृतज्ञता प्रकट करती है कि उन्होंने परिषद्के आय-व्ययका हिसाब जाँचा।

इन पाँच प्रस्तावोंकी उपस्थिति और स्वीकृतिके समय डा० एस० बी० दत्त साहबने सभापतिका आसन ग्रहण किया था।

वक्ता एवं सभापतियोंको धन्यवादपूर्वक सभा विसर्जित हुई।

सालिगराम भार्गव,
प्रधान मंत्री।

सहयोगी विज्ञान

इंजिनियर—अकटूबर १९३३ (अंग्रेजी) "बहबंधे और बाँध।" रगड़-विरोधी धातुएँ और यंत्र-शिल्पी।" "वाहन-पद्धतिमें अद्भुत विकास।" (मराठी) आयलएँजिनोंके सुलभ शिक्षण।

रोशनी—नवम्बर, १९३३। (उर्दू)। भौतिक विज्ञान की विजय।" "दूध छुड़ानेके बाद स्वस्थ बच्चोंका आहार।" "एक अद्भुत प्राणी।" "प्रेमसे हिंस्रपशु भी मित्र बन जाते हैं।" "ब्रह्मचर्य्य।" मंडी हैड्रो-इलेक्ट्रिक स्कीम।" "हम क्या खायें।" "पशुओंके सुधार और उन्नतिके उपाय।"

वैद्यकल्पतरु—दिसम्बर, १९३३, (गुजराती।) "कालज्वर।" "आसनोंका रहस्य।" दाँतके बारेमें कई बातें।" "हृदयको दृढ़ करनेके सीधे सादे उपाय।" "रोगीको पानी देना।" "विभूतिके औषध गुण।" "प्रश्नोत्तर" "अनुभवी उपाय।" "सरल वैद्यक।"

भूगोल—नवम्बर, १९३३। "मेरी विदेशयात्रा।" "विशाखपत्तनका नया बन्दरगाह।" "नदीका मुहाना।" "आस्ट्रियाकी कहानी।" "कोयलेका भौगोलिक महत्त्व।" बस्तर-भ्रमण।" "संकलन।" "स्वेडनकी चिट्ठी।" "बिहारकी भौगोलिक कहावतें।" "चीनी भूगोल।"

कल्पवृक्ष—दिसम्बर, १९३३। "मस्तिष्कका महत्व और रक्षा।" "मनुष्यकी असीमशक्ति।" "मृत्युसे बचनेका उपाय।" "पवित्र अक्षर ॐ की उपासना।" "मनोबल बढ़ानेके उपाय।" "योगके विचित्र प्रयोग" मनुष्यकी श्रेष्ठता किसमें है?" "आत्म-चिन्तन या एकांतवास।" "प्राकृतिक चिकित्सा।" "आध्यात्मिक उपदेश।" "आत्मविश्वास।"

साधारण सामयिक साहित्यमें वैज्ञानिक लेख

विश्वमित्रके नवम्बरके अंकमें "संसारके अत्यन्त मूल्यवान रजकण" तथा "विज्ञान चमत्कार" **चाँदके** नवम्बरके नववर्षांकमें "भारतीय परलोकवाद" तथा "रामराज्यकी आधुनिक कल्पना" **गंगाके** नवम्बरके अंकमें "आनुवंशिक स्थिति और अपराध", "सेलिंग एजेंसी," **सुधाके** १६ नवम्बर और १ दिसम्बरके अंकोंमें "बीसवीं शताब्दीकी वैज्ञानिक उन्नतिपर एक दृष्टि", "विद्यार्थियोंके स्वास्थ्यकी दशा" और "स्वरवाणी और उसका सौंदर्य्य," दिसम्बरकी **वीणामें** "स्वप्नोंका रहस्य" "भारतीय संगीतकला", २६ नवम्बरके **प्रतापमें** "मक्खियाँ और उनसे बचनेके उपाय", ५ दिसम्बरके **स्वराज्यमें** "टमाटरकी खेती", १२ दिसम्बरके **प्रभातमें** "वायुयान", और ९ दिसम्बरके **विकासमें** "युवकोंकी तिजारत" और "भारतीय बीमा कम्पनियोंपर एक दृष्टि", यह एकके सिवा सभी वैज्ञानिक लेख हैं और सभी पठनीय हैं। "युवकोंकी तिजारत" शुद्ध सामाजिक लेख है, परन्तु ऐसा सुन्दर सम्पादकीय है कि हम हर युवकको उसे पढ़नेकी बड़ी मजबूत सिफारिश करते हैं और इस विज्ञान-चयनिकामें उसको रखनेका लोभ संवरण नहीं कर सकते।

—रा० गौ०।

विज्ञानंब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते,
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० । ३।५ ॥

भाग ३८ } प्रयाग, मकर, संवत् १९९० । जनवरी १९३४ { संख्या ४

मंगलाचरण

स्व० पं० श्रीधर पाठक

जग-मंगल-मग-अनुचिन्तनकारी नर जय जय
मग-कंटक-घन-अघ-कृन्तनकारी नर जय जय
हरि-सेवन-सत-जीवन—व्रतधारी नर जय जय
जग-श्री-मय-जगती-त्रय-मनहारी नर जय जय
जय सुभ-गति, जय सुभग मति, सतत सुकृत सन्मान जय
जय अवितथ अभिरुचि, विसद सुखद ज्ञान विज्ञान जय

विविध तिथियों और तारीखोंका सम्बन्ध

(गतांक से आगे)

विक्रमीय तिथि और ईस्वी तारीख

[ले० श्री पं० महावीरप्रसाद श्रीवास्तव्य, बी० एस-सी०, एल टी०, विशारद, हेडमास्टर, गवर्नमेंट हाई स्कूल बलिया ।]

६—ईस्वी वर्ष—ऊपर बतलाया गया है कि सौर वर्ष ३६५·२५८७६ दिनका होता है। यह वह समय है जिसमें सूर्य्यकी एक परिक्रमा नक्षत्रों या तारोंके बीच पूरी होती हुई देख पड़ती है। जिस क्षण सूर्य्य किसी तारेके पास दीख पड़े उस क्षणसे यदि समयकी गणना आरंभ की जाय और जब एक वर्षके बाद फिर उसी तारेके पास दीख पड़े तब गणना पूरी की जाय तो यह अवधि ३६५-·२५८७६ दिनकी होती है। इस वर्षको इसीलिये नाक्षत्रिक वर्ष कहते हैं। परन्तु ऋतुओंका चक्र इससे कुछ कम समयमें पूरा होता है। सूर्य्य जिस क्षण विषुवद् वृत्तपर आता है उस क्षणसे लेकर एक वर्षके उपरान्त जब वह फिर उसी वृत्तपर आता है उस क्षणतक केवल ३६५·२४२२१६ दिन होते हैं। इसलिये ऋतुओंका क्रम इसी अवधिके बाद बदला करता है। इसलिये इस वर्षको सायन वर्ष कहते हैं।

७—संवत् १४ विक्रमीय अथवा ४४ वर्ष ईसा-पूर्व ज्यूलियस सीजर राजाके समयमें यह निश्चय किया गया कि साधारण वर्ष ३६५ दिनका और चौथा वर्ष ३६६ दिनका माना जाय। इस गणनासे प्रति चार वर्षमें ३६५ × ३ + ३६६ = १४६१ दिन होते हैं। इसलिये एक वर्षका मान ३६५·२५ दिनका पड़ा जो सायन वर्षसे ·००७७८४ दिन बड़ा हो जाता है। यह अन्तर १२८ वर्षमें १ दिन और १२८० वर्षमें १० दिनके बराबर हो जाता है। इस अन्तरके कारण ईस्टरका त्यौहार ग्रीष्म-ऋतुमें खसकने लगा जब कि नियम यह था कि यह त्यौहार जहाँतक हो सके वसन्त-विषुव अर्थात् सायन मेष संक्रान्तिके पश्चात् ही मनाया जाय। इसलिये संवत् १६३९ अथवा सन् १५८२ ईस्वीमें पोप ग्रेगरी १३वेंने इसका संशोधन फिर किया। ग्रेगरीका नियम रूस और यूनानको छोड़कर सभी ईसाई देशोंमें अब प्रचलित है जो यह है—

३६५ दिनके ३ साधारण वर्षोंके बाद ३६६ दिनका एक अधिवर्ष (लीप ईयर) होता है जैसा

मधुप्रमेहीके लिये अनुभूत नुसखे

मधुप्रमेहीको पकी हुई जामुनका रस पाँच पाँच तोला दिनमें तीन बार पिलानेसे लाभ होता है। जामुनका पत्ता दो तोला और २१ दाना काली मिर्च दोनोंको पीस छानकर पीनेसे भी लाभ होता है। जामुनके छिलके तथा गुठलीको सुखाकर बारीक पीस लें और फिर कपड़छान करके पाँच पाँच माशेकी पुड़िया बनालें। सुबह शाम दूने शहदके साथ इस्तेमाल करनेसे लाभ होता है। इस चूर्णको मट्ठे के साथ भी सेवन कर सकते हैं।

जामुनकी गुठली बारीक पिसी हुई पाँच माशा और गुड़मार बूटी आधी रत्ती सुबहके समय पानीके साथ रोगीको पिलानेसे भी लाभ होते देखा गया है।

[ब्र० ब्रि० गौ०]

कि ज्यूलिअसका नियम था और यह अधिवर्ष भी वही सन् होते हैं जिनकी संख्या ४से पूरी विभाजित हो जाती है। शताब्दीके केवल वह सन् अधिवर्ष नहीं माने जाते जिनकी संख्या ४००से पूरी नहीं कटती।

८—इस प्रकार ४०० वर्षोंमें ग्रेगरीके नियमानुसार १०० अधिवर्ष न होकर ९७ अधिवर्ष होते हैं। इस प्रकार ऐसे सन्का मध्यम मान ३६५$\frac{९७}{४००}$ दिन अथवा ३६५·२४२५ दिनका हुआ जो यथार्थ सायन वर्षसे ·०००२८४ दिन बड़ा होता है। परंतु इस अन्तरसे ४००० वर्षोंमें १ दिनका अन्तर पड़ता है, जो इस समय नगण्य समझा जा सकता है।

९—ईस्टरके त्यौहारकी तिथि निश्चय करनेके लिये ३८२ विक्रमीय अथवा ३२५ ईसवीमें नाइससंघने नियम बनाया था और उस वर्ष वसन्त विषुव संक्रान्ति २१ मार्चको हुई थी। तबसे १५८२ ईस्वी तक १२५७ वर्ष बीत चुके थे जिस अवधिमें जूलियसकी गणनानुसार वसन्त-विषुवत-काल २१ मार्चसे १० दिन पहिले ही हो जाता था। इसलिये ग्रेगरीने संशोधनके साथ यह भी नियम बना दिया कि उस वर्षके अक्टूबर मासके १० दिन लुप्त कर दिये जायँ और चौथी अक्टूबरके बादवाले दिनकी तारीख १५ वीं मानी जाय। ऐसा करनेसे वसन्त विषुव संक्रान्ति २१ मार्चको फिर पड़ने लगी।

१०—परन्तु इंगलैण्डमें यह संशोधन १७५२ ईस्वीतक नहीं माना गया। इसलिये पार्लियामेण्टके आदेशानुसार जब यह संशोधन इस वर्ष यहाँ माना जाने लगा, उस वर्ष सितम्बरका महीना १९ दिनका किया गया और दूसरी सितम्बरके बाद १४वीं सितम्बरकी गणना की गयी। इस पद्धतिको नयी पद्धति कहते हैं। रूसमें अबतक वही पुरानी पद्धति चली आ रही है। इसलिये वहाँकी तारीखें इस समयकी प्रचलित तारीखोंसे १३ दिन पीछे हो गयी हैं।

११—**गत और वर्तमान संवत्**—हमारे यहाँ शास्त्रीय पद्धति 'गत' संवत् लिखनेकी है। इस वर्ष १९९० विक्रमीय अथवा १८५५ शालिवाहन शकाब्द लिखा जाता है। इसका अर्थ यह है कि इस वर्षके आरंभमें जो चैत्र शुक्ल १ या मेषकी संक्रान्तिसे हुआ है, विक्रमके १९९० वर्ष बीत गये और १९९१वाँ लगा। इसलिये यदि इस संवत्को हम १९९० लिखें तो गत-संवत्का प्रयोग होगा और यदि १९९१ लिखें तो वर्त्तमान संवत्का प्रयोग होगा। परन्तु हमारे यहाँ गत संवत् लिखनेकी प्रणाली पहिले थी और अब भी है। इसीलिये संवतोंके साथ 'अतीत', 'गताब्द', 'बीते', या 'गते' शब्द लिखे जाते हैं। ईस्वी सन् वर्त्तमान होता है। इस समय १९३३ वाँ सन् चल रहा है अर्थात् वर्षके आरंभमें १९३२ वर्ष बीत गये और १९३३वेंका आरम्भ हुआ

१२—विक्रमीय संवत्का आरम्भ भारतवर्षके अधिकांश भागोंमें चैत्र शुक्ल प्रतिपदासे होता है परन्तु गुजरातमें कार्त्तिक शुक्ल १से होता है। इसलिये गुजरातके संवत् हमारे यहाँके संवत्से ६ मास कम होते हैं। गुजरातमें १९९० विक्रमीका प्रारम्भ कार्त्तिक शुक्ल प्रतिपदासे हुआ है जब कि हमारे यहाँ इस संवत्के ६ मास बीत चुके थे। इस बातको ध्यानमें रक्खे बिना कभी-कभी धोखा हो जाता है।

१३—किसी प्राचीन संवत्की तिथिको ईस्वी तारीखमें बदलनेके लिये किसी तिथिको आधार तिथि मानना चाहिये। सुभीतेके लिये हम ५७ विक्रमीयकी मेष संक्रान्ति तथा चैत्र शुक्ल १को

आधार तिथि मानते हैं। इसी संवत्के जनवरी माससे ईस्वी सन्का आरम्भ हुआ जो सन् १ कहलाता है। इसलिये मेष संक्रान्ति कालमें शून्य सन् वर्त्तमान था जिसको लोग ईसा-पूर्व (बी० सी०) कहते हैं। हम इसीको सुभीतेके लिये शून्य कहेंगे। इस वर्ष मेष संक्रान्ति १३ मार्चको सूर्योदयसे ·९८३१ दिन उपरान्त हुई थी। इसलिये संक्रान्ति कालको १३·९८३१ मार्च लिखनेमें सुभीता होगा। इस समयतक चैत्र शुक्ल १के आरम्भसे १९·५३२४९ दिन बीत गये थे और शनिवारकी रात थी।

१४—वारोंकी क्रम संख्या भी समझ लेनेकी आवश्यकता है। सप्ताहका आरम्भ रविवारसे माना जाता है। इसलिए रविवार सप्ताहका पहिला बार है जिसके लिए १ लिखा जाता है। इसी तरह सोमवारके लिये २, मंगलवारके लिए ३, बुधवारके लिये ४, बृहस्पतिवारके लिये ५, शुक्रवारके लिये ६, शनिवारके लिए ७ वा ० (शून्य)। ५७ विक्रमीयकी मेष-संक्रान्ति शनिवारके सूर्य्योदयसे ·९८३१४ दिन बीते हुई थी। इसलिये मेष संक्रांति वार ७·९८३१४ या ०·९८३१४ लिखा गया है। इस आधार तिथिकी सब बातें कोष्ठक १के शीर्षपर लिखी गयी हैं।

कोष्ठकोंकी व्याख्या

१५—कोष्ठक १का चौथा स्तम्भ—ऊपर बताया गया है कि सौर वर्ष ३६५·२५८७६ दिनका होता है। जो ५२ सप्ताहसे १·२५८७६ दिन अधिक है। इसलिये यह प्रकट है कि यदि किसी संवत्की मेष संक्रान्ति रविवारको सूर्य्योदयके समय लगे तो १ वर्ष बीतनेपर वह सोमवारको ·२५८७६ दिनपर और दो वर्ष बाद मंगलवारको सूर्योदय से ·५१७५२ दिनपर लगेगी। इस प्रकार १·२५८७६ दिन आगे बढ़ते बढ़ते ६ वर्षके उपरान्त संक्रान्ति फिर रविवारको सूर्य्योदयसे ·५५२५४ दिनपर लगेगी। इसी नियमके अनुसार कोष्ठक १ के चौथे स्तम्भकी संख्यायें लिखी गयी हैं।

१६—कोष्ठक १का तीसरा स्तम्भ—इसमें सूर्य्य सिद्धान्तके सौर वर्ष और ईस्वी वर्षका अन्तर दिखलाया गया है। ऊपर बतलाया गया है कि सौर वर्ष ३६५·२५८७६ दिनका होता है और ईस्वी वर्ष साधारणतया ३६५ दिनका और चौथे वर्ष ३६६ दिनका होता है। इसलिये ईस्वी वर्षका मध्यममान ३६५·२५ समझ लेना चाहिये। इसलिये इन दोनों प्रकारके वर्षोंका अन्तर प्रतिवर्ष ·००८७६ दिनके हिसाबसे बढ़ता जाता है। यही बात तीसरे स्तम्भमें दिखायी गयी है। यथार्थमें यह बात उसी वर्ष ठीक होती है जिस वर्ष लीप इयर होता है। लीप इयरके बाद पहिले वर्षमें ·२५, दूसरे वर्षमें ·५, और तीसरे वर्षमें ·७५ दिन और जोड़ना पड़ता है तब ठीक तारीख मालूम होती है। इस प्रकार १७५२ ईस्वीतक यही गणना चलती रही। इस सन्के सितम्बरकी २री तारीखके बाद ११ दिन जोड़नेसे ठीक तारीख मालूम होगी। यह विशेषता १८००को फरवरी मासतक रहती है। इसके बाद १२ दिन जोड़ना पड़ता है और १९००की फरवरीके बाद १३ दिन जोड़ना पड़ता है। २००० ईस्वीमें लीपइयर होगा इसलिये इसकी फरवरीके बाद भी १३ ही दिन जोड़ना पड़ेगा। हाँ, २१०० ईस्वीकी फरवरीके बाद १४ दिन, २२००की फरवरीके बाद १५ दिन और २३०० की फरवरीके बाद १६ दिन जोड़ने पड़ेंगे।

१७—कोष्ठक १का पाँचवाँ स्तम्भ—एक चान्द्र वर्ष ३५४·३६७०६ दिन का होता है। इसलिये यदि किसी संवत्में चैत्र शुक्ल १का आरम्भ और मेष

संक्रान्ति एक ही समय हों तो दूसरे वर्ष चैत्र शुक्ल १का आरम्भ १०.८९१७० दिन पहले ही हो जायगा क्योंकि चान्द्र वर्ष सौर वर्षसे इतना छोटा है। अर्थात् दूसरे वर्षकी मेष संक्रान्ति चैत्र शुक्ल प्रतिपदासे इतने दिन पीछे लगेगी। तीसरे वर्ष मेष संक्रान्ति चैत्र शुक्ल १ से १०.८९१७० × २ = २१.७८३४० दिन पीछे पड़ेगी और चौथे वर्ष १०.८९१७० × ३ = ३२.६७५१० दिन पीछे पड़ेगी। परन्तु चान्द्र मास २९.५३०५९ दिनका होता है इसलिये मेष संक्रान्तिके पहले एक अमावस और पड़ जायगी, बीचमें कोई मास अधिमास हो जायगा और चैत्र शुक्ल १का प्रारंभ ३२.६७५१०–२९.५३०५९ = ३.१४४५१ दिन पहले माना जायगा। इसी प्रकार प्रतिवर्ष अन्तर पड़ता जाता है और जब यह अन्तर १ माससे अधिकका हो जाता है तब पूरे चान्द्र मासके दिन निकाल दिये जाते हैं। चौथे स्तम्भकी संख्यायें इसी रीतिसे जानी गयी हैं।

१८—कोष्ठक २के दूसरे स्तम्भमें यह दिखलाया गया है कि १से १३ चान्द्र मासोंमें कितने दिन होते हैं। इसके तीसरे स्तम्भमें यह दिखलाया गया है कि चान्द्र मासका आरम्भ किस वारको होता है। दूसरे स्तम्भके दिनोंकी संख्याको ७से भाग देनेपर जो शेष रहता है वही तीसरे स्तम्भमें दिया गया है। चौथे स्तम्भमें उन मासोंके नाम दिये गये हैं जिनके शुक्ल पक्षकी प्रतिपदाके आरम्भ तक उतने दिन बीतते हैं जो दूसरे स्तम्भमें दिये हुए हैं। यदि कोई मास मलमास हो जाय तो उसके शुद्ध मास तथा आगे आनेवाले मासोंके लिये दिनोंकी वह संख्या ली जायगी जो एक खाना पश्चात् दी गयी है। मान लो कि भाद्रपद मास मलमास हो जाता है तो शुद्ध भाद्रपदकी शुद्ध प्रतिपदाका आरम्भ १७७.१८३५३ दिनपर और आश्विन शुक्ल १का आरम्भ २०६.७१४११ दिनपर होगा। इसी तरह कार्त्तिक, मार्गशीर्ष आदिके लिये भी एक-एक मास आगेका लेना चाहिये।

१९—कोष्ठक ३के दूसरे स्तम्भमें जो संख्या दी हुई है वह बतलाती है कि किस तिथिको कितने दिन बीतते हैं और तीसरे स्तम्भमें यह बतलाया गया है कि कौन तिथि किस वारको बदलती है।

२०—अब उदाहरण देकर यह समझाया जायगा कि विक्रमीय तिथिसे ईस्वी तारीख और ईस्वी तारीखसे विक्रमीय तिथि कैसे जानी जाती है।

उदाहरण १—राम-चरित-मानसका आरम्भ किस तारीखको हुआ?

राम-चरित-मानसकी विक्रमीय तिथि इस चौपाईसे प्रकट होती है—

संवत् सोरह स इकतीसा।
करउँ कथा हरि पद धरि सीसा॥
नौमी भौमवार मधुमासा।
अवधपुरी यह चरित प्रकासा॥
जेहि दिन राम जनम स्रुति गावहिं।
तीरथ सकल तहाँ चलि आवहिं॥

साधारणतया संवत्‌की संख्यासे ५७ घटानेसे ईस्वी सन् निकल आता है परन्तु जनवरीसे चैत्रशुक्ल १ या मेषकी संक्रान्तितककी तारीखोंका सन् ५६ घटानेसे आता है क्योंकि ईस्वी सन् पहली जनवरीसे और विक्रमीय संवत् चैत्रशुक्ल १से बदलता है। दिये हुए उदाहरणमें चैत्रशुक्ल १के बादकी तिथि दी हुई है इसलिए ५७ घटानेसे सन् निकलेगा।

१६३१–५७ = १५७४ = १००० + ५०० + ७० + ४

विक्रमीय संवत्	ईस्वी सन्	मेषसंक्रान्तिकी तारीख	मेषसंक्रातिका वार	चैत्रशुक्ल १से मेषसंक्रान्ति-तकके दिन
५७	०	१३.९८३१४ मार्च	०.९८३१४	१९.५३२४९
१०००	१०००	८.७५६४८	५.७५६४८	२४.४४४७६
५००	५००	४.३७८२४	६.३७८२४	१२.२२२३८
७०	७०	.६१२९५	४.११२९५	२४.१५४३८
४	४	.०३५०३	५.०३५०३	१४.०३६२२
१६३१	१५७४	२७.७६५८४ मार्च	२२.२६५८४	९४.३९०२३
		+.५ दिन	−२१.०००००	−८८.५९१७६
मेषसंक्रान्तिकाल		२८.२६५८४ माच	१.२६५८४	५.७९८४७
		−५.७९८४७	−५.७९८४७	
चैत्रशुक्ल १का आरंभ		२२.४६७३७ मार्च	२.४६७३७ वार	
८ तिथि		७.८७४८२ दिन	.८७४८२	
चैत्रशुक्ल ९का आरंभ		३०.३४२१९ माच	३.३४२१९ वार	

२१—पहले कोष्ठककी सहायतासे यह आया कि १६३१ वि०की मेष संक्रान्ति १५७४ ईस्वीके २७ मार्चको सूर्योदयसे ·७६५८४ दिनपर हुई। यह शुद्ध नहीं है क्योंकि १५७४ ईस्वी साधारण वर्ष है और इससे २ वर्ष पहिले लीप वर्ष हुआ था इसलिये इसमें ·५ दिन जोड़नेसे शुद्ध संक्रान्ति काल आवेगा। इसलिये मेष संक्रान्ति २८ मार्चको सूर्य्योदयसे ·२६५८४ दिनचढ़े हुई। पहिले कोष्ठककी सहायतासे वारोंका योग २२ पूर्णांक आता है जो तीन सप्ताहसे अधिक है। इसलिये ३ सप्ताहके २१ दिन घटानेपर वार आया १·२६५८४ अर्थात् मेषसंक्रान्ति सप्ताहके १ले दिन रविवारको सूर्य्योदयसे ·२६५८४ दिन उपरांत हुई। चैत्र शुक्ल १से मेष संक्रान्तिके समयतकके दिनोंका योग ९४के ऊपर आता है जो ३ चान्द्रमाससे अधिक है। इसलिये इसमेंसे ३ चान्द्रमासके दिन दूसरे कोष्ठककी सहायतासे मालूम करके घटाये तो शेष होता है ५·७९८४७ दिन। इसलिये प्रकट है कि उस वर्ष चैत्र शुक्ल १से ५·७९८४७ दिन बीतनेपर मेष-संक्रान्ति हुई। इस संख्याको मेष संक्रान्तिकी तारीख २८·२६५८४से घटाया तो आया २२·४६७३७ मार्च। इसलिये चैत्र शुक्ल १का आरंभ २२ मार्चको सूर्य्योदयसे ·४६७३७ दिनपर हुआ। इसका वार जाननेके लिये संक्रान्ति कालके वारसे ५·७९८४७ दिन घटाना चाहिये। परन्तु संक्रान्ति कालका वार १·२६५८४ है जिससे ५.७९८४७ नहीं घट सकता। ऐसी दशामें १ सप्ताहके दिन उसमें और जोड़ दिये तो आया ८.२६५८४। इसमें ५·७९८४७ घटाया तो आया २.४६७३७ वार। इसलिये चैत्र शुक्ल १का आरंभ २२ मार्चको सप्ताह-के दूसरे वार सोमवारको सूर्योदयसे ·४६७३७ दिन-पर हुआ।

२२—चैत्र शुक्ल १से चैत्र शुक्ल ९तक ८ तिथियाँ होती हैं जो कोष्ठक ३के अनुसार ७·८७४८२ दिनके बराबर हैं। इसलिये इसको तारीख और वार-की संख्याओंमें जोड़नेसे ९मी तिथिकी तारीख और वार मालूम हो गये। वार जाननेके लिये पूरे सप्ताहके दिन छोड़ दिये गये। इस प्रकार चैत्र शुक्ल ९मीका प्रारम्भ सप्ताहके तीसरे वार मंगलवारको सूर्य्योदयसे ·३४२१९ दिनपर हुआ। तारीख ३० मार्च थी। यह मध्यम गणनाके अनुसार है। स्पष्ट गणनासे तिथिका आरम्भ कुछ घण्टे आगे पीछे हो सकता है। परन्तु यहाँ तिथि और वार दोनों मिल गये, इसलिये अधिक झंझट की आवश्यकता नहीं।

उदाहरण २—

'संवत् रस ग्रह अंग शशि बीते अंक प्रमान।
भादों शुक्ल गनेश तिथि बुद्धवार शुभ खान॥'

इस दोहेसे प्रकट होता है कि १८९६ विक्रमीय भादों शुक्ल ४को बुधवार था। अंग्रेजी तारीख क्या है ?

१८९६—५७ = १८३९ = १००० + ८०० + ३० + ९

संवत्	सन्	मेषसंक्रान्तिकी तारीख	मेषसंक्रान्तिका वार	चैत्रशुक्ल १से मेषसंक्रान्तिके दिन
५७	०	१३.९८३१४ मार्च	०.९८३१४	१९.५३२४९
१०००	१०००	८.७५६४८	५.७५६४८	२४.४४४७६
८००	८००	७.००५१९	६.००५१९	१.८३७४६
३०	३०	.२६२६९	२.७६२६९	१.९१४५७
९	९	.०७८८१	४.३२८८१	९.४३३५५
१८९६	१८३९	३०.०८६३१	१९.८३६३१	५७·१६२८३
		+१२.७५	−१४.०००००	−२९·५३०५९
		४२.८३६३१ मार्च	५.८३६३१	२७.६३२२४
		−३१		
मेष संक्रान्तिकाल		११.८३६३१ अप्रैल	५.८३६३१ वार	
		−२७.६३२२४	−२७.६३२२४	
चैत्रशुक्ल १ का आरंभ		१५.२०४०७ मार्च	६.२०४०७ वार	
६ चांद्रमास		१७७.१८३५३	२.१८३५३	
४ तिथियाँ		३.९३७४१	३.९३७४१	
		१९६.३२५०१ मार्च	१२.३२५०१	
मार्चके आरंभसे अगस्तके			−७.०००००	
			५.३२५०१	
अंततक		१८४.००००० दिन		
शेष		१२.३२५०१ सितम्बर		

अर्थात् भाद्र शुक्ल ४की मध्यम तिथिका अन्त १२ सितम्बर गुरुवारको सूर्य्योदयसे '३२५०३ दिन चढ़े हुआ। दोहेके वारसे एक दिनका अन्तर पड़ता है क्योंकि स्पष्ट तिथि '६ दिन आगे पीछे हो सकती है इसलिये दोहेके अनुसार भाद्रपद शुक्ल ४, बुधवारको थी जब कि ११ सितम्बर था।

२३—इस उदाहरणमें कोष्ठक १के अनुसार जो योगफल मेषसंक्रान्तिकी तारीखके नीचे आया उसमें १२'७५ और जोड़ा गया। क्योंकि पहिले बताया गया है कि १७५२ ई०के सितम्बर २के पश्चात्की तारीखके लिये ११ दिन जोड़ना चाहिये और १८०० ईस्वीके मार्चसे १९०० ईस्वीकी फरवरीतक १२ दिन तथा १९०० ईस्वीके मार्चसे २१०० ईस्वीकी फरवरीतक १३ दिन। इसलिये १२'७५ दिनका पूर्णांक तो इसके कारण जोड़ा गया और '७५ दिन इसलिये जोड़ा गया कि १८३९ ईस्वी लीप ईयरके बादका तीसरा वर्ष है। ऐसा करनेसे ४२'८३६३१ मार्च आया। परन्तु मार्च ३१ दिनका होता है इसलिये ३१ घटानेसे जो शेष ११'८३६३१ दिन आया वह अप्रैल मासका है। इसलिये १८३९ ईस्वीकी मेष संक्रांति ११ अप्रैलको सूर्य्योदयसे '८३६३१ दिन चढ़े हुई। चैत्रशुक्ल १की तारीख जाननेके लिये इसमेंसे २७'६३२२४ दिन घटाना चाहिये क्योंकि चैत्रशुक्ल १ का आरम्भ मेष-संक्रान्तिसे इतने दिन पहिले हुआ। पर यह संख्या ११'८३६३१से कम है इसलिये इसमें मार्चका ३१ दिन जोड़कर योगफलमेंसे २७'६३२२४ दिन घटाया गया। इस प्रकार चैत्रशुक्ल १का आरम्भ १५'२०४०७ मार्चको हुआ। वारोंकी गणना पहिले उदाहरणकी तरह की गयी है।

२४—इस वर्ष चैत्रशुक्ल १से २७'६३२२४ दिन उपरान्त मेष संक्रान्ति हुई इसलिये कोष्ठक ५के अनुसार ज्येष्ठके महीने दो होंगे और चैत्र शुक्लके आरम्भसे भाद्रपद शुक्ल १तक ५ चन्द्रमासकी जगह ६ चन्द्रमास लेने होंगे जो कोष्ठक २के अनुसार १७७'१८३५३ दिनके होते हैं। वार जाननेके लिये इसको ७से भाग देने पर जो बचता है उसे अर्थात् २'१८३५३ दिन लेना चाहिये। चतुर्थीका अन्त जाननेके लिये ४ तिथियोंके दिन और वार जोड़े गये तो यह ज्ञात हुआ कि भाद्रपद शुक्ल ४ का अन्त मार्चके आरम्भसे १९६'३२५०१ दिन उपरान्त ५'३२५०१ वारको हुआ। यह जाननेके लिए कि यह ईस्वी सन्का कौन सा मास और तारीख है कोष्ठक ४को देखा तो मालूम हुआ कि मार्चके आरम्भसे अगस्तके अन्ततक १८४ दिन होते हैं। इसको १९६'३२५०१ दिनसे घटाया तो १२'३२५०१ आया जो सितम्बरके आरम्भसे चतुर्थीके अन्ततकके दिनोंकी संख्या है। इसलिये भाद्रपद शुक्ल ४ का अन्त १२ सितम्बरको सूर्य्योदयसे '३२५०१ दिन उपरान्त सप्ताहके ५वें वार बृहस्पतिको हुआ। परन्तु भाद्रपद शुक्ल ४ बुधवारको लिखा हुआ है इसलिये यह ठीक है क्योंकि स्पष्ट गणनासे चौथका अन्त बुधवारको भी हो सकता है। यह न भूलना चाहिये कि मध्यम गणनासे जो तिथि आती है वह स्पष्ट गणना से '६ दिन आगे पीछे हो सकती है क्योंकि इस उदाहरणमें तिथि और वार दोनों मिल जाते हैं या केवल १ दिनका अन्तर पड़ता है। इसलिये इसे ठीक समझ लेना चाहिये।

२५—यह उदाहरण १९वीं शताब्दीका है इसलिये इसके लिये एक छोटी रीति भी काममें लायी जा सकती है। कोष्ठक १में ऊपर दिया हुआ है कि सन् १८०० ईस्वी या १८५७ वि०की मेष-संक्रान्ति १०'७४४८ अप्रैलको हुई और यह चैत्र शुक्ल १से १६'२८४२ दिन उपरान्त थी। इसलिये इन अंकोंकेद्वारा हम संक्षेपमें ही तारीख जान

सकते हैं। इसी उदाहरणमें १८९६से १८५७ घटाया तो बचा ३९ जो ३० + ९ के बराबर है।

संवत्	सन्	मेष-संक्रान्तिकी तारीख	मेष सं०का वार	चैत्र शुक्ल १से मेष सं०का दिन
१८५७	१८००	१०.७४४८१ अप्रैल	५.७४४८१	१६.२८४२
३०	३०	.२६२६९	२.७६२६९	१.९१४५७
९	९	.०७८८१	४.३२८८१	९.४३३५५
१८९६	१८३९	११.०८६३१	१२.८३६३१	२७.६३२३२

यहाँ तारीखमें केवल .७५ दिन जोड़ना होगा क्योंकि लीप ईयर १८३६ ईस्वीमें था। और १८३९ ई० ३ वर्ष पीछे है।

उदाहरण ३—मेरा जन्म १९४४ विक्रमीयकी कार्तिक शुक्ला २ भौमवारको हुआ था। इस दिन कौन ईस्वी तारीख थी?

१९४४–१८५७ = ८७ = ८० + ७

संवत्	सन्	मेष संक्रान्तिकी तारीख	मेष सं०का वार	चैत्रशुक्ल १से मेष सं०का दिन
१८५७	१८००	१०.७४४८१ अप्रैल	५.७४४८१	१६.२८४२०
८०	८०	.७००५२	२.७००५२	१४.९४९०४
७	७	.०६१३०	१.८११३०	१७.१८०७३
१९४४	१८८७	११.५०६६३	१०.२५६६३	४८.४१३९७
		+ .७५	–७	–२९.५३०५९
मेष संक्रान्तिका आरंभ		१२·२५६६३ अप्रैल	३·२५६६३	१८.८८३३८
		–१८·८८३३८	–१८·८८३३८	
चैत्रशुक्ल १का आरंभ		२४·३७३२५ मार्च	५·३७३२५	
चैत्रशुक्ल १से कार्तिक शुक्ल १ तक ७ चान्द्रमास		२०६·७१४११ दिन	३·७१४१	
दूइज तक २ तिथियाँ		१·९६८७१ ,,	१·९६८७	
योग		२३३·०५६०५ मार्च	११·०५६०५	
मार्चसे सितम्बरके अन्ततक		–२१४ दिन	–७	

∴ कार्तिक शुक्ल २का अन्त १९·०५६०५ अक्तूबर ४·०५६०५ वारको हुआ।

अर्थात् १९ अक्तूबरको बुधवार था परन्तु मेरा जन्म भौमवारको हुआ इसलिये कार्तिक शुक्ल २ को १८ अक्टूबर भौमवार था।

यहाँ चैत्र शुक्ल १ से कार्तिक शुक्ल १ तक ७ ही चान्द्रमास होते हैं क्योंकि चैत्रशुक्ल १ से मेष-संक्रान्ति १८·८८३३८ दिन पीछे हुई, इसलिये वर्षके अन्तमें जो चैत्र आवेगा वह मलमास होगा (देखो कोष्ठक ५)।

२६—अब दो उदाहरण ऐसे लिये जायँगे जिनमें ईस्वी तारीखसे विक्रमीय तिथि जाननेकी रीति हो।

उदाहरण ४—राजा लक्ष्मणसिंहका जन्म ९ अक्टूबर सन् १८२६ ईस्वीको हुआ था। कौन तिथि थी ?

यह १९ वीं शताब्दीकी घटना है इसलिये सरल रीति काममें लायी जायगी।

१८२६–१८०० = २६ = २० + ६

संवत्	सन्	मेष सं०की तारीख	मेष सं० वार	चैत्र शुक्ल १ से मेष सं०तक दिन
१८५७	१८००	१०.७४४८ अप्रैल	५.७४४८	१६.२८४२०
२०	२०	.१७५१३	४.१७५१३	११.११९९१
६	६	.०५२५४	.५५२५४	६.२८९०३
१८८३	१८२६	१०·९७२४७ अप्रैल	१०·४७२४७ वार	३३·६९३१४
		+ ·५	–७	–२९·५३०५९
मेष-संक्रान्ति-काल		११·४७२४७ अप्रैल	३·४७२४७ वार	४·१६२५५ दिन
		–४·१६२५५	–४·१६२५५	
चैत्रशुक्ल १का आरंभकाल		७·३०९९२ अप्रैल	६·३०९९२ वार	

कोष्ठक ४से प्रकट है कि अप्रैलके आरम्भसे सितम्बरके अन्ततक १८३ दिन होते हैं इसलिये अप्रैलके आरम्भसे ९ अक्टूबरतक १९२ दिन हुए। परन्तु चैत्र शुक्ल १का आरम्भ ७·३०९९३ अप्रैलको है। इसलिये इस तारीखसे ९ अक्टूबर तक १९२–७·३०९९३ अथवा १८४·६९००७ दिन हुए जो कोष्ठक २के अनुसार ६ चान्द्रमाससे १८४ ·६९०१७–०७७·१८३५३ = ७·५०६५४ दिन अधिक हैं। कोष्ठक ३से शुक्ल पक्षकी सप्तमीका अन्त ६·८९०४७ दिनपर होता है इसलिये ९ अक्टूबरको अष्टमी तिथि थी। कोष्ठक २से सिद्ध है कि ६ चान्द्रमास आश्विन शुक्ल १के आरम्भकालमें पूर्ण होते हैं इसलिये राजा साहबका जन्म १८८३ विक्रमीयकी आश्विन शुक्ल ८को हुआ। वारका ज्ञान करनेके लिये १८४·६९००७ को ७ से भाग दिया तो बचा २·६९००७। इसे ६·३०९९३ वारमें जोड़ा तो हुआ ९·००००० या सोमवार।

उदाहरण ५—१० जनवरी सन् १६ · १६ बुधवारको कौन तिथि थी ?

यह तारीख १६१६की मेष संक्रान्तिके पहिले और १६१५ की मेषसंक्रातिके बाद है। इसलिये सुविधाके लिये १६१५ लेना चाहिये।

१६१५ = १००० + ६०० + १० + ५

विक्रमीय	ईस्वी	मेष सं०की तारीख	मेष सं० वार	चैत्र शुक्ल १से मेष सं० कालके दिन
५७	०	१३·९८३१४ मार्च	·९८३१४	१९·५३२४९
१०००	१०००	८·७५६४८ ,,	५·७५६४८	२४·४४४७६
६००	६००	५·२५३८९ ,,	६·२५३८९	८·७६०७४
१०	१०	·०८७५६ ,,	५·५८७५६	२०·३२५२५
५	५	·०४३७८ ,,	६·२९३७८	२४·९२७९२
१६७२	१६१५	२८·१२४८५ ,,	२४·८७४८५ वार	९७·९१११६
		+ ·७५	−२१	−८८·५९१७६
मेष संक्रान्ति काल		२८·८७४८५ ,,	३·८७४८५ वार	९·३१९४०
		−९·३१९४०	−९·३१९४०	
चैत्र शुक्ल १ का आरंभकाल		१९·४७५४५ मार्च	१·४७५४५ वार	

इस प्रकार प्रकट है कि १६७२ विक्रमीय या १६१५ ईस्वीकी चैत्रशुक्ल प्रतिपदाका आरम्भ १९·४७५ मार्चको हुआ। अब यह देखना है कि इस समयसे १६१६ की १० जनवरीतक कितने दिन होते हैं।

कोष्ठक ४के अनुसार १ ली मार्चसे ३१ दिसम्बरतक ३०६ दिन

१० जनवरी १० दिन

अतः १ ली मार्चसे १० जनवरी तक ३१६ ,,

१ ली मार्चसे चैत्रशुक्ल १ तकके दिनको घटाया— १९·४७५४५

चैत्रशुक्ल १ से १० जनवरी तकके दिन हुए २९६·५२४५५

कोष्ठक २ से १० चान्द्रमासके दिन हुए = २९५·३०५८८

∴ माघशुक्ल १ के आरम्भसे दिनोंकी संख्या = १·२१८६७

और तिथि = १·९८४३५

∴ माघ शुक्ल २ को १० जनवरी थी + ०·२३४३२

यह मध्यम गणनासे हुआ। स्पष्ट तिथि संभव है सूर्योदय कालमें न रही हो। और इस दिन प्रतिपदा ही हो।

ईस्वी या विक्रमीय तिथिसे हिजरी तिथि जानने या हिजरी तिथिसे ईस्वी और विक्रमीय तिथि जाननेकी रीति आगे बतलायी जायगी।

कोष्ठक नं० १

संवत् विक्रमीय	सन् ईस्वी	मेष-संक्रान्ति-कालमें ईस्वी तारीख	मेष संक्रान्तिका वार	चैत शुक्ल १ के आरंभसे मेष संक्रान्ति-कालका समय	हिजरी सन् जाननेके लिए सौर वर्षोंमें चान्द्रवर्ष, मास और दिनोंकी संख्या		
५७	०	१३ · ९८३१४ मार्च	० · ९८३१४	१९ · ५३२४९ दिन			
१८५७	१८००	१० · ७४४८ अप्रैल	५ · ७४४८	१६ · २८४२ दिन			
६८१	६२४	२४ जूनको			हिजरी ३का आरंभ		
सौर वर्ष	ईस्वी वर्ष	सौर और ईस्वी वर्षोंका अंतर	दिन		वर्ष	मास	दिन
१	१	·००८७६	१ · २५८७६	१० · ८९१७०	१	०	१० · ८९
२	२	·०१७५१	२ · ५१७५१	२१ · ७८३४०	२	०	२१ · ७८
३	३	·०२६२७	३ · ७७६२७	३ · १४४५२	३	१	३ · १४
४	४	·०३५०३	५ · ०३५०३	१४ · ०३६२२	४	१	१४ · ०४
५	५	·०४३७८	६ · २९३७८	२४ · ९२७१२	५	१	२४ · ९३
६	६	·०५२५४	० · ५५२५४	६ · २८९०३	६	२	६ · २९
७	७	·०६१३०	१ · ८११३०	१७ · १८०७३	७	२	१७ · १८
८	८	·०७००५	३ · ०७००५	२८ · ०७२४३	८	२	२८ · ०७
९	९	·०७८८१	४ · ३२८८१	९ · ४३३५५	९	३	९ · ४३
१०	१०	·०८७५६	५ · ५८७५६	२० · ३२५२५	१०	३	२० · ३३
२०	२०	·१७५१३	४ · १७५१३	११ · ११९९१	२०	७	११ · १२
३०	३०	·२६२६९	२ · ७६२६९	१ · ९१४५७	३०	११	१ · ९१
४०	४०	·३५०२६	१ · ३५०२६	२२ · २३९८१	४१	२	२२ · २४
५०	५०	·४३७८२	६ · ९३७८२	१३ · ०३४४७	५१	६	१३ · ०३
६०	६०	·५२५३९	५ · ५२५३९	३ · ८२९१३	६१	१०	३ · ८३
७०	७०	·६१२९५	४ · ११२९५	२४ · १५४३८	७२	१	२४ · १५
८०	८०	·७००५२	२ · ७००५२	१४ · ९४९०४	८२	५	१४ · ९५
९०	९०	·७८८०८	१ · २८८०८	५ · ७४३७०	९२	९	५ · ७४
१००	१००	·८७५६५	६ · ८७५६५	२६ · ०६८९५	१०३	०	२६ · ०७
२००	२००	१ · ७५१३०	६ · ७५१३०	२२ · ६०७३१	२०६	१	२२ · ६१
३००	३००	२ · ६२६९५	६ · ६२६९५	१९ · १४५६६	३०९	२	१९ · १५
४००	४००	३ · ५०२५९	६ · ५०२५९	१५ · ६८४०२	४१२	३	१५ · ६८
५००	५००	४ · ३७८२४	६ · ३७८२४	१२ · २२२३८	५१५	४	१२ · २२
६००	६००	५ · २५३८९	६ · २५३८९	८ · ७६०७४	६१८	५	८ · ७६
७००	७००	६ · १२९५४	६ · १२९५४	५ · २९९१०	७२१	६	५ · ३०
८००	८००	७ · ००५१९	६ · ००५१९	१ · ८३७४६	८२४	७	१ · ८४
९००	९००	७ · ८८०८३	५ · ८८०८३	२७ · ९०६४१	९२७	७	· ९१
१०००	१०००	८ · ७५६४८	५ · ७५६४८	२४ · ४४४७६	१०३०	८	२७ · ४४
२०००	२०००	१७ · ५१२९६	४ · ५१२९६	१९ · ३५८९४	२०६१	५	२४ · ३६
३०००	३०००	२६ · २६९४४	३ · २६९४४	१४ · २७३११	३०९२	२	१९ · २७
							१४

कोष्ठक २

चैत्र शुक्ल १ के आरंभसे	चान्द्र मास	दिनोंकी संख्या	सप्ताहके किस दिन वार बदलता है
वैशाख शुक्ल १के आरंभतक	१	२९ · ५३०६	१ · ५३०६
ज्येष्ठ ,, ,,	२	५९ · ०६१२	३ · ०६१२
आषाढ़ ,, ,,	३	८८ · ५९१८	४ · ५९१८
श्रावण ,, ,,	४	११८ · १२२४	६ · १२२४
भाद्र ,, ,,	५	१४७ · ६५२९	० · ६५२९
आश्विन ,, ,,	६	१७७ · १८३५	२ · १८३५
कार्तिक ,, ,,	७	२०६ · ७१४१	३ · ७१४१
मार्गशीर्ष ,, ,,	८	२३६ · २४४७	५ · २४४७
पौष ,, ,,	९	२६५ · ७७५३	६ · ७७५३
माघ ,, ,,	१०	२९५ · ३०५९	१ · ३०५९
फागुन ,, ,,	११	३२४ · ८३६५	२ · ८३६५
चैत्र ,, ,,	१२	३५४ · ३६७१	४ · ३६७१
	१३	३८३ · ८९७६	५ · ८९७६

कोष्ठक ३

शुक्लपक्षके आरंभसे तिथि	दिनोंकी संख्या	सप्ताहके किस दिन तिथि बदलती है
शुक्ल १	· ९८४४	· ९८४४
,, २	१ · ९६८७	१ · ९६८७
,, ३	२ · ९५३१	२ · ९५३१
,, ४	३ · ९३७४	३ · ९३७४
,, ५	४ · ९२१८	४ · ९२१८
,, ६	५ · ९०६१	५ · ९०६१
,, ७	६ · ८९०५	६ · ८९०५
,, ८	७ · ८७४८	० · ८७४८
,, ९	८ · ८५९२	१ · ८५९२
,, १०	९ · ८४३५	२ · ८४३५
,, ११	१० · ८२७९	३ · ८२७९
,, १२	११ · ८१२२	४ · ८१२२
,, १३	१२ · ७९६६	५ · ७९६६
,, १४	१३ · ७८०९	६ · ७८०९
,, १५	१४ · ७६५३	० · ७६५३
कृष्ण १=१६	१५ · ७४९७	१ · ७४९७
,, २=१७	१६ · ७३४०	२ · ७३४०
,, ३=१८	१७ · ७१८४	३ · ७१८४
,, ४=१९	१८ · ७०२७	४ · ७०२७
,, ५=२०	१९ · ६८७१	५ · ६८७१
,, ६=२१	२० · ६७१४	६ · ६७१४
,, ७=२२	२१ · ६५५८	० · ६५५८
,, ८=२३	२२ · ६४०१	१ · ६४०१
,, ९=२४	२३ · ६२४५	२ · ६२४५
,, १०=२५	२४ · ६०८८	३ · ६०८८
,, ११=२६	२५ · ५९३२	४ · ५९३२
,, १२=२७	२६ · ५७७५	५ · ५७७५
,, १३=२८	२७ · ५६१९	६ · ५६१९
,, १४=२९	२८ · ५४६२	० · ५४६२
,, ३०=३०	२९ · ५३०६	१ · ५३०६
अमावस्या		

कोष्ठक ४

मार्चके आरंभसे	दिनोंकी संख्या	अप्रैलके आरंभसे	दिनोंकी संख्या
मार्चके अंततक	३१	अप्रैलके अंततक	३०
अप्रैलके ,,	६१	मईके ,,	६१
मईके ,,	९२	जूनके ,,	९१
जूनके ,,	१२२	जुलाईके ,,	१२२
जुलाईके ,,	१५३	अगस्तके ,,	१५३
अगस्तके ,,	१८४	सितम्बरके ,,	१८३
सितम्बरके ,,	२१४	अक्टूबरके ,,	२१४
अक्टूबरके ,,	२४५	नवम्बरके ,,	२४४
नवम्बरके ,,	२७५	दिसम्बरके ,,	२७५
दिसम्बरके ,,	३०६	जनवरीके ,,	३०६
जनवरीके ,,	३३७	फरवरीके ,,	३३४ या ३३५†
फरवरीके ,,	३६५	मार्चके ,,	३६५ या ३६६†
लीपवर्षमें	३६६	लीपवर्षमें	

† लीप वर्षमें।

कोष्ठक ५

किस संवत्में कौन मास मलमास होगा ?

यदि चैत्रशुक्ल प्रतिपदाके आरंभसे	२८·१२५९	दिन	पीछे	मेष सं०	हो तो	वैशाख	दो	होंगे
”	२६·२३६२	”	”	”	”	ज्येष्ठ	”	”
”	२४·१२२१	”	”	”	”	आषाढ़	”	”
”	२२·१७७४	”	”	”	”	श्रावण	”	”
”	२०·६८९४	”	”	”	”	भाद्रपद	”	”
”	१९·७७८६	”	”	”	”	आश्विन	”	”
”	१८·६३८९	”	”	”	”	वर्षके अंतमें चैत्रमास मलमास होगा		
”	१८·६३८९	दिनके भीतर मेष-संक्रान्ति लगे तो उस वर्ष मलमास न लगेगा।						

फाल्गुन और कार्तिक बहुत कम मलमास होते हैं। कार्त्तिक और मार्गशीर्षके महीने क्षय होते हैं। ऐसे वर्ष दो मलमास पड़ते हैं, इसलिये हिसाबमें कोई विशेषता नहीं होती। मलमासकी गणना मध्यममानसे की गयी है। स्पष्ट गणनासे मलमास एकाध मास आगे पीछे पड़ सकता है। परन्तु वारोंका मिलान करनेसे निश्चय किया जा सकता है कि कौन महीना मलमास है। (क्रमशः)

कोढ़ीकी सेवासे मत डरो

कोढ़ छुआछूतका रोग नहीं है

फ्रांसकी सरकारने मोशिये जे० एम० लीमी नामक एक डाक्टरको कोढ़का अध्ययन करनेके लिये नियुक्त किया। फ्रान्समें ताहिती नामक एक उपनिवेश है जहाँ कोढ़के रोगी रक्खे जाते हैं। डाक्टर लीमीने दो सहायकोंके साथ ताहितीमें इस रोगका अध्ययन करना आरम्भ किया। वे नाकके रोगोंके विशेषज्ञ हैं, काफी दिनोंतक कोढ़का अध्ययन करनेके बाद डाक्टर लीमी इस परिणामपर पहुँचे हैं कि यह संक्रामक (छुआछूतका) रोग नहीं है। उनकी रायमें किसीभी व्यक्तिकी छींककी हवाका किसी दूसरे व्यक्तिकी सांसमें मिल जाना अधिक भयंकर है। आपका यहभी कहना है कि क्षयरोग और कोढ़के कीड़े एकही होते हैं। क्षयरोगके कीड़े एक व्यक्तिके शरीरसे दूसरेके शरीरमें हवासे पहुँचते हैं और कोढ़के कीड़े जमीनसे उनके शरीरमें फैलते हैं। डाक्टर लीमीने अपने उपरोक्त निश्चयपर पहुँचनेके लिये कई ऐसे उदाहरणोंका अध्ययन किया है जिनमें कोढ़के मरीजोंके साथ बीसों वर्षोंतक रहनेपर भी उनकी परिचर्या करनेवालोंको यह रोग नहीं हुआ। डाक्टर लीमीने यह बतलाया है कि कोढ़ियोंको सर्वसाधारणसे दूर रखनेकी कोई आवश्यकता नहीं है। ताहितीमें तो अब उनसे कामभी लिया जाता है जिससे वे अपने रोगको भूले रहते हैं। अमेरिकामें इसके विपरीत बात है। डाक्टर साहबका कहना है कि कोढ़के रोगियोंको काम करने देना चाहिए और उसी हालतमें उनकी दवा करनी चाहिये। ऐसा करनेसे उनका रोग शीघ्र दूर हो सकता है।—(प्रतापसे)

वैज्ञानिक विचारोंमें क्रान्ति
ऐन्स्टैनका सापेक्षवाद

[ले० प्रो० दत्तात्रेय गोपाल मटंगे, एम्० एस्-सी० (प्रयाग), एफ्० पी० एस्० (लंडन), भौतिकाचार्य्य, राबर्टसन कालिज, जबलपुर। अनुवादक, श्री भगवानदास दुबे, विशारद।]

(गतांक से आगे)

६—गणितकी रीति बदल गयी
पुरानी रीतिसे सापेक्षवेगको नापना

ऐन्स्टैनका क्या मत है और उसमें नयी बात क्या है, इसको समझनेवाले अनुमानोंका यहाँ थोड़ा वर्णन दिया जाता है। ऐन्स्टैनने अपने सिद्धान्तोंके लिए जिन कल्पनाओंको आधार माना है, उनके कारण गणित ही बदल गया है। इसके पहले गतिशास्त्र सम्बन्धी सभी गणित न्यूटन और गेलीलियोके स्थापित नियमोंके अनुसार किया जाता था, इसलिए सुभीतेके लिए इन दो प्रकारकी पद्धतियोंके नाम **'नया गणित'** और **'पुराना गणित'** रख लिये गये हैं।

सापेक्ष वेगके सम्बन्धका जो गणित इस अध्यायमें दिया जाता है, वह पुरानी पद्धतिके अनुसार है।
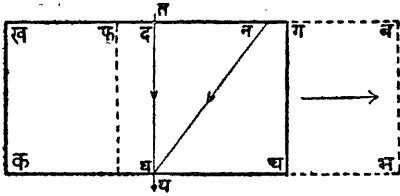
चित्र ४

आमने सामनेका वेग—चित्र ४में क ख ग घ एक रेलका डब्बा है। उसमेंसे बेंचें हटा दी गयी हैं और केवल फर्श ही है। द और ध स्थानोंपर बैठकर समरेखीय वेगसे दो बच्चे एक दूसरेकी तरफ गेंद फेंक रहे हैं। यदि १ गेंदका वेग फर्शके ऊपर ४ फु।से हो और डब्बेका वेग बाणकी दिशामें ३फु। से हो तो धरतीकी अपेक्षा उस गेंदका वेग इस प्रकार होगा—

क—>ध ४ + ३ = ७फु।से

ध—>क ४ - ३ = १फु।से

यही हिसाब बीज गणितका उपयोग करते हुए इस प्रकार किया जा सकता है।

गेंदका फर्शपर वेग = य

डब्बेका जमीनपर वेग = व

∴ गेंदका जमीनपर सापेक्ष वेग

क—>ध = य + व—(१)

ध—>क = य - व—(२)

अर्थात् यदि एक ही सरल रेखामें दो वेग हों तो उनका सापेक्ष वेग योग अथवा अन्तर लेकर निकालते हैं।

समकोणीय वेग—अब हम ऐसा मान लेते हैं कि डब्बा स्थिर है। एक लम्बी रस्सी त थ बाहर खड़े हुए दो मनुष्य पकड़े हुए हैं। उस रस्सीमें चूनेसे भीगा हुआ पोतना बँधा है। वह रस्सी त—>थ दिशामें ४ फु।से वेगसे खींची गयी है जिससे फर्शपर द ध रेखा खिंच गयी है।

अब डब्बा ३ फु। से वेगसे बाणकी दिशामें चल रहा है जिस दिशामें हमने त—>थ की ओर रस्सी खींची। जब पोतना डब्बेमें प्रविष्ट हुआ, उस समय उसकी स्थिति क ख ग घ थी, जब वह निकल गया तब डब्बा प फ ब भ स्थितिमें सरक गया। इसलिए उतनी देरमें प्रवेश स्थान द से न तक आया और उसी समयमें डब्बेमें बैठा मनुष्य द ध रास्तेसे न जाकर

नध रास्तेसे गया, अर्थात् चूनेकी रेखा नध दिशामें खींची जावेगी। जमीनपर खड़े हुए मनुष्योंके मतसे उस पोतनेका वेग ४ फु। से और दिशा त थ ही है परन्तु डब्बेमें बैठे मनुष्यको दृष्टिमें पोतनेकी दशा नध हो गयी और यदि,

दध = ४ फुट

और दन = ३ फुट

$$\frac{\text{डब्बेका वेग}}{\text{पोतनेका वेग}} = \frac{\text{दन}}{\text{दध}} = \frac{3}{4}$$

और $\text{नध}^2 = \text{दन}^2 + \text{दध}^2$

$$= 3^2 + 4^2 = 9 + 16 = 25$$

$\therefore$ नध = ५ फुट,

अर्थात् पोतनेका वेग ४ फु। से और डब्बेका वेग ३ फु। से होनेपर पोतनेका फर्शपर वेग ५ फु। से होगा।

इसीको हम बीजगणितकी पद्धतिसे इस प्रकार लिखेंगे।

पोतनेका वेग=य

डब्बेका वेग=व

$\therefore$ पोतनेका फर्शपर वेग $= \sqrt{\text{य}^2 + \text{व}^2}$

और नध रेखाके झुकावका नाप

$$\frac{\text{डब्बेका वेग}}{\text{पोतनेका वग}} = \frac{\text{द न}}{\text{द ध}} = \frac{\text{व}}{\text{य}}$$

अर्थात् यदि वेग समकोणीय हों तो सापेक्ष वेग $\sqrt{\text{य}^2 + \text{व}^2}$ होगा और समकोणपर न होते हुए कुछ झुका हुआ होगा।

ऊपर जो विधि बतलायी गयी है उसका उपयोग ब्रेडलने प्रकाशका वेग निकालनेमें किया।

चित्र ५ में 'स' सूर्यके चारों ओर प फ ब भ पृथ्वी की कक्षा है। सूर्य पृथ्वीका सबसे निकट तारा है। प्रकाशको वहाँ से यहाँ तक आने में ८ मिनिट लगते हैं। जो इसके बादका पासका तारा है वह इतनो दूर है कि वहाँसे प्रकाशको आनेमें ४॥ साल लग जाते हैं। प्रकाशको यहाँतक आनेमें जिन तारोंसे सैकड़ों साल लगेंगे ऐसी दूरीपर अनेक तारे हैं, अर्थात् इतनी दूरीसे आनेवाली किरणें पृथ्वीकी कक्षाके किसी भी भागपर समानान्तर समझी जा सकती हैं।

चित्र ५

पृथ्वी अपनी कक्षापर घूमती है। जब वह प और ब स्थानोंपर आवेगी तब उन स्थानोंपर दूरबीन लगाकर किसी दूरस्थ तारेको उसकी अक्षपर लावेंगे। इसके बाद जब पृथ्वी फ और भ स्थानोंपर आवेगी तब दूरबीन तारेका प्रतिबिम्ब पहिलेकी स्थितिसे कुछ झुका दीखेगा। उसको फिर अक्षपर लाने के लिए दूरबीन २०.४७ से० से झुकाना पड़ती है। चित्र ५में द फ न को २०.४७ से० के प्रमाणका बनाकर दन और दफका अनुपात १०,००० निकलेगा [चित्रमें यह कोण बड़ा दिखलाया गया है। चित्र ५ अनुपातके अनुसार नहीं बना है।]
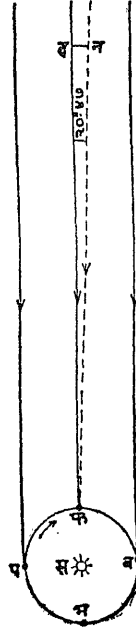
$$\frac{\text{द फ}}{\text{द न}} = \frac{\text{प्रकाशका वेग}}{\text{पृथ्वीका वेग}} = 10,000$$

$\therefore$ प्रकाशका वेग = पृथ्वीका वेग × १०,०००

= १८.५ × १०,०००

= १,८५,००० मील प्रति सेकंड

इस रीतिमें यह मानकर गणित किया गया है कि प्रकाशकी किरणें जिस बिन्दुपर पृथ्वीकी कक्षाको लम्बरूप पार करती हैं उस बिन्दुपर किंचित झुकी हुई दीखती हैं, जिसका कारण प्रकाशका वेग है। पृथ्वी यदि स्थिर होती तो किरणोंमें झुकाव होना सम्भव नहीं था, इसलिए फ और ब पर प्रकाशकी किरणें जिस दिशामें जाती हैं, पृथ्वी उसके समकोण दिशामें जाती है, ऐसा मानना अपरिहार्य है।

(क्रमशः)

रुईसे अधिक बिनौलेका उपयोग

कूड़ेसे सम्पत्ति कैसे पैदा होती है

[ले० बाबू श्यामनारायण कपूर, बी. एस्-सी.]

१—बिनौलेकी बेकदरी

इस बातको बहुत कम लोग जानते हैं कि रुई पैदा करनेके अलावा बिनौला किसी और काममें भी लाया जा सकता है। कुछ लोग इसे जानवरोंको खिलाने या खादके काममें लाये जानेकी बातभी बतलायेंगे। परन्तु पाश्चात्य वैज्ञानिकोंने बिनौलेको और भी अधिक उपयोगी सिद्ध कर दिखाया है।

लगभग ५० वर्ष पूर्व अमेरिकामें भी भारतकी ही तरह बिनौले जानवरोंको खिलाने और खाद वग़ैरहके काममें लाये जाते थे। बहुत थोड़े किसान ऐसे थे जो बिनौलेको जानवरोंको खिलाते थे। क्योंकि साबित बिनौला लाभकी जगह नुकसान ज्यादा करता था। इन कामोंमें जो बिनौला खर्च होता था वह उसकी उत्पत्तिके मुक़ाबिले बहुत कम था। कपास ओटनेवाली मिलोंके लिये कपाससे निकले हुए बिनौलेको ठिकानेसे लगाना एक गहन समस्या थी। बाहर मैदानमें ढेर लगा देनेपर सड़ाइंध पैदा हो जाती और बदबूके कारण रास्ता चलना बंद होजाता। इसलिये सरकारकी ओरसे बिनौलोंको मैदानमें डालनेकी मनाही थी। इस आज्ञाका उल्लंघन करनेवालोंको दण्ड दिया जाता था। उन्हें नदी और तालाबमें भी न फेंका जा सकता था। पानी गंदा हो जाता, जानवरोंतकके लायक़ न रह जाता।

२—बिनौलेसे करोड़ों रुपयेका रोजगार

आवश्यकता आविष्कारकी जननी है। आवश्यकता पड़नेपर वैज्ञानिकोंका ध्यान बिनौलेकी ओर आकर्षित हुआ। लगातार प्रयोग करते रहनेके बाद उन्होंने बिनौलेके जो उपयोग ढूँढ़ निकाले हैं और जो उपयोगी चीजें तैयार करनेकी विधियाँ ज्ञात कीं उनमें आज अमेरिकामें करोड़ों रुपये लगे हुए हैं। गत महायुद्धके अवसरपर तो बिनौलेके व्यवसायको और भी अधिक प्रोत्साहन मिला।

साधारणतया बिनौला तीन हिस्सोंमें बाँटा जा सकता है। ऊपर लगे हुए रुईके रेशे, रेशेके नीचेका छिलका, भीतरका गूदा। गूदा स्वयं दो भागोंमें बट सकता है। खली और तेल। दो भाग खली और एक भाग तेल। अनुवीक्षणयंत्रसे गूदेकी जाँच करनेपर इसमें अत्यन्त सूक्ष्म भूरे भूरे धब्बेसे दिखाई देते हैं। तेल इन्हीं धब्बोंमें रहता है।

शुरू शुरूमें बिनौला स्वाभाविक दशामेंही पेर लिया जाता था परन्तु जैसे जैसे अनुभव बढ़ता गया। तेल निकालनेके लिये अच्छे अच्छे और और उन्नत तरीके व्यवहारमें लाये जाने लगे। आजकल साधारणतया तेल निकालनेसे पहले उसके ऊपर लगे हुए रुईके रेशे और छिलका अलग कर दिया जाता है। रुई और छिलका दोनोंका ही काममें आ जाते हैं। भीतरके गूदेमेंसे तेल निकाला जाता है। खली और छिलका साधारणतया जानवरोंको खिलाये जाते हैं। तेल खानेके काममें आता है।

३—बिनौलेका भारी परिवार

अमेरिकामें इन चीज़ोंको जितनी तरहसे और जिन जिन कामोंमें इस्तेमाल किया जाता है उनकी सूची बड़ी है। किसी समय निकम्मे समझे जानेवाले बिनौलेका देखते ही देखते बहुत बड़ा परिवार हो गया है।

पहले तो बिनौलेसे तीन चीज़ें मिलती हैं, (१) रुईके बारीक और छोटे रेशे, (२) छिलका, और (३) गूदा। अब इन तीनोंमेंसे हर एकका इस्तेमाल अलग अलग देखिये।

बिनौलेके भिन्न भिन्न प्रयोग सब मिलाकर बहुत हो जाते हैं। स्पष्ट है कि बिनौलेसे कुल मिलाकर लगभग पचास विभिन्न चीजें तैयार की जा रही हैं।

महायुद्धके अवसरपर ब्रिटिश सेनायें जो चर्बी (lard) इस्तेमाल करती थीं वह अधिकतर बिनौलेके तेलकी ही बनी होती थी। मक्खन जो उन्हें खानेको दिया जाता था वह ओलियो-मारगेरिन (oleomargarine) होता था, जो अधिकतर बिनौलेके तेलहीसे बनाया जाता है।

बिनौलेके ऊपर लगी हुई रूईसे बनी हुई फेल्ट हैटोंमें भरी जाती थी और फेल्टके बटन वगैरह भी बनाये जाते थे। सैनिकोंके व्यवहारमें आनेवाला नक़ली चमड़ा भी इन्हीं (linters) रेशोंका बना होता था।

इतना ही नहीं, गोली, बारूद और अन्य विस्फोटक पदार्थ बनानेके लिये जो सेल्यूलोज और ग्लिसरीन आदि काममें लायी जाती थी उसका उद्गम स्थान भी यही बिनौले थे। बिनौलेका इतना ज़बरदस्त उपयोग देखकर ब्रिटिश और अमेरिकन सरकारोंने बिनौलेका तेल तैयार करनेवाली समस्त मिलोंको लैसंस प्राप्त करना अनिवार्य कर दिया था।

४—बिनौलेमें कौन पदार्थ कितना है?

युद्धके बादसे तो इस व्यवसायमें और भी

अधिक उन्नति हुई है। शुरू-शुरूमें बिनौलेकी खलीको जानवरोंको खिलाने या न खिलानेके बारेमें बड़ी चखचख मची थी। परन्तु वैज्ञानिक विश्लेषण-द्वारा यह सिद्ध हुआ कि खली बिनौलेके मुक़ाबिले अधिक पौष्टिक है। साधारणतया बिनौलेकी खलीका विश्लेषण करनेपर निम्नलिखित चीजें मिलती हैं—

पानी—	१०
प्रत्यामिन (प्रोटीन)—	४२·३७
तेल (फैट)—	७·५६
कर्बोदेत (कार्बोहाइड्रेट)—	२५·८०
छिद्रोज (फाइबर, रेशे)—	७·१०
राख—	७·१०

योग ९९·९३=१०० लगभग

छिलका और तेल आदिके निकल जानेकी वजहसे गूदेके पौष्टिक गुण बढ़ जाते हैं। तेलसे जानवरोंको तनिकभी लाभ नहीं पहुँचता। दूध देनेवाले पशुओंके लिये बिनौलेकी खली खास तौरपर गुणकारी होती है। पाश्चात्य देशोंमें दुग्धशालाओंमें खास तौरपर बिनौले की ही खली खिलायी जाती है।

५—पशुओंको बिनौलेकी खली खिलाओ बिनौला खिलानेसे हानि

अपने यहाँ ग्रामीण लोगोंका विचार है कि जानवरोंके लिये खलीके मुक़ाबिले बिनौला अधिक पौष्टिक है। वे इस बात पर विश्वासही नहीं करते कि खली अधिक गुणकारी है। अगर किसी तरह मान भी गये तो झट कह उठते हैं कि आखिर खली निकलती तो बिनौलेसे ही है। इसलिये अगर बिनौला ही खिलाया जाय तो खलीसे ज्यादा फायदा करेगा। परन्तु यह बात बिलकुल ही ग़लत है।

वास्तवमें बिनौला खुद खलीसे कम पौष्टिक ही नहीं वरन् बहुधा हानिकारक भी हो जाता है। बिनौलेके ऊपर जो रुईके रेशे चिपके रहते हैं वे जानवरोंकी अंतड़ियोंमें चिपक जाते हैं और अनेक प्रकारके रोगोंके कारण बनते हैं। इसके अलावा वैज्ञानिक जाँचसे मालूम हुआ है कि बिनौलेमें जो तेल होता है उसे जानवर जरा भी हज़म नहीं कर पाते। अतएव फायदा पहुँचानेके बजाय वह नुक़सानका कारण बन जाता है। खलीमें तेलका अंश होता जरूर है परन्तु वह बहुत कम नुक़सान नहीं पहुँचा सकता।

इस तरहसे बिनौलेको खिलानेसे जानवरोंको नुक़सान पहुँचनेके साथ ही साथ, बिनौलेमें जो तेल का अंश होता है वह बिलकुल बेकार जाता है। विदेशोंमें बिनौलेके तेलसे बहुत सी उपयोगी चीजें तैयार की जाती हैं। आगे चलकर इनका हाल भी बतलाया जायगा।

६—बिनौलेकी दौलत भारतसे बाहर चली जाती है

मोटे हिसाबसे बिनौलेमें आधा भाग छिलका और रुईके रेशोंका होता है और आधेमें तेल और खली। हम पहिले ही कह आये हैं कि गूदेमें केवल एक हिस्सा तेल निकलता है। बहुत अच्छी किस्मके बिनौलेके गूदेमें ४० प्रतिशततक तेल निकलता है। भूसी अर्थात् छिलका भी पशुओंके खिलानेके काममें लाया जाता है। पहिले इंजनको चलानेके लिये भूसी जलायी जाया करती थी। पर अब उसे खाद और जानवरोंको खिलानेके काममें ले आते हैं। इस हिसाबसे देखा जाता है कि साबित बिनौलेमें केवल एक तिहाई भाग पौष्टिक खलीका मिलता है। परन्तु खली खिलानेपर यही भाग तिगुना ज़रूर हो जाता है। यह बात ऊपर दी हुई तालिकासे बिलकुल स्पष्ट है।

विलायतवाले अपनी होशियारीका पूरा फायदा उठाते हैं। 'आमके आम और गुठलियोंके दाम' वसूल

करते हैं। बिनौलेकी खली खादके काममें भी लायी जाती थी, जानवरोंको खिलायी जानेसे खादके लिये बहुत कम बच पाती थी, अस्तु वे लोग प्रयोग करके इस निष्कर्षपर पहुँचे कि जिन जानवरोंको बिनौलेकी खली खिलायी जाती है उनका गोबर अच्छी खादका काम देता है। आजकल वहाँ ज्यादातर ऐसा ही किया जाता है। खलीके पौष्टिक गुणोंको देखकर कुछ लोग इसे मनुष्योंको खिलानेके पक्षमें भी हो गये हैं। खलीके आटेको गेहूँके आटेमें मिलानेकी कोशिश की जा रही है। कुछ लोगोंका विश्वास है कि बिनौलेकी खलीके आटेके मिलनेपर गेहूँका आटा हलका हो जायगा और उसके पौष्टिक गुण बढ़ जायँगे। अमेरिकामें तो इससे एक तरहका आटा तैयार भी किया जाने लगा है।

बिनौलेका तेल खानेके काममें लाया जाता है। खानेसे पहिले तेल अच्छी तरह साफ किया जाता, उसकी गंध आदि बिलकुल दूर कर दी जाती है। साफ किया हुआ तेल कई नामोंसे बिकता है। विलायतवाले इसे (Table oil) टेबिल आयलके नामसे पुकारते हैं और खूब शौक़से खाते हैं। खानेमें यह तेल स्वादिष्ट भी होता है। साफ किये हुए बिनौलेके तेल और घीमें पकी हुई ताज़ी चीज़ोंको मुश्किलसे पहचाना जा सकता है। भारतमें भी बिनौलेका तेल गुजरातमें खूब खाया जाता है।

खानेके अलावा तेल अब नक़ली मक्खन मारगेरीन (margarine) आदि बनाने तथा साबुन और पेन्ट और वार्निश वगैरहके उद्योग धन्धोंमें व्यवहार किया जाने लगा है।

तेलके इतना अधिक उपयोगी होनेपर भी भारतमें वह बहुत ही थोड़ी मात्रामें तैयार किया जाता है। यहाँसे विदेशोंको और चीज़ोंकी तरह बिनौला भी बहुत काफी मात्रामें भेजा जाता है। संवत् १९८५में १,३२,६०,२७७ रुपयेका बिनौला विदेशोंको भेजा गया था। बिनौलेके मुख्य खरीदार फ्रांस और अमेरिका ही हैं।

७—इस सम्पत्तिकी हम कैसे रक्षा करें ?

भारतवर्ष भरमें बिनौलेका तेल तैयार करनेवाली इनी गिनी दो चार मिलें हैं। एक गुजरातके नवासारी नगरमें और दूसरी बर्माके मिंगम्यांग नगरमें। बंगालमें भी थोड़ा बहुत तेल तैयार किया जाता है परन्तु बहुत कम। इम्पीरियल कौंसिल आफ एग्रिकलचरल रिसर्च इस सम्बन्धमें विचार कर रही है। इस कौंसिलने तेल और तेलहन वगैरहके लिये एक अलग उपसमिति बना दी है। गत अप्रैल मासके प्रथम सप्ताहमें इस उपसमितिने बिनौलेके तेलके विषयमें भी विचार किया था।

भारतवर्षमें बिनौलेका तेल तैयार करनेकी काफी गुंजाइश है। लेकिन तेलकी उत्पत्तिके साथ खलीकी उत्पत्ति भी बढ़ेगी। जबतक यहाँ जनसाधारणको खलीका ठीक-ठीक उपयोग न समझाया जायगा तबतक उसकी खपत होनी मुश्किल है। पूँजीपति स्वयं इस सम्बन्धमें आगे क़दम रखना नहीं चाहते। हाँ, अगर एक मिल खोल दिया जाय और उसमें कुछ फायदा होता नजर आये तो देखादेखी बहुत मिल खुल जायँगे। अस्तु आवश्यकता इस बातकी है कि सरकारकी ओरसे कानपूर या किसी ऐसेही औद्योगिक नगरमें बिनौलेका तेल निकालनेवाली मिल स्थापित की जाय और उसके द्वारा जनता एवं पूँजीपतियों दोनोंको ही बिनौलेके तेल तथा खलीके गुण बतलाये जाँय। कानपुरकी सरहारकोर्ट बटलर टेकनोलाजिकल इंस्टिट्यूटमें ऐसे मॉडल (model) मिल बनानेसे बहुत लाभ हो सकता है। इंस्टिट्यूटमें ऐसा मिल स्थापित करनेमें खर्चा भी कम होगा।

अब सुना जाता है कि कौंसिल इस बातकी कोशिशमें है कि भारतसे जितना तेलहन बाहर जाता है उसपर चुंगी लगायी जाय और उस चुंगीसे जो आमदनी हो वह तेल और तेलहन आदिकी उन्नति एवं तत्सम्बधी खोजके काममें लगायी जाय। इस योजनाके कार्यरूपमें परिणत होनेपर शायद बिनौलेकी ओर भी कुछ ध्यान दिया जाय।

जैसा देस वैसा भेस

प्रकृतिका नियम है, मामूली कहावत नहीं

[ले० विद्यालंकार ठा० शिरोमणसिंह चौहान, एम०, एस-सी०, विशारद]

कुछ काल हुआ मैंने स्वामी सत्यदेवजीका चित्र विलायती पोशाकमें किसी पत्रिकामें उस समयका देखा था जब वह यूरोपमें थे। जिसे यहाँ हमने गेरुआ रंगके कुर्ता आदि पहने देखा है अन्य देशोंमें जाकर वही हैट, कोट पैंट आदि वहाँकी साधारण पोशाक अपना लेता है, यह परिवर्तन, यह काया-पलट, बे-मतलब नहीं हो सकता। साफ मतलब यह है कि वहाँ की पोशाक पहने हम वहाँकी जनताकी तरह साधारण रीतिसे घूम-फिर सकते हैं। यदि विलायतमें जाकर अँगरखा, चोगा, पाजामा आदि पहनकर बाजारमें घूमें तो चारों ओरसे लोग उँगलियाँ उठावेंगे और बाज़ारू बालक पीछे लग जायँगे और तालियाँ पीटेंगे। वेष-भूषाके अतिरिक्त वहाँकी भाषा बोले बिना हम उस देशमें सुख-चैनसे नहीं रह सकते। पद-पदपर कठिनाइयोंका सामना करना पड़ता है। जीवनमें आनंद तभी आ सकता है जब हम उस देशके निवासियोंमें हर तरह मिल-जुल जायँ। किसी तरहका भेद न रह जाय। मनुष्य तो समझदार है परन्तु और सभी प्राणियोंमें यही बात आम तौरसे पायी जाती है।

सभी परिस्थितियोंमें प्राणी रहते हैं

प्राणी स्थलपर रहते हैं, जलमें रहते हैं। जलचर गहरे पानीमें भी रहते हैं, और उथले जलमें भी रहते हैं। स्थलपरके अनेक प्राणी बिलोंमें रहते हैं, अनेक आकाशमें विचरण करते हैं। बहुतेरे मरुभूमिमें भी रहते हैं। अनेक ध्रुव-मंडलके हिमाच्छादित भागको पसंद करते हैं। हाइड्रोबियस (Hydrobius) नामी कीड़ा उन्हीं उष्ण स्थानोंमें रहता है जहाँका तापक्रम १३०°फ० होता है। सबके भोजनमें भी विविधता और विचित्रता है। बहुतसे शाकाहारी हैं बहुतेरे मांसाहारी और अनेक सर्वभक्षक हैं। रंग-रूप भी भिन्न-भिन्न हैं। कुछका रंग सफेद है तो कुछका काला कुछ हरे रंगके हैं तो कुछ भूरे रंगके और कुछ चितकबरे। कोई-कोई प्राणी दो पैरोंके सहारे खड़े-खड़े चलते हैं तो कोई चार पैरोंके सहारे। सर्प आदि छातीके बल भूमिमें घसिटकर चलते हैं। पक्षी आदि अपने परोंके सहारे आकाशमें उड़ते हैं। इस तरह प्राणियोंके रंग-रूप, रहन-सहन और आहार-विहारमें विचित्रता एवं विविधता पायी जाती है।

परिस्थितिसे लड़ाई

जीवै जीव अहार

वैज्ञानिक कहता है कि पृथ्वीके सारे प्राणी अहर्निश (struggle for existence) जीवन-संग्राममें लगे रहते हैं और यहाँ उसी प्राणीका निर्वाह होता है जो अपने और साथियोंसे बल और पराक्रममें बढ़े-चढ़े सिद्ध होते हैं। जीवन-संग्राममें निर्बलोंके लिये कोई स्थान नहीं है। कमजोरोंका नामो-निशान मिटानेमें प्रकृति सदा लगी रहती है। इस घोर संग्राममें प्राणियोंका लक्ष्य अपनी उदर-पूर्ति और आत्मरक्षा ही है। इन इष्टोंकी पूर्तिके लिये प्राणियोंको अन्य प्राणियों और प्राकृतिक शक्तियोंका निरंतर मुकाबिला करते रहना पड़ता है।

'जीवो जीवस्य जीवनम्' न्यायके अनुसार इस पृथ्वीपर हर प्राणीका कोई-न-कोई शत्रु अवश्य है। ऐसा कोई जीव नहीं है जिसपर दूसरे किसी

जीवका जीवन-निर्वाह न होता हो। प्रत्येक जीवकी घातमें कोई-न कोई प्राणी बैठा ही रहता है। मांसाहारी पशु साधारण प्राणियोंके रक्तके प्यासे होते हैं। बड़े जानवर छोटे जानवरोंको हजम करनेकी घातमें लगे रहते हैं। बिल्ली चूहेको खा जाती है और शेरका तो कहना ही क्या है—खूँ ख्वारी और वहशीपनका तो वह नमूना ही है। इस संग्रामकी नादिरशाही देखकर बुद्धि चक्करमें आ जाती है।

वैरियोंके सिवा प्राणियोंको अपनी परिस्थितिसे, प्रकृतिसे, भी मुकाबला करना पड़ता है। इस लड़ाईमें वे ही प्राणी विजयी होते हैं जिनके पास अपनी रक्षा और जीविकाके लिये साधन मौजूद रहते हैं और जो अपना रहन-सहन प्रकृतिके अनुकूल बना लेते हैं। इस रगड़ेमें प्राणियोंपर प्रकृतिका भी अमिट प्रभाव पड़ता है। जब अंग्रेज़ पहले-पहल यहाँ आते है तो उनका रंग बिलकुल सफ़ेद होता है पर यहाँ रहते रहते उनका रंग गेहुआँ हो जाता है। सूर्यकी जलानेवाली किरणोंसे उनकी रक्षा करनेके लिये प्रकृति यह उपाय करती है। ऐसा न हो तो इन्हें लू अधिक सतावे और तरह तरहके रोग हो जायँ। प्रकृतिके नियमोंके प्रतिकूल चलनेसे प्राणीको अपने ही देशमें तरह तरहके कष्ट उठाने पड़ते है, दूसरे देशोंकी तो बात ही दूसरी है। देश और कालके अनुसार अपने खान-पान, और रहन-सहनमें परिवर्तन न करनेसे प्राणी हर जगह बीमार पड़ता है। जीवन-संग्राममें यदि नष्ट न हुआ तो बलहीन तो अवश्य हो जाता है।

इस लड़ाईमें रंग-रूपसे लाभ

जब हम जीवधारियोंकी रंगत और उनके आसपासकी ओर ध्यान देते हैं तो मालूम होता है कि प्राय: उनका रंग आसपासके रंगसे बहुत-कुछ समानता रखता है। उत्तरी ध्रुव या सुमेरुके हिमाच्छादित भूभागमें विचरण एवं निवास करनेवाले जीवधारियों का रंग सफेद होता है। वहाँका रीछ (polar bear) बिलकुल सफ़ेद होता है और यही हाल उत्तरी अमेरिकाके ख़रगोशका है। भारतवर्षके (falcon) शिकरेका रंग भूरा होता है परन्तु ग्रीनलैंडके उकाबका रंग आसपासकी बर्फ़के समान सफ़ेद होता है।

अफरीकाकी मरुभूमिके निवासी सब खाकी (pallid) और रेतीले रंगके होते हैं। ऊँट जिसे मरुस्थलका जहाज़ भी कहते हैं मटियाले रंगका होता है और यही रंग मरुस्थलके पक्षियों, छिपकलियों, साँपों तथा अन्य प्राणियोंका भी होता है।

अब जंगलोंकी ओर चलिये। जंगलकी हरियालीके समान वहाँके प्राणियोंका रंग भी हरा होता है। तोते और हरियल तो हरे रंगके होते ही हैं परन्तु यह जानकर पाठकोंको आश्चर्य होगा कि कबूतरोंका एक बड़ा समुदाय जो जंगलोंमें रहता है हरे रंगका होता है।

समुद्रकी सतहपर रहनेवाले प्राणियोंका रंग समुद्र-जलकी भाँति बिलकुल सफ़ेद होता है। जैसे कि जेलीफ़िश (jellyfish), साइफ़ानोफ़ोरा (siphonophora) आदि। इनमें यह भी विशेषता होती है कि उनके शरीरके आरपार प्रकाश जा सकता है।

जो जानवर रातमें निकलते हैं वे या तो काले रंगके होते हैं या धुंधले रंगके। चमगादड़का रंग काला होता है और उल्लू, चूहे और छछूंदरका धुँधला। रंगोंकी विविधताका कारण क्या है? बहुतोंका मत हैं कि आसपासके रंगसे प्राणियोंके रंग स्वयं ही वैसे हो जाते हैं। परन्तु इसका भी तो कोई कारण होना चाहिये। जगत प्रसिद्ध डारविनके किये हुए एक प्रयोगसे यह भलीभाँति प्रमाणित होता है कि इस समताका कारण या तो उन प्राणियोंकी उनके शत्रुओंसे रक्षा होती है या इससे भोजन-प्राप्तिमें सहायता मिलती है। अर्थात् उनका रंग जीवनके रगड़ेमें मदद देता है।

विलायतमें टिड्डियाँ दो प्रकारकी होती हैं।

एकका रंग हरा होता है और वह हरीघास और पौदोंपर रहती हैं। दूसरेका रंग गेंहुआँ होता है और वह सूखी घास और पत्तियोंमें रहती हैं। डारविनने इन दोनों प्रकारकी टिड्डियोंको लेकर हरे और गेहुआँ रंगके पौधोंसे बांधा। इस भाँति डारविनके इस प्रयोगके चार भाग हुए—(१) हरी टिड्डियोंको हरे पौधोंसे और (२) गेंहुआ रंगकी टिड्डियोंको गेंहुआँ रंगके पौधोंके साथ बाँधा। (३) हरी टिड्डियोंको गेंहुआँ रंगके पौधोंके साथ और (४) गेहुंआँ रंगकी टिड्डियोंको हरे रंगके पौधेके साथ बाँधा। पन्द्रह दिवसके अनन्तर डारविनने जब उन्हें देखा तो ज्ञात हुआ कि प्रयोग नं० (१) और (२)की टिड्डियाँ तो सकुशल हैं परन्तु प्रयोग नं० (३) और (४) की टिड्डियाँ शत्रुओंका शिकार हो चुकी हैं। अर्थात् जो समान रंगके पौधोंपर थीं वे तो सुरक्षित रहीं और जो असमान रंगके पौधोंपर थीं उन्हें उनके पक्षी-शत्रु खा गये।

डारविन साहबके इस प्रयोगने स्पष्ट रूपसे प्रमाणित कर दिया कि जीवधारियोंके रंगकी उनके (environment) आसपासके वर्ण सादृश्यका कमसे कम एक प्रयोजन तो प्राणियोंकी आत्मरक्षा है। इससे उनके शत्रु उन्हें पहचान नहीं सकते। इस निराकरणके अनुसार तोते, हरियल और कबूतरका हरा रंग, चमगादड़का काला रंग, छछूंदर और चूहेका धुंधला रंग और हिमाच्छादित भूभागोंके प्राणियोंका सफ़ेद रंग होगा। यह रंग शत्रुओंसे आत्मरक्षामें सहायता देते हैं। वास्तवमें प्राणीको अपनी जान सबसे प्यारी होती है और सारे प्राणी आत्मरक्षाका उपाय करते हैं। ठीक ही कहा गया है कि आत्मरक्षा प्रकृतिका पहला सूत्र है। किसी प्राणीको अपने शत्रुसे सुरक्षित रखनेकी सबसे सरल युक्ति यह है कि वह शत्रुकी दृष्टिमें न पड़े या उसकी नज़रमें आना ही पड़े तो बहुत कम। यह युक्ति अनेक प्राणियोंके उपयोगमें आयी है। हरे रंगकी टिड्डी जब हरे रंगके पौधे पर बाँधी गयी तो आस-पासकी हरी-हरी पत्तियोंमें से उस टिड्डीको ढूँढ़ निकालना उसके शत्रुओंके लिये कठिन हो गया और वह सुरक्षित रही। यही कारण गेहुंआँ टिड्डीकी रक्षाका भी था। किसी काले रंगकी वस्तुको काली मिट्टीमेंसे एकाएक नहीं पहिचाना जा सकता है।

इस लुका-छिपीसे कविभी लाभ उठाता है

कवि-संसारने भी रात्रिको आने-जानेवाली नायिकाओंको जन साधारणकी दृष्टिसे गुप्त रखनेके लिये इन्हीं युक्तियोंसे असीम लाभ उठाया है। जिस तरह अंधेरी रात्रिमें हिलने-डुलनेवाले प्राणियोंका रंग प्राय: भड़कीला न होकर काला होता है उसी तरह अँधेरी रातमें संकेतस्थानको जानेवाली नायिकाएँ आसपासके रंगके अनुसार वेष बनाकर अपनेको जन-साधारणकी दृष्टिसे अलक्षित रखनेका उद्योग करती हैं। वे श्याम वस्त्र धारणकर श्याम निशामें अपने नायकके पास बेधड़क जा सकती हैं। यथा—

"मृगमद लाय मृगमद रंग अंग कीन्हें
 ढाँपि नख-सिख दीन्हे सारी श्याम भाति है।
इन्दीवर कमलके दलकी गलेमें माल पहिरे
 बिसाल न बनक कही जाति है॥
केस बगराय लीन्हों आनन छिपाय मति
 कोई लखि जाय रघुनाथ यों सकाति है।
भावते सों मिलिबेको बनि चली प्यारी
 आजु मानो देहधारी कारी भादवँकी राति है॥'

यही नहीं, जब अँधेरी रातमें काले वस्त्र आदि नायिकाकी दीप-शिखा सी देहको छिपानेमें समर्थ नहीं होते तो वह भौंर-भीड़-कृत काली छाँहकी शरण लेती है, जैसे

'स्याम बसन मैं स्याम निसि, दुरी न तियकी देह।
पहुँचाई चहुँ ओर घिरि, भौंर-भीर पिय-गेह॥'

और भी—

अरी, खरी सरपट परी बिधु आधे मग हेरि।
संग-लगैं मधुपनु लई, भागनु गली अँधेरि॥

परन्तु जब उसे विमल चाँदनी रात्रिमें पिय-गेह जानेकी आवश्यकता पड़ती है तब वह दूसरे ही ठाठ रचती है। तब उसे उजेली रातके अनुकूल बनना पड़ता है। ऐसे अवसरपर उसका संपूर्ण उद्योग यही रहता है कि उसके वस्त्र-आभूषण आदि इस ढंगके हों जो चांदनीमें छिप जाँय। अब तो उसको विमल-चन्द्रिका सी ही बननेमें लाभ है। "विमल चन्द्रिकासी चली, जहँ राजत बृजचन्द"। उज्ज्वल चाँदनीमें सफ़ेद वस्तुओंके ही छिपनेकी संभावना है, वह अपने शरीरमें श्वेतचन्दनका लेप करती है। मोतियोंके गहनोंके अतिरिक्त वह दुग्धफेनके सदृश उज्ज्वल सफ़ेद साड़ी ओढ़ लेती है। जैसे—

'अंगनमें चंदन चढ़ाय घन सार सेत,
सारी छीर-फेन कीसी आभा उफनाति है।
राजति रुचिर रुचि मोतिनके आभरन,
कुसुम कलित केस सोभा सरसात है॥

इसी भाँति जिन प्राणियोंको हरी और ठंडी झाड़ियोंमें रहना पड़ता है उनका रंग साधारणतया हरा होता है और जिन्हें सूखी घास या वृक्षोंकी सूखी पत्तियोंमें रहना पड़ता है उनका रंग भी अपने आसपासके रंगके समान ही होता है। कुछ प्राणियोंका यह हाल है कि जिस ज़मीनपर वे रहते हैं उसीसे मिलता जुलता उनका रंगभी होता है। पहाड़ी भेड़ोंका रंग प्रायः काला होता है। कारण यह है कि पहाड़के पत्थर भी काले होते हैं। इस वर्ण-सादृश्यसे हिंसक पशु यह नहीं जान पाते कि भेड़ वास्तवमें कहाँ है। ऊपरके विवेचनका सार यही है कि इस वर्ण-सादृश्यसे प्राणी अपनेको दूसरोंकी निगाहसे छिपाना चाहता है। (क्रमशः)

क्रान्तिकारी चरखा, घंटे भरमें १२०० गज सूत

मद्रासकी एक प्रदर्शनीमें प्रदर्शित

मद्रासकी प्रदर्शनीमें श्री डी० एन० राज-गोपालनका बनाया हुआ एक चरखा दिखाया जा रहा है, जिससे, कहा जाता है कि एक घंटेमें २० नम्बरका करीब १२०० गज सूत काता जा सकेगा। इस चरखेसे ५ से लगाकर २०० नम्बरतकका सूत काता जा सकता है। हाथके ही सहारे चलता है, फिर भी एक मिनटमें १५००० फेरे घूम जाता है। आविष्कारकका यह भी दावा है कि इस चरखे के कते सूतमें साधारण हाथकते सूतके दोषोंमेंसे एक भी नहीं रहता और इसे जुलाहे मिलके सूतके समान ही सुगमतासे बुन सकते हैं। श्रीगोपालनने इस चरखेके साथ "नागरत्न" नामकी धुनकी भी निकाली है और उनका कहना है कि उससे रुई धुननेपर साधारण धुनाईका आधा ही खर्च बैठता है। तथा उससे रुई धुनकर उनके चरखेपर सूत काता जाय तो ।=)॥ में एक पौंड सूत तैयार किया जा सकेगा, जब कि मिलके सूतका वर्तमान भाव ।≡)॥ प्रति पौंडहै।

यह चरखा केवल १५ इंच लम्बा, ६ इंच चौड़ा और १२ इंच ऊँचा है। इतना हलका है कि आसानीसे चाहे जहाँ ले जाया जा सकता है। कातनेमें भी कुछ विशेष आयास या कुशलता प्राप्त करनेकी आवश्यकता नहीं समझी जाती। केवल एक सप्ताहके आयाससे ही घंटेमें १२०० गज सूत कात लिया जा सकता है।

इसके विषयमें अखिल भारतीय चरखा संघको भी लिखा गया है। ("आज" से)

साहित्य-विश्लेषण

स्वास्थ्य-सर्वस्व, द्वितीय खंड—भोजन व शयन वा आरोग्यताके मूल-नियम। लेखक बा० नरसिंह सहाय, रिटायर्ड रेवेन्यू आफिसर, बिहार उड़ीसा। प्रथम संस्करण ६४+३२=९; पृष्ठ। डबल क्रौन १६ पेजी आकार। मूल्य ।=)॥ लेखकसे प्राप्य।

भोजन और शयन संबन्धी सभी आवश्यक बातें इस पुस्तकमें पहले गद्यमें समझा दी गयी हैं। फिर इसी सम्बन्धके दोहे दिये गये हैं जिन्हें यादकर लेनेसे छात्रोंको जिन्दगी भर लाभ पहुँच सकता है। लेखकने वैज्ञानिक बातोंको समझाकर भी अपने देश और युगके अनुकूलही आदेश दिये हैं। पुस्तक अच्छी है। इस योग्य है कि मदरसोंमें पाठ्य ग्रंथोंमें रख दी जाय। हमने अभी इसके और भाग नहीं देखे हैं।

जयाजी प्रताप—वर्षगाँठका अंक, १९३३। सहयोगी जयाजी प्रताप ग्वालियर सरकारकाही साप्ताहिक है। वर्त्तमान ग्वालियर नरेशकी वर्ष-गाँठपर यह विशेषांक निकाला गया है। कवरपर 'अर्चना' का बड़ा सुन्दर चित्र है। कवर उलटतेही सिंधिया नरेशके मन्दस्मित मनोहर दर्शन होते हैं। बाग-गुफाके सुन्दर दृश्योंके चित्र भी मनोहर हैं। इनके सिवा तो यह अंक चित्रोंसे और विशेषतः व्यंग्य चित्रोंसे अलंकृत है।

वास्तुविज्ञान, तम्बाकूके कारखाने, शिल्पकला, क्रिकेटका खेल, कुंभकारीकला, रत्न, वर्तमान ग्वालियर, सागरकी गहराईमें अद्‌भुत जीवन, भारतीय वर्त्तमान मूर्त्ति-निर्माण-कला, दूधकी समस्या आदि अँग्रेजोंकेलेख और अवन्तिकापुरीका सिंहस्थ मेला, महाकवि सुन्दर, भारतीय चित्रकला, जन्मदिवसका इतिहास, ग्यारसपुरके खँडहर, संस्कृतसाहित्यके मुसलमानभक्त, वेदमें राजाका पद, निरक्षरतापर विजय, महाकालसहस्रनाम, देवनागरी छपाईमें क्रान्ति, लश्करके दो हरिजन कवि, बच्चोंका बाग, गृहनिर्माणकला, हिन्दीके लेख बड़ेही उपयोगी रोचक और संग्रहणीय हैं। सुर और तालके एक कलामय चित्रके सिवा गांधर्व विद्या सम्बन्धी कोई विशेष लेख नहीं है। यह अभाव खटकता है। भारतमें ग्वालियर गांधर्व विद्याका केन्द्र समझा जाता है। वहाँके इस कलाके विशारदोंका इतिहास और इस कलापर कोई विवेचनापूर्ण लेख जरूर होना चाहिये था। फिरभी यह अंक सब तरहसे सुन्दर और उपादेय है। इसकी चित्रमालाएँ बहुत अच्छी हैं। अकेले चित्रोंके ही दाम रखे जायँ तो १) के हो जाते हैं। यह अंक बहुत सुन्दर निकला। इसके लिये सम्पादक मंडल अभिनन्दनीय है। १) में य अंक बहुत सस्ता है।

—रा० गौ०

जीवनकुटीर वनस्थलीका तृतीय कार्य्य विवरण—जयपुर रियासतसे निवाई तहसीलमें वनथली (वनस्थली) नामक गाँवमें १२ मई सन् १९२९ को जीवनकुटीर नामके आश्रमकी इस उद्देश्यसे स्थापना हुई कि "सत्यशान्ति और न्यायके आधार-भूत सिद्धान्तोंके अनुसार चलते हुए कृषि, गोपालन, वस्त्रस्वावलम्बन, शिक्षा और औषधिवितरण आदि रचनात्मक कार्य्यों द्वारा आसपासके पचास गावोंमें बसी हुई लगभग दस हजार ग्रामीण जनताके जीवनको सुखमय बनानेका एक विशेष प्रयोग" करके देखा जाय। कुएँ, कच्चे मकान, बनवाये गये। श्री हीरालाल शास्त्रीने स्वयं अकेले इस कामको आरंभ किया। सेवक जुटाने लगे। धीरे-धीरे दिसंबर सन् १९३२ में १७ सेवक और ४ विद्यार्थी जीवनकुटीरमें हो गये थे। कृषिमें उल्लेख योग्य सफलता न मिली। वस्त्र स्वावलम्बनकी दृष्टिसे ६० आदमियोंको बुनना सिखाया गया, ९२ गावोंमें

३०० पींजनोंका प्रचार कीमतसे हुआ, सैकड़ों मन रूई धुनी गयी और सूत काता और अपने हाथोंकी बुनाईके सिवा कई हजार वर्ग गज कपड़ा बुनकरोंसे बुनवाया गया। चरखे और पींजन मय हाथली पाँच पाँच आनेको, तकुए दो दो पैसेको, इसी तरह बहुत सस्तेमें बुननेके सभी सामान बनवाये और बेचे गये। २८०० नये रोगियोंको दवा दी गयी। दिसम्बर १६३२ में ८० बालक और सयाने भिन्न-भिन्न गावोंमें शिक्षा पा रहे थे। ४४ महीनोंमें स्थिर जायदादमें लगभग ५०००) के पूँजी लगी, १२॥ हजारके लगभग सेवकोंकी शिक्षा और निर्वाहमें एवं प्रचार आदि कामोंमें लगे। १७॥ हजारमेंसे पाँच हजारसे कुछ अधिक जयपुरसे और लगभग १२॥ हजार बाहरसे मिले।

सन् १६३२ तककी यह रिपोर्ट संक्षेपमें देकर १६३३के अन्त तककी रिपोर्ट शास्त्रीजीने प्रकाशित की है। इस रिपोर्टमें ग्रामवासियोंके कष्टोंका विवरण और उनके उद्धार और सुधारके लिये कुटीर द्वारा जो उपाय हुए हैं वह ठोस काम हैं। उनका विवरण शास्त्रीजीने इस पुस्तिकामें दिया है। राजपूतानेमें इस कामको भाई जेठालालजीने मनोयोग त्याग और तपस्यासे आरम्भ किया। बिजौलियामें इसका पहला उदाहरण उपस्थित हुआ। फिर धीरे-धीरे अन्यत्र भी वस्त्र स्वावलम्बन और ग्रामसुधारका काम चला। वनस्थलीमें पं० हीरालाल शास्त्रीका काम भी उसी ढंगसे बड़ी सफलतासे चल रहा है। भगवान उन्हें उत्तरोत्तर सफलता दे।

—रा० गौ०

हिन्दी तूफान, साप्ताहिक—सम्पादक श्री राधामोहन गोकुलजी, व्यवस्थापक श्रीपन्नालाल गुजराती। वार्षिक ३)। कृष्णार्जुन प्रेस, ६, बड़तल्ला-स्ट्रीट, कलकत्तेसे, शनिवार ६ दिसम्बर, १६३३ से निकलने लगा है। तूफानका अभी आरंभ हुआ है। रंगढंग तूफानका ही है। आगे चलकर न मालूम कितनी तेजी हो। इसके लेख सुन्दर हैं, विचारपूर्ण हैं, पक्षपात रहित हैं। अभी तो समाज और अर्थ शास्त्रकी ओर बहना आरंभ हुआ है। हम तो चाहते हैं कि इसकी अव्याहत और प्रभंजनी गति हो। भयकी महाकन्दरामें विलीन न हो जाय, रिश्वतके पहाड़से टकराकर अपना मार्ग न बदले, स्वार्थका बवंडर इसके प्रवाहको भौंरमें डालकर न रोके। वयोवृद्ध, बहुश्रुत, अनुभवी और निर्भीक सम्पादक श्री राधामोहन गोकुलजीके रहते हम तो आशा करते हैं कि इसका रवैया इसके नामके ही अनुकूल होगा। यह समाजकी कुरीतियोंको जड़से उखाड़ फेंके, व्यक्तियोंको विनाशकारी व्यसनोंसे विरत करावे और देशके सच्चे धर्म्म और धनके क्षयमें लगे हुए रोगके कीड़ोंको साफ़ कर दे। हम इसकी सफलता हृदयसे चाहते हैं। —रा० गौ०

सहयोगी विज्ञान

१—गूदड़धारी जेंटिलमैन चेतें

प्रतापके १० दिसम्बरके अंकमें 'विलायती और काश्मीरी ऊनमें अन्तर' दिखाते हुए बा० रामस्वरूप गुप्तने एक मजेदार बातकी ओर पाठकोंका ध्यान आकृष्ट किया है। आप कहते हैं—

"बहुतसे मनुष्योंको यह जानकर आश्चर्य होगा कि सन् १९०५ में इंगलैण्डने 'शोडी' की उत्पत्तिके लिये १००,००० पौंड वजनका ऊनी माल गाया; लेकिन वास्तवमें हर एक वर्ष इससे दुगुना माल काममें आया करता था। आपको यह जानकर खेद होगा कि जो ऊनका माल आप पहनते हैं, उसमें बहुत सा ऊन गन्दे, सड़े और फटे पुराने

कपड़ोंका बना हुआ है, जिनको कि हमने ख़राब समझकर फेंक दिया था। यह पोल १९०३ में वाशिंगटनमें एक व्यापारिक खोज कमेटीद्वारा खुली थी।

वास्तविक बात यह है कि सारे संसारमें कच्चे ऊनकी उत्पत्ति बहुत कम होती है और ऊनी कपड़ोंकी ख़पत अत्यधिक होती है। इस खपतको पूरा करनेके लिए इंगलैण्ड वालोंने गले-सड़े-फटे-पुराने कपड़ोंको जोड़कर उन्हें कूटकाट मलीदा बनाकर उसको ऊनी कपड़ेकी शक्लमें लानेका प्रबंध किया। उसमें थोड़ी सी रूई भी मिला दी, जिससे वह अधिक खूबसूरत प्रतीत होने लगे। इस प्रकार पैदा किया हुए कपड़ोंको अंग्रेजीमें शोडी कहते है। 'शोडी'का इतिहास अति ही विचित्र है। १८१०से पहिले तो इसके इतिहासका कुछ पता ही नहीं लगता। १८१०में ऐसा ख्याल किया जाता है, कि बाटलीके वजन मैंने ला (?) नामी व्यक्तिने सबसे पहिले इस कामके लिये मशीनोंका आविर्भाव किया था। इस नई दस्तकारीके चल पड़नेपर हर एकने खामोशीसे सस्ती दरपर ऐसे कपड़े ख़रीदना आरम्भ कर दिया और उसको धागेमें तब्दील करना शुरू कर दिया। १८५८में ५० मशीनें बाटलीमें ज़ोर-शोरसे काम करने लगीं। हर एक मशीनें ४ बण्डल प्रतिदिन बनाने लगीं। ५१ लाख पौण्ड फटे कपड़ेसे ३८ लाख पौण्ड ऊन निकाला जाता था। एक सज्जन लिखते हैं कि इस प्रकारसे उत्पन्नकी गयी वस्तुसे कोई भी लाभ नहीं है। ऐसा नहीं है। अब वहाँपर पुराने चीथड़ोंके अम्बार जो कि पहिले प्राकृतिक सौन्दर्यको बिगाड़ देते थे, कहीं पर भी नजर नहीं आते हैं। हर प्रकारका कपड़ा अब काममें ले लिया जाता है। प्रति वर्ष इस दस्तकारीसे ७,०००,००० स्टर्लिङ्गकी आय होती है जिसमें मज़दूरीका हिस्सा सबसे अधिक है। क्योंकि कच्चे मालकी तो कोई कीमत ही नहीं होती। वह तो मुफ्त मिल जाता है।

आज ग्रेट ब्रिटेनको समस्त दस्तकारियोंमेंसे केवल एक 'शोडी' की दस्तकारी ऐसी है जिसको कि पूरे तौरपर स्थानीय दस्तकारी कहा जा सकता है। आज वहाँपर ९०६ ऊनकी मशीन काम कर रही हैं जिसमेंसे ८८१ के क़रीब बाटली और उसके इर्द-गिर्दके इलाकोंमें फैली हुई है। इसमेंसे ५९६ 'शोडी' बनानेवालोंके हाथमें है और बाक़ी ऊनी फैक्टरियोंमें लगी हुई है। एक समय था जब बाटलीको पूरा अधिकार था। एक प्रकारसे व्यापारका एकाधिपत्य मिला हुआ था। परन्तु अब नहीं। हर एक राष्ट्र अब अपने अपने फटे कपड़ोंको स्वयं काममें लाने लगा है और अपने आप कपड़े बनाने लगा है। इङ्गलैण्डवाले अब भी और देशोंसे फटे कपड़े खरीदते हैं। मजदूरोंकी संख्यासे पता चलता है कि इङ्गलैण्डवाले तथा और राष्ट्रवाले भारतवर्ष, अफ्रीका, दक्षिण अमेरिका इत्यादि देशोंके फटे कपड़ोंको अब भी कूट कूटकर कपड़े बनाते हैं।

ऐसी स्थिति होनेपर कौन जानता है कि किस प्रकारका ऊनका बना हुआ कपड़ा हम पहिन रहे हैं। हम प्रति दिन रईस और सभ्य पुरुषोंको चमकदार ऊनी कपड़े पहिने हुए देखते हैं।'

बहुतेरे धर्म्मप्राण हिन्दू जो ऊनको परम पवित्र कपड़ा मानते और पूजापाठ आदिमें धड़ल्लेसे वर्त्तते हैं इसी भ्रष्ट तथोक्त ऊनको काममें लाते और महाभ्रष्ट गूदड़पर पवित्रताका दम भरते हैं। यहाँका कम्बल और देशी काश्मीरी ऊन कितना शुद्ध और पवित्र होता है, इसको सोचें।

—रा० गौ०

२—डाक्टरी विद्याकी पोल

३० दिसम्बरके 'कर्म्मवीर' में ओषधि-विज्ञानकी पूर्ण असफलता' पर हिन्दी संसारके सुपरिचित सुलेखक डा० रविप्रतापसिंह श्रीनेतने एक बहुत विचारपूर्ण लेख लिखा है। इसमें डाक्टरी विद्याकी पोल खोली गयी है। आप लिखते हैं—

"यों तो यदि ओषधि-विज्ञान (Medicine) का रिकार्ड देखा जाय, तो मालूम होगा कि जैसे-जैसे विज्ञानने तरक्की की, वैसे-वैसे सभ्य संसारमें अनेकों प्रकारकी बीमारियोंका अविर्भाव होता गया। या यों कहिये कि ज्यों-ज्यों दवा होती गई; मर्ज और मरीज़ बढ़ते ही गये। सिर्फ यही एक बात इतना कहनेके लिये काफी है कि लोगोंद्वारा विश्वसनीय चिकित्सा प्रणालियों (mediums of treatment)का फल उत्तरोत्तर कटु ही होता गया।

एक डाक्टरके मुँहसे यह 'पोल' सुनकर शायद डाक्टर और साधारण जनता यह ख़याल करे कि यदि विज्ञान कहे जाने वाले 'हौआ'की उन्नतिशील प्रगतिका यही नतीजा है' तो फिर ऐसे थोथे विज्ञान (pseudo-science) को दूर से ही नमस्कार करना कहीं अधिक न्यायसंगत होगा । यह बात बिलकुल सत्य है और इसलिये इसपर ध्यान देना प्रत्येक ज़िम्मेदार व्यक्तिका कर्त्तव्य है ।"

विज्ञानकी "काता और ले दौड़े" वाली मनोवृत्तिके दूषण दिखाकर आप कहते हैं और बिलकुल ठीक कहते हैं कि—

"यह बात ज़रूर है कि औषधिविज्ञानके विशेषज्ञ बहुत पहिलेसे इसे जनाते आये हैं, और उन्होंने समय-समयपर अपनी बहुमूल्य सम्मति देकर डाक्टरों और साधारण जनताकी आँख खोलनेकी भरपूर कोशिश की है । परन्तु सर्वसाधारणकी मूर्खतासे लाभ उठानेवाले डाक्टरों तथा औषध तैयार करनेवाली संस्थाओंने उक्त सत्यको छुपानेका भगीरथ-प्रयत्न किया है । आज यदि हम कहें, कि दूसरोंकी हित-चिन्तनामें घुल घुलकर हाथी होनेवाले चिकित्सकों तथा डाक्टरोंने सरेआम विद्वान और मूर्ख दोनोंकी आँखोंमें, सच्चे वैज्ञानिकके रूपमें सेरों

धूल झोंककर लूटा है

तो भी कोई ज़ियादती न होगी । मेडसिनसे कोई फायदा नहीं होता यह बात संसारके मनीषिगण बहुत दिनोंसे जानते आये हैं । औषध-विज्ञान-जगतके महापुरुषों और विज्ञानके विशारदोंसे ही पूछिये अथवा उन्हींका मत देखिये तो मालूम होगा कि न तो औषधसे कभी लाभ हुआ है और न हो ही सकता है । दूर क्यों जाते हैं ? अपने शहरके ही विद्वान अनुभवी तथा वृद्ध डाक्टरोंसे मिलिये । वे ही बतलावेंगे कि जैसे-जैसे अनुभव बढ़ता जाता है वैसे ही वैसे औषधोंसे विश्वास उठता जाता है ।

डाक्टरी विद्याकी ढकी असभ्यता और कसाईपन

डाक्टरी विज्ञानमें पथालोजीकी प्रचलित उपपत्तियों और धारणाओंकी पोल खोलते हुए आप लिखते हैं—

"असभ्य लोग समझते हैं कि रोग केवल देवताओंका शाप है अथवा प्रेतादिक आत्माओंकी राक्षसी क्रीड़ा । आपने देखा होगा कि पुराने ज़मानेके लोग किसी रोगके शमनके लिये देवी-देवताओं तथा भूत-पिशाचोंकी 'मन्नतें' किया करते थे तरह तरहके अनुष्ठान करते और पशु-बलि भी दिया करते थे । आज भी विश्वकी असभ्य तथा बर्बर जातियाँ इसी एक इलाजका अवलम्बन लिये हुए हैं । आफ्रिका, मेक्सिको तथा प्रत्येक शहरमें आज भी कितने बकरे, सूअर तथा अन्य पशु बलिके रूपमें भेंट किये जाते हैं । अब तनिक देखिये कि सभ्य जगत् इन रोगोंका सामना किस तरह करता है, और रोगोंका कारण क्या समझता है ? वैज्ञानिक जगत् भी ठीक वही समझता है जो कि असभ्य जातियाँ समझती हैं, परन्तु अन्तर केवल यही है कि एक उसी बातको वैज्ञानिकताकी मुहर लगाकर कहता है और दूसरा केवल भद्दे रूपमें । वैज्ञानिक जगत् रोगोंका कारण जीवाणु बतलाता है । इन जीवाणुओंका नाश करना ही वैज्ञानिक जगत्के विद्वानोंका आज महान् कर्तव्य हो गया है । अपने अभीष्टकी पूर्तिके लिये डाक्टरीमें आज भी कितना कसाईपन (butchery) भरा हुआ है इसका अनुमानमात्र दिलको दहला देता है ।

मरज बढ़ता गया ज्यों ज्यों दवाकी

अन्तमें आपने दुनियाँके बढ़ते हुए रोगों और मौतोंके लिये डॉक्टरी विद्याको ही जिम्मेदार ठहराया है—

ज्यों ज्यों ओषधि-जगत्में आविष्कार होते गये त्यों त्यों रोगों तथा रोगियोंकी संख्या बढ़ती ही गई । यह दवाइयोंका ही प्रताप है कि आज विश्वमें एकसे एक भयंकर रोग देख पड़ते हैं । इन रोगोंने मानवताको जो गहरा धक्का पहुँचाया है उसका सारा अपराध इन्हीं वैज्ञानिकोंके सर मढ़ा जायगा । संसारकी मर्दुमशुमारीकी तालिकाओंका अध्ययन करनेसे मालूम होता है कि आजसे तीस साल पहले जो मृत्यु-संख्या थी वह आज उससे करीब दुगनी हो गई है । विज्ञानकी जीतका यह ज्वलन्त प्रमाण है । आज यदि हम कहें कि मानवताको ठुकराकर अपना उल्लू सीधा करने के लिये—The scientific doctors have continued to kill mercilessly

patients with vile concoctions, brews, broths, poisons, reptile venoms, animal excrements, and other filths-अर्थात् वैज्ञानिक डाक्टरोंने बीमारोंको संगदिलीसे निकम्मे क्वाथ, कल्क, फान्ट, यूष तथा जहरीली दवायें देकर मारा है, तो कोई अत्युक्ति न होगी। करीब पचीस साल पहिले माता (small pocks)की इतनी शोहरत न थी जो आजकल है। इसका केवल वेक्सीनेशन (याने टीका लगाना) ही कारण है। हार्वर्ड विश्वविद्यालयके विद्वान् डा० होम्स, बोस्टनके सुप्रसिद्ध डा० केबट तथा विश्व-प्रख्यात डा० रेनाल्डसका कथन है कि बिना दवाईके रोगी जितने जल्दी अच्छा हो सकता है उतनी ही देरमें दवाईकी सहायतासे नहीं हो सकता। बिना औषधके १०० रोगियोंमेंसे ९० रोगी चंगे हो जाते हैं, परन्तु दवाईकी सहायता लेनेपर १० में से केवल ५०, ६० ही अच्छे होते हैं।

सौ सयाने एक मत

इस विषयपर आगे चलकर आपने अपने दावेका बहुत ठोस प्रमाण दिया है। इस मामलेमें आपके मतका पोषण बड़े प्रसिद्ध प्रसिद्ध डाक्टर करते हैं—

"इन पंक्तियोंके लेखक ने यही किस्सा भारतके अनुभवी तथा विद्वान् डाक्टरोंके मुँहसे सुना है। भारतके सुप्रसिद्ध डाक्टर यूनन, ब्रेडफर्ड चैपमैन, विनफील्ड, राय, देशमुख' गौड़, आदिका भी यही मत है। सर फ्रेडेरिक माट, सर डा० स्टेनले लीफ, डा० सर विलियम ओस्लर, डा० ल्यूकस डा० सिवर अरनाल्ड, डा० वाल्श, डा० सर हेनहरी लन, डा० मारिस किश बेन, डा० हेनरी विले, डा० बर्नार मेकफेडन, डा० प्यूलर, डा० चिलिंग, डा० चिंग, डा० कोज़न, डा० काफमान, डा० सेन ट्रास्टटेन्ट, डा० स्ट्रैची, डा० होफ मान, डा० सैन्डर्स, डा० सर कम्बरलैण्ड, डा० सर फ्रेडिस्टन, और डा० केमेरान आदि विश्वख्यातिके डाक्टर जिनपर मेडेसिन और सर्जरी (चीर-फाड़-विज्ञान)का दारोमदार है, और जो आज भी आधुनिक मेडेसिनके जन्मदाता माने जाते हैं, इस मतका पुष्टीकरण करते हैं कि "Medical practice has always been a failure and there is no chance of its success in time to come." यानी चिकित्सा "प्रणाली असफल रही है और भविष्यमें उससे लाभ होनेकी कोई सम्भावना भी नहीं है।"

औषध-विज्ञानकी बुनियाद झूठी है

इसका बहिष्कार करो

आगे चलकर डाक्टर महोदय उन सिद्धान्तोंकी खबर लेते हैं जिनपर यह विज्ञान अवलम्बित है।

"जिन सिद्धान्तोंपर मेडेसिनका आविष्कार हुआ है अव्वल तो वे ही गलत हैं। जो सिद्धांतसे गलत हैं उनपर चलनेसे कभीभी हम 'सत्य' पर नहीं पहुँच सकते। शायद इन लकीरोंको पढ़कर मौजूदा औषधि-विज्ञानके डिगरी-धारी व्यक्ति कुछ लिखने तथा कहने का साहस करें, परन्तु उन्हें भली-भाँति यह समझ लेना चाहिये कि औषधके आदि सिद्धान्त (basic principles of medicine) केवल थोथी धारणाओंपर ही अवलम्बित है। इसलिये इन थोथे वैज्ञानिक सिद्धांतों पर वास्तविकताका मुलम्मा चढ़ाकर उन्हें बहुत दिनोंतक छुपाया नहीं जा सकता। अब वह समय आ रहा है जब कि लोग धीरे-धीरे सब बातें समझनेकी कोशिश कर रहे हैं। यह बात तो निश्चित है ही कि, एक न एक दिन अर्वाचीन औषधि-विज्ञानकी पोल तो खुल ही जायगी। इसलिये ही सही, हमें चाहिये कि जिस गलत राहपर हम चल रहे हैं उसे छोड़कर अच्छी राहपर चलनेकी कोशिश करें। जिन भोले और अज्ञान व्यक्तियोंके हम पथप्रदर्शक हैं उनकी मूकतापर ही तरस खाकर हमें इस झूठे विज्ञानका बहिष्कार करना चाहिए।" —रा० गौ०

३—बीमा कम्पनियोंकी धूम

आजकल हमारे देशमें बीमा कम्पनियोंकी धूम मची है। दुनियाँ-भरमें मन्दी है परन्तु यह क्या बात है कि बीमेका बाजार गर्म है? इस विषयपर हमारे सहयोगी "विकास" ने अपने दिसम्बरके अंकमें अच्छा प्रकाश डाला है। उसमें बीमाविशेषज्ञ डाक्टर श्यामलाल जैन, ए० सी० आइ० (लंडन)का एक तथ्यपूर्ण लेख है जिसका अधिकांश हम पाठकोंके हितार्थ यहाँ उद्धृत करते हैं। —रा० गौ०

यद्यपि आजकल इन्श्योरेंस कम्पनियोंकी तादाद भारतमें उन्नतिकी ओर जा रही है, तौ भी, इस संख्या-वृद्धिसे लाभ इसके सिवाय कुछ भी नहीं कि कुछ रुपया तो लिमिटेडकी सूरतमें हमारी सरकारको चला जाता है, जिससे कि हमारी सरकारके ओहदेदारोंकी तन्ख्वाह पूरी होती रहती है और कुछ कम्पनीके चलानेवालोंको पहुँच जाता है। इसमें हमारी सरकार भी काफी सहूलियत देती है। बीमा कानून Insurance Act 1912 के मुताबिक कम्पनी खोलने वालोंको जमानतके तौरपर जो रकम जमा करनी पड़ती है, वह उधार मान ली जाती है। लोग यह जानते रहते हैं कि इस कम्पनीकी जमानत हो रही है। कम्पनी के विधाता लोग खूब रुपया लुटाते हैं और लिमिटेशन उनको बचाता रहता है। न जेल जाने देता है और न धोखा देनेसे ही रोकता है, परन्तु उन्हें स्वयं ध्यान देना चाहिये कि यह देश दरिद्र है Indian Insurance Report 1932 published by the Governmant of India में लिखा है कि गत ४ वर्षोंमें ५० नई कम्पनियाँ खुली हैं, जो सभी पूंजी से खाली हैं।

सरकार का यह भी कहना है कि जो कम्पनियाँ २० वर्षसे जारी हैं, उनमेंसे भी कुछ डगमग दशामें चल रही हैं। इससे यह स्पष्ट है कि हमारी सरकारको यह मालूम होनेपर भी कि ये बिना पूँजीकी हैं उन्हें लिमिटेड कर देती है। बिना पूंजीकी कम्पनी यदि चालाकी नहीं करेगी तो क्या करेगी? देशकी दौलतका यह दुरुपयोग करना सरकार-का कलंक है। १९१३ में ३६ कम्पनियाँ थी। १९३० तक ६८ हुईं और इस समय १३६ हैं। यानी गत ३ वर्षमें कम्पनियोंकी तादाद दुगनी हो गई। यदि इन नई कम्पनियों की यही दशा रही तो वह समय भी अब बहुत दूर नहीं है, जब बड़ी बड़ी कम्पनियोंको भी जलजला आने लगेगा? यहाँ पर यह विचारणीय है कि आया और कम्पनियोंके बढ़ानेकी आवश्यकता है या कि बीमा कानून १९१२ व १९२८ में कुछ तबदीलीकी जरूरत है। मेरा विचार तो यह है कि कानूनमें ही निम्नलिखित परिवर्तनोंकी जरूरत है:—

१—जमानत जो बीमा कम्पनीके खुलनेपर सरकारको देनी पड़ती है, वह नकद ली जावे।

२—बीमा कम्पनियाँ २५ सालके लिए खुलनी बन्द हो जानी चाहिये।

३—किसी बीमादारकी मृत्यु होनेपर या वाजिब होनेपर दफ्तरमें दरख्वास्त पहुँचनेके ३० दिनके अन्दर ही रुपया बीमादारको मिल जाना चाहिये। इस दरम्यान में न मिले, तो ॥) सैकड़ाका कम्पनी सूद देनेके लिए बाध्य हो।

एक प्रश्न यह भी महत्वपूर्ण है कि ये रोज नई बीमा कम्पनियाँ खुल क्यों रही हैं? इनके उद्घाटकोंका मुख्य उद्देश्य क्या है? इन प्रश्नोंके उत्तरमें देश-सेवाका नारा बुलन्द किया जाता है और गरीब जनताकी सेवाकी दुहाई दी जाती है पर विचारणीय बात यह है कि यदि इन भाइयोंका यह उत्तर ठीक है, तो ये पुरानी बीमा कम्पनियोंको मजबूत करनेमें अपनी शक्तियोंका सदुपयोग क्यों नहीं करते? भारतीय बीमा कम्पनियापर आज घोर संकट है। विदेशी कम्पनियोंका संघर्ष उन्हें क्षीण किये जा रहा है। ऐसी दशा में परस्पर सहयोग भावनाकी अत्यन्त आवश्यकता है। यदि इधर ध्यान न दिया गया तो मेरा निश्चित मत है कि नई कम्पनियोंका यह व्यसन देशके बीमा-व्यवसायके नाशका कारण होगा, क्योंकि मेरा विश्वास है कि गत ३ सालकी ६८ कम्पनियोंमें अधिकांश इन्श्योरेंसको बदनाम करनेमें ही कामयाब होंगी और इनमेंसे ५-७-१० को छोड़कर सबही बीमादाराका रुपया नष्ट करनेमें काफी सहायता देंगी। क्योंकि पूँजीसे खाली ये कम्पनियाँ बीमाका रुपया न चुका सकेंगी और इस प्रकार सारे व्यवसायको बदनाम करेंगी। कनाडाकी सन लाइफ बीमा कम्पनीकी मिसाल मौजूद है। कहा जाता है कि सन लाइफके खरीदे हिस्सोंकी कीमत आधीसे भी कम हो गई है, जिनका कि कोई मुनाफा नहीं मिल रहा है, इसने भी दो तीन साल से बोनस गिराना शुरू कर दिया। Gratuity Bonus भी बन्द कर दिया है। इस बातका उसके बीमा व्यवसायपर गहरा प्रभाव पड़ा है और १९३० की निस्बत १९३१ में २, ६०, ५२, १०० पौंडकी कमी आ गई है। बेचारे बीमादार ज्यादा मुनाफेके लालचमें आकर अपनी घरेलू कम्पनियोंको छोड़ कर विदेशी कम्पनियोंमें पहुँचे और इस प्रकार लोगोंने अपना रुपया बीमाकी सूरतमें गैर देशोंमें भेजा। जो

मानचैस्टर, लिवरपूल जैसे कारखानोंमें लगाया और इस प्रकार भारतीय बीमादारोंकी इमदादसे ही विदेशी कारखानेदारोंने हमारे देशी कारखानोंसे मुकाबला किया जिससे कि Karimbhoy जैसे मिलस बन्द हुए, जिनमें कि तीन तीन हजार हिन्दुस्तानी मजदूर काम करते थे। हमें इन विदेशी कारखानेवालोंसे कोई राग द्वेष नहीं है, पर Charity begins at home अर्थात् सखावत घरसे ही शुरू होनी चाहिए। एकबार दूरदर्शी पंडित जवाहरलाल नेहरूने अपने एक व्याख्यानमें कहा था कि इन विदेशी बैंक और बीमा कम्पनियोंके कारण भारतवर्ष-का अरबों रुपया विदेशोंमें पहुंच गया है। सनलाइफकी तरह भारतकी भी कुछ कम्पनियां बोनसको प्रति दिन बढ़ानेमें ताक हो रही हैं। चाहे Claims अदा हों या नहीं, परन्तु कम्पीटीशन जरूर होना चाहिए। Government Blue Bookसे मालूम होता है कि हिन्दुस्थान कोआपरेटिव कलकत्ताके Claims by death १९३१ में ४, ८१,००० रुपये थे, जिसमें कि ४, ७८,०००, की रकम १९३२में देने बाकी रहे। यानी ४,८१,०००मेंसे सिर्फ ३००० दिया। Dividendका तो कहना ही क्या? कलकत्ता के Insurance Worldमें एक इन्श्योरेंसके विशेषज्ञ ने लिखा था कि बोनसका ज्यादा देना कम्पनीकी जड़ों-को काटना है। साठ सालकी कम्पनियाँ उतना मुनाफा नहीं दे सकीं, जो २५, २५ सालकी कम्पनियों दे रही हैं। मालूम नहीं यह कहाँसे दे रहे हैं। जब कि सरकारी सूद की दर गिर रही है—इम्पीरियल तथा अन्य बैंक सूद कम कर रहे हैं, परन्तु ये कम्पनियां ज्यादा दिखा रही हैं इन कम्पनियोंका रुपया सम्भवतः स्वर्गमें सूदपर लगा हुआ है जहाँ कि वर्तमान अर्थ संकटका प्रभाव नहीं पड़ा। बोनस-की वृद्धिका स्वांग भरकर पुरानी कम्पनियोंको नष्ट करने-वाली कम्पनियोंको इस महत्वपूर्ण प्रश्नपर गौर करना चाहिए और सन लाइफके दुखान्त नाटकसे सबक लेकर परस्पर सहयोगके साथ आगे बढ़ना चाहिए।

४—मक्खियाँ भयंकर शत्रु हैं

उनसे बचनेके उपाय

[लेखक—पं० प्रभुनारायण त्रिपाठी "सुशील"]

१—मक्खियोंकी शरीर-रचना—

संसारमें ऐसा कोई स्थान, ग्राम, नगर या देश नहीं, जहाँपर मक्खियाँ न होती हों। प्रत्येक मनुष्यके घरमें ये वास करती हैं। घरके भीतर और बाहर कोई भी स्थान इनसे खाली नहीं। यदि संसारकी सारी मक्खियोंकी गणना की जाय, तो वे संसारकी मनुष्य संख्याकी लाखों गुणा होंगी।

मक्खीके शरीरके तीन भाग देखनेमें आते हैं। (१) सिर, (२) छाती और (३) पेट। छातीके साथही छः पैर बग़लमें लगे होते हैं, जिनमें काँटे होते हैं। इनके चार पंख होते हैं, जिनमें दो तो उड़ने और दो उड़ते समय शरीरको समतौल रखनेके काममें आते हैं। मक्खियोंके दो बड़ी मिली हुई आँखें होती हैं। उन दोनोंमें मिली हुई ४००० (?) आँखें होती हैं। उन दोनों संयुक्त आँखोंके बचे तीन छोटी आँखें होती हैं। स्पर्श करनेके लिये बड़ी-सी मूँछ होती है। अगले चपटे भागमें मुखके सामने सुईके समान सूँड़-सी एक चीज़ होती है, जिससे वह रस तरल पदार्थ आदि चूसती हैं। इनके जबड़े नहीं होते। मक्खियों-के पैरोंके नीचे दो मांस की गद्दियाँ होती हैं, जिनपर मुड़े हुए बाल होते हैं और जिनसे एक प्रकारका लसीला पदार्थ निकलता रहता है। इसी कारण वह बड़ी सुगमताके साथ चिकनी-से-चिकनी वस्तुओं पर दौड़ सकती है। इनका जीवन बहुत थोड़े समयका होता है। अधिक-से-अधिक यह ५-६ सप्ताह तक जीवित रहती है। अपने शरीरको वह अपनी टांगों द्वारा साफ रखती हैं। मक्खियोंको सुननेकी शक्ति नहीं होती। इनको आपके किसी भी प्रकारके शब्द सुनाई नहीं पड़ते। यदि आप इनको मारनेकी कोशिश करें और उनकी ओर अपना हाथ बढ़ावें, तो वे बहुत जल्द आपके इरादेको जानकर उड़ जायँगी। वे मर भी तभी सकती हैं, जब आप जल्दी में इन्हें मसल दें और वे उड़ न सकें। यदि आप उनको मारनेके लिये धीरे-धीरे हाथ

उनकी ओर बढ़ावें तो उनकी ; अन्य इन्द्रियाँ इनको तुरन्त ही आपकी हरकतें बतला देंगी।

मक्खियाँ सड़ी-गली चीज़ों और कूड़ा-करकट आदि गंदी जगहोंमें अंडे देती हैं। मक्खी एक साथ १२५ से लेकर १००० तक अंडे देती हैं। चौमासे में तो ये कई गुनी अधिक पैदा होती हैं। ये अंडे १२ घंटे में फूटते हैं और इनमेंसे छोटे-छोटे सफेद रंगके बिना आँख या टाँगवाले कीड़े निकलते हैं, जिन्हें इल्ली (Larva) कहते हैं। कुछ समय बाद इन कीड़ोंका चमड़ा सिकुड़कर कठोर होकर एक गिलाफ-सा बन जाता है, जिसके भीतर वह इल्ली (Larva) शान्त रूपसे पड़ा रहता है। इल्लीको इस अवस्थामें शंखी (Pupa) कहते हैं। इस प्रकार ८-९ दिनोंमें इस शंखीसे सर्वांगपूर्ण मक्खियाँ निकलती हैं।

२—मक्खियोंके उपद्रव

इनकी टांगों द्वारा हर प्रकारकी बीमारियोंके कीटाणु इधर उधर ले जाए जाते हैं। यह संसारमें अनेक प्रकारकी व्याधियोंको फैलाकर अनेक लोगोंकी मृत्युका कारण बनती हैं। फोड़ोंके मवादमें स्वयं कीटाणु होते हैं; जो घाव पर बैठनेवाली मक्खियोंकी टांगोंमें लगकर हजारोंकी संख्या में इधर-उधर फैलते हैं। मक्खियाँ, फोड़ोंसे जिन कीटाणुओंको ले जाती हैं, उन्हें स्पर्श द्वारा किसी घाव तक पहुँचकर मवाद पैदा कर देती हैं।

हैजेके दिनोंमें हैजेके मरीजोंकी कै और दस्त पर जो मक्खियाँ बैठती हैं, वे हैजेके असंख्य कीटाणुओंको अपने शरीरपर तथा अन्दर लेकर भोजनके पदार्थों तथा मिठाइयों-पर जा बैठती हैं। टाइफाइड ज्वर (मोतीझरा) दुखती आँखों, अतिसार, और इसी प्रकारकी दूसरी संक्रामक बीमारियोंको भी फैलाकर मक्खियाँ ही मनुष्यको भयंकर स्थितिमें डाल देती हैं।

यदि मल-मूत्र-थूक आदिको तुरत गाड़ या जलाकर इनको मक्खियोंके स्पर्शसे बचा रखे तो ये बीमारियाँ एकसे दूसरे तक इतनी शीघ्र न फैल सकें। बाजारकी खुली दूकानों की मिठाइयाँ, जिन पर मक्खियाँ भिनभिनाया करती हैं कदापि न खानी चाहिए, क्योंकि उनपर बीमारियोंके कीटाणु बहुतायतसे होते हैं।

मक्खियोंसे बचनेके उपाय—

(१) घरमें तथा बाहर, हर जगह सफाई रखनी चाहिए (२) घरमें खाने-पीनेकी चीजें इधर-उधर खुली न पड़ी रहें। (३) घरके आस-पासकी जगहमें घोड़ेकी लीद व फलोंके छिलके, पत्ते, गाय-भैंसका गोबर, कूड़ा-करकट आदि गन्दी चीजें फेंकी न जाएँ, क्योंकि इनके सड़ने पर मक्खियाँ इन्हींमें अण्डे देंगी और उनसे अनगिनत मक्खियाँ उत्पन्न होंगी। (४) परनालों और पाखानोंको खूब साफ रक्खा जाय और उनमें फिनायल भी छोड़ा जाय, जिससे उनपर मक्खियाँ न भिनभिना सकें। (५) सड़ी-गली शाक भाजी घरमें न रक्खी जाय। (६) पीने तथा खानेकी चीज़ों पर मक्खियाँ न बैठने पावें, इसलिये उन्हें ढककर रखना चाहिये। (७) बाजारमें खाने-पीनेवाली चीजें हर समय शीशेकी आलमारियों या महीन जालियोंवाले पिंजड़ोंमें रखी जानी चाहिये। (८) शरीर पर मक्खियोंको बैठने न देना चाहिये। (९) रसोई या भोजनके घरमें जो द्वार या खिड़कियाँ हों उनमें बाँसकी पतली-पतली छिपाकें पास-पास लगी रहनी चाहिये उसमें बारीक छेदवाली तारकी जाली लगाकर भी मक्खियोंसे बचाव किया जा सकता है। (१०) गुड़ और गोंद कागजपर चुपड़कर मक्खियों को फँसाकर दूर किया जा सकता है। (११) एक भाग मिट्टीका तेल, आठ भाग पानी और आठ भाग दूधका मिश्रण बनाकर घरमें छींटनेसे मक्खियाँ भाग जाती हैं। (१२) एक प्याला खाँड़के पानीमें थोड़ा बाइक्रोमेट आफ पोटाश डालकर उस पानीको घरमें रखे तो उससे मक्खियाँ दूर होंगी। (१३) कपूर, हरताल, कुटकी और पियाजकी धूनीसे भी मक्खियाँ भागती हैं।

[साप्ताहिक प्रतापसे प्रक्षिप्त]

विज्ञानंब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते,
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० । ३।५ ॥

भाग ३८ } प्रयाग, कुंभ, संवत् १९९० । फरवरी १९३४ { संख्या ५

मंगलाचरण

[ले० स्वर्गीय पंडित श्रीधर पाठक]

(१)

बन्दहुं मातृ भारत धरनि
सकल-जग-सुख श्रैनि, सुखमा-सुमति-संपति-सरनि

(२)

ज्ञान-घन, विज्ञान-धन-निधि, प्रेम-निर्झर-झरनि
त्रिजग-पावन-हृदय-भावन-भाव-जन-मन-भरनि
बन्दहुं मातृ भारत धरनि

(३)

सेत हिमगिरि, सुपय सुरसरि, तेज-तप-मय तरनि
सरित-वन-कृषि-भरित-भुवि-छवि-सरस-कवि-मतिहरनि
बन्दहुं मातृ भारत धरनि

(४)

न्याय-मग-निर्धार-कारिनि, द्रोह-दुर्मति-दरनि
सुभग-लच्छिनि, सुकृत-पच्छिनि, धर्म-रच्छन करनि
बन्दहुं मातृ भारत धरनि

वैज्ञानिक विचारोंमें क्रान्ति
ऐन्स्टैनका सापेक्षवाद

[ले० प्रो० दत्तात्रेय गोपाळ मटंगे, एम्० एस्-सी० (प्रयाग), एफ्० पी० एस्० (लंडन), भौतिकाचार्य्य, राबर्टसन कालिज, जबलपुर । अनुवादक, श्री भगवानदास दुबे, विशारद ।]

(गतांकसे आगे)

७—नदीमें नावकी सैर

सापेक्षवेगके भेद

जब हम कहते हैं कि गाड़ी चालीस मीलके वेग-से जाती है, उस समय हम पृथ्वीको स्थिर मानते हैं। इसी प्रकार 'जहाज बीस मील प्रति घंटेके वेगसे गया' ऐसा कहते समय हम पानीको स्थिर मानते हैं। वाहनोंमें वेग और प्रवास नापनेके जो यन्त्र रहते हैं वे इसी तत्वपर बनाये जाते हैं कि जिसपर वाहन चलता है, वह वस्तु स्थिर है।

आगे दिये उदाहरणमें नावका वेग पानीके वेगसे सापेक्ष लिया गया है।
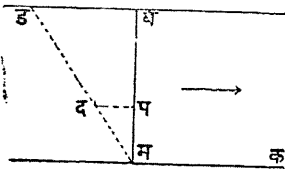
चित्र ६

चित्र ६में म ब नदीका पाट है। नदीका पानी स्थिर है। म ब दूरी २०० फुट है। म जिस किनारे पर है उसमें म से २०० फुट दूरी नापकर निशानके लिए क पर एक पत्थर गाड़ दिया।

केशव और नारायण नामके नाविक म से ठीक बारह बजे निकले। केशवको ब तक और नारायण को क तक जाकर वापस लौट आना है। दोनों ही ५ फु। से०के वेगसे जाते हैं। दोनोंका प्रवास ८० से० में पूरा होता है। उनकी यात्राका विवरण इस प्रकार है—

केशव—	म से निकलना	—	१२ घं० ० से०।
	ब पर पहुँचना	—	१२ घं० ४० से०।
	म पर लौटना	—	१२ घं० ८० से०।
नारायण—	म से निकलना	—	१२ घं० ० से०।
	क पर पहुँचना	—	१२ घं० ४० से०।
	म पर लौटना	—	१२ घं० ८० से०।

इसलिए दोनों पत्रक समान हैं।

अब मान लीजिये कि पानी ३ फु। से०के वेगसे म—>क दिशामें बहने लगा। केशव और नारायण-के पानीके सापेक्ष वेग पहलेके अनुसार ५ फु। से० हैं। साथ ही वे ठीक १२ बजे प्रवासके लिए मसे निकले।

केशवका प्रवास—केशवको अपने पहिलेके रास्ते मबसे उसी वेगसे जाना सम्भव नहीं है। इसका कारण यह है कि पानी उसको बाणकी दिशा-में नीचेकी ओर खींच ले जावेगा। इसलिए उसको अपनी नाव मड दिशामें इस प्रकार झुकाकर इस-लिए चलानी पड़ेगी, कि वह एक सेकंडमें मद दूरी = ५ फुट चलेगा, जितनी देरमें पानी उसको दप = ३ फुट दूरी नीचेकी ओर बहा ले जावेगा। इसलिए उसकी दिशा मब पर ही रहेगी। इस प्रकार प्रति सेकंड,।

मप $=\sqrt{५^२-३^२}=\sqrt{१६}=४$ फु०के वेगसे नाव ब की तरफ जावेगी। उसकी नावमें जो यंत्र हैं वे ५ फु। से० ही बतलावेंगे, किन्तु मब दिशामें ४ फु से०के वेगसे जानेके कारण प्रवासमें २००÷४=५० सेकंड लगेंगे और लौटनेमें भी उतना ही समय लगेगा,

इसलिए कुल प्रवासमें पूरा समय १०० से० लगेगा।

नारायणका प्रवास—म से कको जानेमें नदीका वेग सहायक होता है, किन्तु लौटनेमें वही विरोध करता है। जानेमें उसका खुदका वेग ५ फु। से० और प्रवाहका वेग ३ फु। से०, इस तरह दोनोंका योग ८ फु। से० होता है। इस वेगसे म—>क जाने में २००÷८=२५ से० लगेंगे। लौटते समय प्रवासके वेगके विरोधके कारण नावका वेग ५—३=२ फु। से० होगा अर्थात् इस प्रवास में २००÷२=१०० से० लगेंगे। इसलिए म—>क और क—>मके प्रवासमें १२५ से० लगेंगे।

इसलिए नदीमें वेग होनेपर नारायण और केशव-का यात्रा-विवरण इस प्रकार बन सकता है—

केशव—म से निकलना—१२ घं. ० से०।
ब पर पहुँचना—१२ घं. ५० से०।
म को लौटना—१२ घं. १०० से०।

नारायण—म से निकलना—१२ घं. ० से०।
क पर पहुँचना—१२ घं. २५ से०।
म को लौटना—१२ घं. १२५ से०।

अर्थात् म पर केशवके पहुँचनेके २५ से० बाद नारायण पहुँचेगा।

दोनोंके लगे समयका अनुपात

$$\frac{\text{नारायणको लगा हुआ समय}}{\text{केशवको लगा हुआ समय}} = \frac{१२५}{१००} = \frac{५}{४}$$

इसी बातको बीजगणितकी पद्धतिसे इस प्रकार लिख सकते हैं—

मान लें कि मब = मक = त
नावोंका वेग = च
पानीका वेग = य

(१) केशवका प्रवास—

म —> ब —> म मार्गपर

केशवका वेग $=\sqrt{च^२-य^२}$

म —> ब के लिए समय

$$= \frac{त}{\sqrt{च^२-य^२}}$$

म—>ब—>म के लिए पूरा समय

$$= \frac{२ त}{\sqrt{च^२-य^२}}$$

(२) नारायणका प्रवास—

म —> क वेग = च + य
क —> म वेग = च — य

$$म \longrightarrow क \text{ के लिए समय} = \frac{त}{च+य}$$

$$क \longrightarrow म \text{ के लिए समय} = \frac{त}{च-य}$$

∴ म—>क—>म के पूरे प्रवासके लिए समय

$$= \frac{त}{च+य} + \frac{त}{च-य}$$

$$= \frac{तच - तय + तच + तय}{च^२-य^२}$$

$$= \frac{२ तच}{च^२-य^२}$$

∴ पूरी यात्राके लिये लगे हुए समयोंका अनुपात

$$= \frac{(म \longrightarrow ब \longrightarrow म) \text{ समय}}{(म \longrightarrow क \longrightarrow म) \text{ समय}}$$

$$= \frac{२ त}{\sqrt{च^२-य^२}} \div \frac{२ तच}{च^२-य^२}$$

$$= \frac{२ त}{\sqrt{च^२-य^२}} \times \frac{च^२-य^२}{२ तच}$$

$$= \frac{\sqrt{च^२-य^२}}{च}$$

इसमें अंश हरसे सदा छोटा रहेगा, इसलिए (म—>क—>म) के प्रवासका समय अधिक रहेगा।

सारांश—

यदि (१) दो नावोंका पानीसे सापेक्ष वेग समान हो, और (२) मक और मब दूरियाँ बराबर हों, साथ ही एक प्रवाहकी दिशामें और दूसरी उसके समकोण हो

तो,

म —> क —> म के प्रवासमें

म —> ब —> म के प्रवाससे

अधिक समय लगता है और उन समयोंका अनुपात

$$\frac{\text{च}}{\sqrt{\text{च}^2-\text{य}^2}}$$ रहता है।

[पहिले दिये हुए उदाहरणसे,

च=५ फ़ुसे०

य=३ फ़ुसे०

$\therefore$ समयका अनुपात $= \frac{5}{\sqrt{5^2-3^2}} = \frac{5}{4}$]

८—प्रकाशकी लहरें या कण ?

सबसे तेज चलनेवाले प्रकाशकी चाल कैसे नापी गयी ?

जब हम प्रकाशकी किरणोंके विषयमें कुछ कहते हैं तो हमें उनके आधारमें कोई न कोई पदार्थ मानना आवश्यक है। प्रकाशको एक स्थानसे दूसरे स्थान-तक जानेमें कुछ न कुछ किन्तु निश्चित समय लगता है। रोमर नामक वैज्ञानिकने जब प्रथम बार प्रकाशका वेग निश्चित किया, तब निम्नलिखित प्रश्न खड़ा हुआ।

प्रकाश अपने उद्गमस्थानसे निकलनेपर और लक्ष्यस्थानपर पहुँचनेके पहिले किस दशामें था ? यदि वह तरंगोंके रूपमें था तो वे किस पदार्थकी तरंगें थीं ? इन प्रश्नोंका ठीक उत्तर देनेके लिए वैज्ञानिकोंको एक तरल और सर्वव्यापी पदार्थ मानना पड़ा। उसका नाम उन्होंने 'ईथर' रखा। जिसको हम शून्यदेश समझते हैं, वहाँ भी ईथर या आकाश पदार्थ * भरा हुआ है। अणु और परमाणु के बीचमें जिस प्रकार ईथर भरा है, उसी प्रकार इस अपरिमित विश्वमें भी वह भरा है। हम उसे एक स्थानसे निकालकर दूसरे स्थानमें नहीं भर सकते। जिस तरह प्रकाशकी तरंगें ईथरमेंसे जाती हैं, उसी प्रकारकी बेतारवाली तरंगें भी उसमेंसे जाती हैं। जिस प्रकार पानी एक जगह ही हिलता है और उसकी लहरें ही केवल दूर जाती हैं, उसी प्रकार ईथर एक ही स्थानपर हिलता है, केवल प्रकाशकी लहरें ही दूरतक जाती हैं। इन तरंगोंका वेग जड़-द्रव्य-रहित शून्यदेशमें १,८६,००० मील प्रति सेकंड अथवा ३,००,००० कि–मी०। से० है।

यदि पानीकी सतहपर दो स्थानोंमें पानीको हिलाकर एक सी लहरें उठती हों, तो जिस जगह दोनोंके शीर्षोंका मेल होगा, वहाँ पानी बहुत जोरसे हिलेगा। जिस जगह एक शीर्ष और दूसरा पाद मिलेंगे, वहाँपर पानी ज्योंका त्यों रहता है। इन दो सीमाओंके बीचमें पानी कम या अधिक हिलता रहेगा।

आकाश या ईथरके साथ भी यही बात है। उसमें यही ध्यान देना चाहिए, कि जहाँ बहुत कम्पन होता है, वहाँ प्रकाशकी तीव्रता अधिक होती है और जहाँ कम्पन कम होता है वहाँ प्रकाश मन्द रहता है। जहाँ कम्पन बिलकुल नहीं होता है वहाँ अन्धकार पाया जाता है।
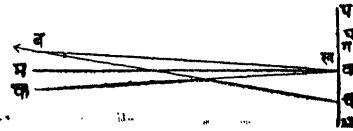
चित्र ७

चित्र ७ में ब और फ ऐसे दो विन्दु दीपक हैं, जो एक सरीखे और एक रंगकी तरंगें उत्पन्न करते हैं। तरंगके एक शीर्षसे उसके आगेवाले या पीछेवाले शीर्ष तककी दूरीको तरंग-दैर्घ्य कहते हैं। उसको सूचित करनेके लिए 'ल' का उपयोग किया जाता है।

यदि १ से-मी० के १ लाख भाग किये जावें तो लाल रंगका अनुभव करानेवाली तरंगोंका दैर्घ्य ८ भाग, पीली-का ६ भाग, और बैंगनीका ४ भाग रहता है। इसको अधिक स्पष्ट यों किया जा सकता है। अपने हाथके अंगूठेके नखकी चौड़ाईपर लाल रंगकी १२,५०० और बैंगनी रंगकी २५००० लहरें समा सकती हैं।

* विज्ञानके पाठक ईथरके पर्य्याय "आकाश" शब्दसे इसी अर्थमें पूर्णतया परिचित हैं। सं०

ब और फ से एक ही लम्बाईकी तरंगें निकलती हैं। साथ ही साथ जब ब से तरंगशीर्ष निकलता है तब फ से भी निकलता है। म बफ का मध्यविन्दु है और पभ इस प्रकारका पर्दा रखा गया है, कि उसपर मक लम्ब है। अर्थात्　　　　बक = फक

एक ही समय ब और फ से यदि दो शीर्ष निकलें तो वे क पर एक ही क्षण पहुँचेंगे। उस समय क परके ईथरका कम्पन अधिक हो जावेगा जिसके फलस्वरूप वहाँपर तीव्र प्रकाशका अनुभव किया जावेगा, क्योंकि प्रकाशकी वे लहरें अपना प्रवास एक ही समयमें पूर्ण करती हैं।

अब क से प्रारम्भ कर प की तरफ चलें। मान लें कि ख एक ऐसा विंदु है कि बख दूरी खफ से कम होनेके कारण।

फख—बख=$\frac{1}{2}$ ल ∴ खपर अन्धकार। इसी प्रकार

फग-बख=ल। ∴ ग पर प्रकाश। और

फघ-बघ=$\frac{3}{2}$ल। ∴ घ पर अन्धकार।

इसी प्रकार प और भ की तरफ जानेसे प्रकाश और अन्धकार की धारियाँ दीखेंगी। अब किसी एक प्रकाशित धारीका अध्ययन करें। मान लें च पर ऐसी प्रकाशित धारी है, और

बच − फच = ५ ल.

चबको जोड़कर उसे बाणकी दिशामें बढ़ावें। अब यदि ब विन्दु बाणकी दिशामें इसी रेखापर गमन करता जावे तो वहाँ प्रारम्भ हुए शीर्षोंको च तक आनेमें अधिक समय लगेगा। तरंगोंकी लम्बाई यदि ब हो और ब को हमने $\frac{1}{2}$ ल की दूरीसे हटाया, इसलिए जब तक बसे निकलनेवाला शीर्ष चपर पहुँचता है तबतक फसे निकलनेवाला शीर्ष चसे आगे निकल जाता है, और पीछे आनेवाला पाद ब से आये हुए शीर्षके साथ संयोग पाता है, जिससे चपरके आकाशमें कम कम्पन होनेसे वहाँपर अन्धकार होता है।

तरंगोंके परस्पर साहाय्य अथवा विरोधके कारण प्रकाश तथा अंधकारकी जो धारियाँ उत्पन्न होती हैं उनमेंसे यदि एककी तरफ ध्यान रखा जावे और उस स्थान पर यदि प्रकाशकी तीव्रता कम या अधिक मालूम हो, तो इससे ऐसा ही अनुमान निकाला जा सकता है, कि पहिले लगनेवाला कालान्तर अब कुछ कम या अधिक हो गया है।

६-क्या ईथरकी स्थिति भी बदला करती है? क्या वेगसे भार या मात्रा भी बढ़ जाती है?

(१)

संवत् १९०८में फीजोंने एक बहुत ही महत्वका प्रयोग किया। उसके प्रयोगका रूप चित्र ८ में समझने मात्रके लिए ऐसा दिखाया गया है। उसका ठीक-ठीक रूप ऐसा नहीं है।
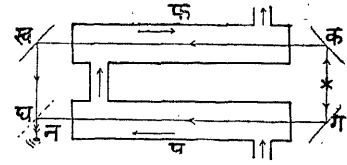
चित्र ८

प और फ दो नलियाँ हैं। उनके मुख समतल कांचसे ढके हैं। बगलसे एक नलीमें पानी जानेके लिए, उससे दूसरीमें, और फिर उससे भी बाहर जानेके लिए दूसरी नलियाँ, लगायी गयी हैं। * प्रकाशका एक विन्दु-दीपक है। क ख ग और घ आईने तिरछे लगाये गये हैं। घ के ऊपर अधूरा पारा चढ़ा है। ऐसे आईनेपर प्रकाश डालनेसे आधा प्रकाश पार चला जाता है और आधा परावर्तित हो जाता है। सुगमताके लिए ऐसे आईनेको हम अधूरा आईना कहेंगे। फ और प नलियोंमें पानी भरा है। * से प्रकाश-किरण निकलकर, ग से परावर्तित होकर प नलीके पानीमेंसे, अधूरे आईने घ पर फिर परावर्तित होकर न नेत्रमें पहुँचती है। दूसरी ओरकी किरण क से परावर्तित होकर फ नलीके पानीमेंसे ख आईने पर पड़ती है। वहाँसे परावर्तित होनेके पश्चात् घ अधूरे आईनेमेंसे पार होकर प नलीमेंसे आनेवाली

किरणोंसे संयोग पा जाती है। इस कारण न नेत्रको प्रकाश और अन्धकारकी धारियाँ दीखती हैं।

नलीमें जब पानी स्थिर है, तब प्रकाश-धारियोंमें एककी तरफ हम ध्यान देंगे। जिस दिशामें बाण दिखलाये गये हैं, उस दिशामें पानी छोड़ेंगे। जिस प्रकार हम पानीका वेग बढ़ावेंगे, उसी प्रकार प्रकाश-की तीव्रतामें अन्तर पड़ेगा। इसका कारण यह है कि प नलीमें प्रकाशका और पानीका प्रवाह एक ही दिशामें है और फ नलीमें विरुद्ध दिशामें। इसलिए समयके जिस अन्तरसे वे किरणें पहले मिलती थीं उससे भिन्न अन्तरसे अब मिलेंगी। इसलिए धारी-की तीव्रतामें भी अधिकता या कमी आजावेगी।

[अब $\frac{\text{आकाशमें प्रकाश वेग}}{\text{पारदर्शी पदार्थमें प्र० वे०}} = \text{क्र}$

इस अनुपातको परमवर्तनांक कहते हैं। इसके लिए 'क्र' का उपयोग किया जावेगा। तो

क्र (पानी) = $\frac{4}{3}$

क्र (कांच) = $\frac{3}{2}$

इस तरह भिन्न-भिन्न पदार्थोंके लिए क्र का भिन्न भिन्न मूल्य रहेगा। यदि ऊपरका समीकरण उलट दिया जावे, तो

$$\frac{\text{पारदर्शी पदार्थमें प्रकाशवेग}}{\text{आकाशमें प्रकाशवेग}} = \frac{1}{\text{क्र}}$$

∴ पारदर्शी पदार्थमें प्रकाशवेग

$$= \frac{1}{\text{क्र}} \times \text{आकाशमें प्र० वे०}$$

किन्तु आकाशमें प्रकाशवेग = १ प्रवे। से०

∴ पारदर्शी पदार्थमें प्रकाशवेग = $\frac{1}{\text{क्र}}$ प्र। से०]

यदि पानी प प्रवे। से० के वेगसे नलीमें बहता होवे, तो उसका वेग = $\frac{1}{\text{क्र}} + \text{प}$ आना चाहिए था।

यदि पानीके बहनेसे ईथर कि स्थितिमें कोई अन्तर न आता होता, तो उसका वेग $\frac{1}{\text{क्र}}$ ही होना चाहिए था। परन्तु यह आश्चर्यकी बात है, कि वेग न तो $\frac{1}{\text{क्र}} + \text{प}$ रहा और न $\frac{1}{\text{क्र}}$ ही आया, किन्तु उसका मान बीच हीमें $\frac{1}{\text{क्र}} + \text{प} \left(1 - \frac{1}{\text{क्र}^2}\right)$ आया।

उपरिलिखित प्रयोगने वैज्ञानिक विचार-परम्परामें हलचल पैदा कर दी। फिर भी फ्रेनेने इस प्रकार इसका कारण बताया "जिस प्रकार नदीकी तली परकी रेत न तो पानीके वेगसे बहती है और न स्थिर ही रहती है, वह किसी एक मध्यस्थ वेगसे जाती है, उसी प्रकार प्रवाहित पानीमें ईथरकी स्थिति है, किन्तु ईथर सरीखा हलका तरल पदार्थ किस प्रकार रेतसे वज़नदार पदार्थकी भाँति पानीमें वेग पा सकता है, इसका सन्तोषप्रद उत्तर न मिल सका, और लोगोंने विवश होकर इस कारणको स्वीकार किया।

(२)

विद्युत्कणों या इलैक्ट्रनोंके आविष्कृत होनेके पश्चात्, प्रयोग करते हुए कॉफमन इस निष्कर्षको पहुँचा, कि विद्युत्कणोंका जाड्य वेगके साथ बदलता है, अर्थात् यदि वेग बढ़ जावे, तो कणोंका जाड्य भी बढ़ जाता है। न्यूटनके नियमके अनुसार पदार्थोंका जाड्य नियत रहना चाहिए। परन्तु यदि इसको स्वीकार करते हैं, तो काफमनके प्रयोगोंका उत्तर नहीं मिलता। इसलिए सर जे० जे० टामसनने इस प्रकारका नियम-परिवर्तन करते हुए गणित किया, कि पदार्थोंका वेग गतिके सापेक्ष बदलता है। उन्होंने इस प्रकार माना, कि यदि पदार्थ-का जाड्य ज और वेग व प्र०। से० हो, तो,

$$\text{जाड्य} = \frac{\text{ज}}{\sqrt{1 - \text{व}^2}}$$

जाड्यके लिए इतना मान रखनेपर उनका उत्तर कॉफमनके उत्तरसे मिल गया।

ऐसे कुछ प्रयोग हैं, जिनके लिए न्यूटनके नियमा-नुसार गणित करनेपर समाधान करनेवाले उत्तर न मिल सके। इन प्रयोगोंमें माइकेलसन्-मोर्ले (मा० मो०) का प्रयोग बहुत महत्वका है। अगले प्रकरणों में

मा० मो० के प्रयोग, उससे निकाले गये अनुमान और फलोंका विवेचन किया जावेगा।

१०—क्या ईथर नहीं है ? या धरती अचला है ?

माइकेलसन् और मार्लेका प्रयोग

माइकेलसन् और मोर्लेने (संक्षेपमें मा०मो०ने) संवत् १९४४में एक अत्यन्त ही महत्वका प्रयोग किया।
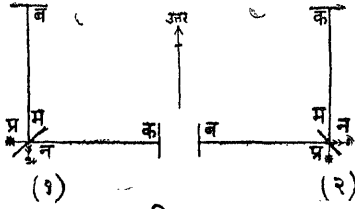
चित्र—९

देखो चित्र ९ (१)। प्र एक विन्दु दीपक है। म एक अधूरा आईना है जो तिरछा रखा हुआ है। ब और क दो आईने म से एक समान दूरीपर रखे हैं। प्र से जो किरण निकलकर म पर पड़ती है उसके दो भाग होजाते हैं—एक भाग परावर्तित होकर क से अपने पूर्व-पथपर ही लौट आता है और फिर म से परावर्तित होकर न नेत्रमें जाता है। दूसरा भाग ब आईनेपर पड़कर और फिर परावर्तित होकर म में से न नेत्रमें जाता है। इन दो किरण-भागोंका संयोग होनेसे न नेत्रको प्रकाशकी धारी दीखती है। म के पूर्वकी ओर क और म के उत्तर की ओर ब है।

पृथ्वी अपनी कक्षा पर १८॥ मी०। से० के वेगसे जाती है, इससे म —> क —> म पूर्व-पश्चिम दिशामें, अर्थात् पृथ्वीके वेगकी रेखामें होगा। और म —> ब म इस दिशाके समकोणपर होगा। इसलिए जो किरणें उत्तर-दक्षिण प्रवास करती हैं, वे पूर्व-पश्चिम प्रवास करनेवाली किरणोंकी अपेक्षा कम समयमें लौट आवेंगी। ऐसी स्थितिमें एक धारीके ऊपर दृष्टि रखते हुए पूरे यंत्रको म केन्द्र पर ९०° के कोणसे घुमाया। इससे स्थिति चित्र ९ (२) के अनुसार आ गयी। म एक ही स्थानपर स्थित रहा, क पूर्व दिशासे उत्तरकी ओर हो गया, और ब उत्तरसे पश्चिमकी ओर हो गया। मान लें कि पहिली स्थितिमें उत्तर-दक्षिण प्रवासके लिए श सेकंड लगते हैं और पूर्व-पश्चिम प्रवासमें (स सेकंड अधिक) श + स से० लगते हैं। जिस धारीकी ओर लक्ष्य रखा है, वह धारी स सेकंडके अन्तरके संगत है। इसलिए यन्त्रको घुमानेपर जो किरण पहिले स सेकंड बाद आती थी, वही अब स सेकंड पहिले आवेगी। इसलिए यन्त्रको घुमानेसे कालान्तर स + स सेकंडसे बदल जावेगा। इस कारण उस धारीकी जो तीव्रता पहिले थी, उसमें भी अन्तर होना चाहिए, किन्तु इस प्रयोगके कई बार करनेपर भी कोई अन्तर नहीं देखा गया। पृथ्वीका वेग १८॥ मी०। से० मानते हैं। यह यदि इसका $\frac{1}{२०}$ भी होता, तो भी इस धारीकी तीव्रतामें अन्तर देखा जाता।

इस अभाव-सूचक परिणामका कोई सन्तोषजनक उत्तर न मिल सका। यदि पृथ्वी स्थिर है, ऐसा मान लें, तो ब्रेडलेको तारेकी दिशामें झुकाव किस कारण दीखा ? मा० मो० के प्रयोगके अनुमानके अनुसार ईथरकी अपेक्षा पृथ्वी स्थिर माननी पड़ती है। यदि ब्रेडलेके अवलोकनोंको मानें तो पृथ्वीमें वेग है, ऐसा मानना पड़ेगा। इनमें सत्य क्या है इसपर एक बड़ा प्रश्न खड़ा हो गया। ईथर नहीं है, ऐसा माननेके लिए कोई तैयार नहीं था। और पृथ्वी स्थिर है, ऐसा मानना भी कठिन था।

पहिलेके समान इसका भी जवाब फिट्ज़जेराल्ड और लॉरेन्सने दिया। वह इस प्रकार है—ईथरमें जब पदार्थ गमन करते हैं, तब वे उस रेखामें संकुचित हो जाते हैं। इस संकोचका नापना असम्भव है क्योंकि जिस स्केलको हम उस दिशामें रखकर नापेंगे, वही उसी अनुपातसे संकुचित हो जाता है। इससे उस संकोचको नापनेका कोई तरीका नहीं है, और चूँकि प्रवासोंके लिये लगे हुए समयका अनुपात (नाववाले उदाहरणके प्रमाणसे)

$$\frac{(\text{म}\rightarrow\text{क}\rightarrow\text{म})\ \text{समय}}{(\text{म}\rightarrow\text{ब}\rightarrow\text{म})\ \text{समय}} = \frac{\text{त्त}}{\text{त्त}^2 - \text{य}^2}$$

[यहाँ त्त ईथरके सापेक्ष प्रकाशका वेग है और य ईथरके सापेक्ष पृथ्वीका वेग है] और चूँकि समयके अन्तरमें कोई फर्क नहीं पाया जाता, इसलिए उन दो दूरियोंमें व्युत्क्रमका सम्बन्ध होना चाहिए, अर्थात्—

$$\frac{(\text{म}\rightarrow\text{क}\rightarrow\text{म})\ \text{अन्तर}}{(\text{म}\rightarrow\text{ब}\rightarrow\text{म})\ \text{अन्तर}} = \frac{\sqrt{\text{त्त}^2 - \text{य}^2}}{\text{त्त}}$$

फिर भी ईथर सरीखे पदार्थमें गमन करते हुए, किसी पदार्थमें इसी अनुपातसे क्यों संकोच होगा, इस प्रश्नका ठीक तरहसे समाधान न हुआ और किसी दूसरे समाधान-कारक उत्तरके अभावमें यही माना जाने लगा। किन्तु इन सब प्रयोगोंका परिणाम यही निकला, कि न्यूटनके नियमानुसार यदि किसी वस्तुके सापेक्षवेग या जाड्यका गणित किया जावे, तो वह प्रयोगोंके फलके बराबर नहीं होता। इसलिए पुराने सिद्धान्तोंपरसे लोगोंका विश्वास उठ गया, पर उनके स्थानमें कोई सर्वमान्य सर्वनिष्ठ नये सिद्धान्त उपलब्ध नहीं थे। वैज्ञानिक संसारमें यह एक बड़ी अनिश्चितता सी उत्पन्न हो गयी।

इन सब कठिनाइयोंमेंसे प्रोफेसर आल्बर्ट ऐन्स्टैनने मार्ग निकाला। पहिले जो स्वयंसिद्ध या स्वीकृत बातें थीं उनको छोड़कर उसने नयी बातोंको ग्रहण किया और उनपर अपनी उपपत्तिकी रचना की। इन नये सिद्धान्तोंके कारण जड़-जगत्-विषयक वैज्ञानिकोंकी दृष्टि बदल गयी। उन सिद्धान्तोंका खाका आगेके प्रकरणसे खींचा जावेगा।

विचित्र ढंगके इलाज

(१) उड़नेसे बहरापन मिटा

न्यूयार्ककी मिस लीके पास एक १४ महीने का कुत्ता था उसका नाम माइकी था। पर था वह बड़ा सुंदर। एक बार जब मिस ली एक जहाजपर सफर कर रही थी तो कुत्ता किसी कारणसे बहरा हो गया।

मिस लीने सुना था कि यदि बहरा मनुष्य हवाई जहाजके उल्टे सीधे खेल करे तो बहरा मनुष्य फिर सुनने लगता है।

अपने कुत्तेका बहरापन दूर करनेके लिये मिस लीने एक हवाई जहाज किरायेपर लिया। इसके संचालक एक बड़े मशहूर उड़ाके मि० वाल्टर हिंगले थे। १६००० फीटकी ऊँचाईपर हवाई जहाज लेजाकर मि० वाल्टरने उल्टे सीधे खेल किये। कुत्तेको सीटपर चमड़ेके पट्टोंसे बाँध दिया गया था।

कहा जाता है कि कुत्ता अब उतना बहरा नहीं है पर इस इलाजमें मिस लीके हजारों रुपये खर्च हो गये।

(२) मक्खीके डंकसे गठिया रोग गया

आगस्ट हालग्रीन नामके एक सज्जन बहुत समयसे गठिया रोगसे पीड़ित थे। उन्हें एक विचित्र खयाल हो गया और वह सही भी निकला। उन्होंने सोचा कि यदि मेरे कुछ मधुमक्खियाँ डंक मारें तो मैं अच्छा हो जाऊँ।

उस समय अर्थात् १७ साल पहिले आपकी आयु ५६ वर्षकी थी फिर भी बड़े उत्साहसे आपने मधुमक्खियाँ पालीं और अपने आपको उनसे कटवाने भी लगे। थोड़े ही दिनोंमें आपकी गठिया ठीक हो गयी। यही नहीं इस नये इलाजके कारण इनके पास आमदनीका जरिया भी हो गया।

अब आपने एक बड़ा फार्म खोल रखा है जिसमें १५७ मधुमक्खीके छत्ते हैं। दूर दूरसे गठियाके रोगी आते हैं और उन्हें इस जगह मधुमक्खियोंद्वारा कटाया जाता है। यहाँकी मक्खियोंको डंक मारनेकी शिक्षा विशेष रूपसे दी जाती है।

विविध तिथियों और तारीखोंका संबन्ध

(गतांकसे आगे)

हिजरी तारीख और ईस्वी और विक्रमीय तिथियाँ

[ले० श्रीमहावीरप्रसाद श्रीवास्तव्य, बी० एस-सी, एल्-टी०, विशारद, हेडमास्टर गवर्नमेंट हाई स्कूल, बलिया ।]

२७—हिजरी सन् और मासका आरम्भ शुक्रवार, १६ जुलाई सन् ६२२ ई० तथा श्रावण शुक्ल २ संवत् ६७९ वि०को हुआ जिस दिन मुसलमानोंके पैगम्बर हजरत मुहम्मद हिजरत करके मक्केसे मदीना चले गये थे । इस सन्का वर्ष शुद्ध चान्द्र-वर्ष है जो १२ चान्द्रमासों तथा ३५४ · ३६७०५ दिनोंके समान होता है । महीनेका आरम्भ उस समयसे माना जाता है जिस समय अमावस्याके उपरान्त बालचन्द्रमाका दर्शन पच्छिम क्षितिजके निकट सूर्यास्त होनेपर पहले-पहल होता है । दक्षिणायन सूर्यमें यदि शुक्ल पक्षकी प्रतिपदा सूर्यास्त होनेसे ३ घंटे पहले समाप्त हो जाय तो चन्द्रदर्शन शुक्ल पक्षकी प्रतिपदाके सायंकालमें होता है नहीं तो द्वितीयाके सायंकाल होता है । उत्तरायण सूर्यमें जाड़ेके दिनोंमें यदि आकाशमें धूल या बादल न हो तो सूर्यास्तके समय भी यदि प्रतिपदा समाप्त हो तो चंद्रदर्शन हो जाता है जैसा कि इस वर्ष ईदके चंद्रमाका हुआ था । यदि बादलके कारण प्रतिपदा और द्वितीया दोनों दिन चन्द्रमा न दिखाई पड़े तो ३० तारीखके बाद हिजरी मास बदल जाता है । अर्थात् ऐसा महीना ३० दिनसे बड़ा नहीं होता और २९ दिनसे छोटा नहीं होता । साधारणतः जब एक महीना २९ दिनका होता है तब दूसरा ३० दिन का । इस प्रकार हिजरीके बारह मास ३५४ दिनके होते हैं । परन्तु १२ चान्द्रमास ३५४ ·३६७०५ दिनके होते हैं इसलिए ३५४ दिन का वर्ष माननेसे प्रतिवर्ष ·३६७०५ दिनकी कमी पड़ती जाती है । इसलिए दूसरे या तीसरे वर्षके अन्तरपर हिजरी वर्ष ३५५ दिन का होता है । यह अन्तर तीस वर्षमें ११·०११५ दिनके समान होता है इसलिए हिजरी सन्के ३० वर्षके चक्रमें ११ बार हिजरी वर्ष ३५५ दिनका होता है ।

हिजरी वर्ष सौर वर्षसे ११ दिनके लगभग छोटा होता है इसलिए मुसलमानी त्यवहार अँग्रेजी तारीखके हिसाबसे प्रतिवर्ष ११ दिन या १० दिन पहले ही हो जाते हैं और इस प्रकार विलोम रीतिसे खसकते हुए ३३ वर्षमें एक चक्कर पूरा करके फिर उसी मासमें होने लगते हैं । इसी कारण मुहर्रम कभी जाड़ेमें होता है कभी गरमीमें और कभी बरसातमें ।

हिजरी तारीखका आरम्भ चन्द्रदर्शनपर निर्भर होनेके कारण सूर्यास्तको होता है । इसलिए हिजरी तारीख सूर्यास्ततक मानी जाती है । इसी कारण कई मुसलमानी त्यवहार रातको मनाये जाते हैं । दिनोंके नाम शम्बा,* एक-शम्बा, दो-शम्बा

* शम्बा आदि दिनोंके नाम फारसी हैं, अरबी नहीं । जमशेदके समयसे फारसमें सौर मासोंका ही प्रचार था, मुसलमानोंने उनके महीने फरवरदीन आदिकी जगह मुहर्रम सफर आदि चलाये और सौर वर्षको बदलकर चान्द्र कर दिया । यहूदी सबतका दिन सनीचरको मानते हैं और

आदि भी शायद रातके ही विचारसे रखे गये हैं। बृहस्पतिको जुमेरात इसीलिए कहते हैं कि बृहस्पतिकी शामसे जुमा या शुक्रवारकी रात आरंभ हो जाती है।

२८—हिजरी महीनेका आरंभ चन्द्रदर्शनपर अवलम्बित रहनेके कारण इस बातकी गणना पहलेसे नहीं की जा सकती कि कौन मुसलमानी त्यवहार कब मनाया जायगा। यहाँतक कि कभी-कभी स्कूल या कचहरीके बंद होनेकी सूचना निश्चित रूपसे नहीं दी जा सकती कि कल स्कूल बंद रहेगा या नहीं क्योंकि चन्द्रदर्शन सूर्यास्तके बाद होता है और स्कूल या कचहरी सूर्यास्तके पहले ही बंद हो जाते हैं। इससे व्यवहारमें बड़ी असुविधा होती है। इसी कारण हिजरी तारीखसे ईस्वी तारीख या विक्रमीय तिथि निकालनेमें भी दो एक दिनका अंतर पड़ जाता है जो तभी ठीक हो सकता है जब हिजरी तारीखोंके साथ वारका नाम भी दिया हुआ हो। इस प्रकार हिजरी तारीख और वार से ईस्वी या विक्रमीय तारीख ठीक-ठीक जानी जा सकती है परन्तु ईस्वी या विक्रमीय तारीखसे हिजरी तारीख निकालनेमें दो एक दिनका अंतर पड़ जाना अनिवार्य है क्योंकि यह सुगमतासे नहीं बतलाया जा सकता कि हिजरी महीनेका आरंभ शुक्ल पक्षकी प्रतिपदाको हुआ अथवा द्वितीया या तृतीयाको। इस लेखके लिए जो सारणी बनायी गयी है हिजरी वर्ष ३५४·३६७०५ दिनका माना गया है क्योंकि ऐसा करनेसे गणना करनेमें बड़ी सुविधा पड़ती है और वारोंका मिलान कर लेनेसे विक्रमीय या ईस्वी तारीखोंका हिसाब बिल्कुल ठीक हो जाता है। तारीखकी गणना सायंकालको नहीं की गयी है वरन् प्रातःकाल ६ बजे जो हिजरी तारीख होती है वही मानी गयी है।

२९—हिजरी महीनों के नाम यह हैं—(१) मुहर्रम; (२) सफ़र; (३) रबीउल्-अव्वल; (४) रबी उस्सानी; (५) जमादी-उल्-अव्वल; (६) जमादी-उस्सानी; (७) रजब; (८) शाबान; (९) रमजान; (१०) शव्वाल; (११) जीकाद; (१२) जिलहिज्ज इन महीनोंमें दो महीने मुहर्रम और रमजानसे सभी लोगोंको परिचय होगा। मुहर्रममें ताजिये उठते हैं और रमजानमें मुसलमान लोग रोजा रखते हैं जिसके समाप्त होनेपर ईदका त्यवहार होता है।

दिनोंके नाम यह हैं—शम्बा (शनीचर); एक-शम्बा (इतवार); दो-शम्बा (सोमवार); सेशंबा (मंगलवार); चहार-शम्बा (बुधवार); पंजशम्बा या जुमेरात (बृहस्पति) और जुमा।

जुमाके दिन इकट्ठे होकर नमाज पढ़ना बहुत आवश्यक समझा जाता है। यह दिन मुसलमानोंमें बड़ा पाक समझा जाता है।

३०—कोष्ठकका सिद्धान्त—हिजरीके १ वर्षमें ३५४·३६७ दिन माने गये हैं, इसलिए २ वर्षमें ३५४·३६७×२=७०८·७३४ दिन हुए। परन्तु

दिनका आरंभ चन्द्र-दर्शनसे करते हैं। मुसलमानोंकी भी यही रीति है।

इबरानीमें "सब्बा" या "सबत" और अरबीमें "सब्त" आराम, निद्रा, विश्रामके दिनको कहते हैं। यह यहूदियोंके अनुसार शुक्रवारकी शामसे शनिकी शामतक है। इसीसे इसे "सब्बा" या "सबत" कहते हैं। इसीसे फारसीका शम्बा बना। शेष दिन एक दो आदि लगाकर गिने गये। कारण यह था कि पहले ईरानमें महीनेकी हर तारीखके नाम अलग अलग थे। सप्ताह द्वारा दिन गिननेकी चाल न थी। अरबीमें "जुमअ" सातवीं रातको भी कहते हैं और इकट्ठा होनेको भी। जुमा मुसलमानोंके सप्ताहका अन्तिम दिन है। "जुमेरात"के अर्थ हैं, जिस रातमें जुमा हो। यह हिन्दी शब्द है। अरबी या फारसी नहीं है।—रा० गौ०।

ईस्वी वर्षमें ३६५·२५ दिन और विक्रमीय सौर वर्षमें ३६५·२५८७६ दिन होते हैं, इस लिए यदि इनको ७०८·७३४ दिनसे घटाया जाय तो ईस्वी सालमें ३४३·४८४ दिन और सौर वर्षमें ३४३·४७५ दिन बच जाते हैं इसलिए हिजरीके २ वर्ष ईस्वीके १ वर्ष और ३४३·४८४ दिनके समान तथा सौर वर्षके १ वर्ष और ३४३·४७५ दिनके समान होते हैं जो हिजरीके २ वर्षके सामने दूसरे और तीसरे स्तम्भोंमें दिखलाये गये हैं। इसी प्रकार हिजरीके ३ वर्षके दिन-मानसे गुणा करके गुणनफलसे ईस्वी तथा विक्रमीयके २ वर्षोंके दिनमान घटा देनेसे जो आये हैं वे हिजरी ३ के सामने रखे गये हैं। इसी प्रकार दूसरे और तीसरे स्तम्भोंके सब अंक आये हैं। चौथे स्तम्भमें वारके अंक दिये गये हैं। हिजरी १ के सामने ४·३६७ लिखा गया है जो हिजरीके १ वर्षके दिनमानको ७ से भाग देनेपर बाकी बचता है। हिजरीके २ वर्ष पूरा होनेपर जो वार आता है वह ४·३६७ को २ से गुणा करके ७ से भाग देनेपर शेष होता है। इसी प्रकार अन्य वर्षोंके वारोंके अंक निकाले गये हैं।

३१—उदाहरण १—बादशाह शाहजहाँकी राजगद्दीकी तिथिके सम्बन्धमें यह लिखा हुआ है—जलूस रोज दोशम्बा ८ जमादी-उस्सानी सन् १०३८ हिजरी व उम्र सी हफ्त सालगी व क़ील: एक शम्बा २२ जमादीउल् अव्वल १०३६ हिजरी' और मृत्युके सम्बन्धमें यह है—'वफ़ात शबे दो-शम्बा २६ रजब १०७६ हिजरी व आरजा दर्द गुर्द: व तपे मुहर्रक़' ❀ इससे जान पड़ता है कि सम्राट शाहजहाँकी राजगद्दीकी तिथिके सम्बन्धमें मतभेद है। यहाँ दोनों मतोंके अनुसार ईस्वी तारीख तथा विक्रमीय तिथि निश्चय की जाती है—

१०३८—११ = १०२७ = १००० + २० + ७

मुहर्रमके आरंभसे जमादी उस्सानीके आरंभतक १४८ दिन होते हैं इसलिए मुहर्रमके आरंभसे ८ जमादी—उस्सानीतक १५६ दिन हुए।

हिजरी	ईस्वी वर्ष	ईस्वी दिन	विक्रयीय वर्ष	विक्रयीय दिन	वार
११	६३२	२९ मार्च	६८९	९·४८३	१
१०००	९७०	७४·५६	९७०	६६·०६०	६·०४९
२०	१९	१४७·५९	१९	१४७·४२५	३·३४१
७	६	२८९·०७	६	२८९·०१८	२·५६९
		१५६		१५६	१५६
१०३८	१६२७	६९६·२२	१६८४	६६७·९८६	१६८·९५९
	+१	−३६५·२५	+१	−३६५·२५९	या ०·९५९
	१६२८	३३०·९७ मार्च	१६८५	३०२·७२७	
	+१	−३०६		−२७५·६३७	
	१६२९	२४·९७ जनवरी		२७·०९० मकर	

* संवत् १९७९के माघकी 'मर्यादा'के प्रथम पृष्ठपर प्रकाशित सम्राट शाहजहाँका चित्र देखिए।

सारणीसे प्राप्त अंकोंको जोड़नेसे यह आया कि १०३८ हिजरीकी ८ जमादी-उस्सानीको १६२७ ईस्वीकी मार्चके आरंभसे ६९६-२२ दिन बीत गये थे। परन्तु दिनोंकी यह संख्या १ ईस्वी वर्षके दिन मानसे अधिक है। इसलिए सनमें १ वर्ष जोड़कर दिनसे ३६५·२५ दिन घटा दिये गये। अब यह आया कि १६२८ ई० के मार्चके आरंभसे ३३०·९७ दिन बीतनेपर अभीष्ट हिजरी तारीख थी। कोष्ठक ४से प्रकट है कि मार्चके आरंभसे ३०६ दिन बीतने पर दिसम्बरका अंत होता है और जनवरीसे नया वर्ष आरंभ होता है। इसलिए ३३०·९७से ३०६ दिन घटाकर सनमें १ और जोड़ दिया गया। इस प्रकार १६२९ ई०की २४·९७ जनवरीके अभीष्ट तारीख पड़ती है। परन्तु वारोंके अंकोंका योगफल १६८·९५९ आता है जिसको ७से भाग देनेपर ०·९५९ दिन शेष बचता है जिसका अर्थ यह हुआ कि शनिश्चरके दिन सूर्योदयसे ·९५९ दिन बीतने पर अर्थात् इतवारको प्रातःकाल। परन्तु समय दिया हुआ है "रोज़ दो-शम्बा" अर्थात् सोमवारका दिन। इसलिए जब २४ जनवरीको शनिश्चर था तब सोमवारको २६ जनवरी थी। इसलिए सम्राट् शाहजहाँकी राजगद्दी २६ जनवरी सन् १६२९ ई०को हुई।

३२—इसी प्रकार विक्रमीय तिथियोंके योगफलके अंकोंसे प्रकट है कि अभीष्ट समयमें १६८४ वि० कीमेष-सक्रान्तिसे ६६७·९८६ दिन बीते थे जो १ सौर वर्षसे अधिक है इसलिए इससे १ सौर वर्षके दिन घटा दिये गये और संवत्‌में १ जोड़ दिया गया, शेष बचा ३०२·७२७ दिन अर्थात् १६८५ वि०की मेषसंक्रान्तिसे ३०२·७२७ दिन बीते थे। परन्तु मेष संक्रातिके आरंभसे मकर संक्रान्तिके आरंभतक २७५·६३७ दिन होते हैं इसलिए इतना घटा देनेपर बचता है २७·०९ दिन अर्थात् १०३८ हिजरीकी ८ जमादी-उस्सानी मकर-संक्रान्तिसे २७ दिन उपरान्त थी। परन्तु वार मिलानेसे शनिश्चरकी रात अथवा रविवारका प्रातःकाल आता है इसलिए सोमवारके दिनको मकर-संक्रान्तिसे २८ दिन बीते थे। इसलिए सिद्ध हुआ कि सम्राट् शाहजहाँकी राजगद्दी मकर मासकी २८ वीं तारीखको थी अर्थात बंगालके माघ मासकी २८वीं तारीखको क्योंकि बंगालमें मकर मासको माघ मास कहते हैं। यदि यह जानना हो कि चांद्रमासके अनुसार कौन तिथि थी तो यह बतलाना कठिन नहीं होगा क्योंकि जमादी उस्सानीकी ८ वीं तारीख शुक्ल पक्षकी नवमी या दसमीको ही पड़ सकती है। यदि चंद्रमा प्रतिपदाके सायंकाल देखा गया होगा तो नवमीको, नहीं तो दसमीको। और मकर-संक्रान्ति पूर्णिमान्त गणनासे पौष शुक्लपक्ष या माघ कृष्ण पक्षमें ही पड़ती है, (देखिए कोष्ठक ९), इसलिए मकर संक्रान्तिसे २८ दिन उपरान्त माघका शुक्ल पक्ष ही हो सकता है।

३३—यदि राजगद्दीका समय दूसरे मतके अनुसार एक-शम्बा २२ जमादी-उल-अव्वल १०३६ हिजरी मानी जाय तो ईस्वी तारीख यों निकलती है—

१०३६–११ = १०२५ = १००० + २० + ५ और मुहर्रमके आरंभसे जमादी-उल-अव्वलकेआरंभतक ११८ दिन तथा २२ जमादी-उल-अव्वलतक ११८ + २२ = १४० दिन।

हिजरी	ईस्वी		विक्रमीय		वार
	वर्ष	दिन	वर्ष	दिन	
११	६३२	२९ मार्च	६८९	९·४८३	१
१०००	९७०	७४·५६	९७०	६६·०६०	६·०४९
२०	१९	१४७·५९	१९	१४७·४२५	३·३४१
५	४	३१०·८४	४	३१०·८०१	०·८३५
		१४०		१४०	१४०
१०३६	१६२५	७०१·९९	१६८२	६७३·७६९	१५१·२२५
	+१	−३६५·२५	+१	−३६५·२५९	या ४·२२५
	१६२६	३३६·७४	१६८३	३०८·५१०	
	+१	−३०६		−३०५·०८५	
	१६२७	३०·७४ जनवरी + ·५		३·४२५ कुंभ या बंगाली फाल्गुन	
		३१·२४ जनवरी			

३४—यहाँ ३०·७४ जनवरीमें ·५ और जोड़ा गया क्योंकि १६२५ और १६२६ ईस्वीमें ३६५ दिनका वर्ष था और गणनामें ३६५·२५ दिनका वर्ष माना गया है। इस प्रकार यह प्रकट है कि इस मतसे शाहजहाँ ३१ जनवरीको तख्तपर बैठा परन्तु इस गणनासे बुधवार आता है और दिया हुआ है इतवार (एक-शम्बा)। इसलिए तारीख २८ जनवरी थी न कि ३१। परन्तु यह तारीख असम्भव जान पड़ती है क्योंकि जहाँगीरकी मृत्यु १६२७ ई०के अक्टूबर मासमें हुई थी इसलिए इससे पहले ही शाहजहाँका तख्तपर बैठना असंभव है जब कि जहाँगीरकी मृत्युके समय शाहजहाँ दक्खिनमें था और उसकी अनुपस्थितिमें उसका भतीजा गद्दीपर बिठा दिया गया था।* इसलिए १६२९ की जनवरी ही ठीक है।

भारतवर्षके इतिहासमें १६२८ ई० दी गयी है परन्तु मास नहीं दिया है। इसलिए जान पड़ता है कि इसके लेखकको भी निश्चित तारीखका पता नहीं है। यथार्थमें हिजरी सन् और माससे १६२८ के अंत और १६२९के आदिकी तारीखोंका पता मोटे हिसाबसे नहीं हो सकता। इसलिए इतिहासमें १६२८ दिया हुआ है जब कि यथार्थमें १६२९की जनवरी है।

३५—शाहजहाँकी मृत्युकी तारीख दो-शम्बा, २६ रजब सन् १०७६ हिजरी है। इसकी ईस्वी तारीख यों निकलेगी—

१०७६-११=१०६५=१००० + ६० + ५; मुहर्रमके आरंभसे रजबके आरंभतक १७७ दिन होते हैं इसलिए २६ रजबतक १७७ + २६ = २०३ दिन हुए।

* देखो ईश्वरीप्रसादका भारतवर्षका इतिहास पृ० २७१ (इंडियन प्रेस १९३२ ई० वाला संस्करण)

हिजरी	ईस्वी वर्ष	ईस्वी दिन	विक्रमीय वर्ष	विक्रमीय दिन	वार
११	६३२	२९ मार्च	६८९	९·४८३	१
१०००	९७०	७४·५६	९७०	६६·०६०	६·०४९
६०	५८	७७·५२	५८	७७·०१३	३·०२२
५	४	३१०·८४	४	३१०·८०१	०·८३५
		२०३		२०३	२०३
१०७६	१६६४	६९४·९२	१७२१	६६६-३५७	२१३·९०६, वा
	+१	−३६५·२५	+१	−३६५·२५९	३·९०६ वार
	१६६५	३२९·६७	१७२२	३०१·०९८	
	+१	−३०६		−२७५·६३७	
	१६६६	२३·६७ जनवरी		२५·४६१ मकर	
		+·२५			
		२३·९२ जनवरी			

इससे प्रकट होता है कि २३ जनवरीको मंगलवार था। परन्तु २६ रजब दो-शम्बा सोमवारको थी। इसलिए शाहजहाँकी मृत्यु २२ जनवरीको हुई। उस दिन मकर मासकी या बंगाली माघ मासकी २४ वीं तारीख थी। २६ रजब कृष्ण पक्ष होती है इसलिए पूर्णिमान्त गणनासे माघ कृष्ण १२ या १३ रही होगी।

इस प्रकार जो सन् और महीने आये हैं वह भारतवर्षके इतिहासमें❀ लिखे मिलते हैं।

यह दोनों उदाहरण ईस्वीकी १७वीं शताब्दीके हैं इसलिए इनमें उस संशोधनसे काम नहीं लिया गया जो इंगलैंडमें १७५२ई०के सितम्बर मासमें किया गया। इसके बादकी तारीखोंके लिए वह भी करना चाहिए। इसके उदाहरणके लिए मैं २० वीं शताब्दीकी एक घटनाकी तारीख निश्चित करता हूँ जो आज है जब कि मैं यह लेख लिख रहा हूँ।

३६—उदाहरण ३—१३५२ हिजरीकी ईद किस ईस्वी तारीखको पड़ेगी।

रमजानका महीना समाप्त होनेपर शव्वालकी १ली तारीखको ईद मनायी जाती है।

१३५२−११ = १३४१ = १००० + ३०० + ४० + १; मुहर्रमके आरंभसे शव्वालके आरंभतक २६६ दिन होते हैं इसलिए शव्वालकी १ली तारीखतक २६७ दिन हुए।

हिजरी	ईस्वी वर्ष	दिन	वार
११	६३२	२९ मार्च	१
१०००	९७०	७४·५६	६·०४९
३००	२९१	२२·३७	१·११२
४०	३८	२९५·१८	६·६८२
१	०	३५४·३७	४·३६७

❀ देखो वही पृष्ठ २८८

(पिछले पृष्ठका जोड़) २६७		२६७	
१३५२	१९३१	१०४२·४८	२८६२१० वा ६·२१ वार
	+२	-७३०·५	
	१९३३	३११·९८	
	+१	-३०६	
	१९३४	५·९८	
		+·२५	
		१३	
		१९·२३ जनवरी	

१९ जनवरीको शुक्रवार आता है। परन्तु आज बुधवार है इसलिए १७ जनवरीको ईद है। इस गणनामें १९३१ जनवरीके मार्चसे १०४२·४८ दिन बाद ईद पड़ती है जो २ ईस्वी वर्षके दिनोंसे अधिक है इसलिए २ वर्ष सनमें जोड़ दिये गये और इसके दिन घटा देनेपर शेष आता है ३११·९८ दिन परन्तु मार्चके आरंभसे दिसम्बरके अंततक ३०६ दिन होते हैं और सन् बदल जाता है इसलिए सन्में एक और जोड़ दिया गया और दिन घटा देनेपर आता है ५·९८ दिन। इसमें २५ दिन इसलिए जोड़ा गया कि (लीपइयर) अधिवर्षके बाद एकही फरवरी २८ दिनकी पड़ी है। फिर १३ जोड़ा गया क्योंकि २०वीं शताब्दीमें नयी पद्धतिके अनुसार १३ दिन जोड़ना चाहिए। इस प्रकार १९ जनवरी आती है। परन्तु १९वीं जनवरीको शुक्रवार आता है। बुधवार इसलिए १७ जनवरी हुई।

३७—अंग्रेजी या विक्रमीय तारीखसे हिजरी तारीख जाननेकी रीति इतनी आवश्यक नहीं है क्योंकि इसका काम बहुत कम पड़ता है। इसलिए यहाँ केवल दो उदाहरण दे देना पर्याप्त होगा।

उदाहरण ४—पानीपतकी लड़ाई २१ अप्रैल सन् १५२६ई०को हुई। हिजरी तारीख क्या थी?

१५२६—६३२ = ८९४ = ८०० + ९० + ४ ईस्वी वर्ष; २९ मार्चसे २१ अप्रैलतक २३ दिन हुए।

इस्वी वर्ष	हिजरी वर्ष	और दिन
६३२	११	०
८००	८२४	२०१·५५२
९०	९२	२७०·७२०
४	४	४३·५३२
		+२३
१५२६	९३१	५३८·८०४
	+१	-३५४·३६७
	९३२	१८४·४३७
मुहर्रमसे रजबके आरंभ तक		-१७७
रजबकी तारीख		७·४३७

इस तारीखमें अधिकसे अधिक २ दिनका अंतर पड़ सकता है। कारण पहलेही बतलाया जा चुका है।

उदाहरण ५—१९३३ ईस्वीकी २५ अक्टूबर-को हिजरीकी क्या तारीख थी?

१९३३–६३२ = १३०१ = १००० + ३०० + १। यह २०वीं शताब्दीकी है इसलिए २५ अक्टूबर-में १३ तारीखें जो गयी पद्धतिके अनुसार बढ़ायी जाती हैं शामिल हैं। इसलिए २९ मार्चसे २५ अक्टूबरके दिनोंमें १३ दिन घटाना चाहिए। मार्चसे सितम्बरके अंततक २१४ दिन; इसलिये २९ मार्चसे २५ अक्टूबरतक २१४–२९ + २५ = २१० दिन; १३ दिन और घटानेपर १९७ दिन हुए।

ईस्वी वर्ष	हिजरी वर्ष	हिजरी दिन
६३२	११	०
१०००	१०३०	२५१·९४
३००	३०९	७५·५८
१	१	१०·८८
१९३३	१३५१	३३८·४०

	+१९७
	५३५'४०
+ १	-३५४ ३७
१३५२	१८१'०३
	-१७७'
रजब	४'०३

पंचांगमें २५ अक्टूबरको रजबकी ५ तारीख थी। इसलिए यहाँ अंतर केवल १ दिनका पड़ा। इसी प्रकार विक्रमीय तिथिसे भी हिजरी तारीख जानी जा सकती है।

३८—फसली सन्—हिजरी वर्ष शुद्ध चान्द्र वर्ष होनेके कारण कृषिके कामके लिए उपयुक्त नहीं है क्योंकि कृषिका काम ऋतुओंपर निर्भर है जो सौर वर्षके अधीन है। इसलिए मुसलमानी देशोंमें, अफगानिस्तान, फारस, मिश्र आदिमें हिजरी वर्षके साथ शम्सी वर्ष जो एक तरहका सौर वर्ष है प्रचलित है। इसका आरंभ सायनमेष संक्रान्तिसे होता है जो २१ मार्चको पड़ती है। पारसियोंमें नवरोज़ अर्थात् नये वर्षका पहला दिन २१ मार्चहीको होता है। शायद शिया मुसलमान भी २१ मार्चको नवरोजका उत्सव मनाते हैं। भारतवर्षमें हिजरीके साथ साथ हमारा सौर-चान्द्रवर्ष वर्तमान था इसलिए इससे काम बिना किसी कठिनाईके चल जाता परन्तु सम्राट अकबरने इसकी जगहपर फसली सन्का आरंभ करवा दिया जो हिजरी सन्का ही अकबरी रूप है। अकबरके शासनारूढ़ होनेके समय १५५६ ई०में जो हिजरी सन् वर्तमान था उसीको फसली नाम दे दिया गया और इसके वर्षका आरंभकाल पूर्णिमान्त आश्विन कृष्ण १ माना। इससे हिजरी वर्षका सम्बन्ध हिन्दी माससे हो गया जो सौर-चान्द्र होनेके कारण कृषिके लिए तो उपयुक्त हो गया परन्तु भारतवर्षमें अनेक प्रकारके सनोंका आदिकारण भी हुआ जिसका परिणाम यह है कि यहाँ भिन्न भिन्न प्रान्तोंमें कुछ भेदसे इतने सन् प्रचलित हो गये हैं कि इनको ठीक ठीक समझना बड़ा कठिन हो गया है। सन् १५५६ई०की शरदऋतुमें ९६४ हिजरीका आरंभ हुआ। बस इसीका नाम फसली भी कर दिया गया जिसका आरंभकाल आश्विन कृष्ण १ या कुआर बदी १ माना गया। १५५६–९६४ = ५९२, इसलिए ईस्वी सन्में ५९२ घटानेसे फसली सन आता है। परन्तु यह नियम कुआरसे दिसम्बरतकके लिए ठीक होता है, जनवरीसे भाद्रपदतकके लिए ईस्वी सन्में ५९३ घटानेसे फसली सन् ज्ञात होगा क्योंकि जनवरीसे ईस्वी सन बदल जाता है, इसलिए ईस्वी और फसली सनोंमें ५९३का अंतर पड़ जाता है। सन् १९३४ ई० के जनवरी मासमें १९३४–५९३ = १३४१ फसली वर्तमान है जो भाद्रपदकी पूर्णिमातक अर्थात् २३ सितम्बरतक रहेगी। इसके बाद १३४२ फसली चलेगी।

यदि विक्रमीय संवत्से फसली सन् जानना हो तो चैत्र शुक्लसे भाद्रपदतक विक्रमीय संवत्में ६५० घटाना चाहिए और कुआरसे चैत्र कृष्णतक ६४९ घटाना चाहिए।

उड़ीसा प्रान्तमें 'विलायती वर्ष, के नामसे जो सन् प्रचलित है वह फसली ही सन्का उड़िया रूप है। इसका आरंभ कन्या संक्रान्तिसे माना जाता है और इसके महीने संक्रान्ति के दिन बदलते हैं। ईस्वी सनमें ५९२ या ५९३ घटानेसे 'विलायती वर्ष' आता है। यहाँ एक 'अमलीवर्ष' भी प्रचलित है जो विलायती वर्षकी तरह शुद्ध सौर नहीं है वरन् सौर-चांद्र है। इसका वर्ष भाद्रपद शुक्ल १२ को बदलता है जो कन्या-संक्रान्तिसे कभी कुछ आगे

और कभी कुछ पीछे पड़ती है। और बातोंमें यह 'विलायती वर्ष'के ही समान है।

बंबई प्रान्तमें 'दक्खिन फसली'के नामसे जो सन् प्रचलित है वह ईस्वी सन्में ५९३ घटानेसे आता है। इसका आरंभ उस समय माना जाता है जब सूर्य मृगशिरा नक्षत्रमें प्रवेश करता है जो ७ या ८ जूनको होता है।

मद्रास प्रान्तमें 'मद्रासफसली' नामसे जो सन् प्रचलित है वह ईस्वी सन्मेंसे ५९० घटानेसे आता है। इसका आरंभ १ली जुलाईको होता है। जान पड़ता है कि मद्रासमें फसली सन्का प्रचार उत्तर भारत की अपेक्षा देरमें हुआ क्योंकि यह अकबरकी राजधानीसे दूर था। यहाँ ईसाई पादरियोंका प्रभाव भी बहुत दिनोंसे है। इसीलिए इसका आरंभ १ ली जुलाईसे माना जाने लगा।

बंगालका बंगला सन भी फसली सन्का ही रूपान्तर मालूम होता है क्योंकि यह भी ईस्वी सन्में ५९३ घटानेसे आता है। इसका आरंभ मेष संक्रान्तिसे माना जाता है, शुद्ध सौर है और संक्रान्तिके ही एक या दो दिन पीछे महीने बदलते हैं। विक्रमीय संवत्में ६५० घटानेसे बंगला सन् आजाता है। इसके संबंधमें यह खोज करनेकी अत्यन्त आवश्यकता है कि बंगला सन् फसली ही सन्का एक रूप है अथवा यह किसी बंगाली राजाके शासनकालसे १३४० वर्षोंसे चला आ रहा है। यदि यह शुद्ध बंगला सन् है और हिजरीसे इसका कोई संबंध नहीं है जैसा कि फसली सन्का है तो इसका प्रचार बंगाल प्रान्तमें मुसलमानी शासनके प्रभावके पहले भी रहा होगा जो प्राचीन ग्रन्थों या ताम्रपत्रोंमें दिये हुए सनोंसे ही सिद्ध हो सकता है।

कोष्ठक ७

हिजरी महीनोंके नाम	दिनोंकी संख्या	मुहर्रमके आरंभसे मासके आरंभतक
१–मुहर्रम	३०	...
२–सफ़र	२९	३०
३–रबी-उल-अव्वल	३०	५९
४–रबी-उस्सानी	२९	८९
५–जमादी-उल-अव्वल	३०	११८
६–जमादी-उस्सानी	२९	१४८
७–रजब	३०	१७७
८–शाबान	२९	२०७
९–रमज़ान	३०	२३६
१०–शव्वाल	२९	२६६
११–ज़ीक़ाद	३०	२९५
१२–जिलहिज्ज	२९	३२५

कोष्ठक ८

सौर मासोंके नाम	दिनोंकी संख्या	मेष संक्रान्तिके आरंभसे मासके आरंभतक दिनोंकी संख्या
मेष (वैशाख)	३०·९३५	३०·९३५
वृष (ज्येष्ठ)	३१·४२०	६२·३५६
मिथुन (आषाढ़)	३१·६४५	९४·००१
कर्क (श्रावण)	३१·४७५	१२५·४७६
सिंह (भाद्रपद)	३१·०१९	१५६·४९४
कन्या (आश्विन)	३०·४४१	१८६·९३६
तुला (कार्तिक)	२९·८९३	२१६·८२९
वृश्चिक (मार्गशीर्ष)	२९·४९०	२४६·३१९
धनु (पौष)	२९·३१८	२७५·६३७
मकर (माघ)	२९·४४८	३०५·०८५
कुंभ (फाल्गुन)	२९·८२०	३३४·९०५
मीन (चैत्र)	३०·३५३	

कोष्ठक ६

हिजरीसे ईस्वी और विक्रमीय तिथि जाननेके लिए

हिजरीसे ईस्वी और विक्रमीय तिथि जाननेके लिए						ईस्वी या विक्रमीयसे हिजरी तारीख जाननेके लिए				
हिजरी ११	ईस्वी ६२२की २९ मार्च		विक्रमीय ६७९की मेषसंक्रान्तिसे ९ · ४८३ दिन		वार १	वर्ष	ईस्वी तारीखसे हिजरी तारीख जाननेके लिये		विक्रमीय तिथिसे हिजरी तारीख जाननेके लिए	
	वर्ष	दिन	वर्ष	दिन			वर्ष	दिन	वर्ष	दिन
१	०	३५४·३६७	०	३५४·३६७	४·३६७	१	१	१०·८८३	१	१० ८९
२	१	३४३·४८४	१	३४३·४७५	१·७३४	२	२	२१·७६६	२	२१·७८
३	२	३३२·६०१	२	३३२·५८४	६·१०१	३	३	३२ ६४९	३	३२ ६८
४	३	३२१·७१८	३	३२१·६९२	३·४६८	४	४	४३ ५३२	४	४३ ५७
५	४	३१०·८३५	४	३१०·८०१	०·८३५	५	५	५४·४१५	५	५४·४६
६	५	२९९·९५२	५	२९९·९०९	५·२०२	६	६	६५·२९८	६	६५ ३५
७	६	२८९·०६९	६	२८९·०१८	२·५६९	७	७	७६·१८१	७	७६ २४
८	७	२७८·१८६	७	२७८·१२६	६·९३६	८	८	८७·०६४	८	८७·१३
९	८	२६७·३०३	८	२६७·२३५	४·३०३	९	९	९७·९४७	९	९८·०३
१०	९	२५६·४२०	९	२५६ ३४३	१·६७०	१०	१०	१०८·८२९	१०	१०८·९२
२०	१९	१४७·५९	१९	१४७·४२५	३·३४१	२०	२०	२१९ ६५८	२०	२१७·८३
३०	२९	३८·७६	२९	३८·५०७	५·०११	३०	३०	३२६·४८७	३०	३२६·७५
४०	३८	२९५·१८	३८	२९४·८४९	६·६८२	४०	४१	८० ९४९	४१	८१·३०
५०	४८	१८६·३५	४८	१८५·९३१	१·३५२	५०	५१	१८९·७७८	५१	१९०·२२
६०	५८	७७·५२	५८	७७·०१३	३·०२२	६०	६१	२९८·६०७	६१	२९९·१४
७०	६७	३३३·९४	६७	३३३·३५६	४·६९२	७०	७२	५३·०६९	७२	५३·६९
८०	७७	२२५·११	७७	२२४·४३८	६·३६४	८०	८२	१६१·८९८	८२	१६२·६१
९०	८७	११६·२८	८७	११५·५२२	१·०३४	९०	९२	२७०·७२०	९२	२७१ ५३
१००	९७	७·४६	९७	६·६०६	२·७०४	१००	१०३	२५ १९४	१०३	२६·०७
२००	१९४	१४·९१	१९४	१३·२१२	५·४०८	२००	२०६	५० ३८८	२०६	५२·१४
३००	२९१	२२·३७	२९१	१९·८१८	१·११२	३००	३०९	७५·५८२	३०९	७८ २१
४००	३८८	२९·८२	३८८	२६·४२४	३·८२०	४००	४१२	१००·७७६	४१२	१०४·२८
५००	४८५	३७·२८	४८५	३३·०३०	६·५२५	५००	५१५	१२५·९७०	५१५	१३०·३५
६००	५८२	४४·७३	५८२	३९·६३६	२·२३०	६००	६१८	१५१·१६४	६१८	१५६·४२
७००	६७९	५२·१९	६७९	४६·२४२	४·९३५	७००	७२१	१७६ ३५८	७२१	१८२·४९
८००	७७६	५९·६४	७७६	५२·८४८	०·६४०	८००	८२४	२०१ ५५२	८२४	२०८·५६
९००	८७३	६७·१०	८७३	५९·४५४	३·३४५	९००	९२७	२२६·७४६	९२७	२३४·६३
१०००	९७०	७४·५६	९७०	३६·०६०	६·०४९	१०००	१०३०	२५१·९४	१३०	२६०·६९
२०००	१९४०	१४९ ११	१९४०	१३२·१२०	५·०९८	२०००	२०६१	१४९·५१	२०६१	१६७·०१

जैसा देस वैसा भेस

(२)

प्रकृतिमात्र लुकाछिपी खेलती है

[ले० विद्यालंकार ठा० शिरोमणिसिंह चौहान, एम्० एस-सी०, विशारद]

पिछले लेखमें जिन उदाहरणोंका वर्णन किया गया है उनमें जीवधारियोंने अपने संरक्षक-रंगों द्वारा शत्रुओंकी नज़रोंसे अपनेको गुप्त रखनेका उपाय किया है। अब हम कुछ ऐसे उदाहरणोंका वर्णन करते हैं जिनमें प्राणियोंने अपनी रक्षाके हेतु अपने शरीरकी बनावटमें परिवर्तन किये हैं। अनेक प्राणियोंके शरीरका आकार-प्रकार उसी पदार्थके अनुरूप होता है जिसपर वे रहते हैं। कई तितलियाँ (butter-flies) जब धूपमें किसी स्थानपर जाकर बैठती हैं तो अपना सिर सूर्यसे दूसरी ओर करके परोंको ऊपर इकट्ठा कर लेती है और इस दशामें उनकी शकल एक लकीरमात्र हो जाती है जिसके कारण वे शत्रुओंकी छेड़-छाड़से बची रहती हैं।

कई तितलियाँ पत्तेनुमा होती हैं। उनके परोंके अधोभागका रंग भूरा या खैरा होता है और ऊपरका पिछला भाग छोटे-छोटे वृत्त-खंडोंमें कटा होता है और देखनेमें वह एक जीर्ण-शीर्ण सूखी पत्तीके सदृश प्रगट होती है। ये तितलियाँ जब बैठती हैं तब एक करवटके बल लेट जाती हैं। इन

कोष्ठक नं० ९

१ ईस्वी वर्ष	=३६५·२५	दिन
२ ,,	=७३०·५	दिन
३ ,,	=१०९५·७५	,,
१ सौर वर्ष या विक्रमीय वर्ष	=३६५·२५९	दिन
२ ,, ,,	=७३०·५१८	,,
३ ,, ,,	=१०९५·७७६	,,

यदि पूर्णमासीसे पूर्णमासीतक चांद्रमास माना जाय अर्थात् पूर्णिमान्त गणना हो तो मेषकी संक्रान्ति चैत्र शुक्लपक्ष या वैशाख कृष्णपक्षमें

वृष-संक्रान्ति	वैशाख	शुक्ल पक्ष	या	ज्येष्ठ	कृष्ण पक्षमें	
मिथुन-संक्रान्ति	ज्येष्ठ	,,	,,	आषाढ़	,,	
कर्क ,,	आषाढ़	,,	,,	श्रावण	,,	
सिंह ,,	श्रावण	,,	,,	भाद्रपद	,,	
कन्या ,,	भाद्रपद	,,	,,	आश्विन	,,	
तुला ,,	आश्विन	,,	,,	कार्तिक	,,	
वृश्चिक,,	कार्तिक	,,	,,	मार्गशीर्ष	,,	
धनु ,,	मार्गशीर्ष	,,	,,	पौष	,,	
मकर ,,	पौष	,,	,,	माघ	,,	
कुम्भ ,,	माघ	,,	,,	फाल्गुन	,,	
मीन ,,	फाल्गुन	,,	,,	चैत्र	,,	होती है।

यदि चांद्रमासकी गणना अमावास्यातक मानी जाय अर्थात् अमान्त, जैसा महाराष्ट्र मदरास आदिमें है तो संक्रान्ति उन्हीं मासोंमें पड़ेगी जो शुक्लपक्षके लिये बतलाये गये हैं।

महावीरप्रसाद श्रीवास्तव्य

माघ शुक्ल ३, १९९० वि०, बलिया।

हैं, वे अन्य प्राणियोंकी भाँति निर्दोष और सरल प्रकृतिके नहीं होते और न भांति-भांतिके ढंग करनेसे उनका उद्देश्य अपने शत्रुओंसे अपनी रक्षा ही करना है। कुछ कीड़ोंका रूप शांतिमय एवं रहन-सहन अत्यंत सादा होता है। परन्तु ज्यों ही कोई निर्बल प्राणी उनके ढोंगसे धोखा खाकर उनके पास पहुँचता है त्योंही वे उसे पकड़कर हड़प जाते हैं। संसारमें इस प्रकारके धोखेबाज और दुष्ट प्राणियोंकी कमी नहीं है।

भारतवर्षमें कुछ वर्णोंके कीड़ोंका रूप-रंग फूलोंके समान होता है। पुष्प-रसपर जीवन निर्वाह करनेवाले छोटे-छोटे प्राणी इन सुन्दर और लहलहाते हुए पुष्परूपी कीड़ोंकी ओर आकर्षित होते हैं और उनपर जाकर बैठ जाते हैं। उनके बैठते ही यह मक्कार और धूर्त कीड़ा उसे अपने बलवान पैरोंसे धर दबाता है और आरेके समान अपने हाथोंसे उसका काम तमाम कर देता है। फूलोंका रूप धारण करनेवाले ये कीड़े बाहरसे जितना ही सुन्दर होते हैं, हृदयके उतने ही काले होते हैं। ठीक ही कहा है "विष-रस भरा कनक-घट जैसे।"

इन कीड़ोंके अतिरिक्त और भी अनेक प्राणी हैं जो स्वार्थ-सिद्धिके हेतु तरह-तरहकी मक्कारी और कपट करते हैं। कुछ मकड़ियों का भेष घोंघोंसे मिलता-जुलता है। यही नहीं, कुछ मकड़ियाँ तो चींटियोंका रूप धारण कर लेती हैं, समानता इतनी घनिष्ट होती है कि जबतक कोई व्यक्ति इन दोनों वर्गोंके कीड़ोंकी पूरी जानकारी न रखता हो, मकड़ीको अवश्य ही चींटी कह देगा। बाहरी बनावटमें मकड़ी और चींटींमें इतना ही अंतर होता है कि मकड़ीके स्पर्शेन्द्रिय ऐंटेनी (antennae) नहीं होतीं और चींटीकी छः टांगोंके बजाय इसके आठ टांगें होती हैं और चींटीकी भांति इसका शरीर तीन भागोंमें नहीं विभाजित होता। मकड़ी अपनी अगली दो टांगें निरन्तर सामनेकी ओर किये रहती हैं जो देखनेमें चींटीके ऐंटेनीके सदृश प्रतीत होती हैं। मकड़ीके शरीरमें प्रायः सिमटे (constriction) पड़ जाते हैं जिनके कारण वह बिलकुल चींटीके शरीरके समान प्रतीत होती है। वह चींटियोंके चाल-ढाल एवं रहन-सहनकी भी पूर्ण रूपसे अनुकरण करनेका प्रयत्न करती है। ये मकड़ियाँ चींटीका रूप धारण करके साधारण मकड़ियोंको खा जाती हैं।

रायो-डि-जेनेरोके आसपास एक पक्षी-भक्षक बाज पाया जाता है जिसका रंग-रूप एक अन्य जातीय कीड़ा-भक्षक बाजके सदृश होता है। कीड़ा-भक्षक बाजसे पक्षी भयभीत नहीं होते। इस धोखेबाज पक्षी-भक्षक बाजके चक्करमें बेचारे पक्षी फँस जाते हैं और अकाल ही उसके गालमें पड़ जाते हैं।

इस भांति संसारमें वही प्राणी सुखपूर्वक अपना जीवन व्यतीत कर सकता है जो देश-कालके अनुसार अपने रंग-ढंग एवं रहन-सहनमें उपयोगी परिवर्तन करके अपनेको सक्षम बनाता रहे। यदि संसारमें जीवित रहना है तो आत्मरक्षा एवं उदर-पूर्तिके हेतु उद्योग करना ही पड़ेगा। समक्ष बननेके हेतु देशके अनुसार भेस बनाना ही पड़ेगा।

भाषा और व्याकरणमें परिवर्तन

कहाँतक संभव है ?

[ले० पंडित श्री किशोरीदासजी वाजपेयी शास्त्री, हरिद्वार]

आजकल कुछ ऐसे लेख देखनेमें आ रहे हैं, जिनमें हिन्दी-भाषा तथा उसके व्याकरणमें परिवर्तन करनेको कहा गया है। इस सम्बन्धमें 'विज्ञान'के सम्पादकजीने जो कुछ लिखा था, मैं उससे पूर्ण सहमत हूँ।

व्याकरण किसी भाषाको बदल नहीं सकता, वह तो उसका अनुगामी है। यथास्थित भाषाके तात्विक विवेचनको ही व्याकरण कहते हैं। पहले भाषा होती है, तब व्याकरण। बिना व्याकरणके भाषाएँ होती हैं, पर भाषाके बिना व्याकरण नहीं देखा गया! यदि भाषाके प्रचलित रूपसे व्याकरण अलग जाता है, तो उसे उस भाषाका व्याकरण कहा ही नहीं जा सकता। जैसे खगोल-ज्ञान ग्रहोंमें कोई परिवर्तन नहीं कर सकता, उसी प्रकार भाषा विवेचन स्वरूप व्याकरण भाषाके रूपमें कभी भी कोई परिवर्तन नहीं कर सकता। इसलिए, यह कहना कि 'हिन्दी-व्याकरणमें इस प्रकारका परिवर्तन कर दिया जाय कि भाषा अपेक्षाकृत सरल हो जाय केवल बहक जाना भर है।

जब व्याकरण किसी भाषामें परिवर्तन नहीं कर सकता तो फिर संसारकी भाषाओंमें ये परिवर्तन कैसे हुए और बराबर क्यों होते जाते हैं? इसके उत्तरमें कहा जा सकता है कि देश, काल और पात्र तथा परिस्थिति आदिकी विभिन्नता तथा विषमता ही भाषा परिवर्तनमें कारण है और यह परिवर्तन अन्यान्य प्राकृतिक पदार्थोंकी तरह अपने आप होता रहता है। भाषाके प्रवाहको कोई बदल नहीं सकता। इसलिए, जिस भाषाका जो प्रकृत रूप है, वही रहेगा। उसके रूपमें परिवर्तन करनेकी चेष्टा ऐसी है, जैसे भागीरथीके प्रवाहको उलटकर हिमालयपर चढ़ानेकी चेष्टा! इसलिए, इस सम्बन्धमें जो लेख लिखनेका प्रयास किया गया है, उसका कोई लाभ नहीं।

हाँ, लिपिमें कुछ परिवर्तन या परिष्कार हो सकता है। परन्तु नागरी लिपि वैसी दोषपूर्ण नहीं है, जिसके लिए भगीरथ-प्रयत्न आवश्यक हो। यदि मुद्रणकलाके लिए वैसा करना आवश्यक ही हो, तो अपनी लिपिके स्वाभाविक गुणोंकी रक्षा करते हुए ही वैसा करना चाहिए। नागरी लिपि अत्यन्त सुन्दर, सुडौल तथा पूर्ण है। इसकी इन तीनों विशेषताओंकी रक्षा करते हुए यदि कोई परिवर्तन हो सके तो आवश्यकतानुसार कर लेनेमें कोई दोष नहीं। परन्तु वे परिवर्तन ऐसे हों कि हमें किसी अत्यन्त अज्ञात लोकमें न ले जायँ। बस, और कोई बात नहीं है।

कुछ मदरासी भाइयोंका कहना है कि हिन्दीसे 'ने' आदि विभक्तियाँ उड़ा दी जायँ! यह असम्भव है। यद्यपि पहले ऐसा ही था, 'ने' आदिका अस्तित्व न था और इसका आभास—

'मरम वचन सीता जब बोला'

गोस्वामीजीके इस वाक्यमें मिलता है। परन्तु अब 'ने' रहित यह वाक्य इसी प्रकार अटपटा और बेढंगा जान पड़ता है, जैसे नाटक आदिमें परिदृश्यमान प्राचीन भारतका वह पुरुष, जिसने लम्बा चोगा पहन रखा हो और कानोंमें बड़े बड़े बाले लटकाये तथा हाथोंमें बाजूबन्द आदि पहने हो। जो प्रवाह

सम्पादकीय टिप्पणियाँ

विज्ञानका दुरुपयोग

विज्ञान और विज्ञानी संसारके लिये सत्य ज्ञान और उसके खोजी हैं। जीवमात्रको सत्यकी खोज और सत्यकी उपासना कर्त्तव्य है। परन्तु दुराचारी और काम, क्रोध, लोभ, ईर्षा, द्रोह, मद, मोहमें फँसे प्राणी इस दैवी प्रसादका दुरुपयोग करते हैं, इस ईश्वरीय देनकी दुर्दशा करते हैं।

खोजियोंने किसी स्वार्थवश परिश्रम नहीं किया। उनके त्याग और तपस्यासे ही रीझकर भगवती उमाने उनपर कृपा की। परन्तु उनके वरदानका लाभ उठाने लगे स्वार्थी। तपस्वियोंने भूल यह की कि भगवान्के इस अनुपम वरदानको अनधिकारियोंके हाथमें सौंप दिया। कामके वश होकर, पाप छिपानेके लिये और प्रकृतिको छलनेके लिये सन्तति निरोधके बहानेसे भांतिभांतिके नीतिनाशक उपाय रच डाले। क्रोध, ईर्षा द्रोह, मद, मोहके वश हो डैनामाइट, तोप, बारूद, मशीन गन, विनाशक गैसें आदि भांतिभांतिके संहारकारी यंत्र बनाये, लोभके वश होकर भांति भांतिसे अपने पड़ोसियोंको लूटनेके यत्न किये। कच्चे मालसे तो क्या कूड़ेसे भी सम्पत्ति निकाली, यह तो अच्छा ही था। परन्तु विज्ञानके सहारे सम्पत्तिको आज अनावश्यक मात्रामें उपजाकर पड़ोसियोंको लूटनेमें अनधिकारियोंने कोई कसर न रखी। जब विज्ञानसे सभी वही लाभ उठाने लगे तब लोभियोंका यह सुभीता भी चला गया। आज तो विज्ञानको लोभियोंने तमाशा बना लिया है। भारत जैसे दरिद्र देशमें जिसकी सिर पीछे औसत आय छः सात पैसे रोज हैं, सिनेमाके तमाशे घोर देशद्रोह हैं। यह गरीबोंके देशके बचे खुचे धनको खींचकर अपने पराये देशोंके पूंजीपतियोंकी भरी थैथियोंको और भी भरना है। इन मंदीके दिनोंमें, शक्करकी मिलोंकी बहुतायत, बीमा कम्पनियोंकी धूम, हवाई जहाजोंके तमाशे, क्रिकेटका खर्चीला खेल, सिनेमा और थिएटरोंकी चहलपहल देशके बचे खुचे धनकी बरबादी तो एक ओर करते हैं और दूसरी ओरसे देखनेवालोंको इस भ्रममें डालते हैं कि देश कंगाल नहीं है, समृद्ध है। विज्ञान झूठका प्रवर्त्तक नहीं है परन्तु धनके लोभी रोजगारी इस परम सत्यज्ञानको अधिष्ठान बनाकर उसीके सहारे भ्रम, असत्य और छलके महल खड़े करते हैं। रा० गौ०

सिनेमासे नैतिक हानि

सिनेमासे धनकी जो अपार हानि है वह तो है ही, परन्तु नैतिक हानिका तो उससे भी कहीं अधिक भयंकर प्रभाव भारतके नैतिक परिमाणसे पड़ता है इसका अनुमान पाठक कुछ थोड़ा बहुत इससे कर सकते हैं कि मिस मेयोके देशके व्यवहारविज्ञानी, कृषिके परमाचार्य्य, अभिनव विश्वामित्र, लूथर बरबंक अपने देशके युवकोंपर सिनेमाके अनिष्ट प्रभावकी कैसी शिकायत करते हैं, सुनिये। (यह अवतरण हिन्दी

आगे बढ़ गया, उसे अब पीछे नहीं लौटाया जा सकता। 'ने' आदिका प्रयोग हिन्दीमें किसीके प्रोपेगंडासे या प्रस्ताव उपस्थित करनेसे नहीं हुआ है। अपने आप प्राकृतिक रीतिसे यह सब हुआ है और यदि कुछ परिवर्तन होगा, तो अपने आप होगा। फिर वैसे ही व्याकरण बन जायँगे।

सारांश यह कि भाषा या व्याकरणको अपने मनोनुकूल चलाना असम्भव है, पर लिपि-संस्कार वैसी बात नहीं। यह हो सकता है, परन्तु बहुत सोच समझकर इस विषयका उपक्रम करना चाहिए।

तूफान के ५वें अंकमें श्रीपन्नालाल गुजरातीने अपने "सिनेमाका असर" नामक लेखमें दिया है।)

"सिनेमा आजकल नवयुवकोंके चरित्र-भ्रष्ट करने तथा उनके जीवनको मटियामेट कर देनेका बड़ा भारी साधन बन रहा है। सिनेमा देखते समय नये खूनवाले नौजवानोंकी नसोंमें अनेक प्रकारकी उत्तेजनाएँ फैल जाती हैं। असम्भव, भयङ्कर और दुस्साहस-पूर्ण घटनाओंके जो चित्र दिखाये जाते हैं, उनसे नवयुवकोंके कोमल कच्चे दिलपर कोई अच्छा प्रभाव नहीं पड़ता। वे कोई ऐसी बात नहीं सीख लेते जो उनके जीवनको उन्नत बनानेमें सहायक हो सके। हाँ, चोरी और डकैती तथा धूर्त्तता और चालाकी सीखनेमें जरूर उन्हें कुछ सहारा मिलता है। उनमें चंचलतापूर्वक मखौल करनेकी आदत पड़ जाती है। प्रेमिकासे मिलनेके लिये समुद्र तैर जाना, पहाड़ लांघ जाना, बड़ी-बड़ी इमारतोंपर बिना सीढ़ीके चढ़ जाना, हत्या करना, पागल बने फिरना और अनेक विघ्नोंका सामना करना, उनकी समझमें आसान मालूम होने लगता है। युवती सुन्दरीकी भावभंगिमा उन्हें स्वप्नमें भी चैन नहीं लेने देती। चुम्बनालिङ्गनकी प्रगाढ़ता उनके हृदयमें अनेक प्रकारके आवेश भरकर उन्हें दुष्प्रवृत्तियोंकी ओर झुका देती है। जिस प्रकार उत्तेजक खाद्य पदार्थसे शरीरके रक्तमें उष्णता और उत्तेजनाका संचार होता है, उसी प्रकार दृष्टिपथसे हृदयके अन्दर घुसे हुए विकार-पूर्ण भाव खासकर युवकों और युवतियोंके हृदयको मथ डालते हैं। वे इन्द्रिय-परवश होकर आत्मबलसे हाथ धो बैठते हैं।"

भारतवर्षमें सिनेमाने तो यत्परो-नास्ति अपकार किया है। अनेक होनहार साहित्यसेवी रुपयेके लोभमें पड़कर हमसे छिन गये। अनेक युवकयुवती अच्छे कामोंको छोड़कर लोभवश ही उस पातकमंडलीमें सम्मिलित हो गये और अपने आचरणका पतन कर दिया। सामयिक पत्रोंका नैतिक परिमाण लोभवश गिरकर रसातलको चला गया। कई संदिग्ध चरित्रोंके चित्र आजकल बड़ी आत्मश्लाघासे वेही छाप रहे हैं जो पहले उनका नाम लेते झिझकते। अब सिनेमाके विरुद्ध किसी पत्रमें आन्दोलन करना असंभव हो गया है क्योंकि प्रायः सभी ऐसे पत्र जिनमें सफल आन्दोलन संभव है सिनेमाके विज्ञापनोंसे भरे रहते हैं।

सिनेमाके हिमायती यह युक्ति लेकर खड़े होते हैं कि सिनेमामें अभिनयकलाकी अभिव्यक्ति होती है। इस बहानेको लेकर सिनेमा-सहायक अनेक पत्र भी निकल पड़े हैं। कई पत्रोंने तो जमानेका रंग देखकर अपने स्तंभोंमें "रंगमंच" नामका स्तंभ भी खोलकर अपने एक महत्वके अंगको व्यभिचारके फैलानेमें सहायक बना दिया है। यह सब क्या है? क्या शुद्ध अभिनयकलाके प्रोत्साहनके लिए ऐसा किया जा रहा है? क्या इन सबका मूल "काम" और "लोभ" नहीं है? वैज्ञानिक आविष्कारोंका कदापि यह उद्देश्य न था। अनधिकारियोंके हाथमें पड़कर विज्ञानकी कैसी दुर्दशा हो रही है!

कलाकी आड़में जब व्यभिचार फैले तो उस कलाको कभी प्रोत्साहन न मिलना चाहिये। कलाकी आड़में दरिद्र देशके धनकी हानि हो तो उस कलाको देशके लिये महापातक समझना चाहिये। विद्याको अनधिकारीके हाथमें पड़ने देना भी पातक है और विद्वानों और वैज्ञानिकोंके ऊपर इसकी भारी नैतिक जिम्मेदारी आती है।

सस्ती सुबोध वैज्ञानिक ग्रंथमाला

हिन्दी भाषाकी प्राचीनतापर भाषण करते हुए बरोदाके प्राच्य-विद्या-सम्मेलनमें श्रीमान् राहुल सांकृत्यायनजीने हिंदी-विभागके सभापति पदसे एक महत्त्वशाली व्याख्यान दिया। आपने हिन्दी साहित्यकी त्रुटिपूर्तिपर कहते हुए कहा—

हिंदीमें विज्ञान सम्बन्धी साधारण ग्रन्थोंका भी कितना अभाव है इसे आप सब जानते ही हैं। इस कमीको हम एक हदतक पूरा कर सकते हैं—यदि एक वैज्ञानिक चवन्नी ग्रन्थमाला निकाली जाय। इस मालाकी प्रत्येक पुस्तक डबल क्राउन १६ पेजी १०० पृष्ठोंके करीबकी हो। पुस्तक बिना हजम किया अनुवादमात्र न हो। ऐसे हिंदी भाषा-भाषी विज्ञानके अभिज्ञ विद्यमान हैं। यदि वे सहायता करें और कुछ पुस्तकोंके मुद्रणके लिये कोई तैयार हो जाय तो ऐसी ग्रंथमाला स्वावलम्बी भी हो जायगी।

हम इस प्रस्तावका सहर्ष अनुमोदन करते हैं। परिषत्‌का यही उद्देश्य है। इसकी पूर्तिमें उसने कुछ

प्रयत्न भी किया है। परन्तु वह व्यापारी संस्था नहीं है, यही उसका भारी दोष है। बिक्री और प्रचारका काम करनेवाली व्यक्ति या संस्था ही इसमें सफल हो सकती है।

भूकम्पका जगद्व्यापी उपद्रव !

सन् १९३४ने आरंभसे ही हमारे देशमें प्राकृतिक उपद्रवका सूत्रपात कर दिया है। १५ जनवरीको एक ही राशिमें सात ग्रह एकत्र हो गये। हमारे पाठक जानते हैं कि ग्रहोंके ही खिंचाव या सान्निध्यसे धरतीका वर्त्तमान रूप बना है और सूर्य्यचन्द्रमाके नित्यके विविध भाँतिके सान्निध्य या खिंचावका फल समुद्रमें ज्वारभाटाका उठना है और आँधी तूफान और वातधाराकी दिशा और विविध वेग है। द्रव और वायव्यपर तो निरन्तरका यह प्रभाव विज्ञानको प्रत्यक्ष है। धरतीके चिप्पड़पर भी इनका निरन्तर प्रभाव पड़ता रहता है, हमें मालूम नहीं होता। हमारी धरतीका वर्त्तमान रूप इसी निरन्तरके खिचावसे बना हुआ है और बाहरी खिचावमें तारतम्य होनेसे रूपमें बराबर परिवर्त्तन होता रहता है।

धरतीके रूप-निर्म्माण एवं परिवर्त्तनमें बाहरी और भीतरी दो तरहकी शक्तियाँ काम करती हैं। बाहरी शक्तियां देश, काल और बाहरी पिंडोंकी हैं। भीतरी शक्तियाँ धरतीकी वस्तुमात्राकी ही हैं। धरती आज भी एक ज्वलन्त गोला है जिसके भीतर प्रचंड अग्निके रूपमें अपार और अपरिमेय शक्ति दबी हुई है। यह दबाव बाहरी शक्तियोंका और भूमंडलके ऊपरीतलका मिला जुला है। धरतोका बड़े वेगसे परिभ्रमण स्वयं उसके रूपके विधायक कारणोंमें है। वायुमंडलका दबाव उसके ऊपर बहुत भारी है। उसका घना चिप्पड़ स्वयं भारी दबावका कारण है। जहाँ जहाँ चिप्पड़ ऊँचा हो गया है, वहाँ दबाव अधिक हैं। जहाँ नीचा है वहाँ तलके घने पदार्थका दबाव कम है। इस चिप्पड़के फैलने और सिकुड़नेसे जगह जगह थोड़ा बहुत शून्य देशसा भी छूटा हुआ है जिसके भीतर वर्षाका जल इकट्ठा हो जाया करता है। इस तरह भूतलके भीतर जलागार भी हैं और थोड़ी थोड़ी जगह जगह पोली जगहें भी हैं। भीतरी आंचकी प्रचंडतासे और ऊपरी खिचावों दबावोंसे बहुधा कहीं न कहीं धरतोके भीतर कम्पनकी लहरें उठती रहती हैं और भूकम्प-मापकयंत्रमें उसका अंकन होता रहता है। इस तरह भूकम्प सदा एकही कारणसे नहीं होते। कभी एक कारण प्रबल हुआ, तो कभी दूसरे तीसरे कारण प्रबल होते हैं।

इस बार एक ही समयमें एकदम सात ग्रह एकत्र हो गये। न्यूटनके सूत्रसे इनसे एक ही दिशामें सम्मिलित खिचाव उत्पन्न हुआ। ऐंस्टैनके सूत्रसे देशमें, जो मात्राके आधिक्यसे अधिक वक्र हो जाता है, अत्यधिक वस्तुमात्राका सान्निध्य हुआ। दोनों सूत्रोंसे उग्र उभाड़ और भयानक कम्पनका होना अनिवार्य्य है। हिन्दू साहित्यमें सातों ग्रहोंके एकत्र होनेपर दुर्भिक्ष, भूकम्प, जलप्लावन, अग्निप्रकोप, धरतीमें उथल-पुथल, बस्तियोंका और धनजनका नाश ही प्रलयके पूर्वानुवर्त्ती लक्षण बताये हैं। यह सभी बातें उग्र भूकम्पकी अनुवर्त्ती हैं, और ग्रहोंका खिचाव या सान्निध्यसे यह सभी बातें पृथक पृथक हो सकती हैं। १५ जनवरीको प्रायः सभी बातें हुईं, और अनेक उपद्रवोंकी नीव पड़ गयी। इतिहासकी यादमें ऐसा उग्र भूकम्प कभी नहीं हुआ था। इसी उग्र कम्पनसे ठोस और पोलका बहुत कालसे स्थिर क्रम बदल गया। धरतोके चिप्पड़के भीतर कहीं तो उभाड़ हुआ और कहीं तल धँस गया। एकाएकी इस तरहका परिवर्त्तन होनेसे ऊंचातल नीचे धँस गया और नीचातल ऊपर उभड़ आया। यह चारपांच मिनिटतक उठने और गिरनेवाली लहरोंकी तरह भूतलका हिलना जहाँ जहाँ उग्ररूपसे हुआ वहाँ मकानकी दीवारें गिर गयीं, घर ढह पड़े, आदमी भाग भी न सका क्योंकि तरंगित गतिमें वह अपनी दौड़ साध नहीं सकता था। जहाँ खेत खलिहान बाग थे, धरती समतल थी वहाँ अब बालू मिट्टी पानी उभड़ आये, कहीं ऊंचा कहीं नीचा हो गया। बहुत मुद्दतसे भूतलका ऊपरी चिप्पड़ समतोल रहा, ऊंचाई नीचाई ढाल सब कुछ निश्चित रहता आया, परन्तु उस दिनके उग्र भूकम्पके कारण

यह सब कुछ कालके लिये अनिश्चित हो गया। ठोस और पोल बहुत अंशोंमें नयी स्थितिमें हो गये अतः उनमें अभी पक्की स्थिरता नहीं आयी। कुछ कालतक इसीलिये अपनी अपनी निश्चित जगह कर लेनेके लिये थोड़ा बहुत कम्पन अनेक बार आता ही रहेगा। गरमी और विशेषतः बरसातके होनेपर जब पानीके सूखनेसे संकोच और पोलके बढ़ने और पानीके भरनेसे संकोच और पोलके घटनेसे धरतीका तल निश्चित रूपसे बैठ जायगा, अच्छी बरसात खाकर जब अवस्था स्थिर हो जायगी, तभी भूकम्पका प्रभाव शान्त हुआ समझा जाना चाहिये। धरतीके तलकी ऊंचाई नीचाई बदल जानेसे बरसातमें ही यह निश्चय हो सकेगा कि प्रभावित क्षेत्रमें नदी नाले किधरसे बहेंगे, कौन कौन मार्ग ग्रहण करेंगे। बहुतसे खेत बालूके आनेसे सदाके लिये बेकाम हो गये हैं और बहुतेरोंके तलमें फेरफार होनेसे बहुत कालके परिश्रममें वह काममें आ सकेंगे। इस फेरफारमें जहाँ कहीं आजतक ऊसर और मरुस्थल था वहाँकी भूमि बहुत उपजाऊ भी हो जा सकती है। तलके अस्थायी रूपसे विचलित और परिवर्त्तित हो जानेसे, जबतक स्थायित्व आ जाय तबतक निश्चय रूपसे किसी स्थानपर बस्तीका तुरन्त बसना खतरेसे खाली नहीं है।

इस भूकम्पका क्षेत्र कितना विस्तृत था इसका अनुमान कठिन है। दक्षिणचीन, तिब्बत, नेपाल, उत्तर बिहार तो एशियामें उसके क्षेत्र थे। दक्षिण युरोप और एशियाकी सीमापर तुर्कीमें तथा अफ्रिकाके समुद्र तट अलजीरियामें भी जहाँ ५० फुट ऊँची लहरें उठीं कम्प आया और अतलान्तिक महासागरके मध्यमें भी धरतीके भीतर एशियावालीसे संभवतः अधिक उग्र और भयानक हलचल हुई है। इसका पता कुछ थोड़ा सा ही डचेस आफ यार्क" नामके जहाजको लगा। उसे असाधारण ऊँचाईकी लहरोंके भयानक थपेड़े लगे, बीसों यात्री घायल हो गये, जहाजके सर्जनकी केहुनीकी हड्डी टूट गयी, पाँच छः हजारका सामान नष्ट होगया। यह ऊँची लहरें भूकम्पकी शक्तिमती लहरोंसे प्रणोदित हुई हैं। उनका प्रभाव महासागरकी अगाधताको अतिक्रमण कर ऊपरके तलपर व्याप गया। मेक्सिको देश भारतके ठीक नीचे है, पाताल है। वहाँ भी उग्र भूकम्प हुआ और बहुत हानि हुई है। जापानके नागासाकीके पास भी समुद्रमें तूफान बरपा हो गया और अफ्रिकाके सहारामें यदि कोई उपद्रव हुआ हो तो इसका पता लगना ही असंभव है।

एशियाके प्रभावित भूभागोंमें तो प्रलय ही हो गयो। यह देश भी क्या कभी यथास्थित होंगे? जापानका एक तोकियो नगर उजड़ गया था। उसके बसते देर न लगी। परन्तु यहाँ तो १२ नगर और हजारो वर्गमील बरबाद हो गये, कहीं अधिक धन-जनका नाश हुआ है! उससे इनकी तो तुलना हो नहीं हो सकती। इनके लिये कोई आशा नहीं। इनकी प्रलयमें देर न लगी, परन्तु नये युगकी प्रतीक्षावाली संध्या बहुत लम्बी होगी।

भूकम्पके कारणपर विविध कल्पनाएँ

भूकम्पके समाचारपर ही रायटरने यह तार दिया था कि लंदनके शा महोदयकी रायमें नवयुवक हिमालय बढ़ रहा है। उसी कारण उपद्रव हुआ है। पीछेसे कुछ लोगोंकी राय हुई कि हिमालय सिकुड़ रहा है। किसी किसीका कहना है कि नदियाँ हिमालयको काट-काटकर हलका करती आयी हैं। दबाव हट जानेसे उसका उभाड़ है। कोई कहता है कि हिमालय भीतरसे पाला है, उसके संकोचसे यह उपद्रव हुआ है। इस प्रकार विविध व्याख्यायें प्रकाशित हुई हैं। हमारा सबसे बड़ा रक्षक और मुरब्बी हिमालय है। आज एक स्वरसे सब उसीको दोष दे रहे हैं। परन्तु तुर्की, अतलान्तिक और मेक्सिकोके लिये हिमालयको कैसे जिम्मेदार ठहरायेंगे? पोल और ठोस तो धरतीके ऊपरी चिप्पड़में सभी जगह है। हिमालयके भीतर कोई विशेष पोल नहीं हो सकता, क्योंकि उसपर स्वभावतः और तलोंकी अपेक्षा सबसे अधिक बोझा है। हिमालयका प्रसार उन्हीं दिशाओंमें हो सकता है जिनमें नदियोंके द्वारा वह कट गया है। उसके प्रसारका फल पार्वतीय प्रदेशमें ही अनुभूत होना

चाहिये। भूतल या हिमालयका संकोच होनेसे बड़ी गरमी निकलनी चाहिये थी और प्रसारसे ठंढक। सो गरमी भूतलपर बढ़ी होती तो शीतकाल बदल जाता। प्रसारसे शीत बढ़ना चाहिये, और शीत बढ़ा भी, परन्तु भूकम्पसे पहले ही पच्छाहँसे घोर शीतका प्रवाह आ चुका था। कम्पतरंगसे संकोचप्रसार दोनों ही हुआ अतः उससे उत्पन्न गरमी सरदी दोनों बराबर होती गयी।

हिमालयको पोला कहकर उसका सिकुड़ना बतानेवालोंको यह भी स्मरण रखना चाहिये कि भूतलपर कितना भयंकर दबाव है। सब जानते हैं कि पानी दबावसे सहजमें सिकुड़नेवाली वस्तु नहीं है। जलके प्रायः अचाप्य होनेका प्रमाण ब्रह्माप्रेस है। ऐसा अचाप्य जल भी वायु जैसे अधिक तरल पदार्थ-के दबावसे अत्यन्त दबा हुआ है। हिसाबसे मालूम होता है कि यदि वायुमंडलका यह दबाव हट जाय तो पानी अपने तलसे ११६ फुट ऊँचा उछल पड़े और संसारमें एका-एकी जल-तल इतना ऊँचा हो जानेसे भारी जलप्लावन हो जाय। नदी तालाब झील कुएं सभी उबल पड़ें। ११६ फुट ऊँचे फौवारे उड़ें। संसार जलमय हो जाय। हमारे शरीर फट जायँ। रक्तके फव्वारे निकल पड़ें। इसलिये किसी भारी पोलकी संभावना धरतीके भीतर नहीं है। ठोस और पोल केवल सापेक्ष दृष्टिसे ही थोड़े-थोड़े अन्तरसे धरतीमें सभी जगह हो सकते हैं। हिमालयपर विशेष पोल होनेकी संभावना इसलिये भी नहीं है कि उसपर घन पदार्थके दबावकी विशेषता है और जल उसके भीतर प्रवेश करके और जमकर उसकी छाती हजारों बरससे फाड़ता और चूर-चूर करके रहे सहे पोलोंको भरता चला आया है! इसलिये हिमालयके पोलेपन-पर ही इस भूकम्पकी जिम्मेदारी नहीं रखी जा सकती।

ऊपरसे खिचाव होनेपर जरा-जरासी पोल भी बढ़ जानेको प्रवृत्त होती है और इस प्रकार बने शून्य देशको भरनेके लिये जल और वायु जैसे तरल पदार्थों-पर भारी चुसाव या खिचाव पड़ता है और इसीसे घड़घड़ाहटका गंभीर शब्द हुआ। धरतीके भीतर यह चुसाव या खिचाव जहाँ अधिक गहराईमें पड़ा है वहाँ आग्नेय पदार्थोंका उभाड़ हुआ। आग्नेयतलों-की गहराई और नीचाईतक इसी तरहको हलचल और दराड़ पड़ जानेकी दशामें नये ज्वालामुखी फूट निक-लते हैं। बिहारमें मुँगेर सीतामढ़ी राजगृह आदिमें उत्तप्त जलके सोते पहलेसे ही थे जो आग्नेय स्तरके बहुत ऊपरसे आनेवाले जलका पता देते थे। इस बार उत्तप्त गंधकीय जल और कीचड़का और कहीं-कहीं आग्नेय पदार्थोंका निकलना अधिक गहरे स्तरोंका पता देता है। पासहीके उभाड़का पता इससे लगता है कि दराड़ोंसे बालू और पानी निकला और धरतीका ऊपरी मिट्टीका भाग हट गया और बालूका स्तर ऊपरी तलपर आ गया। केवल सिकुड़न और शून्य देशको भरनेके लिये चुसावमात्र हो और तल ऊँचा-नीचा हो जाय तो भूकंप होकर ही रह जाना चाहिये, जैसा कि अक्सर जगहोंमें हुआ है। धरतीके फटनेकी जरूरत नहीं है। ऊपरसे खिचाव होनेसे धरतीके चिप्पड़का वहाँ-वहाँ उभाड़ हो गया जहाँ-जहाँ (हिमालयकी तरह जमा हुआ) ठोस चट्टान-रूपमें धरती नहीं है, बल्कि बालुकामय अपेक्षाकृत तरल-प्राय धरती है। ग्रहोंके खिचाव या सान्निध्यका ही असर पड़नेसे ये उपद्रव हो पड़े। परन्तु ग्रहोंका खिचाव घट जाने वा शान्त हो जानेपर भी धरतीमें उथल-पुथल और ठोस-पोलमें अस्थायित्व हो जानेसे जगह करने और स्थायी स्थिति उत्पन्न करनेके भीतरी प्रयत्नके कारण, थोड़ा-थोड़ा कम्पन कुछ कालतक होता रहना अनिवार्य्य है। एशियामें ही सबसे अधिक यह उपद्रव इसलिये हुआ कि सबसे ऊँचा भूतल ग्रहोंसे अधिक खिंच जानेको प्रवृत्त था। सिर ऊँचा उठानेका मानो ऐशियाको दंड मिला। सबसे बड़े उपद्रव-का केंद्र यही बना। इसी केंद्रसे धरतीके भीतर बहुत दूरतक किसी विशेष दिशामें ठोस और पोलका व्यतिक्रम हो जाय और कुछ कालतक उसका प्रभाव कम्पनमें प्रकट होता रहे, ऐसा भी स्वाभाविक ही है।

हमारी लाचारी

इस भूकम्पमें मनुष्यने अपनी नितान्त लाचारीका अनुभव किया है। हमें समझना चाहिये कि हम कैसी दशामें हैं। वैज्ञानिकोंने भूगर्भका अबतक जैसा अनुमान किया है,—और वह ठीक ही जान पड़ता है,—वह यह है कि धरती भी और आकाशीय पिंडोंकी तरह ठंढा होता हुआ गोला है। इस गोलेका जैसा महान आयतन है वैसे ही उसके ठंढे होनेमें देर भी लगती है। देर भी कितनी ? कई अरब बरसोंके चक्करके बाद इसपर ठोस चिप्पड़ जमा और वर्त्तमान प्रकारके प्राणियोंकी उत्पत्ति और जीवनके योग्य ठंढक पैदा हुई। चिप्पड़के नीचे है प्रचंड अग्नि! यह चिप्पड़ कुल पचास कोससे ज्यादा मोटा नहीं है। उसके नीचे अस्सी कोसके लगभग गला हुआ धधकता पत्थर है जो जलकी तरह तरल है और प्रचंड आंचसे सफेद चाँदीकी तरह चमकता है। उसके नीचे तीन-सौ कोस-तक यही तरल पत्थर आँचकी प्रचंडतासे बहुत घनी धधकती हवाके रूपमें कसा हुआ है। धरती गोल है। चारोंओर चार-सौ-तीस कोसका तो इतना घेरा है। इस घेरेके भीतर तीन हजार कोसके व्यासमें केंद्रतक जलसे पांचगुना अधिक घना वायव्य है। इस वायव्यमें प्रधान है लोहा। जिस चिप्पड़पर हम रहते हैं उस पचास कोसमें भी सबसे ठंढी जगह ऊपरी तल है। खानोंमें ज्यों ज्यों नीचे उतरिये गरमी बढ़ती जाती है। यहाँतक कि बड़े कड़े जाड़ेमें गहरी खानोंके मजूर नंगे बदन काम करते और पसीनेसे तर रहते हैं। ऐसे दहकते आगके गोलेपर हम रहते हैं। "रहबेको आचरजु है, जरे अचंभो कौन ?"

गुड़ पकानेवाले बड़े दानवाकार कड़ाहेमें प्रचंड आँचसे दूध गरम हो रहा हो। उसपर मलाईकी बहुत पतली तह फैल गयी है। जहाँ तह जरा मोटी है वहाँ चींटीसे भी हजार गुना छोटे जीवाणु कई अरबोंकी संख्यामें रहते हों। उसी चिप्पड़पर वह उपजे हों और वहीं रहते हों। कहीं-कहीं दूधमें कभी फदकाहट हुई तो उनके लिये तल-कम्प हो गया। बुलबुले निकल पड़े तो ज्वालामुखी फूट पड़ा। उस स्थानके और आस-पासके जीवाणु और उनके आवास समाप्त हो गये। ऐसी कल्पना करें तो हम अपनी दशाका कुछ थोड़ा मिलता जुलता अनुमान कर सकते हैं। यह कर्त्ताकी महा महिमा है कि हम ऐसे धधकते गोलेपर निश्चिंत निरंतर रागरंगमें अपना जीवन बिताते रहते हैं और अपनी लाचारी भूलकर अपने विभव और बल और बुद्धिका कितना गर्व करते हैं। प्रकृति कभी कभी हम बच्चोंके कान पकड़कर समझा देती है कि "अभिमानी नटखट न बनो। भले-मानुस बच्चे बने रहो।" इस कनेठीपर हम घबरा जाते हैं और कहते हैं कि कोई "दयालु ईश्वर होता तो ऐसा निष्ठुर दंड न देता।" यह भूल जाते हैं कि हम धधकते गोलेपर हजारों बरस जिसकी कृपासे मोहानन्दमें भूले निर्भय रहते हैं, उसके कृतज्ञ नहीं होते। इसीकी चेतावनी है।

—रा० गौ०

विनाशकाले विपरीत बुद्धिः

यह बिलकुल सच है कि विनाशके समय मति मारी जाती है। अनेक मनुष्य इस भयंकर घटनाके समय भाग भागकर मृत्युमुखमें गये। मुंगेर, मुजफ़्फ़रपुर, दरभंगा आदि नगरोंके ध्वस्त होनेका समाचार मिलते ही चाहिये था कि विश्वविद्यालय बन्द करके जवानोंकी एक भारी सेना टोकरी और फावड़े लेकर इन ध्वस्त बस्तियोंको दौड़ जाती और उन्हें निकालनेकी कोशिश करती जो जीते जी दफन थे। खबरें बहुत देर करके दी गयीं और आतंक फैलनेके डरसे बहुत काटछाँटकर दी गयीं। हमारे नेताओंकी भी मति मारी गयी कि उन्होंने कहा कि आदमियोंकी जरूरत नहीं है। हमने जब कई शहरोंके विनाशका हाल जाना तभी इसी जरूरतपर जोर देते हुए एक लेख "आज"-सम्पादकको दिया था। उन्होंने किसी भूलसे उसे समयपर न छापा। कई दिनों पीछे उसे छापना ही व्यर्थ समझा गया, क्योंकि ऐसा मतिभ्रम सबको हो गया कि आदमियोंके जानेकी वहाँ जरूरत ही नहीं है। कौन कह सकता है कितने प्राणी बचना संभव होते हुए भी तड़प तड़पकर मर गये

होंगे ? बिना जलके बीस दिनोंतक मनुष्य जीता रहता है। यदि देशका नवयुवकदल पढ़े लिखे समझदार और सुसंगठित मजूरोंके रूपमें जुट जाता तो इन शहरोंको जीवित-समाधि बननेसे जरूर रोक लेता। श्रीसम्पूर्णानन्दजीकी आवाज इस सम्बन्धमें जरूर उठी, परन्तु उनकी अपील देरसे हुई। आतंक फैलनेके डरसे कर्मचारियोंने, और मित्र काम करनेवालोंने भी क्या क्या अनर्थ नहीं कर डाले! हमारे दुर्भाग्यसे और निष्ठुर नियतिकी प्रबलतासे इस आतंकके आतंकने हमें बेतरह मारा।

साथ ही यह बात भी सच है कि कारखानोंके नष्ट हो जानेसे पीडित स्थानोंमें कई हजार कुली काम करनेवाले मिल गये जिससे कि आरंभमें काम करनेवालोंकी बहुत ज्यादती मालूम हुई। इनका भी उचित संगठन होता तो बहुत लाभ हो सकता था। परन्तु न तो कुलियोंमें अपनी गाँठकी बुद्धि थी और न उनके लगानेवाले पीड़ितोंकी बुद्धि ठिकाने थी, इसीलिये जितना काम होना चाहिये था, न हो सका। बहुत जगह तो काम करनेको एक भी कुली नहीं था और न कोई काम करानेवाला ही था और किसी किसी जगह घरोंके बचे लोगोंने इतने कुली रख लिये कि न उनके पास काफी औजार थे और न अच्छी तरह फैलकर काम करने और मलबा हटानेकी जगह ही थी। घबराहटसे मति मारी गयी, संगठन न हो सका। यह देखकर ऐसा समझमें आया कि काम करनेवाले इतने अधिक हैं कि उन्हें सुभीतेसे काम करनेको कुशादा जगह नहीं मिलती। इसलिये बाहरसे काम करनेवालोंको रोकना भी आवश्यक हुआ। जीते दफन होनेवालोंको निकालनेके लिये मलबा हटावें तो किधर? हटाकर जहाँ रखना चाहते हैं या रखनेका मौका समझते हैं वहाँ भी तो खोदना है। इस तरह मौकेपर काम करनेवाले किं-कर्त्तव्य-विमूढ़ हो गये। बड़े बड़े समझदारोंको अचानक भूकम्पको समझते समझते भी देर लगी थी, वैसे ही इस सहायताके काममें भी स्थानपर समझमें नहीं आता था कि क्या करें। इसीको माया कहते हैं। वहाँ अधिक आदमियोंके रहनेका या ठहरनेका भी मौका न था। ओस और कड़े शीतमें रातभर मैदानमें रहना था। जितने अधिक आदमी इकट्ठे होते उतना ही अधिक कष्ट बढ़ता और उनके लिये खाने रहनेका बन्दोबस्त करना पड़ता सो अलग। और उसपरसे हैजा और प्लेग फैलनेका भी भय था।

जो लोग सहायताको गये, कठिनाइयाँ झेलनी पड़ीं तो उनमेंसे अनेक हिम्मत हार गये। जितना कुछ करना था उतना कर न सके। उन्हें यह सोच समझके जाना था कि क्या क्या मुसीबतें झेलेंगे। सहायताका मार्ग कटीला है, उपकारके पर्वतकी कड़ी चढ़ाई होती है। संकटसे उबारना हो तो अपनेको संकटमें डाले। परन्तु इस उतावलीमें न चुनाव संभव है न शिक्षा। इसीलिये काम करनेवाले शहरोंमें ही रह गये। देहातोंमें अधिक कष्ट उठानेकी हिम्मत बहुत कमको हुई। अधिक आदमी तो अब भी देहातोंके लिये चाहियें।

प्रकृतिको नष्ट करना मंजूर था तो कौन रक्षा करनेमें समर्थ होता? "पलमें परलै" होना इसीको कहते हैं। मायावश होकर "कर्त्तुं नेच्छसि यन्मोहात्करिष्यस्यवशोऽपितत्" हम कैसे लाचार हो जाते हैं, यह बात इस प्रलयमें प्रत्यक्ष हो गयी। —रा० गौ०

मद्रासप्रान्तमें हिन्दीका प्रचार

महात्मा गांधीने मद्रासप्रान्तमें हिन्दीके प्रचारकी सं० १९७५में बुनियाद डाली। उस साल गरमियोंमें उन्होंने अपने पुत्र देवदासजीको भेजकर यह काम शुरू कराया। पिछले पाँच वर्षोंमें तो इस आन्दोलनने अद्भुत उन्नति की। स्कूलों और कालिजोंके छात्रोंकी एक बड़ी संख्या मिलाकर लगभग ४० हजार आदमी आज हिन्दी सीखनेमें लगे हुए हैं। अबतक प्रचार सभाने ४ लाख दक्षिणियोंको हिन्दी सिखायी है। सभाकी परीक्षाओंमें अबतक ४० हजार आदमी बैठ चुके हैं। १० हजार तो इसी साल बैठे थे।

सभाके पास अपना अच्छा सा छापाखाना है जिससे ६५ विविध पुस्तकोंकी छः लाख प्रतियाँ छप चुकी हैं, जिनमें स्वशिक्षक रीडरें, कोश इत्यादि पुस्तकें चारों दक्षिणी भाषाओंमें निकली हैं।

अबतक ६०० शिक्षक हिन्दी पढ़ाना सिखाये गये

हैं और ३५०केंद्रोंमें हिन्दीकी पढ़ाई होती है और ये केन्द्र दक्षिणकी चारों भाषाओंके प्रान्तोंमें फैले हुए हैं। आरंभिक शिक्षाकी पाठशालाओंके अतिरिक्त सभा चार महाविद्यालय भी चलाती है जिनमें हिन्दी साहित्यकी ऊँची शिक्षा दी जाती है और ऊँची श्रेणीकी परीक्षाओंके लिये छात्र तय्यार किये जाते हैं। प्रचारकों-की शिक्षाके लिये मद्रास शहरमें एक शिक्षक विद्यालय भी है। इन केन्द्रोंमेंसे अधिकांश इतने लोकप्रिय हैं कि अब अपने पाँवों खड़े हो रहे हैं। देवियों और ग्राम-निवासियोंमें हिन्दीके लिये बड़ा उत्साह है। लगभग ५० अंग्रेजी स्कूलोंमें हिन्दीको स्थान मिला है और कई कालिजोंमें भी हिन्दी पढ़ायी जाने लगी है। यह सब सभाकी कोशिशोंका फल है।

एफ० ए० और बी० ए० की परीक्षाओंमें दक्षिणी विश्वविद्यालयोंमें भी अब कोई परीक्षार्थी चाहे तो हिन्दी विषय लेकर बैठ सकता है।

जो परीक्षार्थी सभाकी परीक्षाओंमें उत्तीर्ण होते हैं उन्हें प्रमाणपत्र और उपाधिपत्र मिलते हैं और उपाधि परीक्षामें उत्तीर्ण होनेवालोंको "राष्ट्रभाषा विशारद"की उपाधि दी जाती है। यह परीक्षा तीन वर्षोंसे हो रही है। उपाधिवितरणके तीन महोत्सव भी हो चुके हैं। पिछला महोत्सव स्वयं महात्मा गांधीके सभापतित्वमें सौर ७ पौष शुक्रवारको बड़े समारोहसे हुआ जिसमें पं० रामनरेश त्रिपाठीने बहुत सुन्दर दीक्षान्त भाषण दिया।

जिस तरह इस आन्दोलनको महात्मा गांधीने जन्म दिया उसी तरह उन्होंने आरंभमें ही इसमें प्राण भी फूँका था। वह प्राण अब भी उसे अनुप्राणित कर रहा है। यह प्राण हैं पं० हरिहर शर्म्मा। शर्म्माजीने ही अपनी जादूकी लकड़ीसे इस छोटेसे आन्दालनको ऐसा विराट रूप दे दिया है। अभी अपने पूर्णविकास-को इसे पहुँचना बहुत बाकी है। किसी दिन हिन्दीके रूपपर बहुसंख्यक द्रविड़ जनसमुदाय मिलकर अपनी छाप बिठा देगा और हिन्दीके उत्तरी और दक्षिणी ये दो रूप हो जायँगे। हमें यही दिन देखनेका हौसला है। रा० गौ०

सर शाह मुहम्मद सुलेमानका परिभ्रमण-वाद

इलाहाबाद हाइकोर्टके वर्त्तमान चीफ़ जस्टिस सर शाह मुहम्मद सुलेमान साहबने २३ सितम्बर १९३३को अपने अभिनव परिभ्रमण-वादकी व्याख्या प्रकाशितकी है। २४ बरस पहले जब वह केम्ब्रिजमें दूसरे भागवाले गणित ट्रैपासकी तैयारी कर रहे थे तब इस कल्पना-का उनके मनः पटलपर सूत्रपात हुआ था और उन्होंने अपने नोटबुकमें इसे लिख रखा था। परन्तु वह कानूनकी ओर रुजू हो गये और इस विषयके पूर्ण विकासकी नौबत अबतक न आयी। इस बीच विज्ञान बहुत लम्बे-लम्बे डग मारता हुआ विकासमार्गमें अग्रसर रहा। कानूनमें एकदम लिप्त रहते हुए भी जज साहबने विज्ञान और गणितका अनुशीलन बराबर जारी रखा और अपने परिभ्रमण-वादकी परिकल्पनाको वह आजतकके विकासके अनुकूल बराबर परिणत करते आये। अन्ततः चार मास हुए इस परिकल्पनाको उन्होंने प्रकाशित किया।

उनकी परिकल्पनाको विज्ञानके पाठकोंके लिये हम अपने ढंगपर संक्षेपमें यहाँ देंगे।

हमारा विश्व परिभ्रमण करते हुए अनन्त ब्रह्मांडोंका समूह है। प्रत्येक ब्रह्मांड अनन्त ग्रहोंका परिभ्रमण-समूह है। प्रत्येक ग्रह भी परिभ्रमण-समूह है। इस धरती-ग्रहपरका प्रत्येक कण अणुओंका परि-भ्रमण-समूह है। प्रत्येक अणु परमाणुओंके परिभ्रमण-का समूह है। प्रत्येक परमाणु विद्युत्कणोंका परि-भ्रमण-समूह है। यह सर्वमान्य है कि परिभ्रमणके प्रकार विविध होते हुए भी प्रत्येक भ्रमणमंडल जिस बड़े परिभ्रामकका अंश है, उस परिभ्रामककी गति भी रखता है और जो कण परिभ्रमणद्वारा उस भ्रमणमंडलका निर्म्माण करते हैं उनकी गति भी उस मंडलमें विद्यमान है। जैसे, सूर्य्य स्वयं एक भ्रमणमंडल है जो विश्वरूपी परिभ्रामकका अंश है और उसकी गति रखता है, अपनी भ्रमण-गति भी रखता है और उसकी परिक्रमा करनेवाले ग्रहोंकी भी

सूर्य्यके परिभ्रमण-मंडलमें गति है। ग्रहोंका घूमता हुआ समूह जो सूर्य्यके चहुँओर घूमता हुआ सूर्य्य-मंडलके रूपमें अभिजितकी ओर भागता देख पड़ता है उसकी अनन्त देशमें वैसी ही गति है जैसी कि लकड़ीके भीतर घुसते जानेवाले पेंचकी होती है। पेंचमें एक हिस्सा तो लम्बे कीलका होता है और दूसरा हिस्सा उस कीलके गिर्द घूमी हुई चूड़ियोंका होता है। पेंच घूमता हुआ लकड़ीमें प्रवेश करता है। सूर्य्यका परिभ्रमण-मंडल जो अभिजित्‌की दिशामें जा रहा है देशरूपी काठमें छेद सा करता हुआ बढ़ता जा रहा है। यह बढ़ना अत्यन्त दूरीके कारण सीधा दीखता है, परन्तु है वस्तुतः वृत्त या दीर्घवृत्तके रूपमें। इस गतिमें किसी-किसी पिंडका या केतुका टूट निकलना भी देखा जाता है। जिन पिंडोंका वेग सूर्यसे कम है वह बाहर नहीं भाग सकते। जिनका वेग कम है वह भीतरके ही पिंडोंपर खिंचकर टूट पड़ते हैं। यह मंडल भी दो प्रकारके होते हैं। एक तो वह जो केन्द्रस्थ किसी पिंडके गिर्द घूमते हैं वा केंद्रानुगत हैं, और दूसरे जो स्वतंत्र गतिसे घूमते हैं।

यहाँतक तो विज्ञानकी सर्वमान्य बातें हुईं। परमाणु भी विद्युत्कणों या ऋणाणुओंका भ्रमण-समूह है। परन्तु स्वयं ऋणाणु कोई परिभ्रमण मंडल हो सकता है यह कल्पना किसी-किसी वैज्ञानिकनेकी परन्तु इस कल्पनाको किसीने इतनेसे आगे नहीं बढ़ाया।

सर शाहकी कल्पना इससे आगे बढ़ी। उन्होंने निश्चित रूपसे यह धारणा प्रकट की है कि प्रत्येक ऋणाणु स्वयं अत्यन्त वेगवान (radions) किरणाणुओं-के परिभ्रमणसे निर्मित है। इनकी गति १,८६,००० १,८६,००० मील प्रतिसेकंड है। इन्हें ही हम किरण कहते हैं। इनकी गति एक तो अपने परिभ्रमणकी है और दूसरे विद्युत्कणोंके साथ परिभ्रमणकी है। परन्तु ये किरणाणु स्वयं उनसे भी छोटे और अधिक वेगवान् कणोंके बने हैं जिन्हें (gravitons) कर्षाणु कहा गया है। कर्षाणु भी किरणाणुओंसे वही संबन्ध रखते हैं जो किरणाणु ऋणाणुसे रखते हैं। कर्षाणुओंकी रचना भी उनसे भी कहीं सूक्ष्म कल्पनातीत वेगवाले (cosmions) कस्मिकाणुओंसे हुई है। इन सर्गाणुओं वा कस्मिकांशुओंकी तो विश्वमें अव्याहत गति है। (धनुके अंकमें हम कस्मिकांशुओंकी चर्चा कर चुके हैं।) इस कल्पनाके आधारपर सर शाह महोदयने अबतककी सभी भौतिक विज्ञानीय धारणाओंको तर्क और गणितसे पूर्ण सुसंगत प्रमाणित किया है और अनेक गुत्थियाँ भी सुलझायी हैं।

आजकल भौतिक विज्ञानी प्रकाशकी दो तरहकी दशा मानता है, तरंगीय और कणीय दोनों। वह यह निश्चय नहीं कह सकता कि कब कौन-सी दशा हो सकती है। सर शाहने अपनी परिकल्पनासे स्पष्ट कर दिया है कि किरणाणुओंकी गतिके कारणही तरंगोंका रूप प्रकट होता है। सर शाहकी यह व्याख्या सचमुच बड़ी संतोषदायक और समीचीन जान पड़ती है। तरंगोंकी लंबाईकी नापवाली विधि भी उनकी व्याख्या-से स्पष्ट हो जाती है। रंग, आवर्जन, (penetration) प्रवेशन, परावर्त्तन, व्यतिकरण, वर्त्तन, शून्यविकिरण, चाप, देश-पूरण, दिग्-प्रधानता, प्रकाश-क्वांटम, प्रकाश-शोषण, आदि प्रायः सभी विषयोंकी गुत्थियाँ आपने अपने परिभ्रमण-सूत्रसे सुलझा दी हैं।

परमाणुकी रचना, कण-ऋणाणु-और-धनाणुकी रचना, धन और ऋण मात्राएँ, शक्तितल, विद्युत, परमाणुकी आभ्यन्तरीण शक्तियाँ, विद्युद्धारा, विद्युच्चुम्बकीय आवेश, दो बिजलीभरे तलोंकी तुलना, वर्त्तन और व्यतिकरण, यावनीकरण, सीमन और स्टार्क असर, कामटन असर, रमन असर, कस्मिकांशुओंतककी अनेक बातें आपकी धारणाओंसे स्पष्ट और सुसंगत हो जाती हैं।

सबसे महत्त्वकी बात हमें यह दीखती है कि आपने ताप, चुम्बकत्व आदि सभी विषयोंको अपने सूत्रसे सुसंगत सिद्ध किया है।

अभी यह पहली जिल्द है। आपका अन्वेषण समाप्त नहीं हुआ है। हम दूसरी जिल्दकी प्रतीक्षामें हैं।

—रा० गौड़

विज्ञानंब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते,
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० । ३।५ ॥

भाग ३८ } प्रयाग, मीन, संवत् १९९० । मार्च, १९३४ { संख्या ६

मंगलाचरण

[ले० स्वर्गीय पंडित श्रीधर पाठक]

(१)

अहे त्रिजग-वन्दिते त्रिजग-सत्व-संभाविते
त्रिशक्ति-घन-गुम्फिते त्रिगुण-तंत्र-अंतर्हिते
त्रिवृत्ति-वर-कंदरे त्रिजग-मातृके इन्दिरे
अवन्ध्य-विधि-बन्धुरे भुवन-मंडने त्वां भजे

(२)

अहे त्रिजग-शासिनी त्रिजग-धाम-आवासिनी
त्रिक-क्रम-विकासिनी त्रिजय-वर्ग विन्यासिनी
भव-भ्रुकुटि-लासिनी समभितः समुद्भासिनी
मदन्तर-विलासिनी मसृण-हासिनी, त्वां वृणे

(३)

अहे त्रिजग-सुन्दरी त्रिजग-विस्फुरन्माधुरी
जग-त्रिक-पुरन्दरी त्रिजग-चक्र-धुर्यन्धरी
त्रि-विभ्रम-चमत्कृते कृति-चय-प्रपंचावृते
सतां हृदि समाहृते प्रकृति हे प्रियेत्वां स्तुवे

रेलमें खतरेकी जंजीर खींचनेसे गाड़ी कैसे रुकती है ?

[ले० पं० ओंकारनाथ शर्म्मा, ए. एम्. आइ. एल्. ई., अजमेर]

१—ब्रेक क्या चीज है ?

रेलगाड़ीमें बैठकर यात्रा करनेवाले सभी जानते हैं कि प्रत्येक गाड़ीमें एक खतरेकी जंजीर लगी होती है। कोई जोखिम या विपत्तिके समय गाड़ी रोक देना जरूरी होता है तो इसे खींच लेते हैं, गाड़ी रुक जाती है। बेकारही जंजीर खींचनेवालेको दंड भी मिलता है। परन्तु यह बात बहुत कम लोग जानते हैं कि जंजीर खींच लेनेसे क्या होता है जो रेलगाड़ी रुक जाती है। इस लेखमें यही बात बतायी जायगी।

पाठकोंको प्रायः मालूम होगा कि बाइसिकलों और मोटरगाड़ियोंको ठहरानेके लिये जो जो पुर्जे उनमें लगाये जाते हैं वे सब मिलाकर "ब्रेक" कहलाते हैं, और उनका उपयोग करते समय हाथ अथवा पैरसे ज़ोर लगाना पड़ता है, जिससे तेज़ीसे दौड़ती हुई बाइसिकलें और मोटरें ठहर जाती हैं। लेकिन ५० अथवा ६० मील प्रति घंटेकी तेज़ीसे चलनेवाली सवारी गाड़ियों अथवा एक-एक-डेढ़-डेढ़ हजार टन बोझा घसीटनेवाली मालगाड़ियोंको हाथ अथवा पैरकी शक्तिसे ब्रेक लगाकर रोकना असम्भव है। यह प्रकृतिका नियम है कि कहीं वस्तु जितनी ही ज्यादा भारी होगी और जितनी ही तेज चलती होगी, उसे रोकनेमें उतनी ही ज्यादा ताकत लगानी पड़ेगी। इसलिये रेलगाड़ियोंको रोकने अथवा उनकी चालको ब्रेकके द्वारा क़ाबूमें लानेके लिये उनके ब्रेक यंत्रोंमें भाफ और हवाकी स्वाभाविक शक्ति या ताकत लगायी जाती है। हाँ, अकेले इंजनको रोकना हो तो कभी-कभी हाथके ब्रेकसे काम चला लिया जाता है।

भाफके बलसे काम करनेवाला ब्रेक विशेषतया इंजनमें ही होता है, और कई इंजनोंकी टंकियोंमें भी लगा रहता है। जब इंजन अकेला अथवा दो-चार गाड़ियोंको लिये हुए शंटिंग कर रहा हो उसी समय इसे काममें लाते हैं। इस ब्रेकको केवल ड्राइवर ही चला सकता है। इसके द्वारा इंजनको ठहरानेके लिये ड्राइवर एक हेन्डिलको घुमाता है जिससे एक वाल्व (दरवाजा) खुल जाता है और उसमेंसे होती हुई बायल (वाष्प जनकाकी कुछ भाफ नलियों द्वारा पिचकारीनुमा एक यंत्रमें पहुँच जाती है जिसे अंगरेजी भाषामें स्टीम ब्रेक सिलिन्डर कहते हैं। वहाँ पहुँचकर वह भाफ अपने दबावके कारण उस सिलिन्डरमें लगे हुए एक पिस्टन (डाट) को आगे ढकेल देती है। पिस्टनके आगे सरकनेसे उससे लगे हुए एक ब्रेक ब्लाक (ब्रेकके गुटके) भाफकी बड़ी भारी ताक़तसे ढकेले जानेके कारण, गाड़ीके पहियोंको ज़ोरसे पकड़ लेते हैं।

यह बता देना यहाँ आवश्यक है कि यदि यही भाफकी शक्ति और गाड़ियोंके ब्रेक यंत्रोंको चलानेमें भी काममें लायी जावे तो प्रत्येक गाड़ीके ब्रेक सिलिन्डरोंमें भी इंजनके बायलरकी भाफको नलियों द्वारा पहुँचाना होगा, और यदि ऐसा किया भी जाय तो वह भाफ थोड़ी दूर चलकर ही जमने लग जायगी और अन्तिम गाड़ी तक उसका पूरी ताकत के साथ पहुँचना असम्भव हो जायेगा, इंजनके पीछे जुती हुई गाड़ियोंको अलगाने और अधिक गाड़ियोंको जोडनेके समय एक दूसरीसे भाफके नलोंका सम्बन्ध मिलाना भी सहज काम नहीं है। इसलिये अकसर गाड़ियोंमें ब्रेक लगानेके लिये दबी हुई हवाके द्वारा

अथवा गाड़ियोंके सिलिन्डरोंमें वैक्युम (शून्य) करके हवाके प्राकृतिक दबावके द्वारा शक्ति प्राप्त की जाती है। भारतवर्षमें सब जगह रेलोंमें अन्तिम तरीक़ेसे ही ब्रेकोंके लिये शक्ति प्राप्त की जाती है। इस प्रकारके ब्रेक यंत्रको रेलवाले "वैक्युम" नामसे पुकारते हैं।

२–वैक्युम ब्रेक क्या है ?

रेलगाड़ीके जिन डिब्बोंमें वैक्युम ब्रेक यंत्र लगा होता है उनके नीचेकी तरफ एक एक नल लगा होता है। जिसे ट्रेन पाइप कहते हैं, और चित्र सं० १ से
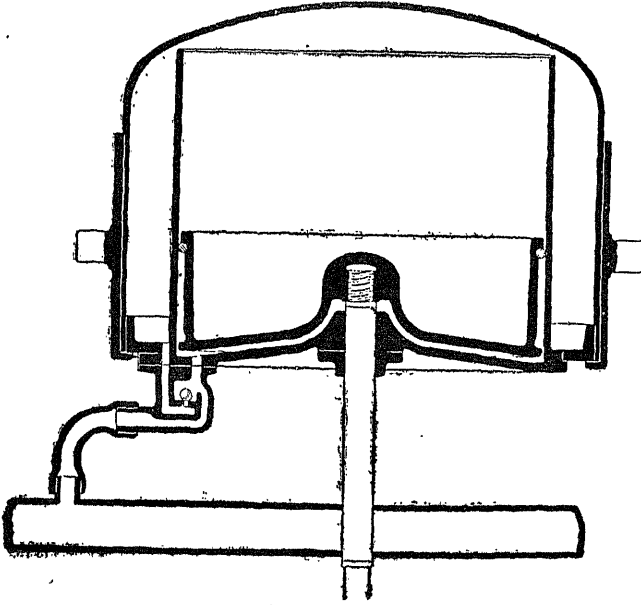
चित्र १ वैक्युम ब्रेक सिलिंडर

मिलता जुलता एक एक यंत्र लगा होता है जिसे वैक्युम ब्रेक सिलिंडर कहते हैं। और इन दोनोंका सम्बन्ध एक रबरकी नली द्वारा कर दिया जाता है, जैसा कि चित्रमें दिखाया है। इस ब्रेक सिलिन्डरकी दीवार दोहरी बनी होती है और इसके भीतरी भागमें पिचकारीकी डाटके समान एक पिस्टन ऊपर नीचे चला करता है। इस पिस्टनके घेरे और सिलिन्डरकी भीतरी दीवारके बीचमें पिस्टनके ऊपर एक रबड़की चूड़ी लगी रहती है जो पिस्टनके सरकनेपर उसके साथ साथ चला करती है जिसके कारण सिलिन्डर पिस्टनके ऊपर और नीचे दो भागोंमें बँट जाता है और पिस्टन इन दोनों भागोंके बीचमें एक हवा-बंद दीवारका काम देता है। जिस समय गाड़ियाँ बेकार खड़ी रहती हैं उस समय सिलिन्डरमें पिस्टनके दोनों तरफ साधारण हवा भरी रहती है और पिस्टन अपने बोझेके कारण, चित्रमें दिखाये अनुसार, सिलिंडरके पेंदेमें बैठा रहता है।

जब गाड़ियाँ इंजनके पीछे जोत दी जाती हैं उस समय सब गाड़ियोंके ट्रेन पाइपोंको [चित्र सं० ३ में ५] रबड़के एक एक (चित्र सं० ३ में २७ और ५६) नल द्वारा, जिसे होज़ पाइप कहते हैं, जोड़ दिया जाता है। ऐसा करनेसे प्रत्येक गाड़ीके सिलिन्डर-का सम्बन्ध, ट्रेन पाइपके द्वारा, इंजनमें लगे हुए एक वायु-निःसारक यंत्रसे (चित्र सं० ३ में २) हो जाता है। इस यंत्रको अँगरेजी भाषामें ईजेक्टर कहते हैं, जिसका अर्थ होता है निकालनेवाला। वाष्पके बलसे चलनेवाले इंजनोंमें यह यंत्र बायलरकी भाफकी सहायतासे ट्रेन पाइप और उससे सम्बन्धित सब गाड़ियोंके सिलिन्डरोंकी हवाको खींचकर बाहर फेंक देता है जिससे उनमें वैक्युम अर्थात् शून्य होजाता है। बिजली के बलसे चलनेवाली गाड़ियोंमें ईजेक्टरके स्थानपर एक वायु-निःसारक पंप लगा दिया जाता है। लेकिन उपर्युक्त ईजेक्टरमें पंपकी भाँति कोई पिस्टन वगैरः नहीं चलता बल्कि भाफ ही ईजेक्टरमें बने टेढ़े मेढ़े रास्तोंमेंसे चक्कर खाती हुई एक छोटे से नलमेंसे बाहर वायु मंडलमें निकल जाती है। देखिये चित्र सं० ३ में ६, वही नल दिखाया गया है। पाठकोंने अकसर इंजनकी चिमनीके पास एक छोटेसे नलमेंसे भाफ निकलती देखी होगी, यह वही भाफ है। कई इंजनोंमें यह नल भीतर-की तरफ लगा रहता है इसलिये उनकी भाफ चिमनीमें से धूएँके साथ निकल जाती है और बाहर निकलती हुई नहीं दिखाई देती।

ख़ैर। जब ईजेक्टरके द्वारा गाड़ियोंके सिलिन्डरों-

में शून्य होजाता है, उस समय पिस्टनके ऊपर और नीचे, दोनों तरफकी हवा निकल जाती है जिस कारण-से किसी भी तरफ किसी प्रकारका दबाव नहीं होता और पिस्टन अपने बोझके कारण सिलिंडरके पेंदेमें बैठा रहता है, जैसा कि शून्य होनेसे पहिली अवस्थामें दोनों तरफ़साधारण हवा भरी रहनेके कारण बैठा रहता था।

एक बेर सिलिन्डरोंमें शून्य कर देनेके बाद गाड़ी का ब्रेक-यंत्र कामके योग्य हो जाता है। जब ड्राइवर गाड़ियोंमें ब्रेक लगाना चाहता है तब वह अपने सामने लगे हुए ईजेक्टरमें बड़े हेन्डिलको अपनी तरफ खींच लेता है। यह हेन्डिल चित्र सं० ३ में २ अंकके पास दिखाई दे रहा है। चित्रको ध्यानसे देखनेपर पता चलेगा कि हेन्डिलके नीचेके गोल भागमें बहुतसे छेद बने हुए हैं, उन छेदोंके द्वारा वायु-मंडलकी हवा ट्रेन पाइपमें होती हुई सब गाड़ियोंके सिलिंडरोंके पिस्टनोंके नीचे बिना किसी रोक टोकके पहुँच जाती है, लेकिन ट्रेन पाइपसे सिलिन्डरके रास्तेके बीचमें एक गोली लगी रहनेके कारण यह हवा सिलिन्डरके ऊपर के भाग अर्थात् पिस्टनके ऊपर

चित्र २ "जिससे वहाँ वैक्युम बना ही रहता है"

नहीं जाने पाती, जिससे वहाँ वैक्युम बनाही रहता है। देखिये चित्र सं० २ में सिलिंडरमें प्रवेश करती हुई हवा विन्दुओं द्वारा दिखायी गयी है। इस हवाको पिस्टनके ऊपरकी तरफ जानेसे रोकनेवाली गोली भी साफ साफ दिखायी है।

पिस्टनके केवल एकही तरफ हवाके पहुँचनेसे और दूसरी तरफ शून्य रहनेके कारण पिस्टन पर १५ पौंड प्रति वर्ग इंचके हिसाबसे हवाका बड़ा भारी दबाव पड़ता है। उदाहरणके लिये मान लीजिये यदि पिस्टन का व्यास १५ इंच हो तो उसका क्षेत्रफल १७६·७१५ वर्ग इंच होगा। इसलिये उसपर १५ पौंड प्रति वर्ग इंचके हिसाबसे १७६·७१५ × १५ = २६५०·७२५ पौंड हवाका दबाव पड़ेगा। यह दबाव लगभग १०२ टन अथवा ३३ मनके बराबर होता है। इस दबावके कारण पिस्टन अपने डंडे सहित एकदम ऊपर चढ़ जाता है और उससे लगी हुई कड़ियों और लीवरोंके द्वारा ब्रेकके सब गुटके अपने अपने पहियोंको जोरसे पकड़ लेते हैं जिससे गाड़ी ठहर जाती है। ब्रेकके गुटके कड़ियों और लीवरों द्वारा किस प्रकार पिस्टनसे लगे रहते हैं यह सब चित्र सं० ३ में साफ साफ दिखाया है। इस चित्रको ध्यानसे देखने पर ब्रेक यंत्रकी सारी कार्य प्रणाली समझमें आ सकती है। जिन पाठकोंने यंत्रशास्त्र (Mechanics) का अध्ययन किया है वे ब्रेक यंत्रकी बनावटको देखकर जान जावेंगे कि ऊपरके उदाहरणमें बताया हुआ केवल ३३ मनका ही बल ब्रेक ब्लाकों पर नहीं पहुँचता है, बल्कि लीवरों द्वारा वही कई गुना अधिक होकर लगता है।

३—ब्रेक कैसे छूटता है ?

जब इंजनका ड्राइवर ब्रेकोंको छुड़ाना चाहता है उस समय वह ईजेक्टरके पूर्वोक्त अर्थात् चित्र सं० ३ में २ अंकके पास दिखाये हुए हेन्डिलको आगेकी ओर ढकेल देता है जिससे ट्रेन पाइपके भीतर हवाके जानेका रास्ता बंद हो जाता है और बायलरकी भाफ ईजेक्टरके रास्तोंमें तेज़ीसे चक्कर खाती हुई निकलती है जिससे ट्रेन पाइप और सिलिन्डरोंके नीचेके भागमें

घुसी हुई हवा भाफके साथ खिंचकर बाहर चली जाती है, जिससे उनमें फिर दोबारा शून्य हो जाता है। पिस्टनके नीचेकी हवा निकल जानेसे उस परसे हवाका दबाव हट जाता है, जिससे पहियोंसे चिपटे हुए ब्रेक ब्लाक ढीले होकर स्वयंके और ब्रेक यंत्रके पुर्जोंके बोझे और कमानियोंके खिंचावके द्वारा पीछे हटजाते हैं और साथ ही पिस्टन भी स्वयं अपने बोझेके कारण पूर्ववत् अपने आपही सिलिंडरके पेंदेमें बैठ जाता है।

उपरोक्त वर्णनसे पाठकोंकी समझमें आगया होगा कि रेलगाड़ीके ट्रेन पाइप और ब्रेक सिलिंडरोंमें हवाके घुस जानेसे सब गाड़ियोंमें ब्रेक लग जाते हैं। अतः इसी सिद्धान्तके अनुसार यदि कहींसे भी ट्रेन पाइपमें हवाका प्रवेश करनेका मार्ग खुल जाय और उसमें हवाका प्रवेश हो जाय तो कुल गाड़ीके ब्रेक लग जावेंगे। इसलिये जब गार्ड ट्रेनको रोकना चाहता है तब वह चित्र सं० ३ में ५१ अंक द्वारा प्रदर्शित हेंडिल को नीचे दबाकर ट्रेन पाइपमें अपनी गाड़ीमेंसे हवाको प्रवेश करवा देता है। और यदि कोई मुसाफिर ट्रेनको रोकना चाहे तो चित्र सं० ३ में ६० अंक द्वारा चिह्नित जंजीरको खींच सकता है। इस जंजीरके खिंचनेसे ट्रेन पाइप और उससे लगी हुई गाड़ियोंके सिलिन्डरों में प्रवेश करने लगती है। इस नली का भीतरी व्यास ⅛ इंच होनेके कारण वायुमंडलकी हवा बहुत थोड़ी-थोड़ी मात्रामें ही ट्रेन पाइप और सिलिंडरोंमें प्रवेश करने पाती है। इसलिये ब्रेकोंके गुटके बहुत हलकेसे ही पहियोंके लगने पाते हैं जिससे ट्रेन भारी चलने लगती है और रुकती नहीं, परन्तु इससे ड्राइवर और गार्डको मालूम हो जाता है कि कोई मुसाफिर गाड़ीको रोकना चाहता है और यह मालूम होने पर वे अपने यंत्रों द्वारा गाड़ीको एकदम मौका देखकर रोक देते हैं। यहाँ पर यह बता देना आवश्यक है कि मुसाफिर लोग और गार्ड ब्रेक यंत्रके सिलिंडरोंमें हवाका प्रवेश करवाकर रेलगाड़ीको केवल रोक ही सकते हैं। उन सिलिंडरोंमें घुसी हुई हवाको निकालकर ब्रेकोंको छुड़ाना केवल ड्राइवरके ही हाथमें रहता है।

४—गाड़ी कैसे रुकती है?

प्रश्न १—यदि कोई मुसाफिर जंजीर खींचकर गाड़ीको रोकना चाहे, तो क्या ड्राइवर अथवा गार्ड एकदम गाड़ीको रोक लेते हैं?

उत्तर—नहीं, वे मौक़ा देखकर रोकते हैं। उदा-

चित्र ३ गाड़ीके नीचे ऊपर ब्रेकका सम्बन्ध
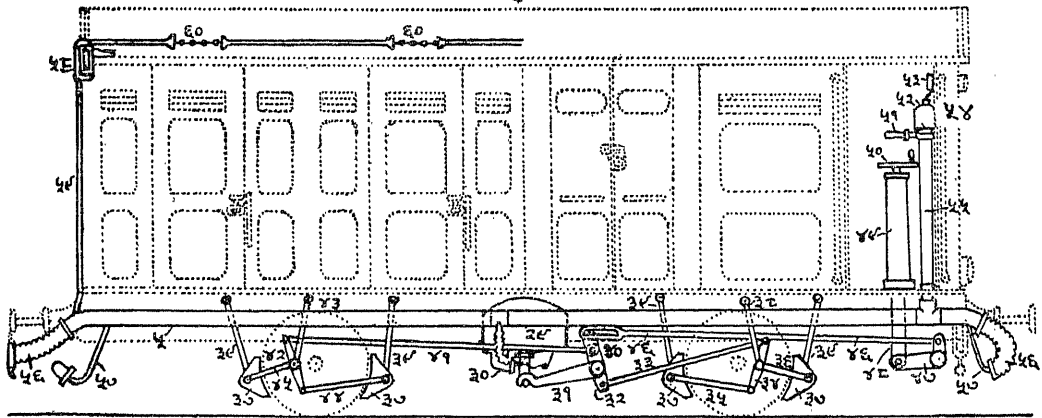
५८ अंक द्वारा चिन्हित बकसमें लगी हुई एक डाट खुल जाती है। इस डाटके खुलनेसे ५९ अंक द्वारा चिह्नित पतली नलीमें से होतो हुई वायु मंडलकी हवा हरणके लिये मान लीजिये यदि गाड़ी किसी पुलपर जा रही हो, किसी गुफामेंसे गुज़र रही हो, दोनों तरफ गहरी खाइयाँ हों अथवा लैनकी मोड़पर गाड़ी जा

रही हो तो ऐसी जगहों पर वे गाड़ीको नहीं रोकते। इन बाधाओंसे हटकर जहाँ थोड़ी बहुत चलने फिरनेके वास्ते जगह हो वहाँ रोकते हैं।

प्रश्न २—गाड़ी और ड्राइवरको कैसे मालूम हो जाता है कि अमुक गाड़ीके अमुक कम्पार्टमेंटमें बैठने वाले मुसाफिरोंमेंसे किसीने जंजीर खींची है।

उत्तर—चित्र सं० ३ में ५८ अंक द्वारा चिन्हित बकसके पास, गाड़ीके सिरेपर, प्लेटफार्मकी तरफ एक बकस और लगा रहता है जिसमें लाल रंगसे रंगी हुई एक लोहेकी चकली-सी पड़ी रहती है, जिसका सम्बन्ध गाड़ीकी जंजीरसे रहता है। जंजीरके खींचनेसे यह लाल रंगकी चकली बाहरकी तरफ लटक आती है जिसे देखकर गार्ड वगैर: समझ जाते हैं कि अमुक गाड़ीमेंसे जंजीर खींची गयी है। उस गाड़ीके भीतर देखनेसे मालूम हो जाता है कि जिस जगहकी जंजीर अधिक लटकती दिखाई दे उसी कम्पार्टमेण्टके किसी मुसाफिरने उसे खींची होगी। अन्तमें जब वह गाड़ी फिर वहाँसे चलती है, उसके पहिले गार्ड अथवा ड्राइवर उस लाल रंगकी चकलीको फिर उसकी जगह पर बकसमें बिठा देते हैं।

वैज्ञानिक विचारोंमें क्रान्ति

ऐंस्टैनका सापेक्षवाद

[ले० प्रो० दत्तात्रेय गोपाल मटंगे, एम्. एस्. सी., एफ़. पी. एस.]

११—ऐन्स्टैनने विज्ञान-संसारमें हलचल मचा दी

नये महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त

पिछले प्रकरणोंमें बताये अनुसार वैज्ञानिक लोग अपने किये हुए विभिन्न प्रयोगोंके अनुमानोंको किसी भी प्रकारका चलता कारण बताते हुए अपना काम चलाते गये, किन्तु न्यूटनके सिद्धान्तोंमें लोगोंका अविश्वास बढ़ता गया। मा-मो० ने अपने प्रयोगोंको फिर-फिरसे अधिकाधिक सावधानीके साथ किया, किन्तु परिणाममें कोई अन्तर न मिला। ऐसी स्थितिमें सं० १९६२ वि० में ऐन्स्टैनने एक उपपत्ति प्रकाशित की, और उसको और अधिक विकसित तथा विस्तृत करके संवत् १९७२में उसका दूसरा भाग प्रकाशित किया। सं० १९६२में प्रकाशित उपपत्तिमें उसने केवल **"सरल रेखामें समान वेग"** के ऊपर ही विवेचन किया था। सं० १९७२में 'वृद्धिप्राप्त वेग' के ऊपर भी उपपत्ति देते हुए उसने अपनी पहिलेकी उपपत्तिको और अधिक विस्तृत किया। तबसे १९६२में प्रकाशित सिद्धान्तोंको 'मर्यादित सिद्धांत' और १९७२में प्रकाशित सिद्धान्तोंको 'विस्तृत सिद्धान्त' कहते हैं।

ऐन्स्टैनने निम्नलिखित दो बातोंको ही स्वयं सिद्ध माना, अर्थात् इनको सत्य मानते हुए उसने अपने सिद्धान्तोंकी उनपर रचना की। वे स्वयंसिद्धियां ये हैं—

१—ईथरसे सापेक्ष कोई वेग जानना शक्य नहीं है, इसलिए हम उसे प्रयोग करके नहीं नाप सकते।

२—उद्गम स्थानके वेगसे तरंगोंके वेगमें कोई अन्तर नहीं पड़ता।

पहिली स्वयंसिद्धिका स्पष्टीकरण

इस स्वयंसिद्धिके माननेमें कोई एतराज नहीं होना चाहिए, क्योंकि जब हमें किसी वेगका ज्ञान होता है तब वह जड़ पदार्थके सापेक्ष होता है। मान

लें कि हम किसी शून्यस्थानमें हैं, तो वहाँपर हमें वेगका अनुभव किस प्रकार होगा ? वेग अथवा गति-विषयमें जब हम कहते हैं तो उसमें आपही आप प्रारम्भ करनेवाले प्रस्थान और अन्त करनेवाले स्थान-का प्रवास आवश्यक है, किन्तु जिस स्थान पर निशान करनेके लिए एक कण भी नहीं है, उसमें वेग और गतिका भावना असम्भव है। इतनी दूर क्यों जायँ, हमको तो प्रतिदिनके जीवनमें ही इसका अनुभव हो सकता है—हम रेलगाड़ीके डब्बेमें प्लेटफॉर्मकी ओर पीठ किये बैठे हैं, और सामने ही दूसरी गाड़ी चलने लगी। एक क्षणके लिए हम सोचने लगते हैं, कि हमारी ही गाड़ी चलने लगी। इसके लिये जब हम प्लेटफॉर्मकी ओर देखते हैं, तभी इस भ्रमका मोचन होता है। आसपासके जड़ पदार्थोंकी गति अथवा स्थितिके आपेक्ष ही हम अपना वेग नाप सकते हैं। बिलकुल शून्य स्थानमें हम स्थिर हैं अथवा चल रहे हैं, यह कुछ नहीं कहा जा सकता। सारांश यह है कि सर्वव्यापी ईथरके आपेक्ष किसी वस्तुका वेग नापना असंभव है।

दूसरी स्वयंसिद्धिका स्पष्टीकरण

ध्वनिका उदाहरण लीजिये। ध्वनिकी तरंगें ११०० फु०।से० के वेगसे फैलती हैं। सीटी देनेवाला एंजिन चाहे स्थिर हो अथवा वेगसे चल रहा हो ध्वनि तो निकलनेवाले स्थानसे सदा इसी वेगसे फैलती रहती है। किन्तु यदि हवा बहती हो, तो ध्वनिकी तरंगें उतने ही अधिक वेगसे जाती हुई मिलेंगी। ईथरके विषयमें ऐसा नहीं कह सकते, क्योंकि सर्वव्यापी होनेके कारण ईथर एक स्थानसे दूसरे स्थानको नहीं जा सकता। चित्र १०में प फ एक प्रवेकी लम्बाईकी छड़ है। प पर एक विन्दु दीपक तरंगोंको फैला रहा है। फ पर एक नेत्र है। पसे
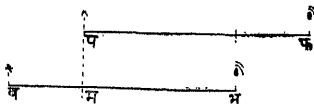
चित्र १०

निकली हुई तरंगें १ से०में फ पर पहुँचेंगी घड़ियाँ मिला लीं, और फिर उन्होंने ऐसा निश्चय किया कि प परका अवलोकक १२ बजे प्रारम्भ कर एक मिनटके अन्तरसे एक तरंग भेजे। इस तरहका संकेतकर दूसरा अवलोकक फ पर चला गया। पूर्व निश्चया-नुसार प पर का अवलोकक एक एक मिनटके अन्तर से एक एक तरंग भेजने लगा, तो दोनोंके अवलोकनों की तालिका इस प्रकार बनी—

प	फ
१२.०-०	१२.०-१
१२.१-०	१२-१-१
१२-२-०	१२-२-१

यदि प और फ को स्थिर मान लें, तो तरंगें इस तालिकाके अनुसार निकलेंगी और पहुँचेंगी।

अब जब तरंग प→फ दिशामें जाती है, तब छड़ भी फ→प दिशामें जाने लगती है। प पूर्व-प्रमाणसे ही तरंगें भेज रहा है। प से ईथरने तरंग पायी है, और उसे नेत्रकी ओर ले जा रही है। नेत्र उलटी दिशामें प्रवास कर रहा है। जब तरंग आँखमें पहुँच गयी, तब छड़की स्थिति आकृति १० के नीचेके भाग सरीखी थी, अर्थात् तरंगको मम दूरी जाना पड़ा मान लें कि यह दूरी २/३ प्रवेश है तो नेत्रमें पहुँचनेवाली तरंग को २/३ प्रवेका अन्तर ही पार करना पड़ा। यदि प्रकाश का वेग १प्र०से हो, तो उतनी दूर जानेमें उसको २/३से० लगा। यदि ऐसा ही होता जाय, तो उतनी दूर जानेमें उनकी तालिका इस प्रकार होगी—

प	फ
१२-०-०	१२-०-२/३
१२-१-०	१२-१-२/३
१२-२-०	१२-२-२/३

यदि हम प्रकाशके वेगको नियत समझें, तो छड़ी का वेग फ इस प्रकार निकाल सकते हैं—

प्रकाशका वेग = १ प्र।से

∴ २/३ से० में प्रकाशकी तरंग २/३ प्रवे जावेगी।

∵ मम = २/३ प्रवे।

∵ बम = १/३ प्रवे।

और इतनी दूरी छड़ $\frac{२}{३}$ सेकंडमें गयी।

∵ छड़का वेग $\frac{२}{३}$ प्रवे।

∵ १ से में $\frac{१}{२}$ प्रवे।

अर्थात् ईथरके आपेक्ष छड़का वेग $\frac{१}{२}$ प्रवे प्रति सेकंड है।

ऊपर लिखे अनुसार अवलोकनोंमें यदि फ अन्तर पावेगा, तो वह ऐसा समझेगा, कि प्रकाशका वेग बदल गया है, क्योंकि उसकी ऐसी भावना है कि छड़ स्थिर है। इसलिए वह प्रकाशका वेग इस प्रकार नापेगा—

$\frac{२}{३}$ से० में प्रकाश १ प्रवे जाता है;

∴ १ —··—··— $\frac{३}{२}$ प्रवे जावेगा।

अर्थात्

(१) यदि प्रकाशका वेग नियत समझा जा वे तो छड़का वेग निकाला जा सकता है, जो बात पहिली स्वयंसिद्धिके विरुद्ध है।

(२) यदि छड़को स्थिर माना जावे तो प्रकाशकी तरंगोंका वेग कम या अधिक पाया जाता है। यह दूसरी स्वयंसिद्धिके विरुद्ध है। डि-सिटरने भिन्न-भिन्न वेगोंसे जानेवाले पदार्थोंकी तरंगोंका वेग नापा, किन्तु उसे तरंगोंका वेग एकसा ही मिला। इसलिए छड़ स्थिर हो अथवा अस्थिर, प्रकाशके तरंगको १ प्रवे दूरी (प—ऽ—फ तक जानेमें) एक ही सेकंड लगना चाहिए। कमी या अधिकता पाने पर उस पदार्थका वेग ईथरके आपेक्ष नापना सम्भव हो जावेगा, अथवा तरंगका वेग ही बदलता मालूम पड़ेगा। यदि दूरीमें कुछ अन्तर हो, तो समयमें भी ऐसा अन्तर होगा जिससे उनका भजनफल सदा नियत रहेगा। इसलिए उन दो स्वयंसिद्धियोंको एक सूत्रमें लेकर ऐन्स्टैनके सिद्धान्तकी जो नींव है, वह इस प्रकार लिखी जा सकती है।

"प्रकाशका वेग चाहे कहींसे और चाहे किसी स्थितिसे नापा जावे, सदा एकसा ही आवेगा।"

यह एक अत्यन्त ही महत्त्वका विधान है।

१२—नये गणितसे नावोंकी सैर

केशव और नारायणकी नदीकी सैरका गणित किया गया था। उसमें नदीका किनारा स्थिर मानकर उसके आपेक्ष अनुमान निकाले थे। इस प्रयोगका मा० मो० के प्रयोगसे जो साम्य है वह इस प्रकार स्पष्ट किया जा सकता है।—

पृथ्वी पश्चिमसे पूर्वकी ओर चलती रहती है। इसलिए यदि हम मा० मो० की प्रयोगशालको स्थिर मान लें, तो ईथरका चलते रहना भी पूर्व-पश्चिम होगा, और क्योंकि मा० मो०को कोई अन्तर नहीं मिला, इसलिए वैज्ञानिकोंको मानना पड़ा, कि ईथरके कारण पदार्थोंमें संकोच होता है।

अब इस नाववाले प्रयोगमें ऐन्स्टैनके सिद्धान्तके अनुसार गणित लगाकर देखें। चूंकि नाव और किरणमें साम्य है, इसलिए नयी पद्धतिके अनुसार यह मानना पड़ेगा, कि यदि नावका वेग ५फु। से है, तो उसे कोई भी कहींसे भी नापे, उतना ही पावेगा। अब नदीकी जगह एक बड़े भारी विस्तृत
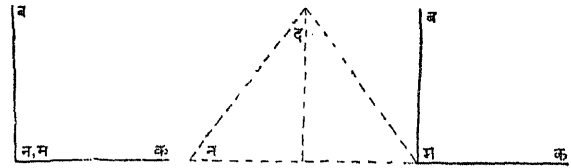
चित्र ११

जलाशयकी कल्पना करें, और उसपर निशानके लिए म ब और क पर लकड़ीके टुकड़े डालें। उसमें पूर्व-प्रमाणके अनुसार मब=मक=२०० फुट है। केशव-का प्रवास पूर्ववत् म—ऽ—ब—ऽ—म और नारायणका प्रवास म—ऽ—क—ऽ—म होता है और उनका वेग ५ फु से है। पहिलेके अनुसार केशव और नारायण १२ बजे म से निकले, तो वे लौटकर एक साथ १२ बजकर ८० मिनट पर आवेंगे।

अब उन लोगोंने जब अपना प्रवास शुरू किया, उसी क्षण माधव म के ऊपर विमानपर बैठा हुआ

अवलोकन कर रहा है और उसके मतसे पानी ३फ़ुासे के वेगसे बहने लगा।

माधवकी दृष्टिमें नाव और लकड़ीके टुकड़े पानीके साथ बहते जा रहे हैं।

केशव और नारायण इस तरह समझते हैं, कि पानी तो स्थिर है, किन्तु माधव ही उलटी दिशा में (क-→-म) ३ फ़ुासे वेगसे दूर जा रहा है। उन लोगोंमेंसे किसका मत ठीक है यह कहना शक्य नहीं है क्योंकि उनमेंसे प्रत्येक अपनेको स्थिर मानकर दूसरेको गतिमान् समझता है।

केशव और नारायण अपना अपना प्रवास पहिलेके अनुसार ८० से० में पूरा करते हैं, और उनमें इस बातपर मतभेद नहीं है।

अब इन दोनोंके प्रवासके विषयमें माधवका क्या मत है, यह देखें। उसके मतसे दोनों नावें और तीनों लकड़ीके टुकड़े पानीके साथ ३ फ़ुासेके वेगसे जारहे हैं।

केशवके प्रवासके विषयमें माधवका गणित-

(माधवका स्थान चित्र ११ में न से दर्शाया गया है)। प्रारम्भमें केशव नारायण और माधव एकत्र हैं। जिस समय प्रवासका प्रारम्भ हुआ, उसी समय पानी भी बहने लगा। लकड़ीके टुकड़े एक ही वेगसे बह रहे हैं, इसलिए मब दिशा से माधवकी दृष्टि सर्वदा समकोणपर रहेगी केशव अपनी नाव म—+—ब —+—म के बीचमें चला रहा है, परन्तु टुकड़ेके ३फ़ुासे के वेगसे जानेके कारण माधवको केशवका प्रवास म—+—क—+—म दिशामें दीखता है। समकोण त्रिभुज मबद में

$$\frac{\text{केशवका वेग}}{\text{पानीका वेग}} = \frac{\text{मद}}{\text{दब}} = \frac{५}{३}$$

यदि इस त्रिभुज में मद= ५ और दब =३ हो तो मब = ४ फुट।

$$\therefore \frac{\text{मद}}{\text{मब}} = \frac{५}{४} \therefore \text{मद} = \frac{५}{४}\text{मब}$$

परन्तु मब= २०० फु०; ∴मद= २५० फुट। उसी प्रकार नद= २५० फुट।

∴ न—+—द—+—म= ५०० फुट।

परन्तु ऐन्स्टैनके सिद्धान्तके अनुसार कहींसे भी नापनेपर नावोंका वेग सर्वदा एकसा आना चाहिए।

∴ केशवके प्रवासमें = माधवके मतसे

$$\text{समय} = \frac{५००}{५} = १०० \text{ से० लगे।}$$

इसमें ५० से म—+—ब को और ५० से ब—+—म को लगे। इस प्रकार दोनों प्रवासोंको समान समय लगता है। केशवके मतसे उसका प्रवास ८० से० में पूरा होता है, माधवके मतसे उसमें १०० से० लगते हैं।

(२) नारायणके प्रवासके सम्बन्धमें माधवका मत—केशव और नारायण एक ही समय निकलते हैं और एक ही समय लौटते हैं, ऐसा सबको दीखता है। नारायणका वेग भी उसको ५फ़ुासे दिखता है, परन्तु पानी और उसमेंका क टुकड़ा बहता हुआ दूर जारहा है, इसलिए नारायणका म—+—क प्रवास ५—३=२फ़ुासे के वेगसे होगा। लौटती समय म की ओरका टुकड़ा नारायणकी ओर बह रहा है। इसलिए उसके बीचका अन्तर ५ + ३=८ फ़ुासे से कम होरहा है। जानेका वेग २फ़ुासे और लौटनेका वेग ८फ़ुासे होनेके कारण उनके प्रवासोंके लिए लगा हुआ समय व्यस्त अनुपातमें होगा, अर्थात्

$$\frac{(\text{म—+—क})\ \text{समय}}{(\text{क—+—म})\ \text{समय}} = \frac{८}{२} = ४$$

परन्तु माधवकी दृष्टिमें दोनों ओरके लिए १०० से० लगते हैं; इसलिए लगनेवाले समयके ८० से० जानेमें और २० से० लौटनेमें ऐसे दो विभाग दीखेंगे।

∴ मक=८०×२=२०×८=१६० फु० सारांश—माधवके मतसे म—+—क दूरी म—+—ब दूरी से कम रहती है।

[पिछले एक अध्यायमें

$$\text{संकोच प्रमाण} = \frac{\sqrt{\text{च}^२ + \text{य}^२}}{\text{च}}$$ है, ऐसा दिखा दिया गया है।

वही यहाँ लगानेपर सं०प्र०=५/४

परन्तु मब = २००

∴ मक = २००×४/५=१६०]

इस गणितको अगले अध्यायमें बीजगणितसे किया जावेगा।

परमाणु बनानेवाली ईंटें

धनाणुकी खोज

[ले० श्री दूलहसिंह कोठारी, बी० एस्-सी०, प्रयाग-विश्वविद्यालय]

१—परमाणु टुकड़े टुकड़े हो गये

विज्ञान बड़े लंबे-लंबे डग मारता बढ़ा जा रहा है। प्राचीनकालसे पैंतीस बरस पहलेतक संसारके यावत् पदार्थोंके निर्म्माणकी जो परिकल्पना चली आयी थी, वह यह थी कि किसी पदार्थके छोटे-से-छोटे टुकड़ेको लेकर भी हम खंड-खंड करें तो अन्तमें एक ऐसा टुकड़ा मिलेगा जिसको और तोड़नेपर वह वस्तुही बदल जायगी। जैसे तूतियाके इस तरहके अन्तिम टुकड़ेको तोड़नेसे ताँबा, गंधक, ओषजन यह तीन वस्तुओंके टुकड़े मिलते हैं और तूतियाकी हस्ती ही नहीं रह जाती। ताँबा, गंधक और ओषजनके भी अलग-अलग खंड लेकर टुकड़े किये तो अन्तिम टुकड़े ताँबे, गंधक और ओषजनके ही बचे। आगे टुकड़े ही न हो सके। इसलिये मान लिया गया कि ताँबा गंधक और ओषजन मूल पदार्थ हैं, इनके सबसे छोटे टुकड़े अखंड्य हैं, और इनके मिलनेसे तूतिया बनता है। तूतियेका सबसे छोटा टुकड़ा "अणु" कहलाया। इस अणुके बनानेवाले तीनों मूलपदार्थोंके सबसे छोटे अखंड्य टुकड़े "परमाणु" कहलाये।

ऐसा समझा जाने लगा कि परमाणुके टुकड़े नहीं हो सकते। चौंतीस बरस पहले तक ऐसे मूल पदार्थ अस्सीके लगभग मालूम किये गये थे, परन्तु, शीघ्र ही एक ऐसा मूल पदार्थ मिला जिसके परमाणु भी खंड-खंड होते दीखे। यह था रेडियम या रश्मिम। अब वह परिकल्पना आगे बढ़ी। परमाणु अखंड नहीं रहा। परमाणु बनानेवाली ईंटें भी मिलीं। धीरे-धीरे यह सिद्ध हो गया कि सभी परमाणु इन्हीं ईंटोंकी भिन्न-भिन्न संख्याओंसे बने हुए हैं। उनकी संख्यातक गिन ली गयी। तौल मालूम कर लिया गया। इनका नाम रखा गया ऋणाणु क्योंकि ये बिजलीके ऋण कण, विद्युत्कण थे। इसकी संख्याके ही बढ़नेसे परमाणुके गुण भार आदि बढ़ते दीखे। ऐसा समझा जाने लगा कि केंद्रमें एक भारी (Proton) धनाणु रहता है और उसके इर्द-गिर्द ऋणाणु लगभग प्रकाशके वेगसे चक्कर लगाते हैं। इस समूहको ही परमाणु कहते हैं।

२—विश्वकी अद्भुत किरणें

परन्तु खोज यहींतक न रही। और आगे बढ़नेपर और बातें जाननेमें आयीं। उनमेंसे सबसे हालकी विचित्र वस्तु है (cosmic rays) "कस्मिकांशु"। यह किरणें अबतक जानी गयी सभी किरणोंसे सूक्ष्म हैं और इनका रोकनेवाला विश्वमें कोई पदार्थ नहीं दीखता। इनमें विशेषता यह है कि यह किरणें एक प्रकारकी तेज विकिरण हैं जो आकाशसे सब दिशाओंमें एकही तीव्रताके साथ आती हैं। इन रश्मियोंका सर्वोपरि गुण शीशेके वायुशून्य (chamber) पेटीमें बन्द (charged) आवेशित (Electroscope) विद्युद्दर्शकको विसर्जित कर देना है।

३—नये सूक्ष्म धनाणुओंका कैसे पता लगा ?

गत चार पांच वर्षोंमें यह जाननेके लिये कि कस्मिकांशु कणों अथवा प्रकाशाणुओंसे बने हुए हैं या नहीं, बहुतसे प्रयत्न किये गये। यद्यपि इन किरणोंके स्वभावके बारेमें वैज्ञानिकोंने कुछ पहले ही अपने मत प्रकट किये। तथापि गत वर्षोंकी खोजोंसे एक सर्वथा नयी और विशेष महत्वशाली बात निकली। यह है एक प्रकारके ऐसे कणोंकी सत्ताका सिद्ध होना जो धनात्मक विद्युत्से आवेशित हैं, और

जिसकी मात्रा वर्तमान जाँच-पड़तालके अनुसार एक ऋणाणुके बराबर होना मानी जाती है। इस नवीन परमाणुको अब Positron या धनाणु कहते हैं। Proton को अब धनाणु कहना असंगत होगा। केलिफोर्नियाके कला-भवनमें सी० डो० अण्डरसनने एक महत्वशाली प्रयत्नसे यह सिद्ध किया कि इन रश्मियोंमें धनाणु (Positron) विद्यमान हैं। उन्होंने एक १५ सेंटीमीटर लम्बी विलसन बादल पेटी (Wilson cloud chamber) ली और उसे (horizontal magnetic field) क्षितिज चुम्बकीय क्षेत्रमें जिसकी तीव्रता १५००० गौसके लगभग थी, इस प्रकार रख दी कि वह (chamber) पेटी बिलकुल ऊर्ध्व थी। कस्मिकांशुओंमें विद्यमान कणोंका गतिमार्ग (tracks) जब उस पेटीमें देखे गये तो प्रतीत हुआ कि ये गतिमार्ग सीधे न होकर कुछ वक्र थे। इन कणोंके गतिमार्गोंकी वक्रता इस प्रकारकी थी कि यदि कणोंको ऊपरसे नीचे जाते हुए माना जाय (जैसा कि इन कस्मिकांशुओंके कणोंका होना बहुत संभव है) तो कणोंका संचार (charge) धनात्मक होना चाहिये। परन्तु इन कणोंकी गतिरेखाओंमें यापन (Ionisation) जितना कि इन कणोंके समान वेगके तथोक्त धनाणु या प्रोटनसे होना चाहिये न होकर धनाणुसे बहुत कम मात्रावाले कणोंके यापनके बराबर था।

अतः इन कणोंका प्रोटन होना सर्वथा असम्भव है। वह कण प्रोटन नहीं वरंच नीचेसे ऊपरकी ओर जाते हुए कोई हलके कण हो सकते हैं, क्योंकि ऊपरकी ओर जानेवाले ऋणाणुओंके गति-मार्गोंमें उतनी और वैसीही वक्रता आनी चाहिये, जैसी कि ऊपरसे नीचे जाते हुए इन कस्मिकांशुओंके कणोंसे आती है।

कस्मिकांशुओंके ये कण धनात्मक विद्युत्से आवेशित हैं अथवा ऋणात्मक विद्युत्से, अब इस बातका निश्चय करना था। इस बातकी खोजके लिये अण्डरसनने एक सीसेका पट जिसकी मोटाई ·६ सेंटीमीटरकी थी उस पेटीमें इस प्रकार रख दिया कि कणोंको उस पटको भेदकर दूसरी ओर जाना पड़े। कुछ शक्ति पट-भेदनमें लग जानेके कारण पटके दोनों ओर कणोंके गतिमार्गोंकी वक्रतामें कुछ अंतर हो जाता है। अण्डरसनने इस प्रकार उन कणोंके गति मार्गोंको देखकर यह बतलाया कि कस्मिकांशुओंमें एक प्रकारके कण विद्यमान हैं जिनकी विद्युत् धनात्मक है और जिनकी मात्रा प्रकाशाणुकी मात्रासे बहुत कम है। यह वही धनाणु (Positron) हैं जिनका वर्णन हमने ऊपर किया है।

केम्ब्रिजमें ब्लेकेट और ओकेलानीने फिरसे जांच-पड़ताल करके इन धनाणुओंकी खोजको निश्चय रूपसे सिद्ध कर दिया है। इन कणोंका वेग प्रकाशके वेगके बराबर है, और इसी कारण लोरेन्ज-ऐन्स्टैनके सूत्रके*अनुसार इन कणोंकी मात्रा उनके वेगके साथ ही साथ बहुत तेजीसे बढ़ती जाती है। इस बातके माननेमें कुछ भी शंका नहीं होना चाहिये कि स्थिर कणकी मात्रा ऋणाणुकी मात्राके बराबर है।

ब्लेकेट और ओकेलानीके लगभग साथ ही साथ मेटनरने दिखलाया कि ये धनाणु केन्द्रपर Neutrons हीनाणुओंके प्रहारोंसे उत्पन्न हो सकते हैं। और उन्हीं दिनोंमें (Curie-Joliot) क्युरी-जोलियोने दिखाया कि ये धनाणु (Th. C.) थूलम्० सी० की (Gamma rays) ग—किरणोंके केन्द्रपर प्रहारोंसे भी उत्पन्न हो सकते हैं। परन्तु इस समय धनाणु और ऋणाणु दोनों साथ ही साथ उत्पन्न होते हैं। यह कहा जाता है कि तेज ग—किरणोंके विकिरणके केन्द्रके प्रभावसे धनाणु और ऋणाणु दो मुख्य भागोंमें विभक्त हो जाते हैं।

---

* लोरेन्ज ऐन्स्टैनका सूत्र यह है—

$$म = म_० \left[\frac{१}{\sqrt{१ - \frac{व^२}{स^२}}} \right]$$

यहाँ पर (म०) स्थिर कणकी मात्रा है, और (म), (व) वेगसे भागते हुए कणकी मात्रा है। (स) प्रकाशका वेग है।

धनाणुओंकी यह खोज भौतिक विज्ञानमें बहुत बड़ी और महत्त्वशाली खोजोंमें से है। इस खोजसे भौतिक विज्ञानमें शोधनोंके नवीन मार्ग मिल गये हैं। वर्तमान समयके बड़े बड़े वैज्ञानिक इस नवीन कणके गुण और स्वभाव निश्चित रूपसे मालूम करनेमें लगे हुए हैं।

सबके लिये सरल बढ़ईगीरी

खेल और हाथकी सफाई

[लेखक—डाक्टर गोरखप्रसादजी, डी० एस-सी०, प्रयाग विश्वविद्यालय]

(१) औजारोंका परिचय

सबको थोड़ी बहुत बढ़ईगीरी जरूर जाननी चाहिये। चूल इत्यादि सफ़ाईसे बनानेमें अवश्य बहुत अनुभवकी ज़रूरत है, परन्तु बढ़ईगीरीकी बहुत थोड़ी जानकारीसे भी लकड़ीके बहुतसे काम सफलतापूर्वक हाथसे लिये जा सकते हैं, और छोटे छोटे लड़के भी बड़ी आसानीसे सुन्दर और उपयोगी चीजें बना सकते हैं। साथ ही, ख़ूबी यह है, कि जरूरी औजार ५) पाँच रुपयेसे कममें ही खरीदे जा सकते हैं। इसलिये हम जोर देकर कहते है कि हर एक लड़केको लकड़ीका काम बनाना अवश्य सीखना चाहिये। जो लड़के लकड़ी काम का बनाना नहीं जानते वे लड़कपनके आनन्दके एक मुख्य अंगसे वंचित रहते हैं।

इस लेखमालामें पहले जरूरी औजारोंका वर्णन, फिर उनके प्रयोग करनेकी रीति, तब औज़ारोंको तेज़ करनेकी विधि और अंतमें लकड़ीके कामके एक दो सरल उदाहरण दिये जायँगे।

जरूरी औजार—ज़रूरी औज़ारोमेंसे कुछ तो सभी लड़कोंके पास होते हैं। जैसे

(१) छुरी

(२) रूल, अर्थात् वह पटरी जिसमें इंच और इंचके अंश बने रहते हैं।

(३) पेन्सिल

(४) गोनिया (या सेटस्क्वेअर्स, Set squares जिसे रेखागणितके लिये खरीदना पड़ता है।

(५) परकाल

(६) तागा (सूत)

(७) खड़िया

इनके अतिरिक्त नीचे बतलाए गये औज़ारोंकी विशेष आवश्यकता पड़ेगी—

(१) आरी

(२) रेती, (आरी तेज़ करनेवाली)

(३) हथौड़ा

(४) बर्मी और इसके फल

(५) पेंचकश

(६) रंदा

(७) रुखानी $\frac{1}{4}$ या $\frac{1}{2}$

(८) पलास (pliers) या सँड़सी

(९) पत्थरका एक टुकड़ा

यहाँ दिये गये चित्रोंसे इन यंत्रोंको पहचानना सरल है। आवश्यकतानुसार सरेस, पेंच, कील, रंगभार इत्यादि खरीदना चाहिये।

यदि प्लाइवुडके खिलौने भी बनाने हों तो खरीदना चाहिये—

(१) फ्रेटसॉ (frotsaw)

(२) फ्रेटसॉके लिये दो दरजन फल

ऊपर बतलाये गये औज़ारोंकी सहायतासे बढ़ईगीरीका प्रायः कुल काम चल सकता है, परन्तु इनके अतिरिक्त यदि नीचे लिखे औज़ार भी खरीदे जा सकें

तो सुभीता होगा। या ये यंत्र जैसे जैसे इनकी आवश्यकता पड़े, खरीदे जा सकते हैं।

(१) गोनिया, विशेष रूपसे बढ़ईगीरीके लिये बनी। [चित्र २७]

(२) चौरसी रुखानी, १" चौड़ी

(३) गोल रुखानी

(४) बसूला

(५) बरमा और उसके फल (brace and bits)

(६) रेती, लकड़ीवाली

(७) काठका हथौड़ा

(८) छेनी

(९) सुम्भी

(१०) टीन या पीतल काटनेकी कैंची

(११) रेंच (wrench)। जिनके पास बाइसिकल है उनके पास रेंच अवश्य होगा।

(१२) खस-खस (marking gauge)।

(१३) टेकुआ।

इनके अतिरिक्त दो और औज़ार ऐसे हैं जिनका दाम कुछ अधिक है, परन्तु हैं ये बहुत उपयोगी। उनसे बहुत समय बचता है और नौसिखियोंको भी चाहिये कि, यदि वे दस रुपये व्यय कर सकें तो इनको मोल ले लें। इनका नाम है।

(१) वाइस (vice) या बाँक और (२) एमरी व्हील (emery wheel) अर्थात् सान की मशीन।
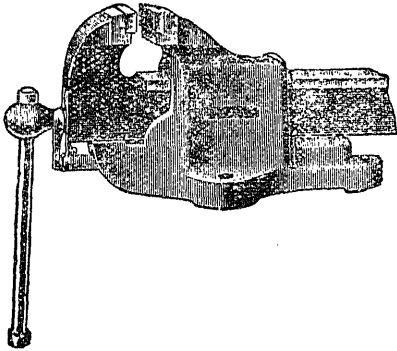
चित्र ३१—वाइस या बाँक

वाइस इसमें छोटा काम पकड़ा जाता है।

वाइस (या बाँक)। छोटे कामको पकड़नेके लिये इस्तेमाल किया जाता है। आरीसे काटते समय, या रंदा करते समय या छेदनेके लिये लकड़ी इसमें पकड़ा दी जा सकती है। चित्रमें दिखलाया गया वाइस असलमें धातु (लोहा, पीतल इत्यादि) की चीज़ोंको पकड़नेके लिये है, परन्तु इसमें लकड़ीकी चीज़ें भी पकड़ी जा सकती हैं। यदि लकड़ीमें वाइसके जबड़ोंका दाग पड़ जानेका डर हो तो लकड़ी और जबड़ोंके बीच मोटा कागज़ या दफ्ती लगा देनी चाहिये। बहुत छोटा वाइस लेना अच्छा नहीं है। पाँच छः रुपयेमें काफी बड़ा वाइस मिल जायगा।

एमरी व्हीलसे औज़ार बहुत शीघ्र तेज़ किये जा सकते हैं। डेढ़ दो रुपये वाली मशीनोंके पत्थर ऊपरसे ही एमरीके होते हैं। भीतर बहुत रद्दी पत्थर रहता है, इसलिए सस्ती मशीनें शीघ्र ही खराब हो जाती हैं। बढ़िया एमरी-व्हील लेना चाहिये।

यदि आप शीशा भी काटना चाहते हैं तो आपको खरीदना चाहिये शीशा काटनेका एक कलम।

चित्र ३३—शीशा काटनेका क़लम

(२) औज़ारोंका चुनना

इस परिक्रममें औज़ारोंके विषयमें कुछ ज़रूरी सलाह दी जायगी। इसे ध्यानमें रखकर औज़ारोंको खरीदना चाहिये।
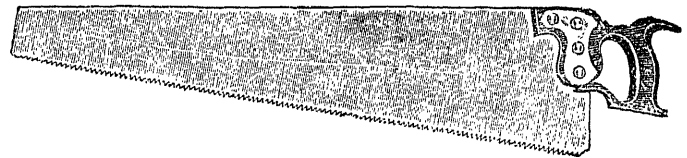
चित्र १—आरी

बारीक दाँत वाली १६ इंचकी एक आरी काफ़ी होगी।

आरी करीब १६ इंच लम्बी हो। छोटी आरीसे

काम बहुत धीरे-धीरे कटता है। बहुत बड़ी आरीसे छोटा काम आसानीसे नहीं बनाया जा सकता। आरीके दाँत भी कई प्रकारके होते हैं, किसीमें बड़े, किसीमें छोटे। छोटे कामके लिये जितने ही छोटे दाँतकी आरी मिल सके उतना ही अच्छा है। इंचमें बारह दाँत काफ़ी होंगे। कुछ दाम अधिक लगे तो कोई परवा नहीं, परन्तु अच्छे बेंटकी और अच्छे पक्के लोहेकी आरी लेनी चाहिये। कम दाम वाली आरियाँ खराब लोहेकी होती हैं और मुड़ जाती हैं। लोहेकी पहचान करनी कठिन है इसलिए किसी मातबर दूकानदारसे सब औज़ार खरीदना चाहिये। विदेशी आरियोंके दाँत ऐसी दिशामें
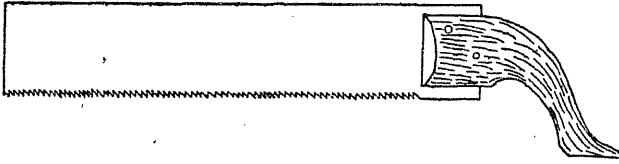
चित्र ३४—आरी

देशी चालकी आरीमें दाँत उल्टी दिशामें होते हैं और हैन्डल नीचे लगाना पड़ता है, जिसमें पूरा जोर लग सके

रहते हैं कि आरीको आगे ढकेलनेसे लकड़ी कटती है। यहाँके बढ़ई ऐसी आरी पसंद करते हैं जो अपनी ओर खींचनेसे लकड़ी काटे। हम भी ऐसी ही आरी पसंद करते हैं, क्योंकि ऐसी आरी जल्द मुड़कर खराब नहीं होती। बढ़ई लोग तो विदेशी आरीको लेकर उसके दाँतोंको तिधारा रेतीसे रेतकर उनकी दिशा बदल देते हैं, परन्तु यह आवश्यक नहीं है। जैसी आरी

चित्र २—तिधारा रेती

आरी तेज़ करनेके लिये इस प्रकारकी तिकोनी रेती एक चाहिये

आपको मिले वैसीसे ही आप काम कर सकते हैं। स्मरण रखना चाहिये कि दाँतोंकी दिशा बदलनेसे बेंटकी स्थिति भी बदलनी पड़ेगी।

आरी तेज़ करनेके लिये एक छोटी ४ इंचकी रेतीसे काम चल जायगा। दुकानदारसे कह देना चाहिये कि आरी तेज़ करनेके लिये रेती चाहिये, क्योंकि रेतियाँ कई प्रकारकी बनती हैं। रेतीमें

चित्र ३—हैन्डल या बेंट
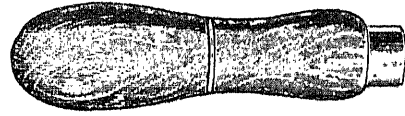
हैन्डल या बेंट लगाना चाहिये।

किसी बढ़ईसे बेंट (हैंडल) लगवा लेना चाहिये या खुद लगा लेना चाहिये।

हथौड़ा तौलमें करीब करीब आध सेर रहे।
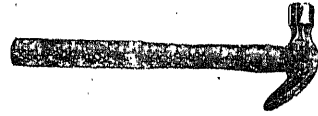
चित्र ४—हथौड़ा

बढ़ई लोगोंके हथौड़ेमें एक ओरसे ठोंकनेके लिये और दूसरी ओरसे कील निकालनेके लिये प्रबन्ध रहता है।

इससे बहुत हलके या बहुत भारी हथौड़ेसे काम ठीक नहीं होता।

बरमी और इसके फलके बारेमें दो बातें की जा सकती हैं। या तो चित्र ८ में दिखलायी गयी चालकी बरमी खरीदी जा सकती है या देसी चालकी। देसी चालकी बरमी
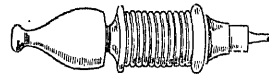
चित्र ५—बरमी

यह देसी चालकी बरमी है। इसको घुमानेके लिये एक "कमानी" भी चाहिये। (अगला चित्र देखो)। एक ही बरमीमें कई फल, मोटे या महीन बारी बारीसे लगाये जा सकते हैं।

नौसिखियोंके लिये (और सबके लिये भी, परन्तु विशेषकर नौसिखियोंके लिये) इतनी सुविधाजनक नहीं होती जितनी विदेशी चालकी बरमी। परन्तु
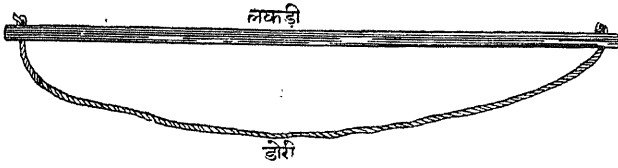
चित्र ६—कमानी

यह बरमीको घुमानेके लिये है (चित्र ५ देखो)
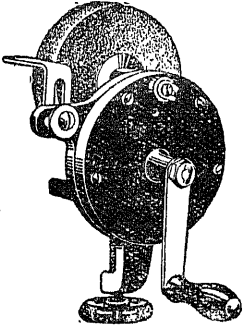
चित्र ३२—एमरी व्हील

या सान चढ़ानेकी मशीन इससे रुखानी रंदा इत्यादि शीघ्र तेज किया जा सकता है ।

विदेशी चालकी बरमी करीब ढाई या तीन रुपये में मिलेगी, और देशी बरमी एक रुपये से कममें ही मिल जायगा या बनवायी जा सकेगी । साथ ही, विदेशी चालकी बरमी छोटे शहरोंमें बिकती भी नहीं, क्योंकि बढ़ई लोग इसे खरीदते नहीं, और यदि मिल भी गयी तो दुकानदार इसका दुगुना, तिगुना दाम माँगते हैं । इसलिये छोटे शहरोंमें, जहाँ ऐसी बरमी न मिल सके, या एक ही दो दूकान पर मिलती हो, इसको कलकत्ता या बम्बईसे मँगाना पड़ेगा । विदेशी चालकी बरमीमें एक विशेष

चित्र ८—बरमी

यह विदेशी चालकी बरमी है ।

इसका इस्तेमाल करना बहुत सरल है ।
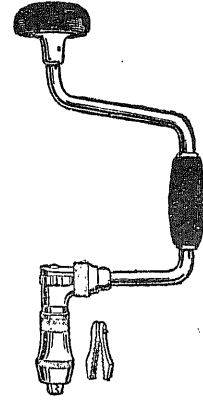
चित्र २१—बरमा

इससे २ इंच व्यासतकके छेद बड़ी सफाईसे किये जा सकते हैं । इसका एक फल अगले चित्रमें दिखलाया जाता है ।

चित्र २२ अ—बरमा के फल

चित्र २२ आ

ये ऊपरके बरमेंमें लगाये जाते हैं ।

सुभीता यह है कि इसमें गोल माथेके फल लगाते हैं । इसलिये आवश्यकता पड़नेपर तुम स्वयं मोटे तार,

चित्र ९—विदेशी चालकी बरमीका फल

कमसे कम ४ फल भिन्न भिन्न मोटाईके लेने चाहिये ।

या सरकठे हुए कीलके एक सिरेको पीटकर और रेतीसे रेतकर काफ़ी अच्छा फल बना सकोगे ।

पेंचकस मझोले नापका होना चाहिये । ६" लम्बा पेंचकस, यदि इसका छड़ $\frac{1}{4}$" के करीब मोटा हो तो काफ़ी होगा।

पेंचकश

चित्र १० पेंचकश

एक मझोले नापके पेंचकशसे काम चल जायगा, पर हो सके तो तीन पेंचकश खरीदने चाहिये ।

बढ़िया ही खरीदना चाहिये। इसका लोहा यदि हैन्डलके आरपार गया हो तो अच्छा है। सस्ते पेंच-कशका हैन्डल शीघ्र ही निकल जाता है और लोहा काफ़ी कड़ा न होनेके कारण मुड़ जाता या बहुत कड़ा होनेके कारण टूट जाता है।

रंदा लोहेका बना बनाया भी बिकता है और इसका फल अलग भी बिकता है। यदि केवल फल ही खरीदा जाय तो किसी बढ़ईसे रंदा बनवाना पड़ेगा। लकड़ीके और लोहेके, दोनों प्रकारके रंदे अच्छे होते हैं, परन्तु यदि तुम लोहेका एक छोटा सा रंदा खरीद सको तो किसी बढ़ईसे रंदा बनवानेका बखेड़ा न करना पड़ेगा, परन्तु छोटे शहरोंमें लोहेका रंदा नहीं बिकता।
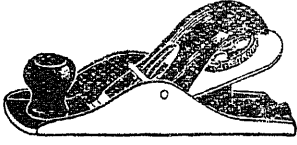
चित्र ११—रंदा

यह रंदा लोहेका बना है। इस प्रकार-के एक ६ × २ इञ्चके रंदेसे सब काम चलाया जा सकता है। यह करीब २) में मिलता है। हो सके तो एक १४ इंचका बड़ा रंदा (जैक प्लेन) भी खरीदना चाहिये।
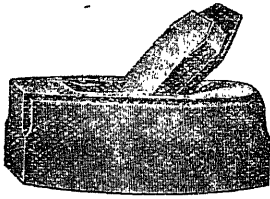
चित्र १२—रंदा

यह काठका है। इस प्रकारका रंदा किसी भी बढ़ईसे बहुत सस्तेमें बनवाया जा सकता है। केवल इसका फल खरीदना पड़ेगा। होसके तो एक बड़ा रंदा (जैक प्लेन) भी रखना चाहिये।

$\frac{1}{4}$ या $\frac{1}{2}$ इंच चौड़ी रुखानीसे काम चल जायगा। छोटा काम करनेमें इससे भी पतली रुखानीका काम पड़ सकता है। इसलिये $\frac{1}{4}$ इञ्चवाली रुखानी ठीक होगी। $\frac{1}{4}$ इञ्चकी रुखानी दो प्रकारकी मिलती है। एक खूब मोटी (आध इंचके करीब मोटी); यह गहरे छेद बनानेके काममें आती है। दूसरी केवल $\frac{1}{8}$ इंच ही के करीब मोटी होती है। यही लेनी चाहिये। यह सस्ती भी मिलती है।

चित्र-१३—रुखानी

इस प्रकारकी एक $\frac{1}{4}$" चौड़ी रुखानीसे सब काम चलाया जा सकता है। हो सके तो छोटी बड़ी ३ रुखानियाँ रखनी चाहिये।

६ इञ्चके पलाससे काम अच्छी तरह चल सकता है। पत्थरका टुकड़ा मुफ्तमें मिल सकता है। इस पर रुखानी इत्यादि तेज़ की जाती है, अच्छे परन्तु पत्थरकी पहचान करनी कठिन है। इसलिये किसी ईमानदार बढ़ईको कुछ देकर उससे पत्थर खरीद लेना चाहिये।
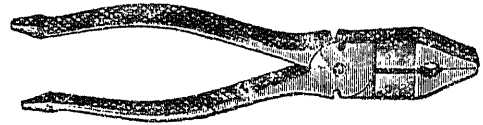
चित्र-१४—पलास

६ इंचका एक पलास लेना चाहिये।
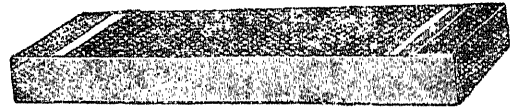
चित्र-१५—पत्थर

औज़ार तेज़ करनेके लिये पत्थर बिकते भी हैं, परन्तु चुने हुए साधारण पत्थरसे भी काम चल सकता है।

यदि देसी चालकी बरमी और काठका रंदा लिया जाय तो ऊपरके सब औज़ारोंका दाम कुल मिलाकर ५) से कम ही पड़ना चाहिये।

चित्र १६—फ्रेटसॉ
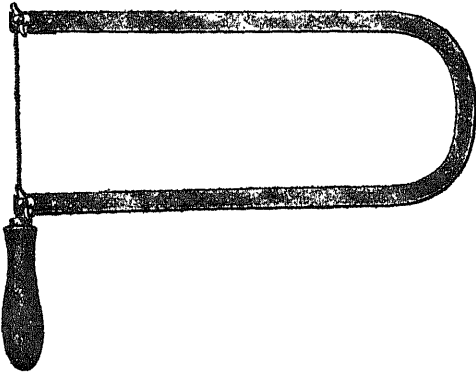
इस आरीसे ¼ इंच तक मोटी लकड़ी या प्लाइवुडमें तरह तरहकी नकाशी काटी जा सकती है।

फ्रेटसॉ छोटे शहरोंमें नहीं खरीदा जा सकता। इसे अकसर बाहरसे ही मँगाना पड़ेगा। डेढ़ रुपयेमें एक आरी और आठ आनेमें दो दरजन फल कलकत्तेमें इन दिनों मिलता है।

अन्य यंत्र—अब दूसरे यंत्रपर भी थोड़ा सा

चित्र १७—फ्रेटसाका काम

यह फ़ोटोग्राफ़ रखनेका चौखटा फ्रेटसासे बनाया गया है [यह डिज़ाइन मेसर्स हॉबीज़ लिमिटेड, डरैहम, नारफ़क, इंगलैंडका है। इस दूकानसे तरह तरहके फ्रेटके कामके वास्ते डिज़ाइन और औज़ार मिल सकते हैं।]

विचार किया जायगा, यद्यपि ये इतने आवश्यक नहीं हैं।
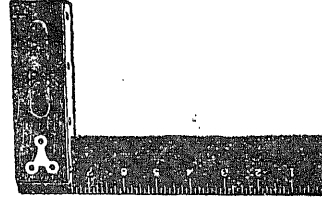
चित्र २७—गोनिया

यह लकड़ी और लोहेकी बनी है। केवल लोहेकी बनी गोनिया भी बिकती है।

बढ़ईगीरीके लिये विशेष रूपसे बने गोनियेसे बहुत सुविधा होती है और समय बचता है। यह सस्ता भी है। हो सके तो एक मोल लेना चाहिये।

चौड़ी रुखानी चौड़े छेदोंके लिये उपयोगी है।

चित्र १९—गोल रुखानी

यह गोल छेद काटने या नकाशीके काममें आती है। छोटे काममें इसकी बहुत आवश्यकता न पड़ेगी।

गोल रुखानी बड़े नापके गोलाकार छेद काटनेके काममें आती है। इसके न रहने पर ¼" इंचकी रुखानीसे भी काम चल सकता है, यद्यपि काम इतना साफ़ न बनेगा।
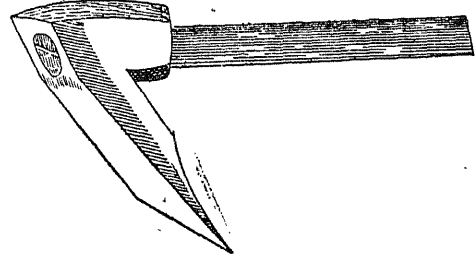
चित्र २०—बसूला

बढ़इयोंके लिये यह बहुत ही ज़रूरी औज़ार है, परन्तु छोटे कामोंके लिये इसकी विशेष आवश्यकता नहीं पड़ती।

बढ़ई लोग बसूलासे बहुत काम निकालते हैं। इससे लकड़ी छीली जाती है और गढ़ी जाती है और यह भारी हथौड़ेका भी काम देता है। बड़े कामोंके लिये यह बहुत जरूरी औजार है, परन्तु छोटे कामोंमें

इसकी आवश्यकता नहीं पड़ती। फिर, बसूलेका इस्तेमाल करना सरल नहीं है। इसमें बहुत अभ्यास-की आवश्यकता है और इससे हाथ कट जानेका भी बहुत डर रहता है। प्रायः सभी बढ़इयोंका हाथ कभी न कभी इससे कट जाता है। एक बहुत होशियार बढ़ई ने, जो बसूलेसे लकड़ी इतनी सफ़ाईसे छीलता था कि लकड़ी रंदेसे साफ़ की हुई जान पड़ती थी, मुझको अपने अँगूठेपर बसूलेसे चार बार घाव हो जानेके चिह्न दिखलाये।

पैसा हो तो बरमा और ⅛, ¼, ¾ और १ इञ्चका फल खरीद लेना चाहिये। छोटे कामोंमें इसकी आवश्यकता कम पड़ती है।

चित्र २३—लकड़ी रेतनेकी रेती

इसकी बहुत आवश्यकता नहीं पड़ती। इससे अच्छा नालबन्दोंवाली रेती होती है। अगला चित्र देखो।

लकड़ी रेतनेकी रेतीका काम कभी-कभी ही पड़ता है। यद्यपि बढ़ई लोग इसका बहुत कम प्रयोग करते हैं, तो भी नौसिखिये लोग बढ़ईगीरी कम जाननेके कारण काममें आगयी अशुद्धियोंको इसकी सहायतासे बहुत कुछ मिटा सकते हैं। परन्तु उनको सदा चेष्टा करनी चाहिये कि दूसरे औज़ारोंसे ही काम इतना साफ़ उतरे कि इसकी आवश्यकता न

चित्र २४—रेती

यह पिछले चित्रमें दिखलाई गई रेतीसे अधिक उपयोगी है, क्योंकि इसमें मोटे और महीन दोनों तरहके दाँत हैं। यह घोड़ोंके खुर रेतनेके काममें भी लाया जाता है।

पड़े। लकड़ी रेतनेकी रेतीकी अपेक्षा घोड़ेके खुरोंको रेतनेकी रेती, जिसे नालबंद अपने पास रखते हैं, मोल लेना अच्छा है क्योंकि इसके दो आधोंमेंसे एक मोटा और एक बारीक कामके लिये बना रहता है।
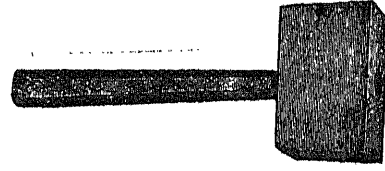
चित्र २५—काठका हथौड़ा

यह रुखानी ठोंकनेके काममें आता है। मोल लेने के बदले इसे घरपर बनाया जा सकता है।

लोहेके हथौड़ेसे ठोंकनेसे रुखानीका बेंट शीघ्र फट जाता है। इसलिये काठका हथौड़ा इस्तेमाल किया जाता है। यह घरपर बनाया जा सकता है। इसे करीब तीन पाव या अधिक भारी होना चाहिये।
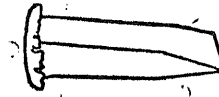
चित्र २६—छेनी

यह लोहा, पीतल इत्यादि काटनेके लिये है।

छेनीसे लोहा या पीतल काटा जाता है। यह सस्ती चीज़ है, इसलिये एक छेनी खरीदकर या लोहारसे बनवाकर रख लेना अच्छा है। इसके न रहनेपर छड़ और तार रेतीसे रेतकर काटे जा सकते हैं।
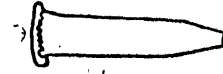
चित्र २७—सुम्भी

यह कीलको लकड़ीके भीतर धँसानेके लिये या टीन इत्यादिके छेद करनेके काममें आता है।

सुम्भीसे टीन या पीतल-की चादरमें छेद किया जाता है। कीलका माथा ठोंककर लकड़ीके भीतर धँसा देनेके लिये भी यह उपयोगी है। छेद करनेके लिये टीनको किसी काठपर रखकर इस पर सुम्भी खड़ा दबाकर सुम्भीको हथौड़ेसे ठोंकना चाहिये। ऐसा करनेसे सुम्भीके मुँहके बराबर छेद बड़ी सफ़ाईसे हो जायगा। छेनी या सुम्भी लोहारसे आने दो आनेमें बनवा लिये जा सकते हैं।

चित्र २८—टीन काटनेकी कैंची

इसके बिना छेनीसे काम चलाया जा सकता है। पतला टीन और पीतल मामूली कैंचीसे काटे जा सकते हैं।

टीन काटनेकी कची बढ़ईगीरीका औज़ार नहीं है, परन्तु बहुतसे खिलौनोंमें टीन या पीतल भी लगते हैं और कैंची रहनेसे सुभीता होता है। कैंची न रहे तो छेनीसे काटकर और रेतीसे रेतकर काम चलाया जा सकता है।

रेञ्च ढिबरी कसनेके लिये है।
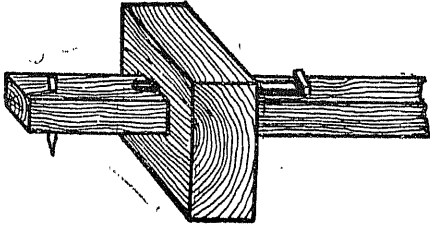
चित्र २९—खसखस
इससे समानान्तर रेखाएँ खींची जाती हैं।

खसखस कटी और रंदाकी हुई लकड़ीपर इसके एक कोरके समानान्तर रेखा खींचनेके काममें आता है। इससे सुभीता होता है, पर इसकी विशेष आवश्यकता नहीं पड़ती।

चित्र ३०—टेकुआ
इससे लकड़ीमें छेद किया जाता है।

बहुत छोटा छेद करनेके लिये बरमीके बदले टेकुएका प्रयोग किया जा सकता है।
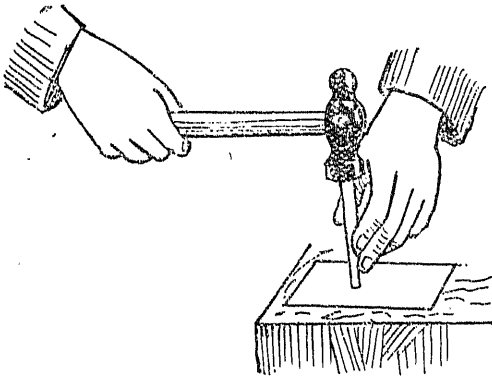
चित्र ३५—सुम्भीसे टीनमें छेद करना
काठपर टीन रखकर ऊपर सुम्भी खड़ी करके सुम्भीको हथौड़ेसे ठोंकना चाहिये।
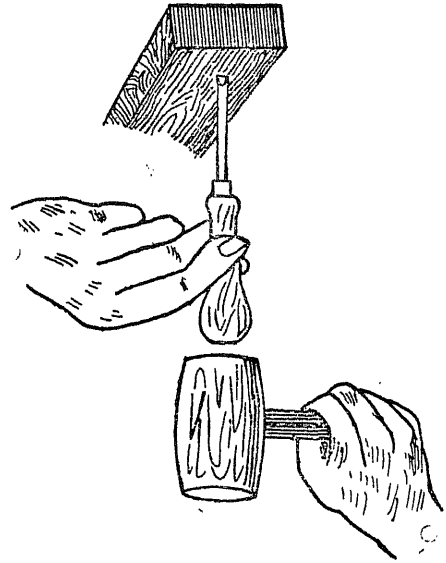
चित्र ३६—टेकुएसे छेद करना
बिना हथौड़ेसे ठोंके भी टेकुएसे छेद किया जा सकता है।

इसे या तो कुछ आगे कुछ पीछे घुमाकर लकड़ीमें घुसेड़ते हैं, या यदि लकड़ी नरम हो तो हथौड़ेसे ठोंककर छेद करते हैं। इसकी धार इस प्रकार रखना चाहिये कि लकड़ीके रेशे कट जायँ।
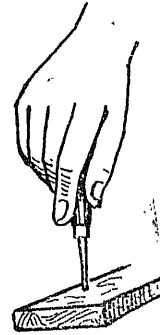
चित्र ३७—टेकुएसे छेद करना
टेकुएकी धारको लकड़ीके रेशोंसे समकोण बनाते हुए रखना चाहिये।

भूत भी शरीर धारण कर सकते हैं

प्रसिद्ध भारतीय वैज्ञानिक डॉ० भिसेके अनुभव

डा० 'भिसे' परलोक-विद्याका अध्ययन एक निष्पक्ष वैज्ञानिकके नाते वर्षोंसे करते आ रहे हैं। आप अट्ठाईस वर्षोंसे भारतसे बाहर, विदेशोंमें, हैं। इस समय अमेरिकामें आप वैज्ञानिक अनुसंधानमें लगे हुए हैं। आपने न्यूयार्कके एक पत्रकेलिए परलोक-विद्यापर एक लेख लिखा था जिसका अनुवाद पूनाके मराठी चित्रमय-जगत्‌में प्रकाशित हुआ है। हम उसी लेखका कुछ हिस्सा अपने पाठकोंके मनोरंजनार्थ यहाँ देते हैं। डॉक्टर सा० लिखते हैं, "परलोक-विद्यापर मेरा अटल विश्वास हो गया है।····· मेरा यह दृढ़ मत होगया है कि मृत्यु के पश्चात् भी प्राणी अपने सम्बन्धियोंसे 'लगाव' रखता है। हिन्दुस्तानमें मुझे ऐसे कई व्यक्तिगत अनुभव हुए हैं।

❀ ❀ ❀

"सर ऑलीवर लॉज, सर अर्थर कॉनन डॉइल, डा. ए. वॉलेस सरीखे कई विद्वान् और अन्तर्राष्टीय ख्यातिके व्यक्तियोंने मध्यमद्वारा परलोकगत आत्माओंके संदेश सुननेकी घोषणा की है। परलोक-विद्याको ढकोसला बतानेवालोंने उक्त विद्वानोंके भोलेपनपर अट्टहास किया है और उनके मध्यमोंको 'जालसाजो' कहा है! मैं ऐसे आलोचकोंसे कहना चाहता हूँ कि मैं जादूगरी और कई चालबाजियोंसे खूब परिचित हूँ। मैं स्वयं कई चालबाजियों और हस्त-कौशलके खेलोंमें पटु हूँ। मैं जोर देकर कह सकता हूँ कि परलोक-विद्या निरा ढकोसला नहीं है। मैंने उसकी बड़ी निष्ठुरतासे परीक्षा की है।

जादूगरीकी कला

"सन् १८९७में जब मैं हिन्दुस्थानमें था तब मैं बड़े-बड़े शिक्षितोंको अपनी जादूकी कलासे चकरा देता था। मैंने 'आत्मानंतर-मायादर्शन'के खेल करता था। दर्शकोंमेंसे मैं किसीसे सजीव निर्जीव—कोई भी पदार्थ ले लेता और उसे पूर्ण प्रकाशमें उनसे दस बारह फुट दूर—टेबलपर रख देता। मैं उस पदार्थकी ओर देखते-देखते उसे दूसरे पदार्थमें परिवर्तित कर देता था! उदाहरणार्थ यदि दर्शक मुझे बिल्ली देता तो मैं उसे 'तोता' दिखा देता था! एक पदाथसे दूसरे पदार्थमें परिवर्तित करनेमें तीनसे पांच मिनिट लगते थे। मैं दर्शकोंको टेबल आदिका निरीक्षण करा देता था! मैंने ऐसे प्रयोग लगभग दो-तीन वर्षतक किये। मेरे प्रयोग देखनेके लिए कई राजे-महाराजे, यूरोपियन आदि अनेक व्यक्ति आते थे परन्तु एकने भी मेरे जादू-शास्त्रकी थाह न पायी! मैंने यह विद्या यूरोपियन-जादूगरोंको चकित करनेके लिए प्रारम्भ की थी। वैज्ञानिक भी मेरे प्रयोगोंसे हैरान थे। मुझे कई स्वर्ण पदक आदि भी मिले। सन् १८९५में मैंने यही प्रयोग लन्दन-मैंचेस्टरमें सर्वसाधारण जनताके सामने कर दिखाये थे। मैं आज कहता हूँ कि मेरे वे प्रयोग बिलकुल 'शास्त्रीय' हैं। उनमें किसी प्रकारकी 'वशीकरण विद्या' नहीं है। हाथकी चतुराईके खेलोंसे भी मैं पूर्णरूपसे परिचित हूँ।

"मैंने भारतवर्षमें रहकर योगका भी अभ्यास किया है। चित्तकी एकाग्रता साधकर अज्ञात बातें जानने—मनुष्योंके मनकी बातें ताड़ने आदिके लिये जितने 'तप'की आवश्यकता होती है, वह सब मैंने किया है। मुझे अपने 'तप'-प्रयत्नमें यश भी मिला है। बादमें, मैंने स्वयं अपनी पद्धतिसे ही मन एकाग्र करनेकी कोशिशकी थी! मैं किसी भी मनुष्यके मनके विचार उसके हाथोंको अपने 'कपाल' पर रखकर बतला देता था। आँखें बाँधकर भी मैं बोडपर विचार लिख देता था। सन् १८९६-९७ में मैंने ये प्रयोग अनेक डॉक्टरों, वैज्ञानिकों आदिके सम्मुख किये! अब मैंने इन प्रयोगोंपर अपने मनकी शक्ति व्यय करना छोड़ दिया है। यह सब कहनेका मतलब

यह है कि मेरे सामने प्रेत-विद्याके जाली 'माध्यमों' की 'चाल' चल नहीं सकती।

"मेरे कई वैज्ञानिक आविष्कार सुप्त अवस्थामें सफल हुए हैं। सोते-सोते मुझे कई बार नई बातें सूझी हैं! इसे मैं अन्तर्मनकी-शक्तिका प्रमाण कहता हूँ। 'टाइपकास्टिंग मशीन' सरीखे यन्त्र-विद्याके आविष्कारके अलावा बिजली, लोह-चुम्बक आदि अनेक शास्त्रोंके आविष्कार मैंने किये हैं!

प्रेतात्मा मनुष्योंसे बोल सकती है

"मुझे अनुभव हो चुका है कि प्रेतात्मा मनुष्योंसे संभाषण कर सकती है। जब मैं ११ वर्षका था तब इसका मुझे प्रथम अनुभव हुआ! मेरे पिता बम्बई प्रान्तके एक जिलेमें न्यायाधीश थे। उनके एक चचेरे भाई उनके वैभवको देख न सके।

अतः उनका सर्वनाश करनेके लिये उन्होंने भूत-बाधाके प्रयोग शुरू कर दिए! मेरी १४ वर्षीया बहिन स्वस्थ और सशक्त होते हुए भी एकाएक बीमार पड़ गई। दिन-रात उसे एक काले लड़केकी सूरत दीखने लगी। वह बेहोश रहने लगी। मेरे छोटे भाई भी तरह-तरहकी बीमारियोंसे बीमार पड़ने लगे। हमारे घरमें रोगका अड्डा ही मानों जम गया। कई प्रसिद्ध डाक्टरोंका इलाज किया गया; सब बेकार! भोजन जब तैयार किया जाता तो वह एकदम खराब हो जाता! मेरे पिता इन सब बातोंसे बड़े परेशान हो गये। जब सारे औषधोपचार व्यर्थ सिद्ध हुए तब पिताने "प्रेत-बाधा" समझकर कतिपय 'माध्यमों' की सहायता ली। फिर भी आराम नहीं हुआ। एक रात को विचित्र घटना हो गयी। जिस कमरेमें मैं लेटा था उसके पासवाले कमरेमें मेरे माता-पिता एक भूत-प्रेत-विद्यामें कुशल स्त्री 'ओझाइन' से सलाह ले रहे थे। वह भी बड़ा आडम्बर दिखा रही थी! इतनेमें मुझमें न जाने क्या प्रेरणा हुई कि मैं बिस्तर छोड़कर उनके पास गया और कहने लगा, 'आप इस झूठी औरतके झगड़ेमें क्यों फँसते हैं? मेरे भाई-बहिन पर संकट लानेवाला मेरा काका ही है! देखो अपने बंबई के घरके पास उनकी करनी! पहले मेरी बातोंपर विश्वास नहीं हुआ। पर मेरे आग्रहपर जब जाँच की गयी तो मेरे बतलाये स्थानमें जादू-टोना दिखाई दिया। जबतक मेरे भाई-बहिन अच्छे न हुए, मेरे शरीरमें वह "स्फूर्ति" बराबर कुछ क्षणतक आती रहती थी। मैं नहीं समझता मेरे अन्दर ऐसी कौन-सी शक्ति आ जाती थी कि मुझे अपना भान ही नहीं रहता था!

❀ ❀ ❀

"दूसरा अनुभव मुझे तब हुआ जब मैं १७ वर्षका था। हम सब उस समय बम्बईमें एकत्र रहते थे। मेरे छोटे भाइयोंके लिये मेरे पिताने 'सादू' नामक एक व्यक्तिको रखा था। कुछ वर्ष रहनेके पश्चात् वह सेनामें भरती हो गया और हमसे पृथक हो गया। मई महीनेकी बात है, हम सब घरमें बातें कर रहे थे। उस समय हमें 'सादू' की ज़रा भी याद न थी। उसी समय न जाने कैसे मुझसे दस फीट दूरीपर सादू खड़ा हुआ दिखलाई दिया! उसकी नज़र मेरे दोनों छोटे भाइयोंपर थी, जिन्हें वह खिलाता था। मईमें दिनके तीव्र प्रकाशमें मैंने उसे देखा, मैंने 'सादू' कहकर उसे पुकारा! मैं 'सादू' को पुकार रहा हूँ, यह सुनकर मेरे वे भाई मेरी ओर ताकने लगे! 'क्यों रे, बंबई कब आया? भीतर आ' मैं यह कह ही रहा था कि वह गायब हो गया। मैंने उसे बहुत ढूँढ़ा पर वह लापता था। हमें बादमें विदित हुआ कि 'सादू मर गया था, उसकी आत्मा जड़-देह धारण कर मेरे भाइयोंको देखने आयी थी। हमने जब 'सादू'के भाईको पत्र लिखा तो उत्तर आया कि 'मरते-मरते सादू आपके भाइयोंकी याद करता था।'

❀ ❀ ❀

इस तरहके अनुभवोंके बलपर डा० भिसेका कहना है कि प्रेत-विद्या झूठी नहीं है। प्रेत, देह धारणकर अपने प्रेमियोंको दर्शन देते और उनका कल्याण भी करते हैं। दुष्टात्माएँ अनिष्ट भी कर सकती हैं। वैज्ञानिकोंको इस दिशामें विशेष अनुसंधान करना चाहिये।

—हिन्दी स्वराज्यसे

साहित्य विश्लेषण

हंस-काशी अंक । हंसने दो विशेषांक बड़े मारकेके निकाले हैं । आत्म-कथांक जैसे अपने ढंगका निराला था, वैसेही काशी-अंक भी अनूठा है, जो लोग काशीकी सैर करने आते हैं उनके लिये तो महत्त्वकी चीज है ही । यह काशी निवासियोंके लिये भी यादगारकी तरह सुरक्षित रखने लायक चीज है । इसमेंका एक एक लेख अनमोल है । उसके रूप, उसके विद्यालय, उसके प्रकाशन, उसके मेले, उसके निवासी, उसके अखाड़े, उसके कलावान्, उसके व्यवसायी, उसके साहित्यिक, उसके कवि, उसके पंडित, बल्कि उसके गुंडोंतकका वर्णन है । उसके प्राचीन और नवीन विख्यात महापुरुषोंकी भी चर्चा है । काशीका प्राचीन मध्यकालीन और अर्वाचीन इतिहास भी है । काशी विश्वनाथसे लेकर काशी-नरेशतकका वर्णन है । फिर भी दो एक विषयोंका अभाव खटकता है ।

काशीके प्रमुख लेखकों और साहित्यिकोंका विस्तृत वर्णन होना चाहिये था, वह भी इसी नगरीके सम्बन्धका । चर्चामात्र पर्य्याप्त नहीं है ।

मंदिरों घाटों और तीर्थों का विशद वर्णन नहीं है । काशीखंडमें वर्णित तीर्थोंसे तुलना करके आज-कलके देवस्थानोंकी आलोचना चाहिये थी । इनपर ऐतिहासिक प्रकाश डालना था ।

थियोसोफिकल सोसैटीका विस्तारसे वर्णन चाहिये था । हिन्दूकालिजका इतिहासभी होना चाहिये था ।

यहाँके प्रसिद्ध महात्माओंकी चर्चा भी बहुत थोड़ी है ।

बा० ब्रजरत्नदासजीने संक्षिप्त इतिहास बड़ी योग्यता और खोजसे लिखा है । परन्तु जो चित्र महारानी लक्ष्मीबाईका बतलाया गया है वह झांसीकी प्रसिद्ध रानीका कदापि नहीं है । ७० वर्ष पहलेके फोटोकी नकल बतायी जाती है जब कि भारतमें फोटो ग्राफी नयी चली थी । महारानीके समयमें तो यहाँ थी ही नहीं । हमारे पास एक चित्र प्रामाणिक है, उससे इसका कोई मेल नहीं है । इस चित्रसे तेईस वर्षकी अवस्था भी नहीं जान पड़ती और न रूपही महाराष्ट्र ब्राह्मणीका है और न पहिरावा । महारानी काशीमें ही भदैनीके चिमनाजी आपा साहबके बाड़ेमें पैदा हुई थीं । इनके पिताका नाम मोरेश्वर और माताका नाम भागीरथी था । महारानीके भाई श्रीमान् पं० चिन्तामण मोरेश्वर तांबे अभी मौजूद हैं और धनटोली नागपुरमें रहते हैं । उनके सुयोग्यपुत्र, मेरे सहाध्यायी मित्र, पं० गोविन्द चिन्तामणजी तांबे इस चित्रके विषयमें लिखते हैं—

"उनके नामपर जो चित्र छापा गया है वह भोपालकी गतराज्ञी सुलतान जहान बेगमके छोटेपनका है । उसे एन-लार्ज करनेमें चेहरेका भाव बदल गया है और कुछ प्रौढ़ भाव दीखने लगा है । परन्तु नाकके बुलाक और सिरके मुकुटसे तो ऐसा अवश्य प्रतीत हो जाना चाहिये कि यह चित्र किसी मुसलमान राज्ञीका है ।...तथा उँगलियोंमें अंगूठियाँ पहना दी हैं और उसके प्रदर्शनके लिये कुर्सीके हाथपरसे लटका दिया है ।...सुलतान जहान बेगम उस वक्त ९-१० वर्षकी थीं, यानी वह १८६० से १८७०-७२ तकका लिया हुआ फोटो है । उस समय भारतमें फोटो ग्राफी नयी नयी थी । झांसीमें महारानीके वक्ततक तो पहुँची ही न थी । फिर उनका फोटो कैसे निकले ? हमने जो परिश्रमपूर्वक चित्र ढूँढ़ निकाला है, उससे इस चित्रका कोई साम्य नहीं । मेरे पिता और महारानी साहेब दोनों पितृमुखके साम्यधारी थे ।......"

झांसीकी रानीके वयोवृद्ध भाई जबतक हमारे सौभाग्यसे जीवित हैं तबतक यह निश्चय कर लेना कठिन नहीं है कि अमुक चित्र झांसीकी रानीका है या नहीं । हमें खेद है कि काशी-अंकमें यह भारी भूल हो गयी है ।

—रा० गौ०

ललितसृष्टि—ललितकला तथा वाङ्मय सम्बन्धी सचित्र मासिक पत्र। प्रकाशक ललितसृष्टि कार्यालय, धनतोली, नागपुर। वार्षिक मूल्य १॥) एक अंकका मूल्य ≡)। सम्पादक श्री. बी. के. पंडित, बी. ए., सह सम्पादक के. जी. पेंढारकर, एम्. एस-सी., एल-एल. बी.।

दिसम्बरका अंक हमारे सामने है। पहले वर्षका यह तीसरा अंक है। नागपुर मराठी-भाषी प्रान्त है। राष्ट्र भाषा सम्बन्धी ऐसा सुन्दर पत्र दोनों महाराष्ट्र सज्जन निकाल रहे हैं। इसे देखकर हमें अपने दोनों मित्र स्व० पं० श्रीरामराव चिंचोलकर एवं स्व० पं० माधवराव सप्रेद्वारा संपादित छत्तीसगढ़-मित्रकी याद आती है जो बत्तीस बरस पहले रायपुरमें अस्त हो गया। ललितसृष्टिका रंग ढंग उद्देश्य सभी कुछ समयानुकूल है। भगवान् इसे चिरायु करें!

फलित-स्वप्न—रचयिता बा० भगवतीप्रसादसिंह, चौतरिया निवास, छपरा। सन् १९३३। मूल्य ≡)। डबल क्रौन १६ पेजी, पृष्ठ संख्या ३६+१०=४६ कविसे प्राप्य कथा कल्पित है। शैली सुन्दर है। रचना भावुकतासे ओतप्रोत है। ऋतु और काल आदिका वर्णन उत्तम है। इसी व्याजसे विविध छन्दोंके उदाहरण भी दिये हैं। पुस्तक बड़ी अच्छी है। कविता प्रसाद-गुण-पूरित है। —रा० गौ०

१-भक्त नारी, २-भक्त बालक, ३-भक्त पंचरत्न, ४-आदर्श भक्त ५-भक्त चन्द्रिका, ६-भक्त सप्तरत्न, ७-भक्तकुसुम—ये सातों अभिनव-भक्त-चरितमाला सातपुष्प भक्तवर श्रीहनुमान प्रसादजी पोद्दार लिखित हैं, और गीता प्रेस गोरखपुरमें छपे हैं और वहींसे प्रकाशित हुए हैं। प्रत्येक फूल पाँच-पाँच आनेको मिलता है। इनमें बड़ा ही मधुर सौरभ है, इनमें ऐसा मधु भरा है कि पढ़कर भावुक पाठक भक्तिके नशेमें चूर हो सकता है। क्यों न हो भक्तोंकी ही कथा ठहरी। भक्तवर पोद्दारजीने यह कहीं न लिखा कि इनका सौरभ किन वाटिकाओं और वनोंसे आया है। शायद बंगालका उद्यान ही विशेष उद्गम है। यह पुस्तकें समालोचनार्थ तो नहीं आयी हैं। परन्तु इनका इतना नोटिस लिये बिना नहीं रह सकता। जिन्हें भक्तोंमें या भक्तभावनमें श्रद्धा न भी हो वे भी कहानीकी ही दिलचस्पीसे इन चरित्रोंको पढ़ें, उन्हें कम-से-कम आख्यायिका-काव्यका तो आनन्द मिलेगा ही। पुस्तकें डबलक्रौन १६ पेजीके १००-१०० पृष्ठकी हैं, सभी सुन्दर छपी और सचित्र।

श्रीविष्णुपुराण—मूलश्लोक और हिन्दी अनुवाद सहित (सचित्र)। अनुवादक श्रीमुनिलाल गुप्त। सं० १९९०। गीता प्रेस, गोरखपुर। मूल्य साधारण जिल्द २॥) बढ़िया जिल्द २॥।)। यह "श्रीबनारसीदेवी चूड़ीवाल धर्म्म ग्रंथमाला"की पहली मणि है। मुद्रक तथा प्रकाशक, श्री घनश्यामदास, गीता प्रेस, गोरखपुर। सुपररायल अठपेजेके ५४० पृष्ठ।

प्रत्येक पृष्ठमें दो स्तंभ हैं। पहलेमें मूल है, दूसरे स्तंभमें अनुवाद। अनुवाद साधारणतया अच्छा हुआ है। परन्तु सम्पादन नहीं हुआ है। विविध संस्करणोंके पाठोंको बड़ी सावधानीसे मिलाकर पाठान्तर दिये जाते, ऐतिहासिक और वैज्ञानिक स्थलोंपर आलोचनात्मक पाददिप्पणियां दी जातीं, संस्करणोंके सम्बन्धमें, एवं इसकी रचना और कथा-संगतिके सम्बन्धमें, मालाके विषयमें, पुराणकी स्थितिपर और पुराणोंमें दी हुई उसकी विषय-सूचीपर एक अच्छी प्रस्तावना होती, और अन्तमें एक वर्णानुक्रमणिका होती, तो इस अमूल्य पुस्तककी उपयोगिता अत्यधिक बढ़ जाती। —रा० गौ०

नागरीप्रचारिणी पत्रिका भाग १४, अंक १, २। अर्थात् प्राचीन शोधसम्बन्धी त्रैमासिक पत्रिका, नवीन संस्करण, सम्पादक श्यामसुन्दर दास, काशी-नागरी-प्रचारिणी-सभाद्वारा प्रकाशित। मूल्य प्रति संख्या २॥)। वार्षिक १०)। प्रत्येक अंक डिमाइ अठपेजेके १२८ पृष्ठ।

इन अंकोंमें (१) सीताका शीलसंदर्भ [ले० श्रीलक्ष्मीनारायणसिंह, काशी,] (२) हिन्दीमें संयुक्त क्रियाएं [ले० श्रीरमापति शुक्ल, एम्० ए०, काशी], (३) डिंगल भाषा (४) भारतवर्षका इतिहास [ले० रा० ब० पंड्या श्रीबैजनाथ, काशी],(५)

कौटिल्य-कालके गुप्तचर [ले० श्रीवृन्दावनदास, बी० ए०, झांसी]। (६) कौटिल्यका धन-वितरण और समाज [ले० श्रीभगवानदास केला, वृन्दावन]। राजस्थानी साहित्य और उसकी प्रगति [ले० श्री पुरुषोत्तमदास स्वामी, विशारद, बीकानेर]। और, (८) बेलि क्रिसन रुक्मिणी री [ले० श्रीराजवी अमरसिंह, बीकानेर] ये सभी लेख एकसे एक ठोस पठनीय सामग्री हैं, गवेषणापूर्ण हैं, सुसम्पादित हैं और श्रीनागरीप्रचारिणी सभा जैसी विद्वत्परिषत्के योग्य ही हैं। व्याकरण-विज्ञानपर लेख (२) बहुत खोज और विचारसे लिखा गया है। रा० गौ०

स्वास्थ्य-सर्वस्व, प्रथम, द्वितीय और तृतीयखंड। गद्यपद्य। लेखक, बा० नरसिंह सहाय, रिटायर्ड आफिसर, विहार-उड़ीसा। १९३३। सर्वाधिकार रक्षित। मूल्य क्रमशः ।)॥, ।=) तथा ॥-) डबलक्राउन १६ पेजी, पृष्ठ संख्या क्रमशः ५०,६४ और ५०। पुस्तक मिलनेका पता, लेखक, बागबरियारसिंह, (वामनकुटीर) काशी।

पहले खंडमें भोरके कर्म्म और आरोग्यताके आदि नियम हैं। दूसरेमें भोजन और शयन वा आरोग्यताके मूल नियम हैं। तीसरेमें सृष्टि और शरीर-रचनाका विषय है। तत्वकी बातें पहले गद्यमें हैं। फिर दोहोंमें उन्हीं बातोंको याद करनेके सुभीतेसे पद्यबद्ध कर दिया है। पुस्तकें सचित्र हैं। शालाओंके बच्चोंके लिये बड़ी लाभदायक हैं। दाम अवश्य कुछ अधिक रखे गये हैं। इनकी रचना वैज्ञानिक सिद्धान्तों पर हुई है।— रा० गौ०

कुमार—विशेषांक, वर्ष २, अंक १, संचालक राजा-कालाकांकर, सम्पादक लाल सुरेशसिंह। जनवरी, १९३४। वार्षिक मूल्य ३) एक प्रतिका ।-)। आकार रायल अठ-पेजीके पृ० ७२।

बालकोंके लिये यह पत्र सब तरहसे सुसम्पादित और सुन्दर सचित्र निकलता है। यह विशेषांक छः मासकी दीर्घ अवधिके बाद निकला है। सम्पादक महोदयका स्वास्थ्य भगवत्कृपासे अब अच्छा है। आगेसे आशा है कि ऐसा अच्छा पत्र समयपर निकलता रहेगा। इस अंकमें "तरुजीवन", अणुवीक्षण यंत्र" "खेलकूद" ये वैज्ञानिक लेख विशेष पठनीय हैं।— रा० गौ०

यशोधरा—साहित्यसदन, चिरगाँव, झांसीसे प्रकाशित, महाकवि श्रीमैथिलीशरण गुप्त रचित। प्रथमवार १९९०। डबलक्राउन १६ पेजीके २१४+१६ पृष्ठ, सुन्दर एंटिक कागज, उत्तम छपाई सफाई। सुन्दर और मजबूत जिल्द मूल्य १॥)

महाकवि मैथिलीशरण गुप्तका नाम ही किसी काव्य ग्रंथके लिये पर्य्याप्त है। आप जो विषय उठाते हैं वह प्रायः अछूता होता है। यशोधरा भी ऊर्म्मिला-की तरह त्यक्ता तपस्विनी है और साकेतकी तरह यह भी बुद्ध-चरितके उन विषयोंका चित्रण है जो चित्र-पटके पृष्ठ-देशके हैं जिनपर किसीने अबतक ध्यान नहीं दिया था। इस महाकाव्यके भावोंके माधुर्य्यका स्वाद, रचनाका सौष्ठव और सौन्दर्य्यकी कलाके थोड़े वर्णनके लिये भी "विज्ञान" उपयुक्त स्थान नहीं है। हम अपने पाठकोंसे यही कहेंगे कि हमारी आलोचनासे नहीं वरन् प्रत्यक्ष अवलोकनासे इसका स्वाद लें। —रा० गौ०

आत्मोत्सर्ग—साहित्यमणिमाला-मणि १०। लेखक श्रीसियारामशरण गुप्त, साहित्यसदन, चिरगाँव, झाँसी। कपड़ेकी सुन्दर मजबूत जिल्द। छपाई सफाई उत्तम। फूलस्कैप अठपेजी साइज़के १०० पृष्ठ। प्रथमावृत्ति। मूल्य ॥=)।

अमर शहीद स्वर्गीय गणेशशंकर विद्यार्थीके आत्मोत्सर्गकी अमर-कथा कविवर श्री सियारामशरण गुप्तजीने कविताकी अमरवाणीमें कहकर एक अमर स्मारक बना दिया है। भाषा ओजस्विनी है और चरितकी सामग्री ही काव्योत्पादिका है फिर वह भी एक कुशल कलाकारके हाथोंमेंसे निकलकर क्यों न कलाकी मूर्त्ति बन जाय। पढ़कर श्रद्धा, करुणा और गौरवका सहज ही हृदयमें उद्रेक होता है। गणेशजीका चरित वैसे तो कविताका मुहताज नहीं है, तो भी दोनोंका संयोग सोनेमें सुगन्ध हो गया है। —रा० गौ०

पुण्यपर्व—लेखक, श्री सियारामशरण गुप्त। प्रकाशक, साहित्यसदन, चिरगाँव (झाँसी)। डबलक्रौन, १६ पेजीके १३८ पृष्ठ। अंटिक कागज। छपाई सफाई सुन्दर। मोटे कागजका कवर। मूल्य ।॥)।

इन्द्रप्रस्थके राजा बोधिसत्त्व श्रुतसोम इस रूपकके नायक हैं। उन्होंने निर्भीकता पूर्वक नरखादक काशिराजके हाथोंमें अपनेको सौंपकर कैसे उसका उद्धार किया और सैकड़ों बलिदान होनेवाले मनुष्योंकी कैसे रक्षाकी, इसका अत्यन्त रोचक और श्रद्धोत्पादक चित्रण है। यह दृश्य काव्य यद्यपि केवल पढ़नेके लिये लिखा गया जान पड़ता है, तथापि यह पूर्णतया अभिनेय है। पद्यांश अत्यन्त कम होनेसे इस गद्यमय रूपकमें पूर्ण स्वाभाविकता है। रा० गौ०

मानुषी—ले० श्री सियारामशरण गुप्त। साहित्यसदन, चिरगाँव, (झाँसी)। प्रथमवार। १९९० मूल्य १)। डबलक्रौन १६ पेजेके ११४+६=१२० पृष्ठ। सुन्दर और टिकाऊ जिल्द।

यह आठ कहानियोंका संग्रह है। गद्यही कवियोंकी कसौटी है। गद्य काव्यकी कसौटीपर भी गुप्तजी खरे उतरे। यह कहानियाँ ऐसी अच्छी हैं कि इनकी तुलना हम संसारकी अच्छी-से-अच्छी कहानियोंसे कर सकते हैं। कथानक क्या हैं जीवनकी जीती-जागती तस्वीर हैं। गुप्तजीको अपनी कल्पना-शक्तिपर पूर्ण अधिकार है। शब्द-चित्रणका, वस्तु-विकासका, मनोविश्लेषणका और स्वभावके गंभीर निरीक्षणका प्रत्येक कहानी नमूना है। समाप्त करनेपर भी पाठककी उत्सुकता और पात्रोंसे अनुराग बना रहता है। कहानियोंके पात्र जाने-बूझे-से लगते हैं।

गोद—लेखक श्री सियारामशरण गुप्त, साहित्यसदन, चिरगाँव (झाँसी) प्रथमवार १९९० मूल्य १।)। सुन्दर और टिकाऊ जिल्द। डबलक्रौन १६ पेजीके १६४ पृष्ठ।

गुप्तजीने यह सुन्दर उपन्यास लिखकर इस परीक्षामें भी पूर्ण उत्तीर्णता पायी। इस छोटेसे कथानकमें शरत् बाबूका समाज और पारिवारिक दृश्योंका चित्रण है, टालसटायकी नीति और आदर्शका पालन है, प्रेमचन्दजीकी उपमाएँ हैं, निदान सभी तरहके गुण मौजूद हैं। शरत बाबूके उपन्यासोंसे यह उपन्यास खूब टक्कर ले सकता है। आदिसे अन्ततक कहीं अश्लीलता आदि दोषोंका नाम नहीं है। पारिवारिक सम्बन्धों और मनोभावोंके चित्रणमें "गोद" को लेकर हम संसारके उत्तमसे उत्तम उपन्यासोंसे इसकी तुलना कर सकते हैं। रचनाकी दृष्टिसे हम इसे उपन्यासके बदले एक बड़ी कहानी कह सकते हैं, परन्तु ऐसी विवेचनामें तो शरत् बाबूके ही कई उपन्यास बड़ी कहानी बन जायँगे। "मानुषी" और "गोद" दोनों ही उत्कृष्ट गद्य काव्य हैं। गद्य काव्यकी इस अनुपम सफलतापर हम सहर्ष और हृदयसे गुप्तजीको बधाइयाँ देते हैं। —रा० गौ०

Economy and Safety of Electric Installations in India—लेखक, प्रो० भीमचन्द्र चटर्जी, काशी हिन्दू-विश्वविद्यालय, आकार विज्ञानका-सा। कागजका कवर। पृष्ठ संख्या ४०। भाषा अंग्रेजी। श्रीशिवनारायण चटर्जी, १ लकसारोड, बनारस शहरसे प्राप्य। मूल्य १)।

यह एक अत्यन्त उपयोगी पुस्तक है। प्रायः सभी बड़े बड़े शहरोंमें बिजलीका ताना-बाना तना हुआ है। परन्तु जनताको पता नहीं कि यह कैसी चीज है, हमें किन दामोंको मिलनी चाहिये, इसमें क्या जोखिम हैं। इसके रोजगारियोंको इजारा मिल गया है। व्यसनी और व्यवसायी जनताका वह मनमाना दोहन करते हैं। योग्य लेखकने यह बात सप्रमाण दिखायी है और यह सिद्ध किया है कि बहुत किफायतसे पावर-हौस चलाये जा सकते हैं और बिजली सस्ती मिल सकती है और जोखिम घटायी जा सकती है। लेखकने अंग्रेजीमें भी लिखनेमें यह ध्यान नहीं दिया है कि जो बिजलीके विशेषज्ञ नहीं हैं वह भी अच्छी तरह समझ सकें। यदि कुछ पृष्ठ बढ़ जाते तो भी हर्ज न था। फिर हमारे मित्र भीम बाबू चाहते तो हिन्दीमें इसी पुस्तकको कुछ अधिक विस्तारसे लिख सकते थे। इसकी बड़ी आवश्यकता थी और है। जो रोजगारी इस विषयसे सम्बद्ध हैं वह इसके हिन्दीमें ही होनेसे लाभ उठा सकते हैं और कुछ समझ सकते हैं। उनकी संख्या बहुत बड़ी है, अतः यदि यह पुस्तक

अधिक सुबोध बनायी जाय तो इसका अच्छा प्रचार संभव है। इसके प्रचारकी बड़ी आवश्यकता है। रा०गौ०

भारती—वर्ष १, अंक १, फरवरी, १९३४। सम्पादक श्री जगन्नाथप्रसाद 'मिलिन्द' तथा श्री हरिकृष्ण 'प्रेमी'। संचालक श्री देवचन्द्र 'विशारद'। प्रकाशक, हिन्दी साहित्य मंडल लिमिटेड, लाहोर। मैनेजिंगएजेंट,हिन्दी, भवन, लाहौर। वार्षिक मूल्य ६) एक प्रति ॥-)।

इस नयी सहयोगिनीका हम सहर्ष स्वागत करते हैं। पंजाबसे ऐसी सुन्दर मासिक पत्रिकाके निकलनेका यह पहला ही अवसर है। बड़ी योग्यतासे सम्पादित, सचित्र, ११६ पृष्ठ हैं। विषयोंका चयन बहुत उपयुक्त है। लेख एकसे एक सुन्दर उपयोगी और ठोस सामग्रीवाले हैं और लेखक प्रायः सभी हिन्दीके महारथी हैं। पत्रिका सब तरहसे सम्पन्न है और अपने नामको सार्थक करती है। कई लेख बड़ी खोजसे लिखे गये हैं। भगवान् इसे चिरायु करें। — रा० गौ०

ऋग्वेद-संहिता, द्वितीय और तृतीय पुष्प। (सरल-हिन्दी-टीका सहित) टीकाकार, पं० रामगोविन्द त्रिवेदी वेदान्तशास्त्री, पं० गौरीनाथ झा व्याकरणतीर्थ तथा पं० महेन्द्रमिश्र साहित्याचार्य्य "मग"। प्रकाशक, पं० गौरीनाथ झा व्याकरणतीर्थ, कृष्णगढ़, सुलतानगंज, (भागलपुर) आकार डबलक्रौन अठपेजी। द्वितीय पुष्प २०८ + १०, प्रथम संस्करण ५०००। तृतीय पुष्प पृ० २४४ + ८। प्रथम संस्करण ३०००। प्रत्येक पुष्पका मूल्य २)।

हमारा तो विश्वास है कि ज्ञात संसारमें वेदोंका प्रकृत मर्म्म समझनेवाला कोई नहीं है, यद्यपि आर्य्य-समाजके प्रोत्साहनसे ककहरा भी ठीक-ठीक न जाननेवाला अपनेको वेदज्ञ समझता है। हम तो अपनेको वेद-भाष्यकी समीक्षाके लिये समर्थ नहीं समझते तथापि तुलनात्मक भावसे जहाँ वास्तविक विद्वज्जन कुछ-न-कुछ कहते ही हैं, वहाँ हम भी कुछ कहकर कहनेका श्रेय प्राप्त कर ही लेंगे। "को मज्जतोरणु कुलाचलयोर्विशेषः'। अस्तु। हमने चाहा था कि प्रथम पुष्प ही हमें इस भाष्यका देखनेको मिले जिससे शायद नीतिका कुछ पता लगता, परन्तु न जाने क्यों कई बार लिखनेपर भी हमें प्रथम पुष्प न मिल सका। द्वितीय और तृतीय पुष्पसे पता चलता है कि योग्य टीकाकारोंने सायणके ही आधारपर टीका की है। मंत्रोंकी टीका ऐतिहासिक और आध्यात्मिक दोनों तरह की हो सकती है। आर्य्य समाजका दावा है कि वेदोंकी केवल आध्यात्मिक टीका हो सकती है। परन्तु उनका तथोक्त आध्यात्मिक टीका प्रकृत आध्यात्मिकताको ओर दृष्टिपात भी करती नहीं दीखती। हमारा अपना विचार यह है कि प्रस्तुत टीका जैसी लिखी गयी है उसमें उतना परिश्रम नहीं है जितना कि आध्यात्मिक और ऐतिहासिक दोनों भावोंको लेकर टीका करनेमें होता। उतावलीकी भी कोई बात न थी। प्रस्तुत ग्रंथोंसे फिर भी यह भारी लाभ है कि सायण तथा अंग्रेजी टीकाकारोंके भाव हिन्दी भाषामें सुलभ हो जायँगे। इतना काम भी थोड़ा नहीं है। इसके लिये योग्य टीकाकार बधाईके पात्र हैं।

टीकाकारोंको एक भयानक भूलसे बचे रहनेकी आवश्यकता है, जिसपर शायद अबतक ध्यान नहीं दिया गया। पच्छाहीं विद्वानोंकी ऐसी परिकल्पना है कि आर्य्य लोग जैसे युरोपमें जाकर बसे उसी तरह वे कहीं और देशसे आकर भारतमें भी बस गये हैं। युरोपमें तो इतिहाससे ही यह बातें स्पष्ट हैं और उसका इतिहास भी अभी कलका ही है। परंतु अपनी परिकल्पनाको पुष्ट करनेके लिये वेदोंके तथोक्त पाश्चात्य विद्वानोंने खूब खींचातानी करके ऐसे अर्थ लगाये हैं जिनकी बेचारे सायण और महीधरादि कल्पना भी नहीं कर सकते थे और जिनके विरुद्ध मनुस्मृतिमें स्पष्ट उल्लेख है कि भारतसे ही आर्य लोग बाहर गये। श्री अविनाशचन्द्र दास, पावगी आदि एतद्देशीय कई विद्वानोंने उनकी परिकल्पनाका खंडन भी किया है। टीकाकी विषय सूचीमें "आर्य्य और दस्यु यह दो जातियाँ थीं" ऐसा उल्लेख करके टीकाकारोंने अपना झुकाव पाश्चात्योंकी उस परिकल्पनाके पक्षमें स्पष्ट कर दिया है। हमने इस संबन्धके मंत्रों और टीकाओंको पढ़ा तो उनसे ऐसी कोई ध्वनि नहीं निकलती। अतः टीकाकारोंको इस सम्बन्धमें किसी ओर झुकनेकी आवश्यकता न थी। हमारे ही देशके श्रीसेन और श्रीहजारी

प्र० द्विवेदी जैसे विश्वभारतीके विद्वान् इस मतके पोषक बन रहे हैं, यद्यपि इस सम्बन्धमें इसका आधार अनुमानके सिवा कुछ नहीं है। हमारा दृढ़ मत है कि यह परिकल्पना सर्वथा अवैज्ञानिक है और पाश्चात्य विद्वानोंका अन्धानुकरण है। पदार्थविज्ञान सृष्टिके आरंभको आजसे प्राय: दो अरब बरस पूर्व ठहराता है जो हमारे कल्पारंभसे ठीक मिलता है। हमारे इतिहास और पुराणकी अनेक बातोंका विकासवादसे समर्थन होता है। फिर भी कहीं किसी प्रकारसे हमारा बाहरसे आना सिद्ध नहीं होता। अत: ऐसी अवैज्ञानिक परिकल्पनाके पोषणमें हमारे टीकाकारोंके कलमसे निराधार शब्दोंका निकल जाना हमारे निकट उपेक्षणीय नहीं है।

पौराणिक कथाओंकी सूची बड़ी महत्वपूर्ण है। यदि साथ ही प्रचलित पुराणोंके नामों और खंडों आदिका भी उल्लेख होता तो उपादेयता बढ़ जाती।

जो हो, यह टीका फिर भी बहुत अच्छी निकल रही है। श्रीमानोंके आश्रयमें निकलनेवाले ऐसे ग्रन्थका दाम यदि लागतमात्र होता तो अच्छा होता।

पहले पुष्पके न देखनेके कारण इस समीक्षामें हमसे जो अन्याय हो गया हो उसके लिये हम क्षम्य हैं। —रा० गौ०

सम्पादकीय टिप्पणियाँ

विलासिताकी बाढ़

सभ्यताकी बाढ़के साथ ही साथ विलासिताकी बाढ़का आना संसारके विनाशके लक्षण हैं। विलासिताका अनीतिकी ओर बढ़ना उसकी प्रगतिका स्वाभाविक क्रम है। रोम साम्राज्यके पतनका कारण विलासिता, अनीति और कदाचार हुए। आज सिनेमा एक प्रकारसे इस प्रकारके विलासिताके विकासको सर्वत्र चित्रित कर रहा है। हम पिछले अंकमें इस सम्बन्धमें अमेरिकाके लूथर बरबंककी सम्मति उद्धृत कर चुके हैं। जैसे विलासिताका नंगा नाच सिनेमामें आज हो रहा है वैसे ही नग्नशृंगार रसकी कविताएँ ब्रजभाषाकी प्रगति इस मार्गमें पूर्वकालमें सिद्ध कर चुकी हैं। अभिनव छायावादकी प्रवृत्ति भी इसी ओर देखी जा रही है। १८ फरवरीके वर्त्तमानमें पं० छैलविहारीजी दीक्षित "कंटक" ने छायावादके अन्तर्गत प्रविष्ट होनेवाले भावोंपर एक न्यायय लेख लिखा है। आप कहते हैं—

"इधर छायावादकी आड़में व्यभिचारी भावोंका संचार भी किया जारहा है। विलासिताको उत्तेजना देनेवाले वासना-भरे विचार ही इन दिनों कविताके रूपमें हमारे मस्तिष्कमें ठूँसे जा रहे हैं। प्रियतम और प्रियतमा, प्रेमी और प्रेमिका, प्यारी और प्यारेकी प्रेम-चर्चा ही आये दिनकी छायावादी कविताका विषय रह गया है। तुर्रा तो यह है कि जो लोग बड़े आदर्शवादी बनकर ब्रज-भाषाकी कविताको इसी दोषके लिए पानी पी-पीकर कोसते नहीं थकते थे आज वे ही संस्कृत शब्दावलीके आवरणमें हमारे सुकुमार-मति-समाजमें इसी विषको उँड़ेल रहे हैं। नवयुवक बिगड़ते हों तो बिगड़ें, दुश्चरित्रता बढ़ती हो तो बढ़े और कुवासनाएँ उत्तेजित होती हों तो हों, उन्हें इससे क्या? उनके कवित्वकी धाक तो रहती है, उनकी पुस्तकोंकी खपत तो होती है और उनकी पूछ तो बढ़ती है। बात यह है कि हिन्दी-संसारमें अभी लोकमत नामकी कोई चीज़ नहीं है और न कोई ऐसा समालोचक ही है जो साहस करके साहित्य-मन्दिरके इस कीचड़को धो डाले। इसीलिए यह सारा अंधेर है। यदि गुल और बुलबुल साकी और सागर और शमा और पर्वानेके लिये उर्दू कविता बदनाम है तो मूक-वेदना और अन्तस्तल स्वप्निल मदिरा और प्रेमालिङ्गन और स्मृति और विस्मृतिके लिए छायावाद भी कुछ कम नहीं है? ब्रज-भाषाके 'अङ्क-लङ्क' के 'आवर्तन-विवर्तन' की तरह आज छायावादका 'नीरव-निशीथ' में भी 'हृत्त-तंत्री' के टूटे तारोंकी 'फूटी झंकार' ही गूँज रही है। ऐसी परिस्थितिमें हमारे ऐसे कम पढ़े लिखे लोग यदि छायावादको ही विलास-वादका प्रचारक समझने लगते हैं तो कदाचित कोई पाप नहीं करते।"

हम नई कविताके, जिसे लोग 'छायावाद' के नाम से

पुकारने लगे हैं, विरोधी नहीं हैं। परंतु हम कवितासे 'व्यभिचारी' भावों के प्रचारको काव्यकी अमरतामें बाधक अवश्य समझते हैं। साहित्यमें श्रृंगार आए पर इतना अधिक नहीं कि पशु-विलास सा नग्न, और क्रीड़ा-हीन कल्लोलसे वह ओत-प्रोत हो।"

यदि कविता अपने वर्त्तमान इतिहासका मनोवैज्ञानिक अंक न समझी जाय तो हमें यह मानना पड़ेगा कि हमारा समाज आज पाश्चात्य विलासिताकी धारामें पड़कर नैतिक पतनके गर्तकी ओर जारहा है। क्या यह देखते हुए भी हम ऐसा उपाय नहीं कर सकते कि भावी सर्वनाशसे बचें? क्या प्रकृतिके कान पकड़े बिना हम न सुधरेंगे?

—रा० गौ०

मतिभ्रमका विराटरूप

हालमें ही दिल्लीमें भारतके समस्त विश्वविद्यालयोंके प्रतिनिधियोंका सम्मेलन हुआ था। सुना है कि इस सम्मेलनने बड़े विचारके बाद यह निश्चय किया है कि मिडिलकी शिक्षा तो अवश्य ही देशी भाषाओंद्वारा दी जाय और भरसक यह भी कोशिश की जाय कि जिन विषयोंमें ऐसा संभव हो हाई स्कूलोंके दरजोंमें भी भाषाद्वारा शिक्षा दी जाय। इस दुःस्साहसकी बलिहारी! जान पड़ता है कि मातृभाषाद्वारा इससे आगे शिक्षा दी जायगी तो बिहारवालेसे भी कहीं भयानक भूकम्प आ जायगा। इन विद्वानोंसे क्या मैं यह प्रश्न करनेका अधिकार रखता हूँ कि वह कौन सा विषय है जो अत्रभवान् अपनी मातृभाषामें नहीं पढ़ा सकते? ओः क्षमा कीजिये, भूल हुई। हाँ, यों प्रश्न करूँ कि वह कौनसा विषय है जिसे आप तो मातृभाषामें पढ़ा सकते हैं, परन्तु लड़के गरीब अपनी मातृभाषा इतनी नहीं जानते कि समझ सकें? या शायद यह बात तो नहीं कि अभी मातृभाषा ही इसके लिये अयोग्य है? मैं इन तीनों प्रश्नोंपर यहाँ अलग अलग विचार करूँगा।

(१) क्या मातृभाषा असमर्थ है? सन् १८९१ ई० तक मिडिल तककी शिक्षा देशी भाषाओं द्वारा ही दी जाती थी। संयुक्त प्रान्तमें यह नियम मुद्दतसे चला आ रहा था। न जाने क्यों उस समय एकाएकी यह परिवर्त्तन कर दिया गया। निश्चय ही आरंभसे समर्थ मानी जाकर बीचमें असमर्थ नहीं हो सकती थी। इसी विज्ञानके पृष्ठोंमें कोई वैज्ञानिक विषय ऐसा नहीं है जिसको विशुद्ध हिन्दीमें व्यक्त न किया गया हो। प्रायः सभी विषयों-पर पुस्तकें लिखी गयी हैं। माँग न होनेसे पुस्तकों-की बिक्री नहीं होती, कोई लिखने छपानेका साहस नहीं करता। उसमानिया विश्व विद्यालयमें सारी पढ़ाई उर्दू में होती है। गुरुकुल कांगड़ीमें सारी पढ़ाई हिन्दीमें होती है। हिन्दी और उर्दूकी अयोग्यताका प्रश्न कभी इन विश्वविद्यालयोंमें नहीं उठा। अतः आज ईसाकी बीसवीं शताब्दीकी एक तिहाई बिताकर भी हम यह कहते हैं कि मातृभाषा असमर्थ है तो हमारे लिये डूब मरनेकी बात है।

(२) क्या पढ़ानेवाले असमर्थ हैं?

उसमानिया और गुरुकुल दोनोंमें पढ़नेवाले मौजूद हैं जिन्हें मातृभाषामें पढ़ानेमें कोई कठिनाई नहीं प्रतीत होती और विश्व विद्यालयोंमें भी पढ़ा सकने वालोंकी कमी नहीं है। परिषत्के सदस्य रूपसे अनेक विद्वानोंके लेख और व्याख्यान इस बातके गवाह हैं। अतः पढ़ानेवाले भी असमर्थ नहीं हैं।

(३) क्या शिक्षार्थी अपनी मातृभाषा नहीं समझ सकते? यह प्रश्न तो ऐसा निरर्थक और मूर्खतापूर्ण है कि इसपर विचार करनेकी आवश्यकता नहीं।

मेरी समझमें इन तीनों कारणोंमेंसे एक भी मातृ भाषा द्वारा शिक्षा दानमें बाधक नहीं है।

मुझे ऐसा प्रतीत होता है जिन पुस्तकोंको पाठ्य-ग्रंथोंमें रखा जाता है उनमें जिनका स्वार्थ है वे ही अपना बल प्रत्यक्ष वा अप्रत्यक्ष रूपसे लगा रहे हैं। जिनको हमारी हानि भी करके अपना स्वार्थ साधना इष्ट है वह कभी देशी भाषाको शिक्षाका माध्यम न बनने देंगे।

हमारी हानि क्या है और कितनी है, यह हम कहाँ तक बतावें। बड़ा लंबा हिसाब है। हाँ, इतना

तो तुरन्त समझमें आ सकता है कि अंग्रेजी भाषी देशोंके मैट्रिक या हाईस्कूलका परिमाण हमारे देशके समान कक्षाओंसे बहुत ऊँचा है, क्योंकि उनकी मातृभाषा अँग्रेजी है। आज हमारी मातृभाषा यदि शिक्षाका मध्यम बन जाय तो हमारा परिमाण भी नीचेसे नीचे दरजोंसे लेकर ऊपर तक उतना ऊँचा हो जाय। और कोई शिक्षा विशारद यहाँ तक कि दिल्लीके विश्वविद्यालय सम्मेलनवाले भी—इस बातसे इनकार न करेंगे कि हमारा परिमाण बहुत नीचा है और ऊँचे उठानेकी आवश्यकता है। फिर विदेशी भाषाके माध्यमका अनावश्यक बोझ बेचारे बालकोंके कोमल कंधोंपर क्यों लादते हो? रा०गौ०

नोट—यह टिप्पणी तारके संक्षिप्त समाचारको पढ़कर लिखी गयी। सम्मेलनका विस्तृत विवरण पढ़नेपर अगली संख्यामें विस्तृत समीक्षा की जायगी। सं०

सहयोगी विज्ञान

१—टिप्पणियाँ

रंगोंसे मच्छरोंका बर्त्ताव—

सर आर्थर शिपले केम्ब्रिजके जीवविज्ञानी हैं। एक बड़े जालीके तम्बूमें उन्होंने विभिन्न रंगोंसे रंगे कपड़ोंसे मढ़े गत्तेके बकस एक पंक्तिमें रखे। यह कपड़ेके टुकड़ेभी एक ही थानसे लिये गये थे। उनका क्रम भी नित्य बदला जाता था। बराबर १७ दिनों तक मच्छरोंके बैठनेकी संख्या ली गयी। औसत संख्या इस प्रकार आयी। गाढ़ा चटकीला नीला १०८। गाढ़ालाल ९०। ललाई लिये भूरा रंग ८१। सेंदुरियालाल ५९। काला ४९। रूपहला भूरा ३१। गाढ़ा हरा २४। खाकी १८। पत्तीकासा हरा १७। आसमानी १४। हलकाभूरा ९। हलका हरा ४। हलका आसमानी ३। सफ़ेद २। गेरुआ रंग २। नारंगी १। पीला०। [अंग्रेजी जयाजी प्रतापसे]

"मधुरेण समापयेत"की सिद्धि

अमेरिकाके एक प्रोफेसरने अपने कई छात्रों द्वारा एक अद्भुत प्रयोग किया। एक हलकी पतली रबर नलिकामें एक छोटासा गुबारा लगाकर हर लड़केने लील लिया। जब पेटमें पहुँचा तो गुबारा हलकेसे फुलाया गया और नलिका एक बाहरी गुबारेमें लगा दी गयी जो पानीके बरतनमें रखा हुआ था जिसमें एक कांचकी नली थी। पानी नलीमें कुछ दूरतक भरा था। हर नलीसे तैरनेवाला दस्ता रेखाकणके लिये कलमके साथ लगा था। कागजके एक घूमते ढोलपर रेखा खिंचती जाती थी। बीच-बीचमें शोर कर दिया जाता था। हर शोरसे पेटके भीतर उपद्रव होता था जो रेखांकित हो जाता था। इस तरहके प्रयोगोंसे सिद्ध हुआ कि हल्ला-गुल्लासे पाचनपर अनिष्ट प्रभाव पड़ता है अतः भोजन बड़ी शान्तिमें करनेसे ही ठीक तरहसे पचता है। इन्हीं प्रयोगोंसे यह भी सिद्ध हुआ कि शोरके अनिष्ट प्रभावका निराकरण भी सहज है। जरा-सा मीठा भोजनके अन्तमें खा लेने-से यह दोष दूर हो जाता है। हमारे भोजनके नियमोंमेंसे यह बहुत प्राचीन नियम है कि भोजन बड़ी शान्तिसे करे और "मधुरेण समापयेत" मीठे-से ही भोजनकी क्रिया समाप्त करे। [संकलित]

हँसना और रोना दोनों स्वास्थ्यकर हैं

हँसना और खूब ठठाकर हँसना स्वास्थ्यकी रक्षा करनेवाला और पाचन-शक्तिको बढ़ानेवाला है। यह सर्ववादि सम्मत है। विज्ञानने यह भी सिद्ध किया है कि आँसू कीटाणुनाशक और आरोग्यकर हैं। इसलिये रोना भी स्वास्थ्यकर है। लड़कोंके स्वास्थ्यकी रक्षा स्वभावमें दोनों विधियोंसे होती रहती है।

जन्म के समय ही सब दाँत मौजूद

मूलगोसाईं चरितमें लिखा है कि जब गोस्वामी तुलसीदासजी पैदा हुए थे तो रोनेके बदले रामराम कहते थे और उनके मुँहभर दाँत थे। इस कथापर मनुष्य सहसा विश्वास नहीं करता। परन्तु ४

मार्चकी तारीख देकर ट्रिब्यूनमें छपा जालन्धरका यह समाचार उस पुरानी कथाको संभव ठहराता है।

"जालन्धर, ४ मार्च। नकोदर तहसीलके हेरान गाँवमें एक वैरागीके घर एक अद्भुत बालकके पैदा होनेसे सबको बड़ा आश्चर्य हो रहा है। यद्यपि बालककी लम्बाई केवल १४ इंच है और वह तौलमें सिर्फ दो सेर है फिर भी उसके मुँहमें सब दाँत हैं तथा दाढ़ी भी है। उसके सारे शरीरपर बाल हैं और वह वृद्ध मनुष्य जैसा मालूम पड़ता है। लोग उसको अवतार समझने लगे हैं। वह दर्शकों द्वारा पूछे हुए प्रश्नोंका ठीक ठीक उत्तर देता है। वह गिलाससे दूध पीता है। प्रकृतिकी इस लीलाको देखनेके लिये दूर दूरसे लोग अभीतक इस गाँवमें जारहे हैं।

मालिश या मर्दनसे लाभ

मालिशसे शरीरकी अनेक व्याधियाँ दूर की जाती हैं। हमारे आयुर्वेदमें 'मर्दन'की बड़ी महिमा गाई गई है। पाश्चात्य शरीर-शास्त्रज्ञोंका ध्यान भी मालिशकी ओर आकर्षित हुआ है। उन्होंने इसपर स्वतन्त्र रीतिसे अनेक ग्रंथ लिखे हैं। मालिश कई प्रकारसे की जाती है। एक प्रकारकी मालिश वह है जिससे शरीर पर अंगुलियों द्वारा थपकियें दी जाती हैं। जहाँ थपकी दी जाती है वहाँ रक्तका संचार तेजी से होने लगता है। मज्जातंतुओंको उत्तेजित करनेके लिये थपकीके बजाय अंगुलियोंसे दाबना पड़ता है—जिस तरह आटेको सानते हैं उसी तरह जल्दी-जल्दी अंगके विशेष भागोंको मोड़ना चाहिये।

मालिशका सबसे प्रचलित तरीका है—हथेलियों और अंगुलियोंके सहारे अंगोंको रगड़ना। इससे रक्त-संचार खूब तेजीके साथ होने लगता है। मालिशसे हड्डीके जोड़ दुरुस्त होते, चोट अच्छी होती तथा अन्य दर्द भी दूर होते हैं। अनिद्र रोगमें तो मालिश गजबका काम देती है। यही वजह है कि हमारे देशमें देहातोंमें और शहरोंमें भी कई वृद्ध पुरुष सोते वक्त नाई द्वारा हाथ-पैरोंकी "चप्पी" कराते हैं। चप्पी या दबानेसे नींद जल्दी और गहरी लगती है। पेटकी उचित मालिशसे जबरदस्त कब्ज भी दूर हो जाती है। मालिस उचित ढंगसे करनेसे ही योग्य परिणाम निकलता है। मालिश करनेका वैज्ञानिक ढंग यह है कि मालिश हृदयकी ओर रक्त प्रवाहित करनेकी दृष्टिसे ऊपरकी ओरको जानी चाहिये। मालिशसे त्वचामें स्निग्धता आती और शरीरमें सुडौलता तथा चेहरे पर रौनक छा जाती है। सप्ताहमें कम-से-कम एक बार तो मालिश करना ही चाहिए। व्यायामके पश्चात् मालिश करनेसे शरीरकी थकावट दूर हो जाती है। मालिश स्वयं एक प्रकारका न थकानेवाला सरल व्यायाम है। अतएव मालिशके पश्चात् कुछ विश्राम लेकर कुनकुने पानीसे स्नान कर डालना चाहिये। इससे शरीरमें स्फूर्ति आ जायगी। मालिश सूखे हाथोंसे भी की जाती है और स्निग्ध पदार्थों—तेल आदि—से भी दोनोंका लाभ समान ही है।"

—स्वराज्य से

स्वस्थ भारतीय मनुष्योंकी जरूरतें

वज़न—१३५ से १४५ पौंड तक
नब्ज़—७३ से ७६ तक
दिलकी धड़कन एक मिनटमें—१७से १९ तक
तापक्रम—९८·२° से ९८·६° फ० तक
पेशाबचौबीस घण्टेमें—२० से २३ छटाँकतक
दस्त—१—१॥ सेरतक

शरीर का तापमान तथा अन्य बातें ठीक रखनेके लिये २,६०० केलोरी गर्मी खाद्य पदार्था द्वारा शरीरमें पहुँचनी चाहिये।

२—वैज्ञानिक साहित्य

कल्पवृक्ष (हिन्दी) (उज्जैन) जनवरी और फरवरीके अंकमें यह लेख है। (१) ईश्वरीय जीवन, (२) शांति प्राप्त करनेका अचूक उपाय, (३) मनका प्रभाव, (४) जीता जागता विश्वास, (५) काल्पनिक भ्रांतिको दूर करनेका उपाय, (६) वाक् इन्द्रियका संयम, (७) धैर्य्यहीन स्त्री पुरुषोंके लिये विश्रामका व्यायाम, (८) सामर्थ्यशाली जीवन, (९) आध्यात्मिक जागृति व समारोह। तथा (१) अंतःकरणके पवित्र मंदिरमें प्रवेश करनेका मार्ग, (२) सुखका रहस्य, (३) आकर्षण और दूरीकरण, (४) हमारे पावोंका महत्व और उनकी रक्षा, (५) आत्मा को अनुभव करनेके साधन, (६) महत्वपूर्ण सूचना, (७) स्वास्थ्य हमारे जीवनके समस्त सुखोंकी जड़ है, (८) उच्च जीवन (९) ईश्वर और मनुष्यका संबंध (१०) थकावट कैसे रोकना चाहिये?

विश्वमित्र प्रलय अंक (हिन्दी) (कलकत्ता) की मार्च संख्यामें (१) प्रलय (गद्य कविता), (२) दो भारतीय महादेशोंका 'प्रलयपयोधिजल' से सर्वनाश (सचित्र) (३) 'सुघुस' आग्नेयगिरि क्राकातोआका सर्वनाशी धड़ाका (सचित्र), (४) वर्तमान रणोन्मत्त सभ्यता, (५) प्रलयका विचित्र वरदान—हीरा! (सचित्र), (६) भारतमें प्लेग सम्बन्धी ऐतिहासिक विवरण, (७) रोमके ऐतिहासिक अग्निकांडकी लोमहर्षक कहानी (सचित्र) (८) मध्ययुगके यूरोपमें प्लेगकी सर्वसंहारी ताण्डव-लीला (सचित्र), (९) विश्वविनाश, (१०) पाम्पिआइकी वह कालरात्रि! (सचित्र), (११) महानाश के पूर्व लक्षण (सचित्र), (१२) यहूदियोंका युग-युग व्यापी संस्कार (सचित्र), (१३) दर फनाए जहान, (१४) मर्त्य! (१५) 'साधो, ईमुरदनके गाँव' (१६) नाशलीलाके समय पैशाचिकता और कामोन्मत्तता (सचित्र) (१७ भूकम्प और उसके कारण, (१८) नटराज १) उत्तरविहारमें सर्वव्यापी अदृश्य अणु-रूप (सचित्र और २२) प्रणयकी प्रलयलीला। यह लेख हैं। योग्य सम्पादकोंने इस अंकको विश्वमित्रके उच्च परिमाणके अनुरूपही ठोस और सुसज्जित बनाया है।

वैद्य कल्पतरु (गुजराती), अहमदाबाद। (१) दिनचर्य्या, (२) अँग्रेजी और वैद्यक पद्धतिसे ज्वरका निदान और वर्गीकरण, (३) इंजेक्शन-चिकित्सा, (४) संगीत और स्वास्थ्य, (५) संग्रहणीमें विडंगतंडुलका अनुभव, (६) जानने योग्य बातें। यह छ: विषय-प्रबंध जनवरीके अंकमें हैं? फरवरीके अंकमें ये लेख हैं—(१) हिन्दुस्तानकी तन्दुरुस्ती, (२) क्षयरोगका बाधक, (३) "सर्पमृत्यु" कार्य्यालय का भंडाफोड़, (४) सर्प विषका चमत्कारिक इलाज। (५) प्लेग संबंधी सूचनाएँ, और (६) वैद्यक विज्ञान।

प्रकृति बँगला ऋतु पत्रिका। कलकत्ता। ग्रीष्म वर्षा और शरत्संख्या। (१) पदार्थकी चतुर्थ अवस्था। (२) टेलीविजन। (३) "उत्तरभाग" नोना जलके जीव। (४) सम्मोहन निद्रा। (५) पाजिट्रनका जन्म-वृत्तान्त और धर्म्म। (६) वैदिक-साहित्यमें उद्भिदकी कथा। (७) प्राणिविज्ञानकी परिभाषा। ( ) ताप। (९) कलकत्तेका केकड़ा। (१०) वायुमंडल और उसकी प्रयोजनीयता। (११) भाषाके गठन और समृद्धि साधनमें उद्भिद्की देन। (१२) मुँगेर जिलेमें प्रचलित एक लड़कीके व्रतके संबंधमें कई बातें। ये बारह लेख बहुत उच्चकोटिके हैं।

भूगोल। मासिक। प्रयाग। (१) भूकम्प। (२) भारतमें मैंगेनीज़। (३) चीनी भूगोल। (४) कुशीनारा। (५) भारतवर्षमें लोहा। (६) मेरी विदेश-यात्रा फरवरी अंकमें यह छः सुन्दर प्रबन्ध हैं।

३—सामयिक साहित्यमें विज्ञान

(१) मासिक साहित्य

वैदिक विज्ञान, दिसम्बरसे फरवरी तकके तीन अंकोंमें, (१) वेद और विकासवाद, (२) अद्वैतवाद, (३) वेद और ज्यौतिष, (४) वेद और धनुर्विद्या, ये चार लेख विशेष रूपसे उल्लेख्य हैं। फरवरीके अंकको अंग्रेजीमें "Vedic Vijjan" न जानें क्या समझकर लिखा है। यदि अंग्रेजीमें नाम देना आवश्यक है, तो Vaidika-Vijnana होना चाहिये।

विश्वमित्र जनवरी और फरवरीके अंकोंमें (१) शब्दार्थका रोचक इतिहास, (२) कागज बनाम सोना, (३) भारतमें क्षयरोगका प्रसार, (४) स्त्रीका पुरुषसे सम्बन्ध। (५) भूकम्प तथा ज्वालामुखीके कारण, (६) जापानका भूकम्प (७) मुस्लिम युगमें शिक्षा और हिन्दूसमाज। ये उल्लेख वैज्ञानिक निबन्ध हैं। इनके सिवा विज्ञान और चमत्कार नामक स्तंभ भी है। मार्चका अंक प्रलयांक है। इसकी चर्चा अन्यत्र हो चुकी है।

चाँद, दिसम्बर जनवरी और फरवरी और मार्चके अंकोंमें ये वैज्ञानिक लेख उल्लेख्य हैं—(१) अल्पसंख्यक जातियोंकी समस्या। (२) विटामिन रहस्य। (३) भारतीय विनिमयदर। (४) सोमनाथ उसका वैभव और विध्वंस, (५) वेदमें प्रसवविद्या, (६) भारतीय शक्करका उद्योग, (७) प्राचीनकालकी व्यवसायप्रणाली, (८) स्वास्थ्य और सौंदर्य्य,

तथा (६) उन्नतिशीलराष्ट्रमें बच्चोंकी देख रेख।

विशालभारत, दिसंबर, जनवरी और फरवरीके अंकोंमें (१) रुपयेके विनियम मूल्यमें ह्रास, (२) ईख-की खेती और मिलमालिक, (३) लाइनोटैप और उसका आविष्कारक, (४) भारत-सरकारकी करेंसी-नीति, (५) रुपयेकी आजादी क्यों, (६) भूकम्पपीड़ित बिहार, (७) कम्बोडियामें हिन्दूकीर्त्ति और (८) भूचाल ये आठ वैज्ञानिक लेख विशेषरूपसे उल्लेख्य हैं।

गंगा, के दिसम्बरके अंकमें (१) भोजपुरी और प्रो० सान्याल, (२) श्रावस्ती-यात्रा, (३) मेरी द्वितीय लद्दाखयात्रा, (४) शार्टहैंडका इतिहास, (५) शिक्षा और परीक्षा, और (६) कृषि और वाणिज्य, ये छः वैज्ञानिक लेख उल्लेख्य हैं।

हंस, दिसम्बर, जनवरी और फरवरीके अंकोंमें (१) मोंटीसोरी पद्धति, (२) बौने, (३) अल्युमिनियम तथा उसकी उपयोगिता, (४) सप्ताहके दिन और उनकी प्रवृति और (५) सेल्युलोज ये पाँच वैज्ञानिक लेख विशेष रूपसे पठनीय हैं।

सुधाके १६ दिसम्बर और १६ जनवरीके अंकोंमें (१) विश्राम समस्या, (२) हास्यरस और (३) विश्वकी प्रतियोगिताएँ ये तीन लेख विशेषत: उल्लेख्य हैं।

कुमार, परिशिष्टांकमें (१) एवरेस्टसे मुकाबिला, (२) हम भूलते क्यों हैं? (३) स्वास्थ्य और (४) आस्ट्रेलियाकी खोज ये चार वैज्ञानिक लेख उल्लेख्य हैं।

वीणा, फरवरीका अंक विशेष रूपसे बहुत सुन्दर निकला है। इसकी छपाई सफाई सजधज सभी कुछ मासिक साहित्यकी दौड़में इसे बहुत आगे ले जानेवाला है। ताज महलका दृश्य बहुतही मनोमोहक दिखाया गया है। शब्द चित्रभी वैसाही सुन्दर है। (१) संघशासनका निरूपण और (२) भारतीय ग्रामनिवासियोंका स्वास्थ्य, ये दो महत्वपूर्ण वैज्ञानिक लेख हैं। शायद इसी सज-धजसे आगेके अंक भी निकलेंगे क्योंकि यह कोई विशेषांक नहीं है।

(२) साप्ताहिक साहित्य

आजकल साप्ताहिक साहित्यमें भी वैज्ञानिक विषयोंकी प्रचुरता रहे बिना रोचकता नहीं लायी जा सकती। सबसे अधिक वैज्ञानिक साप्ताहिक आजकल हिन्दी स्वराज्य है। इधर वर्षारंभ होते ही उसमें सन् १९३४का भविष्य छपा था। इसबार व्यासजीको भूडोलके भविष्यवादका श्रेय न मिल सका। स्वास्थ्य और सौंदर्यपर बहुत ही सुन्दर नोट देना स्वराज्यकी विशेषता है। इधर "विज्ञानके चमत्कार" "अभ्रकके प्रदेशमें" भूकम्प संबन्धी लेख, योगियोंके अनुभवके सम्बन्धमें वैज्ञानिकोंका साक्ष्य आदि बड़े ही मारकेके लेखमें निकले। भूकम्पने तो धरती ही नहीं हिलायी, वरन सारे सामयिक साहित्यमें हलचल पैदा कर दी। अबतक भूकम्प पर लेख लिखे जारहे हैं, यद्यपि यह विषय ऐसा है कि इसपर निश्चयपूर्वक कुछ भी लिखना असंभव है। कर्म्मवीरमें भी "रोग क्या है?" "स्वास्थ्यविज्ञान" और "विश्वामित्रकी दुनिया" नामके अच्छे वैज्ञानिक लेख निकले हैं। जयाजी प्रताप तो विशेष स्तंभोंके अतिरिक्त कोई न कोई वैज्ञानिक लेख अवश्य ही दिया करता है। इधर "विश्वकी प्रतियोगिता" "चन्द्रग्रहण" देहातकी सफाई" "बया" आदि अच्छे लेख निकले हैं, वैसे तो "वैज्ञानिक संसार" "स्वास्थ्य और आरोग्य" 'संसारकी सैर" नामके बड़े रोचक स्तंभ रहा ही करते हैं। इधर विकासमें क्षयरोगपर एक बड़ा सुंदर लेख निकला है। स्वास्थ्य सुधा उसका स्थायीस्तंभ है। प्रभातमें इधर 'वायुयान' 'भूकम्प' और 'टैक्स' पर बड़े उपयोगी लेख निकलते रहे हैं। कानपुरके साप्ताहिक प्रतापने तो अपना वैज्ञानिक परिमाण अक्षुण्ण बना रखा है। वैज्ञानिक नोटोंके लिये उसमें "विधाताका विश्व" खुला हुआ है। स्वास्थ्य पर अच्छे से अच्छे लेख अक्सर रहा करते हैं। "फैसिज्म या साम्यवाद" "विश्व व्यापी आर्थिक संकट" "अमेरिकाकी मुद्रानीति" और 'संसारके भूकम्पोंका इतिहास, हालमें ये लेख बड़े विचारपूर्ण निकले हैं। जागरणमें इधर "शिक्षक और भय" 'घरेलू काम काजकी बातें" "स्वस्थ रहनेके साधन" "दक्षिणभारत में कहवा" "मानसिक स्वभाव और उसकी शक्ति" आदि कई लेख विचारपूर्ण और उपयोगी निकले हैं।